॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

* बीजक–सद्ग्रन्थः *

[टीका—त्रिजा बुझार्थं सहित ।]

मूल्य—

२१६.०० दो सौ सोलह रुपये ।

(डाक खर्च अलग)

* श्री सद्गुरवे नमः *

श्री

ज

क

स

द्

ग

न्थः

श्रीसद्गुरवे नमः

श्रीसद्गुरु के प्रसाद में सन्त खेमदास जी को दिया। दि० २१-११-९५ ई०

तरणदास

श्री सद्गुरु कबीर साहेब द्वारा विरचित मूल बीजक सद्ग्रन्थ को टीका – चिन्तन – म आफ्नो तर्फबाट मान्यवर डा. श्री डिल्ली रमण रेग्मीज्यू द्वारा स्थापित पुस्तकालय लाई स प्रेम अर्पण गर्दछु।

खेमदास

कबीर पंथी साधु खेमदास.
श्री कबीर रामसत्यरूप सत्संग निर्णय मन्दिर
स्वान्त कुञ्ज – जावलाखेल
कीर्तिपुर – काठमाडौं।

२०५६।६।१३।३ वि.सं.
२०००।९।२९।३ ई.सन्.

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

सन्त सम्राट् पारख सत्य सिद्धान्त प्रकाशक सर्वोपरि

महान् ज्ञानी बन्दीछोर सद्गुरु

श्रीकबीरसाहेबजी प्रणीत मुख्य ग्रन्थः ।

बीजक-सद्ग्रन्थः

[सद्ग्रन्थाग्रगण्य गुरु कबीर मूल वचनामृत ।]

श्रीकबीर निर्णय मन्दिर स्थान नागझिरी, बुरहानपुर,
कबीरपन्थ गद्दीके संस्थापक प्रथम आचार्यवर्य

पारखी सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित—
[बीजक-टीका-त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

सम्पादक एवं प्रकाशकः—

रामस्वरूपदास ।

[आचार्य कबीरपन्थ, गद्दीस्थान-श्रीकबीर निर्णय मन्दिर,
नागझिरी, बुरहानपुर, (निमाड़ (खण्डवा) मध्यप्रदेश) ।]

द्वितीय संस्करणः— } मूल्य [redacted] } सं० २०५१ वि० ।
५२०० प्रतियाँ । } (डाक खर्च अलग) } सन् १९९४ ई० ।

प्रकाशकः—

रामस्वरूपदास।

श्रीकबीर पारख मन्दिर, जैतपुरा, वाराणसी।

(कबीर पन्थ गद्दीस्थान नागझिरी-बुरहानपुरमें सुरक्षित—
खुले पत्ररूप प्राचीन हस्त लिखित पुरानी प्रतिसे
सत्य प्रतिलिपि शुद्धरूपमें उतार करके यह
त्रिजा छपाकर प्रकाशित की गयी है।)

सम्पूर्ण मूल रमैनी और दोहा-टीका सम्पूर्णके भी
संक्षेपार्थ दिग्दर्शन सहित।

प्रसंग-स्थान २२ जगह भाष्ययुक्त टिप्पणी
भी रक्खी गयी है।

गुरु कबीर महान जस। तैसे बीजक मूल॥
पारख परख स्वरूप थिति। भ्रम बन्धन मिटि भूल॥ १॥
सद्गुरु पूरण साहेब! अनुभव भाव प्रकाश॥
बीजक के सब भेदको। त्रीजा कीन्ह खुलास॥ २॥
कबीर साहेब आदि गुरु। पूरण साहेब देव॥
रामस्वरूप त्रय बन्दगी। बोधक गुरुपद मेव॥ ३॥

[दि० १५-१२-१९७२ ई० को यह सद्ग्रन्थ प्रथमावृत्ति ५१०० प्रतियाँ छपकर पूर्ण हुआ था।]

मुद्रकः—धर्मराज प्रिंटिंग प्रेस, यस० २६/९३ मीरापुर बसहीं वाराणसी।

॥ * ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ * ॥

॥ * ॥ जय मङ्गल–कीर्तन–पद ॥ १ ॥ * ॥

जय पारख रूप अनूप प्रभो !, जय बीजक ज्ञान विधायक हो ॥
जय ज्ञानिन गुरुवर भूप प्रभो !, जय बन्दीछोर विनायक हो ॥ टेक ॥
जय आदि गुरू सतज्ञान प्रकाशक, जय सत्य परीक्षक लायक हो ॥
जय साहेब देव ! कबीर गुरू !, जय शोधक सत्य मिलायक हो ॥ १ ॥
जय जीवनमुक्त स्वरूप थिति, जय मुक्ति प्रदाय कहायक हो ॥
जय हंस शिरोमणि निर्मल जो, जय सद्गुण खान सहायक हो ॥ २ ॥
जय तारक हो भवसिन्धु निधी, जय खानि ओ वाणि बिलायक हो ॥
जय बीजक परख प्रखावत जो, जय पारख जीव दिलायक हो ॥ ३ ॥
जय हो ! जय हो ! गुरु साहेबकी, जय आरति कबीर महा एक हो ॥
जयति ! जयति ! जय ! जय ! पारखिकी, जय रामस्वरूप रहा एक हो ॥ ४ ॥

॥ * ॥ सर्वोपरि पारख सिद्धान्त ॥*॥ भजन २ ॥ * ॥

बीजक कहा है जिसने, उन सम कोई नहीं है ॥
सद्गुरु कबीर साहेब, पारखहि सत कही है ॥ टेक ॥
जिवके बिना न कोई, सत वस्तु और नाहीं ॥
चैतन्य जीव साँचा, अविनाशि वो सही है ॥ १ ॥
जड़ चिद् दोऊ अनादी, ईश्वर खुदा नहीं है ॥
अनुमान धोख कल्पित, वाणी भुला रही है ॥ २ ॥
त्रयमुख की वाणि सब ही, बन्धन फँसा रही है ॥
गुरुमुख भरम मिटाकर, जिव मुक्त पद लही है ॥ ३ ॥
सिद्धान्त सत्य पारख, बीजक बता रही है ॥
गुरुकी दया परख लो !, रामस्वरूप कही है ॥ ४ ॥

॥ * ॥ बीजककी विशेषता ॥*॥ भजन ३ ॥ * ॥

चैतन्य धन खजाना, उरमें है गुप्त पारख ॥
सद्गुरु कबीर साहेब, बीजक प्रकट सुधारख ॥ टेक ॥
मत पन्थ ग्रन्थ शोधी, सिद्धान्त सब परख कर ॥
सतन्याय नीकि निर्णय, एक जीव सत्यता रख ॥ १ ॥
बहु बानि ग्रन्थ वेदा, षट शास्त्र आदि जितने ॥

बाइबिल कुरान आदिक, भ्रम धोखमें भुला रख ॥ २ ॥
पाखण्ड खानि वाणी, सब ओर हैं पसारा ॥
कोई छुटै न पावै, सब जालमें फँसा रख ॥ ३ ॥
दुखिया गरीब निर्धन, पारख बिना भटकते ॥
औरों अनेक जनको, भटका रहे अनारख ॥ ४ ॥
जिवसे परे न कोई, अनुमान धोख सब ही ॥
'हे जीव ! सत्य तुम' ही, कहते गुरू सो पारख ॥ ५ ॥
जिव अज्ञ काल कल्पित, शिव ज्ञानि सन्धि जल्पित ॥
विज्ञानि ब्रह्म झाँई, गुरुमुख लखाय सारख ॥ ६ ॥
गुरुवा भुले भुलावैं, बन्धन अनेक घेरा ॥
गुरु पारखी छुड़ाते, बीजक सुभेद तारख ॥ ७ ॥
बीजक के भाव गुरुमुख, सुन गुन पढ़ो विचारी ॥
रामस्वरूप निज पद, स्थिति होय स्वरूप पारख ॥ ८ ॥

॥ ※ ॥ बीजककी विशेष महिमा वर्णन ॥※॥ भजन ४ ॥ ※ ॥

सद्गुरु कबीर साहेब, दीन्हीं यही खजाना ॥
पारख सुबोध पायव, बीजक महान दाना ॥ टेक ॥
ऐनी औ ऐन दोऊ, भूला ओ ऐन थाना ॥
भ्रम भूल को मिटाकर, रमैनी कही महाना ॥ १ ॥
सब शब्द आदि जाला, कहि शब्दमें दिखाना ॥
चौंतीस अक्षरादी, निर्णय चौंतीस जाना ॥ २ ॥
जस विप्रकी मती थी, तस विप्र मति बखाना ॥
कहरा कहर मिटाकर, मोटी ओ झीनि गाना ॥ ३ ॥
बसन्त मास बारह, सोई बसन्त नाना ॥
माया के खेल चाचर, दोनों दिखा हटाना ॥ ४ ॥
नारी ओ वाणि बेली, बन्धन मिटाय जाना ॥
बिरहुलि विरह बताकर, चैतन्य पद ठिकाना ॥ ५ ॥
खानी ओ वाणि झूला, हिण्डोल में लखाना ॥
पारख भई उतर कर, निज पद ठहर सुजाना ॥ ६ ॥

झगड़ा जगत् के बन्धन, मन मानि सब लड़ाना ॥
निज बोध सत्य साक्षी, साखी परख बताना ॥ ७ ॥
सिद्धान्त परख साँचा, पारख स्वरूप जाना ॥
जड़ध्यास बन्ध छुटकर, रामस्वरूप रहाना ॥ ८ ॥

॥ ॐ ॥ श्रीकबीर बीजककी विशेषता ॥ॐ॥ भजन ५ ॥ ॐ ॥

सद्गुरु कबीर बीजक, पारख बता रहा है ॥
निज रूप जीव साँचा, निर्णय जता रहा है ॥ टेक ॥
जिव है स्वयं अनादी, चैतन्य सत्य आपै ॥
नरदेह जन्म आदी, सबको लखा रहा है ॥ १ ॥
तनधारि जीव अगणित, गुणमें स्वजाति सबहीं ॥
न्यारा स्वरूप सबके, ऐसा जता रहा है ॥ २ ॥
जड़ध्यासके हि बन्धन, जिव आप ही पड़े हैं ॥
सब ऽध्यास परख छोड़ी, तब मुक्ति पा रहा है ॥ ३ ॥
जड़ पाँच तत्त्व जितने, कारण ओ कार्य तितने ॥
खगोल भू के घेरा, अनादि चला रहा है ॥ ४ ॥
चैतन्य जड़ विजाती, दो रूप नित्य आती ॥
जड़से न होय चेतन, सम्बन्ध पा रहा है ॥ ५ ॥
कर्त्ता नहीं है कोई, कल्पित भरम समोई ॥
ईश्वर खुदा बताते, भ्रम वाणी गा रहा है ॥ ६ ॥
चारों मुखों कि वाणी, गुरुमुख लखा रहा है ॥
पारख बिना भुले हैं, पारख प्रखा रहा है ॥ ७ ॥
बीजक के भाव सबहीं, त्रिजा बता रहा है ॥
रामस्वरूप निर्णय, कोइ-कोई पा रहा है ॥ ८ ॥

॥ ॐ ॥ बीजक त्रिजाकी विशेषता ॥ॐ॥ भजन ६ ॥ ॐ ॥

यह बीजक त्रिजा महाना है ॥
गुरु कबीर जस बीजक दीन्हीं । पूरण भाव पिछाना है ॥ टेक ॥
गुरु कबीर जस प्रथम पारखी । निर्णय अनुभव ज्ञाना है ॥
पारखबोध सिद्धान्त प्रकाशक । सर्वोपरि बलवाना है ॥ १ ॥

पूरण साहेब पारखि तस ही। बीजक भाव पिछाना है॥
कसर खोट अनुमान मिटाकर। काल सन्धि बिलगाना है॥ २॥
गुरु कबीरके पारख मत को। पारखि सन्त चलाना है॥
परम्परा पारख चलि आये। सत सिद्धान्त टिकाना है॥ ३॥
माया ब्रह्म जीव मुख बानी। गुरुमुख से परखाना है॥
काल सन्धि औ झाँइ मिटाकर। सत्य सार ठहराना है॥ ४॥
षट् दर्शन पाखण्ड छियानबे। बिनु पारख भटकाना है॥
ब्रह्म ईश खुदा अनुमानी। धोखा धार बहाना है॥ ५॥
सात स्वर्ग लोक ठहराने। बिना फूल रस खाना है॥
भावुक भँवर शून्य उड़ि जावें। चौरासी भटकाना है॥ ६॥
खानि बानि जाल विकराला। दुःख बन्धन भुगताना है॥
पारख बिनु नहिं ठौर ठिकाना। बिरले जीव चेताना है॥ ७॥
सत्सङ्गति पारख गुरु दीन्हीं। बिजक त्रिजामृत पाना है॥
रामस्वरूपदास बलिहारी !। गुरुपद शीश झुकाना है॥ ८॥

॥ * ॥ सद्ग्रन्थ बीजककी संक्षिप्त महिमा ॥ * ॥

छन्दः—कबीर साहेब ! ज्ञान शिरोमणि। पारख बोध देखाइया॥
खानि औ वाणी जाल छुड़ाकर। झाँई व सन्धि हटाइया॥ १॥
जीव जमा का सार लखाकर। बीजक भेद बताइया॥
"रामस्वरूपदास" पद बन्दत। पारख गुरुपद पाइया॥ २॥
चेतन बित्त बतावै बीजक। पारख पद दर्शाता है॥
कसर धोख भ्रमजाल मिटाकर। शुद्ध स्वरूप लखाता है॥ ३॥
खानि—वाणि सब बीज जलाकर। बीजक ज्ञान रहता है॥
"रामस्वरूप" बीजक धन पावै। भव-बन्धन छुटि जाता है॥ ४॥

साखीः—बीजक रवि प्रकाशक। पारख रूप कबीर॥
मानन्दी तम नाशक। बन्दौं गुरू कबीर॥ ५॥
ज्ञानिन श्रेष्ठ कबीर गुरु। बीजक ग्रन्थन माहिं॥
'रामस्वरूप' गुरुमुख पढ़ू। स्व-स्वरूप दरशाहिं॥ ६॥

सत्य निर्णय सर्वोपरि । गुरु कबीर का ज्ञान ॥
बीजक है टकसार यह । है प्रत्यक्ष प्रमान ॥ ७ ॥
सत्यासत्य लखाय के । जड़ाध्यास तम नाश ॥
रवि सम बीजक ज्ञान है । पारख बोध प्रकाश ॥ ८ ॥
गुरु कबीर ! उपदेश सद् । 'बीजक' है सद्ग्रन्थ ॥
पारख बोधै स्वरूप निज । नाशै तम भ्रम ग्रन्थ ॥ ९ ॥
चेतन स्वरूप जमा पद । निज लखु गुरुमुख बोध ॥
खानि-वाणि मानन्दि सब । बन्धन खर्च है शोध ॥ १० ॥
सद् चिद् बित्त स्वरूप निज । ताहि न जानै अबोध ॥
जड़ाध्यासि भटकत फिरै । सो गुरु कबीर प्रबोध ॥ ११ ॥
सार बित्त परखाइया । ग्रन्थ पन्थ मत शोध ॥
चौ षट् अष्टादश सकल । 'बीजक' सन्धी खोल ॥ १२ ॥
ऋषि मुनि ज्ञानी सन्त जे । भये प्रथम जग माहिं ॥
सबहिंन मत निर्णय करी । 'बीजक' कबीर लखाहिं ॥ १३ ॥
सत्य बोध औ मुक्ति का । जो जिज्ञासु को चाह ॥
'बीजक' ज्ञानहि 'रामस्वरूप'। दृढ़ करु गुरुमुख राह ॥ १४ ॥
सत्य ज्ञान का निर्णय । बीजक सार-का-सार ॥
कबीर गुरुमुख बोध यह । पारख ज्ञान भण्डार ॥ १५ ॥

॥ * ॥ द्वितीय संस्करण प्रकाश, अल्प वचन ॥ * ॥

इक्कीस वर्ष पहले यह बीजक त्रिजा वाराणसीमें छपाया गया था । इस समय यह ग्रन्थ समाप्त हो चुका हैं । तरणदासके मेहनत, पुरुषार्थसे अभी दूसरी बार यह छपकर पुनः प्रकाशित हुई है । समयने मूल्य वृद्धि की है । मूल्यमें चतुर्थांश छूट—(कमी) कर दी जाती है। विभिन्न समझके लोग प्रसन्न हो नहीं पाते। सर्वथा अप्राप्त हो जानेसे तो महँगाईमें मिल जाय, तो भी लेनेवालोंके लिए ठीक ही होगा, ऐसा समझकर इस ग्रन्थको छपाने लगा दिया है। अब जिनको जैसी समझ हो, वैसा करें। सहजमें सरलतासे जब चाहे तब ग्रन्थ छपाई की भी जा नहीं सकती है। "जापर बीते जानै सोई" गुणग्राही गुण ही ग्रहण करेंगे ॥ इति ॥ श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरी, बुरहानपुर ॥ दि० ६।२।१९९४ ई०, रविवार;—रामस्वरूपदास ।

दि० ८-२-१९९४ ई० से दि० १६-२-१९९४ ई० तक हमने इस ग्रन्थको आदिसे अन्ततक स्थानमें रहकर पढ़ लिया था। गुरु निर्णयानुसार सब ठीक है । साधु गुरुकी कृपा बनी ही है ॥

* पृष्ठ ११७, रमैनी ४८, चौ० २ में आए इक्कीस पीरोंके नाम की टिप्पणी—

❀ इक्कीस पीरोंकी नामावली ❀

सद्गुरु श्रीकबीर साहेबजी के समयमें झूसी आदिके मसजिदोंमें इक्कीस पीरोंके नाम दिवाल = भीत आदिमें अलग-अलग लिखे जाते थे। बीजक मूल रमैनी ४८, चौपाई ३ में सद्गुरु स्वयं कहे हैं—

"येकइस पीर लिखे तेहि ठामा। खतमा पढ़ें पैगम्बर नामा ॥ ३॥"

इस्लाम मतमें मुसलमानोंके माने गये इक्कीस पीरोंके नाम वर्णन—

सबसे पहले आदि पुरुष हजरत बाबा आदम अलय हिस्सल्लाम हुए थे। इनको छोड़कर निम्न प्रकारसे इक्कीस पीरोंके नाम कहे गये हैं—

१. हजरत शेख		अलय हिस्सल्लाम		१२. हजरत ईशा		अलय हिस्सल्लाम	
२. ,,	इदरीश	,,	,,	१३. ,,	असी	,,	,,
३. ,,	नूह	,,	,,	१४. ,,	खिजर	,,	,,
४. ,,	इब्राहीम	,,	,,	१५. ,,	मूसा कलिमुल्ला	,,	,,
५. ,,	इस्माइल	,,	,,	१६. ,,	जुलकफल	अलय	,,
६. ,,	इसहाक	,,	,,	१७. ,,	होद	,,	,,
७. ,,	अयूब	,,	,,	१८. ,,	सालेह	,,	,,
८. ,,	शोएब	,,	,,	१९. ,,	लुकमान	,,	,,
९. ,,	याकूब	,,	,,	२०. ,,	लूत	,,	,,
१०. ,,	युसुफ (युसेफ)	,,	,,	२१. हजरत मोहम्मद		अलय हिस्सल्लाम	
११. ,,	मूसा	,,	,,				

इक्कीस पीरोंके उक्त नाम उल्लिखित किताबका नाम—सजरा वंशावली। संग्राहक का नाम—सैय्यद अख्तर हुसैन जैदी; १५, हवामहलरोड, भोपाल। प्रकाशन तिथि—हस्तलिखित प्रति १९८२ई० सन्।

डा० सैय्यद नासिर अली नकवी, सहायक पशु शल्य चिकित्सक, संचालनालय पशु चिकित्सा सेवाएँ मध्यप्रदेश भोपालको दि० ३।२।१९९० ई० शनिवारको भोपालमें संग्राहकके द्वारा उपर्युक्त जानकारी एवं प्रतिलिपि प्राप्त हुई थी।

कबीरपन्थी गुरुभक्त डॉ० माँगीलाल चन्द्रवंशी, पूर्व उपसंचालक, एम--३।२ शिवानी परिसर, ६ नं० स्टापके समीप, शिवाजी नगर, भोपाल; निवासीने विशेष प्रयत्नसे खोज-तलास करके ऊपर लिखे अनुसार इक्कीस पीरोंके नाम उतार कर संग्रह करके दि० ९।२।१९९० ई० शुक्रवार, माघ पूर्णिमाको भरलाय ग्राम, लखनलालके घरमें, दिनके १ बजे लाकर रामस्वरूपदासको दिया। इस प्रकार उपर्युक्त इक्कीस पीरोंके नाम मुझे हस्ते डा० माँगीलाल चन्द्रवंशीके द्वारा मिले थे।

इसमें लिखे संग्राहक, प्रतिलिपिकार, अन्वेसक, और प्रकाशकके नाम साफ खुलासा न दरशा करके अब यदि कोई केवल इसमेंसे इक्कीस पीरोंके नाम मात्र अपना स्वयं जाना हुआ जैसा लिखेंगे, उतारेंगे अथवा उसे अन्यत्र ले जाकर हेर-फेर करके छपायेंगे, तो वे न्यायसे छली, कपटी अपराधी ही बनेंगे। इस कारण प्रकाशकसे लिखित स्वीकृति लिए बिना कोई इसे अन्यत्र न छपावें, अब इस बातको ठीकसे समझ लेवें॥

थूआग्राम— दि० १२।२।१९९० ई०, सोमवार, } बुरहानपुर स्थान— दि० ५।२।१९९४ ई०, शनिवार —रामस्वरूपदास।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

❀ भूमिका ❀

दोहाः—सद्गुरु देव कबीर प्रभु! पारख रूप अनूप ॥
ज्ञानिन श्रेष्ठ सो आदि गुरू। बन्दौं चरण स्वरूप ॥ १ ॥
सार शब्द निर्णय करी। बीजक रवि उजियार ॥
सत सिद्धान्त बताइया। पारख जीव ठहार ॥ २ ॥
जैसे गुरू कबीर हैं। तैसे बीजक आप ॥
वैसे हुए न होवहीं। जगत विदित परताप ॥ ३ ॥
गुरु कबीर औ बीजक। जैसा निर्णय भाव ॥
सद्गुरु पूरण साहेब। त्रीजा खोलि बताव ॥ ४ ॥
बीजक मूल समान ही। त्रीजा प्रथम दिखाय ॥
पारख जीव स्वरूप है। भ्रम धोखा मिटि जाय ॥ ५ ॥
कबीर साहेब पारखी। गुरुमुख पारख दीन्ह ॥
पारखि सन्त परम्परा। पारख पद गहि लीन्ह ॥ ६ ॥
गुरुपद कबीर साहेब। पूरण साहेब देव ॥
रामस्वरूप त्रय बन्दगी। पारख बोध गहेव ॥ ७ ॥

विश्व-विख्यात सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबको सामान्यरूपसे तो सब लोग जानते ही हैं; परन्तु बन्दीछोर पारखबोध-प्रकाशी मुक्तिदाताके रूपमें कोई-कोई बिरले ही पहचानते हैं। आपका सत्योपदेश मूल बीजकरूपमें निर्माण हुआ। मूल बीजक सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। जिसमें सबके प्रचलित सिद्धान्त दरशाकर गुरुमुख निर्णयसे अपना पारख-सिद्धान्त प्रकाश किया है। बीजक मूलको लगभग समस्त कबीरपन्थी जन-समाज प्रामाणिकरूपमें मानते हुए आदरकी दृष्टिसे देखते चले आ रहे हैं। यद्यपि विभिन्न स्थानोंमें समझके भेदसे परम्परासे पाठान्तरकी मान्यता होती चली आ रही है; तथापि अधिकांश त्यागी कबीरपन्थी-स्थानोंमें सन्ध्या पाठके रूपमें मूल बीजकका पाठ होता है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीकी देह न रहनेके पश्चात् विक्रमीय सम्वत् १५७५ से १८९२ पर्यन्त ३१७ वर्षतक बीजक सद्ग्रन्थ मूल-रूपमें ही रहा। उसके पहले किसीने बीजककी टीका की हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता है। सर्वप्रथम बीजक मूलकी भाषा-टीका अपने बोधदाता गुरुकी आज्ञासे सद्गुरु

श्रीपूरणसाहेबजीने स्थान बुरहानपुरमें रहकर सम्पूर्ण की—ऐसा निश्चितरूपसे ज्ञात होता है :—

साखीः—सम्वत् अठारह सै सही । साल चौरानवे जान ॥
कार्त्तिक मास पूनम तिथि । शुक्ल पक्ष परवान ॥ ३ ॥
वार रवि ता दिन कही । समय प्रभात बखान ॥
नग्र बुरहानपुर बैठक । नागझिरी शुभ स्थान ॥ ४ ॥
॥ बीजक त्रिजाकी अन्त स्तुति ॥

इस प्रमाणसे विक्रम सम्वत् अठारह सौ चौरानवेमें बीजक त्रिजारूप टीका समाप्त हुई ।

* महाराज विश्वनाथसिंह और रघुराजसिंह—दोनोंकी संक्षिप्त जीवनी *

(१) 'हिन्दी साहित्य कोश' भाग २, पृष्ठ ५४५ में निम्न प्रकारसे संक्षिप्त परिचय दिया है—

"विश्वनाथसिंह महाराज—जन्म सन् १७८९ ई० (सं० १८४६ वि०) में हुआ और मृत्यु सन् १८५४ ई० (१९११ वि०) में हुई थी। महाराज विश्वनाथसिंहजू देवका जन्म रीवाँके ऐतिहासिक राजवंशमें हुआ था । इनके पिता महाराज जयसिंह कवि होनेके साथ ही अनन्य साहित्यानुरागी भी थे। इनकी मृत्युके बाद १८३३ ई० सन् (सं० १८९० वि०) में ये गद्दीपर बैठे और २१ वर्षतक शासन किया ।

"विश्वनाथसिंह श्रृंगारी-रामभक्तिके प्रमुख स्तम्भ माने जाते हैं। इन्होंने रसिक भावकी साधना प्रियादाससे सीखी थी। कुछ साम्प्रदायिक विद्वानोंने इनकी श्रृंगारी रामभक्तिको अयोध्याके महात्मा रामचरणदासका प्रसाद बताया है। इनके पुत्र महाराज रघुराजसिंहने 'रासबिहारी'में इनकी राममें निष्ठा और सखीभावमें आस्थाका उल्लेखकर इन तथ्योंकी पुष्टि की है। इनकी रामभक्ति सगुणोपासनातक ही सीमित न रही, निर्गुण क्षेत्र भी उसकी दिव्य आभासे आलोकित हुआ। 'कबीर बीजक' की 'पाखण्ड खण्डिनी' टीकामें निर्गुण वाणीको सगुण रामपर घटाकर इन्होंने अपने अगाध पाण्डित्यका परिचय दिया है। इनके लिखे हुए ४६ ग्रन्थोंका पता चला है । इनमेंसे कुछ रचनाएँ दरबारी कवियों द्वारा इनके नामसे लिखी गयीं प्रतीत होती हैं इत्यादि ॥"

(२) 'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' रीतिकालके अन्य कवि पृष्ठ ३४४-३४५में निम्न प्रकारसे लिखा है—

"(१२) महाराज विश्वनाथसिंह—ये रीवाँके बड़े ही विचारसिक और भक्त

१—हिन्दी साहित्य कोशमें ई० सन् १८३३, (सं० १८९०) में 'विश्वनाथसिंह रीवाँकी गद्दीपर बैठे' लिखा है। हिन्दी साहित्यके इतिहासमें सं० १८७० दिया है। इस प्रकार २० वर्षके पूर्व-पश्चात्का अन्तर पड़ता है; सो उन्हीं ग्रन्थकारोंकी ओरका हेर-फेर हुआ जान पड़ता है ॥

नरेश तथा प्रसिद्ध कवि महाराज रघुराजसिंहके पिता थे। आप सं० १८७० से लेकर सं० १९११ तक रीवाँकी गद्दीपर रहे। ये जैसे भक्त थे, वैसे ही विद्या-व्यसनी तथा कवियों और विद्वानोंके आश्रयदाता थे। काव्य-रचनामें भी ये सिद्धहस्त थे। यह ठीक है कि इनके नामसे प्रख्यात बहुतसे ग्रन्थ दूसरे कवियोंके रचे हैं; पर इनकी रचनाएँ भी कम नहीं हैं।

अष्टयाम–आह्निक, आनन्द–रघुनन्दन नाटक, कबीर–बीजककी टीका, विनय-पत्रिकाकी टीका इत्यादि ३२ ग्रन्थोंतकके नाम उसमें दिये हैं।

कबीर–बीजककी टीका इन्होंने निर्गुण ब्रह्मके स्थानपर सगुण रामपर घटाई है। ब्रजभाषामें नाटक पहले-पहल इन्हींने लिखा। इस दृष्टिसे इनका "आनन्द–रघुनन्दन नाटक" विशेष महत्त्वकी वस्तु है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने इसे हिन्दीका प्रथम नाटक माना है; इत्यादि।"

रीवाँ-नरेश जयसिंहके पुत्र विश्वनाथसिंह थे और उनके पुत्र रघुराजसिंह हुए। विश्वनाथसिंह लिखित बीजक टीका बम्बईसे प्रकाशितमें संलग्न 'बघेलवंश' वर्णन पृष्ठ ६८४ में रघुराजसिंहके जन्म सम्बन्धी तिथि–मिति निम्न लिखी है—

दोहाः—"अष्टादश सै असीको, साल सुकातिक मास॥
कृष्ण पक्ष तिथि चौथ शुभ, वासरदानि हुलास॥ १०९॥"

'हिन्दी-साहित्यका इतिहास' पुरानी धारा, पृष्ठ ५७८ में लिखा है—"महाराज रघुराजसिंह रीवाँ-नरेश—इनका जन्म वि० सं० १८८०में और मृत्यु सं० १९३६ वि०में हुई। ये छप्पन सालतक जीवित रहे। इन्होंने भक्ति और शृङ्गारके बहुत ग्रन्थ रचे। इनका 'राम-स्वयंवर' ग्रन्थ तेईस काव्य-प्रबन्धोंमें सं० १९२६से सं० १९३४ वि० तकमें पूरा हुआ। इसके अतिरिक्त 'रुक्मिणी–परिचय', 'आनन्दाम्बुनिधि', 'राम-अष्टयाम', इत्यादि इनके लिखे बहुतसे ग्रन्थ हैं॥"

'हिन्दी साहित्य कोश'—भाग २, पृष्ठ ४४२में निम्न प्रकारसे लिखा है—

"रघुराज सिंह—रीवाँ-नरेश रघुराजसिंहका जन्म सन् १८२३ ई० (सं० १८८० वि०)में, तथा मृत्यु सन् १८७९ ई० (सं० १९३६ वि०)में हुई। इनके पूर्वज महाराज व्याघ्रदेवने गुजरातसे आकर बघेलखण्डको जीता और उसपर अपना अधिकार जमाया। रघुराजसिंहके पिता महाराज विश्वनाथसिंहजू देव बान्धवेश (जन्म १७८९ ई० और मृत्यु १८५४ ई०) और पितामह महाराज जयसिंह (जन्म १७६४ ई० और मृत्यु १८३४ ई०) बड़े कवि तथा अनेक उत्तमोत्तम संस्कृत तथा भाषा-काव्यके रचयिता थे और अनेक सुकवियोंके आश्रयदाता भी थे। इस प्रकार कवित्व-प्रतिभा उक्त कविको पैतृक सम्पत्तिके रूपमें प्राप्त हुई थी। सन् १८५४ ई०में अपने पिता महाराज विश्वनाथसिंहकी मृत्युके पश्चात् रघुराजसिंह गद्दीपर बैठे। रघुराजसिंहने बारह विवाह किये। ये हिन्दी तथा संस्कृतके पण्डित और सुकवि थे। राज्य-प्रबन्धके लिये वे बहुत कम समय दे पाते थे। वे बड़े काव्यरसिक और कवि-कल्पवृक्ष थे। अनेक विद्वान् और सुकवि उनके दरबारमें रहते थे। मृत्युसे पाँच वर्ष पूर्व ही रघुराजसिंहने राज-काज छोड़ दिया था।

कविने अनेक रचनाएँ की हैं—सुन्दरशतकसे लेकर जगन्नाथशतक तक इन कविके २८ ग्रन्थोंके नाम वहाँ दिये हैं, इत्यादि ॥"

वि० सं० १९६१में खेमराज श्रीकृष्णदासके श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बईमें छपी हुई महाराज विश्वनाथसिंहजू देवकी लिखी 'कबीर-बीजक'की टीका पृष्ठ ३०में 'कबीर-जीकी कथा' दोहा—३१के पश्चात् निम्न प्रकारसे लिखा है—

"तब कबीर बोले मुसुकाई । राजाराम सुनहु चित लाई ॥
तुम्हरे दशयें वंशहि माँही । ले हौ तुम ही जन्म तहाँ ही ॥
सुत समेत बाँधवगढ़ ऐहौ । बीजक ग्रन्थ मोर तहँ पैहौ ॥
ताको अर्थ समर्थन करिहौ । सन्त समाजनको सुख भरिहौ ॥
वीरभद्र तुम्हरो सुत होई । करिहौ राज्य सदा सुख मोई ॥
संवत् अष्टादश नव षटमें । ऐहौ बाँधवगढ़ अटपटमें ॥

इस कथनसे वि० सं० १८९६ में महाराज विश्वनाथसिंहजू देव अपने सोलह वर्षीय पुत्र रघुराजसिंहको साथमें लेकर जब रीवाँसे बाँधवगढ़ आये, तभी उनको वहाँपर कबीर-बीजककी मूल प्रति प्राप्त हुई। तत्पश्चात् किसी अवकाशके समयमें विश्वनाथसिंहजूने बीजक टीका रचना की। यही बात निश्चयसे अन्तमें स्वयं सिद्ध हो जाती है।

वि० सं० १८९४ कार्तिक पूर्णिमा, रविवारको प्रातःकालमें स्थान बुरहानपुर श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरीमें रहते हुए सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी बीजककी त्रिजारूप टीका लिख-लिखाकर सम्पूर्ण किये; ऐसा अन्तकी साखीमें स्पष्ट कहा है।

तदनन्तर इससे दो साल पश्चात् सं० १८९६ वि०में महाराज विश्वनाथसिंहजू को मूल बीजक प्राप्त होनेका निर्देश ऊपर किया जा चुका है। इस प्रकार सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके मुख्य ग्रन्थ बीजक मूलके सर्वप्रथम टीकाकार सद्गुरु श्रीपूरण-साहेबजी स्वयं सिद्ध हो गये। कई लोग ऐसा समझते थे कि विश्वनाथसिंहजू पहले बीजक टीका किये होंगे। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। सो यही वास्त-विकता दिखानेके लिये रीवाँ-नरेशका इतिहास संग्रह करके यहाँपर रक्खा गया है। अब इसपरसे सभी पाठकोंको यथार्थ भेद जाननेमें आ जायगा।

पारख सिद्धान्तकी सर्वोपरि श्रेष्ठता तो सबको विदित ही है।

सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीकी त्रिजारूप बीजक टीका सर्वप्रथम हुई, यही बात निश्चितरूपसे ठहर जाती है। अनुमानतः विक्रम सम्वत् १८६२के लगभग सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीका जन्म क्षत्रिय कुलमें हुआ। जिला-पूर्व खान्देश (जलगाँव) ता० एरण्डोलके अन्तर्गत पोष्ट-धरणगाँव कसबासे तीन-चार कोश दूरस्थ बाम्भोरी ग्राम (जो महाराष्ट्रमें है) को आपकी जन्मभूमि बताई जाती है। बचपनसे ही सन्त-महा-त्माओंकी सत्सङ्गति मिलते रहनेसे एवं पूर्व जन्मके प्रबल संस्कारसे वैराग्य दृढ़ होकर लगभग बारह वर्षकी अवस्थामें ही घर-गृहस्थीको परित्याग करके आप निकल पड़े।

कबीरपन्थी पारखी सन्त-महात्मा बोध-वैराग्य सम्पन्न श्रीसुखलालसाहेबजी आपको मिलनेसे, उनको ही सद्‌गुरु मानकर, आपके शरणागत हो भेषधारी त्यागी वैराग्यवान् शिष्य हुए। घरमें आपका नाम 'पूरणसिंह' था। भेष धारण करनेपर गुरुने 'साधु पूरणदास' ऐसा नाम रख दिया। इस प्रकार वि० सं० १८७४-७५में आप भेष धारण किये। उस समय बुरहानपुरमें कबीरपन्थियोंका कोई स्थान नहीं था। बोधदाता उन पारखी साधु-गुरुसे पारख-सिद्धान्तका बोध प्राप्त करके परिपक्व होनेपर गुरुकी आज्ञासे आप भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें दश-ग्यारह वर्ष पर्यन्त पर्यटन करते रहे। तदुपरान्त वि० सं० १८८६ के लगभग बुरहानपुर नगरके नागझिरी घाटके समीप परकोटाके भीतर एक टीलेपर कोई वृक्षके नीचे आकर रहने लगे। आपके सत्सङ्गमें आसपासके लोग आकर सदुपदेश सुनकर प्रभावित हो विनय करके वहाँपर एक पर्णकुटी बनाकर आपको विराजमान कराये। विशेषरूपसे यहीं विराजमान रहकर सत्योपदेश देनेके लिए नेमी-प्रेमी भक्तोंने विनय-प्रार्थना की। उसे स्वीकार करके तबसे आप नागझिरी—बुरहानपुर स्थानमें निवास करने लगे। इसलिए इस स्थानका सर्वप्रथम संस्थापक आप ही हुए।

जिस समय आप नागझिरी-बुरहानपुरमें पधारकर एक टीलेपर रहने लगे थे, उसी समय पास ही दूसरे टीलेपर एक उदासी महात्मा और दूसरी ओर एक वैरागी वैष्णव महात्मा आकर रहने लगे थे। उन दोनोंके भी समीपमें ही स्थान बने हैं। उनके सन्त लोग अब भी वहाँपर रहते हैं। सद्‌गुरु श्रीपूरणसाहेबजी द्वारा विरचित वैराग्यशतकके दोहे १से १२७ तक ग्रन्थरूपमें बने हैं। फिर निर्णयसार ग्रन्थ निर्माण हुआ। उसके अन्तमें लिखा है:—

सोरठाः—"अष्टादश नौ दोय। चैत्र शुद्ध दशमी तिथि॥
ग्रन्थ समापत होय। परख बोध भौ शिष्यको॥५९६॥"

इस प्रमाणसे वि०सं० १८९२में निर्णयसार ग्रन्थ समाप्त हुआ था। परन्तु बीजक त्रिजा लिखनेमें कितना समय लगा, यह निश्चितरूपसे कहा नहीं जा सकता। क्योंकि निर्णयसार चौपाई ६१-६२में कहा है:—

"पक्की देह प्रथम हंसा की। बीजक टीका में सब भाखी॥६१॥
वह जो अब यहाँ कहौं बुझाई। तो यह ग्रन्थ बहुत बढ़ि जाई॥६२॥"

इस प्रमाणसे जाना जाता है—निर्णयसार ग्रन्थ समाप्त होनेके पहले बीजककी कुछ साखीतक भी आप टीका कर चुके थे। निर्णयसार समाप्त होनेके कुछ समय पश्चात् आप अस्वस्थ हो गये थे; इसलिए बीजककी टीका अपूर्ण रह गई थी। फिर कुछ शरीर ठीक होनेपर अपने एक शिष्य साधु 'फूलीसाहेब'को बीजककी अवशिष्ट साखियोंकी टीका लिखने लगाया। आप जैसे टीका बताते गये, वैसे वे लिखते गये। इस प्रकार बीजक त्रिजा समाप्त होनेमें भी लगभग चार साल लग गये, ऐसा अन्दाज होता है। कार्त्तिक पूर्णिमाको बीजक त्रिजा समाप्त हुई। तदुपरान्त मार्गशीर्ष कृष्णः २,

बुधवार, विक्रमीय सम्वत् १८६४के दिन नागझिरी, बुरहानपुर स्थानमें ही सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीका देहावसान हुआ। इसलिए आपके द्वारा बीजक त्रिजा संशोधन हो नहीं सका।

तदनन्तर स्थान बुरहानपुर कबीरपन्थ गद्दीमें सब ओरसे सन्त-महन्त, नेमी-प्रेमी भक्तवर्ग समयानुसार आते, सत्सङ्ग करते जाते थे। बीजक और पञ्चग्रन्थी आदिकी मूल एवं अर्थ पढ़ाई होती ही रहती थी। इस प्रकार आनेवाले सन्त, महन्त, भक्तोंमेंसे कई लोगोंने बुरहानपुर गद्दीके उस समयके आचार्य साहेबजीसे विनय-प्रार्थनायुत आग्रह कर-करके बीजक त्रिजाका सम्पूर्ण नकल उतार लिया। वैसे त्रिजा उतारकर कई लोग ले गये। पुनः उसमेंसे भी अन्यत्र और लोग नकल उतार लिये। वे लोग अपनी बुद्धिके अनुसार स्वयं पद्यादि रचना करके अथवा यत्र-तत्रसे दोहा, साखी आदि संग्रह करके अन्तमें लिख लिया करते थे। वैसे ही किसी अशुद्ध नकल उतारी हुई प्रतिमें वंशोंके नामकी क्षेपक साखियाँ मनमानी रखकर प्रथम देवीप्रसादने लखनऊमें, पुनः बालगोविन्द मिस्त्रीने इलाहाबादमें त्रिजाको छपा लिया था। ऐसा ज्ञात होनेपर उस समयके आचार्य 'श्रीनरोत्तमसाहेबजी'ने उन दोनोंको बुलाकर, ऐसी मन्मतिसे त्रिजा क्यों छपाया? यह पूछा और अपनी प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति खुला पत्ररूपमें दिखलायी, तब उन दोनोंने भी अपनी भूल स्वीकार की और क्षमा याचना की। पुनः अब कभी वैसे न छपानेको भी स्वीकार किया। तब वे दोनों छपी हुई त्रिजा अशुद्ध, अन्तकी क्षेपक साखियाँ अप्रामाणिक होनेसे स्थान बुरहानपुर गद्दीमें वह अमान्य रद्द है; ऐसा उसी समय घोषित हो चुका है। पुनः बड़ौदाके मणिलाल मेहता उन प्रतियोंका हवाला देकर गुजराती अक्षरोंमें त्रिजा छपाकर वंशोंके नामकी क्षेपक मिथ्या साखियाँ रख दिया है। उन क्षेपक साखियोंको न रखनेको कहनेपर भी हठसे नहीं माना। इसलिए वह प्रति एवं वैसे वंशोंके नाम क्षेपक गद्य-पद्य संयुक्त जितने भी प्रति हैं, वे सब हमको और हमारे स्थान श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, नागझिरी बुरहानपुर गद्दीको सर्वथा अमान्य होनेसे रद्द की गई हैं, ऐसा जानना चाहिए! उसमें लिखी अन्तकी वंशोंके नामकी साखियाँ सर्वथा मनगढ़न्त होनेसे त्याज्य हैं। उनका सर्वथा प्रमाण माना नहीं जा सकता है। अतः उसे कोई प्रमाण न मानें।

स्थान बुरहानपुरसे शुद्ध प्रतिको आचार्य श्रीनरोत्तमसाहेबजी तथा श्रीकाशी-साहेबजी वि० सं० १९६४में श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बईमें बीजक त्रिजा छपाने दिये थे। वही वि० सं० १९६७में सर्वप्रथम बम्बईमें छपकर प्रकाशित हुई। इस तरह त्रिजा तैयार होनेके ७३ (त्रिहत्तर) वर्षके पश्चात् शुद्ध प्रामाणिकरूपसे श्रीवेङ्कटेश्वर प्रेस बम्बईसे प्रकाशित हुई। उसकी भूमिकामें भी निम्न प्रकारसे लिखा है—

"यह ग्रन्थ प्रथम लखनऊमें छपा था, पीछे इलाहाबादमें छपा। परन्तु छपानेवालोंने केवल रोजगारकर नफाकी ही तरफ देखके बुरहानपुरके महन्त साहेबकी सम्मति बिना और बुरहानपुरके विचारवान् साधुओंसे अच्छे शोधे बिना छपवाये। इससे हजारों चूकें रह गई और कहीं-कहीं अर्थका अनर्थ भी हो गया है।" इत्यादि॥

ऐसा यथार्थ भेद जानकर जिज्ञासुजनोंको सत्यको ही मानना, असत्यको बिलकुल परित्याग कर देना, भ्रम-धोखेमें कभी नहीं भूलना चाहिए।

पञ्चग्रन्थी मूल रचयिता श्रीरामरहससाहेबजी एक प्रसिद्ध सच्चे पारखी सन्त-महात्मा हुए। आपकी प्रामाणिक जीवनी कोई कहीं उपलब्ध नहीं है। जीवनी कहीं छपी है, सो निराधार मनगढ़न्त कपोल-कल्पनाका विस्तार-मात्र होनेसे प्रामाणिक हो नहीं सकती है। अतएव किसी-किसी टीकाकारोंने श्रीरामरहससाहेबजीका जन्म और देहान्त होनेका जो साल-सम्वत् अनुमानसे लिखकर छपा दिया है, सो सत्य हो नहीं सकता है। इसलिए वैसी असत्य कल्पित बात चाहे किसीकी लिखी हो—"कबीरपन्थ गद्दी-स्थान बुरहानपुर"में मान्य हो नहीं सकती है।

बुरहानपुर गद्दीकी मान्यतानुसार प्रथम ही सन्ध्यापाठ टीकाकी भूमिकामें और पञ्चग्रन्थी टीकाकी भूमिकामें खुलासा लिखकर छप चुकी है। उसी अनुसार 'श्रीरामरहससाहेबजी' सद्गुरु 'श्रीपूरणसाहेबजी'के साधु-स्वरूपमें पदार्पण करते समय उधर गया स्थानमें रहे। तबतक आप पञ्चग्रन्थी सद्ग्रन्थकी रचना कर चुके थे। तदनन्तर कुछ कालके बाद आपका देहान्त हुआ। सन्त लोग मूल पञ्चग्रन्थीको उतार कर स्थान बुरहानपुरमें भी ले आए। इस कारण कुछ अंशमें श्रीरामरहससाहेब श्रीपूरणसाहेबजीके समकालीन और देहान्तके पश्चात् पूर्ववर्त्ती हुए; ऐसा माना जाता है।

परन्तु उक्त दोनों पारखी सन्त-महात्माओंका परस्पर दर्शन-पर्सन, सत्सङ्गादि नहीं हो सका; ऐसा निश्चितरूपसे कहा जा सकता है। किन्तु श्रीरामरहससाहेबजीके देहान्तके समय सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी चार वर्षके बालक रहे, ऐसा किसीका लिखना निराधार मिथ्या कल्पना-मात्र ठहरता है। इसपर जिज्ञासु पाठकवर्ग निष्पक्ष होकर विचार करें। मिथ्या मानन्दीका पक्षपात परित्याग करके पारख-सिद्धान्तका सत्य-सार ही ग्रहण करें। पूर्ववर्त्ती सब पारखी सन्त-महात्माओंका गुण-गान करते हुए अहङ्कारादि विकारोंसे रहित होकर सद्गुणोंको धारण करके अपना-अपना सुधार, जीवनका कल्याण कर लेना चाहिये!॥

पारखबोध प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीसे पारखबोध-प्राप्त साधु-सन्तोंसे ही क्रमशः त्यागी साधु पारखी सन्तोंकी परम्परा अबतक अविच्छिन्न चली आ रही है। जैसे हमारे गद्दीके प्रथम आचार्य सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीको उनके गुरुसे पारख-सिद्धान्तका बोध प्राप्त हुआ, वैसे ही पारखी सन्त-महात्मा श्रीराम-रहससाहेबजीको उनके गुरु 'श्रीगुरुदयालसाहेबजी'से पारखबोध प्राप्त हुआ और श्रीगुरुदयालसाहेबजीको उनके गुरुसे बोध मिला। इसी प्रकार गुरु-परम्परासे पारख-बोध प्राप्त होता ही चला आ रहा है। सभी पारखी सन्त पूर्ण त्याग-वैराग्यवान निज चैतन्य-स्वरूपके बोध-विचारादि सर्व सद्गुण संयुक्त स्थितिवान होते चले आ रहे हैं। कहा है—

"पारखी गुरू नहीं कछु भेदा। और सकल जग कीन्ह निषेधा ॥५८०॥"

॥—निर्णयसार॥

"नहिं अनुमान न मुये मुक्ता। परख विलास सदा सुख भुक्ता ॥७२८॥"

॥ मानुष विचार, पञ्चग्रन्थी ॥

"आशा पारख पारख बासी। जीवन जीव सदा सुखरासी ॥१७४१॥
आशा पारख बरते जबहीं। काल फाँस नहिं व्यापै तबहीं ॥१७४२॥
शरण समान करहिं प्रभु अपना। जन्म-मरणके मिटे कल्पना ॥१७५८॥
पारख अटल सदा सुख करहू। भरमि-भरमि जिव काहे मरहू? ॥१७९०॥
पारख सब जग गाँस मिटावै। बिनु परिश्रम परमपद पावै ॥१७९१॥
रामरहस गुरु शरणा आये। सब भय संशय तुरित मिटाये ॥१७९२॥
जो पारख तजि और लोभाना। निश्चय यमके हाथ बिकाना ॥१७९५॥
और जतन कछुओ मत करहू। केवल पारख साहेब लहहू ॥१८०२॥
बोध चहहु पारख प्रभु शरणा। बिना प्रयासे भवजल तरणा ॥१८०५॥
सत्यशब्द टकसार कहावै। बीजक जीवन पद परखावै ॥१८०९॥
साखीः—वचन बसावहु पारखी। बीजक है सो नाम ॥
अक्षर-अक्षर गुरुसे लखहु। संशय मेटहु तमाम ॥१८१३॥
परख परे नहिं और ठिकाना। धोखेमें मति फिरहु भुलाना ॥१९२४॥"

॥—इत्यादि। टकसार, पञ्चग्रन्थी ॥

चार प्रकारकी वाणीके बारेमें पञ्चग्रन्थीमें कहा हैः—

"अनबनि बानी चार प्रकार। काल सन्धि झाँई औ सार ॥१॥
हेतु शब्द बूझिये जोय। जानि यथारथ द्वारा सोय ॥२॥
भरमिक झाँई सन्धि औ काल। सारशब्द काटे भ्रम जाल ॥३॥
द्वारा चारि अर्थ परमान। पदारथ बिंगारथ पहिचान ॥४॥
भाव अर्थ धुन्यारथ चार। द्वारा शब्द कोइ लखै विचार ॥५॥
परा पराइत मुख सो जान। मोरे सोरह कला निदान ॥६॥"
साखीः—"एक शब्द समुदाय जो। जामें चारि प्रकार ॥
काल शब्द सन्धि शब्द। झाँई औ पुनि सार ॥ ९ ॥
परखावै प्रभु एकको। जामें चार प्रकार ॥
काल सन्धि झाँई लखी। लखी शब्द मत सार ॥ १० ॥"

॥—इत्यादि। सत्ताईस रमैनीकी रमैनी—२ ॥६॥१०॥

महाराज विश्वनाथसिंहने भी आदिमङ्गल टीकाके अन्तमें लिखा है—"अपनी उक्तिते कही, साहबकी उक्तिते कही, मायाकी उक्तिते कही, जीवकी उक्तिते कही,

ब्रह्मकी उक्तिते कबीरजी उपदेश कियो है" इत्यादि । इसमें भी चारमुखका भाव कहा है और अन्य ग्रन्थ, शास्त्रादिमें भी रोचक, भयानक, यथार्थ, पूर्वपक्ष, उत्तरपक्ष रूपसे वाणी कही है । इसलिए बीजक त्रिजामें चारमुख वाणीका भेद दरशाया गया है ।

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके मुखसे निकले हुए सारशब्द निर्णय वचनोंके संग्रहसे 'मूल बीजक' नामक सद्ग्रन्थ निर्माण हुआ है । उसमें आपने अबोध अज्ञानी जीवोंके कथनका लक्षण, भ्रमिक मायारूप गुरुवा लोगोंके कथनका लक्षण, एवं ब्रह्मज्ञानियोंके कथनका लक्षण यथास्थानमें दरशाकर अपना निर्णय गुरुमुखद्वारा परखा करके फैसला किया है । उन चारों मुखोंकी वाणीका नमूना निम्न प्रकारसे है ।

(१) जीवमुख वाणीः—"राम नाम अति दुर्लभ । औरे ते नहिं काम ॥
आदि-अन्त औ युग-युग । मोहि रामहि ते संग्राम ॥"
"जो चरखा जरि जाय । बढ़ैया ना मरै ॥
मैं कातों सूत हजार । चरखुला जिन जरै ॥"
॥ बीजक, रमैनी-७६ और शब्द ६८ ॥

जीवमुखके कथनमें ऐसी वाणी निकलती है । अनुमान-कल्पनासे कोई एक ईश्वर कर्त्ता मालिक मानकर उसका आधार ले विनय-प्रार्थना करना, महिमा कथन करके मानना-मनाना-इत्यादि अज्ञानी जीवोंका लक्षण होता है । वही वैसी वाणी द्वारा जाना जाता है ॥

(२) मायामुख वाणीः—"सुमिरण करहू रामका । छाड़हु दुःखकी आस ॥
तर-ऊपर धै चापि हैं । जस कोल्हू कोटि पिचास ॥१७॥"
"सुमिरण करहू रामका । काल गहै हैं केश ॥
ना जानों कब मारि हैं ? क्या घर क्या परदेश ? ॥१९॥"
"कहैं कबीर हरि शरण गहु । गौ खुर बच्छ विस्तार ॥२०॥"
॥—बीजक, रमैनी-१७।१९।२०॥

इत्यादि कथन रोचक-भयानक वाणी माया कहिये गुरुवालोगोंके द्वारा मुख्य उपदेश देकर सुनाई जाती है ।

(३) ब्रह्ममुख वाणीः—"मैं सिरजौं मैं मारौं । मैं जारौं मैं खाँव ॥
जल थल महियाँ रमि रहौं । मोर निरञ्जन नाँव ॥२१॥"
"जब हम रहल रहल नहिं कोई । हमरे माहिं रहल सब कोई ॥४२॥"
॥—बीजक, रमैनी-२१-४२॥

इत्यादि अहङ्कार संयुक्त वाणी ब्रह्ममुखकी होती हैं । उनके कसर-खोटोंको परखानेवाली यथार्थ निर्णयकी वाणी गुरुमुख कही जाती है ॥

(४) गुरुमुख वाणी:--"चीन्हि चीन्हि का गावहु बौरे ! बानी परी न चीन्हि ॥
आदि अन्त उतपति प्रलय । आपूही कहि दीन्ह ॥४॥"
"कहाँलों कहौं युगनकी बाता । भूले ब्रह्म न चीन्हैं बाटा ॥५॥"

साखी:--"ये कबीर तैं उतरि रहु । तेरो सम्मल परोहन साथ ॥
सम्मल घटे न पगु थके । जीव बिराने हाथ ॥३२॥"

॥ -रमैनी ४—५ और साखी ३२ बीजक ॥

इत्यादि साफ-साफ परखानेवाला गुरुमुख निर्णय होता है। बीजकमें गुरुमुख निर्णय विशेषरूपसे कहा गया है। तीन मुख वाणीका कसर-खोट यथार्थ परखाकर सद्गुरुने पारखबोध दिया है।

बीजक मूलके पदान्तमें आये छापके अनुसार भी वह कौन मुखका अभिप्राय प्रकट करता है, सो जाना जाता है। जैसे—"कबीर और जाने नहीं।" इसमें अबोध जीव एक रामनामकी आशा करता है और नहीं जानता है ॥ "कबीरा" शब्दसे अबोध जीव माना जाता है; जैसे—"एकल निरञ्जन सकल शरीरा। तामहँ भ्रमि-भ्रमि रहल कबीरा ॥"

भ्रम-कल्पनामें पड़े हुए जीवोंको "जोलहा दास कबीरा" कहते हैं। 'दास कबीर' अज्ञानी भक्त लोगोंको कहते हैं—"कबिरन भक्ति बिगारिया ॥" अज्ञानी जड़ मूर्त्ति-पूजक एवं भ्रमिक उपासक लोगोंको कहा जाता है। "कहैं कबीर" में गुरुवालोग उपदेश करते हैं, ऐसा भाव निकलता है। "हौं कबीर" इत्यादि अहं संयुक्त कथन ब्रह्ममुख माना जाता है और "कहहिं कबीर" एवं "हंस कबीर" इत्यादि छापयुक्त वाणी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीकी अपनी गुरुमुख वाणी सब भ्रम छुड़ानेवाला सारशब्द मानी जाती है। इसलिए 'कबीर' छापके साथमें 'कहहिं'=गुरुमुख; 'कहैं'= मायामुख; 'दास'=जीवमुख; 'हौं'=ब्रह्ममुखका भाव प्रदर्शित होता है। इसका यथार्थ भेद समझना चाहिए। इसलिए बीजकभरकी सब वाणी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका अपना ही सिद्धान्त प्रदर्शित नहीं करती हैं, अन्य लोगोंके भी सिद्धान्त दरशाती हैं। तथापि बीजकमें चार मुखका अभिप्राय दरशानेसे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके चार मुख नहीं हो जाते हैं। मुख और मुख्य सिद्धान्त तो एक ही रहता है। जैसे—'चतुर्मुख ब्रह्मा' कहनेसे चार मुखके ब्रह्मा नहीं ठहरते। किन्तु मुखसे बोलनेमें चतुर-चालाक, प्रवीण, पण्डित—ऐसा अभिप्राय निकलता है। जैसे कोई कहता है—एकने ऐसा कहा, दूसरेने ऐसा बताया, तीसरेने ऐसा बोला और मैंने ऐसा समझाया; इत्यादि। तब उसका मुख तो एक ही रहता है। चारों जनोंकी भिन्न-भिन्न बातें अपने ही मुखसे वह बता देता है। इससे उसके चार मुख नहीं होते हैं। कहते हैं—व्यासने अठारह पुराण बनाये। उनमें 'उवाच" लगाकर अनेक लोगोंके कथन दरशाये हैं। इससे उनके अनेक मुख वा अठारह मुख नहीं हुए। मुख तो एक ही रहा। तद्वत् बीजकमें चार मुख वाणी दरशाये हुएका तात्पर्य भी ठीकसे समझना चाहिए।

केवल तर्क-वितर्क, उपहास, व्यङ्ग वाणी बोलने मात्रसे हानिके सिवाय लाभ किसीका नहीं होता है। अतएव विचारवानोंको गुरुमुख वाणी सारशब्दोंसे अन्य सब वाणियोंका कसर-खोट परखकर मिथ्या भ्रम-मानन्दियोंको परित्याग करके सद्गुण संयुक्त निज चैतन्यपदमें स्थित-ठहराव करना चाहिए ॥

वि० सं० १९६७ से वर्त्तमान वि० सं० २०२७ तक ६० वर्षोंके समयसेतक बम्बईके प्रेसमें बीजक त्रिजाकी कई आवृत्तियाँ छप चुकी हैं। नये-नये प्रूफरीडर लोगोंके सावधानीसे प्रूफ न देखनेके कारण पश्चात्की छपी हुई आवृत्तियोंमें अक्षरोंकी अशुद्धियाँ त्रिजामें बहुत दिखाई देने लगीं। व्यवसायी लोग शुद्धताके ऊपर विशेष ध्यान नहीं देते। इस कारण बहुतसे सन्त-भक्त लोग विक्रम सम्वत् २००३ से ही शुद्ध त्रिजा छपा देनेके लिए प्रति वर्ष प्राथना करते चले आ रहे थे और रमैनी आदिका भाष्य कर देनेके लिए भी बहुतसे प्रेमी सन्त और भक्त लोग विनय-प्रार्थना करते आ रहे थे। इस कारण वि० सं० २०२४, आषाढ़ कृष्ण: १०, रविवार; दि०२।७।१९६७ ई०से दि० २६।१०।१९६७ ई० तक काठमाण्डू-नेपालके निवासमें रमैनी 1 से ८४ तक सम्पूण बीजक-रमैनीका भाष्य लिख लिया गया था। शब्द 1 के दोहादिका भाष्य भी उसी समय वहीं लिखा गया था। तत्पश्चात् दि० १२।७।१९६८ ई० से दि० ३।९।१९६८ ई० तक बीजक शब्द २से ६४तकका भाष्य भी काठमाण्डू-नेपालमें ही लिखा गया। पुनः दि० १४।१२।१९६९ ई० से दि० ८।१। १९७० ई० तक बीजक शब्द ६५से ८६ तकका भाष्य स्थान नागझिरी- बुरहानपुरमें लिखा गया। तदनन्तर स्वास्थ ठीक न होनेसे अपने स्वयं लिखनेमें असमथ हो गया। इस कारण पुनः दि० २८।५।१९७० ई० से दि० ६।१०।१९७० ई० तक काठमाण्डू-नेपालके निवासमें साधु तरणदासको लिखनेका सहायक बनाया। बीजक, शब्द ८७से लेकर बीजकके अन्तके पाठफलकी साखी ६ तकका भाष्य, जैसा मैं बताता गया, वैसा ही उसने कापीमें उतार लिया। इस प्रकार बारम्बार प्रयत्न करके सद्गुरुदेवकी महान् दयासे भाष्य लिखना और लिखाना इस वर्ष सम्पूर्ण हुआ। तदनन्तर स्थान-बुरहानपुरके वार्षिकोत्सवमें आया गया। ई० सन् १९६७में ही बीजक त्रिजाकी पुरानी प्रतिसे शब्द २ से साखीके अन्ततकका त्रिजा उतारनेको साधु तरणदासको लगाया गया था। उसने उसी साल सम्पूर्ण त्रिजा उतार भी लिया था। वही इस वर्ष स्थान 'श्रीकबीर निर्णय मन्दिर' नागझिरी बुरहानपुरके तिथि महोत्सवके पश्चात् स्थानके प्रामाणिक सुरक्षित हस्तलिखित पुरानी प्रति, जो खुला पत्ररूपमें है, उससे भी सम्पूर्ण त्रिजा तरणदासको मिलाने लगाकर इसबार शुद्ध किया गया है।

पढ़नेकी सुभीताकी दृष्टिसे शब्दसे लेकर अन्ततक दो-दो चौपाईरूप मूल लाईनका अर्थ रख देनेका क्रम किया गया है। प्रथम तो रमैनीका भाष्य सम्पूर्ण त्रिजामें रख देनेका विचार किया गया था। परन्तु इस वर्ष सोच-विचार करनेसे यही निष्कर्ष निकला कि रमैनीका भाष्य विस्तार होनेसे वह सम्पूर्ण त्रिजामें रखनेपर त्रिजाका आकार-प्रकार बढ़ जायेगा। बड़ी पुस्तक सबको पढ़ने और लेकर चलनेमें

अनुकूल नहीं होगी। इसलिए रमैनीके सम्पूर्ण भाष्यको इसमें सम्मिलित न करके अलग प्रकाश करना ही ठीक होगा। बीजक मूल रमैनी १से ८४ और उनकी त्रिजा टीकारूप सम्पूर्ण दोहेका भी संक्षिप्त अर्थ गद्यरूप भाषामें करके त्रिजामें रखना ही ठीक होगा। ऐसा विचारके उपरान्त निश्चय होनेपर दि० ३।१।१९७१ ई०से दि० २५। १।१९७१ ई० तक—ऐसे २३ दिनोंमें दिन-दिन भर बैठकर साधु तरणदासको संक्षेपार्थ लिखने लगाया। रमैनी १से लेकर चौरासी रमैनीके अन्ततक और शब्द १के शुरूसे अन्ततक भी जैसा मैं संक्षेपार्थ बताता गया, वैसा ही तरणदासने उतार लिया। इसमें रमैनीकी मूल चौपाईका सम्पूर्ण भावार्थ और टीका दोहेका सम्पूर्ण भाव भी संक्षेपार्थ भाषामें दरशाया गया है। साधु-गुरुकी महान् कृपासे अर्थ लिखनेका कार्य तो अब पूर्ण हो गया है। सो जिज्ञासुजन पढ़-सुन और देख करके जान ही लेंगे।

बीजकके विस्तृत भाष्यमें किस प्रकारसे वर्णन किया गया है? उसका नमूना त्रिजाकी टिप्पणीमें दिये हुए शब्द ४।८।१०।११।१४।१८।४०।४६।७३।७६।८४।९०।९८ और साखियोंमें दी गयी टिप्पणी—१।२०।५७।७४।१८७।१९४।१९६।२४३।२६६में भाष्य रख दिया गया है। उससे पाठकवर्ग—भाष्य कैसा हुआ है, सो जान सकेंगे।

त्रिजा छपकर प्रकाश होनेके पश्चात् यदि समय संयोग ठीक रहेगा तो भाष्य भी अलगसे छपाकर प्रकाशित कर दिया जायेगा। अब तो सम्पूर्ण महाभाष्य प्रकाशित हो चुका है।

२०×३० सोलह पेजी साइजमें बीजकका महाभाष्य रखनेका विचार हो रहा है। जिसमें रमैनीका भाष्य एक जिल्दमें और शब्दका भाष्य दूसरे जिल्दमें; बाकी तीसरे जिल्दमें; इस प्रकार तीन जिल्दोंमें जैसा आ जायगा, वैसा रख दिया जायेगा।

स्वास्थ्य ठीक न होनेसे छपाई सम्बन्धी सम्पूर्ण देखभाल मेरे इस शरीरसे कर देना तो अब अशक्य है। मन-वचनसे जो कुछ सन्तोंकी सेवा हो गयी, सो तो शरीरके साथमें हो गयी। इस कारण बीजक त्रिजाका और बीजक भाष्यादि छपाईका सम्पूर्ण कार्य-भार अब मैंने साधु-गुरुमें अनन्य निष्ठावन्त प्रेमी साधु तरणदासके ऊपर सौंप दिया है। अब वही समयानुसार ग्रन्थ छपाने लगाकर प्रकाशित करेगा, ऐसा पूरा भरोसा है। फिर भविष्यमें समयानुसार जैसा कुछ कार्य होगा, सो यथासमय सबको ज्ञात हो जायगा।

लगातार चौबीस वर्षोंतक नेमी-प्रेमी सन्त और भक्तोंके विशेष आग्रह, विनय-प्रार्थना करते रहनेसे अब इस समय आकर स्वतन्त्र शुद्धरूपसे प्राचीन हस्त-लिखित प्रतिके प्रतिलिपिरूपमें सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजीकी त्रिजारूप टीका शुद्धरूपमें प्रकाशित करा देनेका शुभ अवसर प्राप्त हुआ है। कागज एवं छपाई, जिल्द बँधाई आदिमें महँगाईके कारणसे ग्रन्थका मूल्य भी उसी रूपमें रक्खा गया है। जैसा कागजादि अच्छा चाहता था, वैसा समयकी कठिनाईसे नहीं हो सका। जो कुछ जैसा कार्य पूर्ण हुआ, सो भी साधु-गुरुकी महान् दयाका ही फल है। जो सबके सन्मुख विद्यमान है।

सर्व उपमासे परे अद्वितीय सन्त-सम्राट् सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजी महान् ज्ञानी पारखबोध-प्रकाशक हुए। आपका बीजक मूल सद्ग्रन्थ भी वैसा ही अद्वितीय अनुपम पारख-सिद्धान्तका बोधदायक प्रकाश हुआ है। बीजक मूलके पद रमैनी, शब्द, ज्ञानचौंतीसादि हिन्दी भाषामें होते हुए भी उनका भाव, अभिप्राय अत्यन्त गूढ़ है। कितनेक जगह तो उलटारूपसे दृष्टान्त कहा गया है, जिसे 'उलटबाँसी' कहते हैं। उसका भावार्थ सिद्धान्तरूपमें होता है। पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग और स्वानुभवसे सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी बीजकका सम्पूर्ण सिद्धान्तरूप भावार्थ त्रिजारूप टीकामें स्पष्ट करके दरशा दिये हैं। यह आपकी महान् दया हम सब जिज्ञासु जीवों-पर हुई। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीका मूलमें जैसा भाव था, वैसा ही आप त्रिजामें दरशा दिये हैं। खानि-वाणीके सर्व भवबन्धनसे छूटकर निज पारखस्वरूपमें स्थित हो, सर्व सद्गुण-रहनि संयुक्त रहनेवाले नरजीव सर्व भवबन्धनोंसे छूटकर जीव-न्मुक्त होते हैं; ऐसा सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका सच्चा अभिप्राय त्रिजामें दरशाया गया है। ऐसे महान् बन्दीछोरको अनेकशः धन्यवाद है ॥ त्रयबार साहेब बन्दगी३ है ॥

दोहाः--सद्गुरु कबीर बीजक। चेतन वित्त बताय ॥
सार शब्द गुरु निर्णय। बूझै बिरला आय ॥ १ ॥
पञ्च भूमिका बन्धन। हंस भूमि बिलछान ॥
परख भूमि थिति आपने। भ्रम तमऽध्यास नशान ॥ २ ॥
सत्सङ्गति की भूमिका। सार असार विवेक ॥
मिथ्या धोखा तजि सकल। गुरु पारख पद टेक ॥ ३ ॥
जन्म अनेकन बीतिया। बिनु पारख भव धार ॥
पारख पाये मुक्त भौ। सद्गुरु के आधार ॥ ४ ॥
पारखि गुरु बिरले कोई। गुरुवा भ्रमिक अनेक ॥
छूटै कोइ जिज्ञासु जन। करि पारख सुविवेक ॥ ५ ॥
त्रीजा बीजक पढ़ि--गुनी। करि विचार सत्सङ्ग ॥
खानि-बानि मानन्दि तजी। हंस रहनि सर्वाङ्ग ॥ ६ ॥
रामस्वरूप सोई कीजिये। बन्धन छुटै तमाम ॥
निज पद जीवन्मुक्ति हो। यह ही आपन काम ॥ ७ ॥
श्रीकबीर गुरुदेव औ। पूरण साहेब सन्त ॥
बोधक साहेब लाल गुरु। रामस्वरूप नमन्त ॥ ८ ॥
बिनु पारख भवधार में। बहता हता ये जीव ॥
गुरु पारख अधार दै। निजपद थिर अब कीव ॥ ९ ॥

दोहाः—पारखि गुरु सर्वोपरि । रक्षक बन्दीछोर ॥
जीवनलौं गुण गान करूँ । भ्रम बन्धन मिटि होर ॥ १० ॥
नितप्रति पढ़ि-गुनि मनन करु ! बीजक सन्तन सार ॥
पारख पदमें ठहरि रहु । सद्गुरु के आधार ॥ ११ ॥
तनसे मनसे वचनसे । त्रय बन्दगी गुरुदेव ॥
रामस्वरूप बन्धन छुटा । पारखपद थिति लेव ॥ १२ ॥

॥ ※ ॥ इति भूमिका वर्णन समाप्तम् ॥ ※ ॥

श्रीकबीर निर्णय मन्दिर, स्थान—
नागझिरी-बुरहानपुर; सायं ।
वि० सं० २०२७, माघ शुक्लः १ ।
बुधवार । दि० २७।१।१९७१ ई० ।

—रामस्वरूपदास ।

॥ ❀ ॥ श्रीसद्‌गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी ॥ ❀ ॥

❀ अथ मूल बीजकके सम्पूर्ण पदोंकी प्रारम्भिक अकारादि अक्षररूप वर्णानुक्रमणिका वर्णन प्रारम्भः ❀

* इति मूल बीजकके सम्पूर्ण पदोंकी वर्णानुक्रमणिका गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् *

* बीजक टीका-त्रिजान्तर्गत सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी कृत—
कवित्तादि सम्पूर्ण पदोंकी वर्णानुक्रमणिका वर्णन प्रारम्भः *

* इति कवित्तादि पदोंकी वर्णानुक्रमणिका गुरुकी दयासे सम्पूर्णम्. *

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ * ॥ अथ पञ्च कोशोंका कोष्ठक वर्णनः—॥ * ॥

क्रमांक	नाम	स्थूल देह	सूक्ष्म देह	कारण देह	महाकारण देह	कैवल्य देह
१	कोश	अन्नमय	प्राणमय	मनोमय	ज्ञानमय	विज्ञानमय
२	आश्रम	ब्रह्मचर्य	गृहस्थ	वानप्रस्थ	संन्यास	परमहंस
३	चिन्ह	आचार	गुरुमय	जङ्गम आत्मलिङ्ग	शिवलिङ्ग	प्रसाद
४	प्रलय	नित्य प्रलय	नैमित्य	विश्व प्रलय	महा प्रलय	एकान्त प्रलय
५	दशा	बाल	पिशाच	उन्मत्त	मूक	जड़
६	अवस्था	जाग्रत्	स्वप्न	सुषुप्ति	तुरीया	उन्मनी
७	साधन	श्रवण	मनन	निदिध्यासन	साक्षात्कार	सहजारूप
८	मुक्ति	सालोक्य	सामीप्य	सारूप्य	सायुज्य	निर्गुण (जीवन्मुक्ति)
९	अभिमान	विश्व	तैजस	प्राज्ञ	प्रत्यगात्मा	निरञ्जन
१०	दीक्षा	कोऽहं	वोऽहं	शिवोहं	सोऽहं	अनामयोहं
११	आनन्द	विषय	योग	अद्वैत	विदेह	ब्रह्म
१२	निर्णय	क्षर	अक्षर	क्षेत्रज्ञ	आत्मा	कूटस्थ
१३	देवता	गणेश	मार्तण्ड	रूद्र	ईश्वर	निरञ्जन
१४	शक्ति	क्रिया	द्रव्य	ज्ञान	इच्छा	परा
१५	अग्नि	जठर	काम	मन्द	बड़वा (ज्ञान)	ब्रह्म
१६	पाद गायत्री	प्रथम (भूः)	द्वितीय (भुवः)	तृतीय (स्वः)	चतुर्थ (माया)	ब्रह्मपद (ब्रह्म-ॐ)
१७	बहिर मुद्रा	खेचरी	भूचरी	चांचरी	अगोचरी	सर्वसाक्षिणी
१८	वाचा	बैखरी	मध्यमा	पश्यन्ति	परा	अनिर्वाच्य
१९	मात्राॐकारकी	अकार	उकार	मकार	इकार (अर्द्ध मात्रा)	यंकार (बिन्दु)
२०	गुण	रज	सत्त्व	तम	शुद्ध सत्त्व	निर्गुण
२१	देवता	ब्रह्मा	विष्णु	रुद्र	ईश्वर	शिवदेव
२२	स्थान द्वार	नेत्र	कण्ठ	हृदय	मूर्धनी	शिखा
२३	प्रमाण	साढे तीन हाथ	अंगुष्ठ	अर्द्ध अंगुष्ठ	मसूर	प्रमाणहीन
२४	ब्रह्म	तारक	दण्डक	कुण्डल्य	अर्द्ध चन्द्र	बिन्दु
२५	स्थान चक्र	त्रिकुटी	श्रीहट	गोल्हाट	औटपीठ	भँवरगुफा
२६	मुख्य दिशा	पूर्व	पश्चिम	दक्षिण	उत्तर	ऊर्ध्व
२७	दिशाओंके देवता	इन्द्र	वरुण	यम	कुबेर	ब्रह्मा
२८	कर्म	सृजन	पालन	प्रलय	सूर्य	चन्द्र
२९	शून्य	अर्द्ध	ऊर्ध्व	मध्य	सर्व	महा
३०	वर्ण	पीत	श्वेत	लाल	हरा	काला
३१	उच्चार	ह्रस्व	दीर्घ	कल्पत्या (प्लुत)	अर्द्धमात्रा	अनिर्वाच्य

※ पञ्च कोशोंका कोष्ठक वर्णन ※

क्रमांक	नाम	स्थूल देह	सूक्ष्म देह	कारण देह	महाकारण देह	कैवल्य देह
३२	वेद	ऋग्	यजुः	अथर्वण	साम	सुसंवेद (स्वसंवेद्य)
३३	तत्त्व	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
३४	उपदिशा	ईशान्य	नैऋत्य	आग्नेय	वायव्य	अधो
३५	दिशाओंके देवता	शिव	नैऋत्य	आग्नेय	वायु	विष्णु
३६	बाजा	तन्तु	शङ्ख	झांझ	मृदंग	बंशी
३७	पिण्डकी वायु	अपान	प्राण	उदान	समान	व्यान
३८	आकाश	घटाकाश	मठाकाश	महदाकाश	चिदाकाश	निजाकाश
३९	कमल रङ्ग	पीत औ रक्त	श्याम औ रक्त	रक्त औ श्वेत	श्याम और शुद्ध पीत	पीत औ श्वेत
४०	मार्ग	पपील	विहङ्गम	कपि	मीन	शेष
४१	वेद ऋचा	अद्वै	वामदेव	सत्पुरुष	ईशान्य कला	अघोर
४२	कला	ऊर्मी	धूर्मी	ज्योति	ज्वाला	कलातीत
४३	लोक	सत्य	बैकुण्ठ	कैलास	ज्वाला	निराधार
४४	गुप्त मुद्रा	सन्मुखी	उन्मीलनी	शाम्भवी	आतमभावनी	पूर्णबोधिनी
४५	क्षीनी वायु	किङ्किरा	नाग	कूर्म	देबदत्त	धनञ्जय
४६	विकार	अहं	मन मन्तव्य	बुद्धि बोधव्य	चित्त चिन्तन	अन्तःकरण (निर्बिकल्प)
४७	भूमिका	छिप्रा	गतागत	सौलेष्टता	सुलीन	अभाव
४८	अभाव	प्रध्वंसा	प्राग	अन्योऽन्य	अत्यन्ता	भावातीत
४९	भोग	स्थूल	सूक्ष्म	आनन्द	आनन्दाभास (ईश्वर रूप)	ब्रह्ममय
५०	काण्ड	कर्म	उपासना	योग	ज्ञान	बिज्ञान
५१	अं० पं० का देवता	रुद्र	चन्द्रमा	ब्रह्मा	वासुदेव (नारायण)	महाविष्णु
५२	ज्ञान इन्द्रियाँ	नासिका	जिह्वा	नेत्र (चक्षु)	त्वचा (त्वक्)	कान (श्रोत्र)
५३	ज्ञानें० के देवता	अश्विनीकुमार	वरुण	सूर्य	वायु	दिशा
५४	ज्ञा० के विषय	गन्धका ग्रहण	रसका ग्रहण	रूपका ग्रहण	स्पर्शका ग्रहण	शब्दका ग्रहण
५५	कर्मेन्द्रियाँ	गुदा	लिङ्ग (उप०)	पाँव (पाद)	हाथ (पाणि)	मुख (वाक्)
५६	कर्में० के देवता	मृत्यु (यम)	प्रजापति (ब्रह्मा)	विष्णु (उपेन्द्र)	इन्द्र (शक्र)	अग्नि (वह्नि)
५७	कर्मेन्द्रियोंके विषय	मल त्यागना	मूत्र त्यागना या (मैथुन)	गमन करना (चलना)	वस्तुका ग्रहण (लेना-देना)	बोलना (वाणी उच्चारण)

※ इति पञ्च कोशोंका कोष्ठक वर्णनम् सम्पूर्णम् ※

प्रकाशनमें सहायतार्थ दान-दाताओंके नाम समयानुसार बीजक मूल और जड़-चेतन भेद प्रकाश टीकामें प्रकाशित कर दिये गये हैं। पीछेसे राशि देनेवालोंके नाम और राशि—

५०) साधु उत्तम सा० श्री क० पा० मन्दिर वाराणसी (उ० प्र०)

२००) साधु बसन्तदास, श्री कबीर कुटी, बसन्त साधना केन्द्र तेखला।
पो०—गंगोरी। जि० उत्तर काशी (उ० प्र०)

५०) भक्त श्री गणेशराम बहुगुणा, मु० बदाड़ी, पो० जोशीपाड़ा, उ० काशी।

५०) ,, श्रीमती भागेश्वरी देवी गणेश राम बहुगुणा, पो० जोशीपाड़ा, उ० काशी।

१०१) प्रो० रामचन्द्र पटेल, धर्मराज प्रिंटिंग प्रेस, यस० २६/६३ मीरापुर बसहीं,
शिवपुर, वाराणसी (उ० प्र०)

॥ ❀ ॥ श्रीसद्‌गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख-स्वरूप सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः-

॥ ❀ ॥ बीजक मूल सद्‌ग्रन्थः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी प्रथम प्रकरणम् प्रारम्भः ॥ १ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी—॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते रमैनी प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख-स्वरूप सद्‌गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीकाः—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❀ ॥ त्रिजाकारकृत मङ्गलाचरण । वन्दना पद । सोरठा ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ आदि स्तुति ॥ [सोरठा १ से ५ तक हैं] ॥ ❀ ॥

सोरठाः—बन्दौं चरण सरोज । जिन्ह यह बीजक निर्मयो ॥
परख दिखायो खोज । ते गुरु सम दूजा नहीं ॥ १ ॥

सद्‌गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं कि—मैं सर्वप्रथम उन सत्यवक्ता पारख-प्रकाशी सद्‌गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेबके चरण सरोज = चरण-कमलोंमें नित्यप्रति सत्य श्रद्धा-भक्तिके साथ वन्दनारूप त्रयबार बन्दगी करता हूँ; जिन्होंने यह सत्यन्याय-निर्णयरूप बीजक सद्‌ग्रन्थ निर्माण करके चैतन्य जीव-जमाका सार पारख-सिद्धान्त निश्चित स्थित किया और अनेक मत-पन्थ, ग्रन्थ, तथा तत्त्वमसि, काल-सन्धि-झाँई आदि वाणियोंके दुस्तर जालोंका विवेचन करके सार-असार, जड़-चैतन्य, बन्ध-मोक्ष आदिकी यथार्थ खोज-तलाश करके, यथार्थ सत्य निर्णयसे शुद्ध चैतन्य पारख निज-स्वरूपका बोध आप बन्दीछोर सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबजीने ही सर्वप्रथम दरशा दिया है। अतएव आप स्वयं पारख-प्रकाशी सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबके समान स्वतः पारख-प्रकाशी दूसरा गुरु आजतक कोई हुआ भी नहीं और होगा भी नहीं—"न भूतो न भविष्यति"। इस हेतुसे आप सद्‌गुरु सर्वश्रेष्ठ अद्वितीय पारख-प्रकाशी हैं। अतः बीजक-निर्माता श्रीसद्‌गुरु कबीरदेवके चरण-कमलोंमें मैं भक्ति, विनम्र त्रयबार साहेब बन्दगी करता हूँ ॥ १ ॥

सोरठाः—निर्णय दीन्ह कृपाल । परख प्रकाशी स्थीर पद ॥
परखायो सब जाल । महा दुःखित जिव जानिके ॥ २ ॥

श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—हम जीवोंके ऊपर कृपा करके जड़-चैतन्यके तथा अनेक सिद्धान्तरूप खानि-वाणी जालोंके दोनों पक्षके कसर-खोटको सत्य निर्णयसे दरशाकर कृपालु प्रभुने भ्रम-धोखा छुड़ा दिया है। स्थिर पद कहिये गुरुपद चैतन्य स्वतः स्वरूपका बोध; सो पारख-प्रकाशी आदिगुरु बन्दीछोर सत्यबोधदाता सद्गुरु श्री-कबीरसाहेब स्थिर-पदके पारख प्रकाशी हुए। आप ही चैतन्य जीवोंको भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनादिमें बद्ध हो करके चारखानि चौरासी योनियोंमें महान् कष्ट पाकर, जन्म-मरणादि तथा त्रयतापोंमें अति दुःखित होते हुए जान करके सर्व खानि-वाणी जगत् और ब्रह्म-जालोंके कसर-खोट आदिको टकसाररूप बीजकसे परखाकर सत्य पारखबोध दे करके सो सब यथार्थ लखाये हैं। ऐसे आप महान् कृपालु हुए ॥ २॥

सोरठाः—दया क्षमा सन्तोष । धीरज शील विचार गुण ॥
एक अनेक को धोख । परखायो निज परखते ॥ ३ ॥

श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—सर्व सद्गुण सम्पन्न सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब स्वयं परीक्षक महान् पारखी हुए। जैसे कि; दया=छोटे-बड़े देहधारी जीवोंको तन, मन, वचनोंसे कष्ट न देना, कभी हिंसा न करना। तहाँ निज-दया और पर-दयाकी पूर्णता आपमें रही। आप परम दयालु रहे। क्षमा=अपना अपराध करनेवालोंसे भी कभी बदला या हानि करनेके भावका न होना। सो आप क्षमाके स्वरूप ही रहे। सन्तोष= यथा-प्राप्त प्रारब्ध भोगोंमें विचारपूर्वक निराश-वृत्तिसे रहना, किसी वस्तुकी चाहनाका न होना। आप तो परम सन्तोषी रहे। धीरज=कैसी भी आपत्ति आनेपर भी घबराहटका न होना। धैर्यके तो आप प्रत्यक्ष मूर्ति रहे, अटल धैर्यधारी हुए। शील= कठोरतासे रहित, नम्रता, कोमलता, सरल स्वभावको कहते हैं। सो आप शीलकी खानि रहे। विचार=सत्य-असत्य, जड़-चैतन्य आदिको यथार्थ जानना, उसका मनन करते रहना है। आप तो विचारके सागर रहे; इत्यादि। दया, क्षमा, सन्तोष, धीरज, शील, विचारादि सर्व सद्गुणोंके संयुक्त आप विवेकी हैं तथा जिज्ञासु जीवोंको भी उक्त सद्गुण धारण करानेवाले हैं। और एक कहिए ब्रह्म, तथा अनेक कहिये जगत्; सो खानि-वाणीके कसर-खोट, सम्पूर्ण धोखाओंको. हे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब! आपने निज पारख-दृष्टिकी स्वयं बोध-शक्तिसे मुमुक्षुओंको उक्त धोखा परखाके छुड़ा दिया। तथा जिज्ञासु जीवोंको मुक्तिके मार्ग-दर्शक आप पारख-बोधदाता हुए ॥ ३ ॥

सोरठाः—अशरण शरण उदार । सुख साहेब सुखरूप जो ॥
कहुँ टीका विस्तार । तव पारखते कृपानिधी ॥ ४ ॥

श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—अशरण=आधारहीन, अनाथ, पतित, असहाय होकर कहीं भी ठौर-स्थिति पाये बिना दुःखित हो, भव-बन्धनोंमें जो पड़े हैं, सो वैसे अशरण जीवोंको भी शरणमें लेकर आश्रय देनेवाले पारख-बोधदाता; ऐसे बड़े आप अति

उदार=दानशील, सर्वश्रेष्ठ हैं। फिर शरणागत नरजीवोंके जन्मृति-दुःख मिटानेवाले हे सुखसाहेब! सद्गुरो! आप स्वयंप्रत्यक्ष पारख-पदमें स्थिर, जीवन्मुक्त-स्थितिमें सुखी, निजस्वरूपमें विराजमान हैं; जो कि आप आवागमनसे रहित हो गये हैं। इस हेतुसे आप सुखरूप प्रत्यक्ष जीवन्मुक्त हैं। और कृपाके समुद्र समान हे कृपानिधि! आपके ही पारखबोधके बलसे मैं अब आपके सत्य उपदेशरूप बीजक सद्ग्रन्थके मूल पदकी पारख-सिद्धान्त-दर्शक भावार्थ-बोधिनी त्रिजा–बुझार्थ टीका विस्तारपूर्वक कहता हूँ; जिसे सुन-गुनकर जिज्ञासु जनोंको पारखबोध प्राप्त हो जायगा॥ ४॥

सोरठाः—बन्दौं सन्त समाज। जे निर्णई गुरु परखके॥
दृढ़ मम हृदय विराज। सदा सुखी दाया निधी॥ ५॥

श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—बन्दीछोर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके गुरुपदमें, एवं बोधक सद्गुरुदेवके पदमें और उनके अनुयायी पारखबोधरूप गुरुपदको धारण किये हुए, जड़–चैतन्यका यथार्थ निर्णय करनेवाले निज चैतन्य पारखबोधमें निष्ठावान्. स्थितिवान्, सत्यन्यायी, निर्णयी विवेकी सन्त या पारखी साधु-समाजके सर्व पारखी सन्त–महात्माओंको भी मैं शिर नवा करके 'साहेब बन्दगी' ३ करता हूँ।

बीजक साखीमें सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने कहा है :—

साखीः—"कर बन्दगी विवेक की। भेष धरे सब कोय॥
सो बन्दगी बहि जान दे। जहाँ शब्द विवेक न होय॥ २९४॥"

हे दयानिधि! दयालु सद्गुरुदेव श्रीकबीरसाहेब! आप सम्पूर्ण माया–मोहरूप जड़ाध्यासोंसे रहित पारखी कायावीर, शूरवीर, धीर जीवन्मुक्त सदा सुखी हैं। सोई आपके पारखबोध निजस्वरूपका ज्ञान एवं आपके उपदेशद्वारा हुए उपकारकी स्मृति दृढ़तापूर्वक सदैव मेरे हृदय मध्यमें विराज=दृढ़, अटल होकर बैठा रहे; विनययुक्त यही मैं चाहता हूँ। अर्थात् जो सत्यन्याय–निर्णयी गुरु पारखके बोधवाले विवेकी पारखी सन्त-समाज हैं, उन्हें भी मैं वन्दना करता हूँ। दयानिधि सद्गुरुदेवका सदा सुखदायी पारखबोध साधु-गुरुकी दयासे मेरे हृदयमें अन्ततक दृढ़तासे टिका रहे, यही मैं अभिलाषा करता हूँ॥ ५॥

॥❀॥ इति मङ्गलाचरणम् वन्दना पद, सोरठा (१–५) सटीक समाप्तम्॥❀॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ गुरुपद वन्दना ॥ ❀ ॥

साखीः—सद्गुरु कबीर साहेब । पूरण साहेब देव ॥
'रामस्वरूप' त्रय बन्दगी । चरण शरण पद-सेव ॥ १ ॥
गुरु कबीर सर्वोपरि । सन्त शिरोमणि आप ॥
पारख के सिद्धान्त ही । बीजक धन तेहि थाप ॥ २ ॥
बीजक के सत भावको । त्रीजा करि विस्तार ॥
सद्गुरु पूरण साहेब । धनि जिज्ञासुन तार ॥ ३ ॥
कबीर पूरण पारखी । परम्परा के सन्त ॥
बोधक गुरुपद भावयुत । 'रामस्वरूप' नमन्त ॥ ४ ॥
बन्ध प्रवाह अनादि ते । बिनु पारख भटकान ॥
पारख ते भ्रम ध्यास नशि । निज स्वरूप ठहरान ॥ ५ ॥
मुक्ति प्रदाता पारखी । पारख गुरुहि महान ॥
बन्दीछोर कबीर गुरु । धन्य! धन्य! गुण ज्ञान ॥ ६ ॥
'रामस्वरूपदास' सदा । श्रद्धा भक्ति के साथ ॥
मन वच क्रम त्रय बन्दगी । गुरुपद नाऊँ माथ ॥ ७ ॥

॥ ❀ ॥ अथ रमैनी मूल; प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

॥ रमैनी ॥ १ ॥

अन्तर ज्योति शब्द एक नारी । हरि ब्रह्मा ताके त्रिपुरारी ॥१॥
ते तिरिये भग लिङ्ग अनन्ता । तेउ न जानैं आदिउ अन्ता ॥२॥
बाखरि एक बिधाते कीन्हा । चौदह ठहर पाट सो लीन्हा ॥३॥

टीका बुझार्थ; गुरुमुख-दोहाः—मन माया कृत भास भौ, सोई शब्द ॐकार ॥ एक जीव अनुमान ते, बानी रची बिचार ॥१॥ हरि हर ब्रह्मा तकत ही, पुनि भग लिङ्ग अनन्त ॥ तिनहुँ न जाना अन्त कछू, तब हारि कहा बेअन्त ॥२॥ बाखरि एक बनाय के, ब्रह्मैं उक्ती कीन्ह ॥ हन्ता मनमें लायके, चौदह भुवन पाट सो लीन्ह ॥ ३ ॥

संक्षेपार्थः—अनादिकालके संसारमें त्रिगुणी मनुष्योंके अन्तर=भीतर, सूक्ष्म

मनमें, ज्योति = बाहर स्थूल देहके सम्बन्धमें, एक = जीवकी सत्तासे, नारी = स्फुरणा, इच्छा, वासनाद्वारा, शब्द = वैखरी वाणीसे ॐकार शब्द एवं चार वेदादि-वाणी उत्पन्न हुई। इस प्रकार जीवके अनुमानसे वाणी बनी। पुनः भ्रम—अनुमानसे ही ॐकाररूप कोई एक ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा है; ऐसा मानकर हरि = सत्त्वगुणी विष्णु, ब्रह्मा = रजोगुणी ब्राह्मण और त्रिपुरारि = तमोगुणी महादेव; ऐसे त्रिगुणी मनुष्य वेदादि वाणी–कल्पनाद्वारा ब्रह्म कर्त्ताको ताके = इधर–उधर देखने और खोज करने लगे। इस प्रकार प्राचीनकालके मनुष्योंके अन्तर = मन, और ज्योति = मायाके कर्त्तव्यसे जो भास उत्पन्न हुआ, वही एक 'ॐकार' शब्दरूपमें बना। किन्तु वह एक = जीवकी ही अनुमान–कल्पनासे बोल-चालकी वैखरी वाणीसे ले कर ॐकार शब्द सहित चारों वेदोंकी वाणी रचना हुई। उसीका विचार वे सब भ्रमिक लोग करने-कराने लगे॥१॥ ते तिरिये = वे ही त्रिदेवरूप त्रिगुणी मनुष्योंके द्वारा परमात्माकी खोज–तलाश करते रहनेसे पुनः त्रिविधि साधनाका मार्ग विस्तार हुआ। जैसे भग = भगाकार नवधा भक्ति हरिके द्वारा, लिङ्ग = लिङ्गाकार अष्टाङ्ग योग शिवके द्वारा; और अनन्ता = अनन्त वाणीकी कल्पना, कर्म-मार्ग ब्रह्माके द्वारा उत्पन्न हुआ। उन तीनोंने भी वाणीकी भ्रम–कल्पनासे माने हुए परमात्माका आदि = प्रारम्भ और अन्ता = आखिरी, ओर–छोरको अन्ततक भी कुछ नहीं जाना, तब हार मान करके उसे बेअन्त = जिसका अन्त पाया नहीं जाता, अगम–अपार कहकर वे स्वयं भ्रम धोखेमें पड़े रहे। बिना पारख भ्रम–बन्धनसे वे कोई नहीं छूटे। वही भूल हमारे आदि = जन्म और अन्ता = मृत्यु होनेपर चौरासीमें ले जानेका कारण है, यह नहीं जाने॥ २॥ +

अथवा अनादिकालसे ही सब जीव देह-बन्धनमें पड़ते चले आ रहे हैं। इसलिए एक = जीव ही विषयाध्यासवश नारी = स्त्री-देहधारी बना और कोई पुरुष-देहधारी अनाड़ी अज्ञानी विषयासक्त हुआ, तब विषय-भोगोंमें एक-दूसरेसे भूलने-भुलाने लगे। इस कारण उसी स्त्रीकी ही आसक्ति अन्तर = हृदयमें टिकाये। ज्योति = बाहरका सुन्दर रूप, शृङ्गार देखकर और शब्द = मधुर वचन सुनकर सब पुरुष स्त्रीकी ओर ही आकर्षित होकर भूल रहे हैं। उसी प्रकार हरि = विष्णु, ब्रह्मा और त्रिपुरारि = महादेव; ये तीनों भी विषयासक्त होकर एक-मात्र स्त्रीके ही ज्योतिरूप सौंदर्यको देखकर और उसके शब्दको सुनकर उस ओर आकर्षित हुए, उसीकी भोग-वासना अन्तरमें टिकाकर विमोहित-दृष्टिसे उसे देखते हुए स्त्री-भोगोंमें भूले रहे॥ १॥ वे त्रिगुणी मनुष्यरूप त्रिदेवद्वारा स्त्री-भोगोंके सम्बन्धसे भग = भगाकार पुत्रियाँ और लिङ्ग = लिङ्गाकार पुत्रगण अनन्ता = अनेक सन्तानरूपमें उत्पन्न हुए। उनकी वंश-परम्परा प्रचलित हुई। परन्तु विषयासक्त होनेसे तेउ = उन त्रिदेवोंने भी—यही स्त्री-विषय ही हमें आदिउ = जन्म करानेका और अन्ता = देहान्त होनेपर चौरासी गर्भवासमें ले जानेका मूलकारण है; ऐसा यथार्थ नहीं जाना॥ २॥

बाखरि = बखार, एक बड़ी-सी कोठीके समान वैखरीवाणीद्वारा चारों वेद रचना करके—एक कोई जगत्कर्त्ता परमात्मा है, ऐसी वाणी—कल्पनाको बिधाते = ब्रह्मारूप पण्डितने वेदमें भर दिया। इस प्रकार एक बखार बनाकर ब्रह्मादिकोंने अपना उक्तिरूप

कथन वर्णन करके उसमें भर दिया, वही कहा, लिखा, संसारमें प्रचार कर दिया। "मैं ही ब्रह्म हूँ, सबका कर्त्ता मैं हूँ, मैं विद्वान् पण्डित हूँ" इत्यादि अहङ्कार मनमें ले करके दृढ़ किया। वेद-विद्याकी प्राप्तिके लिए चौदह विद्याओंका ठहराव पाट=आधार भी ले लिया। उन वेदादि विद्याओंमें सात स्वर्ग और सात पातालरूप चौदह भुवनोंका कर्त्ता परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है, ऐसा वर्णन किया है। उसी ब्रह्मज्ञानका आधार लेकर ब्रह्ममें ठहराव करनेको कहा है।

अथवा रजोगुणरूप ब्रह्माने अपने हृदयको ही एक कोठी बनाई। उसमें स्त्री-देहके चौदह स्थानोंमें विषयासक्त मनको ठहरानेका आधार, सो=उसने ले लिया। इस प्रकार खानि-वाणीमें भूलनेवाले जीव उसीमें बँधे पड़े हैं॥ ३॥

हरि हर ब्रह्मा महन्तो नाऊँ। तिन्ह पुनि तीन बसावल गाऊँ॥४॥
तिन्ह पुनि रचल खण्ड ब्रह्मण्डा। छौ दर्शन छानवे पाखण्डा॥५॥

मायामुख; बानी-बचनः—कर्त्तारूपी तीन भये, हरि हर ब्रह्मा नाँव॥ गुरुमुखः—इनहिन तीनिहुँ लोक रची, खण्ड-ब्रह्माण्ड सो ठाँव॥४॥ छौ दर्शन छानवे कही, पाखण्ड दिये बनाय॥ इतना बानी बचन सुनी, जीव सबै बौराय॥५॥

मायामुखः—गुरुवालोग कहते हैं—हरि=विष्णु, हर=महादेव और ब्रह्मा; ये त्रिदेव ही महन्तो=महान् श्रेष्ठ हैं। उन तीनोंके नाम स्मरण करनेसे उनको स्वर्गादि लोककी प्राप्ति वा गति-मुक्ति होती है। क्योंकि ब्रह्मा जगत्कर्त्ता हैं, विष्णु पालनकर्त्ता और शिव संहारकर्त्ता हैं। उनके नाम-स्मरण करनेसे वे अपने भक्तोंकी रक्षा करते हैं। स्वर्ग, मृत्यु, पातालरूप तीन लोककी रचना भी उन्हीं तीनोंने की है; इत्यादि।

गुरुमुखः—'महन्त' नामधारी वे ही त्रिगुणी मनुष्यरूप त्रिदेवोंने अपने तीन प्रकारके सिद्धान्तरूप तीन ग्राम पुनः बसाये। कर्म-मार्गसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति, उपासना मार्गसे विष्णुलोककी प्राप्ति और योग-मार्गसे शिवलोककी प्राप्ति होनेके आशा-भरोसारूप वाणीके तीन ग्राम भी स्थापित किये। वैसे तीनलोकमें जाकर सुख-प्राप्त करनेकी वाणी-कल्पनाकी रचना उन्हीं तीनोंने की॥ ४॥ पुनः उन तीनोंने खण्ड=न्यारे-न्यारे, ब्रह्मण्डा=विभिन्न वाणी, तीन मार्गके सिद्धान्तोंकी भी रचना की। उसी कल्पित वाणीका सिद्धान्त बाह्य संसारके कई स्थान-स्थानमें जाकर प्रचार कर दिया। कर्म, उपासना, योगादिकी वाणी सुन-सुन करके षट्दर्शन और छियानवे पाखण्डोंके भेषधारी मनुष्योंका विस्तार हो गया। वे सब लोग भी उसी वाणीकी महिमा बढ़ा-चढ़ाकर कहते गये। इस प्रकार अनेकों रूपमें पाखण्ड बन गये। इस तरह इतने सारे मायारूप भ्रमिक गुरुवा लोगोंके रोचक-भयानक अनेक वाणी-वचन सुन-सुन करके सब अविचारी जीव भ्रमिक पागल हुए और हो रहे हैं। कोई बिरले ही मनुष्य पारखबोध प्राप्त करके इन जालोंसे छूट पाते हैं॥ ५॥

पेट न काहू वेद पढ़ाया। सुन्नति कराय तुरुक नहिं आया॥६॥

नारीमों चित गर्भ प्रसूती। स्वाङ्ग धरे बहुतै करतूती ॥७॥

गुरुमुखः—गर्भवासके बीचमें काहु न वेद पढ़ाय ॥ यथा सुन्नति करवाय के, तुरुकहु नाहीं आय ॥ ६ ॥ बानीमें चित लायके, भयो गर्भ अभिमान ॥ ताते स्वाङ्ग बहु करनि कही, हिन्दू मूसलमान ॥ ७ ॥

सद्गुरु कहते हैं—माताके पेटरूप गर्भवासके बीचमें रहते समय ईश्वरादिने किसीको भी वेदादि विद्या नहीं पढ़ाई। गर्भहीसे वेदादि पढ़ करके तो कोई जन्म लेकर नहीं आया। पढ़ने-पढ़ानेका काम बाहर मनुष्योंके द्वारा ही हो रहा है। इसलिए किसी ईश्वरादिकी ओरसे हिन्दू ब्राह्मणादि वर्णवाले होकर भी कोई नहीं आया है। वैसे ही माताके गर्भमें ही सुन्नति कर-कराके कोई मुसलमान भी जन्म लेकर नहीं आया है। इस कारण खुदाकी ओरसे भी मुसलमान बनकर आये हों, वैसे कोई नहीं दीखते। अतः हिन्दू-मुसलमानादि सारी वर्ण-व्यवस्था मनुष्योंसे ही हुई और हो रही है, यह बात स्वयं सिद्ध है ॥ ६ ॥ नारी=वाणी-कल्पनामें चित्त लगाकर वेद-कुरानादि वाणी पढ़ करके मिथ्या पक्ष ले लेनेसे मनुष्योंको गर्भ=अभिमान, प्रसूती=उत्पन्न हो गया। उसीसे अनेक प्रकारके स्वाङ्ग, आडम्बर धारण करके एवं अनेक कर्त्तव्य करके, वैसी ही मनगढ़न्त वाणी कह-कहकर कोई हिन्दू और कोई मुसलमान अपने-आप बन गये। पुनः ईश्वर और खुदाकी ओरसे हम हिन्दू और मुसलमान बने हैं, ऐसा मिथ्या ही बकवाद करके मिथ्या पक्ष लेकर बहुतोंको बहकाने, भरमाने लगे। इस प्रकार बिना विचार जीव अपने कर्त्तव्यमें आप ही बँधे पड़े हैं।

अथवा स्त्री-भोगमें चित्त लगाकर फँसा, तब स्त्री-पुरुषके सम्भोग द्वारा ही स्त्रीको गर्भ-स्थापन हुआ और होता है। समय पूरा होनेपर स्त्रीकी योनिद्वारा सब बालकरूपमें, प्रसूती=जन्म लेकर आते हैं। फिर बड़े होनेपर करतूती=अनेक कर्त्तव्य करके अनेक प्रकारकी जाति, वर्ण, कुल, आश्रमादिका मिथ्या अभिमान लेकर विभिन्न स्वाङ्ग धारण करते-कराते रहते हैं। अतः जीवसे परे और कोई सत्य नहीं है ॥ ७ ॥

तहिया हम तुम एकै लोहू। एकै प्राण बियापै मोहू ॥८॥
एकै जनी जना संसारा। कौन ज्ञानसे भयउ निनारा ? ॥९॥

तहिया हम तुम एक ही, लोहू ऐकै प्रान ॥ एक मोह व्यापक सकल, कियो आपनो भान ॥ ८ ॥ एक नारि एक पुरुष जग, और कहाँते आय ? ॥ कौन ज्ञान अनुमान करी, परेहु भर्म के माहिं ? ॥ ९ ॥

मनुष्य-देहमें तहिया=तब गर्भवासके स्थानमें और अब बाहरमें भी हम और तुम, दोनों ही देहधारी होनेसे एक समान ही दीख रहे हैं। हम और तुम, दोनोंके स्थूल शरीरमें लोहू=रक्त सम्बन्धी सप्तधातु और प्राण सम्बन्धी सूक्ष्म देह चित्त-

चतुष्टयादि भी एक समान ही हैं और मोहादि मानसिक विकार भी सब अज्ञानी जीवोंमें एक-सा ही व्याप्त हो रहे हैं। एक अद्वैत ब्रह्म सर्वव्यापक माना हुआ भी वाणी-कल्पना-का ही मोह है। वैसे वाणीके मोहसे ब्रह्म-भावना करके अपना स्वरूप ही भूलकर अपने आप बेभान हो रहे हैं। अपनेसे भिन्न ब्रह्म-ईश्वरादिका भान करके भूल रहे हैं। वैसी मोटी-झीनी मायाके मोहमें तुम बँधे पड़े हो और हम पारख-दृष्टिसे परखकर उससे न्यारे हो निज स्वरूपमें स्थिर निर्बन्ध मुक्त हैं। तुम्हारे-हमारेमें यही विशेष अन्तर है। स्थूल-सूक्ष्म देहादि तो तुम-हम सबकी एक-सी ही बनी हैं ॥ ८ ॥ सारे संसारमें जनी = स्त्रीरूप माताओंने एक समान ही पुत्र-पुत्रियोंको जना = उत्पन्न किया और कर रही हैं एक-सी सब स्त्रियोंने सम्पूर्ण संसारके मनुष्योंको उत्पन्न किया है। विषयाध्यासी जीव संसारमें एक ओर स्त्रीकी देह और दूसरी ओर पुरुषकी देह धारण किये हैं। एक स्त्रीजाति और दूसरी पुरुषजाति, यह तो प्रत्यक्ष दीख रही है। स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे ही सब मनुष्य उत्पन्न हुए और हो रहे हैं। अब विचार करके कहो—जीवोंको छोड़कर ईश्वर, ब्रह्म, खुदा जगत्का कर्त्ता और कहाँसे आया? उनसे मनुष्यादिकी उत्पत्ति कब? कैसे? कहाँसे हुई? अब कौन-सा भ्रमिक ज्ञान अनुमान-कल्पना करके ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिको कर्त्ता मानकर मिथ्या भ्रम-धोखेमें पड़े हो? विचार करो—सबसे न्यारा माना हुआ कर्त्ता भी तुम्हारी वाणी-कल्पनाकी ही उपज है।

अथवा मनुष्य जीवरूप पुरुषने वेदादि वाणीरूप स्त्रीका सम्बन्ध किया, तब उसीसे एक कल्पनारूप ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ता सारे संसारमें उत्पन्न हुआ। अब कौन ज्ञानसे तुम न्यारा होते हो? ऐसी मिथ्या मानन्दीसे भ्रम, अज्ञान और भव-बन्धनसे वे कभी छूट नहीं सकते हैं ॥ ९ ॥

भौ बालक भग द्वारे आया। भग भोगीके पुरुष कहाया ॥१०॥
अविगतिकी गति काहु नजानी। एक जीव कित कहूँ बखानी ॥११॥

बहुतक बालक रूप धरि, भगद्वारे ते आय। भग भोगन इच्छा करी, तब पुनि पुरुष कहाय ॥ १० ॥ अविगति एक अनुमान है, ताको कोइ न जान ॥ एक जीव पद स्वतः है, केतो कहौं बखान ? ॥ ११ ॥

मनुष्यरूपमें कभी कहीं किसी प्रकारसे भी बालकका रूप धारण हुआ, स्थूल देह संयुक्त दिखाई दिया, तब निःसन्देह वह स्त्रीरूप माताके गर्भवासमें सम्पूर्ण देह तैयार करके भगद्वारसे जन्म ले करके ही आया; यही देखनेवालेको निश्चय हो जाता है। और कहीं किसी प्रकारसे भी मनुष्यका बालक आकाश-पातालसे उत्पन्न नहीं होता है न कभी हुआ है। अतएव निराकार ईश्वरादिसे साकार मनुष्यादिकी उत्पत्ति वर्णन किया हुआ कपोल कल्पित मिथ्या है। अनादिकालसे बहुत-से अध्यासी जीव मनुष्यके बालकरूप देह धारण करके माताके भगद्वारसे ही जन्म लेकर आये और अभी वैसे ही जन्म ले रहे हैं। पुनः युवावस्थामें विषय-भोगेच्छा प्रबल हो स्त्रीके भग-भोगनेकी इच्छासे प्रेरित होकर भग भोग करके, तब पुनः लौकिक स्थूल दृष्टिके रूपसे पुरुष

कहलाते हैं। किन्तु विषयाध्यासवश पुनः पुनः आवागमनमें पड़े नर-नारीके देहधारी होते रहते हैं। इस कारण ईश्वरादिके मुखादिसे ब्राह्मणादि कोई उत्पन्न नहीं हुए, न होते हैं। जड़ तेज तत्त्वके दृश्य ज्योति-प्रकाशसे भी कभी कहीं कोई बालक उत्पन्न न हुआ न होता है; ऐसा जानना चाहिए।

अथवा योगी-ज्ञानी लोग जब बालकवत् लघु हुए, तब हृदय वा मस्तक-स्थानके द्वाररूप चक्रमें वृत्ति ले आये। आन्तरिक चक्रोंके आनन्दको भोगकर पुनः बहिर्वृत्तिके समय—हम सब आनन्दके भोक्ता ब्रह्म-ईश्वररूप पुरुष हैं, ऐसा कहते हैं। सो उनकी मिथ्या मानन्दी है। ऐसी मानन्दीसे उनका भव-बन्धन नहीं मिट सकता है ॥१०॥ माने हुए ब्रह्म-ईश्वरादिको चित्त-चतुष्टय, दश इन्द्रियाँ, वाणी आदिकी गतिसे जाना नहीं जा सकता है, वे अविगति हैं, आजतक उनकी गति-विधिको किसीने भी जान नहीं पाया; ऐसा जो कहते हैं, सो तुम्हारा कहा हुआ 'अविगति' तो एक मिथ्या अनुमान-कल्पना ही मात्र है। इसके यथार्थ भेदको बिना पारख कोई मतवादियोंने जान नहीं पाया। मैं कहता हूँ—निज स्वरूप एक जीवका शुद्ध चैतन्य पारख-पद ही स्वतः नित्य-सत्य अखण्ड है। इससे परे और कोई सत्य नहीं है। अब मैं इससे ज्यादा और कितना खुलासा समझा करके वर्णन करूँ ? कोई जिज्ञासु जीव ही मेरे पारखबोधको समझकर भ्रमसे रहित होंगे ॥ ११ ॥

जो मुख होय जीभ दश लाखा। तो कोइ आय महन्तो भाखा ॥१॥

मायामुखः—जैसे मुख जिभ एक है, ऐसे होय दश लाख ॥
तो कोइ यामें श्रेष्ठ कही, यथा महन्तो भाख ॥१२॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—जैसे एक मुखमें एक जीभ तो सबकी होती है; वैसे ही यदि शेषनागके सहस्र मुखके समान किन्हींके दस लाख मुख और जिह्वा हों, तब तो वे ही महान् अवतारी पुरुष कोई-कोई बिरले ही परमात्माकी यथार्थ महिमा, श्रेष्ठता विशेषरूपसे वर्णन कर सकेंगे। वे ही श्रेष्ठ कहे जायेंगे। ऐसे महान् पुरुष प्राचीन कालके आचार्य महन्तोंने शास्त्रोंमें वर्णन किया है।

अथवा जिसके मुखमें सरस्वतीका निवास हो, चार वेद-षट्शास्त्ररूप दश विद्याओंको लखकर जिसने कण्ठाग्र कर लिया हो, तो वैसे ही कोई महापण्डित आकर परमात्माके मूलतत्त्वका महात्म्य वर्णन करके समझा सकेंगे। वे ही महन्तो = महान् श्रेष्ठ होंगे। उनके ही कथनको मानना चाहिए ! इत्यादि ॥ १२ ॥

साखीः—कहहिं कबीर पुकारिके। ई ले ऊ ब्यौहार ॥
राम नाम जानै बिना। भौ बूड़ि मुवा संसार ॥१॥

गुरुमुख—साखीः—कहाँ है ? जाहि पुकारहू, बानी लेव ब्यवहार ॥
अनुमित सैन जाने बिना, बहु भरमि मुवा संसार ॥१३॥

गुरुमुख :—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुकार करके कहते हैं—हे मनुष्यो ! तुम लोग वाणी-कल्पनामें भूलकर ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिका नाम ले-लेकर जिनको पुकारते, प्रतिपादन करते हो, सो वे कहाँ हैं ? इसका विचार करो ! ई = अबोध मनुष्योंने अनुमान-कल्पनासे, ऊ = ऊपर कोई ईश्वर, खुदादिको कर्त्ता मान करके ले = भ्रम-कल्पनाको दृढ़ कर लिया। इसीसे उसकी प्राप्तिकी मिथ्या आशासे गुरुवा लोगोंकी वाणीका आधार लेकर कर्म, उपासनादि अनेक साधनाओंका व्यवहार करनेमें भूल रहे हैं। वह कल्पना तो जीवके पासहीमें है। बाहर ढूँढ़नेपर कहाँ मिलेगी ? राम-नामका जप, सगुण-निर्गुणकी उपासना, भक्ति कर-करा रहे हैं। परन्तु बाहर राम-नाम क्या है ? गुरुवा लोगोंके अनुमानका सैन = इशारा ही मात्र है। वह जीवकी मानन्दी मिथ्या है। वास्तवमें राम = हृदयस्थ रमैया चैतन्य जीवका नाम = पारख-स्वरूपका बोध ही सत्य है और सब मिथ्या है। इस बातको यथार्थ जाने बिना बहुतसे अबोध मनुष्य भ्रम-भूलमें पड़े, एवं विषय-भोगोंमें भूलकर भटक-भटक करके जड़ाध्यासी होकर संसारमें मर गये। वैसा ही सारा संसार मरता जा रहा है। खानि-वाणीके भवसागरमें डूबकर सब मर रहे हैं। जो पारखबोध प्राप्त करेंगे, वे ही ऐसे भव-सागरसे बचेंगे ॥ १३ ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ २ ॥ ❀ ॥

जीवरूप एक अन्तर बासा । अन्तर ज्योति कीन्ह परकाशा ॥१॥
इच्छारूपि नारि अवतरी । तासु नाम गायत्री धरी ॥२॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः—जीवरूप जो जमा है, याते सब ब्यवहार ॥ जिव अनुमाने सब भयो, खानी बानि बिचार ॥१॥ एक जीव अन्तर मन, जो मानै प्रतिबिम्ब ॥ मानत ही बासा कियो, दूरि पद लाग्यो लिम्ब ॥२॥ बिम्ब ते बिम्बाकार भौ, सोई मायारूप ॥ पक्के से कच्चा भयो, परयो अहन्ता कूप ॥३॥ हन्ता करि इच्छा कियो, नारिरूप कियो ठाढ़ि ॥ गायत्री नाम धराय पुनि, बिप्रीत मनमें बाढ़ि ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जीवरूप = मनुष्यरूप जीवके अन्तर = अन्तःकरण में एक कोई ब्रह्म-ईश्वरादि अनुमानका निवास हुआ। उससे मिलनेकी वासना दृढ़ हुई, तब योगादि साधना करनेसे अन्तर = भीतर त्रिकुटी आदिमें तेज तत्त्वका ज्योति-प्रकाश प्रकट हुआ। उसीको परमात्मा मानकर भासिक जीव मिथ्या भासमें भूला ॥१॥

अथवा जीवका चैतन्य-स्वरूप ही एक-मात्र सत्य जमा है। मनुष्य-देहधारी जो जीव हैं, इन्हींसे तन, मन, वचनादिके सब व्यवहार हो रहे हैं। नरजीवके अनुमानसे ही खानि और वाणी सम्बन्धी सम्पूर्ण विकारका विचार हुआ और हो रहा है ॥१॥ वास्तवमें एक-मात्र सत्य तो चैतन्य जीव ही है। मनुष्यके अन्तर = मनमें ज्योति-

स्वरूप आदि प्रतिबिम्बको ईश्वरादि जो माना, सो मिथ्या है। तो भी मिथ्या मानन्दी करके भ्रमिक मनुष्योंने उसमें निवास किया, भ्रम-धोखेमें पड़ गया। इस कारण अपना पारखपद दूर हो गया और मिथ्या कल्पनाके पदको अपनेमें धारण कर लिया ॥ २ ॥ तन-मनादिरूप बिम्बसे बिम्बका आकार, मनकी मानन्दी और वाणी पैदा हुई। वे ही तन, मन, वाणी आदि मायाके प्रकट रूप हैं। उनमें भूल जानेसे पक्के=विवेक-विचारादि सद्‌गुणोंसे पलटकर कच्चा=भ्रमिक, लोभी, कामी, क्रोधी आदि विकारी हो गया। इस कारण अहङ्कारके अन्धकाररूप कुएमें पड़ गया। अध्यासवश आवागमनके गर्भकूपमें सब जीव पड़ रहे हैं ॥ ३ ॥

अथवा मनुष्य-जीवरूपके एक अन्तःकरणमें पूर्वके विषयाध्यासके वेगसे स्त्री-भोगादिकी वासना उत्पन्न हुई। उसीका चिन्तन करते रहनेसे अन्तर=मनमें स्त्रीदेहके सौन्दर्यकी ज्योति=स्त्रीका रूप जाग्रत् और स्वप्नमें भासरूपसे प्रकाश हुआ ॥ १ ॥

पुरुषके मनमें प्रथम विषय-भोगकी इच्छारूपमें ही स्त्रीकी कामना उत्पन्न हुई। पुनः भोगेच्छासे प्रेरित होकर बाहर किसी स्त्रीको विवाह आदि करके लाकर भोग-विलासमें रत हो गया। वैसे ही प्राचीन कालमें एक स्त्रीको भोगेच्छाके रूपमें लाकर उसका नाम गायत्री रक्खा ॥ २ ॥ पुरुषदेहका अहङ्कार ले करके जब विषय भोगनेकी इच्छा किया, तब किसी एक स्त्रीरूपको कहींसे लाकर अपने पासमें खड़ा किया वा रख लिया। जगत्-व्यवहारके लिए उसका नाम गायत्री रक्खा। पुनः विषय-भोगके लिए विशेष प्रीति उसके प्रति उस भोगी पुरुषके मनमें बढ़ती गई ॥ ४ ॥

अथवा प्रथम तो योगी, ज्ञानीके मनमें इच्छारूपमें ही नारी=वाणी-कल्पना उत्पन्न हुई। पुनः वचन और लिखित रूपमें वेदादिकी रचना हुई। उसी वेद और उसके एक मन्त्रका नाम गायत्री रक्खा गया, जिसे ब्रह्म-गायत्री कहते हैं ॥ २ ॥

तेहि नारिके पुत्र तीनि भयऊ। ब्रह्मा विष्णु महेश्वर नाऊँ ॥३॥

तेहि नारी परसङ्ग भौ, तीन बुन्द भग डार ॥ तब वह रूप विनाश भौ, उपजे तीनिउ बार ॥५॥ ब्रह्मा विष्णु महेश अस, तिनके तीनिउ नाँव ॥

उसी स्त्रीके विषय-सम्भोग-प्रसङ्गमें उसके पतिरूप पुरुषने अध्यासी जीव संयुक्त वीर्यकी तीन बुन्द उसकी भगरूप योनिमें डाल दिया। एक-एक बुन्दमें एक-एक अध्यासी जीव करके तीन जीव जाकर उसके गर्भमें प्रविष्ट हुए। गर्भ-स्थापन होनेके कुछ समय पश्चात् भोग-कर्त्ता पुरुषकी स्थूल देहका रूप तब उसी बीचमें विनाश हो गया। अर्थात् पुत्र उत्पन्न होनेके पहले ही वह पुरुष मर गया। तत्पश्चात् नौ-दश महीनेकी अवधि पूर्ण होनेपर उस स्त्रीके गर्भसे जुड़वे तीन पुत्र क्रमशः उत्पन्न हुए ॥१॥ उन तीनों बालकोंके नाम माताने ब्रह्मा, विष्णु और महेश—ऐसे तीन प्रकारसे रक्खे। उन्हींको पश्चात्‌वाले त्रिदेवके रूपमें श्रेष्ठ मानने लगे।

अथवा उसी वेद-वाणीरूप गायत्री स्त्रीके तीन व्यारिती पुत्ररूपमें "भूः, भुवः, स्वः" उत्पन्न हुए। "भूः" पृथ्वी ब्रह्मा, "भुवः" जल विष्णु, और "स्वः" अग्नि महेश्वरके रूपमें, ऐसे तीन नाम रक्खे गये ॥ ३ ॥

फिर ब्रह्मै पूछल महतारी। को तोर पुरुष केकरि तुम नारी ?॥ ४॥

जीवमुखः—फिर ब्रह्मा पूछन लगे, टेकि जननि के पाँव ॥६॥ कौन तुम्हारो पुरुष है, केकरि हो तुम नारि ? ॥ यह संशय मैं पूछहूँ, मों प्रति कहो बिचारि॥७॥

जीवमुखः—युवक होनेपर अपने पिताका परिचय न जाननेसे संशयग्रस्त होकर, फिर एक समयमें अपनी माताके पाँव पड़कर ब्रह्मादि जाकर पूछने लगे—हे माता ! तुम्हारे पतिरूप पुरुष वा हमारे पिता कौन हैं ? और तुम किसकी स्त्री हो ? वा हम किसके पुत्र हैं ? यही संशय मुझे हो रहा है। इससे मैं तुमसे पूछता हूँ। सो मेरे प्रति इस बातका रहस्य यथार्थ कहो ! जिसे विचार करके मैं सुखी हो जाऊँ ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथवा पुनः ब्रह्माने पूछा कि हे माताजी ! आपके इष्टदेवरूप परमपुरुष परमात्मा कौन हैं ? और आप किसकी उपासना करनेवाली उपासिकारूप भक्तिनी हैं ? सो कहो ! ॥ ४ ॥

तुम हम हम तुम और न कोई। तुमहिसे पुरुष हमें तोरि जोई ॥५॥

मायामुख; माता बचनः—तुम हम हम तुम और नहीं, निश्चय हृदय बिचारि ॥ तुमहिं सरीखे पुरुष जग, हमहिं सरीखी नारि ॥ ८ ॥

मायामुखः—ब्रह्माकी माता कहती है—हे ब्रह्मा ! प्रत्यक्षमें तुम पुरुष देहधारी हो और हम स्त्री-देहधारी हैं। इसलिए हम स्त्रीरूपमें हैं और तुम पुरुषरूपमें हो। यह तो सन्मुखमें दीख ही रहा है। इसके सिवाय और कोई पुरुष सत्य नहीं है, जिसे मैं तुम्हें बताऊँ। अब तुम भी इस रहस्यमयी बातको विचार करके हृदयमें निश्चय करो ! वास्तवमें सारे संसारमें तुम्हारे समान ही सब पुरुष-देहधारी हुए और हैं और वैसे ही सब स्त्रियाँ भी हमारे समान ही प्रत्यक्ष दीख रही हैं। इसलिए तुम ही हमारे पुरुष हो और मैं ही तुम्हारी जोई=स्त्री हूँ। इस बातको फिरसे समझो ! ॥ ८ ॥

अथवा तुम जीव हो और हम ब्रह्म हैं। फिर हम कारण हैं, तुम कार्य हो। इसके अतिरिक्त संसारमें और कोई नहीं है। तुमसे ही पुरुष और हमसे ही प्रकृति हुई है। वास्तवमें हम-तुम एक ही ब्रह्म-स्वरूप हैं। उसमें प्रकृति-पुरुषका द्वैतभाव भी नहीं ठहरता है; इत्यादि ॥ ५ ॥

साखीः—बाप पूत की एकै नारी। एकै माय बियाय ॥
ऐसा पूत सपूत न देखा। जो बापहि चीन्है धाय ॥ २ ॥

साखी :—पुरुष कहिये बापको, पुत्रहु पुरुष कहाय ॥
नारी कहिये स्त्रीको, माता नारि कहाय ॥ ९ ॥

मायामुख; माता-बचनः—पुनः ब्रह्माको समझाकर माता कहती है—पिता और पुत्रकी स्त्री तो एक समान ही होती हैं। एक-सी मातारूप स्त्रीने ही पिता और पुत्र, दोनोंको बियाय=उत्पन्न किया है। संसारमें जैसे पिताको पुरुष कहते हैं, वैसा ही

पुत्र भी पुरुष ही कहलाता है। उसी प्रकार जैसे अपनी विवाहिता स्त्रीको नारी कहते हैं, वैसा ही माता भी नारी ही कहलाती है। इस कारण तुम्हारे पिताकी और तुम्हारी भी मैं एक ही नारी हूँ। एक ही मातारूपमें मैंने तुम तीनोंको उत्पन्न किया है। अब ऐसा सपूत पुत्र मैंने नहीं देखा, जो बापको धायके चीन्हैं ॥

अथवा जिसके वीर्यसे गर्भ-स्थापन होता है, वह बाप; और पुरुष-देहका चिन्ह—लिङ्ग इन्द्रियादि संयुक्त उत्पन्न होनेवाला पुत्र; इन दोनोंका उत्पत्ति-स्थान नारीरूप योनि-चक्र तो वही एक है। वही एक योनि-चक्रने मातारूपमें पिता—पुत्र दोनोंको उत्पन्न किया है। ऐसा सपूत पुत्र तो मैंने नहीं देखा—जो सर्वथा भग-भोगोंसे जीवन-पर्यन्त न्यारा होकर देहोत्पत्तिके कारणरूप पिताको विवेकसे दौड़कर पहिचाने—इत्यादि ॥ ६ ॥

अथवा बाप=ब्रह्म, पुत्र=जीव; इन दोनोंको विभेद करानेवाली नारी=माया एक ही है। एक ही अनिर्वचनीय मायाने सब सृष्टिको उत्पन्न किया है। अद्वैत-दृष्टिसे देखनेवाले ऐसे सत्पुत्र नहीं दीखते, जो बापरूप आदिकारण विराट् ब्रह्मको ब्रह्मज्ञानकी साधनाद्वारा धायके पहिचानें, अपने-आपमें अद्वैत ब्रह्म निश्चय करके निश्चल हो रहें; इत्यादि ॥ २ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३ ॥ ❀ ॥

प्रथम आरम्भ कौनको भयऊ? दूसर प्रगट कीन्ह सो ठयऊ? ॥१॥
प्रगटे ब्रह्मा विष्णु शिव शक्ती। प्रथमें भक्ति कीन्ह जिव उक्ती ॥२॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः—प्रथम आरम्भ भयो कौनको?, ताकर करहु बिचार॥ दूसर प्रगट कौने किया?, जाते सब ब्यवहार ॥१॥ प्रगटे ब्रह्मा विष्णु शिव, ता शक्ती सो जान॥ प्रथमें भक्ति कीन्ह तिन, करि आपन अनुमान ॥२॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे कर्त्तावादी! अनादिकालके संसारको जब तुम किसी कर्त्तासे उत्पन्न हुआ कहते हो, तब यह बतलाओ कि सर्वप्रथम आरम्भ कौन वस्तुका? किससे? कैसे हुआ? इस बातका शान्त चित्तसे निष्पक्ष होकर विचार करो! यदि जड़की उत्पत्ति हुई कहोगे, तो जड़ पञ्च तत्त्व अनादिसे हैं। फिर इनका उपादान कारण और कौन था? और अविनाशी चैतन्य जीव किसीसे उत्पन्न हुए; ऐसा नहीं ठहरता है। जड़ और चैतन्यके स्वरूपको छोड़कर और दूसरा किसने क्या प्रकट किया? सो यथार्थ ठहराओ! यदि जड़—चैतन्यका मूलस्वरूप नहीं था, तब दूसरा माने हुए कर्त्ताने कहाँ ठहरकर, उनको कहाँसे? कैसे उत्पन्न किया? सो कहो! खानि—वाणीके सम्पूर्ण व्यवहार इसी चैतन्य जीवसे हो रहे हैं। जीव स्वयं अनादि नित्य—सत्य वस्तु है। उसीसे सब वाणी-कल्पनादि उत्पन्न हुई हैं। इस बातका विचार करो! ॥१॥ अनादिकालके संसारमें प्राचीन समयमें जड़ाध्यासी जीव ही रजोगुणी ब्रह्मा, सत्त्वगुणी विष्णु, तमोगुणी शिव और शक्तिरूपिणी स्त्रीरूप माता और पिताके सम्बन्धसे उत्पन्न हुए। उसी विषय-वासनारूप इच्छाशक्ति संस्कारसे चारों

खानिके जीव देह धारण करके उत्पन्न हो रहे हैं। सो इस बातको ठीकसे जानलो! प्रथमें = मनुष्य-जन्ममें ब्रह्मादि त्रिगुणीजनोंने प्रथम भी अपने ऊपर ईश्वर-ब्रह्म कर्त्तादि अनुमान करके भक्ति, योग, ज्ञानादिकी साधना की-कराई थी। सो अब भी मानव-जीव उनके उक्तीरूप वाणी-कथनको प्रमाण मान करके अपने अनुमानकी भक्ति आदि साधनामें लग-लगाके भूले पड़े हैं ॥ २ ॥

प्रगटे पवन पानी औ छाया। बहु बिस्तारके प्रगटी माया ॥३॥
प्रगटे अण्ड पिण्ड ब्रह्मण्डा। पृथ्वी प्रगट कीन्ह नौ खण्डा ॥४॥

पाँच तत्त्व सब प्रगटे, अण्ड पिण्ड ब्रह्मण्ड ॥
बहु बिस्तारिक रूप भौ, प्रगटी पृथिवी नौ खण्ड ॥ ३ ॥

अनादि तत्त्वोंके मूल कारणका अभाव कभी न होनेसे उनकी उत्पत्तिका कथन यहाँपर नहीं किया है; किन्तु बाहर पाँचों तत्त्वोंके सम्बन्धसे यथा-समय सब कार्य प्रकट होते रहते हैं। वैसे ही जड़ाध्यासी जीवके स्थूल देह धारण करनेपर पवन= प्राणादि वायु, पानी=रस, रक्तादि धातु और छाया=सर्वाङ्गकी त्वचा, रोमादि उत्पन्न होते हैं। वैसे ही चारों खानियोंमें बहुत विस्तार करके माया=देह धारण करके जीव प्रकट होते हैं और अध्यासवश आवागमनमें भटकते रहते हैं।

अथवा मनुष्योंमें पवन=प्राणवायुको ऊपर चढ़ानेवाले योगी, फकीर आदि, पानी=गङ्गादि नदियोंके उपासक कर्म-मार्गी लोग और छाया=अष्ट प्रतिमाओंका छायाचित्र बनाकर पूजा करनेवाले भक्त लोग अपनी साधनाके साथ समयानुसार प्रकट होते हैं। उनके द्वारा माया=अनेक वाणी-कल्पना बहुत विस्तार करके उत्पन्न हुई और हो रही हैं ॥३॥ बाहरकी पृथ्वी आदि तो अनादि हैं। उनकी उत्पत्ति कही नहीं गई है। वास्तवमें अनेक राजा लोग अपनी शक्ति प्रकट करके भूगोलके कई टुकड़े करके बटवारा कर लिये। उन्हीं लोगोंने सात द्वीप नौ खण्ड पृथ्वीका सरहद प्रकट कर लिया।

अथवा अण्डाकार वीर्यसे पिण्डरूप शरीर और ब्रह्माण्डरूप मस्तक जीवकी सत्तासे उत्पन्न हुआ। इसी पृथ्वीरूप शरीरमें पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ और हाथ, पाँव, लिङ्ग, गुदाको मिलाकर नौ खण्डको जीवने उत्पन्न किया। पुनः पिण्डरूप शरीरके सम्बन्धमें एक अण्डरूप ॐकार और ब्रह्माण्डरूप अनेक प्रकारकी वाणी उत्पन्न किया। नौ व्याकरण आदि कई खण्ड वाणीजाल भू-मण्डलमें उत्पन्न करके फैला दिया। इस प्रकार अण्ड, पिण्ड, ब्रह्माण्डके बहुत विस्तारका रूप नौ खण्ड पृथ्वीमें मनुष्योंके द्वारा समयानुसार उत्पन्न हुआ और हो रहा है ॥ ३ ॥ ४ ॥

प्रगटे सिद्ध साधक संन्यासी। ई सब लागि रहे अबिनासी ॥५॥
प्रगटे सुर नर मुनि सब झारी। तेहिके खोज परे सब हारी ॥६॥

प्रगटे योगी भक्त सब, ज्ञानी स्वयं अखण्ड ॥ ई सब लागि रहे हैं, अबिनासी

के डण्ड ।।४।। देव ऋषि और मनुज सब, प्रगट भये हैं झार ॥ खोजत खोजत ब्रह्माको, सबै रहे हैं हार ॥ ५ ॥

अनादिकालके संसारमें यथा-समय कपिल मुनि आदि सिद्ध, नौ नाथ आदि योगी, एवं चौरासी सिद्ध भी प्रकट हुए। साधक=अनेक साधनाएँ करनेवाले भक्तलोग हुए और डण्डी-मुण्डी आदि बहुत-से संन्यासी भी उत्पन्न हुए और अभी हैं। वे सब योगी, ज्ञानी, भक्त लोग स्वयं स्वरूप अखण्ड चैतन्यके बोध-विचार बिना कोई एक अविनाशी ब्रह्म-परमात्मा मानकर, उसकी प्राप्तिके वास्ते अनेक कष्टकर साधनाओंके दण्ड भोगनेमें लगे और लग रहे हैं। बिना पारख अविनाशी जीव वाणीजालमें बँधा पड़ा है ॥४॥४॥ सुर=देवता वा सत्त्वगुणी लोग, नर=मनुष्य और ऋषि-मुनि, तपस्वी लोगोंसे लेकर अनेक प्रकारकी साधनाएँ करनेवाले मनुष्य उत्पन्न हुए। झारी=वे सम्पूर्ण, तेहिके=उसी कल्पित ब्रह्म-ईश्वर, परमात्माको दशों दिशाओंमें खोजते-खोजते उसके पीछे पड़े। तथापि उसका पता न लगनेसे अन्तमें सब हार मानकर भव-बन्धनके चक्रमें ही पड़ते जा रहे हैं; बिना पारख ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः—जीव शीव सब प्रगटे। वै ठाकुर सब दास ॥
कबीर और जाने नहीं। एक राम नामकी आस ॥ ३ ॥

साखीः—जीवसे प्रगट शिव भये, अब शिव ठाकुर जिव दास ।।
अबोध जीव कहत हैं, मोहिं राम नाम की आस ॥ ६ ॥

अनादिकालके संसारमें जड़ाध्यासी जीव ही शिव=महादेव, ब्रह्मा, विष्णु आदिकी देह धारण करके उत्पन्न हुए। अथवा जीवरूप मनुष्यसे ही मानन्दी कर-करके कोई शिवरूप ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादि वाणीकी कल्पना उत्पन्न हुई। इस प्रकार सब मत-पन्थ, ग्रन्थ जीवहीसे प्रकट हुए हैं। परन्तु अब जीव स्वयं ऐसे भ्रमिक अबोध बन गये कि अपनी मिथ्या मानन्दीरूप ब्रह्म, ईश्वरादि; उनको शिव-स्वरूप कल्याणकारी ठाकुर=मालिक, परमपति अपनेसे भिन्न मानकर आप उनके दास, दीन-हीन-मलिन, लाचार बद्ध हो रहे हैं। अथवा अपने ही पत्थरादिकी जड़ मूर्ति बनाकर, उसे ठाकुर मानकर पूजते, शिर नवाते फिरते हैं। जीवसुखः—कबीर=अबोध अज्ञानी भ्रमिक जीव कहता है—हे भाई! मैं तो और भक्ति, योग, ज्ञानकी ज्यादा बात नहीं जानता हूँ, मुझे तो सगुण-निर्गुण परमात्माका रामनाम स्मरण करने-मात्रका एक आशा-भरोसा, आसरा है। फिर वे चाहें जैसा करें! उसीमें हम राजी हैं; इत्यादि ॥ ३ ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४ ॥ ❀ ॥

प्रथम चरण गुरु कीन्ह विचारा। कर्त्ता गावै सिरजनहारा ॥१॥

टीका; गुरुमुख; दोहाः-प्रथम गुरू ब्रह्मा बने, असकै कीन्ह बिचार ॥
गावन लागे प्रेमसे, कोई एक सिर्जनहार ॥ १ ॥

गुरुमुखः—प्रथम चरण = मनुष्य-देहमें सर्वप्रथम प्राचीनकालमें गुरु = पण्डितरूप ब्रह्मा ही उस समय सबका गुरु बनकर ऐसा अनुमान-कल्पना करके विचार किया कि सम्पूर्ण जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला कोई एक जगत्‌कर्त्ता सिरजनहार = ब्रह्म-परमात्मा अवश्य ही है। अतः परमानन्द-प्राप्तिके लिए उनके भक्ति-भाव, ध्यान-धारणादि कर्म-साधन अवश्य ही करना चाहिए! तभी वे मिलेंगे। ऐसा कथन करके खूब प्रेमसे उनकी स्तुति, कीर्तन, महिमादि गाने और वर्णन करने लगे। उनके पीछे और सब लोग लगते गये ॥ १ ॥

कर्महि कै कै जग बौराया। शक्ति भक्ति कै बाँधेनि माया ॥२॥
अद्‌बुदरूप जातिकी बानी। उपजी प्रीति रमैनी ठानी ॥३॥

कर्त्ता-प्राप्तिके कारणे, बहुतक कर्म लगाय ॥ तेहि कर्मनमें बँधे जिव, सबै गये बौराय ॥२॥ भक्तिरूपी मायासे, शक्त जीव भये बन्ध ॥ घूमन लागे बावरे, कछू न सूझै अन्ध ॥ ३ ॥ अद्‌बुदरूप अपार अस, कहै ब्रह्माकी बानि ॥ तेहि पद प्रेम प्रवाहते, भक्ति सबन मिलि ठानि ॥ ४ ॥

ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित कर्त्ता-प्राप्तिके वास्ते ब्रह्मादि गुरुवा लोगोंने बहुत प्रकारके कर्मादि मार्गोंमें और जीवोंको भ्रमा-भुलाकर लगाया। उन्हीं कर्मके जालमें सब जीव जा-जा करके फँसकर बँध गये। अनेक प्रकारके शुभाशुभ कर्मको ही कर-करके बिना विचार सब जगतके जीव बौरा करके पागलके समान भटक रहे हैं ॥२॥ माया = छली-कपटी भ्रमिक गुरुवा लोगोंने कर्म और नवधा भक्तिरूपी वाणीके माया-जालमें अबोध मनुष्य जीवोंको खूब दृढ़तासे अपनी शक्ति भरतक बाँध दिया। विवेक-विचाररूप ज्ञानशक्तिसे हीन अबोध जीव भी खानि-वाणीमें आसक्त हो-होकर अपनी खुशीसे ही सख्त बँध गये और भी बँधते जा रहे हैं। इस प्रकार भ्रमिक पागल बने हुए लोग जहाँ-तहाँ घूमने, भटकने, ठोकरें खाने लगे। तथापि पारखहीन उन अन्धोंको अपना हानि-लाभ कुछ नहीं सूझता है। भव-बन्धनमें ही सब भूले पड़े हैं ॥ ३ ॥ २ ॥ ब्रह्माकी वेदादि वाणीने ऐसा कहा है कि अद्‌बुद = आश्चर्यमय मन, बुद्धि, वाणीसे परे अगम-अपार; ऐसा ब्रह्म-परमात्माका स्वरूप है। जाति = ब्रह्म-कर्त्ता-सिद्धान्तकी ऐसी-ऐसी रोचक वाणी सुन-सुन करके सब श्रोता मनुष्योंको ब्रह्म-कर्त्ता प्राप्ति करनेके लिए अत्यन्त प्रेम-प्रीति उत्पन्न हुई। उसी पदके प्रेम-प्रवाहमें बहकर सबने रमैनी = स्तुति, प्रार्थना, भक्ति-भाव, साधन, ध्यानादिमें रमकर, उसीसे परमात्मा-प्राप्तिका निश्चय कर लिया। दृढ़तासे सब मिलके कर्म, भक्ति आदि करनेमें लगे और भी लग रहे हैं ॥ ४ ॥ ३ ॥

गुणी अनगुणी अर्थ नहिं आया। बहुतक जने चीन्हि नहिं पाया ॥४॥
जो चीन्हैं ताको निर्मल अङ्गा। अनचीन्हें नर भये पतङ्गा ॥५॥

गुणी जीव खोजन लगे, अनगुणिया अनुमान ॥ बहुतक चीन्हि न

पाइया, तब हारि कहा निर्बान ॥ ५ ॥ जो यह धोखा चीन्हि है, पारख ताको अङ्ग ॥ अनचीन्हें यह जगत जीव, जिमि दीपक ज्योति पतङ्ग ॥ ६ ॥

गुणी = त्रिगुणी नरजीव तो कर्म, भक्ति, योगादि साधनाएँ करके परमेश्वरको पिण्ड–ब्रह्माण्डादिमें खोजने लगे; और दूसरी ओर अनगुणी = त्रिगुणसे परे होनेवाले ज्ञानी लोग कोई एक निर्गुण–निराकार, अद्वैत परब्रह्म है, ऐसा अनुमान–कल्पनाका दृढ़ निश्चय कर लिये। परन्तु निर्गुण–निराकार, अगम–अपार अद्वैत ब्रह्म माने हुए शब्दका खाश अर्थ भी कुछ नहीं निकला और अर्थ = कार्य-सिद्धि, कल्याण-प्राप्तिका प्रयोजन भी हाथमें कुछ नहीं आया। क्योंकि अगम–अपार ब्रह्मकी प्राप्ति अन्ततक किसीको नहीं हुई। बहुत-से ज्ञानी लोगोंने बहुत युक्ति–प्रयुक्ति, साधनाएँ करनेपर भी अद्वैत ब्रह्मको पहचान नहीं पाया, तब अन्तमें हार मानकर उसे आकाशवत् व्यापक निर्वाण, निर्लिप्त, अथाह कहकर सन्तोष कर लिया। परन्तु यह मिथ्या मानन्दी हम अबोध जीवोंका ही मिथ्या भ्रम–धोखा है, ऐसा यथार्थ भेद भी अन्ततक उन किसीने पहचान नहीं पाया। इसीसे उन किसीका भव-बन्धन भी नहीं छूटा ॥ ४ ॥ ५ ॥ पारखी साधु–गुरुके सत्सङ्गद्वारा जो इस वाणी–कल्पनाके भ्रम-धोखेको यथार्थ पहचानकर परित्याग करेंगे, उनका अन्तःकरण निर्मल होकर अङ्ग = निज पारख-स्वरूपमें स्थिर हो रहेंगे। उनका अन्तरङ्ग पारखमें ही रहेगा। वे सब भव-बन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त होंगे। और जो वाणी–कल्पना, अनुमान, भ्रमको न पहचाननेवाले, निज पारख-स्वरूपको न चीन्हनेवाले, वैसे अनचीन्हे जगत्के सम्पूर्ण जीव, जैसे दीपककी ज्योतिमें जा–जाकर पतङ्ग कूदकर मर जाता है, वैसे ही वाणी–कल्पनाकी ज्योतिमें और स्त्री-विषयादिकी ज्योतिमें भ्रम–धोखेसे कूदकर जड़ाध्यासी हो मरके आवागमनमें पड़े रहते हैं। अतः उसे पहचानकर न्यारा होना चाहिए ! ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः—चीन्हि चीन्हि का गावहु बौरे ? बानी परी न चीन्हि ॥
आदि अन्त उतपति प्रलय । आपूही कहि दीन्ह ॥४॥

साखीः—चीन्हि चीन्हि का गावहु बौरे ?, बानी परी न चीन्ह ॥
आदि अन्त उतपति परलय, आपू ही कहि दीन्ह ॥ ७ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे बौरे ! पागलके समान बनकर वेद–शास्त्रादि-की वाणी चीन्हि–चीन्हि = चुन–चुन करके संग्रहकर—ब्रह्म–ईश्वरादिको चीन्हो ! पहचानो ! ऐसा क्या गाते हो ? जो आकाशवत् निर्गुण-निराकार है, उसको कोई कैसे चीन्हेगा ? कैसे दर्शन करेगा ? कि मिलेगा ? गुरुवा लोगोंकी मिथ्या कल्पनाकी वाणी तो तुम्हारे पहचाननेमें ही नहीं आई। उन लोगोंने जिसे निर्गुण–निराकार अगम–अपाररूपमें निषेध करके अवस्तु ठहराई है, उसे तुम भ्रमसे सबसे बड़ी सार वस्तु मान लिये हो। मिथ्या कल्पनासे उसीको सब जगत्का आदि–अन्त, उत्पत्ति–प्रलय करनेवाला भी भ्रम–धोखेसे अपने–आप ही वर्णन करके मान लिये। परन्तु आदि =

जगत्‌से, अन्त = ब्रह्मतक, उत्पत्ति = जन्मसे, प्रलय = मृत्युतक सब खानि-वाणीकी मिथ्या मानन्दी करनेवाला तो तुम अपने-आप ही चैतन्य-स्वरूप सत्य हो। अपने-आपको न पहचानकर, गुरुवा लोगोंने जैसा मिथ्या कथन कहकर सुना दिया, सो उसीको तुमने सत्य मान लिया। मिथ्या वाणी अभीतक तुम्हारे पहचाननेमें नहीं आई। अब मैं तुम्हें सचेत करके कह देता हूँ—शरीरका आदि-अन्त, उत्पत्ति-प्रलय तो तुम्हारे अविनाशी रहनेसे ही होता है। परन्तु जड़-चैतन्यके स्वरूपका आदि-अन्त, उत्पत्ति-प्रलय कभी नहीं होता है। वे अनादि, अनन्त अक्षय अखण्ड ही रहते हैं। ऐसा जानकर पारखबोध प्राप्त करके भ्रम-भूल, जड़ाध्यासको परित्यागकर निज स्वरूपमें स्थिर हो रहो ! ॥ ७ ॥ ४ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ ५ ॥ ❁ ॥

कहाँलों कहौं युगनकी बाता। भूले ब्रह्म न चीन्हैं बाटा ॥१॥
हरि हर ब्रह्मा के मन भाई। बिबि अक्षर ले युक्ति बनाई ॥२॥

टीका; गुरुमुख दोहाः—कहाँलों कहौं युगन की, बात रची जो ठाट ॥ भूले ब्रह्म कहाय जिव, चीन्हें नहिं निज बाट ॥१॥ हरि हर ब्रह्माके मन, आय गई यह बात ॥ राम अस दुइ अक्षर ले, रचिया जग उत्पात ॥ २ ॥

गुरुमुखः—अभी वर्त्तमानमें ही मनुष्य भूले, पहले नहीं भूले थे—ऐसी बात नहीं है। अनादिकालसे ही पारखबोधके बिना सब जीव प्रवाहरूपसे भूलते चले आ रहे हैं। इसलिए मैं युगानुयुगकी बातको अब कहाँतक कहूँ? क्योंकि युग-युगरूप प्राचीनकालसे ही वाणी-कल्पनाकी ठाट = तड़क-भड़क, ढाँचा, समूह अत्यधिकरूपसे रचना करते ही चले आ रहे हैं। उसी अनुमान-कल्पनाकी वाणी प्रमाणसे 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर, ब्रह्मज्ञानी कहलाकर निज पारख-स्वरूपको जीव भूल गये। इसलिए निज स्वरूपकी स्थिति करानेवाले बाटा = हंस-मार्गको उनमेंसे किसीने भी नहीं पहचाना। अब भी वैसे ही ब्रह्म-भ्रममें भूलनेवाले मुक्ति-मार्गको नहीं पहचानते हैं ॥१॥ विष्णु, महादेव और ब्रह्मादि त्रिगुणी मनुष्योंके मनमें अनुमान-कल्पनाकी भावनासे यही बात उत्पन्न हुई कि ब्रह्म-परमात्मा प्राप्ति करनेके लिए कुछ उपाय होना चाहिए ! तब बिबि अक्षर = दो-दो अक्षर; जैसेः—राम, वोहं, सोहं, ऐसे दो अक्षरकी कल्पना करके श्वासके साथ लक्ष्य लगाकर नाम-स्मरण करके वृत्ति लय करना; ऐसी युक्ति उन लोगोंने बनाई। फिर उस युक्तिके बारेमें अनेक वाणीकी रचना करके जगत् में उत्पन्न कर दिया। उन्हीं दो अक्षरोंमें मन लगानेसे परमात्मा प्राप्त होते हैं; इत्यादि युक्ति बतलायी। ऐसे जगत्‌में उत्पात = उपद्रव, हलचल करानेवाली वाणीकी रचना हुई ॥ २ ॥

बिबि अक्षरका कीन्ह बँधाना। अनहद शब्द, ज्योति परवाना ॥३॥

अक्षर पढ़ि गुनि राह चलाई । सनक सनन्दनके मन भाई ॥४॥

दुइ अक्षर बन्धान करि, माया ब्रह्म मिलाय ॥ अक्षर पढ़ि गुनि राह तब, दीन्हीं आप चलाय ॥ ३ ॥ सनक सनन्दनके हिये, राच रही यह बात ॥

बिबि अक्षर = वोहं, सोहं, राम; ऐसे दो-दो अक्षरकी कल्पना करके मानसिक-रूपसे श्वासोच्छ्वासके साथ लक्ष्य बन्धान कर दिये। 'सो, वो, रा'—ये तीन अक्षरको ब्रह्म मानकर 'हं, हं और म' ये तीन अक्षरको माया समझकर उसी ब्रह्ममें मायाको ले जाकर मिला दिये। अथवा अनुमानरूप ब्रह्ममें मन-मायाको मिला दिये। वृत्ति स्थिर होनेपर दशनाद अनहद शब्दकी ध्वनि और ज्योति-प्रकाश देखनेमें आया। उसीको अनहद = जिसका हद नहीं, वैसा शब्द-ब्रह्म और ज्योति-स्वरूप परमात्मा ठहराकर उसी भ्रम-भासको परवाना = प्रमाण करके मान लिये ॥३॥ भक्ति, योग, ज्ञान प्रतिपादक वेदादि वाणीके अक्षरोंको पढ़-गुन करके एवं वोहं, सोहं, राम आदि दो अक्षरोंको श्रवण-मनन करके ब्रह्मादि त्रिदेवोंने संसारमें कर्मादि त्रिविध मार्ग चला दिये। आप भी उन्हींमें चले, औरोंको भी उन्हींमें चलाये। तदनन्तर उनके शिष्यरूप सनक, सनन्दन आदि साधक लोगोंके मनमें भी वही उनकी भ्रमिक बात अच्छी लगी। खूब रुचि करके उन लोगोंने उस बातको स्वीकार कर लिया ॥ ४ ॥

वेद कितेब कीन्ह विस्तारा । फैल गैल मन अगम अपारा ॥५॥
चहुँ युग भक्तन बाँधल बाटी । समुझि न परलि मोटरी फाटी ॥६॥
भय-भय पृथ्वी दहुँ दिश धावै । अस्थिर होय न औषध पावै ॥७॥

वेद कितेब विस्तार करी, तेहिको गावै नाथ ॥ ४ ॥ फैले अगम अपार कही, काहु न पावै बाट ॥ चारिउ युगके भक्त सब, बाँधन लागे घाट ॥५॥ समुझि परी नहिं काहुको, फाटा भरम अपार ॥ भय-भय जिव धावन लगे, थीर न पावै पार ॥ ६ ॥

हिन्दुओंने चार वेद और मुसलमानोंने चार कितेबकी कल्पित वाणीका विस्तार कर दिया। पुनः उन्हीं वाणीके प्रमाणसे कोई एक ईश्वर, खुदा सब जगत्का मालिक, नाथ = परमपति है; ऐसा वर्णन, गायन करने लगे। उसका गम नहीं पाया, तब अगम कहा। जब पार नहीं पाया, तब अपार बतलाया। उसी भ्रम, धोखा, अनुमानमें सबका मन खूब विस्तारसे फैल गया। इस कारण विवेक-विचारादि मुक्तिदायी हंस-मार्ग उन किसीने भी नहीं पाया और नहीं पाते हैं ॥५॥ इस प्रकार माने गये चारों युगोंके सब योगी, ज्ञानी, भक्तजन ईश्वरादि-प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारके बाटी = मार्ग और विभिन्न मत-पन्थोंके घाट बनाकर अपने सहित सब जीवोंको उन्हींमें बाँधते ले गये। परन्तु यह वाणी-खानिका भ्रम-धोखा हम जीवोंको बन्धनकारी दुःखदायी है, ऐसा उन किसीको भी ठीकसे समझ नहीं पड़ी। इस कारण मुक्तिकारी हंसपद-

की मोटरी = गठरी बिल्कुल फटके विनाश हो गई। अपार भ्रम-भूलमें पड़कर सब जीव भव-बन्धनमें बँधे पड़े हैं ॥ ६ ॥ भयानक वाणी सुनकर भयभीत, चञ्चल हो-होकर ईश्वरादि-प्राप्तिके लिए भय-भय = भाग-भाग करके घूम-घूमकर पृथ्वीके दशों दिशामें अबोध नरजीव दौड़ पड़े। और कोई पण्डित लोग पृथ्वीरूप स्थूल देहके आधारसे दहुँ दिश = चारवेद, षट्शास्त्ररूप दश दिशाओंमें वाणी-कल्पनाके पीछे दौड़ लगाने लगे। तथापि उनका मुक्तिका कार्य सिद्ध नहीं होता है। जन्म-मरणादि रोग मिटानेवाली पारखबोधरूपी महौषधि वे कहीं नहीं पाते हैं। इसलिए जीवन्मुक्तिकी स्थिरता भी उनकी नहीं होती है। इसीसे वे कोई आवागमनसे पार हो नहीं पाते हैं; बिना पारख ॥ ७ ॥

होयबिहिस्त जोचित्त नडोलावै। खसमहि छाड़ि दोजखको धावै ॥८॥
पूरब दिशा हंस गति होई। है समीप सन्धि बूझै कोई ॥९॥

मायामुखः—होय मुक्ति यह जीवकी, जो कहुँ चित न डोलाय ॥ राम अस खाविन्द छाड़िके, नर कहाँ पेटको धाय ? ॥ ७ ॥ पूर्व सनातन ब्रह्म जो, परमहंस गति होय ॥ है समीप सो कर्त्ता, सन्धि बूझै जो कोय ॥ ८ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—जो भक्तगण संसारमें इधर-उधर चित्त न डोलाकर एक भगवान्‌की भक्तिमें ही चित्तको एकाग्र करके लगाये रक्खेंगे, उनको अन्तमें बिहिस्त = सात स्वर्गादि लोकके सुख प्राप्त होते हैं। जो अन्यत्र कहीं भी चित्तको चञ्चल न करके परमात्मामें ही चित्त लगाया रहता है, उस जीवको चार मुक्तिकी प्राप्ति भी हो जायगी। खसम = मालिक, परमपति परमात्मा रामके भक्ति-भावको छोड़नेवाले अन्तमें दोजख = नरकलोकोंमें ही चले जायेंगे। अतएव राम ऐसे बड़े मालिककी भक्तिको छोड़कर हे नरजीव ! तुम व्यर्थ ही कहाँ पेट भरनेकी चिन्तासे पेट-धन्धाके लिए इधर-उधर दौड़कर जाते हो? ऐसा करनेसे नरकमें पड़ोगे। रामकी भक्ति करनेसे सात स्वर्ग और मुक्तिकी प्राप्ति होगी। अतः भक्ति मार्गमें लगो ! ॥८॥ सबसे पूर्व सनातन ब्रह्म जो है, सो दशों दिशाओंमें परिपूर्ण व्यापक है। उस अद्वैत ब्रह्मका बोध होनेपर परमहंसकी गतिसे मुक्ति-स्थिति हो जाती है। सर्व-व्यापक अद्वैत ब्रह्म सबके समीप हृदयमें ही भरा हुआ है। सो वही ब्रह्म विश्वका कर्त्ता है। इस बातकी सन्धि = भेदको जो कोई समझ लेता है, वह ब्रह्म स्वरूप निर्बन्ध मुक्त हो जाता है। फिर उसे कभी द्वैत-भावकी स्फुरणा नहीं होती है; इत्यादि ॥ ९ ॥

भक्ता भक्तिक कीन्ह सिङ्गारा। बूड़ि गैल सब माँझल धारा ॥१०॥

गुरुमुखः—यह मायाका बचन सुनि, भक्तन कीन्ह सिङ्गार ॥
भक्ती नारि कहाय के, बूड़े मनकी धार ॥ ९ ॥

गुरुमुखः—ऊपर कहे अनुसार सात स्वर्ग, चार मुक्ति और ब्रह्म-प्राप्ति होनेका;

ऐसे मायारूप गुरुवा लोगोंके रोचक वाणी-वचन सुन करके अनेक भावुक भक्त लोगोंने अपनेमें नवधाभक्ति भावके और प्रेम-लक्षणा भक्तिके अनेक स्वाँग धारण करनेका अपनी देहमें सर्वाङ्ग श्रृङ्गार धारण कर लिया। कोई एक ईश्वरादि अनुमानका पति बनाकर भक्ति-भावसे अपने-आपमें स्त्री-भाव धारण करके, भक्तरूप नारी कहलाकर खूब भूल गये। इस प्रकार वे सब माझल=हृदयके मध्य रहनेवाले मनकी मिथ्या मानन्दीके बीच धारामें जड़ाध्यासी होकर भ्रममें खूब डूब गये। अन्तमें आवागमन-चक्रमें पड़कर दुःखभोक्ता हुए और हो रहे हैं; बिना विचार ॥ १० ॥

साखीः—बिन गुरु ज्ञान दुन्द भई। खसम कही मिलि बात ॥
युग-युग सो कहवैया। काहु न मानी बात ॥६॥

साखीः—गुरु नहिं ज्ञान दुन्द मची, खसम गहा इन हाथ ॥
युग-युग कहनहार सो, मानत कोइ नहिं बात ॥ १० ॥

पारख गुरुका ज्ञान=पारखबोध हुए बिना सम्पूर्ण संसारमें मत-पन्थ, ग्रन्थ, मजहब आदिकें खैंचतानका दुन्द=झगड़ा तो खूब हो रहा है। परन्तु वे सब मिलकर अन्तमें यही एक बात कहे कि खसम=ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कोई एक जगत्का कर्त्ता हमारा मालिक अवश्य है। उसकी प्राप्तिके लिए वे अनेक मिथ्या साधनाओंमें लगे। गुरुज्ञानरूप पारखबोध न होनेसे ऐसे भ्रम-धोखेमें सब भूले पड़े हैं। मैं कहता हूँ—युग-युगसे वाणी-कल्पना करनेवाला और कहनेवाला, ईश्वर-खुदादिका अनुमान करनेवाला तो यह चैतन्य जीव ही है। सो यही सत्य है और सब मानन्दी मिथ्या है। परन्तु मेरे ऐसे सत्य निर्णयकी बातको किसीने नहीं माना वा नहीं मानते हैं; बिना विचार ॥ ५ ॥

अथवा बेपारखी लोग सच्चे सद्गुरु तो कदापि हो ही नहीं सकते हैं। अतः वे भ्रमिक गुरुवा हैं, गुरु नहीं। जिनको पारखी गुरु ही नहीं मिले, फिर उनको सत्यज्ञान भी कहाँसे होगा? उसीसे भ्रम-अज्ञानके कारण सारे संसारमें अनेक मतवादका दुन्द=झगड़ा मच गया। तथापि सब भ्रमिक लोगोंने अपने ही मन, बुद्धि, वाणीके हाथसे बनाये हुए वाणी-कल्पनारूप ग्रन्थोंको और कृत्रिम जड़ मूर्त्तियोंको खसम=अपना मालिक समझकर खूब दृढ़तासे पकड़ लिया। परन्तु युग-युगसे खानि-वाणीकी सम्पूर्ण बातोंको कहनेवाला तो यह चैतन्य जीव ही है; इसे छोड़कर और कोई सत्य वस्तु नहीं है—ऐसा पारखबोध मैं समझाता हूँ। परन्तु मेरी बातको कोई नहीं मानता। इसीसे भव-बन्धनसे भी कोई छूट नहीं पाता है ॥ १० ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६ ॥ ❀ ॥

वर्णहु कौन रूप औ रेखा? दूसर कौन आहि जो देखा? ॥१॥
वो ॐकार आदि नहिं वेदा। ताकर कहहु कौन कुल भेदा? ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—वर्णहु कौने रूपको?, रेख भेद कस आहि? ॥

दूसर कौन बतावहू ?, जाको देखन चाहि ॥ १ ॥ ॐकार की आदि को, वेदहु जानत नाहिं ॥ ताको काह बखानहू ?, कौन भेद कहि ताहि ? ॥ २ ॥

गुरुमुखः—ईश्वर-खुदादि कोई एक जगत्‌का कर्त्ता मालिक अवश्य ही है; ऐसा जो तुम लोग वर्णन करते हो, तो इस बारेमें विचार करके कहो—उसका वास्तविक स्वरूप कौन है ? और रेखा = चिन्ह, आकार-प्रकार क्या ? कैसा है ? इसका यथार्थ भेद बताओ ! और जिसने ईश्वरादिको प्रत्यक्ष देखा है, सो उससे भिन्न दूसरा कौन है ? चैतन्य जीवसे भिन्न और दूसरा ईश्वरादि कौन है ? जिसे मालिक बताते हो और जिसका दर्शन करना चाहते हो, सो क्या है ? जड़-चैतन्यके स्वरूपसे वह पृथक् है कि उसीके भीतर है ? इस बातको विचार करके यथार्थ कहो ! ॥१॥ यदि ऐसा कहोगे कि उस ॐकार ब्रह्मके आदिको वेद भी नहीं जानता है, वही सब जगत्‌का कर्त्ता है। तब सुनो—उस माने हुए ॐकार शब्दका आदि तो मनुष्य जीव ही है। जीव बिना प्रणव शब्द-ब्रह्म आदिका कथन और कौन करेगा ? वेदादि सम्पूर्ण वाणीका कर्त्ता भी नरजीव ही है। इसलिए ॐकार ब्रह्म मनुष्यका भ्रम-मात्र है। वह शब्द जड़-चैतन्यका आदिकर्त्ता हो नहीं सकता है और वेदादि वाणीका आदि भी वह नहीं है। फिर मिथ्या कल्पनासे उसको जगत्‌का कर्त्ता क्या वर्णन करते हो ? नरजीवके बिना उसका भेद भी कौन कहेगा ? अब कहो—माने हुए वे ईश्वरादि कर्त्ता कहाँ ? कौन सिद्ध होते हैं ? उनका कुल = सम्पूर्ण भेद यथार्थ बतलाओ ! अब उनका क्या भेद कहते हो ? सो कहो ! ॥ २ ॥

नहिं तारागण नहिं रवि चन्दा । नहिं कछु होते पिताके बिन्दा ॥ ३ ॥
नहिंजल नहिंथल नहिंथिरपवना । को धरे नाम हुकुम को बरना ॥ ४ ॥

मायामुखः—नहिं तारा रवि चन्द नहीं, नहीं पिताके बिन्द ॥ नहिं जल थल नभ पवन नहीं, रूप हीन गोविन्द ॥३॥ गुरुमुख—चन्द्र सूर्य कछु ना हते, पाँच तत्त्व तब नाहिं ॥ ताकर नाम कौने धरा ?, को हुकुम कहा जग माहिं ? ॥४॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—परमात्माका स्वरूप निर्गुण-निराकार है। इसलिए उसमें दृश्य तारागणमेंसे एक भी नहीं है। सूर्य और चन्द्र भी उसमें नहीं हैं। पिताका वीर्य भी नहीं और माताका रज भी नहीं है। उनके सम्बन्धसे बननेवाली देहका कोई कुछ विकार भी उसमें कभी नहीं होता है ॥३॥ उसमें जल तत्त्व नहीं, थलरूप पृथ्वी तत्त्व भी नहीं। स्थिर = आकाश और पवना = चञ्चल वायु इत्यादि; जड़ तत्त्वोंका प्रवेश भी उसमें कुछ नहीं है। अतएव सम्पूर्ण आकार-प्रकार स्वरूपसे रहित गोविन्द = जगत्‌कर्त्ता भगवान्‌का स्वरूप वास्तवमें निराकार ही है। फिर हम उसके बारेमें रूप-रेखा और क्या बता सकते हैं ? ऐसा ही वर्णन वेदादिमें किया है। सोई हम मानते हैं ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—तुम्हारे कथनके अनुसार सृष्टि-उत्पत्तिके प्रथम

और अब भी ईश्वरके स्वरूपमें जब चन्द्र, सूर्य, तारागणादि खगोलमेंसे कोई कुछ भी नहीं था, पाँच तत्त्व भी तब नहीं थे, तब कहो तो भला ! फिर उसका नाम—ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि किसने कैसे रक्खा ? वही निराकार कर्त्ता है, ऐसा किसने कैसे जाना ? और उसका हुकुम भी कौन-किसने जगत्‌में वर्णन करके कहा ? निराकार होनेसे वह आप स्वयं हुकुम दे नहीं सकता। वेद-कुरानादि वाणी तो मनुष्योंसे ही बनी है। अतः यह सब मिथ्या कल्पना नरजीवोंकी ही है। जड़-चैतन्यका स्वरूप अनादि होनेसे इनका कोई कर्त्ता सिद्ध नहीं होता है ॥ ४ ॥

नहिंकछुहोते दिवसनिजुराती। ताकर कहहु कौनकुलजाती ? ॥५॥

दिवस राति कछु ना हती, वर्ण रूप कछु नाहिं ॥
सो मिथ्या अनुमान है, का कहि वर्णहु ताहि ? ॥ ५ ॥

सृष्टिके प्रथम जब दिन और रात्रि भी कुछ नहीं थी, अपना-पराया भी कुछ नहीं था, वर्ण, रूप भी कुछ नहीं था, कुल, जाति भी कुछ नहीं थी; फिर कहो—उसका वर्णन किस प्रकार क्या कह करके करते हो ? क्योंकि वह सब तो तुम्हारी ही मिथ्या अनुमान-कल्पनाकी वाणी मात्र है। वास्तवमें वह वस्तु कुछ भी सिद्ध नहीं होती है। अतः जीवसे परे कोई ईश्वरादि नहीं है ॥ ५ ॥

साखीः—शून्य सहज मन सुमिरते। प्रगट भई एक ज्योत ॥
ताहि पुरुषकी मैं बलिहारी। निरालम्ब जो होत ॥६॥

जीवमुख; साखीः—शून्य माँहिं सहजै विधी, मनहि सुमेर चढ़ाय ॥
प्रगट भई एक ज्योति जो, मैं बलिहारी ताहि ॥ ६ ॥ सोई पुरुष निर्लेप है,
निरालम्ब कहि ताहि ॥ ताका मैं सुमिरन करौं, दुतिया कोई नाहिं ॥ ७ ॥

जीवमुखः—ऊपरका प्रश्न सुनकर योगी, ध्यानी आदि जीव कहने लगे—राजयोगकी सहज विधिसे श्वासके साथ 'सोहं' शब्दमें लक्ष्य लगाकर सुमिरण करते-करते मनको पवनके साथ मिलाकर ऊपर ब्रह्माण्ड, भ्रमर-गुफारूप सुमेरु स्थानमें जब हमने चढ़ा दिया, तब हमारा मन उन्मुन होकर महाशून्यमें मिल गया। तदुपरान्त उसी महाशून्य स्थानसे अनायास एक महान् ज्योति-स्वरूपमें परमात्मा प्रकट होकर साक्षात् दर्शन दिये। उन्हीं परम पुरुष परमात्माका मैं बलिहारी हूँ। मेरा सर्वस्व उनपर निछावर है ॥६॥ वे ही परमपुरुष परमात्मा हैं। वे सबसे निर्लिप्त हैं। उनको निरालम्ब कहते हैं, जो कि निरालम्ब=निराधार होते हुए भी कृपा करके हमको ज्योति-स्वरूपमें दर्शन दे दिये। उनका ही हम दिन-रात नाम-स्मरण करते हैं। उन मालिकको छोड़कर दूसरा और कोई श्रेष्ठ सत्य नहीं है। ऐसा अनुभवद्वारा हम उसी ज्योति-स्वरूप परमात्माको जगत्‌कर्त्ता मानते हैं; इत्यादि ॥ ६ ॥ ७ ॥

॥ * ॥ रमैनी ॥ ७ ॥ * ॥

तहिया होते पवन नहिं पानी। तहिया सृष्टि कौन उत्पानी ? ॥१॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः--तहिया होते पवन नहीं, पानी तहिया नाहिं ॥
तहिया सृष्टि कौने किया?, दृढ़कै निरखहु ताहि ॥१॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे कर्त्तावादी! तुम्हारे कल्पित कथन अनुसार जब सृष्टिके प्रथम उस समय पवन और प्राणवायु भी नहीं थी, वैसे ही पानी एवं रज-वीर्य भी नहीं थे; तब कहो तो भला! जड़-चैतन्यका स्वरूप और उपादान कारणके अभावमें तब उस समय सम्पूर्ण सृष्टिकी उत्पत्ति किसने? कैसे? किस प्रकार की? इस बातको विवेक-विचारसे दृढ़ करके परीक्षा-दृष्टिसे देखो! मिथ्या कल्पनामें मत् भूलो! ॥ १ ॥

तहिया होते कली नहिं फूला। तहिया होते गर्भ नहिं मूला ॥२॥
तहिया होते विद्या नहिं वेदा। तहिया होते शब्दनहिं स्वादा ॥३॥

मायामुखः--नहिं तव शक्ति संसार नहीं, गर्भ जीव तब नाहिं ॥
विद्या वेद तब ना हते, शब्द स्वाद कहु काहिं? ॥ २ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—सृष्टिके प्रथम निश्चय ही कलि=मूल मायाकी शक्ति प्रकट नहीं थी और सम्पूर्ण संसार भी उत्पन्न नहीं हुआ था। कुछ भी विकसित होकर फूला नहीं था। इसलिए उस समय मूला=जीव और गर्भवासका स्थान भी तब नहीं था ॥ २ ॥ फिर उस समय चार वेद और चौदह विद्या भी कुछ उत्पन्न नहीं हुई थीं। क्योंकि तब किसी प्रकारका शब्द-विषय और स्वादा=रस-विषय, एवं उन विषयोंका भोक्ता भी कोई नहीं था। तब कहो—विद्यादि शब्दोंका स्वाद ग्रहण करनेवाले भी उस समय कहाँ-कैसे होंगे? ॥ ३ ॥

तहियाहोतेपिण्ड नहिं बासू। नहिं धर धरणि न पवन अकासू ॥४॥
तहिया होते गुरू नहिं चेला। गम्य अगम्य न पन्थ दुहेला ॥५॥

तहिया पिण्डहु ना हते, नहीं पिण्डमें बास ॥ पानी पृथ्वी ना हती, पवनहु नाहिं अकाश ॥३॥ तहिया गुरू ना हते, चेला तहिया नाहिं ॥ गम्य अगम्य कहत बने नहीं, पन्थ कठिन अति ताहिं ॥ ४ ॥

गुरुवा लोग कहते हैं:—जगत्-उत्पत्तिके पहले, उस समय पिण्ड=स्थूल देह भी नहीं थी और पिण्डरूप देहमें जीवका निवास भी नहीं था। ईश्वरके सिवाय कोई जीव ही नहीं था। इसीसे धर=जलका आधार, धरणि=पृथ्वीका आधार और पवन, एवं आकाश तत्त्व भी कोई कुछ नहीं था ॥४॥ उस समय कोई गुरु भी नहीं थे और चेला भी तब कोई नहीं था। इस कारण सृष्टि-उत्पत्तिके पहले जगत्कर्त्ताके विषयमें गम्य=जाननेमें आनेवाला और अगम्य=जो जाना जा नहीं सकता है; ऐसा कुछ भी कहते नहीं बनता है। क्योंकि अगम, अगोचर, अपार परमात्माका स्वरूप है। वहाँ गम-अगम नहीं, पन्थ-अपन्थ नहीं, सरल और कठिन भी नहीं।

इस प्रकार उसमें द्वैतका भाव कुछ भी नहीं है। वैसा अद्वैतके पन्थ=मार्गसे चलना और समझना दुहेला=अत्यन्त कठिन है। इस बातको कोई बिरला ही समझ पाता है, इत्यादि ॥ ५ ॥

साखीः—अविगतिकी गति का कहो? जाके गाँव न ठाँव ॥
गुण बिहूना पेखना। का कहि लीजे नाँव? ॥७॥

गुरुमुख; साखीः—जाकी गति कछु है नहीं, ताकी गति कहु काहि? ॥
गाँव ठाँव नहिं रूप नहीं, कैसे देखहु ताहि? ॥ ६ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जिस अविगति=ब्रह्म, ईश्वरादिमें चित्त-चतुष्टय, दश इन्द्रियाँ, वाणी आदिकी गतिकी पहुँच नहीं; ऐसा कहते हो, वह तो तुम्हारा एक मिथ्या अनुमान, भ्रम-कल्पना ही मात्र है। फिर उसकी गति-विधि, महिमा वर्णन करके, उसीसे सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई, ऐसा झूठा ही क्या कहते हो? जिसके गाँव=निश्चित रहनेका स्थान और ठाँव=पूरा पतारूप ठिकाना भी कुछ नहीं है, और फिर जिसे गुण बिहूना=सब प्रकारके गुणोंसे रहित निर्गुण-निराकार सर्वत्र भरा हुआ व्यापक भी कहते हो। पुनः उसको पेखना=साकाररूपमें देखना भी चाहते हो। यह कैसी विपरीत समझ और कथन है? जब वह वाणीसे परे है, तब उसका नाम भी क्या कहकर और कैसे लेते हो? इसका विचार करो।

अथवा जिसकी गति, चाल, गमन कुछ भी है ही नहीं; फिर उस निर्गुण-निराकारकी गति तुम किससे कहते हो? एक अद्वैत ब्रह्म है, तो फिर द्वैतका निषेध करनेकी आवश्यकता क्या है? अद्वैत है, ऐसा किससे कहते हो? जिसका गाँव-ठाँव, रूप-रेखा, आकार-प्रकार कुछ भी नहीं है, फिर कहो—तुम उसको कैसे? किस प्रकार? कहाँपर देखोगे? औरोंको कैसे दर्शन कराओगे? अतः मिथ्या भ्रम-धोखेमें मत् भूलो! अब भी परखकर निजस्वरूपकी स्थिति करो! ॥ ५ ॥ ७ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ८ ॥ ❀ ॥

तत्त्वमसी इनके उपदेशा। ई उपनिषद् कहैं सन्देशा ॥ १ ॥
ई निश्चय इनके बड़ भारी। वाहिक वर्णन करैं अधिकारी ॥ २ ॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—मैं ही ब्रह्म सन्देश यह, वेदन जो कहि दीन्ह ॥
यह निश्चय भारी परी, तब वाहीको वर्णन कीन्ह ॥ १ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—इनके=ब्रह्मादि ब्रह्मज्ञानी गुरुवा लोगोंका मुख्य उपदेश, वेद-वेदान्तका साररूप महावाक्य यही तत्त्वमसी=त्वं=तू+तत्=वह+असि=है; अर्थात् 'तू वही ब्रह्म है।' अतः जगदाधिष्ठान अद्वैत ब्रह्म तू ही है। इसी महावाक्यका उपदेश छान्दोग्य० और बृहदारण्यादि उपनिषदोंमें सन्देश देकर कहा है।

अहं ब्रह्मास्मि = मैं ही ब्रह्म हूँ। तत्त्वमसि = तू वही ब्रह्म है। सो यही ब्रह्मज्ञानका सन्देशरूप उपदेश ब्रह्मादिकोंने जो कि वेद-वेदान्त, उपनिषदोंमें वर्णन करके कह दिया है, उसीको सार सिद्धान्त समझकर वेदान्ती लोग अब भी औरोंको वही सन्देश दे रहे हैं ॥ १ ॥ यही तत्त्वमसिरूप महावाक्य अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्त इनके = ब्रह्मज्ञानी लोगोंके मनमें बड़ाभारी निश्चय होके टिका है। अधिकारी जिज्ञासु मनुष्योंके प्रति अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्त तत्त्वमसिका वर्णन वे किये और करते हैं। उनके सब अनुयायी लोगोंको यही कल्पित वाणीका निश्चय बड़ाभारी वजनदार पड़ रहा है। तभी उसी तत्त्वमसि अद्वैत ब्रह्मज्ञानका वर्णन शिष्योंके प्रति किये और कर रहे हैं। उसीको सत्य मानकर मिथ्या भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं ॥ २ ॥

परमतत्त्वका निज परवाना। सनकादिक नारद शुक माना ॥३॥
याज्ञवल्क्य औ जनक सम्बादा। दत्तात्रेय वोहि रस स्वादा ॥४॥

परमतत्त्व परमातमा, ताको निज परमान॥ सनकादिक नारद मुनी, शुकाचार्य लिये मान ॥ २ ॥ याज्ञवल्क्य औ जनक को, यही भयो सम्बाद ॥ दत्तात्रेय अवधूत को, यहि रस लाग्यो स्वाद ॥ ३ ॥

पञ्चतत्त्वोंके भीतर-बाहर भरा हुआ कोई एक परमतत्त्व परमात्मा अद्वैत ब्रह्म है, सो वह निज = मैं ही हूँ; ऐसा भ्रमसे समझकर, उसीको प्रमाण करके ब्रह्मादिने मान लिया। तत्पश्चात् वही अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्तका प्रमाण "परमतत्त्व परमात्मा मैं हूँ" इसी बातके निश्चयको सनकादिक ज्ञानी लोग, नारदादि भक्त ऋषि-मुनि लोग और शुकदेव आदि आचार्यसे लेकर सबने निश्चय करके मान लिया ॥ २ ॥ ३ ॥ तदुपरान्त पण्डित याज्ञवल्क्य ऋषि और जनक महाराजके बीचमें भी परस्पर ब्रह्मज्ञान-विषयक सम्वादमें यही तत्त्वमसि, अहं ब्रह्मास्मि वाक्यका निश्चय हुआ था। दत्तात्रेय अवधूतको भी यही तत्त्वमसि अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्तरूप वाणीके रसका स्वाद प्रिय लगा था। "सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं हूँ" ऐसा निश्चयका वर्णन अवधूतगीतामें किया है। अतएव मिथ्या भ्रम-भाससे वे कोई न्यारे नहीं हुए ॥ ३ ॥ ४ ॥

वोहिबात राम वसिष्ठ मिलिगाई। वोहिबात कृष्ण उद्धव समुझाई ॥५॥
वोहि बात जो जनक दृढ़ाई। देह धरे विदेह कहाई ॥६॥

यही बात रघुनाथको, मुनि वसिष्ठ समुझाय॥ यही बात श्रीकृष्णने, उद्धव दीन्ह लखाय ॥ ४ ॥ यही बातके भीतरे, जनकहु दृढ़ता कीन्ह॥ देह धरे निशिदिन रहै, कहैं देह ते भिन्न ॥ ५ ॥

वही तत्त्वमसि अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी बात कुलगुरु वसिष्ठ मुनिने भी रामचन्द्रको समझाकर अपने सिद्धान्तमें मिला लिया था। वह योगवासिष्ठमें वर्णन किया है। वही अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी बात श्रीकृष्णने भी उद्धवको समझाकर लखाके निश्चय कर दिया

था; सो भागवतादिमें वर्णन किया है। और अर्जुनको समझाई हुई बात भगवद्गीता-में वर्णन किया है ॥५॥ वही अद्वैत ब्रह्मज्ञानकी बातको, जो कि और भी अष्टावक्र आदिने जनक महाराजको दृढ़ाकर निश्चय कराया था। इसीसे देह धारण करके राजमहलमें रहते हुए भी जनक विदेहराज कहलाये थे। क्योंकि ब्रह्म एक अद्वैत है। वह देहातीत निराकार-निर्गुण एवं सर्वरूपमें व्यापक है। द्वैत मानना भ्रान्ति है। इसी ब्रह्मज्ञानकी बातके भीतर जनकने भी अपनी दृढ़ता कर ली और भ्रमसे अपनेको ब्रह्म मान लिया। वे दिनरात देह धारण किये रहनेपर भी 'मैं देहसे भिन्न ब्रह्म हूँ' कहते रहे। अपनेको विदेह कहलवाये। इसीसे लोग उनको विदेह, ब्रह्ममें लीन रहनेवाले कहने लगे। परन्तु पारख-स्वरूपका बोध नहीं होनेसे खानि-वाणीके भव-बन्धनसे वे नहीं छूटे ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः—कुल मर्य्यादा खोयके। जीवत मुवा न होय ॥
देखत जो नहिं देखिया। अदृष्ट कहावै सोय ॥ ८ ॥

साखीः—जीयत ही मरि जाइये, कुल मर्य्यादा खोय ॥ जीव तो कबहूँ मरै नहीं, यह सब मिथ्या होय ॥६॥ देह धरै जो जगत में, कहैं विदेही जान ॥ देखेसे जो ना दिखै, सो मिथ्या धोखा मान ॥ ७ ॥

अद्वैतवादी ब्रह्मज्ञानी लोग जगत्‌में कुल आदिकी सम्पूर्ण मर्यादाको मिटा करके स्वयं सर्वाधिष्ठान ब्रह्म बन गये, परमहंस-दशामें जड़ वृत्ति धारण कर लिये। परन्तु चैतन्य जीव तो मुवा = शून्य, मरा हुआ जड़ ब्रह्म तो कभी नहीं हो सकता। केवल जड़ाध्यासी बद्ध होता है। जड़-चेतन अलग-अलग देखते हुए भी जो विवेक-दृष्टिसे नहीं देखते हैं, सबको एक अद्वैत ब्रह्म न दीखते हुए भी भ्रमसे मान लेते हैं, वे ही वास्तवमें अदृष्ट = सत्यको न देखनेवाले अविवेकी अन्धे भ्रमिक कहलाते हैं ॥ ८ ॥

अथवा चाहे जीते ही कुलकी सर्व मर्यादाको खोकर अद्वैत ब्रह्म मानन्दीकर जड़ दशा धारण करके कोई मर जावे; परन्तु भ्रमरूप ब्रह्मज्ञानसे न किसीको यथार्थ मुक्ति मिली है, न मिलेगी। वास्तवमें जीव तो अविनाशी अमर है। वह कभी मरकर विनाश नहीं होता है। केवल ब्रह्म-जगत्‌का जड़ाध्यासी बनकर आवागमन-चक्रमें सदा पड़ा रहता है। इसलिए यह ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी सब मिथ्या धोखा ही मात्र है ॥६॥ जो देह धारण करके जगत्‌में रहते हुए भी अपनेको विदेही ब्रह्म कहते हैं, वे सत्यके अनजान भ्रमिक ही हैं; ऐसा जानलो! बाह्य दृष्टि और विवेक-दृष्टिसे भी देखनेसे जो वस्तु कहीं कुछ भी न दिखे और न ठहरे, सो माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादि तो मिथ्या धोखा ही मात्र है; ऐसा समझो! अच्छी तरहसे परखकर मिथ्या धोखेकी मानन्दीको परित्याग करो! ॥ ७ ॥ ८ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ९ ॥ ❀ ॥

बाँधे अष्ट कष्ट नौ सूता। यम बाँधे अञ्जनी के पूता ॥ १ ॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः—अष्ट योग कष्ट ज्ञान, नौधा भक्ती मान ॥ सूत जीव बाँधन लगे, प्रपञ्च माया जान ॥१॥ भगवन्त अपनी भक्तिमें, बाँधे अञ्जनि पूत ॥ ब्रह्मादिक पण्डित जने, सब बाँधे एकै सूत ॥ २ ॥

गुरुमुखः—अष्ट=अष्टाङ्ग योगमें और अष्ट-प्रतिमादि जड़-पूजनमें कष्ट=ज्ञान-साधनाओंके दुःखमें, एवं नौ=नवधा भक्तिकी मिथ्या मानन्दीमें सूता=वासनारूप सूत्रधारी अबोध जीवोंको वाणी और विषयोंकी डोरीसे खूब बाँधते ले गये। यम=कालरूप माया गुरुवा लोगोंने जान-बूझकर जगत् प्रपञ्च और वाणी-प्रपञ्चमें जीवोंको खूब बाँध रक्खा है। यह सब माया-प्रपञ्च कठिन बन्धन ही है; ऐसा जानो! ॥१॥ अञ्जनीके पूता=अञ्जनीके पुत्र हनुमानको भगवन्त=रामचन्द्रने अपनी सगुण-भक्तिमें और अनुमान-कल्पनामें खूब बाँध लिया था। जो जीवको भव-बन्धनमें डालते हैं, उनको यम कहा जाता है। इस प्रकार ब्रह्मादिसे लेकर जितने भी बड़े-बड़े पण्डितजन हुए; उन सबने एक ही वाणी-कल्पनाके सूत्रमें और विषय-वासनामें अपनेसे लेकर सब जीवोंको खूब बाँध दिया। अब भी वैसे ही बाँधते जा रहे हैं ॥ २ ॥ १ ॥

यमके बाहन बाँधे जनी। बाँधे सृष्टि कहाँ लौं गनी ? ॥ २ ॥
बाँधेउ देव तैंतीस करोरी। सँबरत लोह-बन्द गौ तोरी ॥ ३ ॥

बाँधा सारी सृष्टिको, कहाँलों करों बखान ॥ तैंतिस कोटी देवता, सकलो कियो बन्धान ॥३॥ मायामुखः-जग आसक्ती छाड़िके, जिन सुमिरा भगवान ॥ चौरासी छूटी तिन्हैं, पद पायो निर्वान ॥ ४ ॥

जैसे यमराजके बाहन=भैंसेको किसानी काममें जोतते और खूँटेमें बाँध रखते हैं और भी बाहन=घोड़े आदि सवारीको बाँध रखते हैं; वैसे ही बन्धनदाता यम=सब श्रमिक गुरुवा लोग एवं स्त्री-विषयके बाहन=सवारी बनकर बोझा ढोनेवाले सम्पूर्ण अबोध मनुष्योंको जनी=गुरुवा लोग और स्त्री जनोंने अपने-अपने खूँटेमें खूब मजबूतीसे बाँध रक्खा है। वैसे मोटी-झीनी मायाजालमें सृष्टि=सम्पूर्ण भू-मण्डल-भरके मनुष्यादि जीव खुशी-खुशीसे बँधे पड़े हैं। असंख्य बद्ध जीवोंके नाम अब मैं कहाँतक गिनती करके वर्णन करूँ ? कोई बिरले ही पारखी सन्त खानि-वाणीके सर्व भव-बन्धनोंसे छूटते हैं ॥२॥ ब्रह्मादिसे लेकर माने गये सम्पूर्ण तैंतीस कोटि देवी-देवताएँ, वे सब और उनके समस्त भक्तगण भी विषयजाल और वाणी-कल्पनामें खूब बँध गये। कोई कहीं छूट नहीं पाया बिना पारख ॥ ३ ॥

मायामुखः—परन्तु गुरुवा लोग कहते हैं—जगत्की विषयासक्ति छोड़कर जिसने परमेश्वर भगवान्के रामनामको भक्ति-भावसे स्मरण किया, उसके नाम-स्मरण करते ही लोहबेड़ीके समान संसारके सम्पूर्ण कठिन बन्धन, यम-यातना और चौरासीके सब दुःख एवं सारे जगत्-बन्धन टूटकर छिन्न-भिन्न हो जाते हैं। अन्तमें

निर्बान = ब्रह्मपदको प्राप्त करके वे मुक्त हो जाते हैं। इत्यादि महिमा सुनाकर भ्रमा-भुला रक्खे हैं) ॥ ३ ॥ ४ ॥

राजा सँबरे तुरिया चढ़ी। पन्थी सँबरे नाम ले बढ़ी ॥ ४ ॥
अर्थ बिहूना सँबरे नारी। परजा सँबरे पुहुमी झारी ॥ ५ ॥

गुरुमुखः—ज्ञानी तुर्या ऊपरै, सुमिरत हैं दिन रैन॥ योगी अजपा में मिले, रहत मनहिं में चैन ॥५॥ अर्थ बिहीना ब्रह्मको, सुमिरत हैं सब भक्त ॥ कर्त्ता हर्त्ता हरिहि कही, सुमिरत हैं सब जक्त ॥ ६ ॥

गुरुमुखः—गुरुवा लोगोंकी रोचक वाणी सुनकर राजा = ज्ञानी लोग महाराजारूप परमात्मासे मिलनेके लिए "अहं ब्रह्मास्मि" "शिवोहं" आदि नाम स्मरण करते हुए तुर्यावस्थाके ऊपर चढ़कर सहविकल्प समाधि लगाकर बैठ गये, दिनरात वही नाम-स्मरण करनेमें लवलीन हुए। पन्थी = योगी लोग नाम = वोहं-सोहं शब्दरूप अजपा-जापको श्वासके साथ लक्ष्य मिलाकर ब्रह्माण्डमें लेकर बढ़ गये। शून्य समाधि लगनेपर अपने मनमें ही सुख-चैन मानकर गाफिलीमें पड़े रहते हैं ॥४॥५॥ अर्थ बिहूना = अर्थसे रहित, जिसमें कोई अर्थ ही नहीं। मिथ्या भावनारूप अनर्थसे कोई एक परमपति भगवान् मानकर नारी = अनारी भक्त लोग अपनेमें स्त्री-भाव धारण करके राम, कृष्ण, हरि आदि नाम-स्मरण कर-करा रहे हैं। अथवा अर्थसे विहीन भ्रमरूप अनर्थ ब्रह्म, ईश्वरादिको मानकर किसीका कल्याणरूप प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है; तथापि अगम-अपार माने हुए ब्रह्म-परमात्माका नाम-स्मरण सब भक्त लोग कर रहे हैं। इसी प्रकार झारी = सम्पूर्ण, पुहुमी = पृथ्वीके परजा = समस्त अबोध मनुष्य—कोई एक ईश्वर कर्त्ता-धर्त्ता, भर्त्ता-हर्त्ता, सब दुःख हरण करनेवाला हरि अवश्य है; ऐसा कहकर मनगढ़न्त नाम-स्मरण कर-करा रहे हैं। बिना पारख भ्रम-बन्धनमें ही सब बँधे पड़े हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः—बन्दि मनावै ते फल पावै। बन्दि दिया सो देय ॥
कहैं कबीर सो ऊबरे। जो निशिवासर नामहिं लेय ॥९॥

मायामुखः—साखीः—बन्दन करै भगवन्तकी, सो फल पावै चार ॥ जाने जग उत्पति कियो, सो मुक्ति करे निर्धार ॥७॥ कहैं वेद मुनि मनुज तन, तेही उबरे जान ॥ नाम लेत निशिवासर, सुमिरे श्री भगवान ॥ ८ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—जैसे श्रीमन्तोंको बन्दिगण यश, कीर्ति गाकर मना करके प्रसन्न करते हैं, तब वे धनादि फल पाते हैं। और जिस राजाने बन्धनरूप कैदमें अपराधीको डाल दिया है, सो कभी प्रसन्न होनेपर उनको पुनः छोड़ भी देता है।

तद्वत् बन्दि = बन्दे भक्त लोग परमेश्वर भगवान्की स्तुति, प्रार्थना, वन्दना

करके जो उसे मनाकर प्रसन्न करते हैं, सो वे लोग चार फल, चार मुक्ति आदि सुख भी उसीकी कृपासे पा जाते हैं। प्रथमारम्भमें जिस परमेश्वरने सब जगत्की उत्पत्ति करके सब जीवोंको बन्धनमें डाल दिया है, सो यदि भक्ति-भावसे प्रसन्न हो जायगा, तबतो निश्चयसे पुनः भक्तोंको निर्धारित मुक्ति भी प्राप्त करा देगा ॥७॥ कहैं कबीर= वेदवादी ऋषि-मुनि गुरुवा लोग कहते हैं—यह मनुष्य-शरीर पाकर जो परमेश्वरका भक्ति-भाव अच्छी तरहसे करते हैं, वे ही भवसागरसे पार उतर जाते हैं; ऐसा जानो ! जो निशिवासर=दिनरात रामनामको लेते रहते हैं, श्रीभगवान्के नामका स्मरण करनेके प्रतापसे अन्तमें वे भगवद्रूपमें ही मिल जाते हैं। [इत्यादि रोचक वाणी सुनाकर भुला-भ्रमा रक्खे हैं] ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ १० ॥ ❁ ॥

राही ले पिपराही बही। करगी आवत काहु न कही ॥ १ ॥
आई करगी भौ अजगूता। जन्म जन्म यम पहिरे बूता ॥ २ ॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः—याहि राह ले जीव सब, बहे घोर अन्धार ॥ फाँसी आवत देखिकै, काहु न कीन्ह पुकार ॥१॥ आई फाँसी जगत पर, भौ धोखा निर्मान ॥ जन्म-जन्म यम देह धरि, कीन्हों बहुत बखान ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—कर्म, उपासना, योगादि कल्पित मार्गोंको पकड़कर, मनमें मिथ्या भावनाको ले-लेकर राही=राह चलनेवाले बटोही सब अबोध नरजीव भ्रम-भूलके घोर अन्धकारमें बढ़ते गये। कल्पित वाणी और विषयकी प्रबल धारामें एकदम सब-के-सब बह गये। करगी=वेदादि कल्पित वाणीकी बाढ़ और विषयका पूर, जो जीवोंको फँसानेवाली महान् फाँसी एवं बहाकर ले जानेवाले बाढ़रूप बन्धनको अपने समीपमें हृदयके भीतरमें आते हुए देखकर भी कोई उससे अपना विनाश नहीं समझ रहे हैं। इसलिए उससे छूटकर पार होनेके लिए भी कोई पुकार नहीं करने। यह करगी कहाँसे आई? और कहाँ ले जायगी? यह भी किसीने नहीं बताया। अन्धाधुन्ध उसी बाढ़की धारामें बहे जा रहे हैं ॥१॥ करगी= वाणी-कल्पना और विषयकी बाढ़रूप महान् फाँसी पूर्वके मनुष्योंके द्वारा ही प्रवाहित होकर परम्परासे चली आई। जगत्के जीव सब उसीमें बहने लगे, तबतो अजगूता= सबको महान् आश्चर्य होने लगा। फिर तो भ्रम-भूल, अनुमान-कल्पना, धोखा, यही निर्माण होता गया। उसी खानि-वाणीके अध्यासवश सब जीव आवागमनके चक्रमें पड़े। तब उसी वासनावश यम=कालरूप गुरुवा लोग और स्त्रियाँ भी जन्म-जन्मान्तरमें बूता=देह धारण करके अपने बल, पराक्रमसे रोचक-भयानक वाणीका बहुत-बहुत बखान करके मनुष्योंको भ्रमाती, भुलाती और फँसाती जा रही हैं। कोई बिरले ही इस भेदको जानकर न्यारे होते हैं ॥ २ ॥

बूता पहिरि यम कीन्ह समाना। तीन लोकमें कीन्ह पयाना ॥३॥

बाँधेउ ब्रह्मा विष्णु महेशू । सुर नर मुनि औ बाँधु गणेशू ॥४॥

देह धरी गुरुवन सबै, कीन्हों बहुत समान ॥ बानी बहुत बनाय के, सबहुन कीन्ह पयान ॥३॥ ता बानीमें बँध गये, ब्रह्मा विष्णु महेश ॥ सुर नर मुनि बन्धे सबै, गौरी पुत्र गणेश ॥ ४ ॥

बूता पहिरि=मनुष्यदेह धारण करके अपनी अनुमान-कल्पनाकी शक्तिसे यम=भ्रमिक गुरुवा लोगोंने और अबोध जीव सबको भी बहुत प्रकारसे भ्रमा-भुलाकर अपने समान विपरीत समझवाले भ्रमिक बद्ध बना लिया, अपने मत-पन्थमें उनको सामिल कर लिया। वेद-शास्त्रादि बहुत-सी कल्पित वाणी बना करके तीन लोक=कर्म, उपासना, योगादि मार्गमें वे सब पयान=चलने और चलाने लगे। उसी मार्गमें अब भी सब लोग चल रहे हैं।

अथवा स्त्रीने भी देह धारण करके अपनी आकर्षक मोहिनी शक्तिसे अपने समान पुरुषोंको भी विषयासक्त कर दिया, अपने गर्भमें ले लिया। तब तीन लोक=काम, क्रोध और मोहको पकड़कर सब विषयी जीव उधर ही चले जा रहे हैं।३॥ इस प्रकार स्त्री-विषय-भोग और वाणी-कल्पनाके दोनों जालोंमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी खूब बँध गये। देवता, मनुष्य, ऋषि-मुनि और गौरीके पुत्र गणेश इत्यादि सब-के-सब मोटी-झीनी मायाजालमें खूब बँध गये। उन लोगोंने और सब मनुष्योंको भी उसी जालमें फँसाकर खूब बाँध दिया। बिना पारख कोई छूट नहीं पाया॥ ४॥

बाँधे पवन पावक औ नीरू। चान्द सूर्य बाँधेउ दोउ बीरू ॥५॥
साँच मन्त्र बाँधे सब झारी। अमृत वस्तु न जानै नारी॥६॥

पवन अग्नि औ जल बँधे, धरति अकाश के माँहिं॥ चान्द सूर्य दोऊ बँधे, छूटो कहु अब काहिं ? ॥ ५ ॥ साँच जीव बाँधा सबै, बहु बानिन में झारि ॥ अमृत जाको मरण नहीं, ताको जाने न नारि ॥ ६ ॥

पवन='वायु' नामक ऋषि, पावक='अग्नि' ऋषि, नीरू=जलके अभिमानी वरुण; ये भी मोटी-झीनी मायामें बँधे। 'चन्द्र' और 'सूर्य' नामक दोनों वीर मनुष्य एवं चन्द्र-सूर्य वंशी राजेलोग, ये भी विषय-भोग और वाणी-कल्पनामें खूब बँधे। अथवा पवन=वायुके उपासक योगी, फकीर आदि लोग, पावक=अग्निके उपासक अग्निहोत्री आदि लोग और नीरू=जलके उपासक तीर्थ-यात्री लोग; ये तीनों भी वाणीकी भ्रम-कल्पनामें बँधे। चाँद=कर्मयोगी और सूर्य=ब्रह्मज्ञानी कर्मसंन्यासी, ये दोनों वीर बननेवाले लोग भी वाणी-कल्पनामें बँध गये ॥ ५॥

अथवा अनादिकालकी पृथ्वी और आकाशके मध्यमें कार्य-कारणरूपसे परस्पर सम्मिलित होकर पवन, अग्नि और जल भी अपने घेरामें स्वयंशक्तिसे बँधकर रह रहे हैं। चन्द्र और सूर्य, उन दोनोंका भी अपना परिधिरूप भ्रमण करनेका घेरा स्वयमेव

बँधा हुआ है। वही अपनी परिधिमें वे घूमते रहते हैं। अब कहो—कौन कहाँ छूटा है? जड़के घेराका बन्धन जड़में है और मोटी-झीनी मायाकी मानन्दीका बन्धन सब जीवोंमें लगा हुआ है। बिना पारख नरजीवोंका बन्धन नहीं छूटता है॥५॥ चैतन्य जीवका स्वयंस्वरूप ही साँच=सत्य है और वेदादिके कल्पित वाणीरूप मन्त्र-तन्त्र आदि सब मिथ्या हैं। परन्तु भ्रमिक गुरुवा लोगोंने बहुत प्रकारकी वाणी-कल्पनाओंमें फँसाकर झारी=सम्पूर्ण मनुष्योंको समेट करके मन्त्र-तन्त्रादि मिथ्या धोखेमें साँचे=जीवको ले जाकर खूब जकड़ करके, छूट न सके, ऐसा बाँध दिया। अमृत=जिसका मरणरूप विनाश कभी नहीं होता है, वह चैतन्य जीवका स्वयं अजर अमर अखण्ड अक्षय नित्य-सत्य स्वरूप है। उस वस्तु=पारख-स्वरूपको जो नहीं जानते हैं, वे अनाड़ी अज्ञानी, भव-बन्धनसे कभी छूट नहीं पाते हैं। नारी=अबोध भक्त लोग स्त्री-भाव धारण करके कोई कल्पित परमपुरुष मानकर, उसे रिझानेके लिए अनेक स्वाँग बनाकर भ्रम-भूलमें बँधे पड़े हैं। बिना पारख उस भेदको वे कोई नहीं जानते हैं॥६॥

साखीः—अमृत वस्तु जानै नहीं। मगन भया सब लोय॥
कहहिं कबीर कामों नहीं। जीवहि मरण न होय॥१०॥

साखीः—अमृत बस्तु जो जीव है, ताको जाने न कोय॥ धोखा झाँई पायके, मगन मनहिंमें होय॥७॥ जाको तुम निश्चय कियो, कहवाँ है सो रूप?॥ सो कछु काम न आइहैं, जीवहि अमिय स्वरूप॥८॥

निजस्वरूप जो चैतन्य जीव है, सो वही स्वयं अमृत वस्तु है। अजर, अमर, अविनाशी, शुद्ध पारखस्वरूप; ऐसा अमृत वस्तुरूप निज स्वरूप है, उसको तो विवेक-विचार करके ये भ्रमिक लोग कोई नहीं जानते हैं। किन्तु जीवको तुच्छ समझकर अपनी अनुमान-कल्पनासे माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादिकी मिथ्या मानन्दी, जो भ्रम-भूल धोखारूप है, उसे अविवेकसे झाँई=गाफिल होकर, अन्तरमें वृत्तिकी शून्यता प्राप्त करके अपने मनमें ही ब्रह्म प्राप्त हुआ समझकर सब लोग मग्न अचेत हो रहे हैं॥७॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—जिसको तुमने ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मा निश्चय किया है, सो उसका स्वरूप कहाँ है? तुम्हारी भ्रम-कल्पना तुम्हारे मनमें ही है। बाहर कोई वस्तु नहीं है। अन्तमें उस भ्रमसे तुम्हारा कल्याणका कार्य सिद्ध नहीं होगा। मुक्तिके लिए कुछ भी वह तुम्हारे काममें नहीं आयगा। चैतन्य जीव ही नित्य सत्य अमृत स्वरूप है। मरणरूप विनाश तो जीवका कभी नहीं होता है; किन्तु पारखबोध न होनेसे जड़ाध्यासवश आवागमन-चक्रमें पड़ा दुःख भोगता रहता है। अतः पारखबोध प्राप्त करके निजपदमें स्थिर हो रहो!॥८॥१०॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ११ ॥ ❀ ॥

आँधरि गुष्ट सृष्टि भई बौरी। तीन लोकमें लागि ठगौरी॥१॥

ब्रह्मा ठगो नाग कहाँ जाई ? देवता सहित ठगो त्रिपुरारी ॥२॥
राज ठगौरी विष्णु पर परी । चौदह भुवन केर चौधरी ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—आँधरि गुष्ट कहिये वेदको, तामें सृष्टि बौरान ॥ तीन लोकके बीचमें, लागि ठगौरी जान ॥१॥ बानी में ब्रह्मा ठगे, और शेष ठगे जाय ॥ देवन सहित महादेव ठगे, और विष्णु ठगे भाय ॥२॥ राज ठगौरी विष्णु पर, परी आयके ताहिं ॥ भुवन चौदके चौधरी, कहि गावत जन माहिं॥३॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं--आँधरि गुष्ट=अन्धकारमें अन्धोंकी वार्ताके समान अबोध दशामें सत्यके विवेक-विचारसे हीन होकर प्राचीनकालमें रचित वेदादि वाणीको 'आँधरि गुष्ट' कहा जाता है। क्योंकि उसमें पारखबोध नहीं है, कोई एक ईश्वर, ब्रह्म कर्त्तादिकी महिमा वर्णन किया है। उन्हीं वेद-कुरानादिकी वाणी सुन-सुनकर सृष्टि=सारे संसारके मनुष्य बौरी=भ्रमिक, पागल, विचारहीन हुए और हो रहे हैं। तीन लोक=त्रिगुणी मनुष्य वा योगी, ज्ञानी, भक्तोंके बीचमें उसी वाणी-कल्पनाकी ठगौरी=ठगविद्या वा अविद्या, भ्रम-भूल, मिथ्या पक्षकी ठगाई लग गई। बिना पारख इसका भेद कोई जान नहीं पा रहे हैं ॥१॥ वेदादि कल्पित वाणीकी मानन्दीमें ब्रह्मादि पण्डित भी ठगे गये और उसी वाणीके भ्रमजालमें जाकर शेष= बाकीके और सब, एवं माने गये शेषनागादि भक्त भी ठगे गये। इन्द्रादि सम्पूर्ण देवताओंके सहित त्रिपुरारी=महादेव भी योगादि वाणीमें ठगे गये और विष्णु आदि भी उसी कल्पित वाणीकी मिथ्या भावनामें ठगे गये। पारखबोध उन किसीको भी नहीं हुआ ॥२॥ सम्पूर्ण वाणी-खानिके राज्यका महाराज बननेसे राज ठगौरीकी ठगविद्या आ करके विष्णुके ऊपर भी खूब दृढ़तासे पड़ गई। इसीसे राज्य-शक्तिसे ठगाई करनेका विशेष कला-कौशल उनको प्राप्त हुआ। सात स्वर्ग और सात पाताल; ऐसे चौदह भुवनोंके एक-मात्र चौधरी=मुखिया, मालिक, शासकरूपमें विष्णु ही सबसे बड़े श्रेष्ठ हैं, ऐसा गुरुवा लोग आकर भक्तोंके बीचमें पुराणादि वर्णन करके सुना रहे हैं। परन्तु वे भी ठगाईसे नहीं बचे ॥ ३ ॥

आदिअन्त जाकी जलक न जानी। ताकीडर तुमकाहेक मानी?॥४॥
वै उतङ्ग तुम जाति पतङ्गा । यम घर कियेउ जीवको सङ्गा ॥५॥

आदि अन्त काहु जानी नहीं, काहे डरपहु ताहि ॥ सो मिथ्या अनुमान है, रज्जुमें सर्प दिखाहि॥४॥ज्योति-स्वरूप ताको कियो, तुम भये कीट पतङ्ग ॥ यम घर जीवको सङ्ग करि, जरि जरि मरहु पतङ्ग ॥ ५ ॥

जिस ब्रह्म, ईश्वरादिके आदि-अन्तको—आदि=जन्मसे, अन्त=मरणतक और जगत्से ब्रह्मतकके भेदको भी कोई किसीने आजतक जलक=कौड़ीवत् झलक-मात्र भी

जान नहीं सका; ऐसा कहते हो, तब फिर उसका डर तुमने क्यों मान लिया ? व्यर्थ क्यों डर रहे हो ? सो तो तुम्हारा मिथ्या अनुमान भ्रम ही मात्र है। जैसे अल्प प्रकाशमें पड़ी हुई रज्जुमें सर्पवत् भ्रमसे भास होता है; किन्तु वह वास्तवमें असत्य ठहरता है। वैसे ही आदि-अन्त अज्ञात माने हुए ईश्वरादि भी वास्तवमें भ्रमरूप असत्य ही ठहरते हैं। अतः विवेक करके भ्रमको त्यागो ! ॥४॥ वह मानी हुई वाणीकी भ्रम-कल्पना तो उतङ्ग=अग्निके ज्योति-स्वरूपवत् बनी। उसे तुमने बहुत ऊँचा श्रेष्ठ मान लिया। परमात्मा ज्योति-स्वरूप है, ऐसा कहकर उस जाति=सिद्धान्तको माननेवाले तुम लोग विचारहीन कीट-पतङ्गके समान बनकर उसी धोखेमें जलकर मर रहे हो। यम=गुरुवा लोगोंके घर=ब्रह्म-ईश्वरादि कल्पित सिद्धान्तके घेरामें अपने-अपने जीवको ले जाकर, उसी भ्रमका सङ्ग-साथ कर-करके पतङ्गके समान धोखेमें जलते-जलते जड़ाध्यासी होकर मरते हो, आवागमनमें ही पड़े रहते हो।

अथवा वह स्त्री-विषयादि तो अग्निके समान जलाकर विनाश करनेवाला है; किन्तु तुमने उसे अति उत्तम श्रेष्ठ समझ लिया है। स्त्रीके विषय-भोगके घरमें अपने जीवको सङ्ग-साथ करके दीप-पतङ्गके समान मनुष्य-पदसे जलकर अन्तमें विनाश हो जाते हो। अतः अब भी परखकर उसे त्यागो ! ॥ ५ ॥

नीम कीट जस नीम पियारा। विषको अमृत कहत गँवारा ॥६॥
विषके सङ्ग कौन गुण होई ? किञ्चित लाभ मूल गौ खोई ॥७॥
विष अमृत गौ एकै सानी। जिन जानी तिन विषकै मानी ॥८॥

जैसे नीमके कीटको, नीमहि लागे पियार ॥ तैसे भग विषरूप है, अमृत कहत गँवार ॥६॥ विष विषय के सङ्ग में, कौन लाभ होय भाय ? ॥ किञ्चित सुखके कारणे, मूलहु आय गँवाय ॥७॥ विष विषय जिव अमृत, गयो एकमें सान ॥ जिन जाना निज परख ते, तिन विषये विष मान ॥ ८ ॥

जैसे नीममें उत्पन्न कीड़ेको नीम ही अत्यन्त प्रिय लगता है, वैसे ही स्त्री सम्बन्धी भग-भोग सब प्रकारसे मुक्तिपदका विनाशक हलाहल विषरूप ही है; परन्तु विषयासक्त गँवार लोग उसे अमृत तुल्य सुखदायी कहकर उसीमें भूलते हुए फँसे रहते हैं; बिना विचार ॥ ६ ॥

अथवा अनेक मत-पन्थ, ग्रन्थोंकी वाणी-कल्पनारूप नीममें लिप्त कीटवत् उसके पक्षपाती लोगोंको वे ही भ्रम-कल्पना अति प्रिय हो रही है। इसीसे योगानन्द, ब्रह्मानन्दादि सूक्ष्म विषय, जो मुक्तिपदके घातक विषरूप हैं, उन्हींको पारखहीन गँवार लोग अमृत बतलाकर भूलते-भुलाते रहते हैं ॥६॥ विषरूप अनुमान-कल्पनाकी वाणीकी मिथ्या मानन्दी और स्त्री सम्बन्धी पञ्च विषय-भोगोंके सङ्ग-साथमें लगकर हे भाई ! तुमको वास्तवमें कौन-सा गुण वा लाभ होगा ? कुछ नहीं होगा। किञ्चित् वृत्तिकी स्थिरताके सुखको तुमने जो लाभ मान लिया है, उसी कारणसे भ्रम-भूलवश अपने हाथमें आये हुए मूल=मनुष्य जीवनमें हंसपदके सद्गुण विवेक-विचार संयुक्त

मुक्तिपदको ही व्यर्थमें खो दिया। जब मूल ही खो गया, तब आवागमनमें दुःख भोगनेके सिवाय और क्या रह गया? अतः अब भी सचेत होकर पारखबोध प्राप्त करो! ॥७॥ विष = पञ्च विषय, स्त्री-भोग विषय और वाणी-कल्पनाके ब्रह्म, ईश्वरादि विषय एवं योगानन्द, ब्रह्मानन्द आदि विषय—ये सब-के-सब मुक्तिपदके विनाशक होनेसे वास्तवमें विषरूप ही हैं। दूसरी ओर चैतन्य जीव अजर, अमर, अक्षय होनेसे स्वयं ही अमृतस्वरूप है। तथापि पारखबोध न होनेसे अमृतस्वरूप जीव भ्रम-भूलसे उन्हीं विषयरूप विषमें सम्मिलित होकर एकमें सन गया। इस प्रकार विष-अमृत दोनों एकमें मिल रहे हैं। अब जिनने सद्गुरुकी कृपासे प्राप्त निज पारखबोधके बलसे विवेक-विचार करके उनको अच्छी तरहसे जान लिया, वे फिर उन सर्व विषयोंको वास्तवमें विष ही समझकर उनकी मिथ्या मानन्दीको सर्वथा त्याग देते हैं, निजस्वरूपमें स्थिर निर्बन्ध मुक्त होते हैं ॥ ८ ॥

काह भये नर शुद्ध बेशुद्धा ? बिन परचय जग बूड़ न बुद्धा ॥९॥
मतिके हीन कौन गुण कहई ? लालच लागी आशा रहई ॥१०॥

हे नर ! तुम बहु शुद्ध थे, काहे भये बेसुद्ध ? ॥ बिन परिचय प्रपञ्च की, सकलो बूड़े अबुद्ध ॥९॥ मतिहीना काहे कहो ?, जाते बुद्धि नसाय ॥ लालच लागी झूठ की, तामें जन्म गमाय ॥ १० ॥

हे नरजीव! भ्रमसे तुम शुद्धसे अशुद्ध, ज्ञानीसे अज्ञानी, जीवसे ब्रह्म, होशसे बेहोश क्या हो गया? तुम्हारा चैतन्य-स्वरूप तो शुद्ध ही है। किन्तु और भी ज्यादा शुद्ध होनेके भ्रमसे विशुद्ध केवल ब्रह्म-भ्रमकी मानन्दी करके तुम क्यों बेसुद्धा = बेहोश, अचेत, गाफिल हो रहे हो? अब क्यों सुधि-बुद्धि खोकर बेभान बन रहे हो? भ्रम-भूलमें क्यों पड़ रहे हो? खानिजाल और वाणीजाल, ये दोनों ओरके जगत्के प्रपञ्चमें भव-बन्धन ही लगा हुआ है। उन प्रपञ्चोंका परिचय = यथार्थ जानकारी हुए बिना जगत्के सम्पूर्ण अबुद्ध = बुद्धि-विचारसे हीन भ्रमिक लोग उसीमें भूलकर जड़ाध्यासी हो डूबकर मरते जा रहे हैं। अतः पारखबोधका परिचय प्राप्त करके अपना बचाव करो! ॥९॥ गुरुबुद्धिके हीन भ्रमिक लोग विवेकादि हंसगुण एवं पारखबोधकी बात कौन-क्या कहेंगे? जो उनको ही मालूम नहीं है। ऐसे मतिहीन तुम क्यों हो रहे हो? सो तो कहो! जिससे बुद्धि-विचार विनाश हो जाता है, उस भ्रम-धोखामें लगने-लगानेसे जीव मतिहीन हो रहा है। अब उसे गुणकी बात कहनेसे भी कौन ग्रहण करेगा? क्योंकि विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादि मिथ्या धोखाका लोभ-लालच उन सबको खूब लगा है। खानि-वाणी प्रपञ्चका खूब आशा-भरोसा ले रहे हैं। वही उनके मनमें टिका है। उसीमें वे मनुष्य-जन्म व्यर्थ ही बिता रहे हैं, और आशा-तृष्णाके कारण जगत् बन्धनमें खूब बँधे पड़े हैं ॥ १० ॥

साखीः—मूवा है मरि जाहुगे। मुये कि बाजी ढोल ॥
सपन सनेही जग भया। सहिदानी रहिगौ बोल ॥११॥

साखीः—गाया है सो मरि गया, गावै सो मरि जाय ॥ जाके भरोसे नाचत हो, ढोल बजाय बजाय ॥११॥ स्वप्नवत् जग हो गये, ऋषी और अवतार ॥ बचन निशानी रहि गया, जो उनका ब्यवहार ॥ १२ ॥

भूतकालमें ब्रह्मादि जितने भी बड़े-बड़े हो गये, वे सब भी बिना पारख जड़ाध्यासी हो-होकर समयानुसार मरते गये। अब आयु पूर्ण होनेपर तुम सब लोग भी मर जाओगे, अध्यासवश आवागमन-चक्रमें ही पड़ते रह जाओगे। मृतक पशुका चर्म मढ़ा हुआ ढोल बजा बजाकर नट, बाजीगर लोग खेल-तमाशा देखाकर केवल स्वार्थ सिद्ध करते हैं। तद्वत् प्रथमके बद्ध जड़ाध्यासी मृतक मनुष्योंकी कही हुई बाजी=वाणीका ढोल बजा-बजाकर अनेक मतवादके खेल-तमाशा देखानेवाले भी स्वार्थकी ही सिद्धिमें लगे हैं। क्योंकि वे सब स्वप्नवत् ध्यान-धारणादिमें देखाई देते हुए ज्योति-प्रकाश, आनन्द, अनहद नाद इत्यादि सूक्ष्म विषयोंको ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादि मानकर भ्रमसे स्नेह करनेवाले वैसे सब जगत्के जीव भ्रमिक स्वप्न-स्नेही हुए और हो रहे हैं। पारख-स्वरूपकी स्थिति न होनेसे वे प्रथमके सब जीव आवागमनमें पड़े दुःख भोग रहे हैं। अब केवल उनके बोल=वाणी—वचनकी सहिदानी=चिन्ह, निशानी मात्र रह गई है। अब उसीके भरोसामें पड़नेवाले अबोध सब लोग भी अन्तमें चौरासी चक्रमें पड़े दुःख भोगते रहेंगे, बिना पारख ॥ ११ ॥

अथवा जिसने प्रथम वेद-कुरानादि वाणी गायी थी, बिना पारख जड़ाध्यासी होकर वह तो उस समयमें ही मर गया। अब जो वही वाणी गायेंगे वा गा रहे हैं, वे भी भ्रम-बन्धनमें बँधकर मर जायेंगे। हे मनुष्यो! जिस ईश्वर, खुदादिके भरोसे गुरुवा लोगोंकी कल्पित वाणीका ढोल बजा-बजाकर तुम लोग नाचते-कूदते गाते जा रहे हो; किन्तु वह मिथ्या भ्रम-धोखा तुमको चौरासी चक्रके आवागमनसे कभी नहीं बचायेगा। अन्तमें मरकर दुःख ही भोगोगे ॥११॥ दश अवतार वा चौबीस अवतार और ऋषि-मुनि, महर्षि, बड़े-बड़े पण्डित, योगी, ज्ञानी, भक्त प्रथम जो जितने भी हुए, वे समयानुसार मर-मरके चले गये। जगत्में उनके सम्पूर्ण कार्य स्वप्नवत् विलीन, अदृश्य हो गये। उनकी मिथ्या मानन्दीसे जब उनका ही बन्धन नहीं छूटा, तब तुम्हारा बन्धन क्या छूटेगा? जैसा उनका कार्य स्वप्नवत् मिथ्या हो गया, वैसा तुम्हारा भी होगा। अब तो उनके केवल वचन-मात्रकी ही एक निशानी रह गई, जो वेद, शास्त्र, पुराणोंमें लिखी है। उनका आचार-विचार, व्यवहार ऐसा था, इत्यादि जीवन-चरित्र पण्डितोंने जैसा कुछ लिख दिया है, वैसी ही वाणी मात्र बाकी है। वही वाणी पढ़ने-मात्रसे अब तुम्हारा हित-कल्याण कुछ हो नहीं सकता है। उनका कर्त्तव्य उनके साथ गया और तुम्हारा कर्त्तव्य तुम्हारे साथ जायगा। अतः पारखबोध प्राप्त करके भ्रम-भूल मिटाकर अपना हित-कल्याण करो! ॥ १२ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ १२ ॥ ❁ ॥

माटिक कोट पषाण को ताला। सोइक बन सोई रखवाला॥१॥

सो बन देखत जीव डेराना । ब्राह्मण--वैष्णव एकै जाना ॥२॥

टीका; गुरुमुख–दोहाः—ब्रह्म भरमके कोटमें, जड़ बुधि ताला दीन्ह ॥ ताहिकि सब बानी बनी, ताहिको रक्षक कीन्ह ॥१॥ सो बानीको देखिके, भये जीव भयमान ॥ ब्राह्मण वैष्णव सबन मिलि, कहा एक भगवान ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—पिण्ड–ब्रह्माण्डकी सुरक्षाकी दृष्टिसे, माटिक= पृथ्वीवत् सर्वाधिष्ठान सर्वव्यापक कोई एक ब्रह्म है, ऐसी भ्रम–भूलकी मिथ्या मानन्दीसे कोट=एक परकोटा, कीला बनाकर वाणीसे घेर दिया। उसमें पषाण= पत्थरके समान कठोर अचेत जड़त्त्व बुद्धिका ताला लगा दिया। सब ब्रह्मज्ञानी अपने–आप अद्वैत ब्रह्म बन गये। उसी भ्रमकी महिमा बढ़ाकर कल्पनासे सब वेदादि वाणी बनती गई। उसीको अपना रक्षक भी मान लिये। गुरुवा लोग उसी वाणीका घेरा डालकर सब शिष्योंकी रखवाली कर रहे हैं॥१॥ सो उसी बन=वेद–शास्त्रादिकी भयानक वाणीको देख–सुन करके सब अबोध नरजीव घबराकर भयभीत हो रहे हैं। चार वर्णरूप गृहस्थोंमें बड़े बने ब्राह्मणोंने और षट्दर्शनोंके भेषमें श्रेष्ठ बने वैष्णव आदि सब गुरुवा लोगोंने मिलकर—सर्वशक्तिमान् एक भगवान् ही सत्य है, वही सबका मालिक है; ऐसा जानकर उसीकी भाव–भक्तिमें लगे रहो! इत्यादि कहकर सबको भ्रम–धोखेमें डालकर भुला रहे हैं॥ २॥

ज्यों किसान किसानी करई। उपजे खेत बीज नहिं परई ॥३॥
छाड़ि देहु नर झेलिक झेला। बूड़े दोऊ गुरू औ चेला ॥४॥

ज्यों किसान खेती करै, उपजै खेत निदान ॥ तैसी बहु शाखा बढ़ी, चले पन्थ सहिदान ॥३॥ छाड़ि देहु नर बानिको फन्द, तोहि कहौं समुझाय ॥ गुरु शिष्य दोऊ बूड़ि गये, या फन्दामें भाय ॥ ४ ॥

जैसे किसान किसानी=खेतीका कार्य जब अच्छी तरहसे कर लेता है, तब उसके खेतमें फसल तो खूब उत्पन्न हो जाती हैं; परन्तु यदि किसी साल निदान=अन्तमें उन फसलोंमें बीज=दाना ही नहीं लगा, खाली छिलका, तूस, भूसी-मात्र पोला, पोचा हो गया, तब उसका मेहनत व्यर्थ हो जाता है।

तद्वत् किसानरूप गुरुवा लोग संसाररूप खेतमें अनेक मत–पन्थोंके उपदेशरूप बीज बोकर किसानी तो खूब कर रहे हैं, उससे संसारमें उनकी बहुत-सी शिष्य-शाखाएँ बढ़ती गईं, मत–पन्थ, ग्रन्थोंका प्रचार भी खूब हो गया, वाणीका सहिदान= चिन्ह, निशानी भी मिल गई; परन्तु अन्तमें बीज=सबका कारणरूप माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादिकी प्राप्ति उन किसीको भी नहीं हुई और वे किसीको मिल भी नहीं सकते हैं। भव-बन्धनका बीज न छूटनेसे उनके साधनसे लाभ किसीको भी नहीं हो रहा है ॥३॥ हे नरजीव ! मैं तुमको समझा करके कहता हूँ—अब भी यथार्थ परख करके झेलिक-झेला=इस खानि–वाणीजालके खींचतान करनेवाले फन्दाको सर्वथा छोड़

ही दो ! क्योंकि अनेक मत-पन्थोंके गुरु और चेला = शिष्य, वे दोनों भी उसी कल्पित वाणीके फन्दामें पड़कर अनेक मिथ्या भावनाएँ करते हुए भ्रमकी धारामें डूबकर जड़ाध्यासी हो गर्भवासके रसातलमें पहुँच गये। यदि अब भी तुम लोग झेलिक-झेलाको नहीं छोड़ोगे, तबतो वैसे ही तुम डूब मरोगे। अतः सचेत हो जाओ ! ॥ ४ ॥

तीसर बूड़े पारथ भाई ! जिन बन डाहे दवाँ लगाई ॥५॥
भूँकि भूँकि कूकुर मरि गयऊ। काज न एकौ सियारसे भयऊ ॥६॥

तीसर ब्रह्मादिक सबै, पण्डित बूड़े धाय ॥ बिरह अग्नि परचाय के, सब जग दीन्ह जराय ॥५॥ ब्रह्मादिक पण्डित सबै, भूँकि भूँकि मरि जाय ॥ वेद भरोसा किये ते, काज न काहु बनाय ॥ ६ ॥

जिनने खाण्डव वनको दवाँ = अग्नि लगाकर डाहे = भस्म कर दिया था, वे तीसरे पारथ = अर्जुन अपने अन्य चारों भाई सहित खानि-वाणीकी धारामें डूब गये।

अथवा पहलेके गुरु ब्रह्मादिक, दूसरे चेले सनकादिक और तीसरे पारथ = पराके परे कोई ब्रह्म है, ऐसा अर्थ करनेवाले व्यासादि सम्पूर्ण पण्डित लोग भी धाय-धायके जाकर कल्पित वाणीकी गहरी धारामें ही डूब गये। जिन भ्रमिक गुरुवा लोगोंने संसारमें बन = अनेक प्रकारकी कल्पित वाणी बनाकर दवाँ = विरहाग्नि प्रज्ज्वलितकर, वही प्रचार करके सब जगत्-जीवोंके बुद्धि-विचारको जलाकर भस्म कर दिया और करते जा रहे हैं, वे भी उसी अग्निमें जलकर, आवागमन-चक्रमें पड़कर दुःख भोग रहे हैं ॥५॥ जैसे कुत्ता भूँक-भूँककर मर गया। सियारसे एक काज भी उसका सिद्ध नहीं हुआ। तद्वत् कूकुर = ब्रह्मादिसे लेकर सब पण्डित लोग—कोई एक ब्रह्म-परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, इत्यादि वाणी-कल्पनाको भूँकि-भूँकि = वर्णन कर-करके जड़ाध्यासी बद्ध बनकर मरते गये और मरते जा रहे हैं। परन्तु सियार = वेदादि वाणीका भरोसा करनेसे उन किसीके भी जीवन-कल्याणका कार्य एक भी सिद्ध नहीं हुआ। भ्रम-भूलसे मुक्तिका कार्य किसीका नहीं बन सकता है ॥ ६ ॥

साखीः—मूस बिलाई एक सङ्ग। कहु कैसे रहि जाय ? ॥
अचरज एक देखो हो सन्तो ! हस्ती सिंघहि खाय ॥१२॥

साखीः—माया जीवहि एक सङ्ग, कहु कैसे रहि जाय ? ॥
अचरज एक देखो हो सन्तो !, धोखा जीवहि खाय ॥ ७ ॥

मूस—बिलाई सर्वदा एक सङ्गमें कहो—कैसे रह जायेंगी ? हे सन्तो ! एक आश्चर्यको तो देखो ! हस्ती ही सिंहको खाता है ॥ १२ ॥

तद्वत् मूस = अबोध जीव और बिलाई = मायारूप गुरुवालोग एवं स्त्री; इन दोनोंके सङ्ग-साथमें सर्वदा सुखी होकर कहो तो भला ! जीव कैसे रह जायगा ? किन्तु खानि-वाणी-जालमें पड़कर सर्वदा बद्ध, दुःखी ही होता रहेगा। हे सन्तो ! एक

आश्चर्यको और भी विचार-दृष्टिसे देखो—हस्ती=हाथसे लिखी हुई मिथ्या वेदादि वाणी और हाथसे विवाह करके लाई हुई स्त्री; इन मोटी-झीनी मायाका भ्रम-धोखा ही सिंह=चैतन्य जीवरूप पुरुषको भ्रमा-भुलाकर उसके बुद्धि-विचारको खाकर विनाश कर रहा है ॥ ७ ॥ १२ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ १३ ॥ ❀ ॥

नहिं परतीत जो यह संसारा । दर्वकी चोट कठिन कै मारा ॥१॥
सो तो शेषो जाय लुकाई । काहूके परतीत न आई ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—नहिं प्रतीत संसार में, बिसरि गयो सब भान ॥ शब्द बान हृदया लगे, जो माये फूँका कान ॥१॥ श्रवण द्वार होय सञ्चरा, रहा हृदय दृढ़ होय ॥ काहूके प्रतीत नहीं, कितनहुँ कहौं सँजोय ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—मेरे पारखबोध-दायक सत्योपदेश जो है, सो इस संसारमें किसीको भी परतीत=विश्वास नहीं होता है। क्योंकि मिथ्याकी प्रतीतिमें ही सब भूले पड़े हैं। इसीसे अपने सत्य स्वरूपका भान=ज्ञान, समझ सब भूल गये हैं। जो मायारूप गुरुवा लोगोंने दर्व=माने हुए धनरूप रोचक-भयानक वाणीकी चोट छूटनेको कठिन करके खूब मार दिया है, कल्पित वाणीके अनेक मन्त्र कानमें फूँक मार दिये हैं, वही शब्द-बाण कर्णद्वारा हृदयमें जाकर खूब धसके लग गया वा गड़ गया है। उससे मूर्च्छित, बेहोश हो-होकर मनुष्य पदसे विनाश होते जा रहे हैं। इसलिए सत्यका प्रतीत कोई नहीं करते ॥१॥ सो भ्रमिक गुरुवा लोगोंने तो शेषो=श्रेष्ठ चैतन्य जीव, जिनको पारखबोध होना बाकी है, उन अबोधको ले जाकर वाणी-कल्पनाका महा आवर्ण, परदा लगाकर भ्रम-धोखाकी गुफामें लुकाई=छिपा दिया और अनेक प्रकारकी रोचक-भयानक वाणी सुना-सुनाकर दृढ़ा दिया। वही कल्पित वाणी मनुष्योंके श्रवणद्वार होकर अन्तरमें सञ्चरा=प्रवेश करके फैल गई। वही हृदयमें दृढ़ होकर जमकर बैठ गई है। इस कारण मैं कितना ही सत्य निर्णय समझाकर कहता हूँ; तथापि मेरा सत्य निर्णय उन किसीको भी प्रतीत=विश्वास, निश्चय नहीं होता है। चाहे कितना ही सारशब्द एकत्र करके कहो तो भी उनकी समझमें नहीं आता है ॥ २ ॥

चले लोग सब मूल गमाइं । यमकी बाढ़ि काटि नहिं जाई ॥३॥
आजु काज जो काल अकाजा । चले लादि दिगन्तर राजा ॥४॥

मूल गमाये लोग सब, धाये यमपुर जाय ॥ यम बानी ऐसी बढ़ी, कोइ न काटि सिराय ॥३॥ अबहिं करो तो काज है, मुये होय अकाज ॥ बानी बहुत सञ्जोय के, चले दृढ़ावन राज ॥ ४ ॥

ऊपर बताये गये कारणोंसे विवेक-विचारहीन सब लोग मनुष्य-पद वा हंस-पदका मूल ही गमाकर धाय--धाय करके स्त्री और गुरुवा लोगोंके यमपुरके घेरामें चले जा रहे हैं। अतएव उन किसीसे भी स्त्री और गुरुवारूप यमकी वाणी--कल्पना और विषयोंकी बाढ़ि=खूब बढ़ी हुई, विस्तार, वृद्धि, तेजी, जोर, बढ़ाव तो ऐसा बढ़ गया कि अब उसे कोई काटकर समाप्त करके आगे बढ़नेमें समर्थ नहीं हो रहे हैं, उसीमें भूलकर बँधे पड़े हैं ॥३॥ यदि आजु=अब वर्तमानके नरजन्ममें जीवित अवस्थामें ही पारखबोध प्राप्त करके भ्रम--भूलके सब कर्त्तव्योंको त्याग करोगे और पारखी सद्गुरुके शरण--सत्सङ्गमें लगकर सुधार करोगे, तब तो तुम्हारे कल्याणका कार्य पूर्ण हो सकता है। जो यदि खानि--वाणीमें ही सम्पूर्ण आयु बिताकर जड़ाध्यासी होकर मर जाओगे, तब तो तुम्हारा महान् अकाज होगा। इस बातको अच्छी तरहसे समझो! भ्रमिक लोग अनुमान--कल्पनाकी वाणीका बहुत बोझा एकत्र करके अपने शिरपर उसे लादकर, दिगन्तर=दशों दिशाओंमें ब्रह्म परिपूर्ण व्यापक है, ऐसा ब्रह्मज्ञानका राज दृढ़ानेके लिए वे ही गुरुवा लोग राजा बनकर सब संसारमें भ्रमण करते लोगोंको भुलाते जा रहे हैं। उनके भ्रम--धोखेको परखकर न्यारे हो रहो! ॥ ४ ॥

सहज विचारे मूल गमाई। लाभ ते हानि होय रे भाई ॥५॥
ओछी मति चन्द्रमा गौ अथई। त्रिकुटी सङ्गम स्वामी बसई ॥६॥

वह बानीको श्रवण करि, लाभ जानि जिव धाय ॥ लाभ नहीं वह हानि है, धोखे जन्म गँवाय ॥५॥ मायामुखः—ब्रह्मज्ञान के बीचमें, यह मन गये थिराय ॥ दोऊ नेत्रन पलटि के, त्रिकुटी ध्यान लगाय ॥ ६ ॥

गुरुवा लोगोंकी वही रोचक वाणीको श्रवण--मनन करके सहज=आकाशवत् निराकार ब्रह्मका सहज ही विचार करके और कोई विषयी लोग सांसारिक सुखोंको सोच--विचारके दृढ़कर, उनसे हमें ब्रह्मानन्द और विषयानन्द-प्राप्तिका लाभ होगा, ऐसा जानकर वा मानकर अबोध जीव धाय--धायके उधर ही चले जा रहे हैं, जिससे अपने हंसपदका मूल ही गँवाके भव-बन्धनमें बँधे पड़े हैं। परन्तु हे भाई! खानि--वाणीमें फँसकर लाभ तो कुछ भी नहीं होता है, प्रत्युत मुक्ति-पदका विनाश होनेसे बड़ी भारी हानि होती है। लाभके धोखेसे हानि हो गई। कल्याणके धोखेसे भव-बन्धनमें पड़ गये। बिना पारख मिथ्या धोखेमें ही अपना जन्म गँवाकर भूले पड़े हैं। अब भी सचेत होओ! ॥ ५ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—मति=बुद्धिको ओछी=सूक्ष्म, छोटी करते--करते ब्रह्मज्ञानके बीचमें ले जाकर टिकाओ! चन्द्रमा=मनको और गौ=दशों इन्द्रियोंके सहित मति=बुद्धिको भी अन्तरमें ब्रह्म-स्वरूपमें ही ले जाकर अथई=स्थित, अस्त, लय स्थिर कर दो! दोनों नेत्रोंको ऊपर करके त्रिकुटीमें एकाग्रतासे ध्यान लगाओ! जब मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ सब विलय होकर स्थिर हो जायेंगी, तब त्रिकुटी-स्थानमें

ईड़ा, पिङ्गला, सुषुम्नारूप गङ्गा, यमुना, सरस्वती; इन तीनोंका सङ्गम=मिलाप होता है। वहीं स्वामी=परब्रह्म परमात्मा ज्योति-स्वरूपमें रहते हैं। उनके अलौकिक दर्शनका लाभ होगा, तब तुम कृतकृत्य हो जाओगे! इत्यादि ॥ ६ ॥

तब ही विष्णु कहा समुझाई। मैथुन अष्ट तुम जीतहु जाई ॥७॥
तब सनकादिक तत्त्व विचारा। जैसे रङ्क परा धन पारा ॥८॥

गुरुमुखः—तब गुरुवन वैराग्य बहु, जीवन दीन्ह दृढ़ाय ॥ मैथुन अष्ट प्रकार का, ताको जीतहु जाय ॥७॥ तब सब शिष्यन मिलिके, कीन्हों तत्त्व विचार ॥ जैसे महा कङ्गालको, पायौ द्रव्य अपार ॥ ८ ॥

गुरुमुखः—तदुपरान्त विष्णु आदि गुरुवा लोगोंने और भी रोचक वाणी समझाकर खूब कही, तपस्यादिसे कठोर वैराग्य धारण करनेके लिए बहुत प्रकारसे अबोध जीवोंको दृढ़ा दिया। 'प्रथम तो तुम लोग अष्ट प्रकारके मैथुनोंको सर्वथा परित्याग करके अपने मनको विषय-वासनासे हटाकर वैराग्यके बलसे जीतो! फिर जाकर भक्ति, योग, ज्ञान, ध्यानादिकी साधना करो, तब परमात्माके स्वरूपमें मिलोगे' इत्यादि बतलाया ॥७॥ ऐसा उपदेश सुनकर तत्पश्चात् सनकादिकसे लेकर सब शिष्य लोग मिल करके ध्यान-धारणादिके उपायसे ब्रह्म-तत्त्वका विचार करने लगे, वृत्तिकी स्थिरतासे आनन्द प्राप्त होनेपर अत्यन्त प्रसन्न हो गये। जैसे रङ्क=महान् कङ्गाल, दरिद्रको कहीं पड़ा हुआ अपार द्रव्य प्राप्त होनेपर अत्यन्त प्रसन्नता होती है, वैसे ही परमतत्त्वका विचार करनेवाले साधक लोग भी अपने ही अनुमानमें मिलकर निहाल हो गये; बिना विचार ॥ ८ ॥

भौ मर्य्याद बहुत सुख लागा। यहि लेखै सब संशय भागा ॥९॥
देखत उतपति लागु न बारा। एक मरै एक करै विचारा ॥१०॥
मुये गये की काहु न कही। झूँठी आश लागि जग रही ॥११॥

भौ मर्य्यादा ब्रह्मको, सुखमें मन ललचाय ॥ याही लेखा जानिके, संशय गयो पराय ॥९॥ देखत उत्पति जगत की, लागत नहिं कछु बार ॥ एकै खोजत मरि गये, एकै करत बिचार ॥१०॥ खोजत-खोजत मरि गये, तिनको कोइ न बताय ॥ झूठी आश जगतमें लागी, भोंदू ताहि भुलाय ॥ ११ ॥

भक्ति, योग, ज्ञानके उपदेशद्वारा एक अद्वैत ब्रह्म-परमात्मा है, ऐसा निश्चय मनुष्योंको करा देनेसे उन गुरुवा लोग और ब्रह्मज्ञानकी खूब मान-मर्यादा, महिमा संसारमें होती गई। इस कारण उन गुरुवा लोगोंके मनमें बहुत सुख होने लगा। वैसे सुखमें उनका मन खूब ललचाकर फँस गया। ब्रह्मज्ञानकी मर्यादासे मान-प्रतिष्ठा,

यश-कीर्ति, द्रव्यादि प्राप्तिका लाभ होनेसे, उसीको लेखै=प्रत्यक्ष देख करके, लेखा-जोखा लगाकर 'अब हमको ब्रह्म-प्राप्ति हो गई, हम ब्रह्ममें मिल गये' ऐसा समझकर, इसी लेखाको जानकर वा मानकर, प्रथम जो संशय बाकी था, सो अब उनके मनसे दूर भाग गया। अब हमको कुछ प्राप्त करना बाकी नहीं है, ऐसा दृढ़ निश्चय करके भ्रम-धोखेमें पड़ गये ॥९॥ आज जिसकी उत्पत्ति=जन्म होता हुआ देख रहे हो, फिर कल वा कालान्तरमें उसीका विनाश होनेमें भी बारा=देर कुछ नहीं लगती है। वैसा ही मान-मर्यादादि भी सम्पूर्ण नाशवान् क्षणभङ्ग है। अभी जिस बातमें तुमको सुख लग रहा है, फिर उसी बातमें दुःख भी लग जायगा। अभी जगत्‌रूप ब्रह्म अपनेको मानकर भूल रहे हो, मृत्यु होनेपर पुनः चौरासीके दुःख-भोगोंसे कभी बच भी नहीं सकोगे। इसलिए जगत्‌में उत्पत्ति-प्रलयरूप जन्म-मरण जैसा देख रहे हो, ब्रह्म बनकर भी अध्यासवश उसीमें पड़े रहोगे। वैसा होनेमें कोई देर नहीं लगती है। एक ब्रह्मको खोजते-खोजते पहलेके सब लोग तो जड़ाध्यासी बद्ध हो मरकर चौरासी चक्रमें ही चले गये। अब तुम लोग भी एक अद्वैत ब्रह्मका विचार कर रहे हो, अन्त-में उसी प्रकार जड़ाध्यासी बद्ध हो मरकर आवागमनमें पड़ जाओगे। मुक्तिकी स्थिति कुछ भी नहीं होगी। अतः यथार्थ विचारकर भ्रमको त्यागो! ॥१०॥ ब्रह्म-ईश्वरादिको खोजते-खोजते जड़ाध्यासी बद्ध होकर अबतक बहुत-से लोग मर-मरके चले गये। वे कहाँ गये? कहाँ ठहरे हैं? कहाँ मिले? इस बातका यथार्थ भेद कहकर कोई भी भ्रमिक गुरुवा लोग नहीं बता सकते हैं। पहलेवालेको भी सत्यका बोध किसीने नहीं बताया और अबवाले भी पारखबोधसे अनजान हैं। ब्रह्ममें मिल गये वा स्वर्गादिमें गये; ऐसा कल्पनासे लिख रक्खे हैं। किन्तु अध्यासी जीव चौरासी चक्रके आवा-गमनमें ही पड़े रहते हैं। सर्वथा झूठी आशा ही जगत्‌में अबोध जीवोंको लग रही है। भोंदू=अबोध मूर्ख लोग उसीसे भूल रहे हैं। भ्रमिक गुरुवा लोग उनको खूब भुलाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। कोई बिरले पारखी सन्तजन इसे यथार्थ जानकर न्यारे रहते हैं ॥ ११ ॥

साखीः—जरत जरत ते बाँचहू। काहु न कीन्ह गोहार ॥
विष विषय के खायहू। राति दिवस मिलिझार ॥१३॥

साखीः—गर्भवासमें जरत थे, बचै मनुष्य तन पाय ॥ अबहुँ न कीन्ह गोहार तुम, पुनि जग चले जहँड़ाय ॥१२॥ ये विषया तो विष भया, सब जग खाया झार ॥ राति दिवस तामें रते, कोइ एक बचै सम्भार ॥ १३ ॥

जड़ाध्यासवश जन्म-मरण त्रयतापादि अनन्त दुःख जीव भोगता ही चला आ रहा है। माताके गर्भवासमें भी जठराग्निके आँचमें जन्मसे पहलेतक जीव जलता ही था। जन्मका दुःख सहकर बाल्यावस्थादिके अनेक दुःख सहता ही है। इस प्रकार पशु आदि योनियोंमें जलते-जलते, दुःख भोगते-भोगते आया। अभी मनुष्य-देह पाकर तीन खानियोंकी परवशताके दुःखोंसे तो जीव बचा है। यदि पारख-स्वरूपका

बोध प्राप्त करके सर्व जड़ाध्याससे रहित हो जाओगे, तबतो आवागमनादिके सब दुःखोंसे सदाके लिए अवश्य बच जाओगे ! ऐसा होनेपर भी हे नरजीव ! तुम पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें जाकर अपने हित-कल्याणके लिए पारखबोध प्राप्त करनेका गोहार=विनय, पुकारा अबतक भी नहीं किया। तुममेंसे किसीने भी ऐसा पुकारा नहीं किया और करना भी नहीं चाहते हो ! इस कारण पुनः जगत्की खानि-वाणीमें बँधकर जहँड़ाय=धोखेमें पड़के अपनी महान् हानि उठाकर फिर उसी चौरासी चक्रमें चले जा रहे हो ! अब भी तो सचेत हो जाओ ! ॥१२॥ जगत्-विषय, ब्रह्म-विषय, स्त्री आदि पञ्च विषय; ये सम्पूर्ण मोटी-झीनी विषय तो कालकूट विषके समान मुक्ति-पदके विनाशक हो रहे हैं। किन्तु दिनरात, ज्ञानी-अज्ञानी मनमाने विषयोंमें सम्मिलित होकर झार=सम्पूर्ण जगत्-जीवोंने उन्हीं विषयोंको समेटकर खूब खाया वा उनको ग्रहण करके बद्ध हुआ। दिनरात उन्हींमें आसक्त, रत होकर फँसे पड़े हैं। अब उनमेंसे जो कोई एक बिरले मुमुक्षुजन पारखी सन्तोंके सत्सङ्गमें लगकर, अपनेको सम्हालकर कर्त्तव्योंका सुधार करेंगे, खानि-वाणीके अध्यासोंको त्यागेंगे, वे ही पारखबोधके प्रतापसे बचेंगे। अतः अपना बचाव करो ! ॥ १३ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ १४ ॥ ❀ ॥

बड़ सो पापी आहि गुमानी। पाखण्डरूप छलेउ नर जानी ॥१॥
बावनरूप छलेउ बलि राजा। ब्राह्मण कीन्ह कौनको काजा ? ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहा—जाके गर्व गुमान बहू, बड़ सो पापी आहि ॥ ब्राह्मणरूप धरि जगतको, छले सबनको जाय ॥१॥ बामनरूप भगवन्त धरि, जाय छले बलिराज॥ ब्राह्मण कीन्हों कौनको, कहौ ! भला शुभ काज ? ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जिसके मन, बचन, कर्ममें अत्यन्त ही ज्यादा गर्व=अभिमान, गुमान=घमण्ड भरा रहता है, वैसे गुमानी=घमण्डी लोग, सो वे ही बड़े पापी=दोषी, पापके मूलकारणरूप होते हैं। पाखण्ड=छल, कपट, धूर्त्तता, ढोंग, सत्यसे विरुद्ध आचरणका कपट-स्वरूप ब्राह्मणोंने धारण करके जगत्के सब अबोध नरजीवोंको जान-बूझकर जा-जा करके छला, ठगा। अब भी वैसे ही छल-कपटसे ठग रहे हैं। इसलिए वे बड़े दोषी बने हैं ॥१॥ पुराणोंके वर्णन अनुसार विष्णु भगवान् स्वयं ही ब्राह्मण कश्यपके पुत्र वामनका रूप धारण करके दानी बलिराजा के यज्ञमें जाकर, उसको प्रतिज्ञाबद्ध कराके छल-बल-कपटसे बाँध लिये ! अब कहो तो भला ! इन छली-कपटी ब्राह्मणोंने किसकी भलाई, हित-कल्याणका शुभ कार्य किया ? किसीका नहीं ॥ २ ॥

ब्राह्मण ही सब कीन्हीं चोरी। ब्राह्मण ही को लागल खोरी ॥३॥
ब्राह्मण कीन्हों वेद-पुराना। कैसेहु कै मोहिं मानुष जाना ॥४॥

साँची वस्तु छिपायके, झूँठ दीन्ह प्रगटाय ॥ सब संसारके बीचमें, आपुहि देव कहाय ॥३॥ ब्राह्मण अपनी उक्तिसे, वेद पुराण बनाय ॥ कैसेहु कै मोंहि मानुष जानै, वेद नारायण आय ॥ ४ ॥

ब्राह्मणोंने ही छल-कपट, प्रपञ्चकी वाणीसे सत्य चैतन्य सार वस्तुरूप जीवके स्वरूपको छिपा करके सरासर झूठी अनुमान-कल्पनाकी वाणी संसारमें प्रकट कर दिया। इसलिए सत्यको छिपानेकी सब चोरी ब्राह्मणोंने ही की है। सब संसारके बीचमें आप ब्राह्मण लोग ही भू-देव, श्रेष्ठ गुरु-पुरोहित कहलाते हैं। किन्तु दूषित कर्म, जीव-हिंसादि करने-करानेके कारण सब प्रकारकी खोरी=दोष भी ब्राह्मणोंको ही लगता आ रहा है ॥३॥ प्राचीनकालमें ब्रह्मादि ब्राह्मणोंने अपनी उक्ति=वाणी-कथनसे चार वेद, व्यासादिने अठारह पुराणादि एवं अनेक स्मृति आदि ग्रन्थोंको बना दिया है। किसी तरहसे भी हम ब्राह्मणोंको सब मनुष्य लोग बड़े देवताके रूपमें सर्वश्रेष्ठ मान लेवें, इस भावसे अपने स्वयं ही कल्पित कथन करके—'यह वेद नारायणका वचन है कि ब्राह्मणोंको सर्वश्रेष्ठ मानकर उनके पाँव पूजो और उन्हें दान-दक्षिणा दो, तभी तुम सबोंका कल्याण होगा' इत्यादि बताकर सबको भ्रमा-भुला रहे हैं ॥ ४ ॥ +

एकसे ब्रह्मै पन्थ चलाया। एकसे हंस गोपालहि गाया ॥५॥
एकसे शम्भू पन्थ चलाया। एकसे भूत-प्रेत मन लाया ॥६॥
एकसे पूजा जैनि विचारा। एकसे निहुरि निमाज गुजारा ॥७॥

कोइ ब्रह्मा कोइ हंस गोपाल, कोई शम्भु विचार ॥
कोइ भूत प्रेत कोइ जैनी, कोइ निमाज गुजार ॥ ५ ॥

कोई एकने ब्रह्मा बनकर ब्राह्मणोंका पन्थ कर्मकाण्ड चलाया। कोई एक दूसरेने विष्णु बनकर उपासनाका पन्थ चलाया। विष्णुका हंस-अवतार कहा है। बाल-गोपाल कृष्णको भी विष्णुका ही हंसगोपाल अवतार वर्णन किया है ॥५॥ और कोई एक तीसरे शम्भुने शैवमार्ग एवं योगमार्गका पन्थ चला दिया है। उनके अनुयायी उसी वाणी-कल्पनाका ही विचार करनेमें भूले पड़े हैं। कोई एक चौथेने भूत-प्रेतकी उपासना करके सिद्धि प्राप्त करनेमें अपने मनको लगाया। वे तामसी हिंसक लोग जीव-हिंसा, वलिदानादि अकर्म करने-करानेमें लगे हैं ॥६॥ कोई एक पाँचवेंने जैनी बनकर ऋषभदेवसे महावीर पर्यन्त चौबीस तीर्थङ्करोंकी जड़ मूर्त्तियोंकी पूजा कर-कराके जैन-सिद्धान्तका विचार करनेमें लगे हैं और कोई एक छठवेंने मुसलमान बनकर कल्पनासे खुदाको रिझानेके लिए जमीनमें निहुर-निहुरकर निमाज पढ़कर निर्वाह करके, अपनी आयुका समय गुजारने लगा। इस प्रकार संसारमें वैसे षट्दर्शनोंके पाखण्डका विस्तार हुआ ॥ ७ ॥

कोइ काहूका हटा न माना। झूठा खसम कबीर न जाना ॥८॥

यहि बिचार निशिवासर करहीं, कोई हटा न मान ॥
झूठा खसम दृढ़ावहीं, सोइ जीवन सब जान ॥ ६ ॥

ऊपर कहे अनुसार षट्दर्शनोंसे छियानवे पाखण्डोंका विस्तार एवं अनेक मत-पन्थोंका प्रचार संसारमें अन्धाधुन्ध हो गया। दिनरात उनके अनुयायी लोग अनुमान-कल्पनारूप यही ब्रह्म-ईश्वरादिका विचार, हठ-पक्ष करते-कराते रहते हैं। अतएव वे कोई भी किसीका कहा, समझाया, हटाया हुआ यथार्थ बात भी नहीं मानते हैं। कोई एक जगत्‌का मालिक है, ऐसी झूठी ही वाणी दृढ़ाते फिरते हैं। उसीको सब अबोध जीवोंने भी सत्य जानकर मान लिया है। किन्तु वे माने हुए ईश्वर, खुदादि खसम=मालिक, पति वास्तवमें झूठा, कल्पित वाणी-मात्र हैं। इस भेदको कबीर=अबोध जीवोंने बिना पारख नहीं जाना। सब भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं ॥८॥६॥

तन-मन भजि रहु मोरे भक्ता। सत्य कबीर सत्य है वक्ता ॥९॥
आपुहि देव आपु है पाँती। आपुहि कुल आपू है जाती ॥१०॥

मायासुखः—तन-मनसे निश्चय करो, सुमिरो श्री भगवान ॥ साँचे प्रभु-जी आपु हैं, साँचेहि वेद बखान ॥७॥ आपुहि देवन देव हैं, पत्र पत्रमें आप ॥ आपुहि कुल औ जाति हैं, भ्रमवश होय सन्ताप ॥ ८ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—हे मेरे प्रिय भक्तो! अब तुम लोग अपने तन-मनसे निश्चय करो कि एकमात्र श्रीभगवान् ही सत्य हैं। उन्हींका दिन-रात नाम-स्मरण, भजन करते रहो! उसीसे तुम्हारा कल्याण होगा। सत्य कबीर=आप परमेश्वर प्रभुजी एकमात्र सत्य हैं। वे आदिनारायण ही वेदवक्ता हैं। इसलिए नारायण और वेद सत्य हैं। जो कुछ भी वेदमें वर्णन किया है, वे सब अक्षरशः सत्य हैं। ऐसा जानकर तन-मन लगाके भगवत्-भक्तिमें ही लीन हो रहो! ॥९॥७॥ सब देवोंके देव भी आप ही वे परमात्मा हैं और मन्दिरोंमें स्थापित देवरूपसें भी आप ही हैं। प्रत्येक पत्र-पत्रमें भी आप व्यापकरूपसे भरे पड़े हैं। संसारके सम्पूर्ण कुल-कुटुम्ब और जाति-पाँति सर्वरूपमें आप ही एकमात्र भगवान् परिपूर्ण हैं। ऐसा अद्वैत सिद्धान्त न जाननेवालोंको भ्रमवश द्वैतवादमें सन्ताप होता है। अतः भ्रमको त्यागकर सबमें एक परमात्माको भरा हुआ समझो! ॥ १० ॥ ८ ॥

सर्वभूत संसार निवासी। आपुहि खसम आपु सुखवासी ॥११॥
कहइत मोहिं भयल युगचारी। काके आगे कहौं पुकारी ॥१२॥

सर्वभूत संसार में, आपुहि कीन्ह निवास ॥ आपुहि खाविन्द जगत में, आपुहि सुखमें वास ॥९॥ यह प्रकार कहते कहते, मोंहि भये युग चार ॥ याते आगे कछु नहीं, जाको करहु पुकार ॥ १० ॥

गुरुवा लोग कहते हैं—पञ्च महाभूत और चार खानिके सर्वभूतरूप प्राणीके भीतर और बाहर संसारभरमें आप परब्रह्म-परमात्मा ही व्यापकरूपसे निवास किये हुए हैं। इसलिए सम्पूर्ण जगत्के एकमात्र आप परमेश्वर ही सबके खसम=परम-पतिरूप खाविन्द हैं। आप ही सुखके महासागरमें निवास करनेवाले भी हैं। अतः उनमें मन लगाकर परम सुखी हो जाओ ! ॥११॥६॥ इस प्रकार कहते-कहते मुझे चार युग व्यतीत हो गये। अब इससे आगे सार वस्तुका कथन और कुछ भी नहीं है, जिसको कि तुम पुकार करोगे। सर्वशक्तिमान परमेश्वरके सिवाय और दूसरा कोई रक्षक नहीं है। अतः उन्हींमें मन लगाओ ! यह खास बात मैंने कही है। परन्तु किसके आगे पुकार करके मैं कहूँ ? इसको समझनेवाले भी कोई बिरले ही होंगे; इत्यादि। (ऐसा कथन सुनाकर जीवोंको भ्रमा-भुला रहे हैं) ॥ १२ ॥ १० ॥

साखीः—साँचहि कोई न माने। झूठहि के सङ्ग जाय ॥
झूठेहि--झूठा मिलि रहा। अहमक खेहा खाय ॥१४॥

गुरुमुख; साखीः—साँचहि जीव झूठा ब्रह्म, झूठी माया होय ॥
तामें अहमक मिलत ही, गयो अपन पद खोय ॥ ११ ॥

गुरुमुखः—मेरे सारशब्द निर्णयको तो कोई नहीं मानते हैं, झूठे गुरुवालोगोंके सङ्ग-साथमें लगकर भ्रम-धोखेमें चले जा रहे हैं। झूठे ही गुरुवा लोगोंकी झूठी अनुमान-कल्पनाकी वाणीमें अबोध लोग मिल रहे हैं। इस कारण अहमक=नासमझ, दुर्बुद्धि लोग, खेहा=धूल वा राखके समान भ्रमको ही ग्रहण करके खाते भव-बन्धनमें पड़े रहते हैं। लाभ कुछ भी नहीं होता है; बिना विचार ॥ १४ ॥

अथवा चैतन्य जीवका स्वरूप ही साँच वस्तु है। इससे परे सत्य और कुछ भी नहीं है। माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि अनुमान, भ्रम-धोखा सरासर झूठा है। इस बातके भेदको बेपारखी लोग कोई नहीं जानते। अतः सत्यको भी वे नहीं मानते। दूसरी ओर माया=स्त्रियाँ भी झूठी होती हैं और गुरुवा लोग भी मायाके रूप होनेसे झूठी वाणी-कल्पनामें भूले पड़े हैं। उसी झूठ-ही-झूठके सङ्गमें जा-जाकर अहमक=नासमझ, अज्ञानी जीव मिलते ही रहते हैं। इसलिए अपने मनुष्य-पदका विवेक-विचार, स्थिति-ठहराव खो गये और विनाश होते जाते हैं। इसीसे भव-बन्धनमें पड़े दुःख भोग रहे हैं। अतः मेरे सत्य निर्णयको मानकर अब भी अपना जीवन-कल्याण करो ! ॥ १४ ॥ ११ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ १५ ॥ ❀ ॥

वोनई बदरिया परिगौ सन्झा। अगुवा भूला बन खण्ड मन्झा ॥१॥
पिया अन्तै धन अन्तै रहई। चौपरि कामरि माथे गहई ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—उठी भरम की बादरी, परिगौ जग अँधियार ॥

अगुवा ब्रह्मा भूलिया, बानी वेद मझार ॥१॥ अन्तै पिया बताइया, अन्तै रहा यह जीव ॥ चारि वेद सिरपर धरै, युक्ति सबन मिलि कीव ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—वोनई=उमड़-घुमड़कर चारों ओरसे घेरके जीवोंके अन्तःकरणमें भ्रम-भूल, दुविधारूप बादल उठकर छा गई। इस कारण जगत्-जीवोंके मनमें सन्झा=सन्ध्या, अज्ञानरूप अन्धकार खूब दृढ़तासे पड़ गया। ऐसी अवस्थामें अगुवा=आगे चलनेवाले मार्ग-प्रदर्शक गुरु बने हुए ब्रह्मादि पण्डित गुरुवा लोग ही अनुमान-कल्पनासे बन=बनाई हुई वेदादि वाणीके घोर जङ्गलके मन्झा=बीचमें, खण्ड=अलग-अलगरूपसे मिथ्या मानन्दी करके अपने सत्य स्वरूपको भूल गये। तब उनके पीछे लगनेवाले सब अबोध मनुष्य भूलते जा रहे हैं; बिना विचार ॥१॥ भ्रमिकोंने कल्पनासे जीवको स्त्रीरूपमें बताकर—तुम्हारा पिया=परमपति परमेश्वर कहीं अन्तै=अन्यत्र दूर ब्रह्माण्डमें, लोकादिमें वा अलोकमें रहते हैं, ऐसा बता दिया। परन्तु धन=धनि, धनारूप युवती, पत्नी, स्त्रीरूप भक्त बना हुआ यह अबोध जीव तो अन्तै=अन्यत्र यहीं पिण्डरूप देहके हृदय-स्थानमें एकदेशी रह गया। इससे वह पिया इसे नहीं मिलता है। उसके मिलनेका आशा-भरोसा देकर भक्ति, योग, ज्ञानादि अनेक साधनाओंमें लगा दिये। चौपरत कम्बलके समान चौगुनी कामरि=कामना चित्त-चतुष्टयरूप माथमें खूब ग्रहण कर रहे हैं।

अथवा पिया-प्राप्तिके वास्ते चौपरि=चारों वेदोंकी कामरि=खाली वाणी-कल्पनाको गुरुवा लोगोंके आज्ञानुसार शिरपर धारण करके सब लोग मिलकर उसमें कहे अनुसार अनेक प्रकारकी युक्ति-प्रयुक्ति, उपाय ईश्वरादि-प्राप्तिके वास्ते करने-कराने लगे। परन्तु अन्ततक भी तो ईश्वरादि कुछ नहीं मिला। अध्यासी जीव आवागमनमें ही पड़ रहे हैं ॥ २ ॥

साखीः—फुलवा भार न ले सकै। कहै सखियन सों रोय ॥
ज्यों-ज्यों भीजै कामरी। त्यों-त्यों भारी होय ॥१५॥

साखीः—जीव भार न सहि सकै, कहै आपुस में रोय ॥
ज्यों-ज्यों भीजै विषय में, त्यों-त्यों जड़वत होय ॥ ३ ॥

फुलवा=देहधारी जीव, जो अनेक प्रकारके अहङ्कार लेकर फूल रहा है, सुख चाहता है, दुःखसे डरता है। इसलिए कोई जीव भार=ज्यादा बोझा, कष्ट-क्लेश, मेहनत और साधनाओंका बोझा ले-लेकर थक जानेसे फिर वैसा ज्यादा भार सह नहीं सकते हैं, तब व्याकुल होकर सखियन=अन्य भक्त, साधक गुरुभाई लोगोंसे आपसमें परस्पर रो-रोकर अपना हाल, वेदना कहते हैं कि भाई! अभीतक ईश्वरादि भी कुछ नहीं मिले, अब हम साधना करते-करते थक चुके हैं, हाय! अब क्या करें? बड़ा अभाग्य है; इत्यादि। परन्तु सांसारिक पञ्च विषय-भोगोंमें और वाणी-कल्पनाके अनेक विषयोंमें जैसे-जैसे कम्बलके समान अनेक कामनाओंमें भीजते, आसक्त, ग्रस्त होते जाते हैं, वैसे-ही-वैसे भारी=बहुत दृढ़ अत्यन्त फँसे हुए पक्षपाती, दुराग्रही, जड़वत्

बुद्धिवाले जड़ाध्यासी बद्ध ही होते जाते हैं। बिना पारख भव-बन्धनसे कोई छूट नहीं पाता है ॥ १५ ॥ ३ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ १६ ॥ ❀ ॥

चलत-चलत अति चरण पिराना। हारि परे तहाँ अतिरे सयाना॥१॥
गण गन्धर्व मुनि अन्त न पाया। हरि अलोप जग धन्धे लाया॥२॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः—चलत-चलत सब जगतमें, अतिशय चरण पिराय ॥ ब्रह्म-खोजमों हारि परे, बड़े सयाने भाय ॥१॥ गण गन्धर्व औ मुनिवर, काहू अन्त न पाय॥ तबहिं कहा हरि गुप्त है, जगको कर्म लगाय ॥२॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—स्वर्गादि और ईश्वरादि-प्राप्तिकी आशासे तीर्थ-यात्रादि करते हुए सब जगत्में जहाँ-तहाँ चलते-चलते मनुष्योंके चरण=पाँव अत्यन्त पिराना=दुःखने लगे। इच्छाकी पूर्ति न होनेसे सब जीव भी मनमें अति दुःखी हो रहे हैं। ब्रह्म, ईश्वर, परमात्मादिकी खोज-तलाश अनेक उपायसे विभिन्न भावना करके किये। परन्तु अतिरे=अत्यन्त, विशेष ही बुद्धिमान् चतुर पण्डित बने हुए सयाना=बड़े-बड़े योगी, ज्ञानी, भक्त, बूढ़े लोग भी तहाँ=अन्तमें हारकर भ्रम-धोखेमें ही जा पड़े। किसीको भी ब्रह्म नहीं मिला। उसीसे भ्रम-बन्धनसे कोई छूट नहीं सके ॥१॥ गण=साधकोंके समूह, गन्धर्व=कीर्तनकार भक्त लोग और ऋषि-मुनि, तपस्वी इत्यादि बहुत-से श्रेष्ठ लोगोंमें उन किसीने भी निराकार माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादिका अन्त=देहान्ततक भी पूरा पता जान नहीं पाया। तब उन सबने निश्चय करके यही कहा कि हरि=परब्रह्म परमात्मा सर्वथा अलोप=गुप्त, अदृश्य, निर्गुण-निराकार सर्वव्यापक है, जीतेतक न मिलनेपर भी मरनेपर अवश्य उसकी प्राप्ति होगी; इसलिए उसकी भक्ति करते रहो! ऐसा बताकर जगत्के सब अबोध जीवोंको धन्धे=अनेक प्रकारके कर्म-जाल, भक्ति, योग, ज्ञानादि साधनाओंमें लगाकर सबको खूब भ्रम-धोखेमें फँसाया ॥२॥

गहनी बन्धन बाण न सूझा। थाकि परे तहाँ किछउ न बूझा॥३॥
भूलि परे जिय अधिक डेराई। रजनी अन्धकूप ह्वै आई॥४॥

जो बन्धन मुनिवर दिया, सो गहि लिया संसार॥ बन्धन जानि परो नहीं, सबै परे तहाँ हार ॥३॥ तहाँ कछु बूझा नहीं, भूले जीव डेराय॥ भरम भूल अँधियारिया, परि जीवन पर आय ॥ ४ ॥

प्रथमके बड़े-बड़े मुनिवरोंने जो वाणी-कल्पनादिका महा बन्धन संसारके चारों ओरसे घेरा डालकर लगा दिया, सो उसी भ्रम-बन्धनरूप खानि-वाणी-जालको सारे संसारके अबोध जीवोंने प्रसन्नताके साथ पकड़कर ग्रहण कर लिया। पारख-दृष्टि न होनेसे, वह वाणीजाल और विषयजालका महा बन्धन दुःखदायी है, ऐसा किसीको

जान नहीं पड़ा। इस घेरामें रहनेपर वाणी-खानिके नाना वचनरूपी बाणसे हमारे मनुष्य-पदका विनाश होगा, ऐसा भी किसीको नहीं सूझा। इसलिए खूब प्रेमसे भव-बन्धनमें रहकर अनेक प्रकारकी साधनाएँ जीवन पर्यन्त सब करते गये। परन्तु अन्तमें ईश्वरादिकी प्राप्ति न होनेसे वे सब थकित होकर हार गये, भ्रम-धोखेमें पड़े। इसीसे वहाँ उन लोगोंने सत्यासत्य कुछ भी समझ नहीं पाया। हार मानकर भी उसी धोखेकी साधनाओंमें जीवन बिताकर आवागमनमें पड़के दुःख भोग रहे हैं ॥३॥ पारखबोध न होनेसे जब वहाँ कुछ भी सार-असारको उन किसीने भी नहीं समझा, तब निज चैतन्य-स्वरूपको भूलकर भ्रम--धोखेमें पड़ करके गुरुवा लोगोंकी भयानक वाणी सुनते रहनेसे और भी भूले हुए जीव अत्यन्त भयभीत होकर पुनः भ्रम-धोखेमें ही फँसते गये। कोई विषयजालमें और कोई वाणीजालमें अरुझे, हंस-पदसे गिरकर तदासक्त हुए। रजनी=उसी रात्रिरूप अज्ञानके अन्धकारमें प्रथम भी अन्धकूप=तीन खानिके गर्भवासादिसें जाकर, अनेक देहधारी हो करके जन्म लेकर आये थे। अब भी पुनः खानि-वाणीकी भ्रम-भूल, अज्ञानरूप अन्धकारकी रात्रि सब जीवोंपर आकर छाई पड़ी है। विवेक-दृष्टिसे हीन जड़ाध्यासी हो रहे हैं, फिर भी बहुरूपिया होकर आते हुए उसी अन्धकूपमें गिरकर दुःखभोगी हो रहे हैं ॥ ४ ॥

माया मोह उहाँ भरपूरी। दादुर दामिनि पवन अपूरी ॥५॥
बरसै तपै अखण्डित धारा। रैन भयावन कछु न अधारा ॥६॥

वहाँ गुरुवनका मोह बहू, पण्डित वेद सुनाय ॥ अर्धमात्रा ॐकारको, एकन एक दृढ़ाय ॥५॥ बरसै बिरह अखण्ड बिधि, तपै जीव सब झार ॥ भरम मोह भयावनो, कछु ना मिलै अधार ॥ ६ ॥

माया=गुरुवा लोग और स्त्रियोंकी वाणी-कल्पना और विषयोंकी मोह-ममता उहाँ=अज्ञानी जीवोंके अन्तःकरणमें, वहींपर भरपूरी=खूब पूरा भर गई। वे सब उनमें आसक्त, बद्ध हो गये। दादुर=मेढ़कवत् पण्डितोंने वेद, शास्त्रादिसे खूब रोचक वाणी बारम्बार सुनाई। दूसरी ओर ज्ञानीलोग दामिनी=बिजलीकी क्षणिक चमकवत् वाणी-कल्पनासे ॐकारकी अर्धमात्रा और बिन्दुमात्राको ब्रह्म-परमात्मा बताकर लोगोंको भ्रमाने-भुलाने लगे। तीसरी ओर पवन=श्वासवायुको ऊपर चढ़ाकर योगीलोग शून्य समाधि लगानेका अभ्यास करने लगे। इस प्रकार अपूरी=सर्वत्र भरा हुआ परिपूर्ण व्यापक अपार परमात्मा प्राप्तिके लिए गुरुवा लोग ऐसी एक-न-एक कल्पनाकी साधनाएँ दृढ़ाते हुए सबको भ्रमा-भुलाकर धोखेमें डाल रहे हैं ॥५॥ कोई एक अखण्ड परमात्मा मानकर, उससे मिलनेके लिए योगी, ज्ञानी, भक्त लोग विरहकी वाणीकी धारा अखण्डितरूपसे दिनरात वर्षा करने लगे। तब भ्रमरूप विरहकी ज्वालामें सब अबोध साधक जीव शोक-सन्तापमें पीड़ित होकर खूब तपने लगे। भयावनी अन्धकार-पूर्ण रात्रिके समान भ्रम-भूल, मोह-ममता, अज्ञानरूप अन्धकार रात्रि, जो भयङ्कर है,

सब जीवोंके हृदयमें छाई हुई है। पारख-स्वरूपका यथार्थ बोध न होनेसे वैसी अवस्थामें उनको बचानेवाला एवं मुक्त करनेवाला सच्चा आधार भी कहीं कुछ नहीं मिलता है ॥ ६ ॥

साखीः-सबै लोग जहँड़ाइया। अन्धा सबै भुलान ॥
कहा कोई ना माने। सब एकै माहिं समान ॥१६॥

साखीः—सबै लोग जहँड़ाइया, अन्धा सबै भुलान ॥
कहा कोई ना माने, सब एकै माहिं समान ॥ ७ ॥

इस प्रकार योगी, ज्ञानी, विज्ञानी, भक्त और सारे संसारी विषयी जीव; ऐसे सब लोग बिना पारख जहँड़ाइया=भ्रम-धोखेमें पड़कर खूब ठगा गये, महान् हानि उठाकर भव-बन्धनमें बँध गये। पहलेके अन्धा=पारख-दृष्टिहीन गुरुवाने सबको भुलाया-भ्रमाया। उसीके पीछे विवेक-विचारहीन अन्धे होकर सब-के-सब खानि-वाणीके जङ्गलमें जा-जाकर अपने स्वरूपको भूल गये। अब मैं जो पारखबोध देता हूँ, यथार्थ समझाता हूँ, तो भी हमारे कहे सत्य न्याय-निर्णयकी बात, मेरे उपदेशको वे कोई नहीं मानते हैं। किन्तु वे सब लोग एक समान ही भ्रम-भूल, कल्पना, अनु-मानसे ईश्वरादि मानकर और कोई स्त्री-विषयादिमें आसक्त होकर महाजालमें ही जा-जाकर, अरुझकर आवागमनमें समा रहे हैं; बिना पारख ॥ ७ ॥ १६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ १७ ॥ ❀ ॥

जस जिव आपु मिले अस कोई। बहुत धर्म सुख हृदया होई ॥१॥
जासु बात रामकी कही। प्रीति न काहू सो निर्बही ॥२॥

टीका; मायामुख-दोहाः—जस जीव आप मिलै अस कोई, बहुत धर्म सुख होय ॥ राम बात तासों कहों, प्रीति निबाहै जो कोय ॥ १ ॥

मायामुखः—गुरुवालोग कहते हैं—हे नरजीव ! जैसे आप धर्मात्मा भगवद्भक्त श्रद्धालु होकर अपने-आप आकर हमसे मिले, वैसे ही और भी बहुत-से जीव मिलते, कहीं कोई भी अभक्त न रहते, तब तो सब लोग वैष्णव होकर भगवान्की कथा, नाम-स्मरण, नवधाभक्ति-भावमें दिनरात लगे रहनेसे संसारमें धर्म-मार्गका प्रचार भी बहुत हो जाता और हमारे सहित सबके हृदयमें भी सुख-शान्तिका बहुत विस्तार हो जाता। अतः तुम सब जी-जानसे धर्म-प्रचार करनेमें लगो ! ॥ १ ॥ परन्तु जिससे सगुण-निर्गुण रामके भक्ति-भाव करनेकी बात मैं कहा और कहता हूँ, उसे सुन तो सब लेते हैं; किन्तु अन्ततक भक्ति-मार्गमें सच्ची प्रीतिका निर्वाह किसीसे भी नहीं होता है। कोई बिरले ही भक्तिमें टिकते हैं। तथापि भगवान् रामकी भक्तिकी बात मैं उससे कहता हूँ और कहता ही रहूँगा। किन्तु जो कोई सच्चे भक्त अन्ततक भक्ति-भावमें प्रेम-प्रीति निबाहेंगे, उनको ही भगवान्के स्वरूपका साक्षात्कार होगा। अन्तमें वे उन्हींमें मिल जायेंगे ॥ १ ॥ २ ॥

एकै भाव सकल जग देखी । बाहर परे सो होय विवेकी ॥३॥
विषय मोहके फन्द छुड़ाई । तहाँ जाय जहाँ काट कसाई ॥४॥

गुरुमुखः–एक भाव सब देखहीं, परे जाल में सोय ॥ बाहर परे यह जालते, जो कोइ विवेकी होय ॥२॥ विषय मोह संसार के, फन्द छुड़ाय बनाय ॥ ब्रह्मज्ञानी जहाँ रहत हैं, तहाँ बँधावा जाय ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—चराचरमें एक अद्वैत ब्रह्म ही सर्वव्यापक है, ऐसा एक ब्रह्म-भावसे जो सबको ब्रह्मरूप ही देखते वा मानते हैं, 'सर्वत्र एक अद्वैत ब्रह्म है' ऐसा कहते हैं, तो भी अन्दरसे उनका द्वैत-भाव तो बना ही रहता है। केवल वाणी–कल्पनाका पक्ष पकड़कर, सो वे भ्रमजालमें ही पड़े रहते हैं। इसीसे भव-बन्धन उनका नहीं छूटता है। और जो कोई विवेकी पारखी साधु–गुरुका सत्सङ्ग करके सर्व भ्रम–भूल मिटाकर विवेकी होते हैं, सो वे इस वाणी–कल्पनाके जालसे और विषयजालसे भी बाहर= अलग, सबसे परे, न्यारे-निर्बन्ध हो पारख-स्वरूपमें स्थिर हो रहते हैं ॥ ३ ॥ २ ॥ संसारके स्थूल पञ्च विषयका मोह, मोटी मायाका फन्दा; इतने ही मात्र छुड़ाकर भ्रमिक गुरुवालोग चेले बनाकर अपने–अपने पन्थमें मिला लेते हैं। परन्तु जैसे कसाईके पासमें पशु पहुँचेगा, तो वह अवश्य उसे काटेगा। तद्वत् कसाईके समान मुक्तिके घातक ब्रह्मज्ञानी, योगी, भक्तादि भ्रमिक गुरुवा लोग जहाँ रहते हैं, वहीं दौड़–दौड़के जाकर अज्ञानी अविचारी लोग स्वयं खुशीसे बँध जाते हैं। तब उनके बुद्धि–विचार, हंसपदकी मुक्ति-स्थितिको भी भ्रम–कल्पनारूप वाणीके शस्त्रसे वे काटकर छिन्नभिन्न कर देते हैं। इससे सदा भव-बन्धनमें ही सब जीव पड़े रहते हैं ॥ ४ ॥ ३ ॥

अहै कसाई छूरी हाथा । कैसहु आवै काटौं माथा ॥५॥
मानुष बड़ा बड़ा होय आया । एकै पण्डित सबै पढ़ाया ॥६॥

हाथ पोथी वेदान्तकी, बैठे बड़े महन्त ॥ कैसेहु जियरा आवहीं, मूड़हुँ ताहि तुरन्त ॥४॥ बड़े-बड़े मानुष जे भये, ब्रह्मै सबै पढ़ाय ॥ कर्म धर्म सिद्धान्त मत, दीन्हीं सबै दृढ़ाय ।। ५ ॥

कसाई हाथमें छूरी लिये रहता है। कहींसे किसीका भी पशु भागकर आता है, उसका शिर काटकर अपना स्वार्थ सिद्ध करता है ॥५॥ तद्वत् कसाई=ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवा लोग छूरी=वेदान्तादि कल्पनाकी वाणीकी पोथी अपने हाथमें लेकर, बड़े महन्त बन करके वे अपने–अपने मठ–मन्दिरकी गद्दीमें बैठे रहते हैं। किसी प्रकारका अपराध, पापादि करके कैसे भी रूपमें अबोध मनुष्य-जीव उनके पासमें भागकर आ जाते हैं, उनको तुरन्त ही माथ मूड़कर अपने चेले बना लेते हैं। वे कहते हैं—कैसे भी जीव आवें, उनको शीघ्र मूँड़–मुड़ाकर अपने चेले बनालो ! तभी अपने मत–पन्थका प्रचार होगा; इत्यादि। इस प्रकार वे जीवोंको फँसाना ही भर जानते हैं। जब उनका ही भव-

बन्धन नहीं छूटा, तब औरोंका बन्धन वे क्या छुड़ावेंगे ॥४॥ सब प्राणियोंमें मनुष्य बड़ा, श्रेष्ठ होनेपर भी अहङ्कार और भ्रम- कल्पनासे और सबसे बड़ा ब्रह्म बनकर पुनः जगत्रूपसें ही चला आया। एक ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा भ्रमिक पण्डितोंने पढ़ाकर सबको दृढ़ कर दिया ॥ ६ ॥

अथवा बड़े-बड़े नामधारी मनुष्य प्रथम जो जितने भी हुए, उन सबको भी उनके गुरु ब्रह्मादिकोंने वेदादि वाणी पढ़ाकर कर्ममार्ग, धर्म = भक्तिमार्ग, मत = योगमार्ग और ब्रह्मज्ञानका अद्वैत सिद्धान्त, यही बात सबको दृढ़ाकर निश्चय करा दिया। विश्वरूप एक ब्रह्म ही सत्य है, यही पढ़--पढ़ाकर दृढ़ कर-कराके भ्रम-बन्धनमें बँधते जा रहे हैं; बिना विवेक ॥ ५ ॥ ६ ॥

पढ़ना पढ़ो धरो जनि गोई । नहिं तो निश्चय जाहु बिगोई ॥७॥

मायामुखः—पढ़ना पढ़हू वेदका, कछू न राखो गोय ॥
बिना भक्ति भगवान की, निश्चय जाहु बिगोय ॥ ६ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—हे सज्जनो ! जो तुम्हें पढ़ना है, तो वेद, शास्त्र, गीता, भागवत, रामायणादि; इन्हीं धर्मग्रन्थोंको खूब प्रेमपूर्वक मन लगाकर पढ़ो ! वेदादिमें कहे अनुसार ही चलो ! वेदका कहा मानो ! उन धर्मग्रन्थोंको और भगवद्भक्तिको गोय = छिपा करके कहीं कोई कुछ भी जनि = मत् रक्खो ! क्योंकि उन धर्मग्रन्थोंको पढ़कर भगवान्‌की भक्ति किये बिना जीवकी मुक्ति नहीं हो सकती है। भगवद्भक्तिके बिना तो तुम लोग निश्चयसे बिगड़ ही जाओगे। अतः अपना बिगाड़ मत् करो ! ॥ ७ ॥ ६ ॥

साखीः—सुमिरण करहू रामका । छाड़हु दुःख की आस ॥
तर-ऊपर धै चापि हैं । जस कोल्हू कोटि पिचास ॥१७॥

मायामुखः-साखीः—सुमिरण करहू रामका, छाड़ि जगत की आस ॥ नहीं तो महा दुक्ख है, होय नर्कमें बास ॥७॥ तरे जीव यम ऊपरे, धर चापै जब सीस॥ कोल्हू कोटि पचासमें, तब सबै जायेंगे पीस ॥ ८ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—एकमात्र परमात्मा रामका ही सदा स्मरण करो ! दुःखदायी विषयोंकी आशा छोड़ो ! कभी जगत्-विषयोंमें मत् भूलो ! यदि मायाजालमें भूलोगे, तब तो अन्तमें यमराजके दूत तुम्हें नरकलोकमें ले जाकर— जैसे कोल्हूमें ऊख पेरते हैं, वैसे ही पापी जीवको नीचे-ऊपर रख करके दबाकर पचास कोटि कोल्हूमें पेरेंगे ॥ १७ ॥

अथवा सब जगत्‌की आशा-तृष्णादि, जो दुःखके मूल हैं, इनको परित्याग करके सगुण-निर्गुण भगवान् रामका ही स्मरण, भक्ति सदा करते रहो, तब तो तुम्हारे सब दुःख छूट जायेंगे। यदि इस प्रकार रामनाम-स्मरण, भक्ति-भाव नहीं करोगे, संसारके विषय-भोगोंमें भूले रहोगे, तो अन्तमें तुम्हारा नरकलोकमें निवास होगा। फिर वहाँ

तुमको महान् दुःख ही भोगते रहना पड़ेगा। तुम्हारे पीछे महादुःख लगे हुए हैं ॥७॥ मरनेपर पापी जीवको यमदूत नरकलोकमें ले जाते हैं। वहाँ जीवको नीचे रख करके, उसके ऊपर यमराज या उसके दूत छातीपर चढ़ बैठेंगे। उसको पकड़कर, उसके शिरको जब जोरोंसे कोल्हूमें दबावेंगे, तब शिर फूटकर टुकड़े-टुकड़े चकनाचूर हो जायगा। इस प्रकार यमलोकमें पचास कोटि कोल्हूमें जब खूब पीसकर पेरे जाओगे, तब तुम्हारा सब अकड़ छूट जायगा, विनष्ट हो जायगा। अतः शीघ्र नाम-स्मरणमें लगो! इत्यादि ॥ ८ ॥ १७ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ १८ ॥ ❀ ॥

अद्‌बुद पन्थ वर्णि नहिं जाई। भूले राम भूलि दुनियाई ॥१॥
जो चेतहु तो चेतहु रे भाई! नहिं तो जीव यम ले जाई ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—अद्‌बुद पन्थ कहि ब्रह्मको, सो तो वर्णि न जाय ॥ भूले ब्रह्म कहाय जीव, सबै चलै बौआय ॥१॥ चेतवा होय तो चेतहू, कहौं तोहिं समुझाय ॥ अनजाने यह जीवको, गुरुवन लीन्ह फँदाय ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—अद्‌बुद=आश्चर्यमय विचित्र; जैसे—चराचर विश्वरूप एक अद्वैत व्यापक ब्रह्म जो है, सो मैं हूँ। इसमें बुद्धि-विचारकी बात बिल्कुल नहीं है। फिर ब्रह्म-प्राप्तिके लिए पन्थ=ब्रह्मज्ञानका मार्ग निकालकर अन्य जीवोंको समझा भी रहे हैं। तब भी 'ब्रह्मका स्वरूप वर्णन किया नहीं जाता है, वह मन, बुद्धि, वाणीसे परे है' ऐसा भी कहते हैं। "तत्त्वमसि" "अहं ब्रह्मास्मि" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" भी बतलाते हैं। इसलिए भ्रमरूप ब्रह्मको ही अद्‌बुद पन्थ कहा जाता है। इसीसे वह तो गुरुवा लोगोंसे ठीक-ठीक सत्यरूपमें वर्णन किया नहीं जाता है। उसी ब्रह्म भ्रमकी मिथ्या मानन्दीमें प्रथम रामचन्द्रादि भूल गये। फिर उनके पीछे दुनियाई=सारे संसारके अबोध मनुष्य-जीव 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा कह-कहकर भूलते चले जा रहे हैं। इस तरह बौराते हुए सब भ्रम-धोखेकी ओर चले गये और भी जा रहे हैं। उसी अध्यासवश आवागमनमें पड़े दुःख भोग रहे हैं ॥१॥ हे भाई! अब यदि तुम्हें मेरा निर्णय सुनकर जो सचेत होना हो, तब तो अभी चेत जाओ! भ्रम-धोखेको परित्यागकर अपने पारख-पदपर स्थिर होओ! ऐसा मैं तुम्हें समझाकर कहता हूँ। यदि अब भी नहीं चेतोगे, अचेत हो रहोगे, तब तो तुम्हारे जीवको भी यम=गुरुवा लोग और विषयीलोग खानि-वाणी-जालकी ओर ही ले जाकर खूब फँसाये रक्खेंगे। इन अबोध अज्ञानी जीवोंको गुरुवा लोगोंने और स्त्रियोंने अपने जालमें खूब फँसा लिया है। उस जालसे तुम भी छूट नहीं सकोगे ॥ २ ॥

शब्द न माने कथै ज्ञाना। ताते यम दियो है थाना ॥३॥
संशय सावज बसे शरीरा। तिन खायो अनबेधा हीरा ॥४॥

सारशब्द मानै नहीं, कहै बहुतै ज्ञान बनाय ॥ ताते फाँसी गुरुवनने, थाना दीन्हों आय ॥३॥ संशयको उपदेश जो, बस्यो शरीरन आय ॥ अनबेधा हीरा जिव, ताने डारो खाय ॥ ४ ॥

ये अविचारी भ्रमिक लोग मेरे समझानेपर भी मेरे सारशब्द निर्णयको नहीं मानते हैं। अपने-आप अनुमान-कल्पनासे भ्रम-धोखेका ब्रह्मज्ञान बनाकर, उसी वाणी-कथनको बहुत प्रकारसे कहते-सुनाते, दृढ़ करते-कराते रहते हैं। इसवास्ते यम= गुरुवा लोगोंने आ-आकर वाणीजालकी फाँसीमें फँसा-फँसा करके थाना=भ्रम-बन्धनके स्थानमें कैद करके डाल दिया है। उसी अध्यासवश चौरासी स्थानके कैदमें पड़े दुःख भोगते रहते हैं ॥३॥ कोई एक ब्रह्म-ईश्वरादि मालिक है; ऐसा संशय संयुक्त वाणी-कल्पनाका उपदेश जो गुरुवालोगोंने दृढ़ा दिया, वही सावज=जङ्गली पशुके समान अज्ञानी मनुष्योंके शरीरा=सूक्ष्म शरीररूप अन्तःकरणमें आकर दृढ़ होकर बैठ गया। इससे मनुष्य-बुद्धि नष्ट होकर पशु-बुद्धि दृढ़ हो रही है। अथवा संशयरूप सर्प आकर हृदयमें बैठ गया। उसीने अनबेधा=अखण्ड, छिद्र रहित, हीरा=सत्य चैतन्य जीवको भ्रमा-भुलाकर, विषैले दातोंसे काट खाया, मुक्ति-स्थितिको विनाश कर डाला। वैसा ही खाता जा रहा है। अतः पारखबोध प्राप्त करके सब संशयसे रहित हो जाओ! ॥४॥

साखीः—संशय सावज शरीर में। सङ्गहि खेले जुआरि ॥
ऐसा घायल बापुरा। जीवहि मारै झारि ॥१८॥

साखीः—संशय सर्प शरीरमें, अच्छो डस्यो निहारि ॥ ता सङ्ग खेलत जीयरा, रह्यो अपन पौ हारि ॥५॥ विषय सर्पकी चोटमें, आपु गये बौवाय ॥ ऐसा घायल बापुरा, मारत जीवहिं धाय ॥ ६ ॥

भ्रम-संशयरूप सावज=सर्प वा जङ्गली पशु-बुद्धि सूक्ष्म शरीररूप मनमें आकर बैठ गई। उसीके सङ्ग-साथमें अबोध जीव जुआरीके समान प्रेम-प्रीतिसे जुट-गुट मिलकर खेल रहे हैं। तब समय पाकर उसने जीवको ही सब प्रकारसे समेटकर खूब मारा, काट खाया। ऐसा घायल होनेपर भी बापुरा=बेचारे अबोध जीव अपनी शक्ति चलेतक और सब जीवोंको भी समेटकर मारते, शिकार करते चले जा रहे हैं ॥ १८ ॥

अथवा भ्रम-संशय, कल्पना, कामरूप काला सर्प आकर सूक्ष्म शरीरमें घुस गया। उसने अच्छी तरहसे देखकर जीवके हृदयमें ही डस दिया। उसी भ्रम-संशयके सङ्ग-साथमें अबोध जीव रहता हुआ प्रेमसे खेल रहा है। इस कारण अपने हंसपद वा मुक्ति पदको हारकर, बड़ी हानि उठाकर जीव भव-बन्धनमें पड़ा हुआ है। इसको विवेक-दृष्टिसे देखलो! ॥५॥ स्त्री आदि पञ्च विषय और ब्रह्म आदि वाणीके विषयरूप काला सर्पकी विशेष चोट, घावमें आप जीव पागल हो रहे हैं। ऐसे घायल विचारे जीवोंको और भी निशाना लगाकर गुरुवालोग एवं विषयीलोग धाय-धायके मार रहे हैं और वे घायल जीव भी और जीवोंको दौड़-दौड़कर मारनेमें लग रहे हैं। इस बातके भेदको कोई पारखी सन्त ही समझकर, उनसे न्यारे रहते हैं ॥ ६ ॥ १८ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ १९ ॥ ❀ ॥

अनहद अनुभव के करि आशा। ई विप्रीति देखहु तमाशा ॥१॥
इहै तमाशा देखहु रे भाई ! जहँवाँ शून्य तहाँ चलि जाई ॥२॥

टीका; गुरुमुख–दोहाः—अनहद जाकी हद नहीं, अनुभव करि विश्वास ॥ आशा बन्धि तमाश यह, बनो ताहिको दास ॥१॥ यही तमाशा देखहु सन्तो !, अचरज कही न जाय ॥ शून्य जहाँ कछु है नहीं, तहाँ बँधायो धाय ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—अनहद = जिसका हद, सीमा नहीं, वह आकाश-रूपमें माना गया है और योगी लोग ध्यान लगाकर ब्रह्माण्डमें दशनाद ध्वनि सुनते हैं, उसको भी उन लोगोंने अनहदरूपमें शब्द-ब्रह्म माना है। ऐसा पिण्डमें अनुभव करके दशनादको अनहद ब्रह्म मानकर उसकी आशा, भरोसा, विश्वास करते–कराते हैं कि अब हमको अनहद ब्रह्म प्राप्त हुआ। हमारा कार्य सिद्ध हो गया। परन्तु जो योगीके अनुभवमें आया, वह तो केवल शब्दादि जड़ विषय मात्र है। जिस ब्रह्मको बेहद माना है, वह किसी के अनुभवमें नहीं आयगा। प्रथम अनहद कहकर फिर उसका अनुभव भी हुआ कहना, यही बिप्रीति = विपरीत, उलटी बुद्धिके तमाशाको तो विचार-दृष्टिसे देखो ! भ्रम–धोखेमें कैसे विशेष प्रीति लगाकर, उसीका दास बनकर मिथ्या आशा–भरोसामें बद्ध हो गया। यही एक वाणीका तमाशा दिखला रहे हैं। उसे विवेक-दृष्टिसे देखकर उससे न्यारा हो रहो ! ॥१॥ हे भाई सन्तो ! गुरुवालोगोंकी वाणी–कल्पनाके इस एक तमाशाको और देखलो ! आश्चर्यकारक मिथ्या बात कुछ कही भी नहीं जाती है। जहाँपर कोई कुछ सत्य वस्तु ही नहीं है, खाली शून्य पोल आकाश-मात्र है, वहीं ब्रह्म, ईश्वर, खुदा और अनेक लोक मान–मानकर धोखेमें चले जाते हैं। धाय–धायके उसी शून्य स्थानके भ्रममें बद्ध होते जा रहे हैं; बिना विचार ॥ २ ॥

शून्यहि बञ्छे शून्यहि गयऊ। हाथा छोड़ि बेहाथा भयऊ ॥३॥
संशय सावज सकल संसारा। काल अहेरी साँझ सकारा ॥४॥

भग-विषयन में फँदि रहा, अन्तहु भगमें जाय ॥ आपन काया छोड़िके, गर्भवास को पाय ॥३॥ संशय रूपी सर्प यह, डसौ सकल जग भाय ॥ गुरुवा शिकारी जीवके, साँझ सकारे धाय ॥ ४ ॥

आकाशवत् शून्य माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादि प्राप्तिकी बञ्छे = विशेष इच्छा करके योगादि साधना करनेसे शून्य समाधिकी अवस्थामें वृत्ति शून्य हो गई। वही जड़ा-ध्यास हृदयमें टिका रहा। शून्य ब्रह्मकी प्राप्ति तो जीतेतक किसीको नहीं हुई। व्यर्थ आयु बिताके एकदिन मर गये। हाथके मनुष्य-जन्ममें पारखबोध प्राप्त करना छोड़के बेहाथा = अपने हाथसे बाहर, जड़ाध्यासी होकर मर गये। अन्तमें अध्यासवश जीव शून्य स्थान गर्भवासको प्राप्त हो गये, चौरासी योनिमें कर्त्तव्य विमुख होकर अधिकार-

के बाहर दुःख भोगते भटक रहे हैं ॥ ३ ॥

अथवा विषयासक्त भोगी पुरुष शून्य स्थानरूप स्त्रीके भग-विषय-भोगकी विशेष इच्छा-वासनासे विषय-विलासमें ही पशुवत् खूब फँसे पड़े हैं, विषय भोगनेके लिए उसी शून्य स्थानमें चले जाते हैं। फिर अन्तमें अपनी मनुष्य-देह छोड़ करके मृत्यु होनेपर एकदिन पुनः भगद्वारा ही जाकर चौरासी योनियोंके गर्भवासको प्राप्त होते हैं। वर्तमानमें अपने हाथसे सुधार करना छोड़कर पशु आदि जन्मोंमें जाकर बेहाथ हो जाते हैं ॥३॥ सम्पूर्ण संसारके अबोध जीव भ्रम-संशयके कारण सावज= जङ्गली पशु-बुद्धिके वा सर्पके समान विषैले हो रहे हैं। उनको अहेरी=शिकारी कालके समान स्त्री और गुरुवा लोग दिन-रात ज्ञानी-अज्ञानियोंको अपना शिकार बनाकर विनाश कर रहे हैं ॥ ४ ॥

अथवा वाणी-कल्पनाके संशयरूप इसी सर्पने जगत्-जीवोंको खूब डस दिया। उनको भी उसका विशेष भाव, प्रेम दृढ़ हुआ। शिकारीके समान भ्रमिक गुरुवा लोग अबोध जीवोंको पशुके समान लक्ष्य बनाकर दिनरात धाय-धायके विनाश करते जा रहे हैं ॥ ४ ॥

साखीः—सुमिरण करहू रामका। काल गहे हैं केश ॥
ना जानों कब मारि हैं ? क्या घर क्या परदेश ? ॥१९॥

मायामुख-साखीः—सुमिरण करहू रामका, काल गहे हैं केश ॥
ना जानों कब मारि हैं ?, क्या घर ? क्या परदेश ? ॥५॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—हे मनुष्यो ! अपना हित-कल्याण चाहते हो, तो दिनरात एक-मात्र सगुण-निर्गुण परमात्मा रामका ही नाम-स्मरण करते रहो ! उसे कभी मत् भूलो ! क्योंकि शिरपर बैठकर कालने तुम्हारा केश=चोटी पकड़ रक्खी है। अब वह न जाने कब तुम्हें घरमें मार डालता है कि परदेशमें मारता है ? इसका कुछ पता नहीं है। वह एक दिन अवश्य तुम्हें मारकर प्राण ले लेगा। यदि पहलेसे ही तुम लोग रामनामका स्मरण करते रहोगे, तब तो कालरूप यमराजकी नरक-यातनासे अवश्य बचोगे। नहीं तो मरनेपर फिर भी तुम्हें अवश्य यम-यातना खूब भोगनी पड़ेगी। ऐसा समझकर रामनाम-स्मरणको कभी मत् भूलो ! इत्यादि ॥५॥१९॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ २० ॥ ❀ ॥

अब कहुरामनामअविनाशी। हरिछोड़िजियरा कतहुँ न जासी॥१॥

टीका; मायामुख-दोहाः—अब कहु रामनाम सदा, अविनाशी जो नीत ॥
हरि-पद छाड़िके जीयरा, कतहुँ न जावहु मीत ! ॥१॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—हे भक्तो ! अब सदा-सर्वदा रामनामको ही अपने मन और मुखसे स्मरण करके कहते रहो ! जो अविनाशी नित्य-सत्य सगुण-निर्गुण परमात्मा हैं, वे रामनामके स्वरूपमें ही रहते हैं। इसलिए उन भगवान्

हरिके महान् पदको छोड़ करके हे मित्र जीव ! अन्यत्र कहीं भी भटकनेको मत जाओ ! ॥ १ ॥

जहाँ जाहु तहाँ होहु पतङ्गा । अब जनि जरहु समुझि विषसङ्गा ॥२॥
रामनाम लौलाय सु लीन्हा । भृङ्गी-कीट समुझि मन दीन्हा ॥३॥

गुरुमुखः--जहाँ-जहाँ जाहू धायके, तहाँ-तहाँ होहु पतङ्ग ॥ यही जानि अब जरहु जिन, विषय अग्निके सङ्ग ॥ २ ॥ राम नाम लौलाइया, सुनिके बचन भुवङ्ग ॥ भृङ्गी-कीटको नेह लखि, निज मन लाय निसङ्ग ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—भ्रम-कल्पनाकी वाणी सुनकर विवेक-विचार न करके हे मनुष्यो ! अब तुम लोग दौड़-दौड़कर जहाँ-जहाँ, जिस-जिस मतमें भी जाओगे, वहाँ-वहाँपर कीट-पतङ्गके समान भ्रम-धोखेमें जलकर मर जाओगे। मैं तुम्हें दया करके पारखबोध समझा रहा हूँ । मेरे सत्य निर्णयको ठीकसे समझकर विषरूप खानि-वाणीके सङ्ग-साथमें महान् हानि समझकर उन मोटे-झीने विषयोंकी अग्निके सङ्ग-साथमें अब मत् जलो ! इस बातको अच्छी तरहसे जानलो ! ॥२॥ भ्रमिक गुरुवा लोगोंके सर्पवत् विषैले रोचक वचनको सुनकर रामनामके स्मरण, ध्यान-धारणादि करनेमें और अबोध जीवोंने खूब प्रेम-प्रीतिसे लौ लगाके अच्छी तरहसे उसमें अपना मन एकाग्र करके लवलीन कर दिया । भृङ्गी और कीटके स्नेह लगनेका झूठा ही दृष्टान्त * लख-लखा करके, वैसा ही ध्यान करते रहनेसे जीव परमात्मामें मिल जायगा; ऐसी बात भ्रमसे समझकर अबोध जीवोंने अपना मन उसीमें निःशङ्क होकर लगा दिया । परन्तु अन्ततक भी उसका सङ्ग-साथ कभी प्राप्त नहीं हुआ । मिथ्या भ्रम-धोखेमें बँध गया ॥ ३ ॥

भौ अस गरुवा दुःखके भारी । करु जिय जतन जो देखु विचारी ॥४॥
मनकी बात है लहरि विकारा । ते नहिं सूझै वार न पारा ॥५॥

ऐसो भवसागर बढ़ो, दारुण दुःख कहे जाहि ॥ करु जिय यतन विचारिके, त्यागु परखि के ताहि ॥४॥ मनकी बात जो ब्रह्म है, सोई लहरि बेकार ॥ काहु को जानि परो नहीं, ताको वार न पार ॥ ५ ॥

खानि-वाणीका विस्ताररूप भवसागर ऐसा गरुवा = बहुत वजनदार, दुःखोंका बड़ाभारी पहाड़रूप बड़ा बोझा होकर बढ़ गया कि जिसमें भयङ्कर कठिन दुःख भरा है, जिस भव-बन्धनका वार-पार ही नहीं दिखता है। जिसको सुख कहते हैं, उसके

*—भृङ्गी मिट्टीका घर बनाकर, प्रथम उसमें अपना अण्डा रख देती है। भावी बच्चेके खुराकके लिए कीड़ेको लाकर उसीमें बन्द कर देती है। अण्डासे भृङ्गी होती है। कीड़ा भृङ्गी नहीं होता। अतः गुरुवा लोगोंके "कीट-भृङ्ग" का दृष्टान्त मिथ्या है ॥

अन्तमें ही दुःख, भव-बन्धन लगा रहता है। इस कारण हे नरजीव! अब भी पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गमें लगकर, पारखबोध प्राप्त करके अपने हृदयमें उससे छूटनेका विवेक-विचार संयुक्त महान् प्रयत्न करो! पूर्ण परीक्षा-दृष्टिसे देखकर उसे सर्वथा परित्याग करो! ॥४॥ मन-कल्पनासे उत्पन्न भ्रम-भूल, अनुमान-कल्पनाकी बातसे जो ब्रह्म, ईश्वरादि माना है, वह तो मिथ्या धोखा है। वही वाणी-कल्पनाकी लहरि = तरङ्गरूप ब्रह्म केवल भ्रमका विकार मात्र है। फिर उसकी इच्छा-लहरिसे जगत्-विकार उत्पन्न हुआ; ऐसा कहते हैं, सो भी भ्रम है। इस प्रकार मनकी जितनी भी बातें हैं, वे सब भ्रम-विकारसे भरी हुई तरङ्ग हैं। जिस ब्रह्मका वार-पार कहीं किसीको नहीं दिखता है कहते हैं, वह तो मन-मानन्दीकी मिथ्या ही तरङ्ग-मात्र है। परन्तु पारखबोध न होनेसे उस भ्रम-धोखाका वार-पार किसीको भी जान नहीं पड़ा। भ्रमका वार-पार कुछ भी नहीं है। परखकर उसे परित्याग करो! ॥ ५ ॥

साखीः—इच्छा करि भवसागर। जामें बोहित राम अधार ॥
कहैं कबीर हरिशरण गहु। गौ खुर बच्छ विस्तार ॥२०॥

गुरुमुख-साखीः—ब्रह्म होय इच्छा करी, इच्छा ते संसार ॥ होय अनेक बहु दुःखित भौ, तब तारक राम अधार ॥६॥ मायामुखः—कहैं पण्डित समुझायके, श्रीहरि धरो अधार ॥ हरि कृपा ते भवसागर, गौ खुर बच्छ विस्तार ॥७॥

गुरुमुखः—प्रथम जीव ही भ्रमसे अद्वैत ब्रह्म बना। ब्रह्म होकर पुनः इच्छा-स्फुरणाका विस्तार किया। उसी इच्छा-वासनासे भवसागररूप सारे संसारकी उत्पत्तिकी कल्पना कर लिया। तदुपरान्त संसारमें अनेक रूपमें मानन्दी प्रकट हो करके राग-द्वेषादि विस्तारकर बहुत दुःखित हुआ। उससे छूटनेके लिए विचार करते-करते मन-कल्पनासे ही तब एक भवतारक आत्मारामको बोहित = जहाजके समान समझकर उसीका आधार दृढ़तासे भ्रमिक जीवोंने पकड़ लिया। जिसमें अब हम भवपार होवेंगे, ऐसा समझकर मनमें कुछ शान्ति हो गई। ॥ ६ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—कहैं कबीर = पण्डित लोग अपनी कल्पित वाणीका उपदेश देकर जगत्-जीवोंको समझाकर कहते हैं कि हे मनुष्यो! सब जगत्के मालिक एकमात्र भगवान् हैं। उन्हीं श्रीहरिकी शरण ग्रहण करके पूर्ण आधार पकड़ लो! भगवान् श्रीहरिकी कृपासे यह महान् भवसागर भी अन्तमें तुम्हें गौके बछड़ेके खुरके घेराके विस्तार समान छोटा-सा नगण्य हो जायगा। तब सहज ही भवसागर पार उतरकर परमात्मामें मिल जाओगे। [इत्यादि बताकर भ्रम-धोखेमें डाल रहे हैं।] ॥ ७ ॥ २० ॥

॥ ॐ ॥ रमैनी ॥ २१ ॥ ॐ ॥

बहुत दुःख दुःख दुःख की खानी। तब बचिहो जब रामहि जानी ॥१॥
रामहि जानि युक्ति जो चलई। युक्तिहु ते फन्दा नहिं परई ॥२॥

टीका; मायामुख–दोहा:—बहुत दुक्ख संसार यह, निश्चय दुःखकी खानि ॥ तब बाँचहु रे जीयरा !, जब राम करहु पहिचानि ॥१॥ राम निरन्तर जानिके, युक्ति चलै जो कोय ॥ योग युक्ति ते फन्द कटै, मुक्ति सहजमें होय ॥ २ ॥

मायामुख:—गुरुवा लोग कहते हैं—बहुत प्रकारके दुःख भरे हुए इस असार संसारमें चारों ओर दुःख–ही–दुःख, कष्ट, वेदनाएँ हो रही हैं। त्रयताप और जन्म-मरणादिके अनेक दुःख भी जीव भोग रहे हैं। निश्चयसे यह देह और संसार दुःखमय एवं दुःखकी ही खानि है। अब इन समस्त दुःखोंसे हे जीव ! तुम तभी बचोगे, जब सगुण–निर्गुण परमात्मा रामको अच्छी तरहसे पहचान करोगे एवं रामनाम-स्मरणमें तल्लीन हो रहोगे ॥१॥ परमात्मा रामको सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक, घट-घटका प्रकाशक निरन्तर अपने हृदयमें जान करके जो कोई भक्त भक्ति, योग, ज्ञानकी युक्तिसे चलेंगे, तब उसी योग-युक्तिसे भगवान्की कृपाद्वारा भवसागरका सम्पूर्ण फन्दा उनका कट जायगा। फिर वे किसीके फन्दोंमें नहीं पड़ेंगे। तब सहजमें ही उनकी मुक्ति हो जायगी ॥ २ ॥

युक्तिहि युक्ति चला संसारा। निश्चय कहा न मानु हमारा ॥३॥
कनक–कामिनी घोर पटोरा। सम्पति बहुत रहै दिन थोरा ॥४॥

गुरुमुख:—युक्ती से युक्ती बढ़ी, चला सकल जग जान ॥ निश्चय कहा न मानहीं, ब्रह्मसिन्धु सुख मान ॥३॥ कनक कामिनी घोर पटोरा, सम्पति बहुत कमाय ॥ थोरे दिनकी साथि यह, अन्त चलै पछिताय ॥ ४ ॥

गुरुमुख:—सद्गुरु कहते हैं—इस प्रकार एक–एक करके एक युक्तिसे और भी बहुत-सी युक्तियाँ बढ़ती चली गईं। युक्तिसे ही मुक्ति मिलेगी; ऐसा ही जान वा मानकर सम्पूर्ण संसारके नरजीव उन्हीं युक्ति–ही–युक्ति–प्रयुक्तिकी साधनाएँ करते हुए चले गये और उन्हींमें सब चल रहे हैं। कोई एक अद्वैत ब्रह्म–परमात्माको सुखसे भरा हुआ, सुखसिन्धुके समान मानकर वे सब भ्रम–धोखेमें पड़ रहे हैं। इस कारण हमारा कहा हुआ सत्यन्याय–निर्णयका उपदेश, पारखबोध वे कोई निश्चय करके नहीं मानते हैं। जीवका स्वरूप ही सत्य है, यह बात उनको निश्चय ही नहीं होती है। उसीसे निश्चितरूपसे हमारी कही हुई सत्य बातको भी वे कोई नहीं मानते हैं ॥३॥ कनक = सुवर्णादि द्रव्य, कामिनी = स्त्रियाँ एवं परिवार, सांसारिक वस्तुओंको ही घोर = अत्यधिक, विशेषरूपमें पटोरा = रेशमी वस्त्रादि सहित खूब बटोर लिया। इस प्रकार धन–सम्पत्तिकी कमाई बहुत करनेमें सारा जीवन बिता दिया; परन्तु ये सब तो थोड़े दिनके साथी हैं। अन्तमें देहके साथ सब यहीं छूट जावेंगे। आयुके दिन थोड़े-से रह गये हैं। एक दिन मृत्युका समय भी आ गया। सब यहीं छूटते हुए देखकर अबोध बद्ध जीव अत्यन्त दुःखी होकर पछताते, रोते–कराहते हुए मर जाते हैं।

अथवा कनक = सुवर्णवत् माना हुआ ब्रह्म और कामिनी = अनेक कामनाओंसे संयुक्त वाणी-कल्पनाको घोर = अत्यधिकरूपमें, पटोरा = बटोर लिया। इस प्रकार अनेक

मत-पन्थोंकी वाणी-कल्पनाकी सम्पत्ति तो बहुत हो गई; परन्तु आयुरूपी दिन थोड़े-से रह गये। अन्तमें सब यहीं छोड़कर मरके अध्यासवश आवागमनमें पड़के दुःख भोगते रहते हैं ॥ ४ ॥

थोरी सम्पति गौ बौराई। धर्मराय की खबरि न पाई ॥५॥
देखि त्रास मुख गौ कुम्हिलाई। अमृत धोखे गौ विष खाई ॥६॥

थोड़ी सम्पतिमें जगत, सबै चलै बौराय ॥ धर्मराय जो काल है, ताकी खबरि न पाय ॥५॥ देखि त्रास संसार को, गयो जीव कुम्हिलाय ॥ अमृत आतम धोखमें, हन्ता विष रह्यो खाय ॥ ६ ॥

कोई थोड़ी सम्पत्ति, बल, विद्या, बुद्धि, पराक्रम, थोड़ी आयुमें भी उन्मत्त होकर पागलवत् हो रहे हैं और कोई अधिक सम्पत्तिके मालिक बनकर, विशेष अधिकार प्राप्त करके अन्याय, अनीति, अनाचार, अकर्म कर-कराके पागलके समान स्वेच्छाचारी बन गये। व्यर्थमें समय बीत गया। आयु थोड़ी रह गई। उसी प्रकार अल्प जीवनमें धन-सम्पत्ति और वाणी-कल्पनामें ही बौरा-बौराकर सारे जगत्के जीव एक-एक दिन मरते चले जा रहे हैं। परन्तु धर्मराय=यमराज माना हुआ एक तो कालरूप मृत्यु ही है। वह भी अचानक आ जायगी। एक दिन मरना पड़ेगा। इस बातकी खबर भी नहीं पाते हैं। दूसरा गुरुवा लोग धर्मके राजा बनकर भी अबोध जीवोंको फँसाकर विनाश करनेका कार्य कर रहे हैं, उनकी; और तीसरा—मुक्ति विनाशक कालरूप स्त्री-विषयादिकी खबरि=भेद भी अच्छी तरहसे कोई जान नहीं पाता है। इसलिए मोटे-झीने मायाजालोंमें पागल होते हुए अन्तमें विनाश हो आवागमनमें पड़े दुःख भोगते रहते हैं ॥५॥ त्रयतापादि द्वारा संसारमें होनेवाले अनेक प्रकारके दुःखोंको देखकर एवं मृत्युका समय सन्मुख उपस्थित हुआ देखकर जगत्में आसक्त जीव त्रास=अत्यन्त कष्टसे त्रसित, व्याकुल, भयभीत हो जाते हैं। इस कारण उनके मुख तेजहीन, सूखा, नीरस हो कुम्हिला वा मुरझा जाते हैं। अर्थात् मृत्यु समयको देखकर त्राससे मुख कुम्हिला गया। जबतक शरीरमें शक्ति और आयु रही, तबतक तो महा अज्ञानतासे अमृतके धोखेमें विषरूप पञ्च विषयोंके भोगोंको खूब खाकर ग्रहण किया। दूसरीओर आत्मा, ब्रह्मको अमृतके धोखेमें ग्रहण करके 'अहन्ता=जगत्रूप सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं हूँ' ऐसी वाणी-कल्पनाके विषरूप विकारको ही ग्रहण करके खा लिया था। उसीसे अन्तमें मरनेपर आवागमन-चक्रमें पड़कर दुःख भोगनेके अधिकारी हो रहे हैं; बिना पारख ॥ ६ ॥

साखीः—मैं सिरजौं मैं मारौं। मैं जारौं मैं खाँव ॥
जल थल महियाँ रमि रहौं। मोर निरञ्जन नाँव ॥२१॥

ब्रह्ममुख-साखीः—मैं सिरजौं मैं मारौं, मैं जारौं मैं खाँव ॥
जल थल महियाँ रमि रहौं, मोर निरञ्जन नाँव ॥ ७ ॥

ब्रह्ममुखः—आप ही ब्रह्म बनकर ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं—चराचर सम्पूर्ण जगत्को सृजना करके उत्पन्न करनेवाला रचयिता भी मैं हूँ। सबका पालन भी मैं कर रहा हूँ। फिर मैं ही सबको मार भी डालता हूँ। सब जगत्को जलाकर भस्म करनेवाला भी मैं हूँ और महाप्रलयमें महाकालरूप होकर अन्तमें सबको मैं खा जाता हूँ। अभी मैं जलमें एवं स्थलमें और सर्व जगत्में भीतर-बाहर परिपूर्ण व्यापक होकर रम रहा हूँ। इस कारण मेरा नाम निरञ्जन ब्रह्म है, जो निर्गुण-निराकार व्यापकरूप है और सम्पूर्ण विश्वरूप विराट् ही मेरा स्वरूप है। मुझसे पृथक् और कोई वस्तु नहीं है; इत्यादि। [ऐसा कहकर मिथ्या भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं।] ॥७॥२१॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ २२ ॥ ❀ ॥

अलख निरञ्जन लखै न कोई। जेहि बन्धे बन्धा सब लोई ॥१॥
जेहि झूठे सब बाँधु अयाना। झूठा बचन साँच कै माना ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—अलख निरञ्जन कहत हैं, ताको लखै न कोय ॥ जेहिके बन्धन से सकल, जगत बँधावा होय ॥१॥ जे झूठे गुरुवा जने, बाँधे सकल अज्ञान ॥ झूठ बचन अनुमान को, ताहि साँच कै मान ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—जिसको अलख निरञ्जन कहते हैं, उसको आजतक भी कोई किसीने कभी लख नहीं सका। क्योंकि तन, मन, वचनसे जो लखनेमें ही नहीं आता, उसे 'अलख' कहते हैं और रूप-रेखा, आकार-प्रकार आदि अञ्जनरूप विकार जिसका नहीं है, उसको निरञ्जन, निराकार-निर्गुण कहा जाता है। फिर वैसे ब्रह्मको लखकर कौन जानेगा? वह मिथ्या भ्रम-धोखा ही मात्र है। इस बातको कोई पारखी सन्त ही जानेंगे। परन्तु अलख निरञ्जनको कोई न लखते हुए भी जिसकी मिथ्या मानन्दी कर-कराके वाणी-कल्पनाके भ्रम-धोखेमें ब्रह्मादिसे लेकर प्रथमके सब गुरुवा लोग बँध गये। फिर उनके पीछे संसारके सब लोग उसी मिथ्या मानन्दीमें फँस-फँसकर बद्ध होते जा रहे हैं; बिना पारख ॥१॥ जिस मिथ्या मानन्दीमें भ्रमिक लोग पड़े, उसीमें झूठे गुरुवाजनोंने सम्पूर्ण संसारके अज्ञानी जनोंको भी वाणी-कल्पनाकी मिथ्या मानन्दी दृढ़ कराके खूब बाँध दिया। उसीमें एकके-पीछे-एक सब बँधते ही जा रहे हैं। अनुमान-कल्पनासे निर्मित मिथ्या बचनको अबोध लोगोंने खूब सच्चा समझकर मान लिया। बिना विचार वैसे भ्रम-धोखेमें भूले फँसे पड़े हैं ॥२॥

धन्धा बन्दा कीन्ह ब्यवहारा। कर्म विवर्जित बसै निन्यारा ॥३॥
षट आश्रम औ दर्शन कीन्हा। षटरस बास षटै वस्तु चीन्हा ॥४॥

बहु बन्धन में बँधे जिव, करे कर्म ब्योहार ॥ कोई कहै कर्म विवर्जित, निशिदिन ब्रह्म निनार ॥३॥ ग्रेही वानप्रस्थ संन्यासी, ब्रह्मचारी सुनी सिया ॥

योगी जङ्गम जैन संन्यासी, ब्राह्मण फकीर षट दर्शन किया ॥४॥ वोहं सोहं हूँ अल्ला हूँ, महीनाद विस्तार ॥ तत्त्वनाम निरञ्जना, ये षट रसहिं विचार ॥५॥ अदेवमूल ब्राह्मण कहैं, अहं ब्रह्म संन्यासी ॥ वायू कहत दरवेश सो, योगी धरणि निवासी ॥६॥ शशी अमीरस जैनी कहै, जङ्गम महदाकास ॥ षट दर्शन सिद्धान्त यह, करे जगत विश्वास ॥ ७ ॥

सांसारिक कर्मोंका धन्धा और ईश्वरादि-प्राप्तिके लिए भक्ति, योग, ज्ञान, ध्यानादिका धन्धा=कारोबार करते हुए मोटी-झीनी मायाके बहुत बन्धनोंमें तो सब जीव अपने-आप प्रथमसे बँधते ही आ रहे हैं। अब उन्हींका बन्दा=दास, बँधुवा होकर और भी अनेक कर्मोंका व्यवहार करते-कराते जा रहे हैं। इस प्रकार पुनः पुनः कर्म-बन्धनोंमें ही सब खूब दृढ़तासे बद्ध होते जा रहे हैं। तथापि कोई भ्रमिक लोग कहते हैं कि ब्रह्मज्ञानीको अद्वैत ब्रह्मका निश्चय हो जानेपर कोई कर्म बन्धनदायक नहीं होते। सब कर्म करते हुए भी वे निर्लिप्त न्यारे ही रहते हैं; क्योंकि सब कर्मोंसे विवर्जित=रहित ब्रह्म-परमात्मा दिनरात सबसे न्यारा निर्लिप्त ही रहता है। इसीसे ब्रह्मज्ञानीको कोई भी कर्मोंका बन्धन नहीं होता है। ऐसी मिथ्या मानन्दी करके भ्रम-धोखेमें भूले बँधे पड़े हैं ॥३॥ गुरुवा लोगोंने संसारमें षट् आश्रम और षट् दर्शन बनाकर षट्रस=षट् प्रकारके जाप और उसके बास=सुगन्ध और निवासके लिए षट् वस्तु=षट् सिद्धान्तके चिन्ह वाणी-कल्पनासे बना रक्खे हैं ॥४॥ जैसे—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास; ये चार हिन्दुओंमें; एवं सिया और सुन्नी; ये दो मुसलमानोंमें मिलाकर सब षट्आश्रम बनाकर मान रहे हैं। योगी, जङ्गम, संन्यासी, ब्राह्मण, जैनी और मुसलमान फकीर; ऐसे षट्दर्शन बनाये गये हैं ॥४॥ वोहं, सोहं, हूँ अल्ला हूँ, नादमही-महीनाद, तत्त्वनाम अरिहन्तारम् और निरञ्जनाय; ऐसे षट्रस-रूप मन्त्रोंकी कल्पनाका विस्तार करके, उन्हींका विचार करके जप करते-कराते जा रहे हैं ॥५॥ अदेवमूल=निराकार परमात्मा कोई है, ऐसा ब्राह्मण कहते हैं। अहं ब्रह्मास्मि='मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसा संन्यासी बोलते हैं। वायुरूप अदृश्य सर्वशक्तिमान् एक खुदा है, सो वही सबका मालिक है; ऐसा मुसलमान दरवेश (फकीर) कहता है। धरणि=पृथ्वीके समान सबका धारक कोई एक परमात्मा है, ऐसा कहकर योगी उसीमें निवास करना चाहता है ॥६॥ चन्द्रमाके समान अमृतरस टपकानेवाला चन्द्रमुक्त शिलामें जाकर मुक्तिमें निवास करना; ऐसा जैनी कहता है। और महदा-काशरूप सर्वव्यापक महान् परमात्माके स्वरूपमें मिल जाना; ऐसा जङ्गम कहता है। इस प्रकार षट्दर्शनोंकी मुक्तिका निवास और सिद्धान्तका चिन्ह वर्णन किया है। जगत्के अबोध जीव सब ऐसी ही कल्पित बातोंका विश्वास कर-करा रहे हैं; बिना पारख भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं ॥ ७ ॥ ४ ॥

चारि वृक्ष छौ शाखा बखानी। विद्या अगणित गने न जानी ॥५॥ औरों आगम करे विचारा। ते नहिं सूझै वार न पारा ॥६॥

जप तीरथ ब्रत कीजे बहु पूजा। दान पुण्य कीजे बहु दूजा॥७॥

चारि वेद छौ शास्त्र हैं, विद्या अगनित जान॥ औरों आगम बिचार करे, करि आपन अनुमान॥८॥ वार पार सूझे नहीं, फाटा भरम अपार॥ भय भय धावन लगे जिव, काहु न कीन्ह विचार॥९॥ जप तप तीरथ ब्रत बहू, कीजे पूजा दान॥ पुण्यहि बहुत प्रकारका, ये भ्रम जाला मान॥ १०॥

नरजीवोंने कल्पना करके चार वृक्षके रूपमें चार वेदोंकी वाणी बनाई और छौ शाखाके रूपमें षट्शास्त्रोंकी वाणी वर्णन कर रक्खी है। तत्पश्चात् चौदह विद्यासे लेकर लोक-परलोक सम्बन्धी विद्या अगणित रचना कर ली है। इसलिए उन सब वाणियोंकी संख्या गिनती करके जानी जा नहीं सकती है। इतनी सब वाणी बनी और कही-सुनी गई; तथापि अबतक ईश्वर, ब्रह्म, खुदाका स्वरूप किसीके जाननेमें नहीं आया ॥५॥ और भी आगम=बहुत सी धर्मशास्त्रादि वाणी बनाकर ब्रह्म, ईश्वरादिको अगम-अपार ठहरा करके, फिर उसीका विचार करने-करानेमें लगे हैं। अपना अनुमान करके मिथ्या भ्रम-धोखेको ही मानते-मनाते जा रहे हैं ॥८॥ और बहुत-से लोग शास्त्रोंका ही विचार करनेमें लगे हैं। उनको वाणी-कल्पनारूप ईश्वरादिका वार-पार ही कुछ नहीं सूझता है ॥६॥ वार=इस ओर जड़ तत्त्वोंमें और पार=उस ओर चैतन्य जीवके स्वरूपमें भी जब परमात्माका स्वरूप नहीं सूझा, तब 'वार-पारसे परे निराकार अगम-अपार' ऐसा परमात्मा है, यही भ्रम-भूलका कथन कल्पित वाणीके रूपमें फट गया। बोध-विचार भी फटकर नष्ट हो गया। भयानक वाणी सुन-सुन करके सब जीव भयभीत हो-होकर चारों ओर ईश्वरादि प्राप्तिके लिए दौड़ने लगे। हम कहाँ पहुँचेंगे? इस भ्रम-धोखेसे हमारी स्थिति क्या होगी? इस बातका विवेक-विचार उन किसीने भी नहीं किया ॥६॥ गुरुवा लोग कहते हैं—ईश्वरादि-प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारके मन्त्रोंका जप, तपस्या, अड़सठ तीर्थ, बहुत-से व्रत, अनेक प्रकारकी पूजा, दान-दक्षिणा, पुण्य, धर्म-कर्म जितना बने, उतना ज्यादा-से-ज्यादा करो! तब तुम्हारे मालिक, जो कोई दूसरे ही परमेश्वर हैं, जब वे प्रसन्न होंगे, तब उनका दर्शन मिलेगा, स्वर्गादि प्राप्ति होगी। इत्यादि सुनाकर भ्रमा-भुला रक्खे हैं। परन्तु ऐसी बहुत प्रकारकी रोचक-भयानक वाणी, जो अबोध जीव मान रहे हैं, वे सब भ्रम-भूलके बन्धनकारक जाल-मात्र हैं। उनमें फँसकर अबोध जीव भव-बन्धनमें बन्धे पड़े रहते हैं। इसे अच्छी तरहसे परखकर जानलो! ॥ ७॥ १०॥

साखीः—मन्दिर तो है नेहका। मति कोई पैठो धाय॥
जो कोइ पैठे धायके। बिन शिर सेंती जाय॥२२॥

साखीः—फाँसी तो है नेह की, मति कोई पैठो धाय॥
जो कोइ पैठे धायके, सहजै धोखा खाय॥ ११॥

मन्दिर=मनसे दृढ़ किया हुआ ब्रह्म, ईश्वरादि; यह तो मिथ्या वाणीकी कल्पना,

भ्रम--भूलके स्नेहका बन्धन-मात्र है। इस कारण हे कल्याणेच्छुक मनुष्यो ! तुममेंसे कोई भी बिना विचार धाय-धायके वाणीके मिथ्या स्नेहमें मत् घुसो ! विवेक-विचार न करके जो कोई भी वाणी--कल्पनाके मन्दिरमें धाय-धायके प्रविष्ट हो गये, वे सब बिना शिरके मनके साथ माने हुए ॐकार ब्रह्मके भ्रममें जाकर अपने हंस-पदका शिर कटाके विनाश हो भव-बन्धनमें पड़े। अतः परखकर उसे परित्याग करो ! ॥२२॥

अथवा मोटी--झीनी मायाकी जितनी भी मोह-ममता, आसक्तिरूप स्नेहका विस्तार है, वही तो जीवोंको फँसानेवाली फाँसी, महाजालरूप बन्धन है। इस कारण बिना विचार धाय-धायके अब कोई भी उनमें प्रवेश मत् करो ! क्योंकि बिना समझे-बूझे प्रथम जो कोई भी धाय--धायके उनमें घुस गये, उन सब लोगोंने सहजमें ही महान् धोखा खाकर अपने मनुष्य-पदका विनाश कर लिया। अतएव परखकर उनसे न्यारे हो अब भी अपना बचाव करो ! ॥ ११ ॥ २२ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ २३ ॥ ❀ ॥

अल्प सुख दुःख आदिउ-अन्ता । मन भुलान मैगर मैमन्ता ॥१॥
सुख बिसराय मुक्ति कहाँ पावै ? परिहरि साँच,झूँठ निज धावै॥२॥
अनल ज्योति डाहै एक सङ्गा । नैन नेह जस जरै पतङ्गा ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—अल्प सुखहिमें दुक्ख है, आदिहिमें है अन्त ॥ मन मतङ्ग जग भूलिया,मानि ब्रह्मता हन्त ॥१॥ सर्वहि सुख बिसरायके, मुक्ती खोजत जाय ॥ साँचा निजपद छाड़िके, निशिदिन धोखा खाय ॥२॥ अनल ज्योति मृग-लोचनी, ताहि नेह जिय डाय॥ जिमि दीपक-ज्योति देखिके, जरत पतङ्गीधाय॥३॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—साधक लोग ध्यान-धारणा, समाधि लगाकर वृत्तिकी स्थिरतासे अल्प कालतक सुखानुभूति करके, उसीको ब्रह्म-प्राप्ति मानकर निज स्वरूपको भूल जाते हैं। उसी अल्प सुखरूप जड़ाध्यासके कारण वे आदिसे अन्ततक और जगत्से ब्रह्म पर्यन्त भव-बन्धनके दुःख भोगते हुए आवागमनमें पड़े रहते हैं। मैमन्ता=मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा अहङ्कारसे मानकर मैगर=उन्मत्त हाथीके समान उनका मन मिथ्या मानन्दी, भ्रम-धोखेमें भूला रहता है। इसीसे उनका भव-बन्धन नहीं छूटता है ॥१॥ अथवा जगत सम्बन्धी पञ्च विषय-भोग, स्त्रीका विषयानन्द इत्यादि अल्प सुखमें बँधे हुए जीवको आदिसे अन्ततक, जन्मसे मरण पर्यन्त विशेष दुःखही भोगते रहना पड़ता है। क्योंकि बीजरूप अल्प सुखमें ही सारा संसारका दुःख भरा रहता है। और जिसकी आदि होती है, उसके साथमें ही अन्त भी लगा रहता है। इसलिए जो जन्मता है, सो एकदिन मर भी जाता है। बनी हुई वस्तु बिगड़ भी जाती है। ऐसा संसारमें हो रहा है; तथापि मैं-ममता लेनेवाले अहङ्कारी विषयासक्त लोगोंका मन मैगर=उन्मत्त हाथीके समान जगत्के क्षणिक भोगोंमें ही विशेष भूला पड़ा है। इसीसे विषयाध्यासवश चौरासी चक्रमें पड़े दुःख भोगते रहते हैं।

इस प्रकार 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी मिथ्या मानन्दीसे अहङ्कार लेकर ज्ञानी लोग; और 'मैं देह ही रूप हूँ' ऐसा मिथ्या भ्रमसे मानकर संसारी लोगोंका उन्मत्त मन जगत्‌में भूलकर मिथ्या धोखेमें खूब बँधा पड़ा है ॥ १ ॥

ब्रह्मानन्द, विषयानन्दादिकी क्षणिक सुखासक्तिमें अपने चैतन्य पदको बिसराय=भूलकर जड़ाध्यासमें बँधे पड़े हैं। फिर कहो—वे यथार्थ मुक्ति-स्थिति कहाँसे पावेंगे ? सत्य चैतन्य-स्वरूपके पारखबोध-दायक सत्सङ्गको परिहरि=सर्वथा परित्याग करके झूठा जगत्‌के विषय-भोग और मिथ्या ब्रह्म, ईश्वरादिकी मानन्दीकी ओर अपने-आप दौड़े जाते हैं, इसीसे भव-बन्धनसे कोई नहीं छूट पाते हैं ॥ २ ॥ अथवा पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गद्वारा पारखबोध प्राप्तकर सर्व जड़ाध्यास बन्धनको मिटाके निज स्वरूप-स्थिति करनेसे सर्वश्रेष्ठ जीवन्मुक्तिकी सुख-शान्ति प्राप्त होती है। वैसे निजपदकी स्थितिके सर्वश्रेष्ठ सुखको भूल करके इधर-उधर चार दिशामें, शून्य ब्रह्माण्डरूप आकाशमें ब्रह्म, ईश्वरादिके पास मुक्ति ढूँढ़नेको चले जाते हैं। फिर उनको वहाँ यथार्थ मुक्ति कहाँसे मिलेगी ? साँचा=सत्य तो निज चैतन्य-स्वरूपका पारख-पद ही है। इसे छोड़कर जो दिनरात इधर-उधर भटक करके धोखा खाते रहते हैं, उनकी मुक्ति कभी हो नहीं सकती है ॥ २ ॥

जैसे अग्निकी ज्वालामें क्षणिक नेत्रकी प्रीतिसे पतङ्गी कूदकर मर जाती है। तद्वत् योगी लोग अनल=अग्नितत्त्वके कार्यरूप ज्योतिको त्रिकुटीके भीतर ध्यानमें देख करके भ्रमसे उसे ही परमात्मा-प्राप्ति हुई समझकर भ्रममें एकसङ्ग मिलकर अविवेक-रूप नेत्रके स्नेहसे पतङ्गवत् जड़ाध्यासी होकर जल मरते हैं ॥३॥ अथवा अनल=अग्निकी धधकती ज्योतिके समान सौंदर्य-सम्पन्न मृगलोचनी=हिरनके समान सुन्दर बड़ी नेत्रोंवाली स्त्री होती है। वास्तवमें वह मुक्ति-पदको भस्म कर देती है। तथापि उसका भेद न जानकर उसीके स्नेहरूप प्रेम-प्रीतिमें विषयी पुरुष अपने-आप धाय-धायके जाकर जल मरता है। जैसे दीपककी ज्योति देखकर पतङ्गियाँ अपने-आप दौड़-दौड़के आकर उसमें गिरकर जल मरती हैं; तद्वत् संसारी लोगोंका विनाश स्त्री-विषयमें हो रहा है ॥ ३ ॥

करहु विचार जो सब दुःख जाई। परिहरि झूठा केर सगाई ॥४॥
लालच लागी जन्म सिराई। जरा-मरण नियरायल आई ॥५॥

करहु विचार जो सर्वमें, दुःख सकलो मिटि जाय ॥ ब्रह्म धोख यह त्यागहू, जो गुरुवन ठहराय ॥४॥ लालच लागी जगत को, तामें जन्म सिराय ॥ आगे पीछे करत ही, आई मृत्यु नगिचाय ॥ ५ ॥

जड़ तत्त्वोंके कार्य-कारणसे भिन्न निज चैतन्य-स्वरूप जीव ही नित्य-सत्य अखण्ड है; ऐसे मेरे सत्य निर्णय पारखबोधका विचार करो ! वैसे गुरुविचारसे जो निज पारख-स्वरूपमें स्थिर होंगे, उनके सब भ्रम-भूलके दुःख मिट जायेंगे। अतएव झूठे गुरुवा लोगोंके झूठे सिद्धान्तोंकी सगाई=प्रेम-प्रीतिका मिथ्या सम्बन्ध सर्वथा

परिहरि=परित्याग करके पारख विचार करो, तभी तुम्हारे सर्व बन्धन छूटेंगे ॥४॥ अथवा सर्व संसारमें चैतन्य जीवसे बढ़कर और कोई नहीं है। जीवका स्वरूप ही वास्तवमें सत्य है। निज स्वरूप अखण्ड अविनाशी जो जीव है, उसीके बारेमें पारख विचार करो! अज्ञान-अबोधसे जो सम्पूर्ण दुःख लगे हुए हैं, सो सर्व दुःख तुम्हारे पारखबोध-विचारसे मिट जायेंगे। भ्रमिक गुरुवा लोगोंने जो एक ब्रह्म-परमात्मा कोई सत्य है, ऐसा ठहराया है, सो यह वाणीकी कल्पना मिथ्या भ्रम-धोखा ही मात्र है। उसे यथार्थ परखकर परित्याग करो! ॥ ४ ॥

खानि और वाणी, दोनों ओरके अनेक प्रकारके लोभ-लालच जगत्-जीवोंको बहुत ही लग रहे हैं। उन्हींमें मनुष्य-जन्मकी आयुका समय व्यर्थ ही सिराई=खतम, समाप्त करते जा रहे हैं। इस कारण युवावस्थाके पश्चात् जरा=वृद्धावस्था भी हो गई। आगे-पीछे इधर-उधर करते-ही-करते अब तो मृत्यु होनेका समय भी नियरायल= समीपमें आ गया। अन्तमें मर भी गया, तब जड़ाध्यासी जीव चौरासी योनियोंमें जाकर दुःखभोक्ता हुआ और हो रहा है। अतः समय रहते ही पहलेसे सचेत होकर अपना उद्धार करो! ॥ ५ ॥

साखीः—भरम का बाँधा ई जग । यहि विधि आवै जाय ॥
मानुष जन्म पायके । नर! काहेको जहँड़ाय ? ॥२३॥

साखीः—भरम का बाँधा ई जग, यहि विधि आवै जाय ॥
मानुष जन्म पायके, नर ! काहेको जहँड़ाय ? ॥ ६ ॥

वाणी-कल्पनाके विषयरूप ब्रह्म, ईश्वरादिका भ्रम और खानि सम्बन्धी जगत्के पञ्च विषय-सुख-भोगोंका भ्रम; ऐसे दोनों ओरके भ्रम-भूलमें बँधे हुए ये जगत्के अबोध जीव इसी प्रकारसे खानि-वाणीमें आते-जाते, भूलते-भुलाते, फँसते-फँसाते, जन्मते-मरते हुए चौरासी चक्रमें ही पड़े रहते हैं। अभीतक उसीमें भूले पड़े हैं। अब भी हे नरजीव ! ऐसे उत्तम मनुष्य-जन्मको पा करके मुक्त होनेके सत्पुरुषार्थमें न लगकर व्यर्थ ही खानि-वाणीके मिथ्या जालोंमें जाकर अपने-आप जहँड़ाय= धोखेमें पड़कर क्यों महान् हानि करते हो? क्यों कठिन भव-बन्धनोंमें और भी बँधते जाते हो? इस प्रकार आयुको व्यर्थ बिताकर पुनः चौरासीमें जाकर दुःख भोगनेका काम क्यों कर रहे हो? अब भी सचेत होओ? पारखबोध प्राप्त करके अपना जीवन-कल्याण करो! ॥ ६ ॥ २३ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ २४ ॥ ❁ ॥

चन्द्र चकोर की ऐसी बात जनाई । मानुष बुद्धि दीन्ह पलटाई ॥१॥
चारि अवस्था सपनेहु कहई । झूठो-फूरो जानत रहई ॥२॥
मिथ्या बात न जानै कोई । यही विधि सब गैल बिगोई ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—चन्द्र चकोर की ऐसी, प्रीती दीन्ह दृढ़ाय ॥ मानुष बुद्धी हंसकी, तुरत दीन्ह पलटाय ॥१॥ चारि अवस्था स्वप्नवत्, दीन्हीं साँच दृढ़ाय ॥ झूठे ही अनुमान को, साँच जीव पतियाय ॥२॥ जो मिथ्या धोखा अहै, ताको कोई न जान ॥ येही विधि सब नष्ट भये, ब्रह्मसिन्धु सुख मान ॥३॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जैसे चकोर पक्षी चन्द्रमाको अत्यन्त प्रीतिसे देखता ही रहता है; तद्वत् हे भक्तो ! तुम लोग भी चकोरके समान बनकर चन्द्रवत् परमात्माके ऊपर ऐसी ही दृढ़तासे अनन्य प्रीति लगाओ, तभी तुम्हें भगवान् मिलेंगे। इस प्रकार गुरुवा लोगोंने चन्द्र-चकोरका दृष्टान्त देकर वाणी-कल्पनासे ऐसी प्रीति लगानेको अबोधजनोंको दृढ़ा दिया। इस कारण भ्रम-धोखेमें पड़नेसे हंसजीवकी मनुष्य-बुद्धि, विवेक-विचार भ्रमिकोंने तुरन्त पलटाकर विपरीत कर दिया। इसीसे बिना विचार भ्रम-धोखेको सत्य मानकर सब लोग भूल रहे हैं ॥१॥ चारों अवस्थाएँ स्वप्नवत् मिथ्या हैं और एक परमपति परमात्मा ही सत्य है; गुरुवा लोग ऐसा कहते हैं। यही बात साँच=सत्य चैतन्य जीवको उन लोगोंने खूब दृढ़ा दिया, मिथ्याको सत्य बताकर भुला दिया। इस कारण झूठो=झूठी अनुमान-कल्पनाको ही फूरो=सच्चा समझकर अबोध जीवोंने खूब दृढ़ विश्वास कर लिया। इस कारण बिना विवेक मिथ्याको ही सत्य जानते वा समझते हुए भूले पड़े हैं ॥२॥ जो मिथ्या भ्रम-धोखेकी बात है, उस अनुमानकी वाणीका भेद तो कोई नहीं जान पाते। इसीसे कोई एक ब्रह्म-परमात्मा सुखसे भरा हुआ महासागरके समान मान-मानकर, इसी प्रकार मनुष्य-पदसे बिगड़कर सब नष्ट हुए और होते जा रहे हैं; बिना विवेक ॥ ३ ॥

आगे दै-दै सबन गमाया। मानुष बुद्धि सपनेहु नहिं पाया ॥४॥
चौंतिस अक्षरसे निकले जोई। पाप-पुण्य जानेगा सोई ॥५॥

आगे जो ऋषि मुनि भये, आपन पद सबै गमाय ॥ मानुष पद निर्णय कोई, स्वपनेहू नहिं पाय ॥४॥ चौंतिस अक्षर जाल रची, कीन्हों जग परवान ॥ तामें से जो निकरै, पाप पुण्य सोइ जान ॥ ५ ॥

आगे=प्राचीनकालमें ब्रह्मादिसे लेकर जो जितने भी ऋषि-मुनिगण हुए, उन सबने भी अपनेसे प्रथमवालोंकी वाणी-कल्पनामें ही मन दे-देकर मिथ्या अनुमानको ही सत्य समझ करके अपने हंसपदके विवेक-विचारको भ्रम-धोखेमें गमाकर नष्ट कर दिया। तदनन्तर जितने भी मनुष्य हुए, उन सबने भी आगेवालोंका ही प्रमाण दे-देकर अपने बुद्धि-विचारको खो दिया। इसलिए मनुष्य-पदके सत्यन्याय-निर्णय करनेकी निष्पक्ष गुरुबुद्धिसे पारखबोधका स्वप्नवत् झलक-मात्र भी उन किसीने जान नहीं पाया। इसीसे उन किसीका भ्रम-बन्धन नहीं छूटा ॥४॥ 'क' से 'क्ष' तक सब चौंतीस अक्षरोंसे अनेक प्रकारके वाणीजाल रचना करके, गुरुवालोगोंने वेदादि वाणीको बनाकर अपने भी प्रमाण करके मान लिया और जगत्-जीवोंको भी उसी प्रमाणको

मनाकर भ्रम-बन्धनमें डाल दिया। अब जो कोई पारखी सन्त चौंतीस अक्षरके वाणीजालको यथार्थ परखकर, विवेक-दृष्टिसे देखकर, उससे बाहर निकलकर न्यारे होंगे, वे ही गुरुवा लोगोंके 'पाप' और 'पुण्य' दोनोंके कथनको भव-बन्धनके रूपमें जानकर उसे परित्याग करके निर्बन्ध होंगे। पाप = जगत्-प्रपञ्च खानिजाल और पुण्य = वेद-प्रपञ्च वाणीजाल, ये दोनों जीवको बन्धनरूप हैं। इस बातको चौंतीस अक्षरोंके जालसे निकलनेवाला ही जानेगा ॥ ५ ॥

साखीः—सोई कहन्ता सोइ होउगे। तैं निकरि न बाहिर आव ॥
हो हजूर ठाढ़ कहत हौं। तैं क्यों धोखे जन्म गमाव? ॥२४॥

साखीः—जो कहत सोइ होउगे, तैं निकरि न बाहिर आव ॥
जो हजूर सो तुमहीं हो, तैं क्यों धोखे जन्म गमाव ? ॥ ६ ॥

ब्रह्म कहनेसे क्या तुम ब्रह्म हो जाओगे ? जगत्में परिपूर्ण माननेसे क्या वैसे बनोगे ? कभी नहीं। गुरुवा लोग कहनेमात्रसे 'तुम ब्रह्म हो जाओगे' ऐसा जो कहते हैं, सो मिथ्या भ्रमका कथन होनेसे वह भ्रम मात्र है। बिना विचार भ्रम-कल्पनाकी वाणी सुनकर, सो वही वाणी तुम भी कहते हो, वही भ्रमरूप होते हो। औरोंको भी वैसा भ्रमिक होनेको बताते हो। किन्तु अन्तमें उस तरह खूब बद्ध हो जाओगे। यदि अपना हित-कल्याण चाहते हो, तो अब भी यथार्थ भेद समझकर वैसी वाणीके घेरा, भ्रम-धोखेसे तुम बाहर निकल आओ न! क्यों भ्रमके भीतर घुसे बैठे हो? बाहर निकलकर क्यों नहीं आते हो? मिथ्या पक्षको छोड़ो! भ्रम-बन्धनसे बाहर निकल आओ! मैं अपने पारख-पदमें ठाढ़ = खड़े होकर दृढ़तासे कहता हूँ कि जो अविनाशी सत्य चैतन्य, सत्य वस्तु हजूर = हाजिर, सन्मुखमें स्थित, सर्व क्षमतायुक्त सर्वश्रेष्ठ है, सो तो तुम स्वयं ही हो। हे नरजीव! ऐसे यथार्थ पारखबोधको अब मेरे कहनेसे समझो! सत्यासत्यका विवेक-विचार न करके तुम क्यों भ्रम-धोखेमें व्यर्थ नर-जन्म गमा रहे हो? अब भी ठीकसे समझकर अपना कल्याण करो! ॥ ६ ॥ २४ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ २५ ॥ ❀ ॥

चौंतिस अक्षर का इहै विशेषा। सहस्रों नाम याहिमें देखा ॥१॥
भूलि भटकि नर फिर घट आया। होत अजान सो सबन गमाया ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—चौंतिस अक्षर जाल में, सकलो धोखा जान ॥ सहस्र नाम ये जानिये, ताही को परमान ॥१॥ भूलि भटकि भ्रम जालमें, फिर नर घटमें आय ॥ होत अज्ञान गुरुवन सङ्ग, पुनि सब दीन्ह गमाय ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—चौंतीस अक्षरोंसे निर्मित वाणीजालकी यही विशेषता है कि सहस्रों, लाखों, करोड़ों नाम, रूप, गुणका वर्णन उसी वाणीमें ही देखा

जाता है ॥१॥ अथवा उन्हीं चौंतीस अक्षरोंके वाणीजालमें वेद, शास्त्र, पुराणादिकी सम्पूर्ण मिथ्या मानन्दी, भ्रम-धोखा, अनुमान-कल्पनादिका वर्णन भरा है। इस बातको सब नहीं जानते। सहस्रनाम आदिकी महिमा भी उसी वाणीको लेकर प्रमाण किया है। इसका भेद कोई बिरले पारखी सन्त ही जानते हुए न्यारे रहते हैं। सो जानो ! ॥ १॥

खानि-वाणीजालमें भूलकर मोटी-झीनी मायामें भटकते हुए भ्रमजालमें फँसकर जड़ाध्यासी जीव पशु, अण्डज, उष्मजादि अनेक योनियोंमें अध्यासवश भटकते-फिरते हुए पुनः नये कर्म बनानेके लिए नर=मनुष्य-खानिमें घट=देह धारण करके वर्त्तमानमें आये हैं। अब भी अज्ञानग्रस्त होनेसे भ्रमिक गुरुवा लोगोंके और स्त्री, पुत्र, परिवार, विषयादिके सङ्ग-साथमें लगकर पुनः सब अबोधजनोंने अपने मनुष्य-पदके सब सद्‌गुणोंको एवं आयुको भी व्यर्थमें गमाकर बिता दिया। इसीसे भव-बन्धनसे कोई जीव छूट नहीं पा रहा है ॥ २ ॥

खोजहिं ब्रह्मा विष्णु शिव शक्ती। अनन्त लोक खोजहिं बहु भक्ती ॥३॥
खोजहिं गण गन्धर्व मुनि देवा। अनन्त लोक खोजहिं बहु भेवा ॥४॥

खोजहिं ब्रह्मा-विष्णु शिव, ता बानी को जान॥ अनन्त लोक सब खोजहीं, करि बहु भक्ति प्रमान ॥३॥ खोजहिं गण गन्धर्व मुनि, तैंतिस कोटी देव ॥ अनन्त लोक सब खोजहीं, देखि देखि बहु भेव ॥ ४ ॥

कोई एक ब्रह्म-परमात्मा सब जगत्‌का मालिक कहीं होगा; ऐसा अनुमान, कल्पना करके प्रथम ब्रह्मा, विष्णु, शिव और उनकी माता आदिशक्तिसे लेकर सब लोगोंने दशों दिशामें उसकी खोज-तलाश की। पृथ्वीमें कहीं पता न मिलनेसे ऊपर आकाशमें कहीं अनन्त लोकोंमें होगा, ऐसा मानकर अनन्तों लोगोंने अनेक प्रकारसे भक्ति, योग, ज्ञानादि साधनाएँ कर-करके खोजकी; तथापि जीतेतक किसीको परमात्मा नहीं मिला। भ्रम-बन्धनमें बन्धकर समयानुसार वे सब मरते गये ॥३॥ अथवा पश्चात्‌वाले अबोध लोग उसी वेदादि कल्पित वाणीको सत्य जानकर ब्रह्मादिको कर्त्ता-रूपमें मान लिये, तब उनका दर्शन प्राप्तकर अपनी मनोकामनाएँ सिद्ध करनेके लिए ब्रह्मा, विष्णु, शिव और शक्तिकी चारों ओर खोज-तलाश करने-कराने लगे। अनन्त लोकके ऊपर उनका निवास-स्थान दिव्य लोक होगा; ऐसा अनुमान करके सारे संसारके अनेक मनुष्य सब-के-सब बहुत प्रकारसे भक्ति आदिके प्रमाणसे साधना करते हुए अनन्त लोककी खोज-तलाश कर रहे हैं; बिना विचार ॥३॥ उसी प्रकार पश्चात्‌के मानव-गण वा भेषोंके समूह, गन्धर्व=गवैये कीर्तनकार भक्त, ऋषि-मुनिगण और माने हुए तैंतीस कोटि देवगण; ये सब लोग भी कोई एक परमेश्वरको मालिक मानकर उसकी खोज-तलाश करते गये। अपनी-अपनी समझसे बहुत प्रकारकी भावनाओंको लेकर इधर-उधर देखते, ढूँढ़ते, जहाँ-तहाँ तलाश करते हुए अनन्त लोकोंकी कल्पनाको दृढ़कर अनन्त लोग सब-के-सब ईश्वरादि, स्वर्गादिकी खोज-तलाश करनेमें सर्वदासे लगते चले आ रहे हैं; तथापि अबतक किसीको भी ईश्वरादि

प्राप्त हो नहीं सका। इसीसे भ्रम-बन्धनमें ही सब बँधे पड़े हैं; बिना पारख ॥ ४ ॥

साखीः—जती-सती सब खोजहीं। मनहिं न मानै हारि ॥
बड़-बड़ जीव न बाँचि हैं। कहहिं कबीर पुकारि ॥२५॥

साखीः—जती सती सब खोजहीं, मनहिं न मानै हारि ॥
बड़-बड़ जीव न बाँचि हैं, कहहिं कबीर पुकारि ॥ ५ ॥

जती = यति, त्यागी-वैरागी षट्दर्शनोंके सर्व साधु लोग और सती = सतीदेवी, सावित्री, साध्वी, पतिव्रताएँ एवं सत्यवादी हरिश्चन्द्रादि राजा भक्त लोगोंसे लेकर और सब लोग भी समयानुसार वेदादि वाणीको प्रमाण मानकर ब्रह्म, ईश्वरादिको खोज-तलाश करते चले आ रहे हैं। उसका दर्शन प्राप्त न होनेपर भी वे लोग कभी अपने मनमें हार नहीं मानते। सारा जीवन व्यर्थ बिताते चले जा रहे हैं। सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब पुकार करके कहते हैं—इस प्रकार जब बड़े-बड़े सिद्ध-साधक जीव भी अनुमान-कल्पना, भ्रम-भूलके भव-बन्धनसे नहीं बचे, तब फिर अन्य छोटे, कम समझ-वाले नरजीव भव-बन्धनसे कैसे? कहाँसे बचेंगे? बिना पारख मोटे-झीने माया-जालके महान् बन्धनमें ही सब बँधे फँसे पड़े हैं। अतः पारखबोध प्राप्त करके अपने जीवको सब बन्धनोंसे छुड़ाओ! ॥ ५ ॥ २५ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ २६ ॥ ❀ ॥

आपुहि कर्त्ता भये कुलाला। बहुविधि बासन गढ़ै कुम्हारा ॥१॥
विधिने सबै कीन्ह एक ठाऊँ। अनेक जतनके बने कनाऊँ ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—जीवरूप कर्त्ता बने, हन्ता भई प्रकाश ॥ ताते नाम कुलाल भौ, ब्रह्म अस्मि भौ भास ॥१॥ भास ते अन्तःकरण भौ, चित मन बुद्धि हङ्कार ॥ ताते इच्छारूप भौ, तेहि प्रगट नारि ठहार ॥२॥ ता नारीके चक्र-पर, बहुविधि रूप उपाय ॥ तेहिते कर्त्ता आपु ही, नाम कुम्हार कहाय ॥३॥ ब्रह्मा बुद्धी कीन्हिया, सबै तत्त्व एक ठाम ॥ बहु योनिन रूपहि ढारिया, अनेक यतन के नाम ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जड़ाध्यासी बद्ध जीव आप ही देह बनानेका कर्त्ता कुलाला = कुम्हारवत् हुआ। उसीने चौरासी योनियोंमें बहुत प्रकारके बासन = वर्तनवत् शरीर अध्यासके अनुसार कुम्हारके समान गढ़ै = गढ़न करके बना लिया वा बनाता है। अतएव जीवको छोड़कर ईश्वरादि कर्त्ता और कोई नहीं है ॥ १ ॥

देहाध्यासी जीवरूपमें वह स्वयं ही देहादि बनानेका कर्त्ता बना और बनता है। उसके मनमें हन्ता = अहङ्कार, सूक्ष्म संस्कार प्रकाश हुआ। उसीसे सब कार्य करने लगा। इसलिए जीवका नाम कुलाला = कुम्हार हुआ। मनुष्य जीव ही वेदादि वाणीके

प्रमाणसे "अहं ब्रह्मास्मि" कहकर उसका भास मनमें टिकाते हैं। उसीसे ब्रह्म अस्मि = मैं ब्रह्म हूँ, ऐसा भास जीवको हुआ वा होता है ॥१॥ वैसा-वैसा ही भास अन्तःकरणरूप चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कारमें दृढ़ हुआ। उससे इच्छा, स्फुरणा हुई, तब इच्छारूपमें अनेक प्रकारकी नारीरूप वाणी उत्पन्न होकर ग्रन्थाकारमें फैल गई। अथवा चित्त-चतुष्टयरूप अन्तःकरणमें विषयासक्तिके भाससे जड़ाध्यास खूब दृढ़ हुआ। उसी विशेष भोगेच्छारूप संस्कारसे विषयाध्यासी जीव पुनर्जन्ममें पुनः स्त्रीरूपमें प्रकट होकर ठहर गया ॥ २ ॥ फिर विषयभोगी पुरुषके उसी स्त्रीके योनि-चक्रपर भोग-विलास करनेसे गर्भ-स्थापन होकर बहुत प्रकारके पुत्र-पुत्रीरूपमें सन्तान उत्पन्न किये। पुनः अध्यासी जीव ही जाकर चौरासी योनियोंमें अनेक प्रकारकी देहोंका रूप धारण करके देह उत्पन्न करता है। उस कारण अध्यासी बद्ध जीव आप ही देहादि-का कर्त्ता होता है। इसीसे उसका नाम 'कुम्हार' कहा जाता है ॥३॥ कुम्हारवत् विधि = ब्रह्मारूप रजोगुण संयुक्त बुद्धिने ही सम्पूर्ण अध्यासको अन्तःकरणमें एकत्र किया। स्थूल देह छूटनेपर सूक्ष्म देह संयुक्त अन्य मनुष्यादि योनिमें जाकर देह-रचनाके लिए पूर्व संस्कारके अनुसार जीवकी सत्तासे सब तत्त्वोंको एक जगह एकत्रित किया। साधारण कारण माता-पिता, उपादान कारण रज-वीर्य, और नैमित्य कारण अध्यासी जीव; ये तीनों पूर्व संस्कारके अनुसार ही सब एक जगहमें मिल गये। अनेक कर्मोंकी अनेक वासनाके अनुसार अनेक यत्नरूप उपायसे चौरासी योनियोंमें बहुत प्रकारके आकार-प्रकार, स्वरूपमें देहोंको ढारकर कनाऊँ = बर्तनरूप देह बना लिया। इसी प्रकार सब शरीर बनाया। वैसे ही उनके विभिन्न नाम भी नरजीवोंने रख दिये। बिना पारख सब खानि-वाणीका स्वयं दास बनकर भूल रहे हैं ॥ २ ॥ ४ ॥

जठर अग्निमों दीन्ह प्रजारी । तामहँ आपु भये प्रतिपाली ॥३॥
बहुत जतन कै बाहर आया । तब शिव शक्ती नाम धराया ॥४॥

तब सङ्कल्प मनने कियो, चल्यो चित्त तेहि ठाम। बुद्धीने निश्चय धरो, ताते उपज्यो काम ॥५॥ तत्त्व प्रकृति सब सम भई, मिलो कँवल जब जाय॥ जठर अग्निके भीतरे, यहि विधि दीन्ह जराय ॥६॥ तामें आपु प्रकाश भौ, भयो तहाँ प्रतिपाल॥ नर्क मूत्र मुखमें परे, उठे दुर्गन्ध विशाल ॥७॥ तहाँ रूप साबुत भयो, तब पुनि बाहर आय॥ स्त्री औ पुरुष ऐसा, जगमें नाम धराय ॥ ८ ॥

जठर = पेटरूप गर्भकी अग्निमें नये शरीरको प्रजारी = जलाकर परिपक्व किया। तामहँ = उस गर्भ-स्थित देहमें भी आप चैतन्य जीव ही अपनी देहका निर्माता और प्रतिपालक, रक्षक हुआ और होता है ॥३॥ विषय-वासनाके कारण संयोग सम्बन्ध करनेके लिए तब स्त्री-पुरुषके मनने विषय-भोगका सङ्कल्प किया। चित्त भी उसी स्थानमें चला गया। बुद्धिने भी भोग करनेके लिए ही निश्चय करके वासना धारण किया। इसलिए काम-वासनाका उद्वेग विशेषरूपमें उत्पन्न हुआ ॥४॥ स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर मिल गये। उन दोनोंके तत्त्व-प्रकृति, तन-मनादि एकसमान हो गये।

जब उनके भग–लिङ्गरूप कमल आकर एकत्र मिले, तब स्त्रीको गर्भ-स्थापन हुआ। इसी प्रकारसे अध्यासी जीवने पुरुषके वीर्यसे रजमें मिलकर गर्भवासमें पहुँच करके स्थूल देहको बनाया। जठर=पेटकी गर्भस्थ अग्निके भीतर नौ महीनेतक रहते हुए, इसी तरह उस अग्निमें देहको जलाकर ताप सहते हुए परिपक्व किया ॥६॥ गर्भवासमें आप जीव ही देहका प्रकाशक हुआ। जीवके सत्ता सम्बन्धसे ही देह निर्मित होकर, वहाँ उस देहकी प्रतिपालनरूप रक्षा भी हुई। गर्भस्थ बालकके मुखमें नर्क–मूत्रादि विकार भी पड़े और वही उसके देहमें भी भर गये। विशाल दुर्गन्ध भी उठती रही। ऐसा गर्भवासका दुःख बद्ध जीवने सहन किया और सहना ही पड़ता है ॥७॥ वहीं गर्भ-स्थानमें स्थूल देहका रूप सम्पूर्ण बनकर तैयार हुआ। बहुत प्रयत्न करके तब पुनः यथासमय जन्म लेकर बालक बाहर आया। तदुपरान्त उसके मूत्रेन्द्रियरूप चिन्हको देखकर 'लिङ्ग' इन्द्रीवालेको शिव=पुरुष, पुत्र; और 'योनि' इन्द्रीवालीको शक्ति=स्त्री, पुत्री; ऐसे ही नाम जगत्में रख दिये। उसी प्रकार उनको शिक्षा–दीक्षा देकर विषय-व्यवहारके कार्य चलाते ले जा रहे हैं। अथवा युवक होनेपर कोई शिव-उपासक और कोई शक्ति-उपासक बनकर भ्रम–धोखेमें भूले पड़े हैं ॥ ४ ॥ ८ ॥

घरका सुत जो होय अयाना। ताके संग न जाहु सयाना ॥५॥
साँची बात कही मैं अपनी। भया दिवाना औरकी पुन्ही ॥६॥

जो यह मन अज्ञान भौ, भरमें जहाँ तहाँ धाय ॥ अरे सयाने जीयरा, ताके सङ्ग न जाय ॥९॥ साँच बात आपन कहौं, कछु न राखों गोय ॥ गुरुवन सङ्ग मतिभङ्ग भई, अन्तहु चले बिगोय ॥ १० ॥

घरमें यदि अपना ही पुत्र जो अज्ञानवश खराब कर्ममें लग जाय, तो उसके सङ्गमें लगकर हे सयाने लोगो! तुम कभी खराब मार्गमें जाकर मत् लगो! ॥ ५ ॥ अथवा घर=घट, हृदयमें रहनेवाला, सुत=अपनी सत्तासे उत्पन्न,साथी बना हुआ यह मन जो यदि अज्ञानग्रस्त होकर खानि–वाणीके भवसागरमें जहाँ–तहाँ दौड़–दौड़कर भटकता रहे, अज्ञानतासे वह ऐसा ही करता रहता है, तब भी हे सयाने जीव! तुम उसके सङ्गमें लगकर भव-बन्धनकी ओर कभी मत् जाओ! किन्तु मन–इन्द्रियोंको अपने वशमें करके पारखी सन्तोंके सत्सङ्गमें लगकर अपना जीवन-कल्याण करो! ॥९॥ मैंने तो दया करके अपने सत्यन्याय–निर्णयकी बात ही कही और सत्य-सत्य ही कहता हूँ। कुछ भी गोय=छिपा करके नहीं रखता हूँ। हे जीव! तुम्हारा चैतन्य पारख-स्वरूप ही सत्य है और सब मिथ्या मानन्दी भ्रम--धोखा है। परन्तु इस बातको सब नहीं समझते। इसलिए भ्रमिक गुरुवा लोगोंके सङ्ग--साथमें लगकर नरजीवोंकी मति भङ्ग हुई और हो रही है। इसीसे पुन्ही=पुनः और कोई ब्रह्म, ईश्वरादिका अन्ध-विश्वासकर दिवाना=पागल हुए और हो रहे हैं। अपने स्वरूपकी स्थिति न करके सर्व सद्गुणोंको खोकर भ्रम--धोखेमें पड़े जड़ाध्यासी हो मुक्तिको बिगाड़कर अन्तमें चौरासी योनियोंमें ही चले जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ५ ॥ १० ॥

गुप्त-प्रगट है एकै दूधा । काको कहिये ब्राह्मण शूद्रा ॥७॥
झूठे गर्भ भूलो मति कोई । हिन्दू तुरुक झूठ कुल दोई ॥८॥

गुप्त प्रगट है एकै जिव, एकै रूप निहार ॥ ब्राह्मण शूद्र काको कहिये ?, ये सब झूठ बिचार ॥११॥ झूठ जाति कुल धर्म है, भूलि गहो मति कोय ॥ हिन्दू तुरुक मनमत अहै, झूँठ बने कुल दोय ॥ १२ ॥

गुप्त = गर्भावस्थामें छिपे रहनेपर और प्रगट = जन्म लेके बाहर आनेपर; ऐसी दोनों अवस्थामें दूधा = सत्य चैतन्य निर्मल जीव सब देहधारियोंमें एकसमान ही रहते हैं। भीतर और बाहर देहमें प्रकाश करनेवाला एक-एक शरीरमें एक-एक जीव है। सब मनुष्योंके रूप, आकार-प्रकार भी एकसमान ही दीखते हैं। प्रत्यक्ष देखलो ! अब कहो—ब्राह्मण और शूद्र वास्तवमें किसको कहना ? जड़ और चैतन्य; शरीर और जीव सबके एक-सा ही हैं। फिर अपनेको सबसे ऊँचा ब्राह्मण श्रेष्ठ, और दूसरेको सबसे नीच शूद्र, अछूत कैसे कहते हो ? विवेक-दृष्टिसे देखनेपर ये सब सरासर झूठा विचार ही ठहरते हैं। अतः ऐसे भ्रममें मत् पड़ो ! ॥७॥११॥ इसलिए झूठे गर्भ = अहङ्कारमें अन्धे होकर मत् भूलो ! हिन्दू और तुरुक = मुसलमानरूपमें माने हुए दोनों कुल भी वास्तवमें झूठे हैं ॥८॥ अथवा व्यावहारिकरूपमें विभिन्न लोगोंकी मानी हुई अलग-अलग जाति, कुल, गोत्र और धर्म-कर्मादि जितनी भी मानन्दी हैं, वे सब सिद्धान्तकी दृष्टिसे झूठी ही हैं। इसलिए भ्रमसे मिथ्या-धोखेमें भूलकर कोई भी वैसी मिथ्या मानन्दीको अपने हृदयमें ग्रहण मत् करो ! हिन्दू और तुरुक, ये दोनों ओर सब मनमति ही बने हैं। उनके दोनों कुलकी जितनी मानन्दी हैं, सब झूठी ही बनी हैं। मिथ्या पक्षको परित्याग करो ! ॥ ८ ॥ १२ ॥

साखीः—जिन्ह यह चित्र बनाइया। साँचा सो सूत्रधारि ॥
कहहिं कबीर ते जन भले। जो चित्रवन्तहि लेहि निहारि॥२६॥

साखीः—जिन्ह यह चित्र बनाइया, साँचा सो जिव रूप ॥
तेई जन अति उत्तम, निश्चय किया सो रूप ॥ १३ ॥

जिसने खानि-वाणी और स्थूल-सूक्ष्म देहादिके सम्पूर्ण ये चित्र = तस्वीर विचित्र-रूपसे बनाकर विस्तार किया है, सो वही इच्छा-वासनादि सूत्रको धारण करनेवाला चैतन्य जीवके स्वरूपमें स्वयं सच्चा है। जीवको छोड़कर माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादि सर्वथा मिथ्या-धोखा है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—वे ही सत्यन्यायी विवेकी पारखी सन्तजन भले = अच्छे, अति उत्तम हैं, जिन्होंने विवेककी दृष्टिसे निजसत्य चैतन्य पारख स्वरूपको देख लिया है। चित्रवन्त = सब चित्रोंको बनानेवाला मेरा चैतन्य स्वयं स्वरूप ही नित्य-सत्य है—ऐसा दृढ़ निश्चय कर लिया है, वे सब अध्याससे रहित निज स्वरूपमें स्थिर निर्बन्ध जीवन्मुक्त होते हैं ॥ १३ ॥ २६ ॥

॥ ॥ रमैनी ॥ २७ ॥ ॥

ब्रह्माको दीन्हों ब्रह्मण्डा । सप्त द्वीप पुहुमी नौ खण्डा ॥१॥
सत्य-सत्य कहि विष्णु दृढ़ाई । तीन लोकमा राखिन जाई ॥२॥
लिङ्गरूप तब शङ्कर कीन्हा । धरती खीलि रसातल दीन्हा ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—जीवरूप कर्त्ता बने, इच्छाते भइ नार ॥ ताको अष्टङ्गी कही, तेहिते तीनिउ बार ॥१॥ ब्रह्माको ब्रह्माण्डको, राज्य दियो है सौंपि ॥ सात द्वीप नौ खण्डमें, ध्वजा विष्णु की रोपि ॥२॥ ॐ ॐ कहि विष्णु दृढ़ाई, तीन लोक मञ्झार ॥ लिङ्गरूप शङ्कर करे, दीन्हों राज पतार ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—सात द्वीप और नौखण्ड सहित पृथ्वीरूप ब्रह्माण्डका और चारों वेदोंका राज्याधिकार ब्रह्माको दिया गया ॥ १ ॥

अथवा जीवरूप = देहधारी जड़ाध्यासी जीव देहादिका कर्त्ता बना । विषय-भोगोंके विशेष इच्छा-वासनारूप संस्कारसे वही अध्यासी जीव पुनर्जन्ममें स्त्री-देहधारी हुआ । उसीको पाँच तत्त्व, त्रिगुण संयुक्त स्त्री-देहधारी होनेसे अष्टाङ्गी महामाया भगवती कहा गया । 'धर्मराज' नामक पुरुषके सम्बन्धसे उस स्त्रीके गर्भद्वारा पुत्ररूपमें तीन बालक उत्पन्न हुए ॥१॥ पश्चात् समय आनेपर उस माताने बड़े पुत्र ब्रह्माको ब्रह्माण्डरूप वाणी और बाह्य देशोंके राज्यका अधिकार सौंप दिया । सात द्वीप और नौ खण्डमें विष्णुकी विशेषताका ध्वजा = झण्डा, रोपि = गाड़ दिया ॥२॥ स्वर्गका राज्य विष्णुको देकर तीन लोकमें विशेष प्रभुताका अधिकार रख दिया । तीन लोकमें जाकर सत्य-सत्य न्याय करनेके लिए विष्णुको दृढ़ाया । एक ॐकार ब्रह्म सत्य है; इसलिए प्रथम "ॐ-ॐ" ऐसा कहकर प्रत्येक कार्य करना ! यही बात विष्णुको दृढ़ा दिया और तीन लोकके बीचमें सत्यासत्यका न्याय करनेको न्यायाधीश भी बना दिया । वही ॐकाररूप वाणीको पुनः विष्णुने भी और सबको दृढ़ाया ॥२॥ लिङ्गाकार योग-मार्गसे ध्यान-समाधि लगाकर लिङ्गरूप = सूक्ष्मरूप अचेत जड़वत् दशा शङ्करने धारण किया । ऐसा देखकर तब धरती खीलि = पृथ्वीके निचला भागमें खूँटा गाड़कर रसातलरूप पातालका राज्य शङ्करको दे दिया ॥ ३ ॥

तब अष्टङ्गी रची कुमारी । तीन लोक मोहा सब झारी ॥४॥
दुतिया नाम पार्वतीको भयऊ । तप कर्त्ते शङ्कर कहँ दियऊ ॥५॥

तब अष्टङ्गीने रची, कन्या रूप बनाय ॥ तीनि लोक सब मोहिया, उबरो कोउ न पाय ॥४॥ दूसर नाम सतीको, भयो पारवति आहि ॥ तब हिमाचल पिताने, शिवहि दीन्हीं ब्याहि ॥ ५ ॥

तब उससे पहले ही गायत्रीरूप अष्टङ्गी मायाने तीन पुत्रियाँ उत्पन्न करके पालन-

पोषणकर उनको बड़ी कर लिया था। उन तीन पुत्रीरूप कुमारीको वस्त्राभूषणोंसे रचना करके सजा देनेसे, वे विशेष सुन्दरी हो गईं। उन तीनोंका सौंदर्य देखकर तीन लोक = ब्रह्मा, विष्णु, शङ्कररूप त्रिगुणी मनुष्य; वे सब-के-सब विशेष मोहित हुए। उनके बुद्धि-विचार सब समेटकर झड़ गये। विषय-वासनासे वे कोई पार उतरने नहीं पाये। अतएव गायत्री माताने सावित्रीको ब्रह्माके साथ, लक्ष्मीको विष्णुके साथ और सतीदेवीको शङ्करके साथमें विवाह कर दिया। तदनन्तर वे तीनों विषय-भोगोंमें भूल गये ॥ ४ ॥ कालान्तरमें सतीदेवीकी मृत्यु हो गई। वही हिमाचल राजाके यहाँ 'पार्वती' नामक पुत्रीरूपसे पैदा हुई। इस कारण पार्वतीका द्वितिया नाम हुआ। अर्थात् सतीदेवीका ही दूसरे जन्ममें दूसरा नाम पार्वती हुआ; ऐसा कहा है। तपस्या करते हुए शङ्करजीको बुला करके हिमाचल पिताने अपनी पार्वती पुत्रीको तभी शिवजीके साथमें विवाह कर दिया। तबसे शिव-पार्वतीके नाम प्रख्यात हुए ॥ ५ ॥

एकै पुरुष एक है नारी। ताते रची खानि भौ चारी ॥६॥
सर्वन बर्वन देव औ दासा। रजसत तमगुण धरति अकाशा ॥७॥

एक नारि एक पुरुष ते, रचना सबहीं झार ॥ चार खानि चौरासी, स्वर्ग मृत्यु पातार ॥६॥ श्रोता वक्ता प्रकट भये, भये देव औ दास ॥ रज सत तम गुण प्रगटे, धरती और अकास ॥ ७ ॥

एक ओर एक जैसे ही पुरुष-देहधारी हैं और दूसरी ओर एक जैसी ही स्त्री-देहधारी हैं। स्त्री-पुरुषके सम्बन्धद्वारा पुत्र-पुत्रीरूपमें सब सन्तान उत्पन्न हो रही हैं। उसी विषय-वासनारूप देहाध्यासवश चार खानिकी रचना हुई। उनमें भी एक तो पुरुष, दूसरी स्त्री-चिन्हवाली बनी है ॥६॥ अथवा योनिज तीन खानियोंमें एक स्त्री, एक पुरुषका जोड़ा मिलकर मैथुन सम्बन्धद्वारा अध्यासी जीव गर्भमें जाता है, तब देह उत्पन्न होती है। इसी प्रकार तीन खानियोंमें झारि = सम्पूर्ण प्राणियोंकी देह-रचना हो रही है। विषयाध्यासवश जीव चार खानि चौरासी योनियोंमें जाकर देह धारण करके कर्मफल भोगते रहते हैं। इस प्रकार स्वर्ग = ऊपर आकाशमें उड़नेवाले नभचर वा पहाड़ी लोग, मृत्यु = थलचर वा मैदानी भागमें रहनेवाले लोग; और पातार = जलचरादि प्राणी वा निचले भाग—अमेरिका आदिमें रहनेवाले सब जीव देह धारण करके अध्यासवश चार खानि चौरासी योनियोंमें उत्पन्न हो रहे हैं। कोई ईश्वर कर्त्तादि नहीं है। तथापि गुरुवालोग कहते हैं—एक महामायारूप नारी और एक परम पुरुषरूप परमात्माके सम्बन्धसे सम्पूर्ण सृष्टि चार खानि चौरासी योनि, स्वर्ग, मृत्यु, पातालकी रचना हुई है। परन्तु सत्य निर्णयसे यह कथन सरासर मिथ्या कल्पना ही मात्र है। जड़-चैतन्यके स्वरूप एवं विश्वका विस्तार अनादि स्वयं सिद्ध हैं; ऐसा जानना चाहिए ! ॥६॥ संसारमें कोई हिन्दू ब्राह्मण बने, सर्वन = शर्म्मन वा शर्मा उपाधि धारण किये। कोई क्षत्रिय बने, वे बर्वन = बर्म्मन वा वर्मा उपाधिधारी हुए। कोई वैश्य बने। अपने नामके पीछे वे लोग देव, गुप्त वा गुप्ताजी पदवी रख लिये। और कोई शूद्र कहलाये, वे अपने नामके पीछे दासा = दास पदवी लगाने लगे। रजोगुणी, सत्त्व-

गुणी और तमोगुणी; ऐसे त्रिगुणी मनुष्य धरती=पृथ्वीके चारों दिशाओंमें और आकाशा=ऊपर शून्य आकाशमें परमेश्वर और देवी-देवताओंका निवास मानकर भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं। और कोई धरती=स्त्री-देहमें और कोई आकाश=पुरुष देहमें विषयासक्त हो बँधे पड़े हैं ॥७॥ अथवा अबोध मनुष्योंमें कोई सर्वन=श्रोता हुए और कोई बर्वन=वक्ता, उपदेशक होकर प्रकट हुए और कोई देव बने। कहीं बहुतसे देवोंकी मिथ्या मानन्दी, कल्पना कर लिये और कोई दास=भक्त बनकर भ्रम-धोखेमें भूल रहे हैं। कोई रजोगुणी कर्मकाण्डी, कोई सत्त्वगुणी उपासक, और कोई तमोगुणी योगी होकर अनेक रूपमें प्रकट हो रहे हैं। कोई धरतीमें चार धाम चौंसठ तीर्थ करनेमें भटक रहे हैं और कोई आकाशरूप मस्तक, ब्रह्माण्डमें ध्यान-धारणा, समाधि लगाकर गाफिल हो रहे हैं। अनेक प्रकारके शरीर धारण करके वे कर्माध्यासी जीव धरती और आकाशके बीचमें कर्म-दण्ड भोगते हुए चौरासी चक्रमें भटक रहे हैं; बिना पारख ॥ ७ ॥

साखीः—एक अण्ड ॐकार ते। सब जग भया पसार ॥
कहहिं कबीर सब नारि रामकी। अविचल पुरुष भ्रतार ॥२७॥

साखीः—जीवरूप अनुमान ते, सब जग भया पसार ॥
जाकी सब नारी बनी, कहाँ है सोइ भ्रतार ? ॥ ८ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं:—एक अण्ड=गोलाकार माने हुए एक ॐकार ब्रह्मसे सर्व चराचर जगत् उत्पन्न होकर विस्तार हुआ है, वह परमात्मा राम एकमात्र अविचल परमपुरुष भ्रतार=परमपति है; ऐसा गुरुवा लोगोंने कहा। तब बिना विवेक सब उसीकी नारी=स्त्रीरूपमें भक्ति भाव धारण करनेवाले भक्त अनाड़ी, अज्ञानी बन करके मिथ्या भ्रम-धोखेमें भूल रहे हैं; बिना विचार ॥२७॥ अथवा मनुष्य-देहधारी जीवरूपके ही अनुमानसे सब जगत्में वाणी-कल्पनाका भ्रम, मिथ्या मानन्दी और खानि सम्बन्धी विषय-भोगोंका विस्तारसे पसारा हुआ और हो रहा है। अब जिसके सब लोग भक्ति भाव करके स्त्रीरूप धारण कर रहे हैं, जिसकी वे स्त्री बने हैं, वह माना हुआ भ्रताररूप परमपति परमेश्वर तो भी कहाँ है? कैसा है? उसके तो कुछ भी ठौर-ठिकानेका पता ही नहीं लगता है। व्यर्थ ही सब मिथ्या भ्रम धोखेमें भूलकर बँधे पड़े हैं। परखकर वैसे सब भ्रम-भूलको परित्याग करो ! ॥ ८ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ २८ ॥ ❁ ॥

अस जोलहा काहु मर्म न जाना। जिन्हजग आनि पसारिनि ताना ॥१॥
धरति-अकाश दोउ गाड़ खन्दाया। चान्द-सूर्य दोउ नरी बनाया ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—अस ब्रह्मा विप्रीत भौ, ताको कोइ न जान ॥ जासे बहु बानी बनी, पसरी जगमें आन ॥१॥ अर्धकी स्वासा ऊर्ध करी, दहिने

बाँय मिलाय ॥ सुषुमना मारग गहि चढ़े, ऐसो दीन्ह दृढ़ाय ॥ २ ॥

गुरुमुख:—नरजीवके अन्तःकरणमें रहनेवाला जोलहा=बुद्धिरूप ब्रह्मा ऐसा विपरीत समझवाला हुआ कि जो जीवको भव-बन्धनमें ही डालता रहता है। उसका मर्म=भेद कोई किसीने भी नहीं जाना। जीवकी सत्तासे जिस बुद्धिसे बहुत प्रकारकी कल्पित वाणी बनी और जो जगत्‌में आकर खूब विस्तारसे फैल गई—उसका, और ताना=बुनाईमें लम्बाईके सूत, तानावत् अनेक प्रकारकी इच्छा-वासनाका ताना जिसने संसारमें आकर खूब फैलाया और जीवको भव-बन्धन कराया, उसका भेद कोई ठीकसे नहीं पहचान रहे हैं; बिना विवेक ॥१॥ योगी लोग धरती=अपनी स्थूल देहमें अर्ध=नीचे नाभि-स्थानकी श्वासवायुको प्राणायामादि क्रियासे अकाश=ऊर्ध्व=त्रिकुटीके ऊपर ब्रह्माण्डमें चढ़ाकर मस्तकरूप गड्ढाको गहरा खोदकर नाभि और मस्तक; ऐसे दो स्थानके गड्ढे बनाये; तब चाँद=नासिकाकी बाँयी ईड़ारूप चन्द्र नाड़ी और सूर्य=नासिकाकी दहिने पिङ्गलारूप सूर्यनाड़ी; इन दोनोंको परस्पर एकमें मिला दिये। उन दोनोंको नरी=करघेकी नली, जिसपर सूत लपेटते हैं, वैसे ईड़ा-पिङ्गला दोनोंको नरी बनाये। तदुपरान्त तीसरी सुषुम्ना नाड़ीके मार्गको पकड़कर योगी लोग ऊपर ब्रह्माण्ड-स्थानमें चढ़ गये। इस तरह शून्य समाधि लगाकर गाफिल हो रहने लगे। ऐसी योग-साधना करनेको योगी लोगोंने दृढ़ा दिया ॥ २ ॥

सहस्र तार ले पूरनि पूरी। अजहूँ बिने कठिन है दूरी ॥३॥
कहैं कबीर कर्मसे जोरी। सूत कुसूत बिने भल कोरी ॥४॥२८॥

सहस्र नामकी भक्तिको, बहुविधि दीन्ही पूरि ॥ औरों अगम बताइया, ब्रह्म कठिन बहु दूरि ॥३॥ ब्रह्मा अपनी उक्तिसे, बहु बिधि कर्म बनाय ॥ सूत जीव कुसूत बानी, गुरुवन बाँधी आय ॥ ४ ॥

मक्रतारवत् श्वासोच्छ्‌वासमें सहस्रों बार लक्ष्य लगाकर बाहरसे भीतर कल्पनारूप ताना-बाना को पूरा बिन दिये। इस प्रकार योगी लोग अभीतक बिनते जाते हैं, तब भी परमात्मा प्राप्त न होनेसे—वह बहुत दूर है, उसे प्राप्त करना कठिन है; ऐसा भी कहते हैं ॥ ३ ॥

अथवा सहस्र नामके भक्ति-भावको वाणी-कल्पनासे बहुत प्रकार पूर्ण करके परिपुष्ट कर दिये। विधिपूर्वक सहस्रों बार नाम-स्मरण, भजन-कीर्तनादि करनेका कार्य पूर्ण किये। ऐसा करनेपर भी जब ईश्वरादि प्राप्त नहीं हुआ, तब उसे और भी अगम-अपार बताकर—'ब्रह्म प्राप्त करना बहुत कठिन है, वह तो अत्यन्त दूर है' ऐसा कहकर भ्रम-धोखेमें भूले पड़े रहते हैं ॥३॥ कहैं कबीर=गुरुवा लोग कहते हैं—कर्म-साधनामें ही अपने मनको जोड़ते रहो! जैसे कोरी सूत-कुसूत कैसा भी हो, बिनाई अच्छा ही करता है। वैसे ही कर्म कैसा भी हो, तो भी अच्छे भावसे करते जाओ, तब तुम्हारा कार्य सिद्ध होगा; इत्यादि बताकर भ्रमा-भुला रहे हैं ॥ ४ ॥

अथवा कोरी=ब्रह्मादि पण्डितजन अपनी कथनरूप उक्तिसे वेदादि वाणी रचना

करके अनेक तरहकी विधिसे बहुत प्रकारके कर्म-मार्ग बनाकर जगत्में खूब फैला दिये, तब उसी कुसूत = वाणी-कल्पनामें सूत = वासना-सूत्रको पकड़नेवाले जीवको कोरी वा जोलाहेरूप गुरुवा लोगोंने जहाँ-तहाँ आकर खूब अच्छी तरहसे कसकर बाँध दिया। पारखबोध न होनेसे सब अबोध जीव उस जालमें बँध गये, कोई छूटने नहीं पाये ॥४।२८॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ २९ ॥ ❀ ॥

बज्रहुते तृण खिनमें होई। तृणते बज्र करे पुनि सोई ॥१॥
निझरू नीरु जानि परिहरिया। कर्मका बाँधा लालच करिया ॥२॥

टीका; मायामुख-दोहाः—छिनमें बज्रको तृण करे, तृण छिन बज्र समान॥ अपनी इच्छा-मात्रमें, ऐसे श्री भगवान ॥१॥ गुरुमुखः-निझरू कहिये ब्रह्मको, नीरु सकल संसार॥ ऐसा जाना जीवने, छोड़ा जग ब्यौहार ॥२॥ ब्रह्म कर्ममें जायके, बँधे जीव तब आय॥ ज्ञान योग भक्ती आचरे, लालच बड़ी बलाय ॥३॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—वज्रको भी क्षणभरमें तृण = घास-फूँसके समान बना देवें और फिर क्षणभरमें तृणको ही वज्रके समान कठोर बना देवें। वैसे ही राजाको रङ्क और रङ्कको राजा कर देवें, पण्डितको मूर्ख और मूर्खको पण्डित बना देवें, धनपतिको कङ्गाल और महादरिद्रको धनपति बना देवें, ज्ञानीको अज्ञानी और अज्ञानीको महाज्ञानी बना देवें; इत्यादि। इस प्रकार अपनी इच्छाशक्ति-मात्रसे पलभरमें जो चाहे सो कर देनेमें समर्थ; ऐसे श्रीभगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। अतः उनकी भक्ति भावनामें लगे रहो! ॥ १ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—ऐसी रोचक वाणी सुनकर अबोध जीवने अनुमानसे निझरू = निर्दोष, विशुद्ध, कभी न झरनेवाला कोई एक ब्रह्मको अविनाशी समझकर मान लिया। और फिर निरु = पानीकी धारावत् बहते हुए विनाश होनेवाला सम्पूर्ण संसारको महाप्रलयमें विनष्ट होनेवाला समझ लिया। इस प्रकार ब्रह्मको अचल-अविनासी और जगत्को चलायमान् नाशवान है, ऐसा ही अबोध जीवोंने गुरुवा लोगोंके कहे अनुसार जानकर मान लिया। तब ब्रह्म, ईश्वरादि-प्राप्तिके लिए जगत्के सम्पूर्ण व्यवहारको परिहरिया = छोड़कर अनेक साधनाओंमें लग गये ॥२॥ पुनः ब्रह्म, ईश्वरादिमें मिलनेकी आशासे अपने-आप जा-जाकर अनेक प्रकारकी कर्म-साधनाओंमें आकर लगे। इस प्रकार अबोध जीव तब सब बँध गये। कोई ज्ञान, योग, भक्ति आदिका आचरण करने लगे; जिससे स्वर्गादि सुख और ईश्वरादि-प्राप्ति हो। ऐसी मिथ्या मानन्दीका लालच बड़ी बलाय = बड़ी आपत्ति; बलावाला होता है। लोभ-लालच करके सब कर्ममें बँध गये। बिना विचार उसीमें भूले पड़े हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

कर्म-धर्म मति बुद्धि परिहरिया। झूठा नाम साँच ले धरिया ॥३॥
रजगति त्रिविधि कीन्ह प्रकाशा। कर्म-धर्म बुद्धिकेर विनाशा ॥४॥

कर्म भरम में बँधे जिव, मति बुद्धि गई हेराय ॥ साँचे झूठे नामको, साँच धरैं ललचाय ॥४॥ गुरुवाई तीन प्रकार की, सबन कीन्ह परकाश ॥ कर्म भरम बतायके, बुद्धि का करहिं विनाश ॥ ५ ॥

कर्म = कर्ममार्ग, धर्म=उपासना-मार्ग, मति = योगमार्ग, बुद्धि = ज्ञान-मार्ग; इस प्रकार ऐसे विभिन्न मार्गोंकी साधनाओंमें लगकर ब्रह्म, ईश्वरादि-प्राप्तिकी आशासे अनेक कर्मोंके भ्रममें ही सब जीव बँध गये। इस कारण उनकी शुद्ध बुद्धि, विवेक-विचार सब हेरा गये। अपने बुद्धि-विचारको परिहरिया = परित्याग करके झूठा नाम = वोहं, सोहं, राम, ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित मिथ्या नामको ही भ्रमसे सत्य समझकर अबोध जीवोंने अपने हृदयमें धारण कर लिया। यद्यपि सत्य चैतन्य अविनाशी तो जीवका निज स्वरूप ही था; तथापि अपने-आपको भूलकर रोचक वाणीमें ललचा करके मिथ्या नाम-स्मरणादिको भ्रमसे सत्य समझकर धारण कर लिये। ऐसे भ्रम-धोखेमें जीव पड़ गये ॥३॥४॥ रजगति = रज्जुमें सर्पवत् भ्रमकी गति-विधि, रजोगुणकी गतिरूप वाणी तीन प्रकारसे प्रकाश किये। त्रिविधि = तत्त्वमसि। "तू वही ब्रह्म है", द्रष्टा, दृश्य, दर्शन एक अद्वैत ब्रह्म है। ऐसा ब्रह्मज्ञानका प्रकाश वेदान्ती लोगोंने किया। तब कर्म, धर्म और सद्बुद्धिका भी विनाश करके भ्रम-धोखेमें बद्ध हो गये ॥ ४ ॥

अथवा रजोगुणकी गति-विधिसे गुरुवा लोगोंने तीन प्रकारकी गुरुवाई करनेका मार्ग प्रकाश किया। एक तो कर्म-मार्ग, दूसरा धर्म = उपासना-मार्ग और तीसरी बुद्धि = ब्रह्मज्ञानका मार्ग उन सब लोगोंने जगत्में प्रकाश किया। परन्तु कर्मी-उपासक अपनेसे भिन्न कोई एक ईश्वर मालिक बतलाकर भूले हैं और ज्ञानी लोग जगत्में भरा हुआ ब्रह्म अपने-आपको मानकर, अन्य सब कर्मोंको भ्रम बतलाकर जीवोंकी शुद्ध बुद्धिका विनाश ही कर रहे हैं; बिना विचार ॥ ४ ॥ ५ ॥

रविके उदय तारा भौ छीना। चर-बीहर दूनोंमें लीना ॥५॥
विषके खाये विष नहिं जावै। गारुड़ सो जो मरत जियावै ॥६॥

ब्रह्ममुखः—जैसे सूर्य प्रकाशसे, तारागण होय छीन ॥ ऐसे ब्रह्मज्ञानकी, होत जगत मति लीन ॥६॥ गुरुमुखः-जैसे विषके खायते, विष नहिं उतरे भाय ॥ गारुड़ सोई जानिये, जो मरतहि देइ जिवाय ॥ ७ ॥

ब्रह्ममुखः—ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं—जैसे रवि = सूर्योदय होनेपर उसके महान् प्रकाशसे सम्पूर्ण तारागणोंका प्रकाश मन्द, निस्तेज होनेसे क्षीण हो जाता है। वैसे ही चर = चलने-फिरनेवाले जङ्गम जीव-जन्तु और बीहर = अचर वा अचल, स्थावर सम्पूर्ण जड़का विस्तार; इन दोनोंमें परिपूर्ण व्यापकरूपसे मिला हुआ एक अद्वैत ब्रह्म है, सो मैं हूँ। ऐसे ही अद्वैत ब्रह्मज्ञानरूप सूर्यका उदय होते ही तारागणके समान सम्पूर्ण कर्म, जगत्की मति = द्वैतबुद्धि, भेद-भाव अपने-आप सम्पूर्ण विलीन हो जाते हैं। फिर उसका कोई बन्धन बाकी नहीं रहता; इत्यादि ॥ ५ ॥ ६ ॥

गुरुमुखः—परन्तु वैसा ब्रह्मज्ञानीका कथन मिथ्या भ्रम-भूत है। क्योंकि जैसे विष खाये हुएको पुनः और भी अधिक विष खिला देनेसे वा खा लेनेसे हे भाई ! उसके विषका प्रकोप कभी कदापि उतर नहीं सकता है। वैसे ही जगत्‌में बद्ध जीव पुनः जगत्‌रूप अद्वैत ब्रह्म अपने-आपको मान लेनेसे भी उसका जगत्-बन्धन कभी कदापि छूट नहीं सकता है। और जो विषसे मरते हुएको विष-मारण औषध देकर उसका सम्पूर्ण विष उतारकर, उसे जीवितकर सुखी कर देता है, वही सच्चा गारुड़= गारुड़ी, साँपके विष उतारनेवालेके समान सच्चे पारखी सन्त खानि-वाणीके सर्व विषको उतारनेवाले होते हैं। वे ही भव-बन्धनका विष उतारना जानते हैं और कोई नहीं जानता है ॥ ६ ॥

साखीः—अलख जो लागी पलक में। पलकहि में डसि जाय ॥
विषहर मन्त्र न मानै। तो गारुड़ काह कराय? ॥२९॥

साखीः—अलख समाधी धारिके, योगिन ध्यान लगाय ॥ सोइ ध्यान हियरे डसो, चढ़ो जहर सब भाय ॥८॥ जहरी जीव मानै नहीं, कोटिन करो उपाय ।। साधु बिचारा क्या करै ?, जिमि बहुबिधि बाँस बजाय ॥ ९ ॥

अलख=जो किसी प्रकार भी लखनेमें नहीं आता; ऐसा कोई एक ब्रह्म-परमात्मा मानकर, जो ऐसा भ्रम-कल्पनाका पलक=ढक्कन लग गया, उसने क्षणभरमें ही हृदयमें जाकर डसि=डसकर काला साँपके समान काट खाया। इससे भ्रमिक लोग अचेत बद्ध हुए। अब वैसे भ्रमरूप विषको हरण करनेवाले पारखी सद्‌गुरुके मन्त्र=सत्योपदेशको काले सर्पवत् भ्रमिक गुरुवा लोग नहीं मानते हैं, तब कहो तो भला ! गारुड़= साँपके जहर उतारनेका मन्त्ररूप सलाह देनेवाले; गारुड़ीवत् पारखी सन्त सत्यबोध देनेके सिवाय और क्या करेंगे ? जो नहीं मानते हैं, हानि उन्हींकी होती है ॥ २९ ॥

अथवा योगी लोगोंने अलख परमात्मा-प्राप्तिके वास्ते शून्य समाधि लगानेके लिए खूब विधिवत् ध्यान-धारणा लगाई। वही ध्यान-धारणाकी मिथ्या भावनारूप सर्पने आकर उनके हृदयमें विषैले दाँतोंसे काटकर डस दिया। उसीका जहर उन सबके सर्वांगमें अच्छी तरहसे चढ़ गया। मिथ्या भावना ही दृढ़ हो गई। वही उन सबको अच्छा लगा ॥८॥ इस प्रकारकी मिथ्या मानन्दी, भ्रम-भूलका जहर चढ़कर दृढ़ होनेसे चाहे कोटि उपाय करो, तो भी वैसे जहर चढ़े जहरी जीव पारखी सद्‌गुरुके सत्यन्याय-निर्णयकी बातको भी नहीं मानते हैं। तब विचारवान् पारखी साधु बिचारे उनको समझानेके सिवाय और फिर क्या करेंगे ? जैसे भैंसके आगे बहुत विधिसे बेन बाजा वा बाँसुरी बजाई; किन्तु वह उसका गुण कुछ भी नहीं समझती है। अथवा बाँसकी नली बहुत प्रकारसे बजाई। उसमें आर-पार हो जाता है, कुछ नहीं ठहरता। तद्वत् भ्रमिक लोग सत्य निर्णयको नहीं समझते, उसीसे उसे ग्रहण करके धारण भी नहीं करते। सदा भ्रम-बन्धनमें बँधे पड़े रहते हैं; बिना विचार ॥ ९ ॥ २९ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३० ॥ ❀ ॥

औ भूले षट दर्शन भाई ! पाखण्ड भेष रहा लपटाई ॥१॥
जीव-शीवका आहि नशौना । चारिउ वेद चतुर्गुण मौना ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—औ भूले षट दरशन, पाखण्ड भेष बनाय ॥ ब्रह्म-ग्रानि को मानिके, सबै रहे लपटाय ॥१॥ ये जीव शिव कासो कहैं ?, जाते होय विनाश ॥ चारिउ वेद चतुर गुण, गावत भये निराश ॥२॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे भाई ! और भी षट्दर्शन=योगी, जङ्गम, सेवड़ा (जैन), संन्यासी, दरवेश (फकीर), और ब्राह्मण; ये सब-के-सब निज सत्य चैतन्यके पारख-स्वरूपको बिल्कुल भूले हुए हैं। इसलिए पाखण्ड=असत्य कर्म-धर्मका ढोंग, आडम्बर, वाणीजाल फैलाकर छियानवे पाखण्डोंके अनेक भेष बना-बना करके भ्रम-कल्पनामें ही खूब भूले-भुलाये पड़े हैं। वेदादि वाणीके प्रमाणसे कोई एक अद्वैत ब्रह्मको सत्य मानकर और कोई ईश्वर, खुदा एवं तीर्थङ्कर आदि मान-मानकर मिथ्या कल्पित वाणीमें ही भ्रम-धोखेके साथ लपटा रहे हैं; बिना विचार ॥१॥ वास्तवमें जीवका स्वयं स्वरूप चैतन्य ही नित्य-सत्य है। परन्तु ये भ्रमिक अबोध जीव—अपनेसे भिन्न कोई एक शिव=कल्याण-स्वरूप ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि सत्य है, वह चराचरमें परिपूर्ण व्यापक अद्वैत है; ऐसा कहते हैं। यदि सब कुछ एक ही ब्रह्म है, तब ये जीव 'कोई एक शिव है' ऐसी वाणी किससे कहते हैं ? एकमें कहना-सुनना नहीं होता है और कहने-सुननेसे नानात्त्व सिद्ध हो जाता है। इसलिए शिव आदिका अनुमान, कल्पना, भ्रम ही जीवके हंस-पदका विनाशक है। जिस भूलमें पड़नेसे अपनी स्थिति, मुक्ति-पदका विनाश हो जाता है। भ्रमिक लोग इस बातको नहीं जानते हैं। चारों वेद भी चतुर्गुणरूप चार सिद्धान्त कथन करके अन्तमें मौन हो गये। जैसे—ऋग्वेदका गुणरूप महावाक्य "प्रज्ञानं ब्रह्म।" यजुर्वेदका गुणरूप महावाक्य "अहं ब्रह्मास्मि।" सामवेदका गुणरूप महावाक्य "तत्त्वमसि।" और अथर्ववेदका गुणरूप महावाक्य "अयमात्मा ब्रह्म" कहा है। चतुर लोगोंने चारों वेदोंके प्रमाणसे वैसे चार गुणरूप चार सिद्धान्त वर्णन करके गाते-सुनाते हुए भी अन्ततक सत्य वस्तु कुछ प्राप्त न होनेसे स्थिति-ठहराव भी नहीं हुआ, तब निराश हो मौन हो गये। अन्तमें जगत्-बन्धनमें पड़े दुःख भोग रहे हैं; बिना पारख ॥ २ ॥

जैनि धर्मका मर्म न जाना । पाती तोरि देवघर आना ॥३॥
दवना-मरुवा चम्पाके फूला । मानहु जीव कोटि समतूला ॥४॥
औ पृथिवी के रोम उचारे । देखत जन्म आपनो हारे ॥५॥

जैनी अपने धर्मको, जाने नहीं बिचार ॥ पाती तोरि देवघर आने, जामें

जीव बिहार ॥३॥ दवना मरुवा चम्पाके फूला, जिव कोटि सूँघि अघाय ॥ ताको मूरख तोरिके, पथरा माहिं चढ़ाय ॥४॥ औ शरीरके रोमको, शिष्यन से उचराय ॥ उनकी नारिन से भोग करे, आपन जन्म गमाय ॥ ५ ॥

जैनी लोगोंने भी उनके अपने ही माने हुए धर्मके यथार्थ मर्मको ठीकसे विवेक-विचार करके नहीं जाना। क्योंकि दया-धर्मको पालन करते हुए अहिंसक होना चाहिए; ऐसा तो वे कहते हैं। उसीसे सूर्यास्तके बाद भोजन भी नहीं करते। परन्तु खिले हुए फूल, पत्ते आदि, जिनमें छोटे-छोटे भुनगे आदि जीवोंका प्रत्यक्ष ही निवास और विहार होता है; वैसे फूल, पत्तियोंको तोड़-तोड़कर देवघररूप माने हुए मन्दिरमें लाकर पत्थरकी जड़-मूर्त्तियोंके सामने चढ़ाते हुए विनाश करते हैं; बिना विवेक ॥३॥ और भी दवना, मरुआ और चम्पा इत्यादिके विशेष सुगन्धित फूलोंको, जो कि वृक्ष, बगीचादिमें पड़े रहनेपर जीव-कोटिके बहुतसे जीव उसकी सुगन्धको सूँघकर एवं रस लेते हुए तृप्त होते हैं, वैसे-वैसे सुगन्धित पुष्पोंको बिना विचार मूर्खतासे तोड़ करके पत्थरकी जड़-मूर्त्तियोंमें ले जाकर चढ़ाते हैं। उनकी मानन्दीके अनुसार कोटि समतूला = करोड़के समान बराबर छोटे जीव सुगन्धित पुष्पोंमें रहते हैं। पुष्पोंको तोड़कर जड़-मूर्त्तिमें चढ़ानेसे उन सब जीवोंकी हिंसाका पाप जैनियोंको लगेगा। इस बातका वे कोई विचार ही नहीं करते हैं ॥४॥ और पृथ्वी = अपने स्थूल शरीरके शिर आदिके सम्पूर्ण रोमको भी अपने शिष्योंसे उचारे = उखाड़ने लगाते हैं। ऐसा करनेमें प्रत्यक्ष दुःख, दर्द होता है, सो सब देखते ही हैं। तथापि मिथ्या भ्रमकी मानन्दीसे अपने नरजन्मको व्यर्थ हार रहे हैं। जैनियोंमें कोई एक ढूँढ़िया आदि सम्प्रदायमें मुनि लोग गृहस्थ शिष्य, भक्तकी स्त्रियोंसे भी विषय-सम्भोग करते हैं। इस तरह निर्दया, व्यभिचारादि अकर्ममें लगकर देखते-ही-देखते अपना मनुष्य-जन्म व्यर्थ गमा रहे हैं; बिना विचार ॥ ५ ॥

मन्मथ बिन्दु करै असरारा। कल्पै बिन्द खसे नहिं द्वारा ॥६॥
ताकर हाल होय अदबूदा। छौ दर्शनमें जैनि बिगुर्चा ॥७॥

मनमथ बिन्दु असरार करी, भोगे नारी दुष्ट ॥ कल्पै बिन्दु खसै नहीं, साधन से करि पुष्ट ॥६॥ ताकर हाल अदबुद होय, परे चौरासी माहिं ॥ छौ दर्शन के भीतरे, जैनि चले जहँडाहिं ॥ ७ ॥

मन्मथ = काम विकारसे पीड़ित हो मनमतिसे, असरारा = निरन्तर मनको मथन करके बिन्दु = वीर्यको परिपुष्ट कर लेते हैं। फिर त्याग-वैराग्यके नियमसे विरुद्ध चलकर दुष्टतासे कोई जैनी ढूँढ़िया मुनि लोग स्त्रीसे भोग-विलास भी कर लेते हैं। कोई-कोई योग-साधनासे निरन्तर वीर्यको पुष्ट करके, तदनन्तर स्त्री-सम्भोग करनेमें लग जाते हैं। मैथुनके समय उनका वीर्य कल्पै = चञ्चल होकर स्खलित होना चाहता है; किन्तु उसे हठ-क्रियासे ऊपर ही रोके रहते हैं, भगद्वारमें गिरने नहीं देते। प्रत्युत आकर्षण

करनेकी युक्तिसे स्त्रीके रजको ही लिङ्गद्वारा अपनेमें ऊपर खींच लेते हैं, साधनासे अपनेमें उसे मिलाकर बलिष्ट, पुष्ट करते हैं। ऐसी मलिन सम्भोग-क्रिया करनेमें भी वे सङ्कोच नहीं करते हैं ॥६॥ इस प्रकार पशुवत् आचरण करनेवाले उन जैनी लोगोंका वर्त्तमान हाल वा हालत तो अद्‌बूदा=आश्चर्यमय बुद्धि-विचारसे हीन ही दीखता है। शिष्योंकी स्त्रियोंसे मैथुन-कर्म करके यति, मुनि, त्यागी कहलाना भी सरासर झूठा, धोखा ही है। अन्तमें विषय-वासना, जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंमें ही जाकर वे पड़े और पड़ते रहेंगे। अतएव षट्‌दर्शनोंके भीतर जैनी लोग तो और भी विशेषरूपमें बिगुर्चा = बड़े धोखेमें पड़कर अपनी महान् हानि उठा करके भव-बन्धनोंमें बद्ध हो आवागमन-चक्रमें ही चले जा रहे हैं; बिना पारख ॥ ७ ॥

साखीः—ज्ञान अमर पद बाहिरे। नियरे ते है दूरि ॥
जो जाने ताके निकट है। नहिं तो रहा सकल घट पूरि॥३०॥

मायामुख-साखीः—ज्ञान अमर पद सबसे न्यारा, सब घटमें दरसाय ॥
जाने ताके निकट है, ना तो अकाशवत रहै समाय ॥८॥

मायामुखः—ब्रह्मज्ञानका अद्वैत पद, वही अमर पद है। सब पिण्ड-ब्रह्माण्डके बाहिरे=परे, दूर सर्वत्र भीतर-बाहर व्यापकरूपसे ब्रह्म भरा हुआ है। इस कारण वह सबके नजदीकमें और दूरमें भी भरा हुआ है। जो उसे अद्वैत-दृष्टिसे जानता है, उसके तो निकट हृदयमें ही है और जो नहीं जानता है, उससे बहुत दूर है। नहीं तो वह सम्पूर्ण प्राणीके घट-घटमें अपने-आप परिपूर्ण हो रहा है ॥ ३० ॥

अथवा ब्रह्म—परमात्मा ज्ञान अमर पद है। वह सबसे न्यारा निर्लिप्त रहता है। उसका प्रकाश सब प्राणियोंके घटों घटमें दरशाता है। नजदीक और दूरमें भी वही है। ब्रह्मज्ञानकी अद्वैत-दृष्टिसे जो उसे जानता है, उसके लिए निकट अपने हृदयमें ही है और जो नहीं जानता है, उसके लिए बहुत दूर अगम-अपार है। अब उसे कोई जानो वा न जानो, वह अद्वैत ब्रह्म-परमात्मा तो स्वयमेव आकाशवत् सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक होकर सबमें समा रहा है। ब्रह्मज्ञानी ब्रह्म-स्वरूपमें मिलकर मुक्त होते हैं। और अज्ञानी लोग भव-बन्धनमें बँधे पड़े रहते हैं। [इत्यादि बताकर भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं]॥ ८॥ ३०॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३१ ॥ ❀ ॥

सुमृति आहि गुणन को चीन्हा। पाप—पुण्यको मारग कीन्हा ॥१॥
सुमृति वेद पढ़ें असरारा। पाखण्डरूप करें हङ्कारा ॥२॥
पढ़ें वेद और करें बड़ाई। संशय गाँठि अजहुँ नहिं जाई ॥३॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः—स्मृती वेदको चीन्हके, बन रहे पण्डाराय ॥ पाप पुण्यको मारग, दीन्हों आपु चलाय ॥१॥ वेद स्मृती पण्डित पढ़ें, करें बहुत

हङ्कार ॥ वेद पढ़ें अस्तुति करें, छुटै न संशय जार ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—मनुस्मृतिः आदि अष्टादश स्मृतिः गुणनको= त्रिगुणसे निर्मित त्रिकाण्डरूप वेदोंके चिन्हरूपमें बने हैं। उनमें पाप और पुण्य, शुभाशुभ प्रतिपादित त्रिकाण्डके कर्मादि मार्ग वर्णन किया है ॥ १ ॥

अथवा चार वेद और स्मृतियोंको पढ़कर अनेक बातोंको पहचान करके गुरुवा लोग पण्डाराय=पण्डितोंके राजा, वक्ता, पण्डे-पुजारी बन रहे हैं। वेदोंका आन्तरिक भाव पहचाननेके लिए ही स्मृतियाँ बनी हैं। गुणरूप वेदोंके वे चिन्ह हैं। उनके प्रमाण-से आप भ्रमिक जीवने ही अनुमान-कल्पना करके पाप और पुण्यके विभिन्न मार्ग प्रचलित कर दिये हैं ॥ १ ॥ वेद और स्मृतियोंको पण्डित लोग असरारा=निरन्तर वा नित्यप्रति पढ़ते-पढ़ाते हुए भ्रम-कल्पनाको ही परिपुष्ट करते रहते हैं। पाखण्डरूप= धर्मके आड़में असत्यका प्रचार, ढोंग, आडम्बर प्रदर्शित करते हुए मिथ्या मानन्दीका बहुत अहङ्कार करते हैं, भ्रम-धोखेमें ही भूले रहते हैं ॥२॥ चार वेदादि ग्रन्थोंको रोज-रोज पाठ करते हुए पढ़ते-पढ़ाते हैं। ईश्वरादिकी स्तुति करते हुए ब्राह्मण जातिकी बहुत बड़ाई, विशेष महिमा वर्णन करते हैं। किन्तु भ्रम-संशयके जालमें आप स्वयं ही खूब अरुझे पड़े हैं। संशयकी ग्रन्थि अभीतक इनके मनसे नहीं छूटी। वह कभी उनको छोड़कर नहीं जाती है ॥ २ ॥ ३ ॥

पढ़ें शास्त्र जीव बध करई। मूँड़ि काटि अगमन के धरई ॥४॥

पढ़ै शास्त्र जिव बध करें, काटें मूड़ी जान ॥
सो ताके आगे धरें, पाथर मूरति मान ॥ ३ ॥

शाक्त हिंसक पण्डित लोग कहनेको तो कोई एक शास्त्र वा षट्‌शास्त्रोंको पढ़ते हैं, किन्तु दया-धर्मका पालन बिल्कुल ही नहीं करते। इसलिए मांस-भक्षण करनेके लिए बकरा आदि पशु-जीवोंका वध=हत्या करते-कराते रहते हैं। जान-बूझ करके बकरेका मूँड़ि=शिर स्वयं ही काट करके, पत्थरकी जड़-मूर्त्तिको देवी-देवता मानकर, सो कटा हुआ मूँड़ उसके अगमन=आगे लाकर कुछ देरके लिए धर देते हैं। फिर उसे उठाके ले जाकर खा जाते हैं। अब कहिये—वेद शास्त्रादि पढ़कर भी उनकी हिंसक वृत्ति न गई, तो लाभ क्या हुआ ? कुछ नहीं। कहा है—"बोलता चालता सजीव बकरा; देवके आगे काटे॥ सभी आलम मिलकर खा गये, देवको बतावें झाँटे ॥" इत्यादि ॥ इस प्रकार शास्त्र पढ़कर भी जीव-वध करते, बकरेका मूँड़ काटकर जड़-मूर्त्तिके आगे धर देते हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

साखीः—कहहिं कबीर ई पाखण्ड। बहुतक जीव सताव ॥
अनुभव भाव न दरशै। जियत न आपु रखाव ॥३१॥

साखीः—सुनो सन्त ! यह पण्डिता, बहुतक जीव सताय ॥
अनुभव आपु बतावहीं, जियत न आपु रखाय ॥ ४ ॥

सदगुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! सुनो—ये पाखण्ड = धर्मके नामसे अधर्म, असत्य, ढोंग, आडम्बर फैलानेवाले पाखण्डी धूर्त पण्डित लोगोंने अनेक प्रकारके उपाय करके बहुतसे जीवोंको दुःख देकर सताया और भी सताते ही जा रहे हैं। वे जो मिथ्या भावना करते हैं, सो तो कुछ सत्य नहीं दीखता है। केवल मिथ्या भावना ही उनके सामनेमें दर्शाती रहती है। और फिर आगे तुम्हें अनुभव होगा, परमात्माका साक्षात् दर्शन मिलेगा; इत्यादि धोखेकी ही बात बताकर अबोध लोगोंको भ्रमाते-भुलाते रहते हैं। विचार करो—जिस ईश्वरादिने जीते ही अपनी रक्षा नहीं की, वह फिर मरनेपर कैसे ? क्या रक्षा करेगा ? अथवा जिसने जीते ही अपनी रक्षा नहीं की, वह दूसरेकी रक्षा क्या करेगा ? अतः यथार्थ परखकर उनके भ्रमजालसे न्यारे हो जाओ ! ॥ ४ ॥ ३१ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३२ ॥ ❀ ॥

अन्ध सो दर्पण वेद-पुराना । दर्वी कहा महा रस जाना ॥१॥
जस खर चन्दन लादेउ भारा । परिमल बास न जानु गँवारा ॥२॥
कहहिं कबीर खोजे असमाना । सो न मिला जो जाय अभिमाना ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—जैसो आँधरो दर्पण, ऐसो वेद पुरान ॥ महा रोगी क्या जाने ?, अमृतको परमान ॥१॥ जस गदहा के ऊपरे, लादेउ चन्दन भार ॥ परिमल सुख जानै नहीं, वह पशु मूर्ख गँवार ॥२॥ कहाँ है ? जाही खोजहू, धरती औ असमान ॥ सो न मिला न मीलि है, जाते छुटै अभिमान ॥३॥

गुरुमुखः—जैसे पारा न लगाये हुए दर्पणमें मुख नहीं दीखता। उसको अन्धदर्पण कहते हैं। अथवा अन्धेको स्वच्छ दर्पणमें भी मुख नहीं दीखता। दर्वी= करछुल अनेक षट्रस व्यञ्जनोंमें फिरनेपरभी उनके महान् रसरूप स्वादको नहीं जानता।

तद्वत् वेद-पुराणादि सब ग्रन्थ भी अन्धदर्पणवत् ही बने हैं। उनसें पारख-स्वरूपका बोध नहीं है। और भ्रमिक पण्डित गुरुवा लोग विवेक-विचारहीन अन्धे बने हैं। उनको भी पारख-स्वरूपका बोध नहीं होता है। और जैसे कोई महा रोगी अमृत तुल्य स्वादिष्ट षट्रस व्यञ्जनोंको खाये बिना उसके स्वादके प्रमाणको नहीं जान सकता। वैसे ही दर्वी = करछुलवत् जड़बुद्धिवाले गर्विष्ट, घमण्डी भ्रमिक पण्डित लोग अमृत = अमर स्वरूप चैतन्य जीवका पारखबोध क्या जानेंगे ? कुछ नहीं। औरोंको भ्रम-कल्पनाकी वाणी सुनाकर आप भव-बन्धनमें ही बँधे पड़े रहते हैं ॥१॥ जैसे खर= गधाके पीठपर ऊपरसे चन्दनका भारा = बोझा लाद दिया। बोझा ढोना भर ही वह जानता है। परिमल = विशेष सुगन्धित निर्मल खुशबूसे होनेवाले सुखको वह गँवार मूर्ख पशु बिल्कुल ही नहीं जानता है। तद्वत् मनुष्यरूपमें पशुबुद्धिवालोंने चन्दनरूप चेतन जीवकी सत्ता-सम्बन्धमें खानि-वाणीके अनेक बोझे तो अपने ऊपर लाद लिये। वे केवल बोझा ढोना ही जानते हैं; किन्तु अविवेकी गँवार लोग निर्मल चैतन्य पारख-

स्वरूपके सुवासरूप विवेक-विचारसे गुण-ग्रहण करना नहीं जानते हैं ॥२॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं। जिस ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिको आकाशमें खोजते हो, वह धरती और असमाना=आकाशमें कहाँपर क्या वस्तु है ? इसके भेदको तो कुछ भी नहीं जानते हो। जिसको खोजते हो, सो कहाँ है ? धरती और आसमानमें ढूँढ़नेपर भी वह कहीं नहीं मिला और कभी कहीं मिलनेवाला भी नहीं है। जो अभिमान संयुक्त उसको ढूँढ़नेको गये, वे सब भव-बन्धनमें पड़ गये। अब जिससे सम्पूर्ण अभिमान, अध्यासादि विकार छूट जायँ तो जीव स्वयं स्वरूप सत्य पारखपदमें ठहरकर निर्बन्ध मुक्त हो जायेगा। जीवको कहींसे और कुछ प्राप्त करना नहीं पड़ेगा। केवल पारख-स्वरूपका बोध प्राप्त करनेके लिए पारखी सद्गुरुके शरण-ग्रहणमें लगना है। वैसे सच्चे पारखी सद्गुरु भी नहीं मिले, जिससे सम्पूर्ण अभिमान, अध्यासका बन्धन छूट जाय। जबतक पारखी सद्गुरुको ढूँढ़कर, उनके शरण—सत्सङ्गमें नहीं लगेगा, तबतक जीवका सर्व अभिमानरूप भव-बन्धन नहीं छूट सकता है ॥ ३ ॥ ३२ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३३ ॥ ❀ ॥

वेदकी पुत्री सुमृति भाई ! सो जेवरी कर लेतहि आई ॥१॥
आपुहि बरी आपन गर बन्धा। झूठा मोह कालको फन्दा ॥२॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः—वेदहि से स्मृती भई, तासो भयो पुरान ॥ सो फाँसी ले हाथमें, पण्डित करत बखान ॥१॥ बरी अपनी उक्तिसे, आपन गर भौ बन्ध ॥ झूठ ब्रह्म का मोह करि, सोई कालको फन्द ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे भाई ! चारों वेदोंका ही सारांश लेकर पुत्री=अंशरूपमें सम्पूर्ण स्मृतियाँ बनाकर उत्पन्न की गईं ! उनसे सारांश लेकर पुराणरूपमें और भी नाती—पोतेके समान वाणी—कल्पना उत्पन्न होकर विस्तार होती गई। सब अबोध जीवोंको वही वाणी बहुत अच्छी, प्रिय लग रही है। सो वैसी कल्पित वाणीकी जेवरी=रस्सीरूप कर्म-काण्डादिकी फाँसी=महाजालको कर=कर्त्तव्यसे अपने हाथमें लेकर पण्डित लोग संसारमें आये। उन्हीं ग्रन्थोंकी वाणीको खूब बढ़ा-चढ़ाकर पण्डित लोग वर्णन करके सुनाते हुए अबोध लोगोंको भ्रम—धोखेमें फँसाते जा रहे हैं ॥१॥ पण्डित लोगोंने अपनी कथनरूपी उक्तिसे रस्सी बटनेके समान अपने-आप ही वेद, शास्त्रादिकी सम्पूर्ण वाणीको खूब बटोर-बटोरकर बट करके बनाया। पुनः उसी वाणीसे भ्रम—कल्पनाको अपने गलारूप हृदयमें फन्दा डालकर प्रथम तो वे आप ही फँसकर बँध गये। पुनः औरोंके गलामें भी फन्दा डाल-डालकर खूब बाँधा। इस प्रकार अबोध जीवने आप ही वाणी बटकर अपने गलामें बाँधा। ब्रह्म, ईश्वरादि कर्त्ता मानकर जितना मोह कर रहे हैं, सो सब झूठा है। वही जीवको फँसानेवाली काल-रूप कल्पनाकी वाणीका फन्दा है। बिना पारख सब उसीमें फँसे भूले पड़े हैं ॥ २ ॥

बन्धवत बन्धा छोरिया न जाई। विषयस्वरूप भूलि दुनियाई ॥३॥
हमरे देखत सकल जग लूटा। दास कबीर राम कहि छूटा ॥४॥

बन्धन तो सब बन्धिया, छोरो काहु न जाय॥ विषयरूप सब भूलिया, ब्रह्म समाधि लगाय ॥३॥ हमरे देखत धोखमें, सब जग लूटो जाय॥ चारिउ युगमें भक्त सब, राम कहै थिति पाय ॥ ४ ॥

खानि--वाणीके भव-बन्धनोंमें बँधनेको तो सब जीव अपने--आप खुशी-खुशीसे खूब बँध गये। परन्तु अब उन बन्धनोंको छोड़नेके लिए वे कोई राजी, समर्थ नहीं हैं। इसलिए अनेक बन्धनोंमेंसे एक भी बन्धन उनसे छोड़ा नहीं जाता है। एक ओर तो सारी दुनियाँके संसारी लोग स्त्री आदि पञ्च विषयोंमें निजस्वरूपको भूल रहे हैं, और दूसरी ओर वाणी--कल्पनासे मतवादी सब गुरुवा लोग ब्रह्म-समाधि लगाकर भ्रम--धोखेमें भूल रहे हैं। इस प्रकार वाणी-विषय और खानि-विषयोंमें पारख स्वरूपको सब लोग भूल गये और भूलते जा रहे हैं; बिना विचार ॥३॥ पारख-दृष्टिसे न्यारा रहकर हमारे देखते--ही--देखतेमें सब जगत्के अबोध जीव भ्रम-धोखा, कल्पना और विषयादि विकारोंमें खूब लूटे जा रहे हैं, दृढ़ बन्धनमें बँधे पड़े हैं। परन्तु चारों युगोंमें हुए सब भ्रमिक दास कबीर=अनुमान--कल्पनाके दास बने भक्तजन "राम-राम, हरि-हरि, ॐ-ॐ" ऐसा कहकर जगत्-बन्धनोंसे छूटना चाहते हैं। वे कहते हैं—राम-राम कहनेसे ही सब भक्तोंने परमपदकी स्थिति पाई, वैसे हम भी पायेंगे। परन्तु बिना पारख भ्रम-धोखेके नाम-स्मरणसे न कभी किसीने मुक्ति-स्थिति पाई न पावेंगे। प्रत्युत सदा भव-बन्धनमें बँधे दुःख भोगते रहेंगे ॥ ४ ॥

साखीः—रामहि राम पुकारते। जिभ्या परिगौ रोस॥
सूधा जल पीवै नहीं। खोद पियन की हौंस ॥३३॥

साखीः—रामहि राम पुकारते, जिभ्या परिगौ रोस॥ एकहि रटि रटि मरि गये, एकहि लागी हौंस ॥५॥ शुद्ध जीव चीन्हें नहीं, करें बहुत अनुमान॥ हौंसाहौंसी भरम में, बूड़ो सकल जहान ॥ ६ ॥

भ्रमिक भक्त लोग मुखसे 'राम--राम' पुकारते--ही--पुकारते रटना करते रहनेसे जीभमें रोस=चिन्ह, घट्ठा, छाले पड़ गये। जीभ, ओठ, कण्ठ भी सूख गये। इस प्रकार एक तो वैसे राम-ही-राम रटना कर--करके जड़ाध्यासी बद्ध हो-होकर, मर-मरके चले गये। अब और भी दूसरी ओर एक वैसे ही रटन करनेका हौंसला लगा रहे हैं; जिससे वे भी भ्रमिक जड़ाध्यासी हो भव-बन्धनमें बँधे भटक रहे हैं ॥५॥ जैसे कोई सूधा=सीधा, शुद्ध बहते हुए निर्मल जलको तो नहीं पीता है; कहीं कुआँ खोदकर, जल निकालकर पीनेका व्यर्थका हौंसला लगा रहा है। किन्तु व्यर्थके परिश्रमसे उसकी प्यास मिटनेके बदले और बढ़ेगी। तद्वत् सूधा=सीधा, शुद्ध चैतन्य जीवके पारख-

स्वरूपको तो भ्रमिक लोग नहीं पहचानते हैं। किन्तु बहुत टेढ़ी अनुमान-कल्पना कर-करके भटकते रहते हैं। अनेक प्रकारकी कठिन साधनाएँ कर-करके ब्रह्म, ईश्वरादि प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसी भ्रान्तिके हौंसला-ही-हौंसलारूप उमंगमें आगे बढ़ते हुए जाकर सम्पूर्ण जगत्‌के जीव भवसागरकी धारारूप चौरासी योनियोंमें डूब गये और डूबते जा रहे हैं, बिना विचार ॥ ६ ॥ ३३ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३४ ॥ ❀ ॥

पढ़ि-पढ़ि पण्डित करु चतुराई। निजमुक्ति मोहि कहो समुझाई॥१॥
कहाँ बसै पुरुष कौनसा गाऊँ ? सो पण्डित मोहि सुनावहुनाऊँ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—पढ़ि पण्डित चतुराइ करो, निज मुक्ती समुझाव ॥
कहाँ पुरुष केहि गाँवमें ?, सोइ सुनावहु नाँव ॥१॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे पण्डित ! वेद, शास्त्रादिकी अनेक वाणियोंको पढ़-पढ़ करके स्वार्थ-सिद्धिके लिए तुम लोग चतुराई=होशियारी, चालाकी, धूर्त्तता तो खूब करते फिरते हो। वैसी चतुराई तुम विशेष कर रहे हो। परन्तु इस प्रकारसे तुम्हारी वास्तविक मुक्ति भी कैसे होगी ? अब वही तुम्हारी निज मुक्ति=निश्चित कर रक्खी हुई अपनी मुक्तिका भेद मुझे यथार्थ समझा करके कहो ! ॥१॥ तुम्हारा माना हुआ परमपुरुष परमात्मा कहाँ रहता है ? और उसके रहनेका ठौर-ठिकानरूप ग्राम कौन-सा वा कहाँ है ? हे पण्डित ! सो इस बातका पूरा भेद, परमपुरुषका पूरा नाम-पता मुझे वर्णन करके ठीकसे सुनाओ ! ॥ २ ॥

चारि वेद ब्रह्मै निज ठाना। मुक्तिका मर्म उनहु नहिं जाना॥३॥
दान-पुण्य उन बहुत बखाना। अपने मरणकी खबरि न जाना॥४॥
एक नाम है अगम गम्भीरा। तहवाँ अस्थिर दास कबीरा॥५॥

चारि वेद ब्रह्मै किया, मुक्ति न उनहु पिछान॥ दान-पुण्य उन बहुत कहा, आपन मर्म न जान ॥१॥ ॐ नाम एक अगम कही, बहुत ही गहिर बताय ॥ तहाँ यह जीव स्थिर भयो, ताके दास कहाय ॥ ३ ॥

चारों वेदोंको ब्रह्मादिने ही अनुमान-कल्पनासे रचना करके निज=स्वयं ही ठाना=बनाकर स्थापित किया, कोई एक ब्रह्म-परमात्मा मानकर भूला। परन्तु उन लोगोंने भी यथार्थ मुक्तिका मर्म=भेदको ठीकसे विवेक-विचार करके नहीं पहचाना। ब्रह्ममें मिलनेपर मुक्ति होती है, ऐसा भ्रमसे मानकर भूले रहे ॥३॥ स्वर्गादिमें सुख-भोगादि-प्राप्तिका मिथ्या आशा-भरोसा लगाकर स्वर्गादि लोक-प्राप्तिके लिए अनेक प्रकारके दान-पुण्यादिकी महिमा वर्णन करके कर्म-मार्गादिको उन ब्रह्मा आदि

पण्डितोंने बहुत विस्तार करके कहा; परन्तु अपने स्वरूपका यथार्थ मर्म = भेद और अपने मरणके उपरान्त स्थिति-ठहराव कहाँ होगा ? यह नहीं जाना । क्योंकि खानि-वाणी-का जड़ाध्यासी बद्ध होकर मुक्ति-स्थितिका विनाश तो पहले ही कर लिया । पश्चात् मरण होनेपर हमारी गति कैसी होगी ? इस बातकी खोज-खबर भी उन लोगोंने बिल्कुल ही नहीं जानी । भ्रम धोखेमें भूले बँधे पड़े रहे ॥ २ ॥ ४ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—ब्रह्म-परमात्माका एक अक्षररूपमें 'ॐकार' यह प्रणव नाम महान् है, परमात्मा अगम और गम्भीरा = अपार, गहरा शान्त है। वैसा ही एक ॐ नाम भी अगम गम्भीर है। तहवाँ = वही वोहं, सोहं, रामनामके सुमि-रणमें दास कबीरा = भक्त लोग खूब दृढ़ होकर स्थिर हो गये ॥५॥ अथवा एक ॐकार नामको ही अगम कहकर उसे बहुत गहरा बताया; उसकी मिथ्या महिमा खूब वर्णन किया। इसलिए उसी ॐ नाम स्मरणकी मिथ्या मानन्दीमें यह अबोध जीव जाकर वहीं ठहरके स्थिर हुआ। उसीसे भक्त लोग उसके दास कहलाते हैं। बिना विचार भ्रम-धोखेके बन्धनमें बँधे पड़े हैं ॥ ३ ॥ ५ ॥

साखीः—चिऊँटी जहाँ न चढ़िसकै। राई ना ठहराय ॥
आवागमन की गम नहीं। तहाँ सकलो जग जाय ॥३४॥

गुरुमुख—साखीः—बानी जहाँ न चढ़ि सकै, बुद्धि नहीं ठहराय ॥ सो मिथ्या अनुमान है, तहाँ बँधायो जाय ॥४॥ आवागमन जहाँ है नहीं, तहाँ कैसेकै जाय ? ॥ परखो सन्तो ! धोख यह, भोंदू रखें भुलाय ॥ ५ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जहाँपर चींटी चढ़ नहीं सकती है, राई नहीं ठहरती है और कोई जा-आ नहीं सकते हैं, जिसका गम किसीको नहीं है, वहीं ब्रह्म, ईश्वरादि मानकर, उसके पासमें भ्रम-धोखेसे जगत्के सब जीव जाना चाहते हैं; बिना विचार ॥ ३४ ॥

अथवा चींटीवत् वाणी भी जहाँपर चढ़ नहीं सकती है, जो वाणीसे परे है और बुद्धिरूप राई भी जहाँ ठहर नहीं सकती है, जो मन-बुद्धिसे परे है, वैसा परब्रह्म-को निर्गुण, निराकार, निरञ्जन माना है। परन्तु सो वैसा कथन तो अबोध जीवका मिथ्या अनुमान ही मात्र है। बिना विवेक उसी भ्रम-धोखेमें जाकर जीव खूब बँध गया और बँधता जा रहा है ॥४॥ आवागमन = जहाँपर जाना और आना, पहुँचना और लौटना भी कुछ नहीं होता है। फिर कहो तो भला ! आकाशवत् शून्य माने हुए व्यापक ब्रह्ममें, सो वहाँ कैसे करके कोई जायगा ? कैसे पहुँचेगा ? इस कारण हे सन्तो ! यह अबोध जीवके मनका भ्रम मिथ्या धोखा ही मात्र है। इसको अच्छी तरहसे परखो ! ठीकसे परीक्षा करके समझो ! भ्रमिक गुरुवा लोगोंने भोंदू = मूर्ख सब चेले लोगोंको जिस वाणी-कल्पनामें खूब भुला रक्खा है, वह मिथ्या धोखा है। उसमें सत्य-सार कुछ भी नहीं है ॥ ५ ॥ ३४ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३५ ॥ ❀ ॥

पण्डित भूले पढ़ि-गुनि वेदा । आप अपन पौ जानु न भेदा ॥१॥
संझा-तर्पण औ षट कर्मा । ई बहुरूप करे अस धर्मा ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—पण्डित भूले वेद पढ़ि, आपन आपु न जान ॥
सन्ध्या तर्पण कर्म षट, औ बहु धर्म बखान ॥ १ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं--ब्राह्मण पण्डित लोग वेद-शास्त्रोंको ही बारम्बार पढ़-गुन करके भ्रमिक बनकर मिथ्या धोखेमें ही खूब भूल गये । आप अपने चैतन्य स्वरूपका भेद एवं हंसपद, पारख--पदको भी बिल्कुल ही नहीं जानते । अनुमानसे कोई एक ब्रह्म, ईश्वरादि मानकर भूल रहे हैं ॥१॥ इस कारण भ्रमिक ब्राह्मण पण्डित लोग सायं-प्रातः सन्ध्या-वन्दन, पितृयोंके नामसे जलका तर्पण और षट्कर्म=स्नान, सन्ध्या, तर्पण, पूजा, पाठ और होम—ये नित्य करते हैं । यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह--ये षट्कर्म नैमित्तिकरूपसे करते-कराते हैं । और भी बहुत प्रकारके रूपसे ऐसे ही धर्म-कर्मोंका वर्णन ये लोग करते रहते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

गायत्री युग चारि पढ़ाई । पूछहु जाय मुक्ति किन पाई ? ॥३॥
औरके छिये लेत हो छींचा । तुम सो कहहु कौन है नीचा ? ॥४॥

गायत्री युग चारि पढ़ाई, कहो मुक्ति किन पाय ? ॥ और के छुये छींटा लेहू, तुमसे नीच को भाय ? ॥२॥ अस्थि मांस औ रुधिर त्वचा, मल नख सिख भरपूर ॥ जो तुममें सो सर्वमें, जानत नहिं कस कूर ? ॥ ३ ॥

'गायत्री' नामक एक वैदिक मन्त्र, जिसे ब्रह्म-गायत्री * भी कहते हैं । चारों वेदोंके सहित ब्रह्म-गायत्रीको चारों युगोंसे ब्रह्मादिसे लेकर सब ब्राह्मण लोग अभी-तक पढ़ते-पढ़ाते, जपते-जपाते ही चले आ रहे हैं । इस प्रकार वेद पढ़ने और गायत्री-मन्त्र जपनेसे खानि-वाणीकी आसक्ति, भ्रम बन्धन, जड़ाध्यास तो उन किसीका भी नहीं छूटा । अब उनमेंसे समझदार पण्डितसे जाकर पूछो—गायत्री पढ़ने-पढ़ाने-वाले किसने मुक्ति पाई ? वा पायेंगे ? कहो—वास्तविक मुक्ति किसने पाई ? उन किसीने भी नहीं पाई ॥३॥ क्योंकि ब्राह्मण लोगोंमें छल-छिद्र, अभिमान, घमण्ड इत्यादि विशेष भरे हुए दीखते हैं । और जिनको ब्राह्मणोंने शूद्रादि अन्त्यज, अछूत मान रखा है, उन शूद्रादि अन्य मनुष्योंके साथ कहीं बाहर चलते-फिरतेमें किसी प्रकार

* टिप्पणीः-ब्रह्मगायत्री मन्त्र—"ॐ भूर्भुवः स्वः"
"ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो योनः प्रचोदयात् ॥"
इसके सिवाय अन्य चौबीस गायत्री और भी हैं; परन्तु मुख्य गायत्री मन्त्र यह ही है ॥

वस्त्रादिसे छू जानेपर भी बहुत अशुद्ध हुआ समझ, छूत मान करके शुद्ध होनेके लिए सुवर्ण छुवाया हुआ पानीका छींटा छिड़कवा लेते हैं, तब भ्रमसे अपनेको पवित्र हुआ समझते हैं। इस प्रकार और लोगोंके छू जानेपर तुम लोग अपने ऊपर पानीका छींटा छिड़कवा लेते हो। अतः हे ब्राह्मण भाई! समझ और करनीमें तुमसे और ज्यादा नीच कौन है? सो तो कहो! ॥२॥ क्योंकि विचार-दृष्टिसे देखो—सबके शरीरमें हड्डी, मांस, रक्त, त्वचा और मल-मूत्रादि विकार नख-से-शिखातक सर्वाङ्गमें पूरा भरा है, वही तुम्हारी देहमें भी भरा है। जो तुम्हारे शरीरमें है, वही सबके शरीरमें भी है। इस बातको प्रत्यक्ष देखते हुए भी क्या तुम इसे नहीं जानते हो? कैसे क्रूर-कपटी, मूर्ख, अविचारी घमण्डी बने हो? कुछ तो सोचो! ॥ ३ ॥ ४ ॥

ई गुण गर्व करो अधिकाई। अधिके गर्व न होय भलाई ॥५॥
जासु नाम है गर्व प्रहारी। सो कस गर्वहि सकै संहारी? ॥६॥

ई गुण गर्व अधिकार जो, यामें भलो न कोय ॥
जासु नाम है गर्व प्रहारी, कस सहिहैं गर्व सोय? ॥ ४ ॥

ई गुण = यज्ञोपवीतरूप जनेऊ धारण करके वेद, शास्त्रादि विद्या पढ़कर पण्डित, ब्राह्मण होनेके; यही इत्यादि गुणका जो तुम लोग अधिक-अधिक ही गर्व = अहङ्कार, घमण्ड करते हो। परन्तु सो अधिक गर्व करनेसे कभी किसीका कुछ भी भला न हुआ है न होता है। इसलिए विशेष अहङ्कारी होकर तुम्हारी भी कभी भलाई = हित-कल्याण नहीं होगा ॥५॥ क्योंकि जिसका नाम ही गर्व-प्रहारी है, सो तुम्हारे माने हुए परमात्मा तुम्हारे मिथ्या गर्व = अहङ्कारको कैसे सह सकेंगे? कभी नहीं सहेंगे। अन्तमें तुम्हारे सम्पूर्ण गर्वरूप अहङ्कारको संहारकर विनाश कर देंगे। अथवा समयानुसार तुम्हारा अहङ्कार भी सब चकनाचूर हो जायगा। अध्यासवश चौरासी चक्रमें पड़े दुःख भोगते रह जाओगे! ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः—कुल मर्य्यादा खोयके। खोजिन पद निर्वान ॥
अंकुर बीज नशायके। नर भये विदेही थान ॥३५॥

साखीः—कुल मर्यादा खोयके, खोजिन पद निर्वान ॥
अङ्कुर बीज नशायके, नर भये विदेही थान ॥ ५ ॥

भ्रमिक ब्रह्मज्ञानी लोग कुल = सम्पूर्ण जगत्के मर्यादारूप नियमको खोयके = मिटा करके, निर्वान = सर्व बन्धनसे रहित आकाशवत् निर्गुण-निराकार ब्रह्म-पदकी खोज-तलाश किये। अन्तमें जगत्का अङ्कुररूप द्वैतभाव और बीज = स्फुरणारूप इच्छा-वासनाके कारण मनको ही शून्यमें उन्मुनरूप लय करके स्थूलभाव जाग्रत् अवस्थाको नशायके = विनाश करके सूक्ष्म कारणरूपमें विलीन कर दिये। इस प्रकार विज्ञानी नरजीव भ्रम-धोखेसे शून्य स्थानमें पहुँचकर अपने-आप विदेही ब्रह्म हो गाफिल, जड़ाध्यासी, भ्रमिक बद्ध ही हो गये। विदेही = देहातीत वा बिना देहका माना हुआ

निर्गुण-निराकार ब्रह्म अपने-आप शरीरके स्थानमें ही मानकर नरजीव भ्रमिक हुए। इस कारण वास्तवमें इच्छा-वासना, अध्यासका अङ्कुर-बीज सर्वथा विनाश नहीं हुआ। केवल मनसे ब्रह्मकी मिथ्या मानन्दी भर कर लिये। इसीसे बिना पारख उनका भ्रम-बन्धन नहीं छूटा और छूट भी नहीं सकता है। अतः ब्रह्म बन करके भी भ्रम, अध्यासवश आवागमनमें ही पड़े रहते हैं॥ ५॥ ३५॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३६ ॥ ❀ ॥

ज्ञानी चतुर बिचक्षण लोई। एक सयान सयान न होई ॥१॥
दूसर सयानको मर्म न जाना। उत्पति-परलय रैन-बिहाना ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—ज्ञानी चतुर बुद्धिमान जो, सवन कीन्ह परमान। एक सयान सो ब्रह्म है, जीव सदा अज्ञान ॥१॥ दूसरा सयान जो ब्रह्मा, ताको मर्म न जान। उत्पति परलय होत है, जाकी रैन बिहान ॥ २ ॥

गुरुमुखः-सद्गुरु कहते हैं—महादेवादि योगी, ज्ञानी लोग, ब्रह्मादि पण्डित चतुर लोग और विचक्षण = विशेष बुद्धिमान् विष्णु आदि लोग एवं लोई = समस्त संसारी भक्त लोग जो जितने भी हुए, उन सबने अनुमान-कल्पनासे यही प्रमाण किया कि एक सयान = एक अद्वैत ब्रह्म ही सर्वश्रेष्ठ सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् एवं सर्वाधिष्ठान है, वही सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है। यह जीव तो सदा अज्ञान-ग्रसित होनेसे तुच्छ है, यह कभी सयान हो नहीं सकता है—ऐसा भ्रम-कल्पनासे मान लिया। परन्तु माना हुआ एक अद्वैत ब्रह्म ही कभी श्रेष्ठ सयान सिद्ध हो नहीं सकता है। उसको भी जानने और माननेवाला, अनुभवी बुद्धिमान होनेवाला सयानरूप वास्तवमें चैतन्य जीव ही श्रेष्ठ है ॥१॥ दूसरा सयानरूपमें जो ब्रह्माको माना है, उसके भी मर्म = यथार्थ भेदको अबोध लोगोंने ठीकसे नहीं जाना। कल्पना करके जिस ब्रह्माके बिहाना = प्रातःकालमें जग जानेपर सब जगत्की उत्पत्ति होना और रैन = रात्रिमें सो जानेपर सारे संसारका परलय = विनाश, विलीन होना; इत्यादि पण्डितोंने जो कथन किया है, सो यह बात भी सर्वथा मनगढ़न्त होनेसे मिथ्या है। क्योंकि अनादिकालसे दिन-रात, उत्पत्ति-प्रलय-रूप जन्म-मरण, और कार्योंका बनाव-बिगड़ाव प्रवाहरूपसे होता चला आ रहा है। अबतक अनेकों ब्रह्मा जन्म लेकर विनाश हो चुके हैं। इस बातका भेद बिना पारख कोई भ्रमिक लोग नहीं जानते हैं॥ २ ॥

बनिज एक सबन मिलि ठाना। नेम धर्म संयम भगवाना ॥३॥
हरि अस ठाकुर तजियो न जाई। बालहि बिहिस्त गावहिं दुलहाई ॥४॥

यह मायाका बचन सुनी, बनिज सबन मिलि ठान॥ नेम धर्म औ भक्ति करी, प्रसन्न करहिं भगवान ॥३॥ हरि अस ठाकुर काहुसे, त्यागा कबहुँ न

जाय । जोव सबै दुलहिन बनै, मुक्त पुरुष को गाय ॥ ४ ॥

मायारूप गुरुवा लोगोंके ऐसे-ऐसे रोचक वाणी-वचनोंको सुनकर सब अबोध-जनोंने परस्पर भ्रम-भूलमें मिल करके एक परमपतिरूप परमात्माको प्राप्त करनेके वास्ते बनिज = व्यापारके रूपमें अनेक प्रकारकी साधनाएँ ठाना = निश्चय करके स्थापित कर लिया। तब नियमसे धर्म, भक्ति-भावना, पूजा-पाठ; और संयमसे योगादि साधनाएँ कर-कराके, भगवान्‌को प्रसन्न करके उनसे मिलना चाहते हैं। परन्तु जब वह जीवकी भ्रम-कल्पना ही मात्र है, कहीं कोई सत्य वस्तु ही नहीं, तब उसे कैसे प्रसन्न करके प्राप्त करेंगे ? बिना विचार मिथ्या भ्रम-धोखेमें भूले बँधे पड़े हैं ॥३॥ भ्रम-भूलसे माने हुए ऐसे हरि = विष्णु भगवान्‌को सबने, ठाकुर = मालिक मान लिया। अब उस भ्रमको उन किसीसे कभी विवेक-विचार करके त्यागा नहीं जाता है। परन्तु अबोध-अज्ञानी जीव सब अपने-आप दुलहिनके समान स्त्री-भावधारी भक्त बन गये। कोई एक भगवान्‌को कल्पना करके अपना दुलहारूप परमपति मान लिये। दुलहाई = विवाहका गीत गा-गाकर वे सब उसी दुलहासे गठ-बन्धन कर रहे हैं। ईश्वररूप पुरुषका गुण, महिमा गाते हुए कोई, बिहिस्त = स्वर्गादि लोक, बैकुण्ठधाममें जाना चाहते हैं और कोई उसीमें मिलकर मुक्त होना चाहते हैं। बालहिं = स्त्री-भाव-धारी भक्त लोग बाल-बुद्धिसे ऐसा ही विपरीत कार्य कर रहे हैं। अन्तमें उनको भगवान् आदि प्राप्त तो कुछ नहीं होता है। भ्रमसे भव-बन्धनमें ही बँधे पड़े रहते हैं; बिना विवेक ॥४॥

साखीः-ते नर कहाँ गये ? जिन दीन्हा गुरु घोंटि ॥
रामनाम निजु जानिके। छाड़ि देहु बस्तु खोटि ॥३६॥

साखीः—राम नाम निज जानिके, जिन्ह गुरु दीन्हा मन्त्र ॥
देखहु ते नर कहाँ गये !, छाड़हु झूठ स्वतन्त्र ॥ ५ ॥

जिन भ्रमिक गुरुवा लोगोंने गुरु, उपदेशक, आचार्य बनकर घोंटि = चेलोंका शिर मूँड़ करके कोई एक गुरुमन्त्र, वाणी-कल्पनाको घोटमघोट करके कानमें फूँक दिया, रामनाम आदिका सुमिरण, वोहं-सोहं आदिका जप बता दिया; उन्हींसे निज = अपना उद्धार होगा, ऐसा जानकर वा समझकर तुम लोगोंने भी निश्चयसे मान लिया। अब विवेक-दृष्टिसे देखो—वे प्रथमके भ्रमिक गुरुवा लोग अन्तमें मर-मरकर कहाँ चले गये ? उनका स्थिति-ठहराव कहाँ हुआ ? जड़ाध्यासवश चौरासी चक्रके आवागमनमें ही चले गये। अतएव रामनाम आदि अनुमान-कल्पनाका नाम-स्मरण वास्तवमें खोटी वस्तु है। वह सत्य नहीं है। इसलिए उसकी मिथ्या मानन्दी, पक्षपातको परखकर सर्वथा छोड़ दो ! स्वतन्त्र होकर विवेक-विचार करो ! निज चैतन्य स्वरूप पारख-पदमें ही स्थिर हो रहो ! ॥ ५ ॥ ३६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३७ ॥ ❀ ॥

एक सयान सयान न होई। दूसर सयान न जाने कोई ॥१॥

तीसर सयान सयानहिं खाई । चौथे सयान तहाँ ले जाई ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—एक सयान जो ब्रह्म है, सो सयान नहिं होय ॥ दूसर सयान जो माया, ताहि न जाने कोय ॥१॥ तीसर सयान जो त्रिगुण, भक्ति ज्ञान अरु योग ॥ चौथे सयान चहुँ वेद हैं, धैं धैं लगावत सोग ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—वाणीसे कल्पना करके एक अद्वैत ब्रह्मको जो एक सयान माना है, सो वह सयानरूप श्रेष्ठ सत्य तो कभी हो नहीं सकता है। क्योंकि ब्रह्म भ्रम है। अबोध जीवोंकी मिथ्या भ्रम-भूलका वह कथन ही मात्र है। दूसरा सयानरूपमें जो अचिन्त्य शक्तिरूपिणी मायाको माना है, सो भी मिथ्या भ्रम ही है। क्योंकि जब ब्रह्म ही वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है, तब उसकी शक्तिरूपिणी माया कहाँसे सत्य हो सकती है? उन दोनोंको माननेवाला चैतन्य जीव ही सर्वश्रेष्ठ सयान है। इस बातको विवेक करके जाननेवाले कोई बिरले ही होते हैं। अथवा ब्रह्मको जो एक सयान कहा है, सो तो कभी सयान हो नहीं सकता है। दूसरा सयान जो मायाको माना है, उसे भी परख करके कोई यथार्थ नहीं जानता है, जो वह भी मिथ्या भ्रम ही है ॥१॥ तीसर सयान जो कहा है, वह त्रिगुण ही है। उसमें भक्ति, ज्ञान और योग-मार्गको ग्रहण करते-कराते हुए वास्तवमें सयानरूप श्रेष्ठ नरजीवोंको भ्रमा-भुलाकर, उनके बुद्धि-विचारादिको ही खाकर विनाश कर रहे हैं। चौथे सयानमें चार वेदोंको माना है। गुरुवा लोग उसी वेदादि वाणी-कल्पनाको पकड़-पकड़ाकर, अबोध जीवोंको उसी भ्रम-धोखेमें लेजा-लेजा करके भव-बन्धनका शोक-सन्ताप ही लगा रहे हैं ॥ २ ॥

पँचयें सयान जो जानेउ कोई । छठयेमाँ सब गयल बिगोई ॥३॥
सतयाँ सयान जो जानहु भाई ! लोक वेद मों देउँ देखाई ॥४॥

पँचये पाँचों तत्त्व हैं, जामें जीव रहे गोय ॥ छठयें मनके फन्दमें, सब जग चला बिगोय ॥३॥ सतयाँ सयान जो जीव है, याते सब बिस्तार ॥ बानी खानी याहि ते, ब्रह्म सृष्टि जग भार ॥ ४ ॥

पँचये सयानमें जो पाँचों तत्त्व हैं, वे स्वरूपसे जड़ और अनादि हैं। जो पाँचों तत्त्वोंको उत्पन्न करनेवाला कोई ईश्वरादि कर्त्ता जानते वा मानते हैं, सो मिथ्या भ्रम-भूल ही है। अबोध लोग पाँचों तत्त्वोंको मिथ्या भावनासे इष्ट देवतादि मानकर भूले हैं। और पञ्च तत्त्वोंके पञ्च विषयादि भोगोंकी आसक्ति लेकर जिन खानि-वाणीमें दोनों ओर अबोध जीव आवर्ण, पर्देमें छिपे पड़े हैं, इस भेदको जानकर त्यागनेवाले कोई बिरले ही पारखी सन्त होते हैं। छठयें = मनकी मिथ्या मानन्दीके फन्दाओंमें सब जगत्के अबोध जीव अपने मनुष्य-पद, मुक्ति-स्थितिको बिगाड़ करके चौरासी योनियोंमें चले गये और भी जा ही रहे हैं; बिना पारख ॥३॥ हे भाई ! अब सतयाँ सयान-को जो जानना चाहो, सो तो तुम्हारा चैतन्य स्वरूप स्वयं जीव ही है। इसी जीवसे ही

सब संसारमें खानि-वाणीका समस्त विस्तार हुआ और हो रहा है। लोक=खानिजाल, और वेदमों=वाणी जाल, इन दोनोंको प्रकट करनेवाला, विस्तार करके उनमें भूलकर स्वयं बन्ध जानेवाला भी यह अबोध जीव ही है। इस कारण वाणी-कल्पनारूप ब्रह्म-सृष्टि और चार खानि चौरासी योनिरूप जगत्-सृष्टिका सम्पूर्ण विस्तार भी इसी जीवसे हुआ और हो रहा है। इस प्रकार मैं तुम्हें यथार्थ सत्य प्रमाणसे लोक और वेदमें चैतन्य जीवकी ही विशेषता प्रत्यक्ष दिखला देता हूँ। तुम भी परीक्षा-दृष्टिसे इस बातको देखकर जानलो ! ॥ ४ ॥

साखीः-बीजक बित्त बतावै। जो बित्त गुप्ता होय ॥
ऐसे शब्द बतावै जीवको। बूझै बिरला कोय ॥३७॥

साखीः—बीजक बित्त बतावै, जो बित्त गुप्ता होय ॥
ऐसे शब्द बतावै जीवको, बूझै बिरला कोय ॥ ५ ॥

'बीजक' नामक यह मेरा सद्ग्रन्थ बित्त=गुप्त धनके समान चैतन्य जीव जमा, जो हृदयमें छिपे हुएको प्रकट करके सत्य बतलाता है। बित्त=धन, गुप्ता=गुप्त, गड़ा वा छिपा हुआ समान आवर्णसे ढका हुआ होनेपर भी चैतन्य जीवके सत्य स्वरूपके भेदको जो जानते हैं; सो वैसे पारखी सन्त ही बीजकके यथार्थ भेदको जानकर, बीजकके सत्य भावको यथार्थ परखा सकते हैं। गुप्तरूपसे छिपाकर रखे हुए धनको जैसे बीजक बतलाता है, वैसा ही मेरे बीजकका सारशब्द गुरुमुख निर्णय भी ऐसे ही जीवको स्वयं सत्य सिद्ध करके पारखबोध बतलाता है। अब मेरे अभिप्रायको कोई बिरला ही जिज्ञासु मनुष्य पारखी होकर यथार्थ समझेगा वा बूझेगा। उसीको पारख-सिद्धान्तका बोध होगा; इत्यादि ॥ ५ ॥ ३७ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३८ ॥ ❀ ॥

यहि विधि कहौं कहा नहिं माना। मारग माहिं पसारिनि ताना ॥१॥
राति-दिवस मिलि जोरिन तागा। ओटत-कातत भरम न भागा ॥२॥
भरमहि सब जग रहा समाई। भरम छोड़ि कतहूँ नहिं जाई ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः--यहि विधि कहौं पुकारिके, कहा न कोई मान। बहुबिधि बानि दृढ़ाय के, जीवन बाँधो तान ॥१॥ राति-दिवस मिलि जोरिया, बहुबिधि सुरति लगाय ॥ पढ़त-पढ़ावत मरि गये, भरम न भागो भाय ॥२॥ भरम माहिं यह जगत सब, निशिदिन रहत समाय ॥ भरम छाँड़िके जीयरा, अन्तै कतहूँ न जाय ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—इसी प्रकारसे मैं पुकार-पुकारकर जीव जमाको

ही सत्य कहता हूँ, पारख-सिद्धान्त दरशाता हूँ; परन्तु ये भ्रमिक अबोध-अविचारी लोग हमारे कहे सत्य न्याय-निर्णयको कोई नहीं मानते हैं। जैसे जुलाहे बीच मार्गमें ताना फैलाते हैं; तद्वत् गुरुवा लोग बहुत प्रकारसे विधिपूर्वक अनेक प्रकारकी कल्पित वाणी दृढ़ा-दृढ़ा करके सब जीवोंको उसीमें बाँध दिये। सारे संसारके बीच मार्गमें खानि और वाणीका ताना, कर्म-उपासनादि मार्ग विस्तारसे फैलाकर, रोचक-भयानक वाणी सुना-सुना करके उसीमें सब लोगोंको फँसाकर बाँधते ही जा रहे हैं ॥१॥ दिन--रात भ्रमसे मिथ्या भावनामें मिलकर अज्ञानी, ज्ञानी, विज्ञानी लोग तागा = वाणी और विषयके धागामें बहुत प्रकारसे अपना सुरतिरूप लक्ष्य लगाकर एकाग्र करके जोड़ लिये, तदाकार होकर उसीमें मिलते गये। हे भाई ! ओटत = वेद, शास्त्रादिको ही पढ़ते, विधि--विधान करते और कातत = दूसरोंको पढ़ाते, वाणीका कथन करते एवं वाद-विवाद करते, तर्क--वितर्कसे लड़ते--झगड़ते बहुतसे लोग उसी प्रकार मर--मरके चले गये। अब भी वही वाणी पढ़ते--पढ़ाते, वैसे ही विधि--निषेधका कथन कर रहे हैं; परन्तु इस प्रकारसे अभीतक किसीकी भ्रम-भूल नहीं भगी। अज्ञानका बन्धन भी नहीं मिटा। भव--बन्धनमें ही खूब बँधे पड़े हैं ॥२॥ इस कारण ईश्वरादिकी मानन्दी-का भ्रम, और निज स्वरूपकी भूल, इसीमें ये जगत्‌के सब जीव दिन--रात ज्ञान--अज्ञान में मिलकर धोखेमें ही समाये रहते हैं; भव--बन्धनमें खूब जकड़कर बँधे रहते हैं। इसीसे परीक्षा-दृष्टिसे हीन अबोध अज्ञानी जीव खानि--वाणीके भ्रम--धोखेको छोड़कर अन्यत्र पारखी सन्तोंने सत्सङ्गमें कहीं भी स्वयं नहीं जाते हैं। इसलिए भव-बन्धनसे छूटना बड़ा कठिन हो रहा है ॥ ३ ॥

परै न पूरि दिनहु दिन छीना। तहाँ जाय जहाँ अङ्ग बिहूना ॥४॥
जो मत आदि-अन्त चलि आई। सो मत सब उन्ह प्रगट सुनाई ॥५॥

पूर परे नहिं काहुकी, होत दिनहु दिन छीन ॥ खोजत खोजत तहाँ गये, जहवाँ अङ्ग बिहीन ॥४॥ आदि मत अनुमान को, सोई अन्त चलि आय ॥ सोइ वेद मत प्रकट करी, गुरुवन दीन्ह सुनाय ॥ ५ ॥

खानि-विषय सम्बन्धी और वाणी-कल्पना सम्बन्धी संसारमें कोई किसीकी भी इच्छा--वासनाएँ कभी पूर्ण नहीं होती हैं। इसीसे अबोध जीव दिनोंदिन दीन-हीन, मलिन, क्षीण, दुःखी ही होते जाते हैं। तथापि सुख-प्राप्तिका आशा-भरोसा लेकर भ्रमसे ब्रह्म, ईश्वरादिको चारों ओर खोजते-खोजते अन्तमें वहाँ पहुँच गये, जहाँपर अङ्गविहूना = सर्वाङ्गसे रहित, निर्गुण--निराकार आकाश, जहाँ शून्य है, कोई वस्तु ही नहीं है, उसीको मिथ्या मानन्दीसे सबसे बड़ा ब्रह्म--परमात्मा मानकर धोखेमें भूलकर बन्ध गये। अन्तमें मृत्यु होनेपर अध्यासवश शून्य-स्थान गर्भवासमें पहुँच गये ॥४॥ प्रथमके भ्रमिक मनुष्योंने भ्रम-कल्पनासे जो अनुमानका मत आदि = जगत्‌में प्रारम्भ करके निकाला, वही आदिका मत अनुमान--कल्पनासे वाणीका विस्तार अब अन्तमें भी—सबका मूल, अन्त = ब्रह्म स्वरूप ही अधिष्ठान है, यह सिद्धान्त घटोंघटसे

भ्रमण करता हुआ इस समय अन्ततक चला ही आ रहा है। वही कल्पित वाणीका वेदमत—'कोई एक ब्रह्म, ईश्वरादि जगत्का कर्त्ता है' यही सिद्धान्त प्रकट करके वे भ्रमिक गुरुवा लोग सबको मिथ्या महिमा वर्णन करके सुनाये और भी सुनाते ही जा रहे हैं। बिना विचार सब उसे सत्य मानकर भूले पड़े हैं ॥ ५ ॥

साखीः—यह सन्देसा फुर कै मानेहु। लीन्हेउ शीस चढ़ाय ॥
सन्तो ! सन्तोष सुख है। रहहु तो हृदय जुड़ाय ॥३८॥

साखीः—यह सन्देसा फुरकै मानेहु, लीन्हेउ शीस चढ़ाय ॥
सन्तो ! सन्तोष सुख है, रहहु तो हृदय जुड़ाय ॥ ६ ॥

यह सन्देशा=यही सन्देश, समाचार; जो गुरुवा लोगोंने वेद-शास्त्रादिकोंका प्रमाण देकर ईश्वरका सन्देश बताया, खूब मनगढ़न्त वाणी सुनाई, सो वैसी रोचक-भयानक वाणीके उपदेशको सब अबोध मनुष्योंने एकाग्र होकर सुन-सुन करके फुर= सचा ही समझ करके, उसे निधड़क मानकर उनकी आज्ञाको अपने-अपने शिरपर सादर सहर्ष चढ़ा लिया, उनकी सब बातोंको शिरोधार्य कर लिया। परन्तु वैसे मिथ्या भ्रम-धोखेके वाणीजालमें पड़कर किसीका कुछ भी हित-कल्याण नहीं हो सकता है। इसके यथार्थ भेदको वे लोग नहीं जानते हैं; इसीसे भ्रम-बन्धनमें ही भूले बँधे पड़े हैं।

हे सन्तो ! सर्व आशा-तृष्णादिको परित्याग करके दृढ़ वैराग्यसे पूर्ण सन्तोष धारणकर, गुरु-पारखबोधसे स्व-स्वरूपमें स्थिर हो हंस-रहनि-रहस्य संयुक्त स्थिति करनेसे ही सचा सुख, जीवन्मुक्तिकी स्थिति प्राप्त होती है। अब तुम लोग भी सन्तोषादि सर्व सद्गुण संयुक्त उसी प्रकार निजपदमें स्थिर हो रहो, तब तो तुम्हारा भी हृदय जुड़ाय=शीतल, शान्त हो जायगा। सर्व भव-बन्धनसे छूटकर निर्बन्ध-मुक्त सुखी हो जाओगे। अतः मेरे इस बीजकके सन्देशको सत्य मानकर शिरोधार्य करो ! हे सन्तो ! सन्तोषमें ही सुख है। सन्तोषी हो रहो तो तुम्हारा हृदय शीतल हो जायगा ॥ ६ ॥ ३८ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ३९ ॥ ❀ ॥

जिन्ह कलमा कलिमाहिं पढ़ाया। कुदरत खोज तिनहुँ नहिं पाया॥१॥
कर्मत-कर्म करे करतूता। वेद—कितेब भये सब रीता ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—कलिजुग में महम्मद भये, जिन्ह जग कलमा पढ़ाय ॥ खोजत खोजत बानिमा, वोहु रहे पछिताय ॥१॥ बड़े बड़े कर्मन करत है, वेद किताब बिचार। कर्महि करि-करि जगत सब, पुनिपुनि लेत अवतार ॥२॥

गुरुमुखः—कलियुगरूप संसारमें अरबदेशके मक्का शहरमें उत्पन्न 'मुहम्मद' नामक पैगम्बर चालीस वर्षकी अवस्थामें इस्लाम-मतका प्रवर्तक हुआ, जिसने कलि= जगत्‌रूप अरबदेशके निवासी मुसलमानोंको कलमा=कुरानेशरीफके वाक्य और "ला इलाह; इल्लिल्लाह; मुहम्मद रसूलिल्लाह" ऐसा कलमा पढ़ाया। कुदरत=ईश्वरीय शक्ति, प्रकृतिरूप खुदाकी शक्तिकी खोज-तलाश करते हुए उसने भी उसका पता नहीं पाया। तब कितेब आदिकी वाणीमें खोजते-खोजते, विचार करते-करते भी अन्ततक कुदरतका पता नहीं पाया। इसलिए भ्रम-धोखेमें ही पड़कर अन्तमें वह भी पश्चात्ताप करता रहा। खानि-वाणीके जड़ाध्यासरूप भव-बन्धनसे वह भी नहीं छूटा ॥१॥ करतूता=अपने करनीरूप कर्त्तव्यसे बड़े-बड़े पण्डित लोग भी कर्म करनेको तो अनेक प्रकारके कर्म, अकर्म, विकर्म खूब ही किये और भी करते ही जा रहे हैं। कोई बड़े-बड़े कर्मानुष्ठान भी करते-कराते हैं। चार वेद और चार कितेबको हिन्दू-मुसलमान लोग पढ़-पढ़ाकर उनका विचार भी कर-करा रहे हैं। इस प्रकार सब जगत्‌के जीव अनेक तरहके शुभाशुभ कर्मोंको कर-करके मरते गये और जड़ाध्यासवश पुनः पुनः चौरासी योनियोंमें अनेक प्रकारकी देह धारणकर अवतार लेते हुए उत्पन्न भी होते रहते हैं। परन्तु अन्तमें रीता=सब खाली-के-खाली, बुद्धि-विचारसे हीन बद्ध दुखःभोगी हो रहे हैं ॥ २ ॥

कर्मत सो जग भौ अवतरिया। कर्मत सो निमाजको धरिया ॥३॥
कर्मत सुन्नति और जनेऊ। हिन्दू तुरुक न जाने भेऊ ॥४॥

कर्महि से जग भव भयो, कर्म निमाज गुजार ॥
कर्महि सुन्नति जनेउ कही, हिन्दू तुरुक खुवार ॥ ३ ॥

अनेक जन्मोंकी कर्म-वासनाके अध्याससे ही जगत्‌रूप भवसागर, चौरासी योनियोंका विस्तार हुआ है। अध्यासी जीव वहीं जा-जाकर देह धारण करके उत्पन्न होकर कर्मफल भोगते रहते हैं। "तीन लोक कर्म-बन्धनमें बँधा हुआ है" ऐसा कहते हुए भी भ्रमिक गुरुवा लोग अब पुनः वैसे ही बन्धनकारक कर्म करते-कराते हुए स्वयं बद्ध होते, औरोंको भी बाँधते ले जा रहे हैं। दूसरी ओर मुसलमान लोग जो नमाज पढ़ते हुए खुदाको प्रसन्न करनेकी भ्रम-कल्पनाको धारण करके समय गुजार रहे हैं, वह कर्म भी भ्रमपूर्ण बन्धनकारक ही है। इस प्रकार कर्म-बन्धनमें सब-के-सब बँधे पड़े हैं, बिना पारख ॥३॥ मुसलमानोंमें जन्मसे आठवें दिन पुत्रकी सुन्नति कराना, यह भी एक भ्रम-कल्पनाका ही कर्म है। और दूसरी ओर हिन्दू ब्राह्मणादिमें आठवें वर्ष पुत्रको व्रतबन्ध विधिसे यज्ञोपवीतरूप जनेऊ पहिराना, यह भी एक भ्रमका ही कर्म है। वैसे-वैसे अनेक कर्म-बन्धनोंका एवं भ्रम-कल्पनाका यथार्थ भेऊ=भेद हिन्दू और मुसलमानादि किसीने भी ठीकसे नहीं जाना। इसीसे वे सब-के-सब खानि-वाणीके महाजालोंमें फँसकर खराब हो करके विनाश होते जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ३ ॥ ४ ॥

साखीः—पानी-पवन सञ्जोय के । रचिया यह उतपात ॥
शून्यहि सुरति समोयके। कासों कहिये जात ? ॥३९॥

साखीः—बिन्द औ पवन मिलाय भग, भया जगत उत्पात ॥
फिर भगहीमें सुरति लगाइया, अब कासो कहिये जात ? ॥ ४ ॥

पानी = वाणी, पवन = मनका भ्रम, अनुमान-कल्पना; इन दोनोंको सञ्जोयके = एकमें मिलाकर सजा करके ब्रह्म, ईश्वरादिके सम्पूर्ण भ्रमिक सिद्धान्त रचना करके उत्पन्न किया। यही मिथ्या मानन्दी ले-लेकर सम्पूर्ण मत-पन्थोंका झगड़ा, उत्पात = उपद्रव संसारमें हो रहा है। अन्तमें फिर आकाशवत् शून्य माने हुए परमात्मा-प्राप्तिके लिए शून्य स्थानरूप आकाश एवं मस्तकरूप ब्रह्माण्डमें सुरति = लक्ष्य लगाकर वृत्तिको शून्य करके गाफिल, जड़ाध्यासी बद्ध ही होते जा रहे हैं। अब यह यथार्थ निर्णयकी बात किससे कहना ? कोई बिरले ही विवेकीजन परख करके उस भ्रम-धोखे-से न्यारा होंगे और पारख-पदमें स्थिर हो रहेंगे ॥३६॥ अथवा पानी = वीर्य और पवनरूप सूक्ष्म प्राणवायु, सूक्ष्म देह सयुक्त अध्यासी जीव आकर मैथुन सम्बन्धसे भगमें प्रवेश करके रजमें मिलकर गर्भवासको प्राप्त होता है। इसी प्रकार गर्भ-स्थानमें ही तीन खानियोंके सब जीवोंकी देहोंकी रचना होती है। पुनः समयानुसार स्थूल देह संयुक्त सब जीव जगत्‌में उत्पन्न होते हैं। देह सम्बन्धके साथमें ही संसारके सम्पूर्ण उत्पात, उपाधि, झगड़ा-झन्झट इत्यादिकी रचना भी होती रहती है। पुनः युवक हो विषय-वासनाके वश उसी जन्मद्वाररूप भगके शून्य स्थानमें ही सुरति = प्रेम-प्रीति, लक्ष्य, तन-मनादि लगाकर भोगोंमें खूब भूल गये, विषय-भोगोंमें ही पशुवत् सम्पूर्ण आयु व्यर्थ बिता दिये। मृत्यु होनेपर फिर अध्यासवश चौरासी योनि-योंमें ही जाकर दुःख भोगते रहेंगे। अब यह यथार्थ बात किससे कहना ? क्योंकि सब विषयी लोग उसी तरह चौरासीकी ओर ही चले जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ४ ॥ ३६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४० ॥ ❀ ॥

आदम आदि सुधि नहिं पाई । मामा हवा कहाँते आई ? ॥१॥
तब नहिं होते तुरुक औ हिन्दू । मायके रुधिर पिताके बिन्दू ॥२॥
तब नहिं होते गाय कसाई । तब बिसमिल्ला किन फुरमाई ? ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—आदी आदम ब्रह्मा, तिनहु खबर नहि पाय ॥ मामा हौवा जो माया, कहो कहाँते आय ? ॥१॥ हिन्दू तुरुक तब ना हते, रुधिर औ बिन्दु जमाय ॥ तब कहाँ गाय कसाइ थे ?, बिसमिल्ला किन्ह फुरमाय ॥२॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—मुसलमानी मतके अनुसार आदम = मनुष्योंका आदि पिता माने हुए बाबा आदमने भी आदि = अपनेसे पहलेकी बातके आरम्भकी

सुधि=पूरा पता, भेद, खबर जान नहीं पाया । मामा हवा=(फारसीमें रोटी पकानेवाली दासीको मामा कहते हैं) हव्वा, जो आदमकी स्त्री थी । यह माया कहाँसे आई ? इस बातको भी उसने नहीं जाना । आदम पुरुष और हव्वारूप उसकी स्त्री होनेसे उनके माता-पितारूप सारे परिवार एवं सम्पूर्ण संसारका विस्तार तो प्रवाहरूप अनादिकालसे था ही । परन्तु मुसलमान लोग मिथ्या कल्पना करके—खुदाने ही प्रथम आदमको, और फिर हव्वाको बनाया; ऐसा वर्णन करके मान रहे हैं । इसी बारेमें सद्गुरु यथार्थ परखा रहे हैं कि आदमने भी आदिका भेद कुछ नहीं जाना । मामा हव्वारूप स्त्री जब उसके पास आई, तब उसके माता-पितादि सम्पूर्ण संसारका विस्तार तो पहलेसे ही था । फिर खुदाने बनाया, ऐसा मानकर मिथ्या भ्रममें क्यों भूलना ? इत्यादि ॥ १ ॥

अथवा प्रथम 'ब्रह्मा' और 'आदम' नामक जो मनुष्य हुए, उन लोगोंने भी आदि=अनादिकालकी खबर, एवं संसार उत्पन्न कैसे हुआ ? इस बातका भेद ठीकसे कुछ भी जान नहीं पाया । मामा 'हव्वा' नामक जो मायारूप स्त्री आई, सो कहो—वह आई तो कहाँसे आई ? वह तो जहाँ उसके माँ-बाप थे, वहाँसे आई । उसके प्रथमका भेद आदमने भी कुछ जान नहीं पाया । आदम और उसकी स्त्री, वे दोनों भी उनके ही समान मनुष्यरूप माता-पिताद्वारा गर्भवाससे बाहर जन्म लेकर आये । जब इतनी सामान्य बातको भी उन लोगोंने नहीं जाना, तो फिर और विशेष बातको वे क्या जानेंगे ? इस कारण मिथ्या भ्रम-धोखेमें ही सब मुसलमान लोग भूल रहे हैं; बिना विवेक ॥१॥ ईश्वर, खुदादि कोई एक जगत्कर्त्ता माननेवाले लोग कहते हैं—पहले जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था, तब हिन्दू और मुसलमानादि, इनमेंसे कोई मनुष्य कहीं उत्पन्न नहीं हुए थे । इस कारण माताके रुधिररूप रज और पिताके बिन्दूरूप वीर्य भी कोई कुछ नहीं था । इसीसे रज-वीर्यका जमाव भी तब नहीं होता था । इन सबका जमाव करनेवाला तो वही एक ईश्वर वा खुदा ही है ॥२॥ तब गाय भी नहीं थी और कसाई भी नहीं था । ये सब बादमें उत्पन्न हुए । इत्यादि कथन सुनकर सद्गुरु कहते हैं—हे मुसलमानो ! तुम्हारे मिथ्या कथन अनुसार प्रथम जब कुछ नहीं था, गाय और कसाई भी कहीं नहीं थे, तब "बिसमिल्ला हिर्रहिमाने रहीम" यह कुरानका कलमा बोलकर गौ-हत्या करनेको उस समय तुमको किसने फरमाया=ऐसी आज्ञा वा हुकुम किसने दिया ? सो तो कहो ! बिना विचार जीभके स्वादसे गौ-हत्याका कर्म खुदाके नामसे अपने आप ही ये लोग करते जा रहे हैं । सज्जनोंको ऐसे मिथ्या भ्रम-धोखामें नहीं पड़ना चाहिए ! ॥ २ ॥ ३ ॥

तब नहिं होते कुल औ जाती । दोजख बिहिस्त कौन उतपाती ? ॥४॥
मन मसलेकी सुधी न जाना । मति भुलान दुइ दीन बखाना ॥५॥

कुल जाती तब ना हती, दोजख बिहिस्तहु नाहिं ॥
मन अनुमाने भूलिया, दो दीन बखाना ताहि ॥ ३ ॥

तुम्हारी मानन्दी अनुसार प्रथम कुल=कुल-कुटुम्बी, परिवार इत्यादि सम्पूर्ण

जगत्का विस्तार और जाती=हिन्दू-मुसलमानादि विभिन्न जाति भी उस समय नहीं थी, तब कहो तो भला! दोजख=नरकलोक और बिहिस्त=सात आसमानमें स्वर्गादि लोक, इनको किसने ? किसके लिए उत्पन्न किया ? फिर क्या ये भी नहीं थे ? स्वर्ग, नरकादि लोक होनेसे सारा संसार अनादिकालसे था। क्यों मिथ्या भ्रम-धोखेमें भूलते-भुलाते जा रहे हो ? इसका विचार करो ! ॥४॥ अपने ही मनके मसले=भेद, कहावत वा समस्यासे उत्पन्न मिथ्या मानन्दीकी वाणी-कल्पनाकी ही सुधी=ठीक पता, खबरको कुछ भी नहीं जाना। खाली मनकी अनुमान-कल्पनामें आगे बढ़ते-बढ़ते अपने-आपको खूब भूल गये। इस प्रकार मति=शुद्ध मनुष्य-बुद्धि, विवेक-विचारको भुलाकर दुइ दीन=हिन्दू और मुसलमान, ये दो प्रकारके दीन, जाति अलग अलग होनेका बखान किया। पुनः उन दोनों सम्प्रदायवालोंने वाणीजालको विभिन्नरूपमें विस्तार करके, वही वर्णनकर सबको भ्रम-धोखेमें भुला रहे हैं; बिना विवेक ॥ ३ ॥ ५ ॥

साखीः-सञ्जोगे का गुण रवै। बिजोगे का गुण जाय ॥
जिभ्या स्वारथ कारणे। नर किन्हें बहुत उपाय ॥४०॥

साखीः—सङ्कल्पे जग होत है, बिन सङ्कल्प मिट जाय ॥
यह मत सत्य करन को, नर कीन्हेउ बहुत उपाय ॥ ४ ॥

गुरुवा लोग कहते हैं—ब्रह्म, ईश्वरादिके संयोगरूप सङ्कल्पसे गुण=त्रिगुणमय संसार रवै=उत्पन्न होता है। उसका रवैया, चाल-चलन, तरीका वैसा ही है। और फिर उसके वियोग करनेकी इच्छारूप विकल्पसे गुण=त्रिगुणमय सब जगत् मिटकर महाप्रलयमें विनाश भी हो जाता है। वही एक सर्वशक्तिमान् है, जैसा चाहे वैसा करता है। इसलिए उसी मालिककी भाव-भक्तिमें लगे रहो ! यही कल्पित मत सत्य है—ऐसा सिद्ध करनेके लिए जीभसे बहुत वाणी बोलकर, पण्डित, वक्ता कहलाके अपने सांसारिक भोग-विलासकी पूर्ति करनेके एवं जिह्वा-स्वाद लेते रहनेके स्वार्थरूप कारणसे पण्डितरूप स्वार्थी नरजीवोंने बहुत प्रकारके युक्ति-प्रयुक्तिरूप उपायसे खानि-वाणीजालका विस्तार किया और भी करते जा रहे हैं। बिना विचार सब उसीमें फँसे पड़े हैं। परखकर उन जालोंसे न्यारा होना चाहिये ! ॥ ४ ॥ ४० ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४१ ॥ ❀ ॥

अम्बुकि राशि समुद्रकी खाई। रवि--शशि कोटि तैंतीसों भाई! ॥१॥
भँवर जालमें आसन माँड़ा। चाहत सुख दुःख सङ्ग न छाड़ा ॥२॥
दुःखको मर्म न काहू पाया। बहुत भाँतिके जग भरमाया ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—अम्बु कहिये पानीको, पानी बानी जान ॥ पानी कहिये कामको, जाते जग बन्धान ॥१॥ समुद्र कहिये ब्रह्मको, खाई माया

जान ॥ माया कहिये कायाको, की भग खाइ बखान ॥२॥ चन्द्र सूर्य औ देवता, तैंतीस कोटी भाय ॥ याही भँवर जालमें, आसन दियो लगाय ॥३॥ चाहत हैं सब सुख बहू, दुक्खन संग छुड़ाय ॥ दुःखको मर्म न जानहीं, बहुविधि जग भरमाय ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जैसे भू-मण्डल भरके अम्बु = जलकी राशि = ढेरी समुद्रके खाईरूप गड्ढामें जमी है। सूर्य, चन्द्र और सम्पूर्ण ताराओंका आकर्षण उसमें लगा रहता है।

तद्वत् पानीरूप वाणीकी राशि = ढेरी समुद्ररूप अद्वैत ब्रह्म-प्रतिपादक खाई = वेदादिके गड्ढेमें एकत्र हैं। रवि = ज्ञानी लोग, और शशि = योगी लोग एवं तैंतीसों कोटि देवतादि और लोगोंने भी मिथ्या भावना करके ब्रह्मज्ञानकी वाणीको ग्रहण किया। वे उसी भ्रम-धोखेमें भूल गये।

अथवा पानीरूप कामकी राशि = ढेरी समुद्रकी खाईवत् स्त्रीकी भगखाई बनी है। रवि = सूर्यवंशी और शशि = चन्द्रवंशी राजे एवं तैंतीस कोटि माने हुए देवतादि सबने भी खूब प्रेमसे विषय-भोगको ग्रहण किया। उसीमें सब खूब बँध गये ॥ १ ॥

अथवा अम्बु = पानीको कहते हैं और वाणीको भी पानीरूपमें ही जानलो ! वैसे ही विषय-भोगेच्छा, काम-कामनासे उत्पन्न रज-वीर्यको भी पानी ही कहते हैं; जिससे सब जगत्के जीव मोटी-झीनी मायामें खूब बँधे हुए हैं ॥१॥ ब्रह्मको समुद्र कहा जाता है और मायाको ही खाईरूपमें जानलो ! पुनः इस कायाको भी माया ही कहा जाता है। अथवा भग-स्थानको भी खाई ही वर्णन किया है ॥२॥ सूर्य, चन्द्र और माने हुए तैंतीस कोटि देवता, वे सब भी उसी अम्बुकी राशि, समुद्रकी खाईमें डूबकर जड़ाध्यासी होकर मरते गये। सूर्यवंशी, चन्द्रवंशी, देववंशी और मानववंशी इत्यादि सब लोगोंने भँवरजाल = पानीके चक्ररूप इसी खानि-वाणीमय संसारके झगड़े, भ्रमजालमें जाकर खूब प्रेम-प्रीतिसे आशा-तृष्णा और आसक्तिका आसन = बिस्तर बिछाकर अपना-अपना आसन फैलाके लगा दिया ॥३॥ सब लोग इसी तरह खूब विषयादि भोग करके और योगादि साधना करके विशेष सुख तो पाना चाहते हैं; परन्तु वे कोई भी विवेक-विचार करके दुःखका कारण और दुःखदायीका सङ्ग-साथ कभी नहीं छोड़ते, औरोंको भी नहीं छुड़ाते हैं। तब कहो तो भला ! चाहनेमात्रसे सुख कहाँसे मिलेगा ? चौरासीका दुःख भी कैसे छूटेगा ? कभी छूट नहीं सकता ॥२॥ क्योंकि जन्म-मरणादि एवं त्रयतापके दुःखभोग अनेक प्रकारसे होते रहनेका मूलकारण मोटी-झीनी मायाकी आसक्ति, अध्यास ही है। इसका मर्म = यथार्थ भेद, पूरा पता तो वे कोई नहीं जानते। जब कारणको ही जान नहीं पाया, तब कार्य कैसे छूटेगा ? इसलिए सुख-प्राप्तिकी इच्छासे बहुत भाँतिसे अनेक उपाय करके जगत्के अबोध जीव भ्रम-भूलमें पड़ गये। औरोंको भी खूब भ्रमाकर भुलाते ही जा रहे हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

आपुहि बाउर आपु सयाना। हृदया बसै तेहि राम न जाना ॥४॥

आपुहि जीव बाउर भयो, आप सयान रहाय ॥
हृदया जो धोखा बसो, ताको मर्म न पाय ॥ ५ ॥

भ्रम-धोखेमें पड़कर दिमाग खराब करके अबोध जीव अपने-आप ही बाउर-बावला, पागल हो गया। पहले तो जीव अपने-आप सयाना = श्रेष्ठ, चतुर, प्रवीण ही रहता था। जब खानि और वाणीका मिथ्या पक्ष, मोह-ममता, आसक्ति किया, तभी उसकी बुद्धि बिगड़ गई। हृदयमें जो कुछ भी धोखा, भ्रम-भूल दृढ़ होकर बैठ गई, इसका भेद भ्रमिक लोग किसीने भी जान नहीं पाया। इसीसे अपने हृदय-निवासी अविनाशी निज चैतन्य स्वरूप रमैयारामको सर्वथा किसीने जान नहीं पाया। अपनेसे भिन्न कोई दूसरा ही परमात्मा राम मानकर खूब भ्रम-बन्धनमें बँध गया; बिना पारख ॥ ४ ॥ ५ ॥

साखीः—तेहि हरी तेहि ठाकुर। तेही हरीके दास ॥
ना यम भया न जामिनी। भामिनि चली निरास ॥४१॥

साखीः—जोई हरी सोइ ठाकुर, सोई हरीका दास ॥
ना ब्रह्म भया न गुरुवा, भाविक चले निरास ॥ ६ ॥

सो वही हरि = बुद्धि-विचारको हरण करनेवाली जो भ्रम-कल्पना है, वही ठाकुर = मालिक, विष्णु परमेश्वर बनकर बैठ गई। उसी बुद्धि-विनाशक हरि = वाणी-कल्पना और गुरुवा लोगोंके पासमें जाकर सब अबोध जीव दास बन गये। अन्तमें न तो यम = ब्रह्म, ईश्वरादि माने हुए धर्मराज सुखदायी हुए और न जामिनी = जमानत देने-वाले गुरुवा लोग ही न कुछ सहायक, सुखदाता कामके हुए। अन्तमें भामिनी = स्त्रीवत् बनकर भगवान् पतिकी मिथ्या भावना करनेवाले भाविक जीव निराश = आशा पूरी न होनेसे असहाय होकर जड़ाध्यासवश चौरासी योनियोंमें दुःख भोगनेको चले जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ६ ॥ ४१ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४२ ॥ ❀ ॥

जब हम रहल रहल नहिं कोई। हमरे माहिं रहल सब कोई ॥१॥
कहहु राम कौन तेरी सेवा ? सो समुझाय कहो मोहिं देवा ! ॥२॥

टीका; ब्रह्ममुख-दोहाः—जब हम रहै तब कछु नहीं, सब जग हमरे माँहि ॥ जिमि बट-बीजमें जानिये, पत्र फूल फल छाँहि ॥१॥ गुरुमुखः-जब तुम रहे तब कछु नहीं, पत्र फूल फल छाँहि ॥ तो सेवन कौने किया ?, सो मोहि कहो समुझाहि ॥ २ ॥

ब्रह्ममुखः—ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं--एक अद्वैत ब्रह्म-स्वरूप ही हम हैं। जब जगत् उत्पन्न नहीं हुआ था, उस समयमें, अभी और महाप्रलय होनेपर भी मैं अद्वैत

ब्रह्म ज्यों-का-त्यों ही रहता हूँ। जब मैं निर्गुण-निराकाररूपमें रहा, तबतो वहाँपर और कुछ भी नहीं था, एवं रह भी नहीं सकता है। जहाँ मैं ब्रह्म हूँ, वहाँ और कोई कुछ भी द्वैतभाव नहीं है। परन्तु वैसा होते हुए भी सब जगत्का विस्तार हमारे भीतरमें ही रहता है। जैसे बटवृक्षके बीजमें पत्र, फूल, फल और छायादि सर्व विस्तार सूक्ष्मरूपसे समाया रहता है, वैसे ही सम्पूर्ण चराचररूप विश्वका विस्तार हमारेमें टिका रहता है। अतः हम सर्वाधिष्ठान ब्रह्म हैं; ऐसा जानलो ! ॥ १ ॥

गुरुमुखः--सद्गुरु कहते हैं--राम = हे ब्रह्मज्ञानी ! अब इस बातका खुलासा करके कहो कि जब तुम मूलकारणरूपमें थे, तब पत्र, फूल, फल और छाया; ये सब कुछ उस समयमें नहीं थे—"बट-बीज न्याय"। ऐसा तुमने अभी कहा। तब उस समय तुम्हारी सेवा-सहायता, रक्षा और सेवन किसने किया ? क्योंकि बट-बीजकी रक्षा और उसमें जलादि डालनेकी सेवा तो मनुष्य लोग अलगसे करते हैं। वैसी तुम्हारी सेवा करनेवाला सेवक और कौन था ? सो इसी बातको खुलासा करके अब मुझे समझाकर कह दो ! ॥ २ ॥

फुरफुर कहेउ मारु सब कोई। झूठेहि झूठा सङ्गति होई ॥३॥
आँधर कहैं सबै हम देखा। तहाँ दिठियार बैठि मुख पेखा ॥४॥

साँच कहौं बिचार के, सब जग मारन धाय ॥ झूठा धोख दृढ़ावहीं, ताको सेवहिं जाय ॥३॥ आँधर कहिये वेदको, कहैं सकल हम देख ॥ दिठियारो कहिये जीवको, बैठि ताहि मुख पेख ॥ ४ ॥

सत्य न्याय-निर्णयसे विचार करके मैं फुर-फुर = सत्य-सत्य ही कहता हूँ— "चैतन्य जीव सत्य है और ब्रह्म, ईश्वरादि माननदी सब मिथ्या है।" ऐसा सुनकर तब तो सब जगत्के अविवेकी मूढ़ बने अन्धे लोग मुझे मारनेको दौड़े चले आते हैं, मारो-मारो ही कहते हैं। दूसरी ओर झूठे गुरुवा लोग झूठा ही ब्रह्म, ईश्वरादि मालिक बताकर भ्रम-धोखेको दृढ़ाते जाते हैं, तब तो अबोध लोग बड़े खुश होकर, जा-जा करके भक्तिपूर्वक उनका सेवा-सत्कार खूब करते हैं। ऐसी झूठे-ही-झूठाकी घनिष्ठ सङ्गति हो रही है ॥३॥ जैसे अन्धा कहता है- सब देश हमने देखा। वहाँ दृष्टिवाला बैठकर उसका मुख देखता हुआ सुनता और उसकी बात सत्य मानता है। तद्वत् आँधर = पारख-दृष्टिहीन चार वेदकी वाणी और वेदवादी गुरुवा लोग अविवेकी पक्के अन्धे होकर कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्वको हमने एक अद्वैत ब्रह्मरूपमें, अथवा विराट् भगवान्के स्वरूपमें देखा वा देख रहे हैं; इसलिए हमको उसी एक परमात्मा-स्वरूपमें सब चराचर समाया हुआ प्रत्यक्ष दीखता है। दिठियार = दृष्टिवाला नरजीवको कहा जाता है। अबोध जीव सब लोग वहीं जा-जाकर उनके पासमें बैठकर, उनके मुख पेखा = देखते रहते हैं। बारम्बार असत्य वाणी सुन-सुनकर उसे विश्वास करके भ्रम-धोखेमें भूल रहे हैं ॥ ४ ॥

यहि विधि कहेउँ मानु जो कोई। जस मुख तस जो हृदया होई॥५॥
कहहिं कबीर हंस मुसकाई। हमरे कहल दुष्ट बहु भाई !॥६॥४२॥

यहि बिधि कहौं समुझाय के, जो कोइ माने लोय ॥ जैसी मुखते नीकरे, अस हृदया उदय होय ॥५॥ कहाँ है सन्तो ! जाहिमें, हंस बँधायो जाय ॥ हमरे कहै यह जगत में, उठत दुष्ट बहु भाय ॥ ६ ॥

"एकमात्र चैतन्य जीवका स्वरूप ही सत्य है और सब मिथ्या हैं।" इस प्रकार यही बात विधिपूर्वक यथार्थ सत्यन्याय-निर्णयको समझाकर सत्य बात ही मैंने कही और कहता हूँ। मेरे सारशब्दको जो कोई जिज्ञासु लोग विचार करके मानेंगे, पारख-बोध प्राप्त होकर उनकी सर्व भ्रम-भूल, धोखा मिट जायगा। जैसा मेरे मुखसे सार-शब्द निकला, जैसा मैंने बीजकमें कहा; वैसा ही भाव समझनेवालेके हृदयमें पारख-बोधका प्रकाश भी अवश्य उदय हो जायगा। अथवा जैसा मुखसे कहा, वैसा ही हृदयमें भी सत्यका धारण होना चाहिए ! मुखसे जैसा शब्द निकलेगा, हृदयमें भी वैसा ही उदय होगा। अथवा हृदयमें जैसा भाव दृढ़ होगा, वैसा ही मुखसे भी शब्द निकलेगा। मुख और हृदयमें एक समान सत्यका धारण जो करेगा, वही मिथ्या भ्रम-जालसे छूटेगा ॥५॥ सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—अबोध, अज्ञानतावश हंस=जीव मुसकाई=हँस-हँसके खूब कठिन भव-बन्धनमें जकड़कर बँधता और बाँधता जा रहा है। हे भाई ! हमारे यथार्थ भेद कहनेपर बहुतसे दुष्ट लोग क्रोधित होकर लड़ने-झगड़ने आ जाते हैं। ऐसे अविचारी बने हैं। ऐसा विपरीत कार्य देख करके मुझे हँसी आ जाती है ॥ ६ ॥

अथवा हे सन्तो ! ब्रह्म, ईश्वरादि मालिक जो माना है, सो वह कहाँ है ? कहीं ढूँढ़नेपर भी नहीं मिलता है। जिस मिथ्या भ्रम-धोखेमें अबोध हंसजीव जाकर खूब जकड़ करके बँध गया और भ्रमिक गुरुवा लोग भी मुस्कराते हुए उसी वाणी-कलपना में अबोध जीवोंको बाँधते जा रहे हैं, वह ब्रह्म-ईश्वरादि कहाँ है ? सत्य वस्तु तो बाहर और कहीं भी नहीं है। इस बातका यथार्थ भेद पारखबोध सत्य निर्णयसे हमारे कहनेपर इस जगत्‌में बहुत-से दुष्ट लोग मिथ्या भावना, पक्षपातसे लड़ने-झगड़नेको भी उठ पड़ते हैं। हे भाई ! उनकी ऐसी विपरीत बुद्धि देख करके मुझे हँसी आती है, इससे मैं मुस्करा देता हूँ। इससे वे और भी चिढ़ जाते हैं। ऐसी उनकी मन्द मति है ॥ ६ ॥ ४२ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ ४३ ॥ ❁ ॥

जिन्ह जिव कीन्ह आपु विश्वासा। नरक गये तेहि नर्कहिं बासा॥१॥
आवत--जात न लागे बारा। काल अहेरी साँझ-सकारा ॥२॥
चौदह विद्या पढ़ि समुझावा। अपने मरणकी खबरि न पावा ॥३॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—अहंब्रह्म कहलाय जिव, जिन्ह कीन्हा विश्वास ॥ ते निश्चय नर्कहि गये, भयो नर्कमें बास ॥१॥ ब्रह्महिं ते जग होत है, जगहीते ब्रह्म होय ॥ साँझ सकारे दृढ़ावहीं; महा नास्ति पद सोय ॥२॥ पढ़िके चौदह विद्या, दीन्ह जगत समुझाय ॥ अपने मरण की खबरी; ब्रह्माहू नहिं पाय ॥३॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर अपने-आप ब्रह्म कहलाकर, अथवा कोई संसारमें विषयासक्त होकर शरीररूप ही अपनेको समझ करके जिन-जिन अबोध जीवोंने वैसे मिथ्या भ्रम-धोखेका खूब दृढ़ विश्वास किया और भी कर रहे हैं, वे सब जड़ाध्यासी बद्ध हो-होकर निश्चयसे नरक-स्थानरूप चार खानि चौरासी योनियोंमें अन्तमें अध्यासवश उलटकर चले गये और उन सबका निवास भी वही नरक-स्थानरूप चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही हुआ और हो रहा है। "नित उतपति नित परलय होई। जाको जगत ब्रह्म कहो भाई ! ॥७॥ विश्वरूप भगवान भयो तब। चौरासी केहि ठाँई ? ॥८॥" क०प०, ११ शब्दके शब्द-२ ॥ अतएव सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक ब्रह्म चौरासी योनियोंसे एवं नरक-स्थानसे पृथक् नहीं होता है ॥१॥ ब्रह्मकी इच्छासे ही जगत् उत्पन्न होता है और पुनः सम्पूर्ण चराचर जगत् मिलनेसे ही एक ब्रह्म भी हो जाता है। इस प्रकार ब्रह्मसे जगत् और जगत्से ब्रह्मरूपमें आते-जाते रहनेमें कुछ देर नहीं लगती है। अथवा मोटी-झीनी मायाके अध्यासवश अध्यासी जीवोंको चौरासी योनियोंमें आवत = जन्म लेकर आनेमें और जात = मरकर जानेमें भी बारा = कुछ देर नहीं लगती है। काल अहेरी=शिकारी कालके समान मुक्ति-पदके विनाशक गुरुवा लोग शिकारी काल बन-बन करके वाणीका तीर मार-मारकर खूब शिकार खेल रहे हैं। साँझ-सबेरे जल्दी-जल्दी जो भ्रमकी वाणी-कल्पना अबोध लोगोंको दृढ़ाते हैं, सो वह ब्रह्म तो भ्रमरूप महा नास्ति पद है। उसी मिथ्या भ्रममें आप भूलकर औरोंको भी भुला रहे हैं; बिना पारख ॥२॥ भ्रमिक गुरुवा लोग चौदह विद्यादि पढ़-पढ़ करके जगत्के अबोध जीवोंको वही अनुमान-कल्पनाकी मिथ्या बातें खूब समझा दिये; परन्तु अपनी स्थिति, गति-मुक्तिका विनाशरूप मरणकी खबरि= पताको तो ब्रह्मादि पण्डितोंने भी कुछ जान नहीं पाया। इसीसे वे सब खानि-वाणी-जालोंमें आप भूलकर अरुझे और सबको भुलाते-भ्रमाते अरुझाते जा रहे हैं; बिना पारख ॥ ३ ॥

जाने जीवको परा अन्देसा। झूठहि आयके कहा सन्देसा ॥४॥
सङ्गति छाड़ि करे असरारा। उबहे मोट नर्क कर भारा ॥५॥

जाने जीवको अन्देश भौ; झूठहि कहा सन्देश ॥ बढ़ो विरह सब जगतमें, उपजे बहुत कलेश ॥४॥ सङ्गत छाड़ि जगत की; करें तर्क ब्यौहार ॥ उबरा चाहै देह यह; मोट नर्ककर भार ॥५॥

जब भ्रमिक गुरुवा लोगोंने आकर वेद-कुरानादि ग्रन्थ पढ़-पढ़ करके सर्वथा झूठा

ही सन्देशा=समाचार, 'ईश्वर-खुदाने ऐसा कहा है' कहकर अपनी मनगढ़न्त बातें बढ़ा-चढ़ाकर खूब कही, तब वैसी वाणीको सुन-सुन करके इस जाने=अनजान, अबोध चैतन्य जीवको भी 'न जाने ईश्वरने ऐसा ही कहा होगा' यह समझकर अन्देशा=भ्रम, संशय, चिन्ता, सोच, दुविधा, भय पक्का हो गया। इसी कारणसे ब्रह्म, ईश्वरादि प्राप्त न होनेसे उसके विरह-वियोगजन्य व्यथा जगत्-जीवोंमें खूब बढ़ी। इससे अनेक साधनाओंको करते-कराते हुए बहुत कष्ट-क्लेश उत्पन्न होता गया। अन्तमें चौरासी योनियोंके अनेक दुःख भी सब जीव भोग ही रहे हैं। झूठे लोगोंने आकर झूठा ही सन्देशा कहा है, यह भेद उन किसीने जान नहीं पाया ॥४॥ सच्चे पारखी सन्तोंकी सत्सङ्गतिको तो अविचारी लोगोंने सर्वथा छोड़ ही दिया। भ्रमिक गुरुवा लोगोंकी कुसङ्गतिमें और स्त्रियोंकी कुसङ्गतिमें खूब अच्छी तरहसे प्रेम-पूर्वक लग गये। असरारा=निरन्तर जगत्-विषयोंके भोग-विलासमें और वाणी-कल्पनामें खूब आसक्त, लिप्त होकर फँसे पड़े हैं। अपने-अपने पक्ष, मिथ्या मानन्दीको परिपुष्ट करके तर्क-वितर्क, खण्डन-मण्डन, विधि-निषेध करनेका जगत्-व्यवहार करते फिर रहे हैं। स्थूल देहकी आसक्ति, काम, क्रोधादि विकारका मोट=गठरी और स्त्री-भोगादि नर्कका भार=बोझा; यही सब विशेष बोझा अपने शिरपर उठा करके सर्वाधिष्ठान ब्रह्म बनकर भवसागरसे उबहै=पार उतर जाना चाहते हैं। परन्तु इस तरह न कोई भवपार उतरा है, न उतरेगा। जड़ाध्यासवश खानि-वाणीकी बीच धारामें डूबकर मरते जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ५ ॥

साखीः—गुरु द्रोही मन्मुखी। नारी पुरुष विचार ॥
ते नर चौरासी भरमिहैं। ज्यों लौं चन्द्र दिवाकार॥४३॥

साखीः—गुरुपद से न्यारे भये, ब्रह्म अस्मि कहाय ॥
ते नर चौरासी भरमिहैं, रैन दिवस के न्याय ॥ ६ ॥

स्वरूप-ज्ञान-प्रकाशक पारख-गुरुसे द्रोह=वैर, द्वेष करनेवाले गुरुद्रोही लोग मनमुखी=जैसे मनमें आवे, वैसे करनेवाले हो गये। वैसे लोग विषयासक्त होकर कोई स्त्री-प्राप्तिका विचार, और कोई पुरुष-प्राप्तिका विचार करने लगे, एक-दूसरेके विषय-भोगोंमें फँसकर पशुवत् व्यर्थ जीवन बिताने लगे। वैसे जीव मनुष्य-जन्मको व्यर्थ बिताकर मरनेपर पशु आदि चौरासी योनियोंमें वासनावश भटकते रहेंगे। जबतक उनका कर्म-संस्कार दुःख भोगनेका रहेगा, तबतक चन्द्र=रात और दिवाकार=दिन दुःख भोगते रहेंगे ॥४३॥ अथवा भ्रमिक मिथ्या पक्षपाती मनुष्य गुरुपदरूप पारख-विचारसे न्यारे=अलग, दूर, विमुख होते हुए गुरुद्रोही बन गये, तब 'अहं ब्रह्मास्मि' कहकर मनमुखी हो गये और दूसरी ओर नारी=अनाड़ी, अज्ञानीजन अपने-आप स्त्रीरूप भक्त बनकर, स्त्री-भाव धारण करके कोई एक परमपुरुषको रिझानेका विचार करने लगे; तब नवधाभक्तिके अनेक स्वाँग धारण कर लिये। और कोई संसारी लोग स्त्री-पुरुषके सम्बन्धसे विषयानन्दको ही विशेष सुख मानकर, वही सोच-विचारकर

ग्रहण करके फँस गये। इस प्रकार अविवेकी भ्रमिक विषयासक्त जड़ाध्यासी बने वे सब नरजीव—जैसे दिनके बाद रात्रि और रात्रिके बाद दिन होता रहता है, वैसे ही रैन-दिवसके न्यायसे वासनावश चौरासी योनियोंमें जाकर छोटी-बड़ी देह धारण करके सदा भ्रमण करते रहेंगे। भव-बन्धनसे वे कभी नहीं छूटेंगे; बिना पारख ॥ ६ ॥ ४३ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४४ ॥ ❀ ॥

कबहुँ न भयउ संग औ साथा। ऐसेहि जन्म गमायउ आछा ॥१॥
बहुरि न पैहो ऐसो थाना। साधु संगति तुम नहिं पहिचाना ॥२॥
अब तोर होइहैं नर्कमहँ बासा। निशिदिन बसेउ लबारके पासा ॥३॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—सङ्ग कियो जो ब्रह्मको, सो कबहुँ न भौ साथ ॥ ऐसेहि जन्म गमायऊ, अच्छो मानुष जात ॥१॥ बहुरि न पैहो देह यह, मानुष उत्तम रूप ॥ साधुन मिलि परखेउ नहीं, खानि बानिको भूप ॥२॥ बिनु परखे तोहि जीयरा, होय नर्कमें बास ॥ निशिदिन भर्महिमाँ बसे, और लबारन पास ॥३॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे जीव! तुमने स्त्री-पुत्रादि संसारके परिवार, धन, घर इत्यादि; इनके सङ्ग-साथमें लगकर व्यर्थ ही जीवन बिताया। परन्तु उनमेंसे कोई कुछ भी अन्तमें तुम्हारे सङ्ग-साथमें लगनेवाले कभी नहीं हुए, तब अब भी तुम्हारे साथमें जानेवाले नहीं होंगे। ऐसा अच्छा मनुष्य-जन्म जीवन-कल्याणकी ओर न लगाकर व्यर्थ ही आयु गमायउ=खो दिया; बिना विचार ॥ १ ॥

अथवा वाणी-कल्पनाका सङ्ग करके जिस ब्रह्मके साथ मिल जाना चाहा था; परन्तु सो ब्रह्म भ्रमरूप होनेसे कभी किसीको मिला भी नहीं और सङ्ग-साथमें भी नहीं हुआ। ऐसे ही व्यर्थकी मिथ्या मानन्दी करते-करते ऐसे उत्तम मनुष्य-जन्मका समय खो दिया। अच्छे मनुष्य-जीवनकी आयु व्यर्थके भ्रम-धोखेमें बीती चली जा रही है। अतः परखकर भ्रम-धोखेको परित्याग करो! ॥१॥ यदि अभी पहलेसे ही सचेत होकर जीवन-सुधार नहीं करोगे, पारखबोध प्राप्त करके अपना स्थिति--ठहराव नहीं करोगे, तब तो मृत्यु हो जानेपर बहुरि=पुनः दुबारा शीघ्र ऐसा उत्तम स्थान मनुष्य-देह तुम नहीं पाओगे। क्योंकि अध्यासवश पशु आदि योनियोंमें दूर चले जाओगे। अतएव जबतक नरदेहमें हो, तबतक पहले ही सच्चे साधुरूप पारखी सन्तोंकी सत्सङ्गतिमें मिलकर विवेक-विचारद्वारा तुमने निज स्वरूप, जो भूप=राजावत् सर्वश्रेष्ठ है, उसको नहीं पहचाना! खानि-वाणीजाल, जो जीवको बन्धनरूप है, उसकी भी परीक्षा नहीं की। मोटी-झीनी मायामें ही आसक्त होकर खूब फँस गया। इस कारण पुनः मुक्तिके द्वाररूप मनुष्य-देह भी तुमको नहीं मिलेगी। समय चूकनेपर भव-बन्धनमें बँधे चौरासी योनियोंके दुःख भोगते वहीं पड़े रहोगे। अतः अभी सम्हल जाओ! ॥२॥ दिन-रात लबार=झूठे गप्पी गुरुवा लोग और स्त्रियाँ; इनके पासमें बैठकर सम्पूर्ण आयु बिता दिया, साधु-गुरुके सत्सङ्गमें नहीं लगा; इसलिए

अब तुम्हारी मृत्यु होनेपर अन्तमें नरक-स्थानरूप चौरासी गर्भमें ही निवास होगा। आवागमनमें पड़े सदा दुःख भोगते ही रहोगे ॥ ३ ॥

अथवा पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें लगकर जड़-चैतन्यके स्वरूप और सत्यासत्यको यथार्थ परखे बिना जड़ाध्यासवश हे जीव ! तुम्हारा अन्तमें नरक-स्थानरूप चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही निवास होगा। क्योंकि दिन-रात तुम ज्ञानी-अज्ञानी बनकर भ्रम-भूल और विषय-भोगोंमें ही निवास किया और लबारन=झूठे गुरुवा लोगोंके पासमें मिथ्या भ्रम-धोखेको दृढ़ करके समय बिताया। इसलिए अब तुम भव-बन्धनसे छूट नहीं सकोगे। अब भी समय रहते ही सचेत हो जाओ ! ॥ ३ ॥

साखीः-जात सबन कहँ देखिया। कहहिं कबीर पुकार ! ॥
चेतवा होय तो चेति ले। नहिंतो दिवस परतु है धार॥४४॥

साखीः—जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार ॥
चेतवा होय तो चेति ले, नहिं तो दिवस परतु है धार ॥ ४ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुकारकर कहते हैं—पारख-स्वरूपका यथार्थ बोध न होनेसे खानि और वाणीजालमें आसक्त हो-होकर भव-बन्धनमें बद्ध हो सबको विनाशकी ओर एवं चौरासीकी ओर ही जाते हुए मैं देख रहा हूँ। अतएव अपना उद्धार, हित-कल्याण चाहनेवाले हे मनुष्यो ! अब तुम्हें यदि चेतना हो तो अभी शीघ्र चेत लो ! यदि समय रहते ही नहीं चेतोगे, तब तो देखो—तुम्हारे ऊपर दिवस=मनुष्य-जन्मके प्रकाशरूप दिनमें ही जबर्दस्त धार=डाका, डाकुओंका आक्रमण आ पड़ता है वा डाका पड़ने ही वाला है। फिर तुम अपनेको कदापि बचा नहीं सकोगे। इसलिए प्रथम ही खानि-वाणीजालसे अपनी सुरक्षा करलो ! ॥ ४ ॥ ४४ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४५ ॥ ❀ ॥

हरणाकुश रावण गौ कंसा। कृष्ण गये सुर नर मुनि बंसा ॥१॥
ब्रह्मा गये मर्म नहिं जाना। बड़ सब गये जे रहल सयाना ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—हरणाकुश रावण गये, कंस गये गोपाल ॥ सुर नर मुनि बंसन सहित, ब्रह्मा गये बेहाल ॥१॥ बड़े-बड़े सबहीं गये, जे रहे बहुत सयान ॥ चौरासी प्राप्ती भई, ब्रह्मसिन्धु सुख मान ॥ २ ॥

गुरुमुखः—पुराणोंके कथनानुसार हिरण्यकशिपु, रावण और कंस; वे अपने-अपने समयके बड़े शूर-वीर लड़ाकू, विजयी दानव-राजे लोग हुए थे, जो अपने बल-पराक्रमके बड़े अहङ्कारमें चूर रहे। अन्तमें वे तीनों भी विष्णु, राम और कृष्णके हाथोंसे मारे गये। गोपालकृष्ण, सुर=देवता, नर=मनुष्य और मुनि=ऋषि-मुनि इत्यादि जितने प्राचीनकालमें हुए, उन किसीको भी निजस्वरूपका यथार्थ पारखबोध प्राप्त नहीं हुआ। खानि-वाणीके जड़ाध्यासमें बद्ध, बेहाल हो-होकर उनके वंशोंके सहित

समयानुसार मरते हुए चौरासीकी ओर आवागमनमें ही चले गये ॥१॥ उसी प्रकार खानि–वाणीके महाजालमें ही अरुझकर बेहाल होते हुए ब्रह्मा भी देह छोड़कर चले गये। पारख-स्वरूपका बोध, यथार्थ मर्म ब्रह्मादिने भी नहीं जाना। बड़े-बड़े पण्डित, योगी, ज्ञानी, भक्त, विज्ञानी इत्यादि; जो बहुत ही सयाना=चतुर, बुद्धिमान् अनुभवी कहानेवाले जितने भी हुए थे, वे सब भी बिना पारख भ्रम–धोखेमें ही आयु बिताकर, मर–मरकर चले गये। सुखके सिन्धु समान कोई एक ब्रह्मको मानकर वे सब भ्रम–धोखेमें भूले। इसीसे अध्यासवश अन्तमें उनको चौरासी योनिका निवास प्राप्त हुआ। पारख-स्वरूपका बोध न होनेसे उन किसीका भव-बन्धन नहीं छूटा ॥ २ ॥

समुझि न परलि रामकी कहानी। निर्बक दूध कि सर्बक पानी ॥३॥
रहिगौ पन्थ थकित भौ पवना। दशों दिशा उजारि भौ गवना ॥४॥

समुझि परी नहिं रामकी, कथनी बढ़ी अपार ॥ न्यारे ब्रह्म बतावहीं, पुनि कहि जगत मंझार ॥३॥ जबहीं श्वासा थकित भौ, रहिगौ पन्थ अपार ॥ देहसे जीव न्यारो भयो, दशहूँ दिशा उजार ॥ ४ ॥

सगुण–निर्गुणरूप रामकी कहानी=काल्पनिक कथाकी वर्णनरूप कथनी बहुत ही बढ़ते–बढ़ते अपार बढ़ी। इसीसे वह राम क्या वस्तु है? कहाँ है? कैसा है? इस बातका भेद तो किसीको कुछ समझ ही नहीं पड़ा। सार मतलब कुछ समझ नहीं आया। खाली वाणी मात्र बढ़ गई। निर्बक=केवल शुद्ध, निर्मल दूध मात्र है कि उसमें सर्बक=सम्पूर्ण श्वेत पानी ही मात्र भरा है? यह भी तो छानबीन करके नहीं देखते। तद्वत् निर्मल दूधवत् शुद्ध चैतन्य जीव तो अपना ही स्वरूप है। अपनेसे भिन्न माने हुए और सब तो मिथ्या वाणी–कल्पनारूप पानी ही मात्र हैं। अथवा वे सब वाणी रमैयारामरूप भ्रमिक जीवके ही मिथ्या कथन हैं। उनको निजस्वरूप समझमें नहीं आया और रामकी कहानी भी नहीं समझा। इसीसे कभी तो ब्रह्मको सबसे न्यारे बतलाते हैं और कभी पुनः उसको जगत्के बीचमें सर्वत्र ओतप्रोत भरा हुआ व्यापक कहते हैं। ऐसे अनसमझके दुविधारूप कथनमें अबोध लोग भूले–भुलाये जा रहे हैं ॥३॥ एक दिन श्वासोच्छ्वासकी चलनगति थकित होकर जब बन्द हुई, तब अगम–अपार माने हुए ब्रह्मज्ञानादिके सम्पूर्ण पन्थ भी जहाँ–के–तहाँ छूटकर दूर पड़े रह गये। स्थूल देह छोड़कर अध्यासी जीव सूक्ष्म देहको लेकर देहसे अलग हो निकल गया, अध्यासवश चौरासी योनियोंमें चला गया। इधर दशद्वाररूप दशों दिशामें उजाड़, खाली सुनसान हो गया। ईश्वरादि भी कोई कुछ नहीं मिले। आवागमनादिका दुःख भी नहीं छूटा ॥ ४ ॥

मीन जाल भौ ई संसारा। लोह कि नाव पषाणको भारा ॥५॥
खेवैं सबै मर्म हम जानी। तैयों कहैं रहे उतरानी ॥६॥

जीव सबै मछरी भये, जारो भौ संसार ॥ धोखे केरी नावरी, मनको गरुवा

भार ॥५॥ खेवै सबै गुरुवा जने, कहैं मर्म हम जान ॥ बूड़त हैं सब भगहिमें, कहैं रहे उतरान ॥ ६ ॥

यह संसार तो मछलीको पकड़नेके जालके समान हुआ। पारखबोध न होनेसे सब उसीमें फँसते जा रहे हैं। ठोस लोहेकी नावमें पत्थरका बोझा भरकर पार ले जाना चाहते हैं; किन्तु बीचमें डूबकर मर जाते हैं। तद्वत् जड़ वाणीकी काली कल्पनासे रामनामकी एक नाव बनाई, पाषाणरूप मनकी मिथ्या मानन्दीका खूब बोझा उसमें लाद दिया। पार होनेकी आशा-ही-आशामें भवसागरके बीचमें डूब मरते हैं; बिना विचार ॥५॥ अथवा सब अबोध जीव मछलीके समान लालची हुए। खानि--वाणीका संशयरूप संसार, यही महाजाल हुआ। उसीमें सब फँस-फँसकर मरते जा रहे हैं। वोहं, सोहं रामनाम स्मरणरूप भ्रम--धोखेकी ही एक नाव बनाई। उसमें मनकी मिथ्या मानन्दीका अतिशय गरुवा भार=बोझा लाद दिया। अब कहो— पार कैसे उतरेंगे? अवश्य भवसागरमें ही डूबकर आवागमनमें पड़े दुःख भोगते रहेंगे ॥५॥ भ्रमिक बने सब गुरुवा लोग वाणी--कल्पनाका उपदेश वा रामनामरूप नाव खेते हुए चलाते हैं। वे कहते हैं—रामनामके स्मरणसे ही तुम लोग अवश्य भवसागरसे पार उतर जाओगे, इसका सब मर्म=भेद हम जानते हैं। वास्तवमें वे सब--के--सब वाणी--कल्पनाके भ्रमके बीचमें और स्त्रीके भग-भोगादिमें ही जाकर अन्तमें डूब मरते हैं, आवागमनमें ही पड़े रहते हैं। तथापि वे झूठे ही कह देते हैं कि तुम लोग पार उतर रहे हो, अवश्य भवपार हो जाओगे, स्वर्गादिमें पहुँचोगे वा परमात्मामें मिल जाओगे। इत्यादि बताकर भ्रम--धोखेमें डाल करके विनाश करते जा रहे हैं ॥ ६ ॥

साखीः—मछरी मुख जस केंचुआ। मुसवन माँह गिरदान ॥
सर्पन माँहिं गहेजुआ। ऐसी जात देखि सबनकीजान॥४५॥

साखीः—देखि बंसिको केंचुआ, मछरी आन बझान ॥ ऐसी फल-श्रुति देखिके, जीव सबै हैरान ॥७॥ रङ्ग देखि गिरदान को, मूसा सब मिलि धाय ॥ फूँकत ही आँखी गई, अस उपदेश सुभाय ॥८॥ गही छछून्दर सर्प मुख, उगलित बनै न खात ॥ ऐसी माया जगत में, गही तजी नहिं जात ॥९॥ देखि सुभग मृगलोचनी, धायो जैसो मूस ॥ छछून्दर देखै सर्प ज्यों, की बंसी ऊपर रूस ॥१०॥

पहला—जैसे लोहेकी बंशीमें केंचुआ कीड़ेको डाला हुआ देख करके, उसका भेद न समझकर मछली अपने-आप खुशी-खुशीसे आकर केंचुए सहित बंशीको लीलकर, उसीमें बझान=फँस जाती है। जैसे मछलीका मुखमें केंचुआ लीलना—स्वयं फँसकर विनाशका कारण हुआ। तद्वत् फलश्रुति देख-सुन करके स्वर्गादि सुख और ईश्वरादि- प्राप्तिकी आशा, लोभ-लालचमें सब अबोध जीव भ्रम-कल्पनाके जालमें फँसकर बहुत हैरान, दुःखी बद्ध हो रहे हैं ॥ ७ ॥

दूसरा—जैसे गिरदान=गिरगिटके गलामें लाल, पीला, नीलादि रङ्ग देख करके भ्रमसे कोई फलादि खाद्य वस्तु समझकर मूसा=सब अबोध चूहे मिल करके उसके पासमें धाय-धायकर दौड़ते चले आये। उनको अपने पास आया देखकर गिरगिटने खूब जोरसे फूँक मार दी। उसके फूँक मारते ही जहरसे चूहोंके नेत्र फूट गये। इसी प्रकार गुरुवा लोगोंके अनेक रङ्गोंके भेष और स्वाँग देखकर चूहेवत अबोध जीव धाय-धायके उनके पासमें पहुँचे, तब कल्पित विषैली वाणीके उपदेशकी फूँक, कान फँक-फूँककर मन्त्रादि सुनाकर उन लोगोंने फूँक मार दी। उसीसे अबोध जीवोंकी विवेक-दृष्टि फूट गई। किन्तु उसीको उन लोगोंने खूब अच्छी भावनासे प्रेमपूर्वक सत्य मान लिया और मानते जा रहे हैं ॥ ८ ॥

तीसरा—सर्पोंके बीचमें भी गहेजुआ=छछून्दर भ्रम-धोखेसे आ पड़ा। जैसा सर्प चूहेको पकड़कर खाता है। कभी चूहेके धोखेमें सर्पने छछून्दरको ही मुखमें पकड़ लिया, तब तो उसकी गन्धसे पता चल गया। अब उसे न तो उगलित=बाहर उगलकर छोड़ते बनता है और न खाते ही बनता है। क्योंकि वैसे ही उसे उगलनेसे सर्पके नेत्र फूट जाते हैं और खानेसे सर्प ही मर जाता है; ऐसा कहा है। ऐसे सङ्कटकी अवस्थामें यदि पासके जलाशयमें सर्प जाकर नेत्रतक डूब करके छछून्दरको छोड़ दे, तब सर्प बच सकता है; ऐसी युक्ति कही है। तद्वत् स्त्री आदि माया-मोहका सङ्ग-साथ भी जगत्में छछून्दर पकड़नेके समान ही सङ्कटग्रस्त करानेवाला है। आसक्त जीवोंसे न उसको छोड़ा जाता है और न पकड़कर ही सदा रक्खा जा सकता है। क्योंकि एकदिन मृत्यु हो जाती है। आसक्तिपूर्वक ग्रहण किये रहनेपर मुक्ति-पदका ही विनाश होता है। बिना समझे छोड़नेपर विवेक-विचार, दृढ़ वैराग्य न होनेसे फिर कहीं जाकर पुनः फँसनेका डर लगा रहता है। यदि सत्सङ्गरूप जलाशयमें विवेक-विचारके नेत्रोंतक खूब डूबकर परिपक्व हो जानेपर, दृढ़ वैराग्यसे गृहस्थी छोड़ देनेपर सब प्रकारसे बचाव हो जाता है ॥ ९ ॥

इसी प्रकार स्त्रीरूप बंशीके ऊपर विषयानन्दरूप केंचुआको लगा देखकर अपने अन्तःकरणरूप मुखसे पकड़कर मछलीवत् सब विषयासक्त जीव फँस करके विनाश हो रहे हैं। दूसरा—गिरगिटके समान सुभग=सुन्दर रूपवाली मृगलोचनी=स्त्रीके सौंदर्यको देखकर विषयासक्त पुरुष चूहेके जैसा ही धाय-धायके उसे पकड़नेके वास्ते दौड़ पड़ा। तब उस स्त्रीने भी विषयकी ऐसी फूँक मारी कि इसके विवेक-विचारके नेत्र ही फूट गये। अन्धा होकर संसार विषयोंमें फँस करके विनाश हो गया। तीसरा—छछून्दरके समान अत्यन्त जहरीली स्त्रीको सर्पके समान अति अहङ्कारी विषयासक्त पुरुषने आनन्द प्राप्त करनेके धोखेमें जाकर पकड़ करके देख लिया, तब महान् सङ्कटग्रस्त हो गया। जीवनभर उसे पकड़ रखनेसे मुक्तिपदका विनाश होता है। आसक्तियुक्त बीचमें छोड़ देनेसे भी विवेक-वैराग्य बिना सदा दुःखी होता रहता है। अतः पारखबोधयुक्त वैराग्यमें परिपक्व होकर छोड़े तो बच सकता है। इस तरह तीनों दृष्टान्तके अनुसार खानि-वाणीमें फँसे अबोध अनजान नरजीव सब लोग विनाशकी ओर ही जा रहे हैं; ऐसा पारख-दृष्टिसे मैंने देखा। ऐसा ही प्रत्यक्ष

देखनेमें आता है। कोई विवेकी जिज्ञासु नरजीव पारखबोध प्राप्त करके ऐसे महा-जालोंसे छूटेंगे ॥ १० ॥ ४५ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४६ ॥ ❀ ॥

बिनसे नाग गरुड़ गलि जाई। बिनसे कपटी औ शत भाई ! ॥१॥
बिनसे पापपुण्य जिन्ह कीन्हा। बिनसे गुण-निर्गुणजिन्ह चीन्हा॥२॥

टीका; गुरुमुख--दोहा—बिनसे नाग गरुड़ गली, कपटी औ शत भाय ॥
पाप--पुण्य बिनसे सबै, जिन्ह गुण-निर्गुण गाय ॥१॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—पुराणोंके कथन अनुसार भक्तरूप शेषनाग और गरुड़ भक्त आदि भी विष्णु आदिकी भक्तिके अहङ्कारमें पारख-स्वरूपके ज्ञान बिना मुक्ति-पदसे विनाश होकर एक-एक दिन मरते गये। उनके मृत शरीर सड़-गल गये। छली-कपटी अनेक राजे लोग, कृष्णजी आदि कूटनितिज्ञ; और सौ भाई दुर्योधन इत्यादि सब-के-सब पारख-स्वरूपके ज्ञान बिना खानि-वाणीजालमें बद्ध हो समयानुसार विनाश हो गये ॥१॥ जिन लोगोंने विशेषरूपसे पाप और पुण्य कर्म किया और कराया, जो पापात्मा और पुण्यात्मा कहलाये,वे सब भी समयानुसार विनाश हो गये। और भी जिन लोगोंने सगुण-उपासनारूप भक्ति, एवं निर्गुण-निराकार ब्रह्मका भाव, चिन्ह पहचाननेके लिए वाणी-कल्पनाको गा-गाकर वर्णन किया, वे सब लोग भी पारखबोध बिना मुक्ति-पदसे विनाश होकर आवागमन-चक्रमें पड़ गये ॥ १ ॥ २ ॥

बिनसे अग्नि--पवन औ पानी। बिनसे सृष्टि कहाँलों गनी ॥३॥
विष्णु लोक बिनसै छिन माहीं। हौं देखा परलयकी छाँहीं ॥४॥

दोहाः—पाँच तत्त्व सब नासे, विष्णु लोक बिनसाय ॥
अहंब्रह्म जो देखिया, सो परलय की छाँय ॥ २ ॥

पञ्च तत्त्वोंके कार्य समयानुसार बनते और बिगड़ते रहते हैं; किन्तु कारणरूप अनादि पञ्च तत्त्वोंका विनाश कभी नहीं होता है। वे नित्य बने रहते हैं। अग्नि= अग्निहोत्री, पवन=श्वासवायुको ऊपर चढ़ानेवाले योगी लोग और पानी=गङ्गा-यमुनादिको देवी मानकर उनकी भाव-भक्ति करनेवाले कर्मी-उपासक लोग एवं अष्ट प्रतिमाकी पूजा करनेवाले पृथ्वीके उपासक लोग, वैसे ही तत्त्ववादी लोग; वे सब भी पारख-स्वरूपके ज्ञान बिना भव-बन्धनमें पड़कर विनाश हो गये। खानिजाल और वाणीजालमें फँसे हुए सम्पूर्ण सृष्टि=संसारके प्राणी स्वरूप-स्थितिके बिना मुक्ति-पदसे एकदम विनाश हुए और हो रहे हैं। अब मैं उन सबके नाम कहाँतक गिनाऊँ ? ॥३॥ एकदिन महाप्रलयका समय आनेपर सब लोक विनाश होते हुए विष्णुलोक भी एकक्षणमें ही विनाश हो जायगा; ऐसा शास्त्रोंमें कहा है। अथवा विष्णु-उपासक लोग सब भी क्षण-क्षणमें ही विनाश हो रहे हैं। मैं ब्रह्म-स्वरूपसे महाप्रलयकी

छायाको देखता हूँ, मेरा विनाश कभी नहीं होता है; ऐसा ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं। परन्तु भ्रम-धोखेमें पड़कर उन सबकी भी मुक्ति-स्थितिका विनाश हो रहा है। सबका विलय करके वाणीकी छायासे 'अहंब्रह्म' बना। उस अहंब्रह्मको भी जो देखा वा देखता है, सो उससे न्यारा ही रहता है। तथापि भ्रम-धोखेसे हंसपदको विनाश करके अबोधजन प्रलयकी छायामें चले जाते हैं। वही मिथ्या मानन्दी, अहङ्कार मुक्ति-पदका विनाशक है। उसे परखकर त्यागो !॥ २ ॥ ४ ॥

साखीः—मच्छरूप माया भई। जबरहिं खेले अहेर ॥
हरि हर ब्रह्मा न ऊबरे। सुर नर मुनि केहि केर ॥४६॥

साखीः—जीवरूप माया भई, गुरुवा बने शिकारि ॥
हरि हर ब्रह्मा बँचे नहीं, सुर नर मुनि कौन बिचारि ! ॥ ३ ॥

मछलीके समान देहधारी अज्ञानी जीवरूपमें माया=गुरुवा लोग और स्त्री; ये भी देह धारण करनेके बाद ही खानि-वाणी सम्बन्धी माया-मोहके जालको विस्तार करके और लोगोंको फँसानेवाली छली-कपटीरूपमें हुई। इसलिए जीवरूपमें ही माया उत्पन्न हुई। फिर भ्रमिक गुरुवा लोग बड़े शिकारी काल बने हैं। स्त्रीरूप माया भी शिकारी काल बनी है। जबरहिं=जबर्दस्ती बलपूर्वक चारों ओरसे घेरा डालकर अबोध जीवोंके ऊपर वाणी-कल्पना और विषयके बाण मार-मारके अहेर=शिकार खेल रहे हैं। वैसे खानि और वाणी, दोनों प्रकारके महाजालसे हरि=विष्णु, हर=महादेव और ब्रह्मा; ये भी भवपार नहीं उतरे वा नहीं बचे, अन्तमें विनाश हुए। तब अन्य सुर, नर, मुनि बेचारे अबोध छोटे लोगोंकी कौन गिनती है ? जो उस जालसे बचेंगे। पारख-स्वरूपका बोध प्राप्त न होनेसे वे कोई भव-बन्धनसे नहीं बचे और बच भी नहीं सकते हैं। अतः पारखबोध प्राप्त करके अपनेको बचाकर अपना उद्धार करो ! ॥ ३ ॥ ४६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४७ ॥ ❀ ॥

जरासिन्धु शिशुपाल सङ्घारा। सहस्राअर्जुन छल सो मारा ॥१॥
बड़ छल रावण सो गौ बीती। लङ्का रहल कञ्चनकी भीती ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—जरासिन्धु शिशुपाल औ, सहस्रार्जुन मरि जाय ॥
बड़ छल रावण बीति गौ, कञ्चन लङ्क रहाय ॥ १ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—राजा जरासन्धकी संहाररूप मृत्यु भीमसेनके हाथोंसे हुई और राजा शिशुपालका मृत्युरूप संहार कृष्णके हाथोंसे हुआ। वैसे ही राजा सहस्रार्जुनको छल-बल-कपटसे परशुरामने फरसासे मार डाला। इत्यादि कथा पुराणोंमें वर्णन किया है ॥१॥ और भी बड़े ही छल-कपट, काम, क्रोध, अहङ्कार-

आदि विकारकी पूर्णतासे रावणका जीवन भी व्यर्थ ही बीत गया। अन्तमें वह भी रामके हाथोंसे मारा गया। कञ्चन=सुवर्णके पालिशयुक्त भीतवाली 'लङ्का' नामक उसकी जो राजधानी रही, वह भी अन्तमें छूट गई, उसका कुछ काम नहीं आई। मृत्यु होनेपर वह सब छोड़कर चौरासीमें चला गया ॥ १ ॥ २ ॥

दुर्योधन अभिमाने गयऊ। पाण्डव केर मर्म नहिं पयऊ ॥३॥
मायाके डिम्भगयल सब राजा। उत्तम मध्यम बाजन बाजा ॥४॥

दुर्योधन अभिमान गये, पाण्डौ गये बिलाय ॥ मर्म न काहू पाइया, अन्त सबै बिनसाय ॥२॥ माया केरी डिम्भमें, गये बड़े पृथ्वोराय ॥ उत्तम मध्यम करनि जो, जाकी जगत सब गाय ॥ ३ ॥

राजा दुर्योधन भी विशेष अभिमानके कारणसे ही महाभारतका युद्ध करनेको चला गया। अन्तमें भीमसेनके गदा-प्रहारसे कमर टूट गयी और उसी कारणसे दुर्योधन गिरकर मर गया। पाण्डवकी शक्तिका मर्म=भेद उसने जान नहीं पाया। उस युद्धमें पाण्डव विजयी हुए। अन्तमें हिमालयमें जाकर पाँचों पाण्डव भी गलकर मर गये। एक-एक करके वे सब विलीन हो गये। ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े बलवान् राजे लोग हुए; परन्तु सत्यासत्य एवं अपने बन्धनका मर्म उन किसीने भी जान नहीं पाया। अन्तमें जड़ाध्यासी बद्ध होकर वे सब विनाश हो चौरासी चक्रमें चले गये ॥२॥३॥ माया=स्त्री, पुत्र, परिवार, धन-सम्पत्ति, राजकार्य एवं अपने बल इत्यादिकी मोह-ममता और डिम्भ=घमण्ड, दम्भ, अभिमान, आडम्बर, छल-कपट इत्यादि विकारोंका विस्तार करके, उसीको ले-लेकर बड़े-बड़े पृथ्वीक राजे-महराजे लोग समयानुसार मरते हुए चौरासी योनियोंमें चले गये। उन लोगोंने अपने जीवनमें जैसा कुछ भी उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ और निकृष्ट कर्म कर गये, उनकी जैसी करनी हुई, वैसा ही वर्णन, गीत गा-गाकर, जगत्के जीव वही सब बाजन=बाजाके रूपमें बयान करके बाजा बजा-बजा करके गाकर औरोंको सुना रहे हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥

छौ चकवे बिति धरणि समाना। एकौ जीव प्रतीत न आना ॥५॥
कहाँलों कहौं अचेतहि गयऊ। चेत-अचेत झगरा एक भयऊ ॥६॥

छौ चकवे सब बीतिके, धरणी माँहि समाय ॥ एकौ जीव प्रतीत नहीं, सबै चले जहँड़ाय ॥४॥ कहाँलों कहौं अचेत ही गये, निर्णय लखे न बनाय ॥ झगरा चेत अचेत एक, जगत रहे अरुझाय ॥ ५ ॥

प्राचीनकालके छौ चकवे=षट् चक्रवर्ती महाराजे-सान्धाता, पृथु, सुहोत्र, नहुष, मरूत और शिवि; इनको बड़े पराक्रमी वर्णन किया है। अथवा इसी रमैनीमें प्रथम कहे हुए जरासन्ध, शिशुपाल, सहस्रार्जुन, रावण, दुर्योधन और पाण्डव; ये छः भी चक्रवर्ती राजे संसारमें प्रसिद्ध हुए। परन्तु वे सब भी समयानुसार आयु पूरी होनेपर

एक-एक दिन मरते हुए बीतकर धरणी = पृथ्वीमें ही समा गये। अपने सत्य चैतन्य पारख-स्वरूपका प्रतीत = ज्ञात, जानकारी, विश्वास उनमेंसे एक जीवको भी नहीं हुआ। मोटे-झीने मायाजालोंमें खूब जकड़के बँधकर, भ्रम-धोखेमें महान् हानि उठाकर मर-मरके चौरासी योनियोंमें ही चले गये। जब बड़े-बड़े राजे लोग मरकर पृथ्वीमें समाये, उनके साथमें कुछ नहीं गया, तब औरोंके साथमें क्या जायगा ? ऐसा सुनते-देखते हुए एक जीवका भी निज सत्य स्वरूपका ज्ञान और विश्वास करनेकी समझ नहीं आती है; बिना विचार ॥४॥५॥ अब मैं कहाँतक कहूँ ? विवेक-विचारसे हीन सब-के-सब अचेत, अज्ञान, गाफिल हो-हो करके ही चले गये। वैसे ही अचेत होते जा रहे हैं। अब वर्त्तमानमें जो हैं, वे लोग भी मेरे सत्यन्याय-निर्णयको अपनी बुद्धिको शुद्ध बनाकर विवेक-विचार करके नहीं लखते हैं। ये लोग भी उसी प्रकार भ्रम-धोखेमें बँधते, हानि उठाते चले जा रहे हैं। इस कारण चेत = चैतन्य, ज्ञानी, चेतनेवाला; और अचेत = जड़, अज्ञानी, न चेतनेवाला; इन दोनोंके बीचमें एक बड़ा भारी झगड़ा-रगड़ा, वाद-विवाद, तकरार, अनबन हो गया और होता ही जा रहा है। बिना विचार सब जगत्‌के जीव अचेत हो-होकर जगत्‌के झगड़ेमें अरुझते-अरुझाते भव-बन्धनकी ओर चले जा रहे हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः—ई माया जग मोहिनी। मोहिन सब जग झारि ॥
हरिचन्द सत्तके कारणे। घर घर सोग बिकाय ॥४७॥

साखीः—ई माया जग मोहिनी, मोहिन सब जग झार ॥
हरिश्चन्द सत्तके कारणे, घर घर सोग बिकाय ॥ ६ ॥

ई माया = काया, स्त्री आदि पञ्च विषय, धन, सम्पत्ति, राजकाज और वेद-शास्त्रादिकी कल्पित वाणी एवं गुरुवा लोग; ये मोटी-झीनी माया, जगत्‌को मोहित करनेवाली मोहिनीने सम्पूर्ण जगत्‌को झारि = समेटकर खूब विमोहित करके अपना वशीभूत कर लिया, उनके बुद्धि-विचार, बल, पराक्रमको विनाश कर दिया। गुरुवा लोगोंकी कल्पित वाणीरूप उसी मायामें मोहित होकर कल्पनासे माने हुए सत्यका पालन करनेके विचारसे राजा हरिश्चन्द्र भ्रमके कारण डोमके हाथोंमें बिककर, घर-घरके शोक-सन्तप्त परिवारोंके लाये हुए मुर्दोंका कर वसूल करनेवाला हुआ। जड़ाध्यासवश अन्तमें चौरासी योनियोंके घर-घरमें जाकर शोक-सन्तापरूप दुःख भोगनेमें भी बिक गया; बिना पारख ॥ ४ ॥ ७ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४८ ॥ ❀ ॥

मानिकपुर कबीर बसेरी। महति सुनी शेखतकि केरी ॥१॥
ऊजै सुनी यवनपुर थाना। झूसी सुनी पीरनको नामा ॥२॥
एकइस पीर लिखें तेहि ठामा। खतमा पढ़ैं पैगम्बर नामा ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—मानिक कहिये मानवो, पूर कहिये ठाम ॥ कबीर कहिये जीवको, बसो औरके धाम ॥१॥ मदति कहिये प्रौढ़ता, शेष कहिये जीव ॥ तकी गुरुवनको कहत है, जो रे तकावत पीव ॥२॥ जेहि पुरकी बातें सुनी, तहवाँ रोपेउ ठाम ॥ झूठहि बातें सुनि सुनी, ले पीरनको नाम ॥३॥ इकइस पीर लिखे तेहि ठामा, करि आपन अनुमान ॥ खतमा पढ़ि पैगम्बर, नाम खलिल को ठान॥४॥

गुरुमुखः—मानिकपुरमें कबीर रहते समय शेखतकीकी मदति = प्रशंसा विशेष-रूपसे सुने ॥१॥ ऊजी और जौनपुर थानामें भी वैसा ही सुने, भूसी स्थानमें पहलेके पीरोंके नाम सुने ॥२॥ उसी मसजिद्के स्थानमें एकइस पीरोंके नाम लिखे हुए देखे। मुसलमानोंके आखिरी पैगम्बर मुहम्मदका नाम लेकर "मुहम्मद रसूलिल्लाह" ऐसा कलमामें पढ़ते हुए उनकी खतमा = खुतबा, प्रशंसा, तारीफ करते हैं ॥ ३ ॥

अथवा सिद्धान्तमें मानी हुई मिथ्या मानन्दीको मानिक कहते हैं। ठौर-ठिकाना, स्थान एवं शहरको 'पुर' कहा जाता है। कायाबीरके रूपमें जो जीव है, उसीको कबीर कहते हैं। ये अबोध जीव अपनी पारख-स्थितिको छोड़कर और ही कल्पनाके धामरूप वाणीके अनुमानमें जाकर बैठ गया, वहीं भ्रम-कल्पनामें ठहर गया ॥१॥ प्रौढ़ता, प्रशंसाको ही मदति कही जाती है। शेख = शेष, बाकी रहनेवाला जीव ही सबसे विशेष है। गुरुवा लोगोंको तकी कहा जाता है। क्योंकि जो वे ऊपर कोई पीव = पिया परमात्मा तुम्हारा मालिक है, ऐसा बताकर भ्रम-धोखेकी कल्पनाको ही तकाते, दिखाते हुए भ्रमाते-भुलाते फँसाते रहते हैं ॥२॥ ऊपर कहीं स्वर्गादि लोक-लोकान्तर हैं, उन स्थानोंमें बहुत सुख प्राप्त होता है; इत्यादि प्रकारसे उस पुरकी बातें सुन-सुन करके, वहीं पहुँचकर चार फल, चार मुक्ति आदि प्राप्तकर परम सुखी होनेका निश्चय करके अबोध लोगोंने दृढ़ कर लिया। इस प्रकार अपने लिए वहाँ ठाम = स्थान रोपन्त कर लिया। परन्तु वैसी भूठी-भूठी बातोंको ही सुन-सुनकर, उसीको सत्य समझ विश्वास करके पीरोंके नाम लेते हुए रटते फिरते हैं ॥३॥ उसी मसजिद्के ठामा = स्थानमें अपनी अनुमान-कल्पना बढ़ा करके पहलेके हो गये एकइस पीरोंके नाम* लिखते हैं। खलिल = खुदाके नामके साथ मुहम्मद पैगम्बरका नाम मिलाकर उनकी प्रशंसा करते हुए कलमा पढ़कर जीव-हत्या करते हैं। खतमा पढ़कर पैगम्बरके नामके साथ खुदाको भी वैसा ठान = दृढ़तासे समझ रहे हैं; बिना विचार ॥ ४ ॥

सुनी बोल मोहि रहा न जाई। देखि मुकर्बा रहा भुलाई ॥४॥
हबी नबी नबीके कामा। जहाँलों अमल सो सबै हरामा ॥५॥

ऐसी बानी सुनिके, मोते रह्यो न जाय ॥ कबर मुकर्बा देखिके, जगमें रहा भुलाय ॥५॥ हबी कहै समुझाय के, सुनो नबीके काम ॥ जहाँलों अमल बतावहीं, सो सब जानु हराम ॥ ६ ॥

---

* इक्कीस पीरोंके नाम भूमिकाके पहले पृष्ठ ८ में देखिये !।

भ्रमिक मुसलमानोंकी ऐसी-ऐसी झूठी वाणी सुन करके मुझसे चुप रहा नहीं जाता है। इस कारण उनके कसर-खोटको यथार्थ परखा करके मैं सत्य-सत्य ही कह देता हूँ—मुकर्बा=मुर्दा गड़ा हुआ जड़ कबरको देख-दिखा करके, उसको गुरु, पीर मानना-मनाना, यह मिथ्या भ्रम-धोखा ही मात्र है। उसीमें जगत्‌के मुसलमान लोग बिना विचार भूल रहे हैं ॥४॥५॥ हबी=हबीब, दोस्त, मित्रवत् मुहम्मदको खुदाके प्रिय मित्ररूपमें नबी=रसूल, पैगम्बर मान लिया है। वे ही हबी-नबी बनकर नबीके कामा=मुसलमान-धर्मके उपदेश करनेका काम करते गये, अपने साथ और भी बहुत से लोगोंको भ्रम-धोखामें खूब भुला दिये। इस कारण जहाँतक उनका अमल=अधिकार, शासन, हुकूमत्‌के प्रभावका नशा पड़ा है, सो सभी हरामा=सत्यज्ञानके नियम विरुद्ध खराब, दूषित, जीवोंको बन्धनरूप होनेसे त्याज्य हैं ॥५॥ अथवा हबी समझाकर कहता है—नबीका काम करनेवाले हे लोगो! सुनो! जहाँतक भी तुम्हारे वाणी-खानिका अमल=नशा, आदत एवं हुकूमत बतलाते हो, सो सबको हराम=खराब, बुरा, पाप वा सुअरके रूपमें त्याज्य ही जानलो! अतः हे जिज्ञासुजनो! उनका सब अमल परखकर, उन्हें हराम जानकर सर्वथा परित्याग ही करदो! ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः—शेष अकर्दी शेष सकर्दी। मानहु बचन हमार ॥
आदि--अन्त औ युग-युग। देखहु दृष्टि पसार ॥४८॥

साखीः—हिन्दू तुरुक दोउ मिलिके, मानहु बचन हमार ॥
आदि--अन्त औ युग--युग, देखहु दृष्टि पसार ॥ ७ ॥

शेष=शेख पैगम्बर मुहम्मदके वंशजोंकी उपाधि और मुसलमानोंके चार वर्गोंमें सबसे पहला वर्ग एवं इस्लामधर्मका श्रेष्ठ आचार्य; शेष अकर्दी=वैसे शेखरूप मुसलमान न बने हुए हिन्दू लोग और शेष सकर्दी=शेखरूप इस्लामधर्मको स्वीकार किये हुए मुसलमान लोग; तुम दोनों भी मिल करके हमारे सत्यन्याय-निर्णयके वचनको मानो! आदिसे अन्ततक वा जन्मसे मरणतक, जगत्‌से ब्रह्मपर्यन्त और युगानुयुगतक चारों ओर विवेक-दृष्टि फैला करके देखो—निज चैतन्य जीवका स्वरूप ही सर्वदा एकमात्र सत्य है। जीवको छोड़कर और कोई ईश्वर, खुदादि कहीं सत्य नहीं ठहरते हैं। वे तो वाणीकी कल्पना मिथ्या भ्रममात्र ही हैं। पारख-दृष्टिसे देखकर सत्यासत्यको जानो! असत्य भ्रमको त्याग करके सत्य स्वरूपमें ही स्थिर हो रहो! ॥ ७ ॥ ४८ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ४९ ॥ ❀ ॥

दरकी बात कहो दरबेसा? बादशाह है कौने भेसा? ॥१॥
कहाँ कूच कहाँ करे मुकामा? मैं तोहि पूछौं मूसलमाना! ॥२॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—दरकी बात दरबेस कहो, अल्लाह को निशान ॥
कहाँ कूच मुकाम कहाँ ?, कहु भाई मूसलमान ॥ १ ॥

गुरुमुख:—सद्‌गुरु कहते हैं—दरबेसा = हे फकीर लोगो ! दरकी बात = तुम्हारे खाश अन्दर सिद्धान्तकी बात, खुदा-प्राप्तिका मार्ग, दरवाजा कौन है ? उस ओरकी बात कहो ! बादशाह = सब दुनियाँका मालिक माने हुए अल्लाह मीयाँका भेषा = भेष, चिन्ह, निशान, आकार-प्रकार कौन-सा है ? ॥१॥ वह तुम्हारा माना हुआ खुदा कहाँसे कूच = चल करके कहाँ जाता-आता है और कहाँ जाकर मुकामा = किस स्थानमें पड़ाव करके रहता है ? उसके पड़ाव करके रहनेका स्थान कहाँ है ? वह कब ? किस रूपमें मिलता है ? वा नहीं मिलता है ? इस बातको तुम जानते हो कि नहीं ? हे मुसलमान भाई ! मैं तुमसे पूछता हूँ । इसका भेद यथार्थ कहो ! ॥ १ ॥ २ ॥

लाल जर्द की नाना बाना ? कौन सुरतिको करो सलामा ? ॥३॥
काजी काज करहु तुम कैसा? घर–घर जबह करावहु भैंसा ॥४॥

लाल जर्दकी नाना वरण, किसको करहु सलाम ? ॥
काजी काज न चीन्हिया, गर कटवाये हराम ॥ २ ॥

और तुम्हारे खुदाका रङ्ग–रूप बिल्कुल लाल है कि जर्द = पीला है ? अथवा नाना रङ्ग मिश्रित उसका बाना = भेष-भूषा बहुत-से रङ्गोंमें है ? उसकी कौनसी सुरति = सूरत, आकृति आकार–प्रकार, कौनसे रूपको देखकर, अपना लक्ष्य लगाकर तुम लोग सलाम करते हो ? सो कहो ! ॥३॥ हे काजी ! तुम लोग न्याय करनेवाले बड़े बन करके भी फिर तुम यह कैसा खराब कार्य, नीच कर्म करते–कराते हो ? मुसलमानोंके घर--घरमें जाकर गाय और भैंसादि जीवित प्राणियोंका जबह = उनका गला काटकर, हत्या करके प्राण ले लेते हो । ऐसी जीव-हत्याका कार्य करते--कराते हो, यह कैसी तुम्हारी कमसमझ है ? ॥४॥ अथवा हे काजी ! तुमने अपना जीवन-कल्याण करनेके खाश कामको तो नहीं पहचाना, उसके विरुद्ध पशुओंका गला काटा और कटवाया । ऐसा हराम = अनुचित, दूषित काम कर रहे हो । इसका फल अवश्य तुम्हें चौरासीमें जाकर बदला देना पड़ेगा ॥ २ ॥ ४ ॥

बकरी–मुरगी किन्ह फुरमाया ? किसके कहे तुम छुरी चलाया॥५॥
दर्द न जानहु पीर कहावहु । बैता पढ़ि--पढ़ि जग भरमावहु॥६॥
कहहिं कबीर एक सैय्यद बोहावै । आप सरीखा जग कबुलावै॥७॥

बकरी मुरगी काटने, किन्ह फुरमाया भाय ? ॥ किसके हुकुम तुम जीव-पर, दीन्हीं छुरी चलाय ? ॥३॥ दर्द न जाने बेपीर सो, जगमें कहावत पीर ॥ बैता पढ़ि-पढ़ि जगतमें, देत भरम जञ्जीर ॥४॥ कहहिं कबीर एक सैय्यद, जगमें करें पुकार ॥ आपन अस सब कबुलावहीं, नाहक करत खुवार ॥ ५ ॥

जब तुम्हारे खुदाका कोई रूप--रेखा ही नहीं है, बेचून--बेनमून माना है, तब बकरी, मुरगी और गाय आदिका गला काटकर, उनकी हत्या करनेको तुम्हें किसने

फुरमाया = किसने आज्ञा दी ? और किसके कहने वा हुकुम देनेसे तुमने उन गरीब पशु, पक्षी आदि जीवोंके गलेमें छुरी चलाकर हत्या कर दी ? सो कहो ! ॥३॥५॥ जैसा अपनेको दुःख होता है, वैसा ही सब प्राणियोंको भी बराबर दुःख होता है। परन्तु अपने समान अन्य पशु, पक्षी आदि प्राणियोंको भी दुःख-दर्द होता है, इस बातको तो तुम लोग नहीं जानते हो, वा जान-बूझकर भी नहीं मानते हो। फिर भी झूठमूठ-में पीर = गुरु कहलाते हो। परन्तु जो औरोंके दुःख-दर्दको नहीं जानता है, वही सरासर बेपीर, क्रूर--कसाई होता है। फिर वह जगत्में नाम-मात्रका पीर कहलानेसे भी बड़ा, श्रेष्ठ हो नहीं सकता है। नीच कर्म करनेसे नीच ही होगा। बैता = कितेब आदिकी कविता, छन्द, दो लाइनका गजल, बैत पढ़--पढ़ करके जगत्के अबोध मनुष्योंको भ्रमाते फिरते हो। उलटी--सीधी बातें बताकर अज्ञानीजनोंको वाणीके भ्रम-जञ्जीरसे बाँधकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते रहते हो ॥४॥६॥ सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब कहते हैं—एक ओर सैय्यद = मुहम्मदके नाती हुसैनके वंशज नेता, सरदार बने हुए लोग आ--आ करके जगत्में औरोंको भी अपने पास बुला--बुला करके, वही भ्रम-कल्पनाकी वाणी बोहावै = पुकार--पुकार करके कहकर सुनाते रहते हैं, आप सरीखा औरोंको भी भ्रमिक बनाकर, वही भ्रम--धोखेकी बात दृढ़ाकर स्वीकार कराके सबको कबुलाते फिरते हैं। इस प्रकार नाहकमें सबका दिमाग खराब करके, नर-जीवन व्यर्थमें बरबाद करा देते हैं; बिना विचार ॥ ५ ॥ ७ ॥

साखीः—दिनको रहत हैं रोजा। राति हनत हैं गाय ॥
यह खून वह बन्दगी। क्योंकर खुशी खुदाय ?॥४९॥

साखीः—दिनको रहत हैं रोजा, राति हनत हैं गाय ॥
यह खून वह बन्दगी, क्योंकर खुशी खुदाय ? ॥ ६ ॥

ये मसलमान लोग अल्लाह वा खुदाको रिझानेके लिए रमजानके महीनेमें दिनभर तो रोजा = व्रत, उपवास रहते हैं और फिर सन्ध्या होते ही रात्रिमें निर्दयतासे गौ-हत्या करते हैं, खूब दुःख देकर गायको मार डालते हैं। अब विचार करो—यह रात्रिके समय जीव-हिंसा करके खून करना, बहाना, गौका प्राण ले लेना; और वह दिन-भरकी बन्दगी = स्तुति,प्रार्थना करना, नमाज पढ़ना; ये दोनों प्रकारसे कितने विपरीत काम हुए। ऐसा विरुद्ध कर्म करनेवालोंसे वह माना हुआ खुदा तो भी कैसे खुश होगा ? कभी नहीं होगा। क्योंकि गायमें बैठा हुआ खुद--खुदाका प्रत्यक्ष इन लोगोंने घात कर डाला। अतः उसका बदला, दण्ड चौरासी योनियोंमें इनको अवश्य देना और भोगना पड़ेगा ॥ ६ ॥ ४९ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५० ॥ ❀ ॥

कहइत मोहि भयल युग चारी। समुझत नाहिं मोर सुत नारी ॥१॥

बंसहि आगि लगि बंसहि जरिया। भरम भूल नर धन्धे परिया ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहा:—कहत--कहावत जगतको, बीति चले युग चारि ॥ समुझत नाहीं जीयरा, भया और की नारि ॥१॥ अग्नि उठत है बाँसते, बाँसहि देत जराय ॥ मनुष्य ही ते भरम भयो, मनुष्य गयो बौराय ॥२॥ भरम भुलाने नर सकल, परे बहु फन्दन माँय ॥

गुरुमुख:—सद्गुरु कहते हैं—खानि और वाणीमें विमोहित जगत्-जीवोंको अनेक प्रकारकी वाणी-कल्पना कहते-सुनते, कथन करते-कराते, वही औरोंसे कहलवाते हुए इसी प्रकार भ्रम--धोखेमें ही उनके चार युग, चार पन और चार पहर बीतते चले गये और जा ही रहे हैं; तथापि अबतक भी ये अबोध भ्रमिक जीव सत्यासत्य, सारासारको कुछ भी नहीं समझ रहे हैं। भ्रम--धोखेमें पड़कर और ही कोई ईश्वर, खुदादिको मालिक, पति मानकर, उसकी प्रेयसी, नारी बनकर भक्त लोग स्त्री-भावसे भक्ति करते--कराते मिथ्या धोखेमें भूल रहे हैं; बिना विचार ॥१॥ अथवा बारह वर्षके एक युगके प्रमाणसे चार युगके रूपमें अठचालीस वर्षतक कहते-समझाते हुए इतना समय मेरा भी व्यतीत हो गया, तब भी संसारी अविचारी लोग—मेरी स्त्री, मेरे पुत्र, मेरे धन-घर कहते हुए ऐसे मिथ्या मोहमें भूले पड़े हैं और भेषधारी लोग नारी = वाणीकी मोह--ममतासे उत्पन्न सुत = देवी - देवता, ईश्वरादिको मानकर—'हे मेरे इष्टदेव !' ऐसा कहते हुए मिथ्या धोखेमें भूले पड़े हैं। इस कारण मेरे पारखबोध देनेपर भी ये लोग कुछ नहीं समझते हैं ॥१॥ जैसे बाँसकी झाड़ीमें परस्पर रगड़ होनेसे कभी एकाएक अग्नि जल उठती है। वह अग्नि पुन: उसी बाँसकी झाड़ीको जला भी देती है। तद्वत् मनुष्यके पूर्वज मूलवंशसे ही भ्रम--कल्पनाकी वाणीकी अग्नि और विषय--वासनाकी अग्नि उत्पन्न हुई। पुन: उसी अग्निमें सब अबोध, अविचारी मनुष्य भ्रमिक एवं विषयासक्त हो--होकर, पागल बनकर विनाश होते गये ॥२॥ इस प्रकार खानि-वाणीके भ्रममें ही धोखेसे सम्पूर्ण नरजीव भूलते गये। अतएव अनेक प्रकारके महान् जालोंमें फँसते, बँधते चले गये। फिर अनेक कर्म करनेके धन्धोंमें राजी होकर लग गये। उसी धन्धामें पड़कर अपनी आयुको व्यर्थ बिताते हुए अब भी सब लोग भव-बन्धनकी ओर ही बँधते जा रहे हैं ॥ २ ॥

हस्ति के फन्दे हस्ती रहई। मृगाके फन्दे मृगा रहई ॥३॥
लोहे लोह जस काटु सयाना। त्रियाके तत्त्व त्रिया पहिचाना ॥४॥

जैसे हस्तीके फन्दते; हस्ती जाय फँदाय ॥३॥ मृगसे मृगको फाँदहीं, लोहे लोह कट जाय ॥ कुटनिन से त्रिया फँदे, अस जग फन्दी जाय ॥ ४ ॥

जैसे पालतू हाथीके फन्दे = घेरा, जाल, धोखासे जङ्गली हाथी आकर फँस जाता है। इसी प्रकार उसे फँसाकर पकड़ा जाता है। वैसे ही पालतू मृगको ले जाकर जङ्गली मृगको भी फँसाया जाता है। अपने स्वजातीयको देखकर जङ्गली हाथी और

मृग स्वयं ही आकर मनुष्योंके जालमें धोखासे फँसकर बँध जाते हैं ॥

तद्वत् अपने स्वजातीय मनुष्योंके हस्तलिखित वेद-शास्त्रोंकी वाणी--कल्पनामें और अपने हाथसे विवाह करके लाई हुई स्त्रीके विषय-जालमें एवं पशु-स्वभाववाले मन-मृगके इच्छा--वासनारूपी जालमें सब अबोध मनुष्य स्वयं ही खुशीसे फँसकर भव-बन्धनमें जकड़े पड़े हैं; बिना विवेक ॥३॥ जैसे हथकड़ी, वेड़ीरूप लोहा वा अन्य लोहेको भी घन-छेनीके लोहेसे चतुर लोग काट डालते हैं और स्त्रीके तत्त्वको स्त्री ही जानती है। इसीसे कुटनी स्त्रियोंसे लोभ-लालच दे-देकर फुसलाने, बहकानेसे अन्य अनसमझ चरित्रहीन स्त्रियाँ फँसानेसे फँस भी जाती हैं। तद्वत् भ्रमिक अज्ञानीके महाअज्ञानमें पड़कर अन्य अज्ञानी लोगोंका बुद्धि-विचार भी कटकर विनाश हो जाता है। विषयी त्रिगुणी मनुष्य एवं योगी, ज्ञानी, भक्तोंकी मिथ्या भावनाके तत्त्वरूप मतलबको वे ही भ्रमसे पहचानकर दृढ़ किये रहते हैं। उनके द्वारा इसी प्रकार सब जगत्‌के अबोध जीव एक-से-एक फँसाते-फँसते, भुलाते-भूलते भव-बन्धनकी ओर ही अग्रसर होते चले जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ४ ॥

साखीः—नारि रचन्ते पुरुषा। पुरुष रचन्ते नार ॥
पुरुषहि पुरुषा जो रचे। ते बिरले संसार ॥ ५० ॥

मायामुख-साखीः—नारि रचै जस पुरुषको, पुरुष रचै जस नार ॥
पारब्रह्म में जो रचै, ते बिरले संसार ॥ ५ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—जैसे विषयासक्त स्त्री अपने सुख-भोगके लिए विषयी पुरुषको चाहती है, इस कारण सर्वदा उसीका चिन्तन करती रहती है। इसी प्रकार विषयासक्त पुरुष भी सदाकाल स्त्री-प्राप्तिका ही चिन्तन-मनन करता रहता है। इस तरह जगत्‌का बन्धन परस्पर बँधा हुआ है। ऐसा बन्धन तो सम्पूर्ण संसारमें लगा ही हुआ है। परन्तु परब्रह्म परमात्मा, वही एकमात्र परमपुरुष सबके घट-घटमें परिपूर्णरूपसे व्यापक है। एकमात्र उसी परमात्माका नित्य-निरन्तर चिन्तन-मनन जो करता रहता है, वह अन्तमें ब्रह्म-स्वरूपमें मिलकर मुक्त हो जाता है। वैसा ब्रह्म-चिन्तन करनेवाले संसारमें कोई बिरले ही महात्मा होते हैं ॥ ५ ॥ ५० ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ ५१ ॥ ❁ ॥

जाकर नाम अकहुवा रे भाई! ताकर काह रमैनी गाई? ॥१॥
कहैं तातपर्य एक ऐसा। जस पन्थी बोहित चढ़ि बैसा ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—जाकर नाम अकह अहै, सो कस गाया जाय? ॥
गुरुवन ऐसो दृढ़ाइया, जस पन्थी जहाज चढ़ाय ॥१॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे भाई! जिसका नाम और रूप भी कुछ नहीं है, जिसे अकहुवा = वचनसे कुछ भी कहा न जा सके, मन-बुद्धिसे भी परे अकह ब्रह्म-

परमात्मा कहते हैं; फिर उसकी रमैनी=उसमें रमकर मन, बुद्धि और वाणीद्वारा स्तुति, महात्म्य, विशेषता वर्णन करके सो कैसे गाया जा सकता है ? परन्तु अब तुम लोग उसीमें रमकर उसकी महिमा, विशेषताकी रमैनी वर्णन करते जा रहे हो, सो कैसे और क्या कहकर गा रहे हो ? वाणीसे परे बताकर फिर वाणीद्वारा ही उसे क्या ? कैसे वर्णन करते जा रहे हो ? कुछ तो विचार करो ! ॥१॥ ऐसा प्रश्न सुनकर गुरुवा लोगोंने एक ऐसा तात्पर्य=अभिप्राय, मतलब मिथ्या बात कहकर अबोध जीवोंको दृढ़ा दिया कि जैसे कहीं परदेश जानेवाले पन्थी=पथिक लोग समुद्रमें वा बड़ी नदियोंमें बोहित=जहाजमें चढ़कर बैठ जाते हैं। जब उनको जहाजमें चढ़ाकर बैठा देते हैं, तब वही जहाज धीरे-धीरे जलमार्गसे आगे बढ़ता हुआ आरामसे गन्तव्य स्थानरूप उस पार वा दूसरे देशमें पहुँचा देता है। वैसा ही रामनामके स्मरणरूप जहाजमें दृढ़तासे बैठ जानेपर वह पन्थीरूप भक्तोंको भवसागरसे पार उतार करके परमपदमें पहुँचा देता है। उन भक्तोंको और कुछ भी उपाय करना नहीं पड़ता है। इस प्रकार भवपार उतरनेके लिए रामनामका स्मरण एक सरल एवं दृढ़ आधार है। इत्यादि मिथ्या महिमा बताकर भ्रम-धोखेमें डालते, फँसाते जा रहे हैं॥ १ ॥ २ ॥

है कछु रहनि-गहनि की बाता। बैठा रहै चला पुनि जाता ॥३॥
रहै बदन नहिं स्वाँग सुभाऊ। मन अस्थिर नहिं बोलै काहू ॥४॥

मायामुख —है कछु रहनि गहनि की, बात कहौं समुझाय ॥ राम कहै बैठा रहै, चला सो बैकुण्ठ जाय ॥२॥ राम नाम मुखसे कहै, धरे न स्वाङ्ग सुभाव ॥ मन स्थिर नामहिं रखे, बचन न बोलै काव ॥ ३ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—रामनाममें अनन्य निष्ठावन्त प्रेमी भक्तोंकी रहनि=नाम-स्मरणको धारण करके ठहरे रहनेकी स्थिति और गहनि=भगवान्के भक्ति-भावको दृढ़तासे ग्रहण करनेकी खाश बात तो कुछ और ही है। इस बातको अब मैं तुम्हें समझाकर कहता हूँ; सुनो—वह बात यह है कि दिन-रात मन और मुखमें "राम-राम, हरि-हरि" कहते हुए नाम-स्मरण करके चाहे वह एक जगह भी बैठा रहे; तथापि अन्तमें तो वह भक्त निश्चय ही सीधे बैकुण्ठरूप परमधाममें ही चला जाता है। बीचमें कहीं वह नहीं रुकेगा। जैसे जहाजमें बैठनेवाला बैठा रहे वा सोता रहे, फिर भी वह तो उस पार ही पहुँच जाता है। तद्वत् भक्त रामनाम-स्मरण करके चाहे कहीं बैठा रहे, चलता रहे, सोता रहे या चाहे कुछ भी करता रहे; अन्तमें तो भगवान्के पास ही चला जाता है। [इत्यादि रोचक वाणी सुनाकर भ्रमा-भुला रहे हैं]॥२॥३॥ अनन्य निष्ठावन्त भक्तजन मुखसे सदा-सर्वदा रामनामको उच्चारण करते हुए राम-राम कहते रहते हैं, अपने शरीरमें बाहर कोई कुछ भी बनावटी स्वाँग, आडम्बरका स्वभाव, ढोंग, तमाशाका चिन्ह धारण नहीं करते। उनका स्वभाव बहुत ही नम्र-कोमल भगवत्-भक्ति-परायण होता है। हरिनामके स्मरणमें ही अपने

मनको सदा स्थिर किये रहते हैं। भगवान्‌की स्मृतिको छोड़कर अन्यत्र कहीं मनको जाने नहीं देते हैं। इस कारणसे चाहे कोई निन्दा-स्तुति कुछ भी करे, किसीसे भी वचनसे कुछ नहीं बोलते। सदा संसारसे मौन हो रहते हैं। [इत्यादि भक्तोंका लक्षण गुरुवा लोगोंने बताया।] ॥ ३ ॥ ४ ॥

साखीः—तन राता मन जात है। मन राता तन जाय ॥
तन मन एकै होय रहै। तब हंस कबीर कहाय ॥५१॥

साखीः—जहाँ तन राता तहाँ मन गयो, मन राता तन जाय ॥
तन मन एकै होय रहै, तब जिव ब्रह्म कहाय ॥ ४ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं-जहाँपर स्थूल शरीरकी दशों इन्द्रियाँ रत होकर स्वाभाविक रीतिसे लग जाती हैं, वहींपर मन भी स्वयमेव शीघ्रतासे चला जाता है। इसी प्रकार जहाँ पञ्च विषय-भोगोंमें एवं भगवान्‌के भक्ति-भाव आदिमें प्रथम मन राता=अनुरक्त होकर प्रेम-प्रीतिसे लग जाता है, वहींपर सम्पूर्ण इन्द्रियोंके सहित स्थूल शरीर भी अपने-आप चला जाता है। तन और मनका घनिष्ठ सम्बन्ध लगा हुआ है। जिस ओर एक जायगा, उसी ओर दूसरा भी चला जाता है। अतएव ब्रह्मज्ञानकी साधनासे जब जिस समय स्थूल तन और सूक्ष्म मन, दोनों भी एकाकार होकर एक अद्वैत ब्रह्ममें ही लवलीन हो रहते हैं, तब उस समय कबीर=यह जीव अपने-आप ही परिपूर्ण ब्रह्म-स्वरूप होकर परमहंस कहलाता है। द्वैतभ्रान्तिसे होने-वाले सर्व भव-बन्धन उसके मिट जाते हैं। [इत्यादि बतलाकर गुरुवा लोग स्वयं भी वाणीके भ्रम-बन्धनमें पड़े हैं, औरोंको भी भुलाकर उसी भ्रमजालमें फँसा रहे हैं। बिना पारख भव-बन्धनसे कोई छूट नहीं पाते हैं] ॥ ४ ॥ ५१ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५२ ॥ ❀ ॥

जेहि कारण शिव अजहुँ वियोगी। अङ्ग विभूति लाय भौ योगी ॥१॥
शेष सहस्र मुख पार न पावै। सो अब खसम सही समुझावै ॥२॥

टीका; गुरुमुख—दोहाः-जासे अजहुँ बियोग शिव, शेष पार नहिं पाय ॥
सोई खसम अब सत्य कही, गुरुवन दीन्ह दृढ़ाय ॥ १ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—कोई एक परमतत्त्व परमात्माको अनुमानसे मानकर, जिसकी प्राप्तिके लिए जिस कारणसे शिवजी और ब्रह्मादि भी वियोगी= विरही हुए, जिससे शिवजी अपने सर्वाङ्गमें विभूति=राख वा भस्म लगाकर योगी हुए, तपस्या करके ध्यान-समाधि लगाये; उसी कारणसे ब्रह्म-परमात्मा और शिवकी प्राप्ति करनेके लिए शिवगण, वर्त्तमानके योगी, संन्यासी, शैवमार्गी आदि लोग अजहुँ—अभीतक विशेष विरह-वियोगी बनकर वे सब भी अपने सर्वाङ्गमें विभूतिरूप राख

लगा करके योगी बनकर ध्यान-धारणा, समाधि लगाने और तपस्या आदि करनेमें लग रहे हैं ॥१॥ कल्पनासे माने हुए भक्त शेषनाग वा सहस्र मुखवाले बाकीके भक्त लोग भी सामूहिक सहस्र मुखसे रामनामका स्मरण एवं भगवानका गुण गाते हुए जिनका पार उन किसीने भी नहीं पाया, सो वे ही सबके खसम=मालिक परम-पति सर्वशक्तिमान् सत्य हैं—अब ऐसा कह-कह करके वही कल्पित बात गुरुवा लोगोंने सबको समझाकर दृढ़ा दिया वा दृढ़ा रहे हैं; बिना विचार ॥ १ ॥ २ ॥

ऐसी विधि जो मोकहँ ध्यावै । छठये माँह दरश सो पावै ॥३॥
कौनेहु भाव देखाई देहों । गुप्तहि रहों सुभाव सब लेहों ॥४॥

ब्रह्ममुखः—जैसी बिधि वेदन कही, ऐसे जो मोहिं ध्याय ॥ सो नर अपने मनहिंमें, दर्श हमारो पाय ॥२॥ कवनेउ भावसे ताहिको, देउँ देखाई जाव ॥ निशिदिन ताके सङ्ग रहों,,जानों तासु सुभाव ॥ ३ ॥

ब्रह्ममुखः—ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं—वेदोंने ब्रह्मज्ञानकी साधनाकी विधि जैसी कही है, ऐसी ही विधिसे जो मनुष्य मुझ अद्वैत ब्रह्मको ध्यावै=ध्यान, खोज-तलाश करता है, उसी प्रयत्नमें लगा रहता है, वह साधक नरजीव अवश्य छठयें=अपने मनमें ही पाँच तत्त्वमें सर्वत्र भरा हुआ मुझ अद्वैत ब्रह्मका साक्षात् दर्शन पा जायगा। ब्रह्माकार वृत्ति होनेसे वह सबमें एक ब्रह्मको ही देखेगा। इस प्रकार उसको हमारा अपूर्व दर्शन मिल जायगा ॥२॥३॥ किसी प्रकार कोई भावसे भी जाकर मैं उसको साक्षात् प्रकटरूपमें दर्शन देकर ब्रह्म-स्वरूप दिखला दूँगा। जैसी उसकी इच्छा होगी, यदि साकाररूपमें दर्शन करना चाहेगा, तो उसी रूपमें दर्शन दे दूँगा। मैं तो दिन-रात उसीके सङ्ग साथ हृदयमें ही गुप्तरूपसे टिका रहता हूँ। उसके सब गुण-स्वभाव एवं आन्तरिक भावको अच्छी तरहसे जानता ही रहता हूँ। अतएव उसकी योग्यता होने-पर मैं अपने-आप कृपा करके उसे दर्शन दे देता हूँ। [इत्यादि भ्रमका कथन वर्णन करके भुला रहे हैं] ॥ ३ ॥ ४ ॥

साखीः-कहहिं कबीर पुकारि के। सबका उहै विचार ॥
कहा हमार मानै नहीं। कैसे छूटे भ्रम जार ? ॥५२॥

गुरुमुख-साखीः—कहहिं कबीर पुकारि के, सबका उहै बिचार ॥
कहा हमार मानै नहीं, कैसे छूटे भ्रम जार ? ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुकारकर कहते हैं—वाणी-कल्पनामें भूले हुए योगी, ज्ञानी, भक्तादि भ्रमिक लोग—उन सबका वही ब्रह्म-ईश्वरादिको सत्य बतलाकर भ्रम-धोखेका ही विचार परिपक्व हो रहा है। चैतन्य जीवका स्वरूप ही सत्य है, उसके ऊपर कोई कर्त्ता नहीं है—ऐसे यथार्थ निर्णय वचन, हमारे कहे हुए पारखबोधको वे अविचारी लोग कोई नहीं मानते हैं। तब कहो—उनकी भ्रम-भूल,

बन्धनका जार=जाल, पर-पुरुषका प्रेमरूप विनाशक धोखा, भव-बन्धन कैसे छूटेगा ? बिना पारख जीवोंका भ्रम-बन्धन कभी छूट नहीं सकता है। अतः परखकर भ्रम--धोखेको परित्याग करो ! ॥ ४ ॥ ५२ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५३ ॥ ❀ ॥

महादेव मुनि अन्त न पाया । उमा सहित उन जन्म गमाया ॥१॥
उनहूँ ते सिद्ध–साधक होई । मन निश्चय कहु कैसे कोई ? ॥२॥
जबलग तनमें आहै सोई । तबलग चेति न देखै कोई ॥३॥

टीका; गुरुमुख–दोहाः—महादेव औ मुनि सकल, उनहू अन्त न पाय ॥
उमा सहित उन आपनो, खोजत जन्म गमाय ॥१॥ उनहीं ते सिद्ध साधक भये,
कस मन अस्थिर होय ? ॥ जबलग जोव तनमें अहै, चेति न देखै कोय ॥२॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—योगियोंके आदिगुरु महादेव और उनके समकालीन समस्त ऋषि--मुनि लोगोंने भी योग-साधना, तपस्या, ध्यान-समाधि, कर्म, उपासना इत्यादि अनेक उपाय कर--करके ब्रह्म, ईश्वर कर्त्ताकी खोज--तलाश तो बहुत की; परन्तु अपने जीवनके अन्ततक भी उन किसीने ब्रह्मका अन्त, ओर-छोर पता कुछ भी जान नहीं पाया। उमा=पार्वतीदेवीके सहित महादेवने अनेक उपायसे खोजते हुए भी ब्रह्मका पता नहीं पाया। अतः स्त्री-विषय-भोग और वाणीकी भ्रम--कल्पनामें ही उसने अपना मनुष्य-जन्म व्यर्थ गमाया=खो दिया; बिना पारख ॥१॥ उन महादेवादि त्रिदेवसे ही दीक्षा--शिक्षा लेकर उनके चेले, सम्प्रदायके अनुयायी बननेवाले पश्चात् क्रमशः अनेक साधक और सिद्ध लोग बहुतसे होते गये। उन सबके मनमें वही अनुमान--कल्पनासे कोई एक ब्रह्म, ईश्वर है; ऐसा दृढ़ निश्चय हुआ। परन्तु मनकी चञ्चलतारूप भ्रम-बन्धन किसीका भी नहीं मिटा। अब कहो—जब प्रथमके गुरुवा-लोगोंका ही मन स्थिर, शान्त, निश्चल नहीं हुआ, भव-बन्धन नहीं छूटा, तब पश्चात्-वाले उनके चेले लोगोंका मन निश्चल, स्थिर कोई कैसे ? किस प्रकारसे होगा ? कभी नहीं होगा। बिना पारख वे सब भव-बन्धनमें बँध गये और भी बँधते जा रहे हैं ॥२॥ जबतक शरीरमें सोई=चैतन्य जीवका आहै=निवास है, तबतक तो सचेत हो करके जड़--चैतन्य, सार--असार, बन्धन-मुक्ति इत्यादिको परीक्षा-दृष्टिसे विवेक करके कोई नहीं देखते हैं, भ्रम-दृष्टिसे देखकर सब अचेत ही होते जा रहे हैं। वास्तवमें चैतन्य जीवका पारख-स्वरूप ही सत्य है। ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या मानन्दी, वाणी--कल्पना सब असत्य है; ऐसा यथार्थ परखकर निज स्वरूपमें स्थिर होओ ! ॥ २ ॥ ३ ॥

तब चेति हो जब तजिहो प्राना । भया अयान तब मन पछताना ॥४॥
इतना सुनत निकट चलि आई । मनका विकार न छूटै भाई ! ॥५॥

प्राण जाय तन छोड़के, तब चेतहुगे भाय ! ॥ भये अज्ञानी मानुषा, फिर मनमें पछताय ॥३॥ इतनो सुनत हैं जगत सब, मौत निकट चलि आय ॥ मन विकार छूटैं नहीं, अनबनि यतन नसाय ॥ ४ ॥

हे अबोध मनुष्यो ! अभी नहीं चेतोगे, तो जब प्राण छोड़ोगे, शरीरसे जीव निकल जायगा, फिर क्या तब चेतोगे ? उस समय तो कुछ भी हो नहीं सकता है। पहलेसे ही सोच-विचार, सुधार तो कुछ करते ही नहीं। सब मनुष्य अयान=अज्ञानी भ्रमिक बने हुए हैं। अन्तमें मृत्युके समय दुःखी होकर तब पुनः मनमें पछताने, व्याकुल होने, तड़फने लगते हैं। परन्तु उस समय कुछ भी बन नहीं सकता है ॥३॥४॥ इतनी बातको तो जगत्में सब लोग सुनते ही चले आते हैं कि आयु पूर्ण होनेपर एक-एक दिन सबकी मृत्यु होगी, वृद्ध होनेपर दिनोंदिन मृत्यु होनेका समय निकट होते चला आता है, अपनी भी मृत्यु निकटमें चली आ रही है। तथापि मनका विकार=लोभ, काम, क्रोध, मोहादि विषय-वासना, भ्रम-भूल, वाणीकी कल्पना, मिथ्या मानन्दीका विकार बिना पारख हे भाई ! किसीका भी नहीं छूटता है, कभी छूटा भी नहीं। व्यर्थकी अनेक साधनाओंके यतन कर-करके सब विनाशकी ओर चले जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ४ ॥ ५ ॥

साखीः—तीन लोक मुवा कौवायके। छूटि न काहुकि आस ॥
एकै अन्धरे जग खाया। सबका भया निपात ॥५३॥

साखीः—तिहुँ लोक मुवा पुकारि के, छूटि न काहु की आस ॥
एक धोखेने सब खाया, जगका भया निपात ॥ ५ ॥

इस प्रकार तीन लोक=त्रिगुणी मनुष्य और योगी, ज्ञानी. भक्त लोग—कोई एक ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा है; ऐसा मानकर उसी मिथ्या भ्रम धोखेसे कौवायके=भौंचक्का हो, उसीका पुकारा, स्तुति, प्रार्थनादि कर-करके मुवा=जड़ाध्यासी बद्ध होकर मरते गये और वैसे ही सब लोग मरते जा रहे हैं। उन किसीका भी मिथ्या आशा-भरोसा, तृष्णादि विकार, आसक्ति, भव-बन्धन नहीं छूटा। एक ही अन्धरे=अन्धा, अन्धकार-रूप ब्रह्मके भ्रम-धोखेने सब जगत्के जीवोंको भ्रमा-भुलाकर सबके बुद्धि-विवेकादि-को खा लिया। उसीसे उन सबका निपात=विनाश, मुक्ति-पदका पतन हो गया। अध्यासवश आवागमनके दुःखभोगी हुए और हो रहे हैं ॥ ५ ॥ ५३ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५४ ॥ ❀ ॥

मरिगौ ब्रह्मा काशिको बासी। शीव सहित मूये अविनासी ॥१॥
मथुराको मरिगौ कृष्ण गोवारा। मरि-मरि गये दशों अवतारा ॥२॥
मरि-मरि गये भक्ति जिन्ह ठानी। सर्गुणमा निर्गुण जिन्ह आनी ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—मरिगौ ब्रह्मा देह धरी, शिव मूये अभिमान ॥ मथुराके कृष्णहु मुये, दश अवतार मरे जान ॥१॥ जिन्ह बहुबिधि भक्ती करी, सोऊ मरे निदान ॥ मरे सोउ जिन्ह सगुणमें, निर्गुण कियो बखान ॥ २ ।

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—बाह्य काशीपुरी और देहरूप काशीका निवासी मनुष्य-देहधारी ब्रह्मा भी आयु पूर्ण होनेपर जड़ाध्यासी बद्ध होकर उसी समय मर गया। अबतक बहुत-से ब्रह्मा जन्म ले--लेकर मरते गये और योगाभ्यासादि साधनासे वाणी--कल्पनाका अभिमान लेनेवाले, 'अहं ब्रह्मास्मि' कहनेवाले शिवजीके सहित अमर-अविनाशी नामधारी सर्व देवगण भी जड़ाध्यासी बद्ध होकर समयानुसार मरते चले गये। प्रथम तो कोई अविनाशी ब्रह्मको मानकर मूये=भ्रमिक जड़ाध्यासी हो मुक्ति-पदसे मरे, फिर देह छोड़कर आवागमन-चक्रमें चले गये; बिना पारख ॥१॥ प्रथम मथुराके निवासी, पश्चात् द्वारिकावासी गोपाल कृष्णजी भी खानि और वाणीमें लिप्त जड़ाध्यासी बद्ध होकर अन्तमें प्रभासक्षेत्रमें जाकर 'जरा' व्याधाका बाण पैरमें लगनेके कारणसे मर गये। इसी प्रकार समयानुसार एक--एक करके दशों अवतार माने गये अवतारी लोग भी सब मरते गये, अभ्यासवश आवागमन-चक्रमें पड़ गये। उन किसीने भी पारख-स्वरूपको नहीं जाना ॥१॥२॥ जिन लोगोंने बहुत प्रकारसे भ्रमिक हो अनुमान--कल्पनाको लेकर कोई एक ईश्वर-खुदा मालिक, इष्ट देवता ठानी= मानन्दीसे स्थापित करके दृढ़ सङ्कल्पसे अनुष्ठानकर विधिपूर्वक नवधाभक्तिकी भावना की, अन्तमें वे सब भी एक-एक दिन मर--मरके जड़ाध्यासवश आवागमन-चक्रमें चले गये। और जिन लोगोंने सगुण देहमें रहकर कोई एक निर्गुण ब्रह्मकी कल्पना आनी= ले आई और वर्णन किया; अथवा सगुण भगवान् और निर्गुण परमात्माका भक्ति-भाव जिन लोगोंने संसारमें ले आया, बिना पारख वे सब भी जड़ाध्यासी बद्ध हो--होकर अन्तमें मर-मर करके चौरासी योनियोंमें ही चले गये और वैसे ही चले जा रहे हैं ॥२॥३॥

साखीः—नाथ मछन्दर बाँचे नहीं। गोरख दत्त औ व्यास॥
कहहिं कबीर पुकारि के। ई सब परे कालकी फाँस ॥५४॥

साखीः—नाथ मछन्दर बाँचे नहीं, गोरख दत्त औ व्यास ।
कहहिं कबीर पुकारि के, ई सब परे कालकी फाँस ।। ३ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेव पुकार करके कहते हैं—निज पारख-स्वरूपका अपरोक्ष बोध, स्थिति–ठहराव प्राप्त न होनेसे योगी मत्स्येन्द्रनाथ संसारके स्त्री विषयादि भोग और वाणी–कल्पनासे भी नहीं बचे। गोरखनाथ और दत्तात्रेयादि त्यागी–वैराग्यवान् हुए; परन्तु पारख-स्वरूपका बोध न होनेसे वाणी–कल्पनाके भ्रम-धोखेमें ही बँधे पड़े रहे। और 'व्यास' नामक पण्डित खानि–वाणी दोनों जालोंमें खूब फँसे रहे। इस प्रकार जड़ाध्यासयुक्त भव-बन्धनोंसे मत्स्येन्द्रनाथ, गोरखनाथ, दत्तात्रेय और वेदव्यास इत्यादि कोई भी नहीं बचे। ये सब लोग काल=मनकी तरङ्ग, वाणीकी भ्रम–कल्पना,

जगत् धोखेके फाँस = महाजालोंमें ही जा-जाकर जीवनभर फँसे पड़े रहे। मोटी-झीनी मायाके जालोंमें अरुझकर जड़ाध्यासी बद्ध हो एक-एक दिन समयानुसार वे सब मरते चले गये। पारख-स्वरूपका बोध, मुक्ति-स्थिति उन किसीकी भी नहीं हुई। इसीसे वे कोई भव-बन्धनसे नहीं छूटे, आवागमनसे नहीं बचे ॥ ३ ॥ ५४ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५५ ॥ ❀ ॥

गये राम औ गये लछमना। सङ्ग न गई सीता ऐसी धना! ॥१॥
जात कौरवे लागु न बारा। गये भोज जिन्ह साजल धारा ॥२॥
गये पाण्डव कुन्ता ऐसी रानी। गये सहदेव जिनबुद्धि मति ठानी ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—राम और लक्ष्मण गये, गये कौरव अरु भोज ॥
कुन्ती पाण्डव सब गये, गये सहदेव न खोज ॥ १ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—जीवन पर्यन्त खानि-वाणीमें आसक्त, बद्ध होते रहनेके उपरान्त आयु पूर्ण होनेपर एक दिन राजा रामचन्द्र और उनके छोटे भाई लक्ष्मण, दोनों भी क्रमशः सरयु नदीमें प्रवेश करके देह त्यागकर चले गये! उस समय रामके सङ्ग-साथमें सीता ऐसी धना = धर्मपत्नी युवती, जो रामको अत्यन्त प्रिय थी, अन्तमें रामके साथमें नहीं गई। क्योंकि रामचन्द्रके सम्मुख पहले ही सीता देह छोड़कर पृथ्वीमें समा गई थी; इत्यादि वर्णन किया है ॥१॥ दुर्योधनादि सम्पूर्ण कौरवोंको महाभारतके युद्धमें लड़-भिड़कर मारे जाकर विनाश होनेमें बारा = कोई देर नहीं लगी। उसी समय सब कौरवोंका विनाश हो गया। और जिस विद्वान् राजा भोजने 'धारा' नामक नगरी, राजधानीके रूपमें बसाकर खूब सजायी थी, वह भी एक दिन मरकर चले गये। वे सब जड़ाध्यासवश आवागमन-चक्रमें पड़ते गये ॥२॥ महाभारतके युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाले युधिष्ठिरादि पाँचों पाण्डव लोग भी अन्तमें हिमालयमें जाकर एक-एक करके गलकर मर गये। पाण्डवोंकी माता कुन्तीदेवी ऐसी बुद्धिमति सुन्दरी रानी भी अन्तमें वनमें तपस्या करते समय दावानलमें जलकर मर गई। मति-बुद्धिमें प्रवीण, जिसने वैद्यक और ज्यौतिषादि विद्या ठानी = स्थापित किया था, ऐसा विद्वान् बुद्धिमान् सहदेव भी एक दिन शरीर छोड़कर चला गया। उन सबकी खोज-तलाश करनेपर भी अब कोई कहीं नहीं मिलता। जड़ाध्यासवश वे सब आवागमन-चक्रमें पड़ते चले गये; बिना पारख ॥ १ ॥ ३ ॥

सर्व सोनेकी लङ्का उठाई। चलत बार कछु सङ्ग न लाई ॥४॥
जाकर कुरिया अन्तरिक्ष छाई। सो हरिचन्द देखल नहिं जाई ॥५॥
मूरख मनुसा बहुत सञ्जोई। अपने मरे और लग रोई ॥६॥

सोनेकी लङ्का गई, रावण मरि मिलि धूर ॥ चलत बार कछु ना गई,

करनी दुःख भरपूर ॥२॥ रावण औ हरिश्चन्द गये, मूरख तृष्णा बढ़ाय ॥ अपनेहू मरि जायगा, रोवै औरको धाय ॥ ३ ॥

रावणने अपने बल-पराक्रमसे सर्व देशके राजाओंके पासके सर्व सुवर्णोंको लङ्का देशमें उठा लाया था। उसीसे सर्व सोनेकी लङ्का उठाई थी; ऐसा कहा जाता है। परन्तु एक दिन मर करके चले जाते समय उसके सङ्ग-साथमें कुछ कौड़ी मात्र भी न लगी। सोनेकी लङ्का भी यहीं छूट गई। रावण मर करके अन्तमें धूलमें मिल गया। चलते समय यहाँकी कोई वस्तु उसके साथमें नहीं गई। कर्मानुसार चौरासी योनियों-में जाकर खूब दुःख ही भोगते रहना पड़ा। ॥२॥४॥ जिसके पुण्य-प्रतापसे अन्तरिक्ष= ऊपर आकाशके कल्पित स्वर्गादि स्थानमें कुरिया=झोपड़ी, मकान सहित बाग-बगीचा आदि तैयार होकर स्वर्गतक जिसका सुयश छा गया था; ऐसा दानी सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र हुआ। इत्यादि पुराणोंमें वर्णन किया है। परन्तु सो वैसा हरिश्चन्द्र राजा भी आज कहीं देखा नहीं जाता है। इस प्रकार रावण और हरिश्चन्द्र भी उसी समय मर करके आवागमनमें चले गये। आज कहीं वे दिखाई नहीं देते हैं ॥५॥ पहलेवाले सब मर गये, अब भी एक-एक करके सब मरते जा रहे हैं; ऐसा देखते-सुनते हुए भी अब बिल्कुल निपट मूर्ख बने हुए मनुष्य लोग मनमाने इच्छा-वासना, आशा-तृष्णा लोभ-लालचादि विकारोंको बहुत-बहुत ही सञोई=साथमें बढ़ाते चले जा रहे हैं। इसीसे धन-सम्पत्ति आदि पदार्थ भी खूब ज्यादा ही बढ़ाकर एकत्र सञ्चय कर रहे हैं। एक दिन हम अपने भी मर जायेंगे, हमारा भी शरीर छूट जायगा, सब कुछ यहीं छोड़कर हमको अकेले जाना पड़ेगा—इस बातकी ओर तो वे कुछ ध्यान ही नहीं देते, सोच-विचार ही नहीं करते; किन्तु धाय-धायकर औरोंके लिए रोते, हाय-हाय करते जाते हैं और दूसरे परिवारोंके लिए ही रोते हुए अपने-आप मर जाते। अन्तमें वासना-वश चौरासी योनियोंमें पड़े दुःख भोगते रहते हैं ॥ ३ ॥ ६ ॥

ई न जानै अपनेउ मरि जैबे। टका दश बिढ़ै और ले खैबे ॥७॥

ई नहिं जानै बावरा, आपनहूँ मरे जाय ॥
टका दश बिरह लगाय के, औरन को ले खाय ॥ ४ ॥

ये अविचारी लोग इस बातको निश्चय करके नहीं जानते हैं कि हम अपने भी एक दिन अवश्य मर ही जायेंगे, हमारा शरीर छूटनेमें भी कोई देर नहीं लगेगी। परन्तु अभी तो हम बहुत दिनोंतक जीते रहेंगे वा कभी नहीं मरेंगे; ऐसी मिथ्या दुराशा-में पड़कर, (दो पैसेका एक टका होता है, दश टकेमें बीस पैसे होते हैं) इस प्रकार रोज दश टकेकी कमाई बिढ़ै=बढ़ती जायगी। उतना सञ्चय करते जायेंगे, तो उसीको लेकर और भी अच्छे-अच्छे स्वादिष्ट पदार्थ खाते जायेंगे; ऐसी झूठी आशामें बँधे पड़े हैं॥

अथवा मुख्य दश टकामें—स्त्री, पुत्र, धन, घर, परिवार और मीन, मांस, मैथुन, मदिरा, मुद्रा—इन दशको और भी बढ़ाकर खूब सुख भोगेंगे; ऐसी दुर्वासनामें भूले बँधे पड़े हैं ॥७॥ अथवा ये पागलवत् बने हुए अविचारी लोग इस बातको तो

नहीं जानते हैं कि हमारी भी मृत्यु होगी, तब अपना भी शरीर अवश्य ही छूट जायगा। परन्तु दश टकावाला विरह; जैसे—स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य, कर्म, उपासना, योग, ज्ञान और विज्ञान; इनके भीतर स्नान, सन्ध्या, पूजा, पाठ, जप, तप, व्रत, उपवास, होम और तीर्थाटन करके ईश्वरादि-प्राप्तिका विशेष विरह लगाकर और विशेष सुखको प्राप्तकर, उसे लेकर खायेंगे; ऐसे मिथ्या आशा-भरोसाको ले-देकर और अबोध लोगोंके बुद्धि-विचार, धनादिको भी लूटकर भ्रमा-भुलाके ले-लेकर खाते जा रहे हैं। बिना विचार धोखेमें बँधे पड़े हैं ॥ ४ ॥ ७ ॥

साखीः—अपनी—अपनी करि गये। लागि न काहु के साथ॥
अपनी करि गये रावणा। अपनी दशरथ नाथ ॥५५॥

साखीः—अपनी अपनी करि गये, लागि न काहु के साथ ॥
अपनी करि गये रावणा, अपनी दशरथ नाथ ॥ ५ ॥

पूर्व कर्मानुसार नरदेह धारण करके सब जीव अपने-अपने बुद्धि-विचार, समझ अनुसार शुभाशुभ कर्म, हित-अहित, बुराई-भलाई जीवनभर कर-करके, उनके सूक्ष्म संस्कार अपने-अपने अन्तःकरणमें टिकाकर आयु पूर्ण होनेपर एक-एक दिन मर-मरके चले गये, तब यहाँके तन, धन, जनादि सब छूट गये। उन किसीके साथमें भी कोई चीज पीछे लगकर नहीं गई। रावण भी अपनी बुद्धिसे अपने लिए ही खराब कर्म करके मर गये और दशरथनाथ=रामचन्द्र भी अपनी समझ अनुसार यथोचित गृहस्थ-धर्मको पालन करके अपने लिए ही शुभाशुभ कर्म कर गये। आज उन दोनोंके यश और अपयश संसारमें कहने-सुननेके लिए प्रचलित हो रहे हैं। अतः शुभ सत्कर्म करके सुयशके भागी बनो ! ॥ ५ ॥ ५५ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५६ ॥ ❀ ॥

दिन-दिन जरै जलनीके पाँऊ। गाड़े जाय न उमँगे काहू ॥१॥
कन्धन देई मस्खरी करई। कहुधौं कौन भाँति निस्तरई ?॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—मृगनैनीके पाँवमें, अग्निकुण्ड एक आय ॥ ये जियरा अज्ञान होय, दिन-दिन जरे तहाँ जाय ॥१॥ गड़ो जात है भगहिमें, उमँगत कोऊ नाहिं ॥ जहवाँ ते उपज्यो जगत्, पैठत तेहि घर माहिं॥२॥ नारी है जग मोहिनी, दै आलिङ्गन धाहि ॥ करै मस्खरी बहुत बिधि, कहु जिव कैसे निबाहि ? ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—विषयासक्त पुरुष लोग रोज-रोज जलनी=बुद्धिको जलानेवाली स्त्रीके पासमें जाकर, भोग-विलासमें लिप्त होकर जलते रहते हैं, दलदलवत् उसीके भोगोंमें गड़ते जाते हैं। वे कोई भी उमँगे=उससे बाहर निकल नहीं पाते हैं ॥ १ ॥

अथवा मृगनैनीरूप स्त्रीके दोनों पैर, जङ्घाके पासमें नरककी अग्निरूप एक भयङ्कर अग्निकुण्ड धधकता रहता है। ये जीव विषयासक्त अज्ञानी होकर, वहीं जा-जाकर दिनोंदिन जलता रहता है ॥१॥ भग-भोगसें ही खूब धँसकर गड़ता जाता है। बोध-वैराग्यसे हीन कोई उससे अलग होकर बाहर निकलके पार उतर नहीं रहे हैं। यह जगत्-जीव जहाँसे देह धारण करके उत्पन्न हुआ था, उसी घररूप योनि-स्थान गर्भवासमें पुनः अज्ञानतासे प्रवेश करता जा रहा है। इस कारण आवागमन-चक्रसे कभी छूट नहीं पाता है ॥२॥ सुन्दरी युवती स्त्री ही जगमोहिनी बनी है। विषयासक्त पुरुष स्वयमेव धाय-धाय करके स्त्रीको कन्धन देई = आलिङ्गन कर देता है और बहुत प्रकारसे मस्खरी = हँसी-मजाक, दिल्लगी, छेड़छाड़ करता रहता है। "नर्क-कीट न्याय" खूब फँसा पड़ा है। अब कहो तो भला ! किस प्रकारसे ऐसे जीवका निस्तार, छुटकारा, गति-मुक्ति होगी ? जीवन-कल्याणका निर्वाह उससे कैसे होगा ? कभी नहीं होगा ॥ २ ॥ ३ ॥

अकर्म करै औ कर्मको धावै। पढ़ि गुनि वेद जगत समुझावै ॥३॥
छूँछे परै अकारथ जाई। कहहिं कबीर चित चेतहु भाई !॥४॥५६॥

अकर्म निशिदिन करत है, औ पुनि कर्महि धाय ॥ पढ़ि-गुनि वेद जगत-को, कर्महि देत दृढ़ाय ॥४॥ नरतन छूँछो परत है, जात अकारथ भाय ॥ जस ऊखहिते रस परत है, होत परहथा जाय ॥५॥ कहहिं कबीर चित चेतहू, बहुबिधि कहौं बुझाय ॥ यह कामिनी ते बाँचहू, नहिं तो यमपुर जाय ॥ ६ ॥ ५६ ॥

अकर्म = बुरा काम, पाप कर्म, अन्याय, अनीति, अनाचार; ऐसे कर्म तो दिन-रात करते फिरते हैं और पुनः ईश्वरादि-प्राप्तिके आशा-भरोसासे जप, पूजा, पाठ, होम, हवनादि अनेक प्रकारके कर्म करने-करानेके लिए भी धाय-धायके दौड़ते चले जाते हैं। ब्राह्मण पण्डितादि गुरुवा लोग चार वेद, षट् शास्त्रादिको पढ़-गुन करके जगत्-के अबोध नरजीवोंको अनेक कर्म करते रहनेके लिए ही दृढ़ा-दृढ़ाकर समझाते रहते हैं। इस प्रकार कर्म-जालमें आप बँधकर औरोंको भी बाँधते जा रहे हैं ॥३॥४॥ परन्तु जीवन-कल्याणकी ओरसे छूँछे = खाली निस्सार पड़ गये। मनुष्य-जीवन अकारथ = व्यर्थमें चला गया। इसलिए सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं कि हे भाई ! तुम अब भी अपने चित्तमें चेत करो ! सत्सङ्गमें लगकर अपने जीवन-कल्याणके मार्गमें लगो ! ॥४॥ अथवा इस प्रकार कुसङ्गतिसे अकर्ममें लगकर ऐसी उत्तम मनुष्य-देह खाली, निस्सार, निकम्मी पड़ती जा रही है। अकारथ = व्यर्थमें ही आयु बीतती चली जा रही है। जैसे ऊख पेरनेसे ही रस निकाला जाता है, रस निकल जानेपर छिलके अलग फेंक दिये जाते हैं। वैसे ही पराये हाथोंमें जाकर अबोध जीव भी खूब पेरे जाते हैं। उनकी आयु, बुद्धि-विचाररूप रस व्यर्थमें निकल जाता है, तब जीव अनेक प्रकारसे दुर्दशाग्रस्त होकर दुःख भोगता रहता है ॥५॥ सद्गुरु कहते हैं—हे नरजीव ! अब भी समय रहते ही तुम अपने चित्तमें चेतो ! मैं तुम्हें बहुत प्रकारसे समझा-बुझा-

कर कहता हूँ। इस कामिनी = स्त्रीकी विषयासक्ति, मोह-ममता, संसर्गसे अपने-आपको बचाओ ! उससे दूर बचे रहो ! यदि अभी सचेत होकर अपनेको नहीं बचाओगे, तबतो निश्चयसे समझ लो कि तुम्हारा जीव विषयाध्यासवश अन्तमें यमपुर=चौरासी योनियों-के गर्भवासमें अवश्य ही चला जायगा। अतएव पहलेसे ही स्त्रीके सङ्ग-साथको सर्वथा त्याग करके शुद्ध ब्रह्मचर्यको पालनकर बोध-वैराग्य संयुक्त अपना जीवन-कल्याण करो ! ॥ ६ ॥ ५६ ॥

॥ * ॥ रमैनी ॥ ५७ ॥ * ॥

कृतिया सूत्र लोक एक अहई। लाख पचास की आयू कहई ॥१॥
विद्या वेद पढ़े पुनि सोई। बचन कहत परतक्षै होई ॥२॥
पैठी बात विद्याकी पेटा। वाहुक भरम भया संकेता ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—बानीके अनुमानसे, कहैं लोक एक आहि ॥ लाख पचासकी आयुष; तहाँ कहै समुझाहि ॥१॥ पुनि पुनि विद्या वेद पढ़ि, सोइ कही समुझाय ॥ अन्त होय परतक्ष ही, कहि कहि बचन भुलाय ॥२॥ ऐसी वेद की बात जब, पैठी हृदयमें आय ॥ वाहूको बहु भ्रम भयो, बड़ संकेत बनाय ॥३॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—कृतिया=कृत्रिम, नकली, बनावटी कल्पित वाणी-रूप सूत्रके अनुमानसे अपना वासनारूप सूत्र फैलाकर गुरुवा लोग कहते हैं कि सबसे ऊपर एक ऐसा दिव्य लोक है, जहाँ पहुँचनेपर पचास लाख वर्षोंकी आयुतक स्वर्गीय सुख-भोग इच्छानुसार मिलता रहता है। ऐसी रोचक वाणीसे मिथ्या महिमा वर्णन-कर कर्म, भक्ति आदि करते रहनेको दृढ़ाकर समझाते हैं ॥१॥ वेदादि विद्या पढ़नेवाले पण्डित लोग भी पुनः वैसे ही रोचक वचन कहते हैं कि वेद-प्रमाणसे चलनेपर अन्तमें ईश्वर एवं ब्रह्मलोकादिका सुख प्रत्यक्ष होता है ॥२॥ अथवा पुनः पुनः चौदह विद्याएँ और चार वेदोंको पढ़-पढ़ करके वे ही मिथ्या कपोल कल्पित बातें खूब कहकर औरोंको समझाते हैं। वेद-शास्त्रादिमें कहे अनुसार नियमपूर्वक साधनाएँ करते जाओ ! अन्तमें शास्त्रोंमें कही सब बातें तुम्हें भी प्रत्यक्ष ही हो जायेंगी; इत्यादि झूठ ही वचन कह-कहकर अबोध लोगोंको भुलाते जा रहे हैं ॥२॥ पूर्व कहे अनुसार ऐसी ऐसी रोचक वाणी, वेद और विद्याओंकी कल्पित बातें जब अबोध मनुष्योंके पेटा = हृदयमें आ करके प्रविष्ट हुई, तब वही खूब दृढ़ होकर बैठ गई। जिस-जिसने ऐसी बात सुनी, उन सबको गुरुवा लोगोंके संकेत = इशारासे बड़ा संशयग्रस्त बनाया। इस कारण उनको बहुत भ्रम-संशय उत्पन्न होकर दृढ़ हो गया। अर्थात् वाणीके इशारेसे भ्रम दृढ़ होकर अबोध जीव भव-बन्धनमें पड़ गये; बिना पारख ॥ ३ ॥

साखीः-खग खोजन को तुम परे। पाछे अगम अपार ॥
बिन परचै कस जानि हो ? कबीर झूठा है हङ्कार ॥५७॥

साखीः—ब्रह्म खोजन को तुम परे, गुरुवन कहा अपार ॥
परिचय बिना कस जानिहो ?, झूठा सकल बिचार ॥ ४ ॥

खग=आकाशमें गमन करनेवाले पक्षीवत् हृदयाकाशमें उड़नेवाले मन-पक्षीकी मिथ्या मानन्दीसे महाकाशके समान निर्गुण-निराकार ब्रह्म-परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक मानकर, उसकी खोज करनेके लिए तुम लोग भ्रम-धोखेके पीछे पड़े हो। आगेके और पाछे=पश्चात्के भ्रमिक गुरुवा लोगोंने ब्रह्मको अगम=गममें न आनेवाला, अपार=पार न मिलनेवाला, अथाह, बेअन्त कह दिया। पारखबोधसे पूर्ण परिचय=जानकारी, पहचान हुए बिना सत्यासत्य, जड़-चैतन्य, सारासारको हे भाई ! तुम कैसे जान सकोगे ? कबीर=अबोध जीव एवं भ्रमिक गुरुवा लोगोंका सम्पूर्ण अहङ्कार और ब्रह्म, ईश्वरादिका सारा विचार, यह सब सरासर झूठा ही है। उसे परखकर परित्याग करो ! निज पारख-पदमें स्थिर हो रहो ! ॥ ४ ॥ ५७ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५८ ॥ ❀ ॥

तैं सुत मान हमारी सेवा। तोकहँ राज देउँ हो देवा ! ॥१॥

टीका; मायामुख-दोहाः—अरे पुत्र ! तैं मानि ले, हमरी सेवा बनाय ॥
अठारह बरनका राज तोही, देहौं युक्ति बताय ॥१॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—सुत=अरे पुत्र ! वा हे शिष्य ! तुम हमारे वचनको मानलो ! हमारी सेवा-चाकरी करके अपना काम बनालो ! यदि अच्छी तरहसे सेवा करके हमको प्रसन्न करोगे, तब तो तुमको हम अठारह प्रकारके ब्राह्मण वर्णोंका राज्य-शासन चलानेकी युक्ति बता देंगे; जिससे महान् सुख तुमको प्राप्त होगा। फिर तुम सबसे पूज्य देवताके समान हो जाओगे; इत्यादि ॥ १ ॥

अगम-दुगम गढ़ देउँ छुड़ाई। औरों बात सुनहु कछु आई ॥२॥
उतपति परलय देउँ देखाई। करहु राज सुख बिलसो जाई ॥३॥
एकौ बार न होइ हैं बाँको। बहुरि जन्म न होइ हैं ताको ॥४॥

अगम कहैं अदृष्ट को, दुगम कहिये जो दृष्ट ॥ दोनों धोख छुड़ाय के, तोहि लखावहुँ सृष्ट ॥२॥ औरों बात सुनहु कछू, तोहि कहौं समुझाय ॥ उत्पति प्रलयहु वृद्धि सब, तोकहँ देहुँ लखाय ॥३॥ करहु राज तिहुँ लोकको, बिलसहु सब सुख आय ॥ एकौ बार न होइ है बाँको, बहुरि जन्म नहिं पाय ॥ ४ ॥

गुरुवा लोग बता रहे हैं—अगम=बुद्धिसे परे, जो गममें न आनेवाला और दुगम=दृष्टिगोचर; ये दोनों द्वैतभावका गढ़=कीला जो भ्रम है, मैं तुम्हारा भ्रम छुड़ा देता हूँ। और भी बाकी कुछ बातें मेरे पासमें आकर सुनो! "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति ॥" जो अद्वैत ब्रह्म है, सो तुम ही हो। ऐसा निश्चय करके सुखी हो जाओ ! ॥ २ ॥

अथवा अदृष्ट वा अदृश्य निराकारको अगम कहते हैं और जो दृष्ट वा दृश्य है, वैसे साकारको दृगम कहा जाता है। उन दोनों धोखेके गढ़को छुड़ा करके तुमको सर्व सृष्टिमें परिपूर्ण व्यापक एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य लखा देता हूँ ॥२॥ हमारे पासमें आ करके और भी कुछ खास सिद्धान्तकी बातें सुनलो ! तुमको समझा करके मैं कहता हूँ—"तत्त्वमसि ।" वह ब्रह्म तू ही है। इस महावाक्यको दृढ़ निश्चय करलो ! ॥२॥ आदिमें जगतकी उत्पत्ति, मध्यमें वृद्धि और अन्तमें उन सबका प्रलय; ये भी सर्वाधिष्ठान एक ब्रह्ममें उसकी इच्छासे मायाद्वारा होते हैं, ऐसा मैं तुमको लखाता वा दिखा देता हूँ। एक अद्वैत ब्रह्म-स्वरूपसे मैं तीन लोकका राज्य करता हूँ। तुम भी हमारे पास आकर ब्रह्म-स्वरूपमें मिल करके परमानन्दरूप सर्व सुखका उपभोग वा विलास करो ! इस प्रकार तीन लोकके राज्यका भोग-विलास तुम भी करो ! ॥३॥ ब्रह्म-स्वरूपमें समरस होनेपर एकबार भी कभी उनकी वृत्ति विचलित नहीं होगी। फिर उनके एक बाल वा रोम-मात्रको भी कोई टेढ़ा नहीं कर सकेगा। सर्वाधिष्ठान ब्रह्म-स्वरूपमें मिल जानेपर फिर उनका जन्म भी नहीं होगा। आवागमनका दुःख भी वे नहीं पायेंगे ॥४॥

जाय पाप सुख होइ हैं घना। निश्चय बचन कबीरके माना ॥५॥

जाय पाप सब देह को, होइ हैं सुक्ख अपार ॥
ब्रह्म वाक्य अरु वेदको, जो जानत निरधार ॥ ५ ॥

अद्वैत ब्रह्म-निष्ठा दृढ़ होनेपर तब तो उसके तन-मनादिके सब पाप, ताप, दोष, विकार एकदम सदाके लिए छूट जायेंगे। फिर उसे घना=अत्यधिक सच्चिदानन्द घन परमानन्दका अपार सुख प्राप्त हो जायगा। कबीर=ब्रह्मनिष्ठ गुरुके वचन=महावाक्य और वेदके वचनको जो निरधार=निश्चय करके जानता और मानता है, वह स्वयं ब्रह्मरूप होकर सुखसागरमें मिल जाता है; इत्यादि ॥ ५ ॥

साखीः—साधु-सन्त तेई जना। जिन्ह मानल बचन हमार ॥
आदि-अन्त उत्पति प्रलय। देखहु दृष्टि पसार ॥५८॥

साखीः—साधु-सन्त तेई जना, जिन्ह मानल बचन हमार ॥
आदि-अन्त उतपति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥ ६ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—जिन लोगोंने हमारे वेद-वेदान्तके वचनको निश्चय करके मान लिया है, वे ही हमारे अनुयायी साधु-सन्त और भक्तजन अच्छे एवं सच्चे हैं। आदिमें उत्पन्न जगत् अन्तमें ब्रह्ममें ही मिल जाता है। जगत्का उत्पत्ति-प्रलय होता है; परन्तु ब्रह्म सर्वाधिष्ठानरूपसे ज्यों-का-त्यों रहता है। इसलिए आदिसे अन्त, उत्पत्तिसे प्रलय एवं जन्मसे मरणतक चारों ओर दृष्टि फैला करके देखो—एक अद्वैत सर्वाधिष्ठान ब्रह्म ही अनादि अनन्त अजन्मा अविनाशी सत्य है। द्वैत जगत् तीन कालमें मिथ्या है। ऐसा जानकर अद्वैत ब्रह्म-स्वरूपमें निश्चल हो रहो ! [इत्यादि सुनाकर भ्रमिक गुरुवा लोग आप भ्रम-धोखेमें पड़कर औरोंको भी भुलाते जा रहे हैं; बिना पारख] ॥ ६ ॥ ५८ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ५९ ॥ ❀ ॥

चढ़त-चढ़ावत भण्डहर फोरी । मन नहिं जाने केकरि चोरी ॥१॥
चोर एक मूसै संसारा । बिरला जन कोइ बूझनहारा ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—चढ़त चढ़ावत श्वास को, छूटि गई यह देह ॥ मन नहिं जाने बावरा, काकी देइ सन्देह ? ॥१॥ चोर एक अनुमान है, जाको ब्रह्म बखान ॥ बिरला जन कोइ चीन्हि हैं, सो धोखेको जान ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—भण्डहर = मिट्टीके बर्त्तनोंको एक-पर-एक चढ़ाते-चढ़ाते कभी फिसलकर फूट गया। चुरानेवालेका मन नहीं जानता कि यह किसकी चोरी करना ? ॥ १ ॥

तद्वत् योगी लोग श्वासके साथ ऊपर चढ़ते और प्राणवायुको नाभिसे ऊपर चढ़ाते हुए ब्रह्माण्डरूप भ्रमरगुफामें ले जानेके योगाभ्यासमें लग गये। इस प्रकार श्वासके साथ चढ़ते-चढ़ाते हुए सम्पूर्ण आयु व्यर्थमें ही बीत गई। एकदिन उनका भण्डहर = बर्त्तनरूप स्थूल देह भी यहीं छूट गई। खोपड़ी भी फूट गई। पागल बने उन भ्रमिक लोगोंने मनमें यह नहीं जाना कि किसके लिए ऐसी चोरी-छीपीसे प्राणको ऊपर चढ़ाके छिपावें ? हम किसकी चोरी कर रहे हैं और किसके घरमें सन्देहरूप सेंध दे रहे हैं ? बिना विचार उनके मनने इस बातको नहीं जाना ॥१॥ अनुमान-कल्पनारूप उसी एक चोरने सब संसारके बुद्धि-विचारहीन मनुष्योंके विवेकको मूसै = चुरा लिया। इसीसे अनुमान भी एक चोर है। जिसको एक अद्वैत ब्रह्म वर्णन किया है, इस भ्रमने सबके हृदयमें घुसकर सत्यज्ञानकी चोरी की। सारा संसार एक अद्वैत ब्रह्म है, ऐसा बताकर सबको भुला दिया। उस चोरकी गति-विधिको कोई बिरले ही पारखी सन्तजन जानते हैं। जो जड़-चैतन्य, सत्यासत्य, सारासारको यथार्थ जानकर उसके भेदको समझनेवाले परीक्षा-दृष्टिसे उस धोखेको अच्छी तरहसे पहचानते हैं। इसलिए उनके घटमें वह भ्रमरूप चोर कभी घुस नहीं सकता है। वैसे कोई बिरले ही बच पाते हैं ॥ २ ॥

स्वर्ग पताल भूम्य ले बारी । एकै राम सकल रखवारी ॥३॥

मायामुखः—स्वर्ग पताल औ भूम्य लों, ई सब लाई बार ॥
एकहि राम सनातन, है सबको रखवार ॥ ३ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—ऊपरके सात स्वर्गलोक, नीचेके सात पाताललोक और बीचके भूम्य = भू-मण्डलरूप सात द्वीप सब पृथ्वी, यहाँतक ये तीनों लोक एक परमेश्वर मालिकने फुलवारी, बाग-बगीचा, उपवनके रूपमें सजा करके चारों ओर घेरा लगाया है। सनातन एक परमात्मा राम ही तीनों लोक चराचर सब सृष्टिकी रखवारी, संरक्षण करनेवाले रखवाररूपमें सर्व रक्षक, सर्व प्रतिपालक सबके

मालिक हैं। अतः उन्हींकी भाव-भक्तिमें लगे रहो ! [इत्यादि कहकर भ्रमा-भुला रहे हैं] ॥ ३ ॥

साखीः--पाहन ह्वै-ह्वै सब गये । बिन भितियन के चित्र ॥
जासो कियउ मिताइया । सो धन भया न हित ॥५९॥

गुरुमुख; साखीः—पाहन ह्वै--ह्वै सब गये, बिन भितियन के चित्र ॥
जासो कियउ मिताइया, सो धन भया न हित ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—पाहन=पत्थरके समान जड़-बुद्धिवाले अबोध लोग अचेत भ्रमिक जड़ाध्यासी बद्ध हो-होकर मरते हुए चौरासी योनियोंके चक्रमें ही चले गये। बिन भितियनके चित्र=भीतरूप आधारके बिना निर्गुण-निराकार आकाशवत् ब्रह्म-परमात्माको मानकर, उसीसे यह चित्र-विचित्र सारा जगत् उत्पन्न हुआ, वही सबका मालिक है; ऐसा मानकर उससे मिलना चाहते हैं। परन्तु वह तो आजतक किसीको भी नहीं मिला और मिल भी नहीं सकता है। तथापि उसी भ्रमसे खूब प्रेम-प्रीति करके अबोध जीव भूले पड़े हैं। हे मनुष्यो ! अब जिससे तुम लोग मित्रता किये हो वा कर रहे हो, अत्यन्त प्रेम बढ़ाकर जिससे मिलना चाहते हो, सो माना हुआ श्रेष्ठ धनरूप ब्रह्म-ईश्वरादि तो कोई सत्य वस्तु ही नहीं है। केवल वाणी-कल्पनाकृत वेद-शास्त्रादि धन, गुरुवा लोग और स्त्री, पुत्र, परिवार, संसारके द्रव्यादि; ये सब अन्तमें यहीं छूट जायेंगे। वे किसीके हितकारी नहीं हुए, तो उनसे तुम्हारा भी हित नहीं होगा। अहित बन्धन तो प्रत्यक्षमें हो ही रहा है। अतः अब भी सचेत होकर तुम अपने कल्याणके मार्गमें लगो ! ॥ ४ ॥ ॥ ५६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६० ॥ ❀ ॥

छाड़हु पति छाड़हु लबराई । मन अभिमान टूटि तब जाई ॥१॥
जिन ले चोरी भिक्षा खाई । सो बिरवा पलुहावन जाई ॥२॥
पुनि सम्पति औ पतिको धावै । सो बिरवा संसार ले आवै ॥३॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—छाड़ि देहु पति ब्रह्म को, छाड़हु लबरी बानि ॥ मन अभिमान टूटै तबै, होय कुशल जिव जानि ॥१॥ जिन्ह ले चोरी आतमा, खाई भिक्षा जान॥ सोई कर्म अंकुर होय, आगे फिर पलुहान ॥२॥ पुनि सम्पतिको धावहीं, औरहु ब्रह्मको धाय ॥ अंकुर सोई-सोई होय, संसारहि ले आय ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—हे नरजीव ! सत्यासत्यकी परीक्षा करो ! निज स्वरूप पारख-पदमें ठहरो और फिर असत्य भ्रमरूप ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित पतिको एवं अनेक देवताकी मिथ्या मानन्दी, कल्पनाको समेत् एकदम सम्पूर्ण छोड़ दो ! वैसे ही लबराई=झूठ बोलना एवं झूठे वाणीजालको लेकर ठगाई करना भी सर्वथा छोड़

दो, तभी तुम्हारे मनके अभिमान, अकड़, दम्भादि सर्व विकार टूटकर छूट जायेंगे। सर्व अभिमानादिसे रहित होकर, निज पारख-स्वरूपको अपरोक्ष जानकर स्थिर होने-पर ही जीवका वास्तवमें कुशलरूप कल्याण होगा; ऐसा जानो ! ॥१॥ जिन अबोध लोगोंने गुरुवा लोगोंके पासमें जाकर शिर ढाँककर छिपके दीक्षारूप गुरुमन्त्रको भिक्षा-रूपमें माँगकर ग्रहण किया, अथवा आत्मज्ञानादि-प्राप्तिके लिए जिसने कल्पित गुरुमन्त्र और आत्मज्ञानका उपदेश चोरी-छीपीसे भिक्षा लेकर ग्रहण करके खा लिया, वे सब भ्रम-धोखेकी गहरी खाईमें जाकर गिरकर नष्ट हो रहे हैं। सो ब्रह्मरूप बिरवामें मिलने पर भी उसकी इच्छासे आगे फिर जगत्रूपमें पलुहावन = पल्लवित हो हराभरा हो जाता है। पुनः सो वही कर्माध्यासके अंकुर उदय होकर कारणसे कार्यरूपमें ब्रह्म-ईश्वर बिरवासे जगत्रूपमें अध्यासी जीव चौरासी योनियोंके रूपमें उत्पन्न होकर बढ़ते हुए खूब पल्लवितरूपमें फैल गया और फैलता ही जा रहा है। अतः उस भ्रमको परखकर परित्याग करो ! ॥२॥ पुनः संसारी लोग धन-सम्पत्तिकी विशेष प्राप्ति करना चाहते हैं; और स्त्री पतिकी चाहना करके चञ्चल हो रही है और पुरुष पत्नीकी चाहना करके विषयासक्त हो संसारमें दौड़ रहे हैं। मान-प्रतिष्ठा, यश-कीर्तिके सब इच्छुक बने हैं। परन्तु सो वही बिरवा = विषय-भोगोंका वृक्ष एवं उसकी वासनाएँ अध्यासी जीवको बारम्बार चौरासी योनियोंके संसारमें ले आती हैं, बारम्बार भटकाती रहती हैं ॥३॥ अथवा पुनः सम्पत्ति = अनेक वाणीके सिद्धान्तोंकी मानन्दीके लिए और पति = मालिक माने हुए ब्रह्म-ईश्वरादिसे मिलनेकी इच्छासे अबोध नरजीव जहाँ-तहाँ दौड़ादौड़ कर रहे हैं। परन्तु वाणी-खानिके वही-वही कर्माध्यास, वासनाके अंकुर उत्पन्न हो-हो करके, वही बिरवा = ईश्वरादि-वृक्ष संसाररूप चौरासी योनियोंके चक्रमें घुमा-फिरा-कर ले आता है। बिना पारख जीवका भव बन्धन कभी नहीं छूटता है ॥ ३ ॥

साखीः—झूठ झूठा कै डारहू। मिथ्या यह संसार ॥
तेहि कारण मैं कहत हौं। जाते होय उबार ॥६०॥

साखीः—झूठ-झूठा कै डारहू, मिथ्या यह संसार ॥
तेहि कारण मैं कहत हौं, जाते होय उबार ॥ ४ ॥

झूठ = वाणी-कल्पना, मिथ्या भाषण एवं विषयादिको और झूठा = ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रम, गुरुवा लोग एवं स्त्री आदि; इन दोनों ओरके झूठ-झूठाको अच्छी तरहसे पहचान करके सर्वथा परित्याग कर डालो ! खानि-वाणीके पसारारूप यही संसार सर्वथा मिथ्या है। भ्रम-धोखेमें पड़कर इसमें मत् भूलो ! भव-बन्धनमें मत् पड़ो ! इसी कारणसे दया करके मैं तुमको यथार्थ परखाकर कहता हूँ कि हे जीव ! जिससे तुम्हारा भी उद्धार हो, भवसागरसे उबार = पार, रक्षा, गति-मुक्ति हो, सम्पूर्ण भ्रम-भूलका बन्धन टूटकर निज स्वरूपकी स्थिति करके जीवन्मुक्त हो जाओ ! ऐसा तुम्हारे उबारके वास्ते मैं कह रहा हूँ ! मेरे अभिप्रायको समझ करके पारखबोध प्राप्तकर अब तुम भी भवपार हो जाओ ! ॥ ४ ॥ ६० ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६१ ॥ ❀ ॥

धर्म कथा जो कहतहि रहई । लाबरि उठि जो प्रातहि कहई ॥१॥
लाबरि बिहाने लाबरि सन्झा । एक लाबरि बसे हृदया मन्झा ॥२॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—धर्म कथा जो कहत हैं, बड़े-बड़े पण्डित भाय ॥ जो मिथ्या अनुमान है, ताहि सत्य समुझाय ॥१॥ सायं प्रात जो पढ़त हैं, सोऊ लाबरी जान ॥ एक लाबरी उपदेश को, लीन्ह हृदय में मान ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं— हे भाई ! बड़े-बड़े पण्डित लोग प्रतिदिन धर्म-कथाके नामसे जो वाणी कहते रहते हैं, सो सब मिथ्या अनुमान-कल्पनासे रचित भ्रम-धोखेका वर्णन ही मात्र है। उससे वास्तविक जीव-दयाका धर्म प्राप्त हो नहीं सकता है। प्रातःकाल उठ करके गुरुवा लोग जो वाणी कहते हैं, मन्त्र-जप, पाठ-पूजा जो करते-कराते हैं, ईश्वरादिकी प्रार्थनामें जो कहते हैं, सो सब भी लाबरि=मिथ्या वाणी-कल्पनाके कथन ही मात्र हैं। परन्तु भ्रमिक लोग उन्हें ही सत्य बताकर अबोध मनुष्योंको समझाते हुए वाणीजालमें खूब फँसाते ले जा रहे हैं। इस बातको समझकर लबराईसे न्यारे हो जाओ ! ॥१॥ भ्रमिक गुरुवा लोग प्रातःकालमें भी लाबरि=मिथ्या वाणीका ही जप और पाठ करते-कराते रहते हैं और सन्ध्या समयमें भी लाबरि=मिथ्या कल्पित वाणीका ही जप, पाठादि करते-कराते रहते हैं। इस प्रकार प्रातः और सायं जो कुछ भी पढ़ते-पढ़ाते पाठादि करते हैं, वह भी लाबरि=झूठी कल्पित वाणी-मात्र ही है; ऐसा जानो ! एक लाबरि=एक ब्रह्म-ईश्वरादि-प्रतिपादक मिथ्या वाणीका उपदेश, दीक्षा-शिक्षा जो गुरुवा लोगोंने दी, उसको अपने हृदयके बीचमें बैठाकर सब अबोध लोगोंने मान लिया। परन्तु वैसी मिथ्या वाणीकी मानन्दीसे किसीका हित-कल्याण नहीं होता है। अपने हृदयमें विवेक-विचार करके इस बातको अच्छी तरह समझ लो ! ॥ २ ॥

रामहुकेर मर्म नहिं जाना । ले मति ठानिनि वेद--पुराना ॥३॥
वेदहुकेर कहल नहिं करई । जरतई रहे सुस्त नहिं परई ॥४॥

रामहु केर मर्म को, जानत कोइ नहिं भाय ॥ अपनी मति अनुमान करी, वेद पुराण बनाय ॥३॥ वेदहु केर कहा करे, नहिं कोऊ समुझाय ॥ निशिदिन जरते ही रहे, कहूँ न कोइ शितलाय ॥ ४ ॥

रमैयाराम चैतन्य जीवकी सत्तासे ही देह प्रकाशित है। खानि-वाणीका सब विस्तार जीवसें हुआ और हो रहा है। वास्तवमें जीवका स्वरूप ही सत्य है और सब मिथ्या है। इस बातका यथार्थ मर्म=भेद भी बेपारखी भ्रमिक लोगोंने नहीं जाना। इसलिए अनुमान-कल्पनामें रमकर कोई एक ब्रह्म--परमात्मारूप रामको अपनेसे भिन्न

दूसरा ही मान लिया। परन्तु उसके मर्म=भेदको भी किसीने ठीकसे नहीं जाना। मिथ्या भावना ही मात्र करके अन्तमें अगम-अपार, अथाह कहकर रह जाते हैं। उसे कोई जान नहीं सकता; ऐसा कहते हुए भी पुनः मानते जाते हैं। फिर अपनी-अपनी ही मति-बुद्धिसे अनुमान-क़ल्पना बढ़ाकर भ्रमको ले करके चार वेद और अठारह पुराणादि ग्रन्थ बना करके संसारमें स्थापित कर दिये। उसी वाणीका प्रचार कर-करा रहे हैं। उसीको पढ़-सुनकर, कोई एक परमात्मा राम अलग है, ऐसा अनुमानका निश्चय सब लोग कर रहे हैं; बिना पारख ॥३॥ ये अविचारी पण्डित लोग वेद-शास्त्रादिके कहे जैसा जीव-दयारूप धर्म-पालन भी तो नहीं करते हैं। सद्गुण भी धारण नहीं करते, अच्छा बर्त्ताव भी नहीं करते। केवल औरोंको वेद-शास्त्रादि पढ़कर सुना देते हैं। किन्तु उसमें लिखे अनुसार गुण धारण नहीं करते। और कोई उनको अच्छी बात भी समझाता है, तो भी उसे वे नहीं मानते हैं। जो मनमें आवे, सोई करते हैं। इसलिए दिन-रात भोगेच्छा, आशा-तृष्णा, लोभ, काम,क्रोधादिकी प्रज्ज्वलित अग्निमें खूब जलते ही रहते हैं। वैसे लोग कहीं कोई भी कभी सुस्त=शान्त, शीतल, सन्तुष्ट नहीं होते हैं। इसीसे उनको कभी शान्ति प्राप्त नहीं होती है ॥ ४ ॥

साखीः—गुणातीत के गावते। आपुहि गये गँवाय ॥
माटीका तन माटी मिलिगौ। पवनहिं पवन समाय ॥६१॥

साखीः—गुणातीत के गावते; आपुहि गये गँवाय ॥
माटीका तन माटी मिलिगौ; पवनहि पवन समाय ॥ ५ ॥

गुणातीत=त्रिगुणोंसे रहित निर्गुण-निराकार कोई एक ब्रह्म-परमात्मा है, यही बात कहते-सुनते, कथन करते, गायन-कीर्तन करते-कराते, ध्यान-धारणादि करते-करते अविवेकी नरजीवोंने अपने ही बुद्धि-विचार, सत्यादि सद्गुण सहित सम्पूर्ण आयुको भी व्यर्थ गँवाय=खो करके अन्तमें जड़ाध्यासी बद्ध हो मर भी गये। देहान्त होनेपर मिट्टीके शरीरका स्थूल भाग मिट्टीमें ही मिल गया और पवन=वायुका भाग पवनमें ही समा गया। जलका भाग जलमें और अग्निका भाग अग्निमें समा गया। देह विनाश हो गई। उन जड़ तत्त्वोंसे विजातीय कार्य-कारणसे परे विलक्षण जड़ाध्यासी चैतन्य जीव वासनानुसार चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जाकर समा गया। ब्रह्म-ईश्वरादि कहीं कुछ भी नहीं मिला। इस प्रकार जड़ाध्यासवश अध्यासी जीव चौरासी योनिके आवागमन-चक्रमें ही पड़ता चला आ रहा है। जबतक पारख-स्वरूपकी स्थिति नहीं होगी, तबतक अध्यासी जीव आवागमनमें ही पड़ा रहेगा। अतः पारखबोध प्राप्त करके अपनी स्थिति करो ! ॥ ५ ॥ ६१ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ ६२ ॥ ❁ ॥

जो तू करता वर्ण विचारा। जन्मत तीनि दण्ड अनुसारा ॥१॥

जन्मत शूद्र मुये पुनि शूद्रा । कृतम जनेउ घालि जग धन्दा ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—जो तुम आपन करत हो, निशिदिन वर्ण विचार ॥ जन्मत ही त्रिदण्डको, क्यों न कियो अनुसार ? ॥१॥ जन्मत ही को शूद्र है, मूयेहु पुनि शूद्र ॥ कृतम जनेऊ डारिया, जग धन्धा को छूद्र ॥२॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे ब्राह्मण ! जो तुम दिन—रात अपने ब्राह्मण वर्णको विशेष होनेका विचार करते हो और फिर ईश्वर कर्त्ताकी ओरसे चार वर्णोंकी उत्पत्ति और व्यवस्था हुई—ऐसा जो मानते वा कहते हो, तब यह बताओ—माताके गर्भ-स्थानसे जन्म लेनेके साथ ही अपने पासमें तीन दण्ड = त्रिदण्ड; ब्रह्मचारीके चिन्ह-रूप एक तो तीन गाँठवाला सप्तीदण्ड, दूसरा तीन गाँठवाला जनेऊ और तीसरा तीनों वेद एवं कमण्डलु आदि सब सामान भी साथमें ही लेकर क्यों नहीं आया ? और जन्म लेते ही उन त्रिदण्डके अनुसार वेदमें कहे जैसा—कायदण्ड, वाक्दण्ड एवं मनोदण्डको संयमकर शुद्ध आचरण करके अपने-आप क्यों नहीं चला ? सो कहो ! यहाँ तो यज्ञोपवीतके समय पिता वा गुरु ब्रह्मचारीको बाह्य त्रिदण्ड देता है। इसलिए ईश्वरकी ओरसे वर्ण-व्यवस्था नहीं हुई; किन्तु मनुष्यकी ओरसे ही हुई—यही बात सिद्ध हो गई ॥१॥ ब्राह्मणोंमें जन्म और मरणके बाद सूतकका अशौच माना जाता है। इसलिए तुम्हारा शरीर प्रथम एक तो जन्म लेतेका भी शूद्र = अछूत, अपवित्र, अशौचकारी है और दूसरा मृत्यु हो जानेके पश्चात् भी पुनः शूद्र = अछूत, अपवित्र, अशौचकारी हो जाता है। इस शरीरकी स्थिति तो ऐसी ही है। अब बीचमें कृतम = कृत्रिम, बनावटी जनेऊको अपने गलेमें घालि = डालकर विशेष अभिमानी हो जगत्में पेट भरनेके कर्म-धन्धाके लिए क्षुद्र बुद्धिवाले अविचारी, अविवेकी, अपस्वार्थी हो रहे हो। सो वैसा होना अहितकर है ॥ २ ॥

जो तू ब्राह्मण ब्राह्मणिको जाया । और राह दे काहे न आया ॥३॥
जो तू तुरुक तुरुकनिको जाया । पेटहि काहे न सुन्नति कराया ॥४॥

भगहीं ते सब होत हैं, भगहीमें सब जाँय ॥ जो तुम ब्राह्मण सत्य हो, तो भगद्वारे क्यों आय ? ॥३॥ जो तुम तुरुक सत्य हो, औ तुरुकिनको जाय॥ तो माताके गर्भमें, काहे न सुन्नति कराय ? ॥ ४ ॥

जो तुम ब्राह्मण-ब्राह्मणीको ईश्वरने ही जाया = उत्पन्न किया है, ईश्वरकी ओरसे तुम लोग उत्पन्न होकर श्रेष्ठ बनकर आये हो—ऐसा कहोगे, तब तो यह बतलाओ कि माताके योनि-मार्गको छोड़कर और ही राह = मार्ग ले-देकर विलक्षण रीतिसे क्यों नहीं आये हो ? ॥३॥ यहाँपर तो प्रत्यक्षमें ब्राह्मणादिके सब बालक स्त्रीके भगद्वारसे ही उत्पन्न होते हैं। युवक होकर भग-भोग करनेमें भी सब स्त्रीके पासमें जाते हैं और अन्तमें पुनः मरकर वासनावश अध्यासी जीव फिर भी भगद्वारा ही तीन खानि-

के गर्भवासमें चले जाते हैं। अब जो तुम ब्राह्मण ईश्वरकी ओरसे ही उत्पन्न हुए सत्य हो, तब फिर तुम भगद्वारसे जन्म लेकर क्यों आये ? नाक, कान, मुख आदि और ही मार्गरूप द्वारसे क्यों नहीं आये ? ईश्वरके मुखसे ब्राह्मण उत्पन्न हुए कहते हो, तब पिताके मुखसे तुम्हारा जन्म क्यों नहीं हुआ ? सो इसका कारण कहो ? अतएव देह-उत्पत्तिकी दृष्टिसे ब्राह्मणादि सब एक समान ही ठहरते हैं ॥३॥ इसी प्रकार जो तुम तुरुक=तुर्कस्थानके मुसलमान और तुरुकनि स्त्रियोंको भी यदि खुदाने ही उत्पन्न किया है कहते हो, तब तो पेट=गर्भवाससे ही सुन्नति कर-कराके तुम और तुम्हारे पुत्र क्यों नहीं आये ? पेटमें ही तुम्हारी सुन्नति क्यों नहीं कर दी गई ॥४॥ अथवा जो तुम तुरुक लोग खुदाकी ओरसे उत्पन्न, खुदाके बनाये हुए सत्य हो, तो शरीरके सहित ऊपर आकाशसे उतर-उतर करके क्यों नहीं आया वा क्यों नहीं आते हो ? एवं दूसरे ही मार्गसे क्यों नहीं आते हो ? माताके भगद्वारसे ही जन्म लेकर क्यों आया ? यदि तुरुकिन=मुसलमान-स्त्रीसे उत्पन्न होनेसे तुम तुरुकरूप मुसलमान सत्य हो—ऐसा कहोगे, तब तो माताके गर्भमें ही तुम्हारी सुन्नति कराकर क्यों नहिं आया ? बाहर सुन्नति करनेसे तुम्हारा यह रिवाज भी मनगढ़न्त अज्ञानताका ही है ॥ ४ ॥

कारी–पियरी दूहहु गाई। ताकर दूध देहु बिलगाई ॥५॥
छाडुकपट नर! अधिक सयानी। कहहिंकबीर भजुशारङ्गपानी॥६॥६२॥

कारी पियरी गाय बहु, दूहहु एकै ठाँय ॥ ताको न्यारा दूध पुनि, काहु न दीन्ह लखाय ॥५॥ छाड़ि देहु नर कपट को, कीन्हेउ बहुत सयानि ॥ कहाँ है जाहि पुकारहू ?, छाड़ु भरम जग बानि ॥ ६ ॥

काली, पीली, लाल, सफेद इत्यादि रङ्गवाली बहुत-सी गौओंका दूध एक ही बर्त्तनमें दूह लो ! पुनः उस बर्त्तनमेंसे उनके दूधको न्यारा-न्यारा करके दिखा दो ! काली गायका यह दूध है, पीली गायका यह दूध है। क्या ऐसा पृथक् किया जा सकता है ? कभी नहीं। एक बर्त्तनमें बिलगाई=अलग-अलग करके दूधको बताया जा नहीं सकता है। क्योंकि सब गौओंका दूध एक-सा ही श्वेत होता है। एकमें मिलानेपर फिर उसे अलग करके कोई दिखा नहीं सकता है।

तद्वत् हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी इत्यादि विभिन्न रङ्ग-रूप, आकार-प्रकार-के मनुष्योंके भीतर निवासी दूधके समान जीवका स्वरूप तो चैतन्य ही है। अतएव चैतन्यके स्वरूपमें विभिन्न जातिका पार्थक्य दिखाया जा नहीं सकता है। चैतन्यत्त्व गुण-लक्षणमें जीव-मात्र सब स्वजातीय हैं। अतः मिथ्या मानन्दीको त्यागकर पारख-बोध प्राप्त करके जीवन-कल्याण करो ! ॥५॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे नरजीव ! अधिक छल-कपट, लोभ, काम, क्रोधादिके विकारको भी छोड़ दो और अधिक सयानेपनासे बहुत चतुराई, धूर्त्तताई, ठगाई, स्वार्थ प्रपञ्च जो कर रहे हो, सो उसे भी भव-बन्धनका कारण जानकर छोड़ दो ! यदि नहीं छोड़ोगे, तब तो अन्तमें चौरासी योनियोंमें जाकर तुमको अकेले ही कर्म-दण्डका दुःख भोगते रहना

पड़ेगा। इसलिए कपट और अधिक सयानीको अब भी सर्वथा परित्याग करो! शारङ्गपानी='शार्ङ्ग' नामक धनुषको 'पाणी'=हाथमें लेनेवाले विष्णु, राम और कृष्ण; जिनको तुम मालिक मानकर पुकारते हो, वे अब कहाँ हैं ? बाहर तो कहीं नहीं हैं। तुम्हारा भ्रम तुम्हारे पासमें ही है। इस कारण अब भी उस मिथ्या भ्रम-धोखारूप जगत्के वाणीजालको एवं खानिजालको यथार्थ परखकर भजु=तोड़ो! सर्वथा परित्याग करो! भ्रम-धोखेसे भागो! निज पारख-पदमें ही स्थिर हो रहो! तभी तुम्हारा जीवन-कल्याण होगा। अथवा सारङ्ग=तालाबके पानीके समान चञ्चल खानि-वाणीजालसे भागो! सर्व विकारसे रहित हो निज शुद्ध चैतन्य पारख-स्वरूपमें स्थिर हो रहो।।६।।६२।।

॥ * ॥ रमैनी ॥ ६३ ॥ * ॥

नाना रूप वर्ण एक कीन्हा। चारि वर्ण वै काहु न चीन्हा ॥१॥
नष्ट गये कर्त्ता नहिं चीन्हा। नष्ट गये औरहि मन दीन्हा ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—नाना रूप औ वर्ण भये, एक रूप ते जान॥ सो नहिं काहू चीन्हिया, जो चारिउ वर्ण बखान ॥१॥ नष्ट गये यह जगत सब, जो नहिं करते चीन्ह॥ नष्ट गये यह जगत जिव, जो औरहि मन दीन्ह ॥२॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—एक समान जड़ाध्यासी एक-एक जीवरूपसे ही अध्यासवश चौरासी योनियोंमें नाना देहोंके नाना रूप और वर्ण=रङ्ग-विभेद विभिन्न रूपसे उत्पन्न हुए और हो रहे हैं। वैसे ही एक मनुष्यरूपसे अनेक भेष-भूषाके रूप, विभिन्न रङ्ग, आकार-प्रकार एवं वर्ण=चौंतीस अक्षरोंका वाणीजाल निर्माण हुआ है, सो तो एकमात्र जीवने ही किया है। उस चैतन्य जीवके सत्य स्वरूपको तो पारख-हीन किसीने भी नहीं चीन्हा वा नहीं पहचाना। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र; ऐसे चार वर्ण जो वर्णन किया है, सो भी नरजीवकी ही मिथ्या मानन्दी भ्रम-कल्पना है। उन किसीने भी निजस्वरूपको नहीं पहचाना। ईश्वरादिकी मिथ्या मानन्दी करके सब लोग भ्रम-धोखेमें भूल रहे हैं, बिना पारख ॥१॥ जो निज सत्य पारख-स्वरूपकी पहचान नहीं करते हैं, वे हंसपदसे नष्ट हो गये। सब प्रकारकी वाणी-कल्पना और खानिजालका रचनाकर्त्ता तो नरजीव ही है। जीवके सत्य चैतन्य-स्वरूपको जो नहीं चीन्हते; किन्तु कोई एक अपनेसे भिन्न और ही ईश्वर, खुदादि जगत्कर्त्ता मानकर भ्रम-धोखेमें पड़े भूल रहे हैं, वैसे सम्पूर्ण जगत्-जीव मुक्तिपदसे नष्ट होकर चौरासीमें चले गये। अपने हंसपदसे भिन्न और ही वाणी-खानिमें मन लगानेवाले जड़ाध्यासी जीव नष्ट-भ्रष्ट होकर अन्तमें आवागमन-चक्रमें चले गये और जा रहे हैं ॥२॥

नष्ट गये जिन्ह वेद बखाना। वेद पढ़े पर भेद न जाना ॥३॥
बिमलख करे नैन नहिं सूझा। भया अयान तब किछउ न बूझा ॥४॥

वेद पढ़ा जिन्ह चारहू, सोऊ गये जहँड़ाय ॥ जाको कियो है वेद यह, ताको मर्म न पाय ॥३॥ ब्यौरा करहीं आँधरे, ऊँच नीच अर्थाय ॥ भया अज्ञानी कर्ममें, तब कछु बूझ न आय ॥ ४ ॥

जिन ब्रह्मादि पण्डितोंने चार वेद वर्णन किया, पारखबोध बिना भ्रम-धोखेमें पड़कर वे भी नष्ट हो गये। वर्त्तमानके पण्डित लोग वेदादिको पढ़ते-सुनाते तो हैं; परन्तु चैतन्य जीव सत्य है और सब मिथ्या है, इसका भेद वे नहीं जानते हैं, भ्रम-धोखेमें भूले बँधे पड़े हैं ॥३॥ अथवा जिन लोगोंने चारों वेदोंको पढ़ा और वर्णन किया, सत्य स्वरूपका बोध न होनेसे वे भी मनुष्य-पदसे नष्ट होकर भ्रम-धोखेमें पड़के बड़ी हानि उठाकर भव-बन्धनकी ओर चले गये। क्योंकि जिसने यह वेदादि वाणी निर्माण की, उस चैतन्य जीवके पारख-स्वरूपके मर्म=भेदको उन किसीने भी जान नहीं पाया। केवल वेदकी वाणीमात्र पढ़ते हैं; असली भेदको वे कोई कुछ जान नहीं पाते हैं ॥३॥ जैसे कोई अन्धा अपनी दृष्टि तेज करनेके लिए विमलख=दोनों नेत्रोंमें अञ्जन लगाया करे; परन्तु उसके नेत्रोंसे तो कुछ भी नहीं दीखता है। इसलिए सुरमा लगानेसे भी उसे कुछ लाभ नहीं होता है। वैसे ही भ्रमिक गुरुवा लोग वाणी-कल्पनाका अञ्जन तो खूब लगाया करते हैं; परन्तु पारख-दृष्टिहीन अन्धे होनेसे विवेक-विचारके नेत्र ही फूटे हैं। इसीसे सत्यासत्य उनको कुछ भी नहीं दीखता है। जगत्-ब्रह्मको एक माननेसे महाअज्ञानग्रस्त हुए। जब चराचर एक ब्रह्म-स्वरूप ही है—ऐसा माना, तब उन लोगोंने सत्यको कुछ भी नहीं समझा ॥४॥ अथवा पारख-दृष्टिके हीन पक्के अन्धे बने हुए भ्रमिक गुरुवा लोग ऊँच-नीच अर्थ लगाकर ब्राह्मणोंको ऊँचा और शूद्रादिको नीच बतलाते हुए ब्यौरेवार विस्तारसे वेद-शास्त्रादिका वर्णन तो करते हैं। परन्तु विवेक-विचारके नेत्र न होनेसे सत्यासत्य तो उनको कुछ भी नहीं दीखता है। इसलिए उनके सब कथन अन्धोंकी ही वार्त्ता ठहर जाते हैं। तब कहो—सत्यका बोध किसको कहाँसे हो सकता है ? इसीसे वे लोग अनेक प्रकारके कर्मोंमें लगकर वितण्डावाद कर-करके पुनः अज्ञानी-के-अज्ञानी ही हो रहे हैं। जब वे वैसे अबोध अज्ञानी हुए, तब कुछ भी सत्यको नहीं समझे। उनकी समझमें ही कुछ नहीं आया। अतएव भ्रम-बन्धनमें ही बन्धे पड़े रहते हैं ॥ ४ ॥

साखीः—नाना नाच नचाय के। नाचे नट के भेष ॥
घट घट है अविनाशी। सुनहु तकी तुम शेष ॥६३॥

साखीः—नाना भाव नचावहीं, गुरुवा नाचहिं नटके भेष ॥
घट घट कहैं अविनाशी, गुरु औ शिष्य विशेष ॥ ५ ॥

जैसे नट अनेक भेषमें औरोंको भी नाना तरहके नाच नचाकर स्वयं भी नाचता है, वैसे ही षट्दर्शनोंके भ्रमिक गुरुवा लोग अनेक तरहके भेष धारणकर अनेक साधनाओंमें स्वयं भी नाचते हुए अन्य मनुष्योंको भी नचाते हैं। किन्तु स्वार्थ-सिद्धिके सिवाय

इससे जीवन-कल्याण नहीं होता। हे शेखतकी! तुम मेरे यथार्थ वचनको सुनो! घट-घटमें रहनेवाला चैतन्य जीव ही अविनाशी है। उसीकी विशेषता है। तुम भी एक जीव हो। सर्वत्र माना हुआ अल्लाह-खुदा तुम्हारी मिथ्या कल्पना है; इत्यादि॥६३॥

अथवा भ्रमिक गुरुवा लोग स्वयं भी नटके समान बहुरूपिये भेष धारण करके संसारमें अनेक तरहके स्वाँग, आडम्बर दिखा-दिखाकर नाचते हुए तमाशा प्रदर्शित करते हैं और फिर अन्य बहुतसे चेले भक्त लोगोंको भी उसी प्रकार अनेक साधनाओंमें लगाकर नाना तरहके नाच नचाते हैं। घट-घटमें परिपूर्ण व्यापक कोई एक ब्रह्म-परमात्मा अविनाशी है, उसीकी भाव-भक्तिमें लगे रहो; ऐसा वे कहते हैं। नाना भावमें नचाकर भूलते-भुलाते रहते हैं। तकी=तकानेवाले गुरुवा लोग और शेष=बाकीके तकनेवाले बहुत-से शिष्य लोगोंको विशेषरूपसे वही वाणी-कल्पनाको सुना-सुनाकर, 'तुम भगवान्‌के दास अंश हो, भगवान्‌की ही भक्तिमें मन लगाये रहो' ऐसा दृढ़ाकर, भ्रमा-भुला रहे हैं। इस प्रकार भ्रमिक गुरु और शिष्य लोग विशेषरूपसे भ्रम-धोखेमें भूले बँधे पड़े हैं; बिना पारख ॥ ५ ॥ ६३ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६४ ॥ ❀ ॥

काया कञ्चन जतन कराया। बहुत भाँति कै मन पलटाया ॥१॥
जो सौ बार कहौं समुझाई। तैयो धरो छोरि नहिं जाई ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—काया कञ्चन कारणे, बहुविधि जतन कराय ॥ बहुत भाँति कै जगतमें, दीन्हा मन पलटाय ॥१॥ जो सौ बार बुझाय कहूँ, तौउ छोरि न जाय ॥ जो मिथ्या अनुमान है, ताको गह्यो बनाय ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—काया=इसी स्थूल शरीरको कञ्चन=सुवर्णवत् शोभायमान् चमक-दमक संयुक्त शक्तिशाली बनाकर बहुत दिनतक जीते रहनेके आशारूप कारणसे योगी लोगोंने योगादि साधनाओंका अभ्यास बहुत विधिसे जतन=प्रयत्नरूप उपाय, युक्ति-प्रयुक्ति खूब की-करायी। इस प्रकार नाशवान् शरीरको अविनाशी बनानेके मिथ्या भ्रम-धोखा, दुराशामें पड़कर बहुत भाँति करके जगत्-जीवोंके मन, समझ, बुद्धिको सर्वथा पलटा दिया, भ्रम-धोखेमें लगाकर मुक्ति-पदको विनाश करके भव-बन्धनमें ही डाल दिया और डालते जा रहे हैं ॥१॥ अब ऐसे भूले हुए नरजीवोंको जो कि मैं सौ-सौ बार भी यदि सत्यन्याय-निर्णयसे यथार्थ बात ही समझा-बुझा करके कहता हूँ, तो भी उनकी समझमें कुछ नहीं आता है। चाहे जितना समझाओ, तब भी जिसने जो कुछ मिथ्या मानन्दी मनमें पकड़कर खूब गाँठ बाँध लिया है, वह उससे फिर कभी छोड़ा नहीं जाता है। जो सरासर मिथ्या अनुमान-कल्पना, भ्रम-धोखा है, उसीको अबोध जीवोंने मनसे खूब दृढ़ बनाके पकड़कर ग्रहण कर लिया है। इस कारण वह फिर उसके मनसे नहीं हटता है। इसीसे भव-बन्धनमें सब जीव जकड़े पड़े हैं ॥ २ ॥

जनके कहै जन रहि जाई । नौ निद्धी-सिद्धी तिन पाई ॥३॥
सदा धर्म जाके हृदया बसई । राम कसौटी कसतहि रहई ॥४॥
जो रे कसावै अन्तै जाई । सो बाउर आपुहि बौराई ॥५॥

मायामुखः—भक्त जननके कहेते, जो कोई रहि जाय ॥ अष्ट सिद्धि नौ निद्धि सो, साधन ही ते पाय ॥३॥ भक्ती जाके हृदयमें, बसै रामकी आय ॥ योग जप तप ध्यानमें, जिवको कसै बनाय ॥४॥ राम कसौटी छाड़िके, जो मन अन्तै जाय ॥ सो बाउर है जीयरा, आपुहि जाय बौराय ॥ ५ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—जन=योगी, ज्ञानी, भक्तजनोंके कहे अनुसार जो कोई साधकजन भक्ति, योग, ज्ञानादिकी साधनाओंमें एवं नवधाभक्ति आदिमें खूब दृढ़तासे टिककर रह जाता है, साधना सिद्ध हो जानेपर उस साधक जीवको साधनासे ही अष्ट सिद्धि, नौ निद्धि, षट्गुण ऐश्वर्यादि सम्पूर्ण फल प्राप्त हो जाते हैं। अतः भक्तिमार्गमें लगे रहो ! ॥३॥ सदा-सर्वदा धर्मकी ही विशेष भावना और परमात्मा रामकी अनन्य भक्ति, निष्ठा, प्रेम जिसके हृदयमें आकर बैठ जाता है, वह भक्त नित्य अपने-आपको परमात्मा रामकी प्राप्तिके लिए रामकी कसौटीमें कसता ही रहेगा, जाँच करता रहेगा। भक्ति, योग, जप, तप, ध्यानादिकी कष्टकर साधनारूप इन्हीं कसौटीमें वह अपने जीवको खूब कसकर, खरा बनाकर लवलीन हो टिकाये रक्खेगा; इत्यादि ॥४॥ इस प्रकार राम कसौटीमें अपनेको कसना-कसाना, बनना-बनाना, टिकना-टिकाना छोड़ करके जो जिसका मन अन्तै=बाह्य संसार-प्रपञ्च विषय-भोगोंमें चला जाता है वा जायगा, अरे ! फिर वह जीव बाउर=पागल होकर अपने-आप ही बौरा जायगा, पथ भ्रष्ट होकर पागलवत् व्यर्थ जीवन बिताकर चौरासीमें पड़ा दुःख भोगता रहेगा। [इत्यादि सुनाकर भ्रम-धोखेके घेरामें डाल रहे हैं] ॥ ५ ॥

साखीः—ताते परी कालकी फाँसी । करहु न आपन सोच ॥
जहाँ सन्त तहाँ सन्त सिधावै । मिलि रहै धूतहि धूत ॥६४॥

गुरुमुख; साखीः—ताते परी कालकी फाँसी, सोच विचारहु सन्ध ॥
सन्त निकट सन्त जावहीं, मिलि रहे अन्धहि अन्ध ॥ ६ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—इस कारण कालके जालकी फाँसी पड़ी हुई है। अतः हे मुमुक्षओ ! अपने ही जीवन-कल्याणका सोच-विचार कर लो ! दूसरेका सोच करनेसे तुम्हें कोई लाभ नहीं है। जहाँ पारखी सन्त रहते हैं, वहाँ बोध-प्राप्तिके लिए अन्य मुमुक्षु सन्त सीधे ही चले जाते हैं, और लोग नहीं जाते हैं। दूसरी ओर भ्रमिक अवधूत नामधारी धूर्त्त-ही-धूर्त्त गुरुवा लोगोंके पासमें अबोध लोग मिले बन्धे रहते हैं; विना विचार ॥ ६४ ॥

अथवा इसलिए अबोध नरजीवोंके ऊपरमें काल=गुरुवा लोग और स्त्रियोंकी ओरसे वाणी-कल्पना और विषयोंकी फाँसी=महाजालरूप फन्दा चारों ओर खूब जबर्दस्त घेरा फैला पड़ा है। सो मैंने तुमको भेद बतला दिया है। अब तुम लोग अपने उद्धारके लिए पारखी सद्गुरुके शरण सत्सङ्गमें लगकर पारख-पदका ही खूब सोच-विचार करो! सब सन्धिरूप मिथ्या मानन्दियोंको अच्छी तरहसे समझ-बूझकर परित्याग करो! पारखी सन्तोंके निकटमें जिज्ञासु सन्तजन अपने जीवन-कल्याणके लिए चले जाते हैं और अन्यत्र बेपारखी लोगोंके समाजमें धूर्त्त-ही-धूर्त्त, अन्धे-ही-अन्धे भ्रमिक लोग मिले रहते हैं। उनके जालोंमें पड़े हुए अबोध लोग कभी भव-बन्धनसे छूट नहीं पाते हैं ॥ ६ ॥ ६४ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६५ ॥ ❀ ॥

अपने गुणको अवगुण कहहू। इहै अभाग जो तुम न विचारहू ॥१॥
तूँ जियरा बहुतै दुःख पावा। जल बिनु मीन कौन सँच पावा ॥२॥

टीका; गुरुमुख--दोहा:—अपने कीये गुण सकल, ताहि कहै निराकार ॥ इहै अभागी मानुषा, तुम ना करहु बिचार ॥१॥ तू जियरा बहुतै पाय दुःख, खोजि खोजि कर्त्तार ॥ जैसे जल बिन माछरी, तलफत बिना अधार ॥ २ ॥

गुरुमुख:—सद्गुरु कहते हैं—हे नरजीव! अपने ज्ञानगुणको न समझकर तुम अपनेको तुच्छ गुणहीन कहता है, बिना पारख खानि-वाणीमें भूलकर बँध जाता है, यही तुम्हारी अनसमझ,अभाग है। जो तुम सत्यासत्यका ठीकसे विचार नहीं करते हो, इसीसे भव-बन्धनमें खूब बँधे पड़े हो ॥१॥ अथवा गुण=त्रिगुण एवं उससे उत्पन्न वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादिकी सर्व वाणीके सिद्धान्त और त्रिगुण मायाजाल एवं विद्या, बुद्धि, कला-कौशल इत्यादि सम्पूर्ण गुणको तो नरजीव ही उत्पन्न किये और कर रहे हैं। पुनः भ्रम-कल्पनासे अवगुण=त्रिगुण विकारसे रहित निर्गुण-निराकार कोई एक ब्रह्म-परमात्मा सब जगत्के मालिक सबसे बड़ा है, ऐसा भी अपने ही कथनसे कहते हैं। इस प्रकार अपने गुणको ही तुम लोग निर्गुण ब्रह्म कहते हो। यही अबोध मनुष्योंका बड़ा अभाग्य है जो कि सत्यासत्यका यथार्थ विवेक-विचार नहीं करते हैं। हे अभागे मनुष्य! तुम्हारा यही बड़ा अभाग है, जो कि अब भी जड़-चैतन्यके स्वरूप, सारासारका तुम यथार्थ विचार नहीं करते हो। व्यर्थ ही जीवन बिताकर भ्रम-बन्धनमें बँधे पड़े हो। अब भी विचार करके निर्बन्ध हो जाओ! ॥१॥ जड़ाध्यासवश हे जीव! चौरासी योनियोंमें तुमने बहुत दुःख पाया। जलके बिना मछली कौन कहाँपर सँच=सुख-शान्ति पाती है? तद्वत् सारशब्दके आधार बिना जीव कहीं सुख-शान्ति, विश्राम नहीं पाता है। अब भी पारखबोध प्राप्त करके सुखी हो जाओ! ॥२॥ अथवा हे अबोध जीव! ब्रह्म-ईश्वरादि भ्रमसे माने हुए जगत्कर्त्ताको खोजते-खोजते अबतक तुम बहुत ही दुःख पा चुका। भव-बन्धनके दुःखमें अभी पड़े ही हुए हो। जैसे जलसे

बाहर निकाली हुई मछली जलके आधार बिना तड़फ-तड़फकर मर जाती है, जल बिना उसे कोई सँच=आराम, सुख नहीं मिलता है। वैसे ही मेरे सारशब्दरूप जलके आधारसे पारखबोध, स्थिति प्राप्त जबतक तुमको नहीं होगी, तबतक तुम जीवको निर्बन्ध मुक्तिका सुख, सन्तोष, शान्ति कभी प्राप्त हो नहीं सकेगी। अतः पारखबोध प्राप्त करके सुखी हो जाओ ! ॥ २ ॥

चातृक जलहल आसै-पासा। स्वाँग धरै भवसागरकी आसा॥३॥
चातृक जलहल भरै जो पासा। मेघ न बरसे चले उदासा ॥४॥
राम नाम इहै निजु सारा। औरों झूठ सकल संसारा ॥५॥

चातृक पिउ-पिउ करत है, भरा रहै जल पास ॥ ऐसे जिव बहु भेष धरी, ब्रह्मसिन्धु की आस ॥३॥ चातृकके जल पास है, स्वाती बिना निरास ॥ अस रामनाम निज जानिके, जगमें रहत उदास ॥ ४ ॥

चातृक=चातक, पपीहा पक्षी कहीं बैठे-बैठे 'पीउ-पीउ' करके बोलता रहता है। उसके आसपासमें जलहल=जलसे पूरा भरे हुए तालाब आदि जलाशय सामने रहने-पर भी वहाँ जाकर जल नहीं पीता है। क्योंकि नीचेका सब जल उसे लाल दीखता है, ऐसा कहते हैं। व्यर्थका झूठा स्वाँग धारण करके ऊपर आकाशकी ओर देखता रहता है, मेघ-मण्डलसे जल बरसै तो पीऊँ—ऐसी आशा लगाये रहता है ॥३॥ तद्वत् चातृक=भ्रमिक कर्मी-उपासकादि जीव, ईश्वरादि-प्राप्तिकी चाहना लेकर राम, कृष्ण, हरि, नारायण इत्यादि नाम-स्मरण करते हुए—'हे भगवान् हमें दर्शन दीजिये' ऐसा पुकारा करते रहते हैं। उनके आसपास समीपमें ही पारखी सन्तोंके सत्सङ्गरूप जला-शयमें सत्यका बोध भरा हुआ है। वहाँ जाकर बोध नहीं लेते; किन्तु उनसे अभाव करके सत्सङ्गसे दूर रहते हैं। अनेक प्रकारके बहुतसे भेष धारण करके ऐसे अबोध जीव झूठा स्वाँग बनाकर भवसागरसे पार उतरनेके लिए भवसागर-स्वरूप ही ब्रह्म, ईश्वरादिको सुखका समुद्र समझकर, उनकी कृपाकी वृष्टि होनेका आशा-भरोसा लगा-कर भ्रम-धोखेमें बँधे आवागमनमें पड़े रहते हैं; बिना पारख ॥३॥ चातृक=पपीहा पक्षी-के पासमें जो चारों ओर जलहल=पूर्ण जलाशय भरा हुआ भी है; परन्तु वह उसे नहीं पीता है। मेघ-मण्डलसे कब स्वातिका जल बरसेगा, यही आशा लगाकर ऊपर देखता रहता है। कभी मेघ न बरसनेसे स्वाति बूँदके बिना वह उदास, निराश होकर अन्यत्र चल देता है। तद्वत् चातृक=अनेक चाहनाको लेनेवाले भक्तादि जीवोंके पासमें जो पारखी सन्तोंके सत्सङ्गरूप जल भी भरा है तो भी वहाँ जाकर बोध-विचारका ग्रहण वे नहीं करते। किन्तु मेघरूप ब्रह्म, ईश्वर, विष्णु आदिकी कृपा-दृष्टिसे उनका दर्शन करना और मिलना चाहते हैं। परन्तु अन्ततक भी वे प्राप्त नहीं होनेसे जड़ाध्यासी जीव उदास, निराश हो अध्यासवश आवागमन-चक्रमें दुःख भोगनेको चले जाते हैं; बिना विचार ॥ ४ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—सगुण-निर्गुण परमात्माके स्वरूपमें राम-नाम-मन्त्रका सदा स्मरण करते रहना ! यही अपना एकमात्र सार आधार है और सम्पूर्ण संसारका व्यवहार तो झूठा असार है। [इत्यादि दृढ़ाकर भ्रम-धोखेमें फँसा रहे हैं] ॥४॥ उनके वचन सुनकर ऐसे चातकवत् बने अबोध भक्त लोग रामनाम-स्मरणको ही अपना सार समझ लिये, उसको अपना इष्टदेव जानकर वा मान करके खूब प्रेम-प्रीति उसीमें लगाये और जगत्‌की ओरसे उदास रहने लगे। इस तरह उदासीनताका भेष बनाकर परमात्मा राम-प्राप्तिके वास्ते वे चारों धाममें जहाँ-तहाँ भटकते हुए व्यर्थ जीवन बिताकर भव-बन्धनमें बँधे पड़े रहते हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

हरि उतङ्ग तुम जाति पतङ्गा । यम घर कियेहु जीवको सङ्गा ॥६॥
किञ्चित है सपने निधि पाई । हिये न समाय कहाँ धरौं छिपाई ॥७॥
हिये न समाय छोरि नहिं पारा । झूठा लोभ किछउ न विचारा ॥८॥

गुरुमुखः—हरि तो ज्योति स्वरूप है, तुम सब बने पतङ्ग । गुरुवन के घर कीन्हेउ, सदा जीवके सङ्ग ॥५॥ कामिनि अग्नि स्वरूप है, जियरा बने पतङ्ग ॥ गर्भबास मा कीन्हेऊ, सदा जीवके सङ्ग ॥६॥ स्वप्ने में धन पाइया, बड़ो हर्ष अधिकाय ॥ हृदया रोकत ना रुका, कहवाँ रखै छिपाय ॥७॥ हृदया में मावै नहीं, छोरिउ नाहीं पार ॥ अस झूठ लोभ उपदेशको, कोइ न करत बिचार ॥८॥

गुरुमुखः—हरि = विष्णु परमात्मा आदिको उतङ्ग = ऊँचा, श्रेष्ठ सबसे महान्, ऐसा जो वाणीकी अनुमान-कल्पनासे मान लिया—वह तो वास्तवमें उतङ्ग = ऊँची लपट-वाली अग्निकी ज्योति समान जलाकर विनाश करनेवाली ज्योति-स्वरूप बना है और तुम सब अबोध जीव उस कल्पित सिद्धान्तको माननेवाले कीट-पतङ्गकी जातिवाले अविचारी बने हो। उसी भ्रम-धोखेमें अपने बुद्धि-विचारको भस्म करके भव-बन्धनमें पड़े दुःख भोगते रहते हो। यम = भ्रमिक गुरुवा लोगोंके घर = घेरा, सिद्धान्त, वाणीकी स्थितिमें जाकर निवास किया। वही भ्रम-धोखा, अध्यासका बन्धन सदा जीवके सङ्ग-साथमें लगा रहता है। इस कारण भव-बन्धनसे जीव कभी छूट नहीं पाता है, उसीमें जलता हुआ मर जाता है ॥५॥ अथवा दूसरी ओर सद्‌गुणको हरण करनेवाली हरिरूप कामिनी तो उतङ्ग = ऊँची लपटवाली अग्निके स्वरूपवत् प्रज्ज्वलित हो रही है और विषयासक्त नरजीव सब कीट-पतङ्गकी जाति समान अज्ञानी बने हैं। स्त्रीके सङ्ग-साथमें जीवनभर सदा विषयासक्त बने रहनेसे अन्तमें उसी वासनावश गर्भ-वासमें जाकर निवास किये वा करते हैं। यही विषय-वासना सदा जीवके सङ्गमें लगे रहनेसे चौरासी योनियोंके आवागमन-चक्रमें पड़कर दुःख भोगता चला आ रहा है। फिर भी वैसा ही दुःख भोगता रहेगा ॥६॥ सोते समय स्वप्नमें किसी कङ्गालने देखा—'मैंने निधि = बड़ा खजाना, धन-सम्पत्ति पायी।' उसका हर्ष बहुत बढ़ गया, हृदयमें नहीं समाता है। 'अब मैं इस धनको कहाँ छिपा करके रक्खूँ' ऐसा विचार करने लगा।

वैसे ही स्वप्नावस्थाका सुख किञ्चित=थोड़े कालतक रहा। पुनः जाग्रत् होनेपर पूर्ववत् वह गरीब-का-गरीब ही बना रहा। तद्वत् ध्यान-समाधि एवं मनकी मिथ्या मानन्दीसे होनेवाला सन्तोषरूप सुख किञ्चित् है। वह सुख स्वप्नमें धन-प्राप्तिके समान वास्तवमें मिथ्या है। मिथ्या मानन्दी हृदयमें रोकनेसे भी नहीं रुकी। कहाँ छिपाकर रक्खूँ, ऐसा सोचते-सोचते वाणीद्वारा ग्रन्थरूपमें प्रकट हो गई। परीक्षा-दृष्टिसे जाग्रत् होनेपर वह सरासर मिथ्या भ्रम-धोखा ही ठहर गई। जीवका बन्धन मिथ्या मानन्दीसे नहीं छूटा। अतः सचेत् हो जाग्रत्में ही पारखबोध प्राप्त करके अपना कल्याण करो! ॥७॥ स्वप्नमें अपार धनका खजाना मिल गया, ऐसा देखकर उसका हर्षरूप सुख इतना बढ़ गया कि वह उसके हृदयमें पूरा समाता भी नहीं, बाहर निकल पड़ता है। उस द्रव्य-राशिको वह छोड़ भी नहीं पाता है। किन्तु वह लोभ झूठा ही है, इसका विचार कुछ भी स्वप्नमें उसे नहीं होता है ॥८॥ तद्वत् ज्योति-स्वरूपका दर्शन, इष्ट देवतादिका ध्यानमें साकार दर्शन, अनहदनाद श्रवण, योगानन्द-ब्रह्मानन्दका अनुभव; ये सूक्ष्म विषयोंका भास स्वप्नवत् मिथ्या ही है। तथापि पारखहीन भ्रमिकजनों-को वैसा भास होनेपर, भ्रमसे परमात्माका दर्शन प्राप्त हुआ समझकर, वह आनन्द उनके हृदयमें नहीं समाता है। उसे वे छोड़ भी नहीं पाते हैं। गुरुवा लोगोंके रोचक उपदेशके झूठा लोभ-लालचमें वे सब भूले पड़े हैं। सत्यासत्यका विवेक-विचार कोई कुछ भी नहीं करते हैं। उसी भ्रम-बन्धनके धोखेमें बँधे पड़े रहते हैं ॥ ८ ॥

सुमृति कीन्ह आपु नहिं माना। तरुवर तर छर छार हो जाना ॥९॥
जिव दुर्मति डोले संसारा। ते नहिं सूझै वार न पारा ॥१०॥

आपुहि स्मृति बनाइया, आप लिया है मान ॥ ब्रह्म पक्ष मा लागिके, भये भस्म गलतान ॥९॥ दुर्मति जिव ब्रह्मज्ञानि हैं, सो डोलें संसार ॥ खोजहिं निर्गुण ब्रह्मको, सूझै वार-न-पार ॥१०॥

पहले पढ़ी-सुनी हुई बातोंको सुमृति=याद कर-करके स्मृतिरूप धर्मशास्त्रोंको भी मनु आदि नरजीवोंने अपने-आप ही बना लिया और उस वाणी-कल्पनाको उन सबने अपने-आप मान भी लिया। उनके पीछे और सब लोग उसे मानते चले आ रहे हैं। परन्तु स्मृति आदि वाणीके कर्त्ता जीवका चैतन्य-स्वरूप सत्य है। तथापि भ्रम-भूल अज्ञानवश अपने ही सत्य चैतन्य जीवके स्वरूपको उन किसीने यथार्थ नहीं जाना। इसलिए जीवको नित्य-सत्य भी वे नहीं मानते हैं। प्रत्युत तरुवर=विश्व-वृक्षके रूपमें एक अद्वैत विराट् ब्रह्म ही सत्य है, ऐसा मानते चले आ रहे हैं। अन्तमें भ्रमरूप मिथ्या ब्रह्मके पक्षमें लगकर, उसी धोखेमें गलतान होकर भस्म हुए। मुक्ति-सुखके लिए तरुवररूप जिस ब्रह्म-वृक्षके तर=नीचे आश्रयमें जाकर वाणीकी धारामें तरबतर हुए; परन्तु वहीं अहङ्काररूप अग्नि प्रज्ज्वलित हो गई। तब छर=भ्रम-अज्ञान-के छलमें पड़कर जीव भ्रमिक हो गया। उसका बुद्धि-विचार जल करके छार=भस्म, राखकी ढेरीवत् हो गया। उसने जाना—'मैं ब्रह्मरूप हो गया।' सर्वाङ्गमें राख लपेटकर

परमहंस-दशा धारण कर लिया। परन्तु जड़ाध्यासवश आवागमनका अधिकारी ही बन गया; बिना पारख ॥९॥ जिनकी मति=बुद्धि निजपदको छोड़कर बहुत दूर आकाशवत् शून्य ब्रह्मकी मिथ्या मानन्दीमें लग गई, वैसे जीव दुर्मति=बुद्धि-विचारहीन ब्रह्मज्ञानी लोग जीवको न माननेवाले भ्रमिक बने हैं। वे ही भ्रमिक लोग संसारमें जहाँ-तहाँ जा-जाकर डोलते फिर रहे हैं, अन्य बहुत-से लोगोंको भी ब्रह्मज्ञानका उपदेश देकर भ्रमा-भुला करके अपने समान दुर्मति बनाते, जमात बढ़ाते जा रहे हैं। अब जिस निर्गुण ब्रह्मको वे लोग खोज-तलाश कर रहे हैं, उसका तो कहीं वार-पार ही नहीं दीखता है। वार=जड़में और पार=चैतन्यमें कहीं ब्रह्म नहीं दीखता है, तब 'चराचरमें व्यापक अद्वैत ब्रह्म है' ऐसा कहकर गाफिलीमें पड़े भूले रहते हैं। जब वह कोई सत्य वस्तु ही नहीं, शून्य आकाशवत् ब्रह्म है, तब वह किसको क्या सूझेगा? अब भी उसे अगम-अपार मानकर भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं; बिना विचार ॥ १० ॥

साखीः—अन्ध भया सब डोलै, कोई न करै विचार ॥
कहा हमार मानै नहीं, कैसे छूटै भ्रम जार ? ॥६५॥

साखीः—अन्ध भया सब डोलै, कोई न करै बिचार ॥
कहा हमार मानै नहीं, कैसे छूटै भ्रम जार ? ॥ ११ ॥

पारखहीन लोग जन्मान्धके समान अविवेकी-अविचारी होकर इधर-उधर भ्रम-कल्पनामें भटकते हुए डोलै=चल-फिर रहे हैं। निज चैतन्य जीवके सत्य पारख-स्वरूपका, सारासारका एवं सत्यासत्यका भी यथार्थ विचार तो वे कोई करते ही नहीं हैं। उसीसे सत्यका बोध किसीको नहीं हो रहा है। जो कि मैं अपनी ओरसे दया करके जीवोंके हित-कल्याणके वास्ते कसर-खोट परखाता हूँ, सत्य निर्णयसे जीव-को पारखबोध देता हूँ। परन्तु हमारे कहे सारशब्दके उपदेशको भी वे भ्रमिक लोग कोई नहीं मानते हैं। अब कहो तो भला! उनका भ्रमसे जाररूप उपपति माने हुए ब्रह्म-ईश्वरादिका धोखा और वाणी-खानिका महाजालरूप बन्धन कैसे छूटेगा? कभी नहीं छूटेगा। उसी जाल-जञ्जालोंमें बँधे हुए सदा चौरासी चक्रमें पड़े अध्यासी जीव दुःख भोगते रहेंगे। अतः अब भी हमारे कहे सत्य निर्णयको मानकर भ्रमजालसे छूट जाओ! ॥ ११ ॥ ६५ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६६ ॥ ❀ ॥

सोई हित बन्धू मोहि भावै। जात कुमारग मारग लावै ॥१॥
सो सयान मारग रहि जाई। करै खोज कबहूँ न भुलाई ॥२॥

टीका; मायामुख-दोहाः—सोइ हित चित सोई बन्धू, मोहिको अधिक पियार ॥ जात कुमारग जीयरा, लावै भक्ति मँझार ॥१॥ सोइ सयाना जीयरा, भक्ति करै मन लाय ॥ करत खोज निशिदिन रहै, कबहुँ न जात भुलाय ॥२॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—वे ही हितचिन्तक, हितकारी बन्धु = भाई, सहायक मित्ररूप भक्त मुझको अत्यन्त प्रिय हैं, वे ही मुझको अच्छे लगते हैं, जो कि संसारके कुमारग = विषय-भोगोंमें जाते हुए जीवोंको हर-प्रकारसे समझा बुझाकर सुमार्गरूप भक्तिके बीचमें लाकर लगा देवें। ऐसे भक्तजन मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। अन्तमें भगवान्के भी वे प्रिय-पात्र बन जाते हैं ॥१॥ गुरुवा लोग कहते हैं—सो वे ही सयान = बुद्धिमान् परम चतुर जीव हैं, जो खूब मन लगाकर भगवान्की भक्ति करते हैं, जीवनभर भक्तिमार्गमें दृढ़ होकर टिके रह जाते हैं। वे दिन-रात भगवान्के दर्शन-की खोज-तलाश करते रहते हैं। इस कारण संसारके मायाजालोंमें जाकर कभी भक्तिको भूल नहीं सकते। किसीके भुलानेपर भी वे भुलाये जा नहीं सकते हैं। ऐसे ही भक्तोंको अन्तमें भगवान्की प्राप्ति होती है। [इत्यादि बताकर भ्रम-धोखेमें डाल रहे हैं] ॥ २ ॥

सो झूठा जो सुतको तजई। गुरुकी दया राम ते भजई ॥३॥
किञ्चित है एक तेज भुलाना। धन सुत देखि भया अभिमाना ॥४॥

गुरुमुखः—सोइ झूठा जो जानिये !, जिव तजि अन्तै जाय ॥ पारख के प्रकाश बल, भजै रामते भाय ॥३॥ थोरेसे अनुमान में, बहुत भुलाने लोय ॥ धन सुतके अभिमान में, बहुतक गये बिगोय ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—सुत = वासनारूप सूत्र एवं मनादिको पकड़कर सत्ता देनेवाले चैतन्य जीवको तुच्छ समझकर, उसे परित्याग करके, अन्यत्र अनुमान-कल्पनासे ब्रह्म-ईश्वरादिको बड़ा मानकर भ्रम-धोखेमें जो चला जाता है, सो उसीको सरासर झूठा भ्रमिक अबोध जानलो ! पारखी सद्गुरुदेवकी दया-दृष्टिके बल एवं पारखबोधके प्रकाशसे राम = अनुमानरूप आत्मा-परमात्मा, ब्रह्म, ईश्वरादि भ्रम-कल्पनाको तोड़-फोड़कर भजई = परित्याग करके भागो ! मिथ्या भावनाको मिटाकर रमैयारामरूप निजस्वरूप सत्य चैतन्य-पदमें सदा शान्त स्थिर हो रहो ! ॥३॥ किञ्चित = थोड़ीसी वाणीकी अनुमान-कल्पना और ध्यानादिमें थोड़ी देरतक तेज = ज्योति-प्रकाश आदि देखकर, उसीमें आनन्दित हो, परमात्माका साक्षात्कार हुआ समझकर बहुत-से भ्रमिक लोग भ्रम-धोखेमें भूले और भी भूलते जा रहे हैं। वाणीके सिद्धान्तरूप भ्रमका धन और सुत = पुत्ररूप शिष्य-शाखाओंकी वृद्धि, मान-महिमाओंको देखकर गुरुवा लोगोंको खूब अभिमान दृढ़ हो गया। उसीमें बहुत-से लोग मुक्ति-पदसे बिगड़-कर भव-बन्धनमें चले गये। अथवा युवती स्त्रीका तेज = चमक-दमक, सौन्दर्य और एक विषयानन्दका सुख, जिसमें विषयासक्त पुरुष भूल रहे हैं, वह भी किञ्चित्-मात्र क्षणिक है। स्त्री, पुत्र, धन, घर, मान-बड़ाईको देखकर संसारी मनुष्योंको बहुत अभिमान दृढ़ हो रहा है। ऐसे खानिजालमें ही आसक्त होकर बहुत-से नरजीव मनुष्य-पदसे बिगड़कर चौरासी योनियोंमें चले गये और भी जा ही रहे हैं। अतः उन दोनों जालोंमें मत भूलो ! ॥ ४ ॥

साखीः—दिया न खताना किया पयाना। मन्दिर भया उजार ॥
मरि गये सो मरि गये। -बाँचे बाँचनहार ॥६६॥

साखीः—दै उपदेश जग बाँधिया, भरम में किया पयान ॥
पढ़ि-पढ़ि बानी मरि गये, बचै सो वो ही जान ॥ ५ ॥

किसीने घरमें दीपक नहीं, खताना=बुझाया; तेल-बाती, दिया-बत्ती वैसे ही जलते हुए छोड़कर घरसे बाहर कहीं दूर चला गया। संयोगवश उस दियासे घास-फूसद्वारा अग्नि पकड़के मन्दिर वा घर जल गया, उजाड़ हो गया। घर भीतर जलकर मरनेवाले मर गये और बचनेवाले कोई-कोई प्रारब्ध और पुरुषार्थसे बच ही गये। तद्वत्; अथवा—जैसे कोई खतान=खतौनीरूप खाताका हिसाब चुक्ता किये बिना कहीं दूर पयाना=चला गया, उधर ही मर गया। उसका शरीररूप मन्दिर भी उजाड़ हो गया। इस प्रकार मरनेवाले तो मर गये। कोई बचनेवाले बचे। सज्जन लोग जीते ही हिसाब चुक्ता कर देते हैं।

तद्वत् पारख-स्वरूपके बोधसे जड़ाध्यासरूप भव-बन्धनका खाता चुक्ता किये बिना बहुत-से जीव जड़ाध्यासी बद्ध होकर मर गये, शरीरको छोड़कर चौरासी योनियोंमें पयाना=चले गये। उनके मनसे माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि मन्दिर भी शून्य आकाशरूप हो गया। फिर वे जाकर पत्रादिसे खबर भी कहाँसे कैसे देंगे? पहले तो जड़ाध्यासी होकर हंसपदसे मर गये। सो वे फिर आयु पूरी होनेपर स्थूल शरीरसे भी मर गये। वासनावश आवागमनमें पड़े दुःखभोगी हुए। और जो जीते ही खानि-वाणी भव-बन्धनको परित्यागकर सर्व अध्याससे रहित निज पारख-स्वरूपमें स्थिर होकर भव-बन्धनसे बचे, वे ही एकमात्र बचनेवाले हुए और होते हैं ॥ ६६ ॥

अथवा गुरुवा लोगोंने भ्रम-कल्पनादिका उपदेश दे-देकर जगत्-जीवोंको खूब बाँध दिया, तब वे सब भ्रम-धोखेमें भूलते-भटकते पयाना=आगे-आगे बढ़ते चले गये। मन्दिर=मनकी मानन्दीसे जो दृढ़ निश्चय किया, सो ब्रह्म तो अन्तमें आकाशवत् शून्य खाली, उजाड़ मात्र ही ठहर गया। प्राप्त कुछ भी नहीं हुआ। तथापि दिन-रात वेद-शास्त्रादि कल्पित वाणीको ही पढ़-पढ़ करके जड़ाध्यासी बद्ध हो-होकर पहले भी बहुत-से लोग मरनेवाले मर गये। मर गये, तो वे मरकर कहाँ गये? आवागमन-चक्रमें ही चले गये। अब भी उसी प्रकार बहुत-से लोग भव-बन्धनमें पड़ते मरते चले जा रहे हैं। अध्यासवश वे भी आवागमनमें पड़ते जा रहे हैं। जो इसके भेदको यथार्थ जाननेवाले पारखी सन्त हैं, सो वे ही कोई बिरले बचे। पारखबोधसे बचनेवाले कोई-कोई बचे। इसी प्रकार अब भी बचनेवाले कोई बचेंगे, ऐसा जानो! ॥५॥ ६६॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६७ ॥ ❀ ॥

देह हलाय भक्ति नहिं होई। स्वाँग धरे नर बहु विधि जोई ॥१॥
धीङ्गी-धीङ्गा भलो न माना। जो काहू मोहि हृदया जाना ॥२॥
मुख कछु और हृदय कछु आना। सपनेहु काहु मोहि न जाना ॥३॥

टीका; ब्रह्ममुख–दोहाः—देह हलाय भक्ति नहीं, स्वाँग धरे जो लोय ॥ सो बानी मोहि भावै नहीं, अनिर्वाच्य मैं सोय ॥१॥ मुखमें तो कछु और है, हृदयामें कछु आन ॥ ते नर मोहि न पाइ हैं, स्वप्नेहु माँहि अयान ॥ २ ॥

ब्रह्ममुखः—ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं—स्थूल देहको इधर-उधर हिलाकर नाचने-गाने, परिक्रमा करने एवं चारों दिशाओंमें दौड़ादौड़ करने मात्रसे तो सच्ची भक्ति नहीं होती है। मनमें शुद्ध सच्चा भाव होना चाहिए! तब देहको स्थिर रखनेसे भी भक्ति हो जाती है। जो अबोध नर-जीव लोग विधिपूर्वक शरीरमें भेषोंके बहुत प्रकारसे स्वाङ्ग बनाकर धारण कर लेते हैं, वे भी सच्चा भक्ति-भाव करना नहीं जानते हैं। स्वाँग धारण करके नरजीव बहुत प्रकारसे मुझ ब्रह्म–परमात्माको जहाँ-तहाँ जोई = ढूँढ़ते हैं। किन्तु इस तरहसे कोई मुझे जान नहीं सकता। क्योंकि मैं तो सर्वाधिष्ठान सर्व व्याकपरूप हूँ॥१॥ धीङ्गी-धीङ्गा = जबर्दस्तीकी धाँधली, धीङ्गा = दुष्टता; धीङ्गी = बदमाशी; द्वैत-प्रतिपादक शास्त्रोंकी वाणी एवं द्वैतवादका खैंचतान; ऐसी वाणी मुझे भलो = अच्छी नहीं लगती है। मैं उसे भला नहीं मानता हूँ; क्योंकि मैं वाणीसे परे अद्वैत ब्रह्म हूँ। जिस किसी ब्रह्मज्ञानीने भी मुझ अद्वैत ब्रह्मको हृदयमें दृढ़ निश्चय करके जाना है, सो उसने फिर मुझे अनिर्वाच्य करके ही माना है। अतः वह भी धीङ्गा = द्वैत-प्रतिपादक दुष्टताकी धीङ्गी = वाणीको अच्छा नहीं मानता ॥१॥२॥ जिसके मुखमें तो कुछ और ही ब्रह्मज्ञानका कथन है और फिर हृदयमें कुछ और ही द्वैतभावका निश्चय आनतान टिका रहता है, ऐसे अधबीचके नरजीव कोई भी अज्ञानता, द्वेष, छल-कपट, दुर्भावके कारणसे मुझ अद्वैत ब्रह्मको जाग्रत्में तो कौन कहे? स्वप्नमें झलक-मात्र भी जान नहीं पाते। जबतक द्वैत-भ्रान्तिका निश्चय बना रहेगा, तबतक अद्वैत ब्रह्मज्ञान उनको नहीं होगा। अतः अद्वैत-भावनाको दृढ़ करो! [इत्यादि कहकर भ्रमा-भुला रहे हैं]॥ २ ॥ ३ ॥

ते दुःख पैहैं ई संसारा। जो चेतहु तो होय उबारा ॥४॥
जो गुरु किञ्चित निन्दा करई। सूकर श्वान जन्म ते धरई ॥५॥

मायामुखः—ते दुःख पैहैं जगत में, चेतहु तो होय उबार ॥
जो गुरु किञ्चित निन्दा करहीं, सूकर श्वान औतार ॥ ३ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—वैसे द्वैतवादी छली–कपटी लोग जीवन-पर्यन्त भी इस संसारमें दुःख ही पावेंगे और मृत्यु होनेपर भी यमलोकमें और चौरासी योनियोंमें पड़े दुःख भोगते रहेंगे। अतएव हे भक्तो! जो तुम अभी चेतोगे, भक्ति, योग, ज्ञानसे अद्वैत ब्रह्म-भावको दृढ़ करोगे, तबतो तुम्हारा निश्चय ही भवसागरसे उबारा = उद्धार, पार हो जायगा। तुम सब दुःखसे पार होकर परमानन्द सुखको पा जाओगे; इत्यादि ॥४॥ जो कोई अनसमझ अपनी अज्ञानतासे किञ्चित-मात्र भी ब्रह्मज्ञानी गुरुकी निन्दा करेगा, फिर वह उस महा पापके कारणसे मरनेपर सूअर और कुत्ते आदि नीच पशु-देह धारण करके चौरासी योनियोंमें जन्मते–मरते महान् दुःख भोगता रहेगा। अतः भूलकर भी कभी गुरुकी निन्दा मत् करो! [इत्यादि बताकर भुला रहे हैं]॥३॥५॥

साखीः—लख चौरासी जीव जन्तुमें। भटकि-भटकि दुःख पाव ॥
कहैं कबीर जो रामहि जानै। सो मोहि नीके भाव ॥६७॥

साखीः—लख चौरासी जीव जन्तु में, भटकि-भटकि दुःख पाव ॥
कहैं कबीर जो रामहि जानै, सो मोंहि नीके भाव ॥ ४ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—गुरु, ईश्वर, वेदादिके निन्दक ब्रह्मज्ञानसे विमुख द्वैतवादी पापी जीव चौरासी लक्ष योनियोंमें छोटे-बड़े देहधारी जीव-जन्तु = पशु, पक्षी आदि प्राणी होकर वहीं बारम्बार जन्मते-मरते, त्रयतापादि दुःख भोगते भटकते-भटकते बहुत दुःख पाते रहेंगे। उनका दुःखभोग फिर कभी नहीं छूटेगा। कहैं कबीर = गुरुवा लोग कहते हैं-अब जो सज्जन भक्त लोग सगुण-निर्गुण परमात्मा रामको अच्छी तरहसे सत्य जानकर रामनाम-स्मरणमें ही दिन-रात लगे रहेंगे, उनका ही उद्धार होगा। सो वे ही मुझे नीके = बहुत अच्छे लगते हैं। उनके ऊपर हमारा सच्चा भाव, प्रेम-प्रीति लगी रहती है। भगवान्का भी उनपर दया-भाव होता है। [इत्यादि रोचक-भयानक वाणी सुनाकर अबोध लोगोंको खूब फँसा रहे हैं] ॥४॥६७॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६८ ॥ ❀ ॥

तेहि वियोग ते भयउ अनाथा। परेउ कुञ्जवन पावै न पन्था ॥१॥
वेदो नकल कहै जो जाने। जो समझै सो भलो न माने ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—तेहि वियोग ते जीव यह, भयो है दीन अनाथ ॥ पर्यो बहु बानी जाल में, कहूँ न सूझै पाथ ॥१॥ वेद नकल जो कहत है, सो जानै जो कोय ॥ जो कोइ जानै बापुरा, भल अनुमानै सोय ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—उसी ब्रह्म, ईश्वरादि कल्पित मालिकके विरह-वियोगसे यह अबोध जीव अत्यन्त दीन-हीन, मलिन, अनाथ हो गया। वैसे विरही अनाथ होकर उसे खोज-तलाश करते, ढूँढ़ते भटकते-भटकते कुञ्जवन = लताच्छादित स्थान, घनघोर जङ्गलमें जा पहुँचा। अब ऐसी झाड़ीमें जाकर फँस गया, अरुझ पड़ा कि वहाँसे निकलनेका पन्था = मार्ग ही कहीं नहीं मिलता। इसी प्रकार कुञ्जवनरूप कल्पित बनावटी असत्य वाणीके महाजालमें पहुँचकर अबोध जीव खूब फँस गया, मिथ्या मानन्दीमें जकड़कर खूब बँध गया। इस कारण उस महाजालसे छूटकर निकल जानेका मुक्ति-मार्ग उसे कहीं प्राप्त नहीं होता है। विवेक-दृष्टि न होनेसे कहीं पन्थ ही नहीं सूझता है। अतएव खानि-वाणीके महाजालोंमें अबोध जीव सदासे बँधते चले आ रहे हैं; बिना पारख ॥१॥ नकली वेदवाणी भी भीतर-बाहर जो कुछ नकल है, उसीको वर्णन करके ब्रह्म-ईश्वरादिको सत्य कहती है। इसलिए असल सत्य स्वरूपका पता वेद और वेदवादी लोग भी नहीं जानते हैं। जो वेदवाणीको पढ़ना जानते हैं, सो वे ब्रह्म-ईश्वरादिको ही जगत्का कर्त्ता सत्य मानते हैं। जो कोई वेद,

शास्त्रादिका अर्थ करना जानते हैं, वे बेचारे मिथ्या अनुमान-कल्पनाको ही 'अच्छा हितकारी सत्य है'—ऐसा कहकर अच्छी तरहसे वर्णन करते हुए आप भी भूलते, औरोंको भी भुलाते हैं। परन्तु सत्यन्यायी परीक्षक पारखी सन्त वेदके कहे कल्पित कथनको नकलरूप असत्य जानते हैं। पारख-दृष्टिसे सत्यासत्यको ठीकसे समझते हैं, इसलिए मिथ्या वाणीकी भ्रम-कल्पनाको वे कदापि अच्छा नहीं मानते हैं। भ्रम-भूलकी मिथ्या मानन्दीसे जीवका कभी हित-कल्याण नहीं होता है। अतः उसे त्यागकर पारखबोधको ग्रहण करो ! ॥ २ ॥

नटवट विद्या खेले जो जानै। तेहि गुणको ठाकुर भलो मानै ॥३॥
उहै जो खेलै सब घट माहीं। दूसर कै कछु लेखा नाहीं ॥४॥
भलो-पोच जो अवसर आवै। कैसहुकै जन पूरा पावै ॥५॥

मायामुखः—योग ध्यान जो करत है, प्रेम लक्षणा होय ॥ तेहिके गुण परमात्मा, मानि लेत भल सोय ॥३॥ उहै एक परमातमा, खेलै सब घट माँहि ॥ एक दोयको तहाँ कछु, लेखा कहा न जाहि ॥४॥ भली बात है अबहिके, जो आवै यहि बेर ॥ कैसेहु जन ब्रह्म पायके, तजे चौरासी फेर ॥ ५ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—नटवट=नटवत् योगादि विद्यासे चौरासी आसन लगाकर योगादि साधनाओंमें जो खेलना जानते हैं, उन्हींके भक्ति-भाव आदि विशेष गुणको ठाकुर=मालिक भगवान् अच्छा मान लेते हैं ॥३॥ अथवा जो साधक योग-ध्यानादि साधनाएँ करता है और प्रेम-लक्षणारूप दशधाभक्ति संयुक्त जो होता है, सो उसी अनन्य निष्ठावान् प्रेमी साधक भक्तके भक्ति-भाव, ज्ञान-ध्यानादि गुणको ठाकुर=मालिक परमात्मा बहुत अच्छा, भला समझकर मान लेता है, अन्तमें उसे अपनेमें मिला लेता है ॥३॥ वही एक ब्रह्म-परमात्मा जो है, सो सब प्राणियोंके घटोंघटमें रहकर सब जीवसे स्वयं खेलता है और सबको भी खूब खेलाता रहता है। सबके घटमें बैठकर खेलने-खेलानेवाला वही एक है। दूसरे द्वैतका एवं एक, दो, तीन, चारका कुछ भी लेखा=हिसाब, लेखा-जोखा वहाँपर कुछ नहीं है। इसलिए कुछ लेखा कहा नहीं जा सकता है। एक अद्वैतमें दूसरेकी गिनती कुछ हो ही नहीं सकती है ॥४॥ चाहे कोई भलो=अच्छा, ऊँच, शक्तिमान् हो और चाहे पोच=छोटा, नीच, असक्त हो, पहले जो कुछ भी हो; परन्तु भगवान्के भक्ति-भाव, प्रेम, निष्ठाके अवसर=समय, मौका, शुभ संयोगसे भगवान्के सम्मुखमें जो आ जाता है, फिर वह जन=भक्त कैसे भी करके भगवत्कृपासे भक्ति-भावको पूराकर अन्तमें परम पद ही पा जाता है ॥५॥ अतएव सबसे अच्छी, भली बात तो यही है कि अब वर्त्तमानके मौकेमें इसी समय "सर्वधर्मान्परित्यज्य" (गीता-१८॥६६ में) कहे अनुसार सर्व धर्मोंको परित्याग करके एक-मात्र भगवान्की शरणमें जो आ जायगा, तब तो वह अवश्य भगवत्स्वरूपको प्राप्त हो जायगा। अथवा भली बात तो यही है कि जो इसबार ब्रह्मज्ञानमें आ जावेगा,

वह भक्तजन कैसे भी करके अद्वैत ब्रह्मपदको प्राप्त करेगा। फिर उसके चौरासीका फेरा सर्वथा छूट जावेगा। ब्रह्ममें मिलकर फिर वह ब्रह्मरूप ही हो जायगा। [इत्यादि दृढ़ाकर भ्रम-धोखेमें ही डाल रहे हैं]॥ ५॥

साखीः—जेकर शर तेहि लागे। सोइ जानेगा पीर॥
लागे तो भागे नहीं। सुखसिन्धु निहार कबीर ॥६८॥

साखीः—जाकी सुरति लगी ब्रह्ममें, सो जानेगा पीर॥
सुरति लगे तो टरै नहीं, सबमें निहारि मन थीर॥ ६॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—युद्धस्थलमें जिसको शर=बाण लगता है, उसके पीर=पीड़ा, दुःख-दर्दको वही जानता है। बाण लगनेपर भी जो नहीं भागता है, समरभूमिमें डटा रहता है, वही विजय-सुखका समुद्र देख पाता है॥६८॥ तद्वत् जिसकी शर=भक्तिकी बाणीके असरसे सुरतिरूप लक्ष्य एक परब्रह्म परमात्मामें ही लगी है, उससे होनेवाली पीर=पीड़ा, व्यथाके अनुभवको वही जानेगा और दूसरे दर्शक लोग इस बातको नहीं जान सकते हैं। भक्ति, ज्ञानकी वाणी एवं सुरति लगने-पर उसे तो ऐसा दृढ़ करके टिकाये रखना चाहिये कि कभी रत्तीभर भी उससे इधर-उधर मन भागने न पावै। लक्ष्य विचलित होकर कभी न टरै, हटने न पावै। ऐसा होनेपर अन्तमें एक अद्वैत ब्रह्म-परमात्माको ही सबमें परिपूर्ण देख करके अपने मनको स्थिर, शान्त किये रखना! तब कबीर=हे जीव! सुखसागररूप ब्रह्ममें तुम मिल जाओगे! [इत्यादि कहकर खूब भ्रमा रहे हैं॥ ६॥ ६८॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ६९ ॥ ❀ ॥

ऐसा योग न देखा भाई! भूला फिरै लिये गफिलाई ॥१॥
महादेवको पन्थ चलावै। ऐसो बड़ो महन्त कहावै ॥२॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—ऐसा योग न देखिया, भूला लिये गफिलाय॥
महादेवको पन्थ चलावै, बड़ो महन्त कहाय॥ १॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे भाई योगी लोगो! जैसा जिस प्रकारका योग तुम लोग वर्त्तमानमें प्रदर्शन कर रहे हो; ऐसा भूठा स्वाँग, तमाशारूप योग तो पहले और कहीं नहीं देखा गया। निज सत्य स्वरूपको सर्वथा भूलकर भ्रम-धोखेमें भूले फिरते हो। अन्तमें गाफिल, मूढ़, अचेत हो जाते हो। अथवा इनके जैसा पाखण्डका योग तो और कहीं देखा नहीं जाता। सत्यको भूलकर मिथ्यामें भटकते फिरते हैं, गाफिलीको लेकर धोखेमें पड़े रहते हैं॥१॥ महादेवके नामसे अपने मनमाने योग और भोगका पन्थ=मार्ग चलाते हैं,औरोंको भुला-भ्रमाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। बहुत-से जमीन-जायदाद इकट्ठा करके ऐसे बड़े मठाधिपति, बड़े महन्त, मान्यवर कह-लाते हैं। परन्तु सत्यासत्यका कुछ भी बोध-विचार इनमें नहीं है। भ्रम--धोखेमें ही

भूले पड़े रहते हैं, औरोंको भी भुलाते रहते हैं; बिना विचार ॥ १ ॥ २ ॥

हाट बजारे लावै तारी। कच्चा सिद्ध माया पियारी ॥३॥
कब दत्ते मवासी तोरी। कब शुकदेव तोपची जोरी ॥४॥
नारद कब बन्दूक चलाया। व्यासदेव कब बम्ब बजाया ॥५॥

हाट–बजारके बीचमें, निश्चय लावैं तारि ॥ कच्चा सिद्ध सो जानिये, माया लागे प्यारि ॥२॥ तोरि मवासी दत्त कब ?, शुक कब तोप चलाय ? ॥ नारद कब बन्दूक चलाई, व्यास कब कहो बम्ब बजाय ? ॥ ३ ॥

हाट=साप्ताहिक बाजार, जो ग्रामोंमें भरते हैं। वैसे हाटकी दुकानके सामने और बजारे=शहरोंके बाजार इत्यादि जन-समूहके बीचमें जाकर तारी=योगकी एक मुद्रा, प्राणायाम, ध्यान, समाधि आदि लगाकर दिखलाते हैं। लोगोंको अनेक प्रकारसे ठगकर द्रव्य कमानेका निश्चय किये रहते हैं। इन योगी लोगोंके मनमें तो माया = धन-सम्पत्ति आदि अधिक बटोरनेमें प्रेम लग रहा है। माया ही उनको प्यारी हो रही है। इसीलिए ऐसा स्वाँग प्रदर्शन करके अधिक धन बटोरनेमें लगे हैं। इस कारण ये योगी लोग कच्चा सिद्धरूपमें ठग बनकर लोगोंको ठगते जा रहे हैं; ऐसा जानलो ! ॥२॥३॥ अब यह तो बतलाओ—दत्तात्रेय अवधूतने मवासी=छोटे गढ़रूप कीलाको कब ? कहाँ ? किसका तोड़ा था ? किसीका नहीं। और अवधूत शुकदेवने भी तोपची= तोप दागनेवालेका काम कब ? कहाँ जुटकर किया था ? कहीं नहीं। अर्थात् दत्तात्रेय-ने किसीका कीला नहीं तोड़ा था और शुकदेवने भी तोप नहीं चलायी थी। फिर तुम उनके अनुयायी दत्तपन्थी सम्प्रदायी बनकर वैसे अनीति–अधर्मका काम कैसे करते जा रहे हो ? ॥ ४ ॥ फिर भक्तोंमें अग्रगण्य नारदने भी कब कहाँपर बन्दूक चलायी थी ? और उसी प्रकार व्यासदेवने भी कब कहाँपर बम्ब=नगाड़ा, रण-नाद, जुझाऊ बाजा बजाया था ? सो तो कहो ! फिर तुम लोग नागे, निर्वाणी, संन्यासी आदि बनकर कैसे बन्दूक चलाकर लड़ते हो ? कैसे नगारा बजाकर युद्ध करते हो ? कैसा विपरीत कार्य कर रहे हो ? ॥ ३ ॥ ५ ॥

करहिं लराई मतिके मन्दा। ई अतीत कि तरकस बन्दा ? ॥६॥
भये विरक्त लोभ मन ठाना। सोना पहिरि लजावै बाना ॥७॥
घोरा–घोरी कीन्ह बटोरा। गाँव पाय जस चले करोरा ॥८॥

करै लड़ाई मतिके मन्दा, ई अतीत कि तरकस बन्द ? ॥ होय विरक्त लोभ मन ठानै, अज्ञानी मतिमन्द ॥४॥ सोना पहिरि लजावै बाना, घोरा घोरि बटोरि ॥ गाँव पाय जस चले करोरा, लीन्हीं सैना जोरि ॥ ५ ॥

षट्दर्शनके भेषधारी ये मन्दमतिके लोग व्यर्थमें मूढ़ बनकर परस्पर लड़ाई-झगड़ा करते रहते हैं। अपने पासमें धनुष-बाण, तलवार, छूरी, भाला, त्रिशूल, बन्दूक, पिस्तौल इत्यादि हथियार लिये बाँधे फिरते हैं। इस कारण अब यह अतीत=त्यागी, विरक्त संन्यासी आदि साधुके वैराग्यका चिन्ह है कि तरकस-बन्दा=तीर रखनेकी नली, जो कमरपर बाँधी जाती है, उस तूणीरको तरकस कहते हैं; वैसे हथियार-बन्द लड़ाकू सिपाहीका चिन्ह प्रत्यक्ष धारण किये हैं। इस कारण इन नागे, वैरागी, योगी आदि हथियारबन्द शस्त्रधारियोंको अब विचार करो—त्यागी साधु कहना? कि शस्त्रधारी फौजी सिपाही कहना? जैसा चिन्ह बाहर प्रत्यक्ष लिये रहेंगे, वैसे कहे भी जायेंगे। नाम ही मात्र और बाहरके स्वाँग-मात्र भेषहीसे वास्तवमें क्या लाभ होता है? कुछ नहीं। शुद्ध रहनि-रहस्य, गुण-स्वभाव, कर्त्तव्य भी अच्छा रहनेसे सबका लाभ होगा। अतएव बोध-वैराग्य, रहनि-रहस्यको ही पूर्णतासे धारण करना चाहिये! इसके बिना केवल बाह्य भेषके अभिमान-मात्रसे किसी जीवका कभी हित-कल्याण नहीं हो सकता है। अतः साधुओंको सब प्रकारसे सद्गुण ही धारण करना चाहिए! ॥६॥ कोई विरक्त साधुका भेषधारी तो हो गये; परन्तु जो विरक्त भेषधारी हो करके भी मनमें लोभ-लालचको स्थापित किये रहते हैं, उसीके परिणाम-स्वरूप सोनेके आभूषणादि अपनी देहमें पहनकर सबको प्रत्यक्ष दिखलाते हैं। इस प्रकार सुवर्ण पहनकर बाना=वैराग्य के भेषको भी लज्जित कराते फिरते हैं। वैसे लोग वास्तवमें मतिमन्द महा अज्ञानी ही हो रहे हैं। भेषधारी साधुको वैसा नकली विपरीत कार्य करनेवाला कभी नहीं होना चाहिए! ॥४॥७॥ वैसे मठधारी गुरुवा लोग घोड़ा, घोड़ी, ऊँट, हाथी इत्यादि वाहन और अनेक वस्तु बटोरकर बहुत-से बड़े-बड़े स्थानोंमें इकट्ठा कर रक्खे हैं। कुछ गाँव, जमीदारी, जागिरी, मालगुजारी और बहुत-सी खेत-बाड़ी आदि जमीन इत्यादि प्राप्त करके, जैसे करोड़पति फूला फिरता है, वैसे ही खूब अभिमान, दम्भ, छल-कपट, पाखण्डमें अकड़कर बड़े स्वाँग दिखाते हुए चलते-फिरते हैं। जमीन आदिकी व्यवस्था-के लिए कुछ तामसी लोगोंकी लड़ाकू सेना भी जोड़ लिये हैं। इस प्रकार ये लोग बिना विचार चाल-कुचालसे मनमाने चल रहे हैं। ऐसे लोगोंके भ्रमजालमें जिज्ञासु लोगोंको नहीं पड़ना चाहिए! ॥ ५ ॥ ८ ॥

साखीः—सुन्दरी न सोहै। सनकादिकके साथ ॥
कबहुँक दाग लगावै। कारी हाँड़ी हाथ ॥ ६९ ॥

साखीः—माया शोभा देत नहीं, भेषधारिन के साथ ॥
कबहीं दाग लगावहीं, कारी हाँड़ी हाथ ॥ ६ ॥

सुन्दरी=प्रत्यक्षमें स्त्री आदि मोटी माया और राजसी ठाटबाट, अधिक सम्पत्ति, जगत्के विशेष कारोबार इत्यादि मोटी और झीनी, दोनों प्रकारकी माया सनकादिक=त्यागी-वैराग्यवान् भेषधारियोंके साथमें नियमविरुद्ध मनमाने रखना कदापि शोभा नहीं देता है। यदि कोई बिना विचारसे मनमौजी होकर अपने सङ्ग-साथमें उन माया-

को टिकाकर रक्खेगा, तब तो समझ लो कि काली हाँड़ीको अपने हाथमें लिये रखने-वालोंके समान कभी-न-कभी खानि-वाणीकी काली माया भीतर-बाहरसे काला दागरूप आसक्ति, मोह-ममतासे होनेवाला कलङ्क एवं जड़ाध्यासका विकाररूप बन्धन उसे वह अवश्य लगा ही देगी। मायाके सङ्ग-साथमें रहनेवालोंको दाग अवश्य लग ही जायगा। दाग लगाये बिना सहजमें वह किसीको नहीं छोड़ती। इसलिए सब प्रकारसे मोटी-झीनी मायाको परित्याग ही करो! ॥ ६ ॥ ६६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७० ॥ ❀ ॥

बोलना कासो बोलिये रे भाई! बोलत ही सब तत्त्व नसाई ॥१॥
बोलत बोलत बाढु विकारा। सो बोलिये जो पड़े विचारा ॥२॥
मिलहिं सन्त बचन दुइ कहिये। मिलहि असन्त मौन होय रहिये ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—बोलना कासो बोलिये, देखु कहाँको भाय ? ॥ मैं ही ब्रह्म जब बोलिया, तबते जीव नसाय ॥१॥ मन अनुमाने ब्रह्म भौ, एकन एक दृढ़ाय ॥ बाढ़ो ब्रह्म विकार तब, ब्रह्महि जगत कहाय॥ २॥ सोइ बचन अब बोलिये, जो कछु परे बिचार॥ तत्त्वमस्यादि जाल सब, सो त्यागै निरधार ॥३॥ मिलहिं सन्त कोइ पारखी, ताहिं बचन कहु दोय ॥ जीवरूप यह सत्य है, औ बहु मिथ्या होय ॥४॥ मिलहि भ्रमिक अज्ञान कोउ, तहाँ रहो चुपकाय ॥ सो नहिं चीन्हें मनुष्य पद, धोखे में बौवाय॥ ५ ॥

गुरुमुखः—हे भाई! निर्णयकी बात बोलना तो किससे बोलना ? क्योंकि जो उसे समझकर ग्रहण करे, उससे बोलना ठीक है। न समझनेवाले हठी, अविचारी लोगोंसे बोलते ही बोलनेवालेका सार तत्त्व, अभिप्राय; ये सब भी विनाश हो जाते हैं। अतः कोई समझदारसे बोलनेमें ही ठीक रहता है। जिस-तिससे बोलना अच्छा नहीं होता है ॥१॥ अथवा सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक एक अद्वैत ब्रह्म है; ऐसा बोलना= वाणी, हे भाई। तुम किससे बोलते हो? क्योंकि जब तुम्हारे मतमें चराचर सम्पूर्ण संसार एक ब्रह्म-स्वरूप ही है, उसके सिवाय और कुछ भी द्वैत तीनकालमें नहीं है—ऐसा कहते हो। तब ऐसी वाणी बोलना, कहना, सुनना, समझना, चलना इत्यादि कार्य एकमें कहाँ हो सकते हैं? तुम किससे बोलते हो? ब्रह्मसे भिन्न और दूसरा तुम किसको-कहाँपर देख रहे हो? द्वैत-भावना करनेवाला जीव कौन है? सो कहाँसे आया? इस बातको विचार करके देखो और कहो! परन्तु 'अद्वैत ब्रह्म मैं ही हूँ' जबसे ऐसा तुमने बोला, ऐसा बोलते ही तभीसे तुम्हारे जीवके सत्य-विचारादि सब सार तत्त्व विनाश हुए और हो रहे हैं। अब भी यथार्थ समझकर भ्रम-धोखेको त्यागो! ॥१॥ बिना विचारसे मनमाने ज्यादा बोलते-बोलते अविचारी लोगोंमें विकार बढ़ गया और बढ़ता जाता है। इसलिए सो ऐसी वाणी बोलो, जो कि विवेक-विचारादि

तुम्हें प्राप्त हों। जिससे जीवका बन्धन छूटै और चैन पड़े ॥२॥ अथवा भ्रमिक लोगोंने मनकी अनुमान-कल्पनासे वाणीद्वारा—कोई एक ब्रह्म है, ऐसा कहा और माना, तब ब्रह्म उत्पन्न हुआ। वही भ्रमरूप ब्रह्मज्ञानकी वाणी बोलते-बोलते एक-ने-एकको क्रमशः दृढ़ाते चला आया। इस प्रकार परम्परासे बोलते-बोलते, दृढ़ाते--दृढ़ाते उसी अद्वैत ब्रह्मका भ्रमरूप विकार खूब बढ़ता गया, तब तो अन्तमें वही एक ब्रह्म ही जगत-रूपमें परिपूर्ण व्यापक कहलाया। पुनः जगत् ही ब्रह्मरूपमें ठहर गया। जगत्से ब्रह्म कुछ न्यारा नहीं ठहरा ।।२।। अतएव हे सन्तो! अपने विवेक-विचारमें परीक्षा-दृष्टिसे जो सत्य ठहरे, वैसा ही सत्य वचन अब अपने मुखसे बोलो! जिससे सुननेवालोंको भी सत्यका विचार प्राप्त हो, मिथ्या भ्रम छूटे। पारखबोधका निश्चय करके तत्त्वमस्यादि वाणीके सब मिथ्या जालको परित्याग करो! ।।३।। यदि कहीं कोई पारखी सन्त--महात्मा और सत्यके जिज्ञासु श्रद्धालु मनुष्य तुमको मिल जावें, तब तो उनको अपना दो वचन, यथार्थ निर्णयका सारशब्द कहकर सुनादो! एक तो निज चैतन्य जीवका पारख-स्वरूप, यही नित्य--सत्य है। और दूसरी बहुत प्रकारकी वाणी--कल्पना एवं संसारके सम्पूर्ण विषय-जाल वास्तवमें मिथ्या हैं; किन्तु जीवको वे ही भव-बन्धन-कारक हैं। इन्हें परखकर त्यागो! ।।४।। यदि कहीं कोई अज्ञान-ग्रसित भ्रमिक गुरुवा लोग और हठी--शठी संसारी अज्ञानीजन मिल जावें, तब तो वहाँपर मौन धारण करके चुपचाप शान्त हो रहो! कुछ मत् बोलो! क्योंकि सो वैसे असन्त अविचारी लोग मनुष्य-पद=हंसपदको बिल्कुल ही नहीं पहचानते हैं। इसलिए वे सब तो भ्रम-धोखेमें पड़कर पागलवत् हो रहे हैं। इसलिए वहाँ मौन हो रहना ही अच्छा है ॥ ५ ॥ ३ ॥

पण्डित सो बोलिये हितकारी। मूरख सो रहिये झखमारी ॥४॥
कहहिं कबीर अर्ध घट डोलै। पूरा होय विचारले बोलै ॥५॥७०॥

मिलै कोइ पण्डित चतुर, औ निज खोजी भाय ॥ तासों हितकर बचन कहो, जाते तपन जुड़ाय ॥६॥ मिलै मूर्ख कोइ मनमती, तासो कछू न बोल ॥ मौन गहि रहु जीवमें, वाक्य न करो अडोल ॥७॥ ज्यौंलों अर्ध घट जल रहे, डोलत रहे सो नीर ॥ जबलों हंसा ब्रह्ममें, तौंलों नाहीं थीर ॥८॥ पूरा होय बिचार ले, गुरु पारख बल थीर ॥ सो बोले गुरुबुद्धि ले, शुद्ध बचन गम्भीर ॥९॥

यदि कभी कहींपर कोई बुद्धिमान् चतुर पण्डित समझदार लोग तुमको मिलें, और फिर उनको अपने हित--कल्याणकी खोज--तलाश करनेकी सत्य भावना एवं सत्यकी जिज्ञासा भी हो, तब तो उनसे प्रेमपूर्वक हितकर सत्यन्याय--निर्णयके वचन खुलासा करके कहो! हितकी बात ही बोलो! जिससे उनके हृदयके अज्ञानकी ज्वाला, ताप मिटकर शीतल--शान्त हो जाय ॥६॥ और यदि कहीं कोई निपट मूर्ख, पठित वा अपठित मूर्ख, मनमति, प्रपञ्ची, बकवादी लोग मिल जायँ, तब तो वहाँ उनसे कुछ भी मत् बोलो! झखमारी=वृत्तिको शान्त करके, लाचार हो मौन ग्रहण करके अपने चैतन्य

जीवके पारख-स्वरूपमें ही निश्चल स्थिर हो रहो ! वहाँ उनसे वाक्यसे बोल-चालरूप डोलायमान् कुछ मत् करो ! अडोल हो रहो ! ॥७॥४॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—जबतक अर्धघट = घड़ेमें आधा जल बना रहता है, तबतक वह जल ले चलनेमें चञ्चल होकर इधर-उधर डोलता-फिरता, आवाज करता, हिलता और गिरता रहेगा। जलसे पूरा भरा हुआ घड़ा शान्त, स्थिर रहेगा। तद्वत् हंसरूप चैतन्य जीव जबतक ब्रह्मके भ्रममें और जगत्-विषयोंकी आसक्तिमें पड़ा रहता है, तबतक अर्धघटके समान होनेसे वह बकवाद करता, चञ्चल होता रहेगा। इससे स्वरूपकी स्थिरता, मुक्तिपद-की निश्चलता इसकी नहीं होती है। वह कभी स्थिर हो नहीं पाता है। सदा भव-बन्धनमें ही डोलता रहता है ॥८॥ विवेक-विचारसे सच्चे पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-द्वारा पारखबोधको लेकर जब कोई नरजीव पूर्ण स्थितिवान् हो जाता है, तब सद्गुरु-की कृपा और पारखबोधके बलसे निज चैतन्य-स्वरूपमें वह सदा शान्त, निर्भ्रान्त, स्थिर, निर्बन्ध मुक्त हो जाता है। सो वैसे स्थितिवान् सन्त गुरुबुद्धिसे, विवेक-विचारसे सारशब्दको ही ले करके शुद्ध, गम्भीर, सत्य वचन, न्याय-निर्णयकी गुरुमुख वाणी बोलते हुए जिज्ञासुजनोंकी भ्रम-भूल छुड़ा देते हैं। इसी प्रकार पूरा पारखी होकर गुरु-विचारको ले करके सत्य वचन बोलो ! ॥ ९ ॥ ५ ॥ ७० ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७१ ॥ ❀ ॥

सोग बधावा जिन्ह समकै माना। ताकी बात इन्द्रहु नहिं जाना ॥१॥
जटा तोरि पहिरावै सेली। योग युक्तिकी गर्भ दुहेली ॥२॥

टीका; मायामुख-दोहाः-हर्ष शोक जिन सम कियो, दुःख सुख दोउ सम जाहिं ॥ ताकी बातके मर्मको, इन्द्रहु जानत नाहिं ॥१॥ गुरुमुख—मस्तक जटा बढ़ावहीं; हाथ कमण्डलु देय ॥ योग युक्ति सिखलावहीं, गर्व बानि परमेय ॥ २॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—जिन ब्रह्मज्ञानी परमहंसने सोग = शोक-सन्ताप और बधावा = बधाई, हर्ष, मङ्गलोत्सवका उपहार; ऐसे हर्ष-शोकको एकसमान मान लिया, जिनको दुःख-सुख दोनों एक समान भासते हैं, एक अद्वैत ब्रह्मके सिवाय दूसरा कुछ द्वैत नहीं भासता है, उनकी बातके मर्मको देवताओंका राजा इन्द्र भी नहीं जान सकता है; फिर और कोई उनकी बातको क्या जानेगा ? इत्यादि ॥ १ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—योगी लोग चेले बनाते समय उसका मूँड़ मुड़ा-कर अपने शिरकी कुछ जटा तोड़कर, उसकी 'सेली' नामक माला बना करके चेलेके गलेमें पहना देते हैं। तत्पश्चात् योगी चेलेके मस्तकमें जटा बढ़ाने लगा देते हैं, कानमें कुण्डल पहना देते और हाथमें कमण्डलु दे देते हैं, नित्यप्रति योगकी युक्ति-प्रयुक्ति सिखलाते जाते हैं। ऐसी योग-युक्तिकी वाणीका गर्भ = गर्व, अहङ्कार, दुहेली = दुःसाध्य-कठिन अभिमान बढ़ा लेते हैं। परमेय = प्रमेय, प्रमाण-साध्य वाणीका अभिमान परिपुष्ट करते हुए भ्रम-धोखेमें बँधे रहते हैं; बिना विचार ॥ २ ॥

आसन उड़ाय कौन बड़ाई ? जैसे कौवा चील्ह मिड़राई ॥३॥
जैसी भीत तैसी है नारी । राज पाट सब गने उजारी ॥४॥

आसनहू के उड़ाय से, कौन बड़ाई भाय ? ॥ जैसे गगनके बीचमें, काग चील्ह उड़ि जाय ॥३॥ जैसे देखत भीतको, तैसी देखै नारि ॥ राज पाट जस गनत हैं, तैसी गनै उजारि ॥ ४ ॥

हे भाई ! योगी लोग बैठनेके आसनको ही ऊपर उड़ाकर दिखाते हैं; यदि ऐसा कहोगे तो ऐसे आसनको बाजीगरी युक्ति सीखकर उड़ानेसे उनकी कौन-सी बड़ाई हुई ? कुछ भी नहीं। क्योंकि गगन-मण्डलके बीचमें जैसे—काग, चील और गिद्ध इत्यादि पक्षीगण तो अपने-आप सहज, स्वाभाविक रीतिसे ही उड़ते चले जाते हैं; मिड़राई = मण्डल बाँधकर उड़ते, चक्कर लगाकर मड़राते भी रहते हैं। फिर कहो— उससे उनकी कौन बड़ाई है ? कोई भी बड़ाई, विशेषता नहीं है। वैसे ही योगी लोगोंकी भी बाजीगरी तमाशा दिखानेसे कोई विशेषता नहीं ठहरती है ॥३॥ योगी-ब्रह्मज्ञानी लोग भीत = दीवार आदि जड़ पदार्थको जैसे सब देखते हैं, वैसा ही स्त्रीको भी भीतके समान देखते हैं। इसलिए स्त्रीके प्रत्यक्ष स्पर्श, भोगादिसे भी अपनेको बन्धन नहीं मानते हैं। जैसे भीतको पकड़नेमें दोष नहीं, वैसा स्त्रीको पकड़नेमें भी दोष नहीं मानते हैं। दूसरी ओर जैसे राज-पाटकी विशेषताकी गिनती होती है, वैसा ही उजारि = उजाड़, मैदान, शून्य स्थानादि सबको भी ब्रह्मरूपमें ही गिनते वा समझते हैं। राजपाट वा उजाड़को भी एकसमान ही गिनना वा समझना चाहिए ! इससे राजपाट-में भी कोई बन्धन नहीं होता—ऐसा कहते हैं ॥ ४ ॥

जस नरक तस चन्दन जाना । जस बाउर तस रहैं सयाना ॥५॥
लपसी लौङ्ग गने एक सारा । खाँड़ छाँड़ि मुख फाँके छारा ॥६॥

जैसा देखै नर्कको, तैसा चन्दन जान ॥ जैसा बाउर रहत है, ऐसा रहै सयान ॥५॥ ब्रह्म जगत सम गनत है, खाँड़ राख सम होय, छाँड़ै मूरख खाँड़को, फाँके राख सँजोय ॥ ६ ॥

अघोरी परमहंस लोग जैसा नरक = मल-मूत्र नर्क है, वैसा ही चन्दनको भी जानते हैं। और फिर बाउर = पागल जैसा रहता है, उसी प्रकार सयाना = चतुर, पण्डित लोग भी परमहंस होनेपर पागलवत् ही रहते हैं ॥५॥ अथवा जैसे सब लोग नर्कको अशुद्ध, घृणितरूपमें देखते हैं, वैसा ही परमहंस लोग चन्दनको भी नर्कवत् ही जानते वा मानते हैं। और जैसा बाउर = पागल नङ्ग-धड़ङ्ग बेढङ्गसे पशुवत् ही रहता है, वैसा ही सयाना बननेवाले विज्ञानी लोग भी पागलवत् पशुके समान स्वेच्छाचारी रहते हैं ॥५॥ लपसी = एक प्रकारके पतला मीठा हलुवा आदि पदार्थको और लौङ्गके समान तीखा, तीता, खारा पदार्थको भी वे एकसमान ही गिनते वा समझते हैं। इसलिए खाँड़ =

कच्ची शक्कर, राब, गुड़, चीनी आदिको छोड़कर अपने मुखमें छारा = राख, नमक, धूल आदि तो नहीं फाँकते हैं। क्योंकि वे चीज खायी नहीं जा सकती हैं। यदि कोई खाँड़ छोड़कर मुखमें राख फाँके तो उसकी मूर्खताके सिवाय और क्या ठहरेगा ? ॥६॥ अथवा लपसी = ब्रह्मको और लौङ्ग = जगत्; इन दोनोंको भ्रमिक लोग एकसमान ही एकरूपमें गिनते वा समझते हैं। उसी प्रकार खाँड़ = चैतन्य जीवको और राख = जड़ पञ्च तत्त्व; इन दोनोंको भी एकसमान ही हैं, उन दोनोंमें ब्रह्म व्यापक है—ऐसा कहते हैं। इस कारण अन्तमें महामूर्ख बनकर खाँड़को छोड़ करके, राखको एकत्र बटोर करके अपने मुखमें फाँक लेते हैं। अर्थात् सर्वाधिष्ठान ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा कहकर जगत्रूप स्वयं बन जाते हैं। अतः भ्रम--धोखेके बन्धनमें पड़े रहते हैं; बिना विचार ॥ ६ ॥

साखीः—इहै विचार विचारते। गये बुद्धि बल चेत ॥
दुइ मिलि एकै होय रहा। मैं काहि लगाऊँ हेत ? ॥७१॥

साखीः—यह बिचार करते-करते, नाना प्रकारके बोध ॥ कैवल्य से चेतन नशा, जगत ब्रह्म मिलि सोध ॥७॥ आत्मा निश्चय सबन कियो, यह धोखेकी नाव ॥ सब बूड़े अनुमान में, मैं कासों प्रीति लगाव ॥ ८ ॥

यही अद्वैत ब्रह्मको विचारते--विचारते शुद्ध बुद्धि, ज्ञानका बल और चेतनता, होश; ये सब विलीन हो गये। जड़ और चैतन्य, गुरु और चेले; ये दोनों मिलकर चराचरमें परिपूर्ण व्यापक एक अद्वैत ब्रह्म सर्वाधिष्ठान अपनेको मानकर भ्रमिक जड़ाध्यासी बद्ध हो रहे हैं। अब कहो—मैं किससे सत्य बोध देनेका प्रेम लगाऊँ ? ऐसे भ्रमिक लोगोंका कभी हित-कल्याण नहीं होता है ॥७१॥ अथवा यही वाणीकी मिथ्या अनुमान--कल्पनाका विचार करते--करते भ्रमिक लोग नाना प्रकारके असत्य सिद्धान्तोंका बोध ले-दे रहे हैं। इस कारण कैवल्य ब्रह्मकी मानन्दीसे चेतन जीवकी साक्षी-दशाका विनाश हो गया। मिथ्या गाफिलीमें पड़ गया। अद्वैत ब्रह्मका बोध और वेद--वेदान्तादिका शोध करते--करते अन्तमें जगत् और ब्रह्म दोनों एक सर्वाधिष्ठानमें ही जाकर मिल गये, तब सुध-बुध सब खो गई। अचेत हो गये ॥७॥ जगत्--ब्रह्म दोनोंका अधिष्ठान एक आत्मा सत्य है, अन्तमें यही बात सबने मिलकर निश्चय कर लिया। परन्तु यह तो सरासर भ्रम--भूल धोखेकी ही नाव ठहरी। इसलिए उसमें आरूढ़ होनेवाले वे सब लोग वाणीके अनुमान--कल्पनारूप भवसागरमें ही डूब गये और भी डूबते जा रहे हैं। अब मैं किससे हित समझकर प्रेम-प्रीति लगाऊँ ? जो वैसे भ्रम-धोखेसे न्यारा होगा, वही मुझसे प्रीति करेगा, वही पारखबोध प्राप्त करके निर्बन्ध मुक्त होगा ॥ ८ ॥ ७१ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७२ ॥ ❀ ॥

नारी एक संसारहि आई। माय न वाके बापहि जाई ॥१॥

गोड़ न मूँड़ न प्राण अधारा । जामें भभरि रहा संसारा ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—बानी एक जग आइया, सुन ताको परमान ॥ काया माया है नहीं, जीवहि को अनुमान ॥ १ ॥ गोड़ मूँड़ कछु है नहीं, प्राणहु नाहिं अधार ॥ तामें भरमि रहा सबै, मिथ्या यह संसार ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—एक ऐसी स्त्री संसारमें आ गई, जिसकी माता नहीं है। मातासे उत्पन्न भी नहीं हुई है; किन्तु उसके पिताने ही उसे जाई=उत्पन्न किया। ऐसी वह विलक्षण सुन्दरी सबको विमोहित करके फँसा रही है ॥१॥ तद्वत् उसके सिद्धान्तका प्रमाण अब सुनो—नारी=वाणीकी कल्पना वाणीरूपमें ही उत्पन्न होकर एकाएक संसारमें आ गई; परन्तु उसकी माय=माता, मायारूप काया तो वास्तवमें नहीं है। केवल उसे बाप=नरजीवने ही अनुमान किया। तब जीवके अनुमानसे ही वह उत्पन्न हुई है। परन्तु उसीमें सब अबोध लोग मोहित होकर भूले बँधे पड़े हैं ॥१॥ उस वाणी-कल्पनाका गोड़=पैर भी नहीं है और मूड़=शिर इत्यादि स्थूल अङ्ग-प्रत्यङ्ग भी कुछ नहीं हैं, एवं प्राणादि वायुका सूक्ष्म आधार भी उसका कोई कुछ नहीं है। इस प्रकार वह निर्जीव जड़ शब्दरूप ही मात्र है; परन्तु उसमें सब जगत्के अबोध जीव विमोहित, भ्रमिक होकर भभरि=भयभीत हो चारों ओर भटक रहे हैं। इस प्रकार उस वाणीने सारे संसारको भ्रमा दिया। परन्तु वाणी-कल्पनाकी मिथ्या मानन्दीका संसार सर्व झूठा है। ब्रह्म सत्य और जगत् मिथ्या कही हुई वाणी भी मिथ्या है। बिना विचार मिथ्या धोखेमें ही सारा संसार भूल रहा है ॥ २ ॥

दिना सात ले उनकी सही । बुद अदबुद अचरजका कही ? ॥३॥
वाहिक बन्दन करे सब कोई । बुद अदबुद अचरज बड़ होई ॥४॥

नेति नेति वह कहत है, सात स्वर्ग की बात ॥ ऐसी बुध अबुध बड़ी, अचरज कहो न जात ॥३॥ वाहि बानिकी बन्दना, करे सकल संसार ॥ बड़ी बुध ही अबुध भौ, का कहि ? अचरज सार ॥ ४ ॥

रविवारसे शनिवारतक, ऐसे सात दिन पर्यन्त उन गुरुवा लोगोंकी वाणी-कल्पना कहती है कि भागवतका सप्ताह लगाओ ! सात दिनका पूजा-पाठ, व्रत, होम, यज्ञादि करो ! उससे सात स्वर्गादिका सुखभोग अन्तमें तुम्हें मिलेगा; इत्यादि शास्त्रकी वाणी कहती है। धर्म-कर्म नहीं करोगे, तो पापका फल सात नरकादि लोकोंमें तुमको दुःख भोगते रहना पड़ेगा। इत्यादि मिथ्या कथनको सत्य मानकर बुद=बुध, बड़े-बड़े पण्डित लोग भी बिना विचार अदबुद=अनसमझ, अधबीचके बुद्धि-विचारहीन हो रहे हैं। ऐसी अचरज=आश्चर्यकी बात हो रही है। अब क्या कहूँ ? इस बातको कोई बिरले ही समझेंगे ॥३॥ अथवा वह वेद भी जिस ब्रह्म-परमात्माके लिए 'नेति-नेति' कहता है और फिर भ्रम-कल्पनाको बढ़ा करके दूसरी ओर सात स्वर्गादिको सत्य

बताकर वहाँ सुखभोग प्राप्त होनेकी बात भी बतलाता है। इस कारण ऐसे बुध=पण्डित भ्रमिक नरजीवमें अबुध=बुद्धि-विचारसे हीन अबोध, अज्ञान-दशाकी वाणी-कल्पनाका भ्रम-धोखा खूब बढ़ता गया। अब वह भ्रम छूटना बड़ा ही कठिन है। उसी वाणीको सब अज्ञानी-अविचारी लोग सत्य मानते जा रहे हैं। यह आश्चर्यकी बात कुछ कही नहीं जाती है, तब और क्या कहें? किससे कहें? कोई बिरले ही इस बातके भेदको ठीकसे समझकर भ्रम-धोखेसे न्यारे होंगे ॥३॥ सम्पूर्ण संसारमें सब कोई अबोध जीव उसी वाणी-कल्पनाको, अथवा उसीसे वर्णित ब्रह्म, ईश्वर, खुदादिको, जो वास्तवमें कोई वस्तु ही नहीं, उसीकी वन्दना, स्तुति, प्रार्थना, बड़ाई, महिमा, आशा-भरोसा खूब करते जा रहे हैं। इस कारण बुद=बुध, बुध=पण्डित बना हुआ नरजीव स्वयं ही अदबुद=बुद्धिहीन, अज्ञानग्रस्त अबोध मूर्ख हो गया। इसलिए उसीको भ्रम-भूल, धोखा खूब बढ़कर दृढ़ हो गया। ऐसा बड़ा आश्चर्य हो रहा है। अब ऐसी आश्चर्यकी बातको क्या कहें? सार भी उसमें कुछ नहीं है। खानि-वाणीके असार जालोंमें ही सब अबोध जीव भूले बँधे पड़े हैं; बिना पारख ॥ ४ ॥

साखीः—मूस बिलाई एक सङ्ग। कहु कैसे रहि जाय?॥
अचरज एक देखो हो सन्तो! हस्ती सिङ्घहि खाय ॥७२॥

साखीः—मूस जीव बिल्ली बानी, बिल्ली माया जोय॥ ताके सङ्ग जिव मिलि रहा, कैसे कुशलता होय? ॥५॥ अचरज एक बड़ देखिये!, अपने हाथ बनाय॥ सोइ बानी औ स्त्री, जीव सिङ्घको खाय॥ ६ ॥

चूहा और बिल्ली एक सङ्गमें कहो—कैसे रह जायँगी? हे सन्तो! एक आश्चर्यको तो देखो—हाथीने ही सिङ्घको खा लिया ॥७२॥ तद्वत् मूस=अबोध-अज्ञानी जीव स्वयं ही दीन-हीन लाचार बना है। बिलाई=वाणी-कल्पना बिल्लीके समान क्रूर हिंसक बनी है और मायारूप गुरुवा लोग भी बिल्लीवत् ही कपटी बने हैं। एवं मायारूप स्त्री, जो सुन्दर दीखती है, वह भी बिल्लीके समान शिकारी बनी है। इस प्रकार वाणी-कल्पना, गुरुवा और स्त्री; इन्हींके सङ्ग-साथमें प्रसन्नतासे जीव जा-जाकर एक साथ मिल रहा है। अब कहो तो भला—ऐसे अबोध जीवका कुशलतारूप जीवन-कल्याण भी कैसे होगा? कभी नहीं होगा। उनके द्वारा इसके तन-मनादि सम्पूर्ण शोषण होकर विनाश ही होंगे ॥५॥ हे सन्तो! एक बड़े आश्चर्यको तो देखो—हस्ती=अपने हाथसे ही लिखकर बनाई हुई वेदादि वाणी और अपने हाथसे ही विवाह करके लाई हुई स्त्री वास्तवमें हाथीके समान अल्प शक्तिकी हैं; तथापि वे ही वाणी और स्त्रीरूप हस्तिनी सिङ्घरूप बलवान् शक्तिशाली नरजीवको भ्रमा-भुलाकर अपने वशमें करके झपटकर उसके बुद्धि-विचार, बल, पराक्रमको खाकर विनाश कर रही हैं। इस प्रकार अबोध नरजीव शक्तिहीन बनकर अपने मनुष्य-पदको विनाश करके भव-बन्धनमें बद्ध हो रहे हैं; बिना विचार ॥ ६ ॥ ७२ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७३ ॥ ❀ ॥

चली जात देखी एक नारी । तर गागरि ऊपर पनिहारी ॥१॥
चली जात वह बाटहि बाटा । सोवनहार के ऊपर खाटा ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—अनुमित बानी देखिके, चलो जात संसार ॥ तरे देह गगरी रही, ऊपर सुरति पनिहार ॥१॥ या घटसे वा घट चली, सोवनहारा जीव ॥ याके ऊपर शास्त्र षट्, हुकुम दृढ़ावहिं पीव ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—एक नारी ऐसी चलती हुई जाती देखी गई, जो नीचे घड़ा, ऊपर पनिहारी थी ॥१॥ तद्वत् एक नारी = उसी एक ब्रह्म-प्रतिपादक अनुमान-कल्पनाकी वाणीको देख-देख करके सारे संसारके अबोध जीव भ्रम-धोखेकी ओर ही चले जा रहे हैं; ऐसा देखा जाता है। इस कारणसे तर = नीचे पृथ्वीतलमें, गागरि = यही स्थूल देह घटरूपमें पड़ी रह गई; परन्तु पनिहारी = जीवका सुरतिरूप लक्ष्य ऊपर सात स्वर्गादि लोक, वैकुण्ठादि धामको आकाशरूप शून्यमें मानकर, वहाँ ईश्वरादिको खोजनेके लिए चला जा रहा है। बिना विचार भ्रम-धोखेमें भूलते चले जा रहे हैं ॥१॥ वही वाणी-कल्पनाकी मिथ्या भावनारूप स्त्री बाट-ही-बाटा = भ्रम-धोखेके मार्ग-ही-मार्गसे होती हुई परम्परासे इस घटसे निकलकर उस घटमें, उस घटसे और घटमें; ऐसी ही अनेक मानन्दी लेकर चली जा रही है। सोवनहार = वाणीकी मिथ्या मानन्दीमें गाफिल होकर सोनेवाले अबोध जीवके ऊपरमें खाटा = षट् शास्त्रोंकी कल्पित वाणी उलटकर चढ़ी हुई है। वही षट् शास्त्रकी कल्पना शिरपर चढ़ करके इस अबोध जीवको—'कोई तेरा पीव = परमपति मालिक ईश्वरादि हैं' ऐसा बताकर उसीका कल्पित हुकुम दृढ़ा रही है। ऐसे मिथ्या भ्रम-धोखेमें जीव भूले पड़े हैं ॥ २ ॥

जाड़न मरे सपेदी सौरी । खसम न चीन्हें घरणि भई बौरी ॥३॥
साँझ सकार दिया लै बारे । खसमहि छाँड़ि सँबरे लगवारे ॥४॥

मरै जीव यह बिरह ते, जो बानी परचाय ॥ अचरज सन्तो ! देखहू, जाड़न मरै रजाय ॥३॥ खसम कहिये ब्रह्मको, सो तो जिव अनुमान ॥ घरनी कहिये जीवको, बिन चीन्हैं बौरान ॥४॥ लगी लाग जो मूर्त्तिसे, सो कहिये लगवार ॥ साँझ प्रात बारे दिया, ताहि कहै करतार ॥ ५ ॥

सौरी = प्रसूती-गृहमें प्रसूता स्त्री, सफेदी सौर = श्वेत रजाई, चद्दर ओढ़ती हुई भी ठण्ढीसे मरती है। खसम = अपने पतिको न पहचानकर, घरणि = स्त्री, बौरी = पगली बनती है ॥३॥ तद्वत् ईश्वरादिके विरह-वियोगकी जाड़न = ठण्ढीसे यह अबोध जीव मरा जाता है। उस शीतको मिटानेके लिए जो अनुमान-कल्पनाकी वाणी परचाय = जलाया, परिचय कराया एवं प्रचार किया-कराया, उससे और भी भयभीत होकर

भ्रमकी ठण्ढीसे थरथर काँपता हुआ अत्यन्त दुःखी होता है। हे सन्तो! ऐसे आश्चर्य-को तो देखो! सपेदी सौरी=सफेद मोटी रजाईरूप वाणी-कल्पनाको अपने ऊपर ओढ़ते हुए भी सब जीव भ्रमसे भयभीत हो विरहरूप जाड़ोंमें खुशीसे मरे जा रहे हैं ॥३॥ खसम=परमपति मालिकरूप कोई एक ब्रह्म, ईश्वर है—ऐसा कहा है। परन्तु सो वह तो नरजीवकी ही मिथ्या अनुमान-कल्पना मात्र है। घरणि=स्त्री भाव धारण करनेवाले भक्त जीव अपने ही स्त्री बनकर भूल गया। परन्तु उस मिथ्या भ्रम-धोखेको यथार्थ पहचाने बिना अबोध लोग उसे ही सत्य मान-मानकर पागल हो रहे हैं। बिना विचार ऐसे फँसे पड़े हैं ॥४॥ अष्ट प्रतिमादिकी जिन जड़ मूर्त्तिसे और वाणीके अनुमान-कल्पनारूप ईश्वर, ब्रह्म आदिसे लाग=लगाव, सम्बन्ध, प्रेम-प्रीति, मोह-ममता, आसक्तिका टेका लगा, तो उसीको लगवार=जार, यार, उपपति, पराया पुरुष कहते हैं। उसीमें प्रीति लगाकर सन्ध्या समय और प्रातःकाल मन्दिरोंमें जड़ मूर्त्तिके सामने दिया ले जाकर जलाके रख देते, पूजा, आरति, वन्दनादि करते-कराते रहते हैं। उसीको कर्त्तार पुरुष जगत्‌का मालिक कहकर भूले रहते हैं। परन्तु उन सब खानि=वाणीके स्थापक खसम=सबके मालिक सत्य चैतन्य अपने स्वरूप जीवको छोड़कर उसी लगवारका सँबरे=नाम-स्मरण करते रहते हैं। बिना विचार ऐसे भ्रम-बन्धनमें भूले पड़े हैं ॥ ४ ॥ ५ ॥

वाहीके रस निशि-दिन राची। पियासों बात कहै नहिं साँची ॥५॥
सोवत छाँड़ि चली पिय अपना। ई दुःख अबधौं कहै केहि सना ॥६॥

वाहीके रस राति दिन, राचि रही होय नार ॥ जाहि पिया कर थापिया, साँच न कहै बिचार ॥६॥ सोवत हती अचेत ह्वै, छाड़ि चली यह देह ॥ देह सङ्ग पियाहु रहै, काहि कहै दुःख येह ? ॥ ७ ॥

उसी जारके विषय-रसमें दिन-रात राती=लीन हो रहती है। वैसी व्यभिचा-रिणी स्त्री अपने विवाहित पतिसे कभी सच्ची बात नहीं कहती है ॥५॥ तद्वत् उन्हीं ईश्वरादि और जड़ मूर्त्तिके प्रेम-रसमें दिन-रात सब अबोध भक्त लोग स्त्री-भाव धारण करके राती=रत, लीन, मग्न, मस्त हो रहे हैं। इन भ्रमिक लोगोंने जिसको पिया=परमपति परमेश्वर भगवान् मानकर स्थापना की है, वह जड़ मूर्त्ति और अनुमान-कल्पनाकी वाणी वास्तवमें सच्ची नहीं है, सर्वथा झूठी है; परन्तु भ्रमिक लोग विवेक-विचार करके सत्य बात कभी नहीं कहते हैं, उसकी मिथ्या महिमा ही गाते रहते हैं। और दूसरी ओर पारखी सद्गुरुके पासमें आकर अपना दिल खोल करके कभी सत्य बात भी नहीं कहते हैं। इसीसे उनको सत्य पारख-स्वरूपका बोध कभी नहीं होता है। भ्रम-बन्धनमें सदा बँधे रहते हैं ॥५॥६॥ अपने विवाहित पतिको सोते हुए छोड़-कर व्यभिचारिणी स्त्री उठकर जारके पासमें रात्रिमें चली गई। उधर उसे जारने भी मार-पीटकर अङ्ग-भङ्ग कर दिया। अब यह दुःख वह किससे कहेगी भला ? ॥६॥

तद्वत् अज्ञान-निद्रामें अचेत होकर यह अबोध जीव भक्ति-भावसे भक्तिनीरूप स्त्री बनकर गाफिलीमें सो रहा था, आयु पूर्ण होनेपर मृत्युरूप रात्रिमें इस देहको भी यहीं छोड़कर अध्यासवश चौरासी योनियोंमें चला गया। भ्रमसे माना हुआ धोखेका पिया भी उसी देहके सङ्ग-साथमें छूट गया। अध्यासी जीवको आवागमन त्रयतापादिके अनेक दुःख उधर भोगने पड़े। अब यह दुःख वह किससे कहे ? किसी-से भी कह नहीं सकता है। भीतर-ही-भीतर तड़फता रह जाता है। भ्रमसे ऐसे भव-बन्धनमें जीव बँधा पड़ा हुआ है ॥ ६ ॥ ७ ॥

साखीः—अपनी जाँघ उघारि के। अपनी कही न जाय ॥
की चित जाने आपना। की मेरो जन गाय ॥७३॥

साखीः—आपुहि बहु अनुमान करि, फन्दा रचै बनाय ॥ जैसे-का-तैसा रहै, खोलि कहा नहिं जाय ॥८॥ मायामुखः—की चित जानै आपनो, सब जग आतमा आय ॥ की कोइ ज्ञानी पण्डिता, तत्त्वमसी को गाय ॥ ९ ॥

व्यभिचारिणी स्त्री गुप्त रोग होनेपर अपनी जाँघ खोल करके किसीको दिखा भी नहीं सकती और अपने रोग होनेका कारण भी उससे किसीसे कहा नहीं जाता है। या तो मेरा अपना ही चित्त जानता है या मेरे प्रेमीजन जानते हैं; ऐसा कहकर दुःख भोगती रहती है ॥७३॥ तद्वत् भ्रमिक जीवने अपने-आप ही अनुमान-कल्पनासे बहुत-से वाणी-खानिके फन्दारूप महाजाल रचना कर-करके बनाये; तथापि पहले वह जैसा जड़ाध्यासी बद्ध था, पश्चात् भी वैसा ही ब्रह्म बनकर जगत्से अभिन्न बद्ध-का-बद्ध, जैसा-का-तैसा ही चौरासीके भव-बन्धनमें पड़ा रहा। अब इस बातका यथार्थ भेद, आवरण, पर्दा खोलकर वह स्वयं कह नहीं सकता। उससे यथार्थ बात कही भी नहीं जाती है। अतएव बिना पारख भ्रम-बन्धन किसीका भी नहीं छूटता है ॥ ८ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—अपनी जाँघ=गुप्त सिद्धान्त उघारिके=खुल्ला करके अपने मुखसे कहा नहीं जा सकता है। उसमें हानि-लाभ, सुख-दुःख जैसा भी हो, सहन करना ही पड़ता है। अतएव की तो अपना ही चित्त निश्चय करके जानता है कि यह सम्पूर्ण जगत् एक अद्वैत ब्रह्म, परमात्मा-स्वरूप ही है; की तो मेरो जन=हमारे सिद्धान्तको जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी पण्डितजन, ऐसे कोई-कोई, जो 'तत्त्व-मसि' महावाक्यको गाय=वर्णन करते हैं। एक अद्वैत ब्रह्म स्वरूपसे सत्य है—इस बातको वही जानते-मानते, औरोंको भी मालूम करा देते हैं। अन्य लोग हमारे सिद्धान्तके भेदको जान नहीं सकते हैं। [इत्यादि कहकर मिथ्या भ्रम-धोखेमें लोगों-को भुला रहे हैं] ॥ ९ ॥ ७३ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७४ ॥ ❀ ॥

तहिया होते गुप्त अस्थूल न काया। न ताके सोग ताकि पै माया ॥१॥
कँवल पत्र तरङ्ग एक माहीं। सङ्गहि रहै लिप्त पै नाहीं ॥२॥

आस ओस अण्डमा रहई । अगणित अण्ड न कोई कहई ॥३॥

टीका; मायामुख-दोहाः—स्थूल देह तब ना हती, हते ब्रह्म तब गुप्त ॥ शुद्ध चैतन्य तब जानिये, अवस्थातीत सुषुप्त ॥१॥ ताको सोग कछु ना हता, माया ताही सङ्ग ॥ जैसे कमल पत्रपर, न्यारो सदा तरङ्ग ॥२॥ जैसे रहत कमल पत्र पै, न्यारो सदा तरङ्ग ॥ ऐसे माया अण्डसे, आत्मा रहत असङ्ग ॥३॥ आस बास सब छाँड़िके, रहे अण्डके माँहि ॥ अगणित अण्ड ॐकार है, गनि न सकै कोइ ताहि ॥ ४ ॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—तहिया = सृष्टिके प्रथम उस समयमें अस्थूल = स्थूल देह आदि सारा संसार उत्पन्न नहीं हुआ था, तब स्थूल देह भी नहीं थी। एक अद्वैत ब्रह्म-मात्र गुप्तरूपसे उस समयमें था। तब एकमात्र शुद्ध चैतन्य ब्रह्म सर्व अवस्थासे तीत = परे, रहित सुषुप्तरूपमें आकाशवत् आप अकेला था; ऐसा जानो ! इस कारण उस ब्रह्मको शोक-सन्ताप, दुःख भी कुछ नहीं था। पै = परन्तु आदिमाया मूलप्रकृति उसके सङ्ग-साथमें ही एकाकार होकर मिलीजुली रहती थी। साथमें माया रहनेपर भी उसको कुछ भी शोक-सन्ताप नहीं था ॥ १ ॥ जैसे कमलके पत्रोंपर जलकी बूँद और नीचे तरङ्ग भी सदा एकसाथमें बनी रहती हैं; तथापि तरङ्ग और बूँदसे वह सदा अलिप्त न्यारा बना रहता है। वैसे ही कमल = केवल ब्रह्मका पत्र = विराट् स्वरूप तरङ्ग = मायाकी जगत्-तरङ्गमें एक साथ रहते हुए भी उस मायाकी तरङ्गसे ब्रह्म सदा न्यारा बना रहता है; परन्तु कभी लिप्त नहीं होता है ॥२॥ कमलका पत्र और जलकी तरङ्ग जैसे एक ही जगह जलाशयमें रहते हैं; तथापि वे एक-में-एक नहीं मिलते हैं। जलाशयमें एक साथ रहनेपर भी जलसे कमल निर्लिप्त ही रहता है। तरङ्गसे वह सदा न्यारा रहता है। इसी प्रकार मायारूप अण्ड = पिण्ड-ब्रह्माण्डसे ब्रह्म-परमात्मा सदा असङ्गरूपसे निर्लिप्त ही रहता है ॥२॥३॥ जैसे घासके आश्रयसे ओस अण्डरूपमें रहता है। ओसके अगणित अण्डको गिनकर कोई कह नहीं सकता है ॥३॥ तद्वत् ब्रह्मके आस = आश्रयरूप आधारमें ओस = मायाशक्ति, अण्डमा = प्रणव ब्रह्ममें ही रहती है। परन्तु अगणित अण्ड = ॐकार ब्रह्मकी शक्ति अपार है। उसको कोई गिनती करके कह नहीं सकता है। अथवा आस = आशा और ओस = वासना, तृष्णा सब विकारको छोड़ करके जो ब्रह्मज्ञानी ॐकार ब्रह्मरूप अण्डमें ही सदा टिका रहेगा, वह अन्तमें ब्रह्ममें ही मिल जायगा। अगणित अण्ड जिसे कहते हैं, वह एक ॐकार ब्रह्म ही है। पिण्ड-ब्रह्माण्डमें सर्वत्र वह भरा हुआ है। उसके बिना कहीं कोई जगह खाली नहीं है। इसलिए उसे कोई गिनती कर नहीं सकता है। असंख्य, अलेख, अपार ब्रह्मका स्वरूप है; ऐसा जानकर उसीमें मिले रहो ! इत्यादि ॥ ३ ॥ ४ ॥

निराधार आधार ले जानी । राम नाम ले उचरी बानी ॥४॥
धर्म कहै सब पानी अहई । जाति के मन पानी अहई ॥५॥

गुरुमुखः—निराधार निःअक्षर कही, ताहि अधार ले जानि ॥ राम नाम अनुमान करी, बानी बहुत बखानि ॥५॥ शास्त्र कहै निरुवारिके, जैसो सब जल आहि ॥ ऐसो है यह आतमा, घटि--बढ़ि कहा न जाहि ॥६॥ मन पानीका रूप है, शास्त्रन माना जाहि ॥ माना सो अनुमान है, परख यथारथ ताहि ॥७॥

गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—भ्रमिक गुरुवा लोगोंने जिसको निराधार निःअक्षर, निर्गुण-निराकार ब्रह्म-परमात्मा कहा, उसको भी तो स्थूल-सूक्ष्म शरीर, मन, बुद्धि, वाणी आदिका आधार ले करके ही जाना और माना, तब वर्णन किया। देहादिके आधार बिना कहीं कोई निराधार ब्रह्मको कभी जाना और माना भी नहीं, कहा भी नहीं। इसलिए ब्रह्मज्ञानका कथन भ्रम-धोखा ही मात्र है। देहादिके साथमें ही अबोध नरजीवोंने 'रामनाम'को अनुमान करके मिथ्या मानन्दी कर ली है। पुनः कल्पनासे बहुत-सी वाणी उच्चारण करके वर्णन करता गया। उसीमें आप भूलकर औरोंको भी भुला रहा है; बिना विचार ॥४॥५॥ धर्म बतानेवाले पण्डित लोग कहते हैं कि सब पानी नारायण-स्वरूप है। इसीसे गङ्गादि स्नान करनेसे अन्तमें वैकुण्ठ प्राप्त होता है। ऐसा सुनकर सब जातिवालोंके मनमें गङ्गादिके पानीका विशेष भाव, अन्धविश्वास हो गया। परन्तु पानीरूप वाणी और काम-विषयमें आसक्त होकर उसीमें सब अबोध लोग खूब बँधे पड़े हैं; बिना विचार ॥ ५ ॥ अथवा धर्मशास्त्र भी कल्पित वाणीका निरुवार=निर्णय करके यही कहता है कि जैसे सब जगहके जल-ही-जलमें कोई भेद नहीं, एक स्वरूप है। इसी प्रकार यह सर्वात्मा भी 'जल-तरङ्ग न्याय' सबमें परिपूर्ण व्यापक एक ही है। अतएव आत्माको कहींपर घटि=कम और बढ़ि=ज्यादा; ऐसा कुछ भी कहा जा नहीं सकता है। सब प्राणियोंमें आत्मा एक है ॥६॥ मन जो है, सो जलका कार्य होनेसे पानीका ही स्वरूप है। इसीसे वह सदा चञ्चल रहता है। यही बात, जिसको शास्त्रकारोंने भी इसी प्रकार माना है। इस प्रकार जो मनसे माना, सो वही तो वाणीका अनुमान है। जो कल्पा सो कल्पना है और जो भासा सो भास है और जो मनमें वासना, संस्कार टिकाया, वही अध्यास है। यह सब जीवको भव-बन्धनका कारण है। जाति=सब सिद्धान्तोंके मूलकारण मनकी मिथ्या मानन्दीसे निर्मित पानी=वाणी ही मात्र है। यथार्थ निर्णय करके परीक्षा-दृष्टिसे उसको परखो ! मिथ्या भ्रम-भूलको परित्याग करके सच्चे पारख-स्वरूपमें स्थिर हो रहो ! ॥ ५ ॥ ७ ॥

ढोर पतङ्ग सरे घरियारा। तेहि पानी सब करैं अचारा ॥६॥
फन्द छोड़ि जो बाहर होई। बहुरि पन्थ नहिं जोहै सोई ॥७॥

ज्ञानी भक्त योगी मरे, जेहि बानीमें भाय ॥ सो बानी आचरण करि, सब जग मरि-मरि जाय ॥८॥ तजा भरम जिन परख के, ते पुनि भये निनार ॥ ते नहिं भवमें जावहीं, जहवाँ सब संसार ॥ ९ ॥

गङ्गादिके जिस पानीमें ढोर=चौपाया पशु, कीट-पतङ्ग और घरियारा=ग्राहरूप मगर-मच्छ एवं मछली आदि जलजन्तु मर जानेपर उसीमें सड़-गल जाते हैं। शहरोंके बहुत-से मल-मूत्र भी उसीमें मिले रहते हैं। उसी पानीमें सब लोग जाकर स्नान, सन्ध्यादि करके अचारा=शुद्ध,पवित्र होनेका आचार-विचार करते हैं। परन्तु मिथ्या मानन्दीसे न उनका मन शुद्ध होता है, न शरीरादि ही मलमिश्रित जलके स्नानसे शुद्ध होते हैं। भ्रम-धोखेमें व्यर्थ भूले रहते हैं ॥६॥ अथवा ढोर=पशुवृत्ति धारण करनेवाले ज्ञानी लोग,पतङ्ग=विरहाग्निमें जल मरनेवाले भक्त लोग,और घरियारा=भ्रमरगुफामें छिपे रहनेवाले योगी लोग, जिस कल्पित वाणीकी मिथ्या भावनामें जड़ाध्यासी भ्रमिक बद्ध हो सड़कर मर गये, अब भी उसी मिथ्या वाणी-कल्पनाके विश्वाससे भाव-भक्तिपूर्वक आचरण कर-करके सब जगत्के अबोध जीव जड़ाध्यासी बद्ध हो-होकर मर-मरके चौरासी योनियोंमें ही चले जा रहे हैं; बिना विवेक ॥८॥ अब जो जिज्ञासु लोग पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग द्वारा जड़-चैतन्यके स्वरूपको यथार्थ निर्णयसे पहचानकर वाणीके सर्व सिद्धान्त और सत्यासत्यको अच्छी तरहसे परख करके फन्द=खानि-वाणी जालोंके सर्व भ्रम-भूल धोखेको सर्वथा परित्याग कर दिये, वे पुनः उन सबके घेरासे बाहर, न्यारे, पृथक् हो गये और सदा पृथक् ही हो रहते हैं। इसीसे वे कभी कदापि बहुरि=पुनः पन्थ=भव-बन्धनकारक मार्गोंके घेरेमें नहीं जाते हैं। फिर उसको जोहै=देख करके वे खोज भी नहीं करते हैं। जहाँपर कि सब संसार भव-बन्धनकी ओर जा रहे हैं, वहाँ उधर पारखी सन्त कभी नहीं जाते हैं। अर्थात् खानि-वाणीके सर्व जालोंको छोड़कर जो बाहर हो गये वा होते हैं, वे फिर उलटकर उन पन्थोंको कभी नहीं देखते, उनसे सदा दूर रहकर अपना स्थिति-ठहराव ही किये रहते हैं॥ ७ ॥ ६ ॥

साखीः—भरमका बाँधा यह जग। कोई न करै विचार ॥
एक हरिकी भक्ति जानै बिना। भौ बूड़ि मुवा संसार ॥७४॥

साखीः—भरम का बाँधा यह जगत, यहि बिधि आवै जाय ॥ कोई न करै बिचार पुनि, ताते भटका खाय ॥१०॥ एक मायाकी बानी, बिन जाने यह रीति ॥ भरम अनुमान औ कल्पना, मानि मानि करे प्रीति ॥ ११ ॥

खानि और वाणी दोनों ओरकी मिथ्या मानन्दीसे होनेवाले भ्रम-भूल धोखेका बँधा हुआ यह अबोध जगत्-जीव इसी प्रकारसे जड़ाध्यासवश चौरासी चक्रमें जन्मता-मरता, आता-जाता रहता है। अब भी इस मनुष्य-जन्ममें आकर पुनः कोई सत्य-असत्य, सारासार, जड़-चैतन्यका यथार्थ विचार नहीं करते हैं। किन्तु गुरुवा लोग और स्त्रियोंके पासमें ही आते-जाते भ्रममें भूले पड़े रहते हैं। इस कारण फिर-फिर बारम्बार धोखा खाते हुए भटकते रहते हैं ॥१०॥ एक हरि=एक अद्वैत ब्रह्म, ईश्वरादिकी भक्ति-भावना, अनुमानको मिथ्या जाने बिना भव=खानि-वाणीरूप संसारके भवसागरमें मुवा=जड़ाध्यासी बद्ध होकर डूब मरे और वैसे ही डूबते जा रहे हैं।

मायारूप गुरुवा लोगोंकी एक ब्रह्म-ईश्वरादि मालिक बतानेवाली वाणी-कल्पनाको बन्धनरूप मिथ्या जाने बिना इसी रीतिसे भूलकर, भ्रम, अनुमान और कल्पनाको सत्य मान-मान करके उससे बहुत ही प्रेम-प्रीति कर रहे हैं, इस कारण अन्तमें उसी जालमें खूब बँधकर आवागमन-चक्रमें पड़े दुःख भोगते रहते हैं; बिना पारख ॥ ११ ॥ ७४ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७५ ॥ ❀ ॥

तेहि साहेब के लागहु साथा। दुइ दुःख मेटिके होहु सनाथा॥१॥
दशरथ कुल अवतरि नहिं आया। नहिं लङ्काके राव सताया॥२॥
नहिं देवकी के गर्भहि आया। नहीं यशोदा गोद खिलाया॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—साहेब जाकी साहेबी, सगरी भई बिस्तार॥ सो तो मानुष जानिये, वो नहिं दश अवतार॥१॥ सो साहेब अब कहाँ है ?, जाके लागहु साथ॥ दूसर धोखा सबै हैं, मेटिके होहु सनाथ॥ २॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे मनुष्यो ! उन्हीं पारखी सन्तरूप सद्गुरु सत्य साहेबके सत्सङ्गरूप सङ्ग-साथमें लगो ! जिनसे दुइ दुःख = खानि-वाणी, ब्रह्म-जगत्से होनेवाले जन्म-मरणादि दोनों ओरके दुःखोंके कारण जड़ाध्यासको मिटा करके जीवन्मुक्त सनाथ, बलिष्ट, शान्त-सुखी हो जाओ ! निज पारख-स्वरूपमें स्थिर होनेसे ही उस प्रकार सनाथ होओगे ॥१॥ अथवा नित्य-सत्य अविनाशी अखण्ड चैतन्य जीव, वही सर्वश्रेष्ठ सत्य साहेब है। जिसकी साहेबी = प्रभुता, महान् सत्ता-सामर्थ्यसे खानि-वाणीके अनेक रूप सम्पूर्ण संसारमें विस्तार हुए और हो रहे हैं, सो तो मनुष्य जीव-रूपमें ही प्रत्यक्ष है—ऐसा जानो ! इसलिए वे माने गये दश अवतार कोई भी श्रेष्ठ सत्य साहेब नहीं हैं ॥१॥ ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, दश अवतार इत्यादिको जो तुमने भ्रमसे श्रेष्ठ साहेब मालिक माना है, सो वे अब कहाँ हैं ? कि जिनको मिल करके उनके साथ लगोगे। वे देहधारी लोग तो उसी समय मर-मरकर अध्यासवश आवागमनमें चले गये। अब इस समय ढूँढ़नेसे भी वे कभी कहीं किसीको मिल नहीं सकते। अतएव चैतन्य जीवकों छोड़कर और दूसरी मिथ्या मानन्दी सब भ्रम-धोखा ही मात्र है। पारखबोधसे अब उस भ्रम-धोखेको मेट करके सनाथ, स्वतन्त्र, शक्तिशाली हो जाओ ! वे ही पारखी सद्गुरु सत्य साहेबके सङ्ग-साथमें लगो, जिनके सत्सङ्गसे यथार्थ भेद परखकर सर्व अध्याससे रहित हो जन्म-मरणरूप दोनों दुःखोंको सदाके लिए मेटकर निर्बन्ध मुक्त हो जाओ ! ॥ २ ॥

पारखी सद्गुरु साहेब, जो मुक्तिदाता हैं, वे दशरथके कुलमें भी कभी अवतार लेकर नहीं आये। लङ्काके राजा रावणको भी उन्होंने कभी नहीं सताया। और जो राजा दशरथके कुलमें जन्म ले करके आया, जिसने लङ्काके राजा रावणको सताया और युद्धमें उसे मार डाला, वह रामचन्द्र श्रेष्ठ साहेब नहीं है ॥२॥ मुक्तिदाता श्रेष्ठ साहेब

देवकीके गर्भसे जन्म लेकर भी कभी नहीं आये। उनको यशोदाने गोदमें भी नहीं खेलाया। औरजो देवकीके गर्भसे जन्म लेकर आया और जिसको यशोदाने अपनी गोदमें बैठाकर भोजन खिलाया और खेल खेलाया था, वह कृष्ण भी श्रेष्ठ साहेब नहीं है ॥३॥

पृथ्वी रवन-धवन नहिं करिया। पैठि पताल नहिं बलि छलिया ॥४॥
नहिं बलि राजा सो माँड़ल रारी। नहिं हरणाकुश बधल पछारी ॥५॥
बराहरूप धरणी नहिं धरिया। क्षत्री मारि निक्षत्री नहिं करिया ॥६॥

मुक्तिदाता श्रेष्ठ साहेबने कभी पृथ्वीको रवन-धवन नहीं किया, पातालमें प्रवेश भी नहीं किया, बलिको भी नहीं छला और बलिको पातालमें भी नहीं भेजा। और जिसने सब ओर पृथ्वीपर रमण-भ्रमण करके रवन = रौंद डाला और धवन = दौड़-दौड़कर जहाँ-तहाँ धावा, चढ़ाई, आक्रमण किया और फिर छल-कपटसे धोखा देकर पैर बढ़ानेके नाटकरूप जालसाजीसे सब पृथ्वीको नापकर अपने अधिकारमें कर लिया, बलिराजाको छल-कपटसे बाँधकर कैद किया और पाताललोकमें भेजकर नजरबन्दीमें रक्खा, सो वैसे वामनादि भी वास्तवमें श्रेष्ठ साहेब नहीं हैं ॥४॥ जिसने वानरोंके राजा बालिसे, उसके भाई सुग्रीवकी रारि = झगड़ा, तकरार, युद्ध माँडल = ठना करके वृक्षोंके ओटमें छिपकर बाण चलाकर बालिको मार डाला, वे रामचन्द्र भी श्रेष्ठ साहेब नहीं हैं। और हिरण्यकशिपुको पकड़कर पछाड़ करके उसका पेट फाड़कर, उसे वध करनेवाला नरसिंहरूप भी श्रेष्ठ साहेब नहीं है। क्योंकि श्रेष्ठ साहेबने वैसा काम कभी नहीं किया और कभी नहीं करते हैं ॥५॥ पौराणिक कथनानुसार जिसने बाराहरूपसे पृथ्वीको धारण किया, वह भी श्रेष्ठ साहेब नहीं है। और जिसने बहुत-से क्षत्रियोंको मारकर निःक्षत्री किया, वह परशुराम भी श्रेष्ठ साहेब नहीं है। क्योंकि दयालु श्रेष्ठ साहेब वैसा क्रूर, हिंसकी काम कभी नहीं किये न करते हैं ॥ ६ ॥

नहिं गोवर्धन कर गहि धरिया। नहिं ग्वालन सङ्ग वन-वन फिरिया ॥७॥
गण्डुकी शालिग्राम नहिं कूला। मच्छ-कच्छ होय नहिं जल डोला ॥८॥
द्वारावती शरीर नहिं छाड़ा। ले जगन्नाथ पिण्ड नहिं गाड़ा ॥९॥

पौराणिक कथनानुसार जिसने गोवर्धन पर्वतको हाथमें पकड़कर धारण किया, वह भी श्रेष्ठ साहेब नहीं है और जो ग्वालबालोंके सङ्ग-साथमें वन-वनमें गौओंको चराते फिरा, वह बालगोपाल कृष्ण भी श्रेष्ठ साहेब नहीं है। क्योंकि श्रेष्ठ साहेबने वैसा काम कभी नहीं किया, न करते हैं ॥७॥ नेपाल प्रदेशीय 'कृष्णगण्डकी' नामक नदीके कूला = किनारेमें शालिग्रामके रूपमें रहनेवाले काले गोल पत्थर, जिन्हें विष्णुका प्रतीक माना है, वे भी श्रेष्ठ साहेब नहीं हैं। और मछलीके रूपमें मत्स्यावतार एवं कछुवेके रूपमें कच्छपावतार होकर बड़ी-बड़ी नदियोंके जलमें वा समुद्रमें इधर-उधर डोलते, चलते-फिरते रहनेवाले जल-जन्तु भी श्रेष्ठ साहेब नहीं हैं। वे चौरासी योनि-

थोंके देहधारी बद्ध जीव हैं। मुक्तिदाता श्रेष्ठ साहेब कभी वैसा जड़ पत्थर और जलजन्तु रूपधारी नहीं होते हैं ॥८॥ जिसने द्वारावती=द्वारिकाके पास प्रभासपट्टन स्थानमें अन्तमें अपना शरीर छोड़ा, वह कृष्ण भी श्रेष्ठ साहेब नहीं हैं और जिस कृष्णके पिण्डरूप मृत शरीरको जगन्नाथपुरीमें ले जाकर गाड़ा गया, एवं चन्दनकी लकड़ीका जगन्नाथ बनाकर स्थापित किया गया, वह भी श्रेष्ठ साहेब नहीं है। क्योंकि श्रेष्ठ साहेबने कभी द्वारावतीमें शरीर भी नहीं छोड़ा। उनका पिण्ड जगन्नाथमें ले जाकर गाड़ा भी नहीं गया। अतः ये सब कार्य बद्ध जीवोंके ही हुए हैं। गुरुवा लोगोंने मिथ्या ही महिमा बढ़ा दी है, बिना विचार ॥ ९ ॥

साखीः—कहहिं कबीर पुकारि के। वै पन्थे मति भूल ॥
जेहि राखेउ अनुमान कै। सो थूल नहीं अस्थूल ॥७५॥

साखीः—कहाँ है जाहि पुकारहू ?, सबका सिर्जनहार ॥ वै पन्थे मति भूलहू, जो गुरुवन कहा पुकार ॥ जेहि राखेउ अनुमान करि, सो थूल नहीं अस्थूल ॥ मिथ्या धोखा जानिये, महा अँधेरी भूल ॥ ४ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुकार करके कहते हैं—हे मनुष्यो ! उस वाणीके मिथ्या भ्रम-धोखेके पन्थोंमें कभी मत् भूलो ! जिन दश अवतारोंको अनुमान करके ईश्वर-भगवान् मान रक्खे हो, सो तो तुम्हारी मिथ्या मानन्दी ही मात्र है। क्योंकि वे सब तुम्हारे माने हुए ईश्वरादि तो केवल वाणी-कल्पना ही मात्र हैं। अतः वास्तवमें वे थूल=सूक्ष्म स्वरूप और अस्थूल=स्थूलाकार जड़-चैतन्य दोनोंके भी स्वरूपमें नहीं हैं। मिथ्या भ्रम ही मात्र हैं। अतः उसे परखकर परित्याग करो ! ॥७५॥ अथवा जिनको तुम सब जगत्का सिर्जनहार मानकर ब्रह्म, ईश्वर, दश अवतार इत्यादिका नाम ले-लेकर पुकारते हो, अब कहो—वे कहाँ हैं ? चैतन्यरूपसे कहीं बैठे तो नहीं हैं। फिर उनको पुकारनेसे लाभ ही क्या होता है ? कुछ नहीं। खानि-वाणी आदि सबका सिर्जनहार तो यही चैतन्य नरजीव ही प्रत्यक्ष है। निज स्वरूपका विवेक-विचार न करके मिथ्याको क्या पुकारते हो ? भ्रमिक गुरुवा लोगोंने जो पुकार-पुकार करके मिथ्या वाणी-कल्पनाको कहा है, उसे समझो ! उनके भ्रम-धोखेके पन्थोंमें अब मत् भूलो ! परखकर भ्रमको परित्याग करो ! ॥३॥ जिसको तुम लोगोंने अनुमान करके सत्य मान रक्खा है, सो ईश्वरादि तो सूक्ष्म और स्थूलरूप; इन दोनों ही रूपमें नहीं है। जड़ और चैतन्य जीव, दोनों अनादि वस्तु हैं। वैसा स्वरूप भी ईश्वरादिका नहीं है। इसलिए वह महान् अँधेरी=अन्धकाररूप अज्ञान, भ्रम-भूल होनेसे उसे सरासर मिथ्या धोखामात्र ही जानलो ! अतः परखकर भ्रमसे न्यारा हो रहो ! ॥ ४ ॥ ७५ ॥

॥ * ॥ रमैनी ॥ ७६ ॥ * ॥

माया मोह सकल संसारा। इहै विचार न काहु विचारा ॥१॥

माया मोह कठिन है फन्दा। करे विवेक सोई जन बन्दा ॥२॥
राम नाम ले बेरा धारा। सो तो ले संसारहि पारा ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—माया कहिये गुरुवा, मोह उनका ब्यौहार ॥ यह बन्धन जग कठिन भौ, काहु न कीन्ह बिचार ॥१॥ कठिन फन्द है मोहका, माया दीन्ह दृढ़ाय ॥ जो विवेक करि वेदको, सोइ जन बन्धी जाय ॥२॥ सोरठाः—सबन कीन्ह अनुमान, राम नाम नौका धरो ॥ सो ले सकल पयान, पार होहिं जिव जगत के ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—भ्रमिक गुरुवा लोग और स्त्रियोंको माया कहते हैं। उनके खानि और वाणीके सम्पूर्ण व्यवहारमें आसक्त लिप्त हो रहना; ऐसी मोह-ममतामें सम्पूर्ण संसार बँधा पड़ा है। इन दोनों ओरके बन्धनोंसे छूटना जगत्के अबोध जीवोंको अत्यन्त कठिन हो रहा है। इसलिए इन बन्धनोंसे छूटनेका यथार्थ विचार ही कोई नहीं करता है। जिस माया-मोहमें सब संसार बँधा है, उसमें हम भी बँधे हैं, अब इससे कैसे छूटें ? हमको अवश्य छूटना चाहिए ! ऐसा विचार भी किसी-को कभी नहीं होता है। जब कोई विचार ही नहीं करता, तब भव-बन्धनसे भी कोई कैसे छूटेगा ? कभी नहीं छूटेगा, बिना पारख ॥१॥ इन दो प्रकारकी मायाकी मोह-ममताके फन्दा=जालसे छूटना, यह तो सबके लिए अत्यन्त ही कठिन हो रहा है। क्योंकि माया-मोहका फन्दा भी बहुत मजबूत है। मायारूप गुरुवा लोग और स्त्रियोंने मोटे-झीने मोहके फन्दाको खूब दृढ़ा दिया है, मजबूत करके अरुझाकर फँसा रक्खा है। अब जो पण्डित लोग वेद-वेदान्तादि वाणीका विवेक=छानबीन किये वा करते हैं, वे स्वयं ही योगी, ज्ञानी, भक्तजनोंके सहित वाणीकी भ्रम-कल्पनामें जा-जाकर खूब जकड़ करके बँध जाते हैं। ऐसे बँधे पड़े हैं। जब वे गुरुवा लोग ही बन्धनसे नहीं छूटे, तब उनके चेले लोग कहाँसे कैसे भव-बन्धनोंसे छूटेंगे ? अथवा माया-मोहका फन्दा कठिन और कठोर है; तथापि पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें लगकर पारख-बोध प्राप्त करके जो यथार्थ विवेक करते हैं, सो वैसे सन्तजन उन सब बन्धनोंसे छूट जाते हैं। अतः वे ही वन्दनीय होते हैं ॥२॥ भवसागरसे पार होनेके लिए भ्रमिकोंने 'रामनाम' स्मरणको लेकर बेरा=बेड़ा बनाया, उसी नावको पकड़कर हृदयमें धारण कर लिया। सो उसी भ्रम-कल्पनाको लेकर संसारसे पार होना चाहते हैं; परन्तु बिना पारख भ्रम-धोखेमें डूबकर मरते हैं ॥३॥ अथवा सब भक्तोंने मिलकर यही एक अनुमान किया कि भवसागरसे पार उतरनेके लिए रामनाम-स्मरणकी एक नौकाको पकड़ लो ! तब उसीका बेरा=दृढ़तासे वाणीकी एक नाव बनाकर अपने हृदयमें सबने धारण कर लिया। तत्पश्चात् रामनाम-स्मरणको ले-लेकर सब जीव भ्रम-धोखेमें बढ़ते चले गये और भी जा ही रहे हैं। इस प्रकार जगत्के अबोध जीव रामनामके आशा-भरोसासे भवसागरसे पार उतरना तो चाहते हैं, गुरुवा लोग भी—अवश्य पार उतर जाओगे,

ऐसा दृढ़ा रहे हैं। परन्तु वैसे भ्रम-धोखेसे पार तो कोई नहीं उतरता है। वह मिथ्या मानन्दी उनको भवधाराके बीचमें ले जाकर डुबा देती है। अतः जड़ाध्यासवश जीव आवागमन-चक्रमें ही पड़े रहते हैं॥ ३॥

साखीः—राम नाम अति दुर्लभ। औरे ते नहिं काम॥
आदि-अन्त औ युग-युग। मोहि रामहि ते संग्राम॥७६॥

जीवमुख; साखीः—राम नाम अति दुर्लभ, औरे ते नहिं काम॥
आदि-अन्त औ युग-युग, मोहि रामहि से संग्राम॥४॥

जीवमुखः—अबोध भक्त जीव कहता है—रामनाम = सगुण-निर्गुण परमात्मा रामका नाम-स्मरण, ध्यान, पूजा, पाठ करना और रामका दर्शन पाना; यह तो सम्पूर्ण संसारमें अत्यन्त दुर्लभ बात है। तथापि मेरे सहित सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणका काम तो उसी रामनामके स्मरणादिसे ही होगा। औरोंसे जीवोंकी गति-मुक्तिका काम कभी नहीं होगा। इसलिए मुझे औरसे कोई काम नहीं है। आदिसे अन्त, शुरूसे आखिर, जन्मसे मरण और जगत्‌से ब्रह्मतक, एवं युगानुयुगतक हे भाई! मुझे तो एक रामनाम-हीसे प्रेम-प्रीति लगी है। रामकी भक्तिमें ही जुट करके जीवनभर संग्राम = कठोर साधनाका युद्ध करके पूर्ण विजय प्राप्त करना है। मुझे भगवान् रामसे ही संग्राम करना है। जब वे दर्शन देंगे, उनके हाथसे मरूँगा, तब अवश्य पार उतर जाऊँगा; यही मुझे निश्चय है। [इत्यादि कहकर अबोध लोग खूब भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं]॥ ४॥ ७६॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७७ ॥ ❀ ॥

एकै काल सकल संसारा। एक नाम है जगत पियारा॥१॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—एक काल कहिये कल्पना, जो कल्पै संसार॥
एक नाम ब्रह्म धोखा, सोई जगमें प्यार॥१॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—एक ही काल = ईश्वरादि कर्त्ता-कल्पनाकी वाणी सम्पूर्ण संसारमें फैलकर सम्पूर्ण जीवोंका विनाश कर रही है। एक कालरूप मृत्युमें तो सब प्राणी पड़े ही हैं। एक ईश्वरादिके 'नाम' जपकी मिथ्या मानन्दी और अपना नाम कमानेका भ्रम भी सब जगत्‌के जीवोंको प्रिय हो रहा है; बिना विचार॥ १॥

अथवा सम्पूर्ण वाणीकी एक-सी भ्रम-कल्पनाको ही एक काल कहते हैं, जो कि संसारके अबोध जीव कल्पना कर-करके बढ़ाते जा रहे हैं। बोध-विचारको विनाश करनेवाली होनेसे वह कल्पना ही काल है। एक नामको ब्रह्म, परमात्मा, ॐकार वा प्रणव, सत्यनाम, नामब्रह्म, रामनाम इत्यादि भ्रमिक गुरुवा लोगोंने कहा है। इसलिए एक नामरूप ब्रह्म-ईश्वरादिकी मानन्दी वास्तवमें भ्रम-धोखा ही है। परन्तु जगत्‌में अबोध जीवोंको अब वही कालरूप कल्पना और नामरूप भ्रम-धोखा ही सबको

अत्यन्त प्रिय, प्यारा हो रहा है। इसलिए निज चैतन्य स्वरूप सत्य-सारका विवेक-विचार भी वे कोई नहीं करते हैं; मिथ्या धोखेमें बँधे पड़े हैं ॥ १ ॥

त्रिया पुरुष कछु कथ्यो न जाई। सर्वरूप जग रहा समाई ॥२॥
रूप-निरूप जाय नहिं बोली। हलुका-गरुवा जाय न तौली ॥३॥
भूख न तृषा धूप नहिं छाहीं। दुःख-सुख रहित रहै तेहि माहीं ॥४॥

मायासुखः—त्रिया पुरुष कछु है नहीं, सर्व रूप जग पूर। रूप अरूप न कहि सकों, नहिं नियरे नहिं दूर ॥२॥ हलुका है कि गरुवा ?, तौलो नाहीं जाय ॥ भूख प्यास तहाँ कछु नहीं, नहीं धूप नहिं छाँय ॥३॥ दुःख सुख एकौ तहाँ नहीं, रहित रहे तेहि माहिं ॥ यही बोध निश्चय करो, अब कछु आगे नाहिं ॥४॥

मायासुखः—गुरुवा लोग कहते हैं—परमतत्त्व परमात्मा स्त्री और पुरुष दोनोंके रूपमें नहीं है। वैसे दृश्य स्थूल चिन्हवाला कुछ भी वह नहीं है। इसीसे उसके स्वरूप-के बारेमें वाणीसे कुछ भी कथन किया जा नहीं सकता है। क्योंकि वह परब्रह्म तो वास्तवमें सम्पूर्ण जगत्के सर्व रूपमें सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक होकर भीतर-बाहर समा रहा है। तब उसे स्त्री कहना कि पुरुष कहना ? कुछ भी कहा जा नहीं सकता है। वह अकथनीय स्वरूप है ॥२॥ रूप = स्थूल रूपवाला और निरूप = रूप रहित। इस प्रकार साकार रूपवाला है अथवा निराकार अरूपवाला है; ऐसा कुछ भी मैं कह नहीं सकता हूँ। क्योंकि उसके बारेमें कुछ भी निश्चयसे ठहराकर बोला जा नहीं सकता है। परमात्मा कैसा है ? ऐसा पूछोगे तो "जैसा-का-तैसा" है। इसके सिवाय और क्या कह सकते हैं ? वह नजदीक भी नहीं है और दूर है—ऐसा भी कह नहीं सकते हैं। और फिर वह हलका है कि गरुवा है ? यह भी बता नहीं सकता हूँ। क्योंकि उसे पकड़कर तराजूमें तौला भी तो जा नहीं सकता है। वह किसी प्रकारके मापतौलमें नहीं आ सकता है। वह अणु-से-परमाणु, और महान्-से-महान् है। "अणो-रणीयान्महतो महीयान्" ऐसा कठउपनिषद्—१।२।२० में कहा है। अतः परमात्माका स्वरूप अगम्य है; ऐसा जानो ! ॥२॥३॥ उस ब्रह्म-परमात्मामें भूख और तृषा = प्यास भी कभी नहीं लगती है। यह स्थूल देहका विकार है, सो कुछ भी उसमें नहीं रहता है। वैसे ही धूप और छाया भी उसमें नहीं होती है ॥३॥ दुःख और सुखमेंसे एक भी उसमें नहीं रहता है। वह तो इन सब मायाके विकारोंसे रहित = अलग, उसके बिना निर्लिप्त सबसे परे रहता है। परन्तु उसी ब्रह्म-परमात्माके विराट्-स्वरूपमें ही सम्पूर्ण संसार "बट-बीज न्याय" समाया रहता है। अब भी इसी अद्वैत ब्रह्म-सिद्धान्तके बोधको अपने मनमें दृढ़ निश्चय करके पक्का करो ! इससे आगे अब और कुछ भी सत्य-सार सिद्धान्त कहना बाकी नहीं है। खास मूल बात यही है; ऐसा जानकर ब्रह्म-स्वरूपमें स्थिर हो रहो ! [इत्यादि कहकर भ्रम-धोखेके बन्धनमें खूब जकड़ रहे हैं] ॥ ४ ॥

साखीः–अपरंपरं रूप मगु रङ्गी। आगे रूप निरूप न भाय ॥
बहुत ध्यान कै खोजिया। नहिं तेहि संख्या आय ॥७७॥

साखीः—आपहि सबमें रमा है, आप सबन के पार ॥ रूप रङ्ग रस आप ही, आपहि सिरजनहार ॥५॥ आगे बात बिचार भौ, रूप अरूप न ताहि ॥ बहुत ध्यान करि देखिया, नहिं तेहि संख्या आहि ॥ ६ ॥

मायामुखः--गुरुवा लोग कहते हैं--परमात्माका स्वरूप अपरम्पार है। उसे प्राप्त करनेके लिए मगु=भक्ति, योग, ज्ञानादि मार्गके रङ्गमें रङ्गी = खूब रङ्ग लगाकर सम-रस हो जाओ ! आगे स्थूल रूप और निरूप=रूप रहितकी भावना कुछ भी मत करो ! क्योंकि वह रूप-अरूपसे परे है। बहुत ध्यान करके खोजनेपर भी उसकी संख्या= हिसाब, गिनतीमें नहीं आती है। वह असंख्य अपार है। ब्रह्मानन्दमें मिलकर अनुभव-द्वारा उसे जानो ! इत्यादि ॥ ७७ ॥

अथवा परब्रह्मका मूलस्वरूप अपरम्पार है। उसका पारावार कुछ पाया जा नहीं सकता है। वह आप ही सब प्राणियोंके घट-घटमें रमा हुआ है। अणु-परमाणुओंमें भी रम रहा है। उसके बिना कोई जगह कहीं खाली नहीं है। तथापि आप सबसे परे उस पार निर्लिप्त हो रहते हैं। रूप, रङ्ग, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श इत्यादि जो कुछ भी दृश्य-अदृश्य विषय हैं, वे सब आपके ही स्वरूप हैं; और सम्पूर्ण जगत्का सिर्जन-हार=सृष्टिकर्त्ता पुरुष भी आप परमेश्वर ही हैं ॥५॥ आगे प्रथमारम्भमें उसके बारेमें बड़े-बड़े समर्थ लोगोंद्वारा बहुत विचार, विवेकसे छानबीन भी हुआ, तब अन्तमें यही निश्चयसे ठहरा कि उसका स्थूल शरीर और सूक्ष्म अरूप, उन दोनोंमेंसे कुछ भी नहीं है। किन्तु वह तो निर्गुण-निराकार निरञ्जन सर्व व्यापक है। योगी-ध्यानी आदि लोगोंने बहुत ध्यान-धारणा करके भी देख लिया, तो भी उसकी कुछ संख्या नहीं मिलती है। अतएव असंख्य, अनन्त, अगम परमात्माका स्वरूप है, ऐसा सबने निश्चय किया है। तुम भी यही निश्चय करके उसीमें तदाकार हो रहो ! [इत्यादि समझाकर भ्रम-धोखेमें फँसाते जा रहे हैं] ॥ ६ ॥ ७७ ॥

॥ ❁ ॥ रमैनी ॥ ७८ ॥ ❁ ॥

मानुष जन्म चूकेहु अपराधी। यहि तन केर बहुत हैं साझी ॥१॥
तात-जननि कहैं पुत्र हमारा। स्वारथ जानि कीन्ह प्रतिपाला ॥२॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—मानुष जन्म में चूकेहू, यही बड़ो अपराध ॥ यह तन केर बहुत हैं, लावनहार उपाध ॥१॥ मात पिता कहैं पुत्र है, हमरो बड़ो पियार ॥ अपने स्वारथ कारणे, वाहि कीन्ह प्रतिपार ॥२॥ जेहिमा हमरो नाम हो, सेवा करिहैं हमार ॥ जगमें महिमा होय है, बाढ़ै बंस अपार ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—वर्त्तमान मनुष्य-जन्ममें आ करके भी अज्ञानता-वश चोरी, हिंसा, व्यभिचार, मिथ्या भाषण इत्यादि पाप कर्मोंको करते हुए हे मनुष्यो ! तुमने अपना समय चूक गया, यही तुमसे बड़ाभारी अपराधरूप दोष, भूल-भ्रम हो जानेसे तुम अपराधी, दोषी हो गये हो। अब तो खूब भव-बन्धनमें फँस गये हो। अन्तमें चौरासी योनियोंमें जाकर कर्म-दण्ड तो तुमको भोगते ही रहना पड़ेगा। अब भी समय रहते ही जितना भी हो सके, अपने कर्मोंका सुधार करो ! अपने चैतन्य स्वरूपको न पहचानकर जिस स्थूल शरीरको तुम अपना स्वरूप मान रहे हो, यह तुम्हारी महान् भूल है। एक तो यह बना हुआ जड़ शरीर अन्तमें विनाश हो जायगा। दूसरा इस स्थूल शरीरके साझी=साझेदार वा हिस्सेदार बहुत लोग बने हैं और वे लोग तुम्हारे पीछे जगत्-प्रपञ्चकी बहुत उपाधि लगाकर चारों ओरसे खड़े होकर तुम्हें घेरघारकर भव-बन्धनमें जकड़ रहे हैं। उनके असली भेदको तुम जान नहीं रहे हो, इससे परिवारके लिए और भी विशेष अपराध करके बँधते जा रहे हो। परन्तु कर्मका दण्ड दुःख-भोग अन्तमें तुमको अकेला ही भोगना पड़ेगा। अतः सचेत होकर अब भी अपने उद्धारके मार्गमें लगो ! ॥१॥ तात=पिता और जननी=माता, वे दोनों मिलकर कहते हैं—यह तो हमारा पुत्र है, हमको यह बड़ा प्रिय है, हम इसे बहुत चाहते हैं, इसको देखे बिना हमको चैन नहीं पड़ता। इत्यादि सुनाकर भुलाते हैं। इस पुत्रसे अपना व्यावहारिक स्वार्थ सिद्ध होगा; ऐसा जानकर अपना स्वार्थ पूर्ण करनेके लिए ही उसका प्रतिपालन, पोषण, रक्षा खूब प्रेमसे किये और कर रहे हैं ॥२॥ जिसमें इसके द्वारा संसारमें हमारा नाम हो। रोगी अवस्था और बुढ़ापामें हमारी सेवा भी करेगा, बहू लाकर इसके द्वारा अपार वंश भी बढ़ेगा। इस तरह जगत्में हमारी मान-महिमा, यश, कीर्ति खूब होगी। इत्यादि स्वार्थके कार्य पूर्ण करानेकी बात ही वे सदा सोचते रहते हैं ॥ ३ ॥

कामिनि कहै मोर पिउ आही। बाघिनिरूप गिरासा चाही ॥३॥
सुत-कलत्र रहैं लौ लाई। यमकी नाँई रहैं मुख बाई ॥४॥
काग-गिद्ध दोउ मरण विचारें। सीकर-श्वान दोउ पन्थ निहारें ॥५॥

नारि कहै मोर पिउ अहै, बाघिन रूप बनाहि ॥ हाव-भाव कटाक्ष करी, मानो खाया चाहि ॥४॥ नाती पूत सब कहत हैं, पिता प्रपीता भाय ॥ याको धन हमको मिले, ये कैसेहु मरि जाय ॥५॥ गुरुवा जनकी बानी, येहु रही मुख फार ॥ जामें भरमि रहा सबै, मिथ्या यह संसार ॥६॥ काग गिद्ध दोउ कहत हैं, कब ये मरें गँवार ॥ हमको कछु भोजन मिले, करब शरीर अहार ॥७॥ स्यार श्वान दोउ बैठिके, बहु बिधि लाग लगाय ॥ कैसहुकै नर आवै, तुरतहि डारों खाय ॥८॥

कामिनी=विवाहिता स्त्री कहती है—ये तो मेरे पिउ=प्राणपति स्वामी ही हैं। भले संसारमें और सब छूट जायँ, जीतेतक मैं इनको कभी कदापि नहीं छोड़ सकती।

इत्यादि मोहक वाणी सुना-सुनाकर पुरुषको भ्रमा भुलाके विषयान्ध बनाये रखती है। परन्तु मनके भीतर अपना स्वभाव भूखी बाघिनीके समान खाऊरूप बनाकर उसके तन-मनादि सबको ग्रास करके खा ही जाना चाहती है। इसलिए बाहर ऊपर-से उसे रिझानेके लिए हाव-भाव-कटाक्ष, नाच-नखरा, हँसना-रोना आदि झूठा स्वाँग दिखलाकर, अपने वशमें करके मानो उसे समूचे सर्वस्व सहित खा ही लेना चाहती है। इस प्रकार पुरुषके सर्वस्वको खाकर उसका जीवन बरबाद, सत्यानाश करके भव-बन्धनमें विनाशकी ओर डालती जा रही है ॥३॥४॥ सुत=पुत्र, कलत्र=पत्नी और बहुएँ, नाती इत्यादि परिवारके सब लोग आ-आ करके एक-एक नाता लगाते हुए—ये हमारे पिता हैं, प्रपिता, पितामह, काका, भाई इत्यादि बड़े माननीय पूज्य हैं—इत्यादि कहते हुए झूठा भाव दिखलाते रहते हैं; परन्तु भीतरसे उसके पासके धनादि पदार्थोंको अपने अधिकारमें करनेका स्वार्थ-भाव दृढ़ किये रहते हैं। इसलिए आपसमें वे कहते हैं कि ये बूढ़ा अब जल्दीसे किसी तरह भी मर जाता तो अच्छा होता। किसी प्रकार इसका धन हमको मिल जाय, बस! यही उपाय होना चाहिये! यही सोचते, कहते, कभी वैसा वचन सुनाते भी हैं। इस प्रकार यम=कालरूप भूखे बाघके समान मुख फाड़कर झपटनेका मौका देख रहे हैं ॥४॥५॥ दूसरी ओर यमरूप गुरुवा लोग, वे भी वैसी वाणी बोलकर अबोध जनोंके धनादि पदार्थ लूटकर खानेके लिए खूब मुख फाड़ रहे हैं, जिससे अनसमझ सब जीव भूलकर भ्रममें भटक रहे हैं। इस प्रकार यह खानि-वाणीका संसार सब तरहसे मिथ्या धोखेका जाल है। उसमें फँसकर सारी आयु व्यर्थमें बिताकर बद्ध जीव चौरासीमें पड़े दुःख भोग रहे हैं; बिना विचार ॥६॥ काग और गिद्ध, ये दोनों भी श्मशानके वृक्षमें बैठकर सोचते हैं कि ये गँवार मनुष्य कब मरेगा? यदि जल्दीसे आकर जङ्गलमें ही मर जाता, तब तो हमको भी कुछ भोजन खानेको मिल जाता। इसके शरीरका मांस नोचकर आहार करके खाते और तृप्त होते ॥७॥ सीकर=सियार और श्वान=कुत्ते, ये दोनों भी श्मशानघाटके समीपमें बैठकर मुर्दे लानेका मार्ग देखते रहते हैं, बहुत प्रकारसे मुर्दे खानेके दावसे लाग लगाये रहते हैं। कैसे भी करके मनुष्य मर जाय, मुर्देको यहाँ ले आवें और हमें मौका मिल जाय, तो उस मुर्दाको तुरन्त ही खा डालेंगे; ऐसी मनमें आशा लगाये रहते हैं ॥८॥ अथवा कागके समान कपटी ब्राह्मणादि, गिद्धवत् लोभी पुरोहितादि, वे दोनों 'यजमान कब मरेगा?' यही विचारते रहते हैं। सीकर=सियारवत् होशियार बनकर पण्डित लोग और श्वानवत् विषयी पण्डे-पुजारी लोग, ये दोनों भी अज्ञानी लोगोंको ठगनेका मार्ग देखते रहते हैं ॥ ५ ॥

अग्नि कहै मैं इन तन जारों। पानि कहै मैं जरत उबारों ॥६॥
धरती कहै मोहि मिलि जाई। पवन कहै संग लेऊँ उड़ाई ॥७॥

पाँच तत्त्व यों कहत हैं, अपनो अपनो भाग ॥
तुरतहि लेहुँ मिलाय के, होय देह जो त्याग ॥ ९ ॥

अग्नि = अग्निहोत्री लोग कहते हैं—अग्निकी परिचर्यामें मैं इस शरीरको तपाकर सम्पूर्ण पापको जला करके पुण्य कर्मके प्रतापसे स्वर्गादि लोकमें जाऊँगा, तुम लोग भी अग्निकी ही उपासना करो, तो तुम्हारे भी सब पाप जल जायेंगे। अन्तमें तुम भी स्वर्गमें जाओगे। सब देवताओंका मुख अग्नि है। अग्निमें आहुति डालकर होम करनेसे सब देवता प्रसन्न होते हैं; इत्यादि। दूसरा पानी = जलका उपासक कहता है—पापमें जलते हुए जीवको मैं गङ्गादि स्नान करके और तीर्थ-यात्रामें जाकर पार उतारूँगा; इत्यादि। अग्नि, जलादि पाँच तत्त्व जड़ होनेसे ये कुछ नहीं कहते; क्योंकि इनके स्वरूपमें ज्ञान-गुण ही नहीं है। ये पद रूपक रीतिसे कहा है। इसलिए उनके उपासक लोग कहते हैं; ऐसा जानना चाहिए! मृत्यु होनेपर जड़ शरीरके अग्निका कार्य अग्निमें और जलका कार्य जलमें मिल जाता है ॥६॥ इस प्रकार पञ्च तत्त्वोंको पृथक्-पृथक् व्यष्टिरूपमें वा सम्पूर्ण समष्टिरूपमें विभिन्न देवता और एक ही परमेश्वर माननेवाले पञ्च तत्त्वोंके उपासक लोग यों कहते हैं कि किसी तरह कर्म, उपासनादि साधना करते हुए हम अपने-अपने अधिकारके कर्मोंका भाग विधिपूर्वक पूर्ण कर लेंगे। हमारी देह त्याग हो जानेपर हम अपने जीवको तुरन्त ही भगवान्‌के स्वरूपमें मिला करके परम पदको प्राप्तकर मुक्त हो जायेंगे; इत्यादि। अथवा घर-गृहस्थीके भाई आदि पञ्च लोग तत्त्व = अपने मतलबकी बात यों कहते हैं—यदि बुड्ढा जीते ही हमारा भाग हिस्सा-बटवारा नहीं कर देता है, तब उसकी मृत्यु हो जानेपर अपना-अपना भाग हिस्सा-बटवारा करके हम तुरन्त ही अपने खातामें मिला लेंगे; इत्यादि ॥६॥ धरती = पृथ्वीमें रहनेवाले पृथ्वीके उपासक लोग कहते हैं—इष्ट देवताके प्रतीकरूपमें अष्ट प्रतिमाकी पूजासे हमको भगवान् मिल जायेंगे—यह हमें निश्चय है, इसलिए हम मूर्त्ति-पूजा ही करते रहेंगे, और साधना नहीं करेंगे; इत्यादि। इसी प्रकार पवनके उपासक योगी, फकीरादि लोग कहते हैं—हम पञ्च प्राणको योग-युक्तिसे ऊपर चढ़ा करके अपने तन-मनके सब पापको उड़ाकर दूर कर देंगे, पुनः जीवको पिण्डसे उड़ाकर ब्रह्माण्डमें परमात्माके सङ्ग-साथमें मिला करके मुक्त कर देंगे; इत्यादि। जड़ तत्त्वरूप पृथ्वी और जड़ वायु, इनमें ज्ञान-गुण न होनेसे ये कुछ नहीं कहते हैं। वास्तवमें उन तत्त्वोंके उपासक लोगोंका कथन ही इसमें दरशाया गया है; ऐसा जानना चाहिए! मृत देहमेंसे पृथ्वीका कार्यभाग पृथ्वीमें और वायुका कार्यभाग वायुमें स्वाभाविकरूपसे मिल जाता है ॥ ७ ॥ ६ ॥

तेहि घरको घर कहै गँवारा। सो बैरी होय गले तुम्हारा ॥८॥
सो तन तुम आपनकै जानी। विषय स्वरूप भूलेउ अज्ञानी ॥९॥

जेहि घरको घर कहत हो, सो तो बैरि तुम्हार ॥ एक दिना मरि जाहुगे, दै दै दुक्ख अपार ॥१०॥ सो तनको तुम आपना, कै-कै लीन्हों मान ॥ विषय रूप हो जगत में, भूलो रे अज्ञान! ॥ ११ ॥

जिस स्थूल शरीरको और बाहरके घर-गृहस्थी परिवारको तुम गँवार बनकर—मेरा घर, मेरा कुल, मेरे कुटुम्बी, मेरा परिवार कहते हो, हे गँवार ! अन्तमें सो वे सब तो तुम्हारे वैरी=शत्रु, दुश्मन होकर तुम्हारे गले पड़ेंगे, स्वार्थ-सिद्ध करके तुम्हारा विनाश कर डालेंगे। उनके भेदको न पहचानकर झूठा भ्रम—धोखेमें ही तुम भूल रहे हो ! उनके द्वारा अपार दुक्ख-यातना दे-देकर सताते रहनेसे जीवनभर भी तुम्हारी दुर्दशा होगी। एक दिन इस शरीरको भी छोड़ करके मर जाओगे ! वासनावश चौरासी-चक्रमें पड़कर वहाँ भी सदा दुःख ही भोगते रहोगे ॥८॥१०॥ सो इसी स्थूल शरीरको तुमने भ्रमसे अपना स्वरूप समझ करके मान लिया है। अज्ञानसे विषय-स्वरूपमें तदाकार होकर जगत्-जालमें पशुवत् भूल रहे हो, संसारमें विषयासक्त होकर महा अज्ञानी बन करके निज चैतन्य-स्वरूपको एकदम भूल रहे हो; परन्तु यहाँके धन-जनादि शरीरके साथ सब यहीं छूट जायेंगे। अन्तमें तुम्हारे सङ्गमें कोई कुछ नहीं जायगा। विषयाध्यासवश तुमको अकेले ही चौरासी योनियोंमें जाकर अनेक दुःख भोगते रहना पड़ेगा। अतएव तुम्हारे हितके वास्ते मैं कहता हूँ—अभी समय रहते पहले ही सचेत हो जाओ ! पारखी सद्गुरुके शरण—सत्सङ्गमें लगकर अपने कर्त्तव्यका सुधार करके सद्गुणयुक्त बोध-वैराग्यको धारण करो ! जिससे तुम्हारा जीवन-कल्याण भी हो जायगा ॥ ९ ॥ ११ ॥

साखीः—इतने तनके साझिया। जन्मों भरि दुःख पाय ॥
चेतत नाहिं मुग्ध नर बौरे ! मोर—मोर गोहराय ॥७८॥

साखीः—इतने साझी देहके, कियो मोह इन सङ्ग ॥ जन्म भरी दुःख पाइया, आखिर मिथ्या भङ्ग ॥१२॥ चेतत नाहीं मूर्ख नर, नाहक में बौरान ॥ मोर मोर गोहरावहीं, मोह जालको मान ॥ १३ ॥

हे मनुष्य ! तेरी एक देहके तो इतने सब साझिया=साझेदार वा हिस्सेदार बने हैं। इनके ही सङ्ग-साथमें घुलमिलकर मोह—ममता, आसक्ति तुमने खूब की, उन परिवारोंके पालन-पोषणादिमें धनादि कमानेके लिए जन्मभर अनेक प्रकारके दुःख पाये। आखिरमें नाशवान् शरीर एक दिन भङ्ग=मृत्यु होकर विनाश हो जायेगा ! तुम्हारा सब व्यवहार मिथ्या होगा, कुछ काममें नहीं आयगा ॥१२॥ मुग्ध=मोहित, भ्रमित मूढ़, मूर्ख बना हुआ हे पागल नरजीव ! अब भी कुछ चेत नहीं करता है ? व्यर्थमें बौरा रहा है। मिथ्या मोहजालको मान—मानकर 'मेरा शरीर, मेरे माता-पिता, मेरा घर, मेरी स्त्री, पुत्र, परिवार' इत्यादि गोहराय=मेरा-मेरा पुकारता रहता है। ऐसे पुकारनेसे तुम्हें कुछ लाभ नहीं होगा। अन्तमें मरनेपर सब यहीं छूट जायेंगे। मोहजालकी मानन्दी, अध्यासवश तुमको अकेले ही चौरासी योनियोंमें जाकर दुःख भोगते रहना पड़ेगा। अतः अब भी सचेत होकर सत्सङ्गमें लग करके अपना उद्धार करो ! ॥१३॥७८॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ७९ ॥ ❀ ॥

बढ़वत बढ़ी घटावत छोटी। परखत खरी परखावत खोटी ॥१॥
केतिक कहौं कहाँलौं कही। औरों कहौं पड़े जो सही ॥२॥
कहै बिना मोहि रहा न जाई। बिरही ले-ले कूकुर खाई ॥३॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—बढ़त बढ़ावत बहुत बढ़ी, बानी और प्रपञ्च ॥ घटत घटावत घटा जीव, कहूँ न पावै सञ्च ॥१॥ परखत को साँचा लगा, बानी को अनुमान ॥ परखाये जब गुरुने, ठहरा झूठ निदान ॥२॥ केतिक कहौं समुझाय के, कही कहाँलों भाय ॥ औरों कहौं परखाय के, परे सही जो आय ॥३॥ बिना कहे निरुवारके, मोंसो रहो न जाय ॥ बिरही जीवको लेइके, गुरुवा कूकुर खाय ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—वाणीजालकी कल्पना और खानिजालका विषय-प्रपञ्च बढ़ाते-बढ़ाते, बढ़ते-बढ़ते बहुत ही बढ़ गया। उसीमें लगकर अबोध जीव अपने हंसपदके सद्गुणोंसे घटते-घटते, बुद्धि-विचारको घटाते-घटाते बहुत ही नीचे उतरकर भव-बन्धनमें बद्ध हो गया। अतएव वैसा भव-बन्धनमें पड़ा जीव कहीं भी सञ्च=सुख-शान्ति, सन्तोष नहीं पाता है। सब जगह दुःख-सन्ताप, कष्ट-क्लेश ही पाता रहता है ॥१॥ वाणीकी अनुमान-कल्पना और विषय-भोगादि अपनी बुद्धिसे परखते, समझते समयमें तो खरी=सच्चे जैसे ही लगे; परन्तु भ्रम-बन्धन नहीं छूटा। जब कोई जिज्ञासु जीव पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आया, सद्गुरुदेव कृपा करके जब उसे यथार्थ भेद परखाये, तब निदान=अन्तमें वह पहलेकी मानन्दी सब सरासर खोटी=झूठी ही ठहर गई ॥१॥२॥ हे भाई! तुमको समझा करके मैं कितना कहूँ? और कहाँतक कहूँ? तुम्हारी समझमें क्यों नहीं आ रहा है? चैतन्य जीवका स्वरूप ही सत्य है और सब मानन्दी मिथ्या है; ऐसी यथार्थ बातको भी क्यों नहीं समझते हो? यदि अब भी जो तुमको सही-सही भेद समझमें आ पड़े, तो मैं पुनः और भी यथार्थ निर्णयकी बात परखाकर वा समझाकर कहता हूँ—चैतन्य जीवका पारख-स्वरूप ही सत्य है, उससे परे और कुछ भी सत्य नहीं है। ब्रह्म, ईश्वरादि सब तो मिथ्या मानन्दी है। अतः निज पारख-स्वरूपमें स्थिर हो रहो! ॥२॥३॥ बिरही=वेहई, पूरणपूरी को चुराके ले-लेकर कुत्ता खाने लगा। ऐसा देख करके कहे बिना मुझसे रहा नहीं जाता। तद्वत् कूकुरवत् बने भ्रमिक गुरुवा लोग बिरही=ईश्वरादिके विरह-वियोगमें पड़े इस अबोध जीवको अपनी ओर ले-लेकर खींचतान करके भ्रमा-भुलाकर, उसके सर्वस्व लूटकर खाते जा रहे हैं। ऐसे अन्याय, अनीतिसे जीवोंके भव-बन्धन और दुःख देखकर यथार्थ भेद कहे बिना मुझसे चुप रहा नहीं जाता है। इससे जड़-चैतन्यका निरुवार सत्यासत्य, बन्धन-मुक्ति, खरा-खोटका भेद यथार्थ

परखा करके मैं कह रहा हूँ; जिससे पारखबोध प्राप्त होनेपर जिज्ञासुजन भ्रम-बन्धनसे छूट सकेंगे। पारखबोधसे स्थिति प्राप्त होनेपर निर्बन्ध मुक्त भी होंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥

साखीः—खाते-खाते युग गया। बहुरि न चेतहु आय॥
कहहिं कबीर पुकारिके। ये जीव अचेतहि जाय ॥७९॥

साखीः—पढ़त-पढ़त बहु युग गये, अबहुँ न चेतहु आय ॥
कहाँ है जाहि पुकारहू ?, ई जीव अचेतहि जाय ॥५॥

षट्रस व्यञ्जनोंको खाते-खाते, स्वाद लेते-लेते और पञ्च विषयोंको भोगते-भोगते युगरूप सम्पूर्ण आयुका समय भी बीत गया। नर-नारीकी युवावस्था भी व्यतीत हो गई, बहुरि = फिर भी सत्सङ्गमें आकर अब भी चेत नहीं करते हो। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब पुकार करके कहते हैं—यह अज्ञानी विषयासक्त जीव ऐसा ही अचेत होकर मर जाता है, चौरासी योनियोंमें पड़ा दुःख भोगता रहता है ॥ ७६ ॥

अथवा बाणी-कल्पना और विषयोंको ही खाते-खाते, बहुत-से ग्रन्थोंको पढ़ते-पढ़ते युग भी बीत गये। अब भी पारखी सन्त सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें आकर हे नरजीव ! तुम नहीं चेतते हो ? जिनको तुम पुकारते रहते हो, वे ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि कहाँ हैं ? कहीं नहीं। बिना विचार भ्रम-भूल, धोखेमें पड़कर ये अबोध जीव अचेत हो व्यर्थ आयु बिताकर अन्तमें मरनेपर चौरासी योनियोंमें ही चले जा रहे हैं; बिना पारख ॥ ५ ॥ ७६ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ८० ॥ ❀ ॥

बहुतक साहस करु जिय अपना। तेहि साहेबसे भेंट न सपना ॥१॥
खरा-खोट जिन नहिं परखाया। चाहत लाभ तिन्ह मूल गमाया ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—बहु अनुमान जिव करत है, ब्रह्म पदारथ मान ॥
सो तो मिथ्या धोख है, स्वप्नेहु न मिले निदान ॥१॥ खरा--खोट जिन परखा नहीं, परख न ताके पास ॥ सो जिव लाभ की चाह करि, कियो आपनो नास ॥२॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—ब्रह्म, ईश्वरादि मालिक कोई एक सत्य पदार्थ होगा, ऐसा मान करके अबोध जीव उसे प्राप्त करनेके लिए बहुत ही अनुमान-कल्पनासे साहस = हिम्मत, दुस्साहस भी बहुत ही करता है; परन्तु अपने सत्य स्वरूप-को सर्वथा नहीं जानता। वास्तवमें माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादि तो मिथ्या भ्रम-धोखा ही है। इस कारण उस ईश्वरादि कल्पित मालिक साहेबसे निदान = अन्तमें स्वप्नमें भी भेंटघाट, मिलाप नहीं होता है। स्वप्नवत् क्षणभरके लिए भी कभी कदापि सत्यरूपमें वह नहीं मिलता है। फिर जाग्रत्में वह कैसे मिलेगा ? बिना पारख मिथ्या धोखेमें भूले पड़े हैं ॥१॥ खरा = सत्य और खोट = असत्य, नकली, दूषितको कहते हैं। इस प्रकार

खरा-खोट, सत्य-असत्य, जड़-चैतन्य, सार-असार और बन्धन-मुक्तिको भी जिसने स्वयं भी नहीं परखा, फिर औरोंको भी नहीं परखाया, तब जान लीजिये कि उसके पासमें पारखबोध नहीं है। सो वैसे अबोध लोगोंके सङ्गमें मत् लगो! वैसे अबोध भ्रमिक जीव परम लाभ प्राप्त करनेकी चाहना करके भी अन्तमें अपना ही मूल=हंस-पदके सर्व सद्गुण सहित आयुको भी व्यर्थ गमाया=खोकर विनाश कर देता है। लाभ चाहते हुए भी हानि कर लेता है, अपनी मुक्तिका ही विनाश कर डालता है। अतः पारखबोध प्राप्त करो, तभी यथार्थ लाभ होगा ॥ २ ॥

समुझि न परलि पातरी-मोटी। ओछी गाँठि सबै भौ खोटी ॥३॥
कहहिं कबीर केहि देहो खोरी। जब चलिहो झिझि आसा तोरी ॥४॥

मेही मोटी दोउ कष्टरूप, समुझि परी नहिं काहु॥ पतरी कहिये ब्रह्मको, मोटी जगत बताहु ॥३॥ मोटी माया छोड़िके, पतरीमें भये बन्ध॥ मनमें बहुत बिचार करि, रचेउ झूठ फरफन्द ॥४॥ कहँवा है सो जीयरा?, काहि देहुगे दोख ?॥ देह छाँड़ि चलिहो जबै, झूठ कियो जो धोख॥ ५ ॥ ८० ॥

पातरी=महीन, सूक्ष्म, बारीक, झीनी मायारूप वाणीजाल और मोटी=स्थूल, जगत्-प्रपञ्च मोटी मायारूप खानिजाल; ये दोनों जीवको महा बन्धनकारी कष्टरूप, दुःख भुगाते रहनेवाले हैं। परन्तु पारखबोध न होनेसे इनका यथार्थ भेद किसीको समझ नहीं पड़ता है। ब्रह्मको पतली वा झीनी माया कहते हैं और जगत्को मोटी माया बताया जाता है, जिनमें सब लोग बँधे पड़े हैं ॥३॥ षट्दर्शनोंके भेषधारी लोग घर-गृहस्थीरूप मोटी मायाको छोड़कर वा छुड़ा करके पतली झीनी मायारूप वाणी-कल्पनामें जाकर खूब फँसे पड़े हैं। मनमें वाणी-कल्पनाका ही बहुत विचार करके पुनः अनेक मत-मतान्तरोंका झूठा फन्द-फरफन्दकी वाणी खूब रचना कर रक्खे हैं। इसलिए ओछी=छोटी वाणीकी भ्रम-गाँठीमें सब बँध गये। परन्तु ओछी, नीच गाँठीवाली सम्पूर्ण कल्पित वाणी खोटी=झूठी, नकली, विकारसे परिपूर्ण बन्धनकारक ही हो रही है। अतः परख करके उसे परित्याग करो! ॥३॥४॥ सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब कहते हैं—हे जीव! झी-झी=झीनी-झीनी सूक्ष्म आशा-तृष्णादिकी डोरीमें बँध-कर हंसपदको तोड़ करके जब अन्तमें चौरासी योनियोंमें चले जाओगे, खूब दुःख भोगते रहोगे, तब इसकी खोरी=दोष किसे दोगे? तुम्हारा ही आशारूप बन्धन तुम्हें दुःख दे रहा है। अतः अभी आशा-तृष्णादिके जालको विनाश करो! ॥४॥ अथवा हे जीव! जिस ब्रह्म-ईश्वरादिको मालिक मानकर ढूँढ़ते हो, वह कहाँ है? बाहर कहीं नहीं है। आप ही भ्रम-धोखेमें पड़कर हानि उठाते और भव-बन्धनमें पड़ते हो। अब उसका दोष, उलाहना भी तो किसको दोगे? जब अन्तमें स्थूल देहको भी यहीं छोड़कर चौरासी योनिमें चले जाओगे, तब तुम्हें दुःख-भोगोंसे कौन बचायेगा? अभी जो झूठा-धोखामें प्रेम-प्रीति लगाकर आशा-भरोसा करके भूल रहे हो, वह

अन्तमें तुमको कुछ काम नहीं देगा। मोटी-झीनी मायाके आशा, आसक्ति, अध्यासवश आवागमनमें पड़े सदा दुःख ही भोगते रहोगे। अतः अब भी सचेत होकर पारखबोध प्राप्त करके सम्पूर्ण आशा, अध्यासको मिटाओ ! ॥ ४ ॥ ५ ॥ ८० ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ८१ ॥ ❀ ॥

देव चरित्र सुनहु हो भाई ! जो ब्रह्मा सो धियेउ नसाई ॥१॥
दूजे कहौं मन्दोदरि तारा। जेहि घर जेठ सदा लगवारा ॥२॥

टीका; गुरुमुख--दोहाः—देव चरित्र सुनो रे भाई !, कहौं तोहि समुझाय ॥ जाहि कहत हैं ब्रह्मा, सो पुत्री सङ्ग जाय ॥१॥ औरों सुनो मन्दोदरी, तारा बड़ी रहाय ॥ इन घर सदा लगवार हैं, सुग्रीव बिभीषण भाय ॥ २ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे भाई ! प्राचीनकालके माने गये देवता लोगोंका जीवन-चरित्र, कर्म--अकर्म जैसा कुछ पुराणोंमें वर्णन किया है, जिनको तुम लोग बड़े--बड़े नामी इष्ट देवता मान रहे हो, अब उनका संक्षिप्त जीवन-चरित्र कहकर मैं तुम्हें समझाता हूँ; सो सुनो—जो सब देवताओंमें अग्रगण्य ब्रह्मा, जिनको स्वयम्भू, विधाता, वेदवक्ता कहते हैं, प्रथम तो सो वही धियउ=अपनी ही पुत्री सरस्वतीके सङ्ग-साथमें जाकर विषय-भोग करके मनुष्यके हंसपदसे विनाश हो गया। इस प्रकार ब्रह्माने मानव-मर्यादा, नियमका भङ्ग किया ॥१॥ दूसरी और भी पौराणिक बात कहता हूँ; सो उसे भी सुनो—मन्दोदरी रावणकी स्त्री थी और तारा बालीकी स्त्री रही। ये दोनों उनके घरमें जेठ=बड़ी भावज होनेसे माता तुल्य रहीं। परन्तु जिनके घरमें बड़े भाईकी मृत्यु होनेपर विभीषणने मन्दोदरीको स्त्री बनाकर रक्खा और सुग्रीव भी ताराको स्त्री बना लिया। इस प्रकार विभीषण और सुग्रीव, ये दोनों देवररूपमें छोटे भाई लोग ही सदा लगवारा=जार, उपपति, व्यभिचारी बनकर जीवन पर्यन्त उनसे विषय-भोग करते रहे, तब भी रामचन्द्रके प्रिय भक्त ही माने गये; बिना विचार ॥२॥

सुरपति जाय अहिल्या छरी। सुर गुरु घरणि चन्द्रमें हरी ॥३॥
कहहिंकबीर हरिके गुण गाया। कुन्तिहि कर्णकुँवारेहि जाया॥४॥८१॥

देवपति जो श्रेष्ठ है, जाको कहिये इन्द्र ॥ छली अहिल्या तिन ने, परे देहमें छिद्र ॥३॥ हरयो जायके चन्द्रमा, बृहस्पतीकी नार ॥ गुरुनारी सो भोग कियो, तबहिं भयो बुधवार ॥ कहँवा है सो जीयरा, जिन्ह गुण वेदन गाय ॥ कुन्ती कुँवारी नारि थी, तबहिं कर्ण उपजाय ॥ ५ ॥

इसी प्रकार पुराणोंमें और भी देव-चरित्र वर्णन किया है कि, सुरपति=सब देवताओंका राजा देवपति, जिसको श्रेष्ठ इन्द्र कहते हैं, उसने भी गौतम-मुनिकी अनुपस्थितिमें आश्रममें जाकर, उनकी स्त्री अहिल्याको छल-बल--कपटसे अपने वशमें करके उसके

साथ सम्भोग किया। जिसके कारणसे इन्द्रके शरीरमें गलित कुष्टरोग होकर अनेक छिद्र पड़ गये; इत्यादि ॥३॥ इसी प्रकार सुर-गुरु = सर्व देवताओंके गुरु वृहस्पति-की घरणि = स्त्रीको गुरुकी अनुपस्थितिमें चन्द्रमाने जाकर अपहरण करके अपने घर ले आया। उसी गुरुपत्नीसे व्यभिचार करके सम्भोग किया, तब उसके द्वारा 'बुध' नामक पुत्र उस बार उत्पन्न हुआ। जिसके नामसे एक दिनका नाम बुधवार रक्खा गया है ॥३॥४॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—जिस हरि = विष्णुका गुण गुरुवा लोगोंने खूब गाया है, उस विष्णुने भी जालन्धरकी स्त्री वृन्दाका सतित्त्व छल-बलसे हरण करके विनाश किया था। वैसे व्यभिचारीका गुण गानेसे किसीका हित नहीं हो सकता है। हे जीव! जिसका गुण वेदोंने गा-गाकर वर्णन किया है, वह ब्रह्म-ईश्वर आदि कहाँ हैं? बाहर तो कहीं नहीं हैं। केवल तुम्हारी कल्पना वाणीमें लिखी है। फिर हरिका गुण गानेसे भी हरि कहाँसे मिलेगा? विष्णुने तो वृन्दादिका सतित्त्व हरण कर दिया। उसी प्रकार कुन्ती स्त्री, जब पिता-माताके घरमें कुँवारी कन्या ही थी, तभी सूर्य पुरुषसे फँसकर गर्भवती हुई। फिर उसने कर्ण पुत्रको जाया = उत्पन्न करके लोक-लज्जासे उसे लकड़ीके सन्दूकमें रखकर नदीमें बहा दिया। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र, सूर्य, सुग्रीव, विभीषणादि—ये सब लोग विषय-व्यभिचार, कर्म-अकर्ममें भूले ही थे। वैसे अकर्मसे उनका ही जब भव-बन्धन नहीं छूटा, तब उनके गुण गाने-वालोंका बन्धन कैसे छूटेगा? कभी नहीं छूटेगा। अतएव विवेक करके मिथ्या मानन्दीको त्यागो! पारखबोध प्राप्त करके अपना उद्धार करो ॥ ४ ॥ ५ ॥ ८१ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ८२ ॥ ❀ ॥

सुखके वृक्ष एक जगत्र उपाया। समुझि न परलि विषय कछु माया ॥१॥
छौ क्षत्री पत्री युग चारी। फल दुइ पाप-पुण्य अधिकारी ॥२॥

टीका; गुरुमुख-सोरठाः—एक जीवको नाँव, इन्ह आपन अनुमान करि॥ सुखका वृक्ष उपाव, जासु ब्रह्म जग गाइया ॥१॥ दोहाः—समुझि परी नहिं विषय कछु, जामें भया आनन्द ॥ आनन्दसे अहंशक्ति भई, बढ़ो तहाँते फन्द ॥२॥ छौ चकवे क्षत्री भये, ब्राह्मण भये युग चार ॥ पाप-पुण्य दुइ फल भये, जीवहि को अधिकार ॥ ३ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—सुखका एक वृक्ष ब्रह्म है, उसीने सब जगत्को उत्पन्न किया—ऐसी वाणी-कल्पना जगत्जीवोंने बनायी। माया = गुरुवा लोगोंकी वाणीका विषय ब्रह्म एवं ब्रह्मानन्द—यह वास्तवमें भ्रम-बन्धनरूप है, अविवेकीको ऐसा कुछ समझ नहीं पड़ा। अथवा सुखका एक वृक्ष स्त्रीको माना। उसीसे जगत्में सब सन्तान उत्पन्न हुई। परन्तु माया = उसी स्त्रीका विषय-भोग जीवको भव-बन्धनका मूल कारण है, ऐसा भी अविचारी लोगोंको कुछ समझ नहीं पड़ा। इसीसे दोनों ओर खूब बँधे पड़े हैं ॥ १ ॥

अथवा एक = जीवका ही नाम है। इस अबोध जीवने अपने ही अनुमान करके एक सुखका वृक्ष उत्पन्न किया, जिसको ब्रह्म, परमात्माके नामसे सब जगत्‌के लोग वर्णन करते हैं ॥१॥ परन्तु यह भी वाणी-कल्पनाका एक विषय भ्रमरूप है; ऐसा कुछ भी पारखहीन अबोध लोगोंको समझ नहीं पड़ा। जिसमें भूलकर खूब आनन्दमें गाफिल हुआ, उसी ब्रह्मानन्दसे अहंशक्ति उत्पन्न हुई। अहङ्काररूप इच्छाशक्तिसे वाणी-कल्पनाके सब जाल विस्तार होकर बढ़े। उन्हींको लेकर सब गुरुवा लोग अबोध-जानोंको फँसाते जा रहे हैं ॥२॥ इस प्रकार प्रथम जो एक सुखका वृक्ष उत्पन्न किया, उसमें छौ क्षत्री = षट् चक्रवर्ती महाराजे क्षत्रिय लोग पत्तोंके समान उत्पन्न हुए। चार वेद एवं षट्‌शास्त्रोंकी वाणीके पत्र परत-के-परत बनाकर वर्णन करनेवाले ब्राह्मण लोग बड़ी-बड़ी चार डालियोंके समान बने। उन लोगोंने चार युगोंकी सब बातें कल्पना करके शास्त्रोंमें लिख रक्खी हैं। उनमें पाप और पुण्य—ये दो फल लगे। पाप वा पुण्य जैसा भी कर्म करना वा न करना, यह जीवके ही अधिकारमें है। पापके अधिकारीको विशेष दुःख फलभोग और पुण्यके अधिकारीको विशेष सुख फलभोग देह धारण करके होता है। सो चौरासी योनियोंमें पड़े जीव अपने-अपने कर्मोंके अनुसार सुख वा दुःख फलभोग पा रहे हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

स्वाद अनन्त कछु बर्णि न जाई। करि चरित्र सो ताहि समाई ॥३॥
जो नटवट साज साजिया। जो खेलै सो देखै बाजिया ॥४॥
मोहा बापुरा युक्ति न देखा। शिव शक्ती विरञ्चि नहिं पेखा ॥५॥

वै युग फलको स्वाद बहू, कछु वर्णी नहिं जाय ॥ बहु प्रकार जिव चरित्र करी, तेहिमा रहे समाय ॥४॥ जिन्ह यह बहु बानी रची, औ बहु बोध बनाय ॥ सोइ खेलत है तासुमें, देखै सो बझि जाय ॥५॥ सोरठाः—मोहि गया यह जीव, कृतम जुक्ति नहिं परखिया ॥ ब्रह्मा शक्ती शिव, सबै परे भ्रम फन्दमें ॥ ६ ॥

विषयानन्द और ब्रह्मानन्द—ये दोनों फलोंका स्वाद बहुत है, उनके स्वादका अन्त नहीं है, अनन्त स्वादका वर्णन वाणीसे कुछ भी किया जा नहीं सकता है; ऐसा दोनों ओरके स्वाद चाखनेवाले लोग कहते हैं। फिर अनेक प्रकारसे कर्मोंका चरित्र चौरासी आसनादि अनेक साधनाएँ कर—करके सब जीव उसी ब्रह्मानन्द और विषया-नन्दमें जा-जाकर समा रहे हैं। अन्तमें अध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवासमें जाकर समाते जा रहे हैं। ॥३॥४॥ जैसे नट लोग नाटक दिखानेका साजबाज सजाकर खेल-तमाशा दिखलाते हैं। जो उनका तमाशा देखते हैं, वे भी उसीमें फँस जाते हैं ॥४॥ तद्वत् जिन लोगोंने वेद-वेदान्तादि ये बहुत-सी वाणी अनुमान-कल्पनासे रचना की और ब्रह्मबोध, ईश्वरबोधादि अनेक सिद्धान्तोंका साजबाज बनाकर सजाया, ग्रन्थ-पन्थोंका जगत्‌में खूब प्रचार किया-कराया, वे ही सिद्ध-साधकरूप गुरु-चेले उनके मत-पन्थोंमें खेलते-खेलाते रहते हैं। परन्तु उस वाणी-कल्पनाके जालमें खेलनेवाले

लोग पहले फँस गये। तत्पश्चात् देखनेवाले लोग भी उसीमें जा-जाकर फँसे और फँसते जा रहे हैं। बिना पारख भ्रम-बन्धनसे कोई छूट नहीं पा रहा है ॥४॥५॥ बापुरा= बेचारा अबोध नरजीव पञ्च विषयादि खानिजालमें और वाणी-कल्पनाके जालोंमें दोनों ओर स्वयमेव जा-जाकर खूब विमोहित हो बद्ध हो गया। कृत्रिम, नकली, बनावटी खानि-वाणीकी युक्ति-प्रयुक्तिको सर्वथा परख नहीं पाया। पारख-दृष्टि न होनेसे फँसने-फँसानेके जालकी युक्तिको भी नहीं देखा, नहीं समझा; इसलिए खूब फँस गया। इसी प्रकार प्राचीनकालमें भी शिव=महादेव, शक्ति=आदिमायारूप भगवती, विरञ्चि=ब्रह्मा और विष्णु; ये सब लोग भी उसी वाणी-खानिके भ्रमजालमें खूब बद्ध हो रहे। उन लोगोंने भी विवेक करके उस बन्धनको नहीं देखा। उनके पीछे सब-के-सब उसीमें फँसते-फँसाते चले आ रहे हैं। अब तो शिव, शक्ति, ब्रह्मादिको माननेवाले लोग सब भी बिना पारख उन्हीं मोटे-झीने मायाजालोंमें भ्रम-धोखेसे अरुझते-अरुझाते हुए भव-बन्धनोंमें बँधे पड़े हैं। जिज्ञासुजनोंको पारखबोध प्राप्त करके उन सब जालोंसे पृथक् हो रहना चाहिए! ॥ ५ ॥ ६ ॥

साखीः-परदे-परदे चलि गई। समुझि परी नहिं बानि ॥
जो जानै सो बाँचि है। नहिं तो होत सकल की हानि ॥८२॥

साखीः—परदे-परदे चलि गई, समुझि परी नहिं बानि ॥
जो जानै सो बाँचिहैं, नहिं तो होत सकलकी हानि ॥ ७ ॥

मोटी-झीनी मायाका विषयाध्यास, वाणी-कल्पनाकी भ्रम-भूल परत-के-परत परदा-ही-परदा, आड़, ओट, आवर्ण पड़ते-पड़ते बहुत दूरतक अनादिसे अनन्ततक चली गई और बढ़ती ही जा रही है। इस वाणी-खानिका महान् भव-बन्धन हम जीवोंको भ्रम-धोखासे दृढ़ हो रहा है। इसका यथार्थ भेद तथा गुरुवा लोगोंके वाणी-वचन और विषयोंकी आदतका बन्धन किसी भी अबोध जीवको भी समझ नहीं पड़ा। उनकी समझमें ही नहीं आ रहा है। अब जो जिज्ञासु जीव पारखी सद्गुरुके सत्सङ्ग-द्वारा पारखबोध प्राप्त करके सब भव-बन्धनके आवर्ण, पर्दाको अच्छी तरहसे जानेंगे और उसे परित्याग करके न्यारे होंगे, वे निश्चय ही भव-बन्धनसे बचेंगे। और जो सत्यासत्यका यथार्थ भेद नहीं जानेंगे, भ्रम-धोखेमें ही भूले रहेंगे, तब तो सो=उन सब जीवोंके सम्पूर्ण सद्गुण सहित मुक्ति-पदकी महान् हानि होगी। वे भव-बन्धनमें पड़े हुए सदा दुःख ही भोगते रहेंगे। अतः पारखबोध प्राप्त करके अपना जीवन-कल्याण करो! ॥ ७ ॥ ८२ ॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ८३ ॥ ❀ ॥

क्षत्री करे क्षत्रिया धर्मा। सवाई वाके बाढ़े कर्मा ॥१॥
जिन्ह अवधू गुरुज्ञान लखाया। ताकर मन ताहि ले धाया ॥२॥

टीका; गुरुमुख-चौपाईः—क्षत्री नाम जीवको कहिये। जहाँ छै तीन उपाधी लहिये ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गन्धा। मन चित बुद्धि हङ्कार सम्बन्धा ॥१॥ दोहाः—क्षत्रिय धर्म जो बानी, औ पुनि विषये पाँच ॥ तत्त्वमसी निर्णय करै, चौरासीको नाच ॥२॥ नौ जने नौ कर्मको, करत हैं सहज सुभाव ॥ ताते जीवके बढ़त हैं, कठिन कर्मके दाव ॥३॥ जल परमाने माछरी, कुल परमाने शुद्धि ॥ जाको जैसा गुरु मिला, ताको तैसी बुद्धि ॥ ४ ॥

गुरुमुखः—क्षत्री=क्षत्रिय, हिन्दुओंकी एक जाति, जिसका काम युद्ध करना और देशकी रक्षा करना माना है। क्षत्रिया धर्मा=क्षत्रियोंके धर्मशास्त्रानुमोदित कार्य; जैसे—अध्ययन, दान, प्रजा-पालन आदि कहे हैं। इसलिए राज्य-व्यवस्था, युद्धादि एवं विषय-भोगोंके जगत्-प्रपञ्चके कर्म वे नित्यप्रति अपना धर्म मानकर करते रहते हैं। इसलिए उनका बन्धन सवाई=सवागुणा अधिक बढ़ता ही जा रहा है। वैसे कर्म करके भव-बन्धनसे वे कभी छूट नहीं पाते हैं ॥ १ ॥

अथवा 'क्षत्री' इस नामसे जीवको ही कहा जाता है। क्योंकि जहाँपर छै और तीन, सब नौकी उपाधि प्राप्त होती रहती है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध—ये पञ्च विषय और चित्त, मन, बुद्धि और अहङ्कार—ये चतुष्टय मिलाकर इन्हीं नौ भागोंका सम्बन्ध जीवके साथ सदा लगा रहता है। अध्यासवश जीव सदा भव-बन्धनमें पड़ा रहता है ॥१॥ जो जितना भी कल्पनासे वाणी-कथन किया, वह सब भी क्षत्री=सूक्ष्म देहके नौ भागसे जीवकी सत्तासे उत्पन्न धर्म=प्रकृति, स्वभाव अनुसार साम्प्रदायिक व्यवस्था है और पुनः पञ्च विषयोंकी खानि विस्तार करना-यह भी बद्ध जीवका कर्म-धर्मरूप स्वभाव हो रहा है। वाणीद्वारा 'तत्त्वमसि' महावाक्यका निर्णय करके सर्वाधिष्ठान एक अद्वैत ब्रह्म होकर चौरासी योनियोंमें नाचते रहना—यह भी उसी बद्ध जीवका कर्म है ॥२॥ इस प्रकार सूक्ष्म देहके नौ तत्त्वरूप नौ जनें नौ प्रकारके अपने विषयरूप कर्मोंको सहज स्वभावसे जीवकी सत्ताद्वारा करते रहते हैं। इससे जड़ाध्यासी जीवके कर्मोंका कठिन दावघातरूप भव-बन्धन सवाई बढ़ता जाता है। अध्यासवश सदा आवागमन—चक्रमें पड़ा दुःख भोगता रहता है ॥३॥ अवधू=अवधूत त्यागी साधु-संन्यासी ज्ञानी, योगी लोगोंने जिनको गुरुज्ञानके नामसे ब्रह्मज्ञान, योग, भक्ति आदिके उपदेशसे कोई एक ब्रह्म-ईश्वरादि प्राप्त होनेको लखाया=समझाया, वेद-शास्त्रादिकी वाणीको दिखाया,अनुमान कराया,इस कारण ताकर=उन अबोध मनुष्यों-की मन-मानन्दी भी उसी ओर भ्रम-कल्पनाको लेकर बिना विचार दौड़ पड़ी, वैसी ही दौड़ती जा रही है। बेचारे अबोध शिष्य लोग क्या करेंगे? जिधर गुरुवा लोगोंने लगाया, उधर ही लगते जा रहे हैं; बिना विचार ॥ २ ॥

अथवा जलाशयके प्रमाणसे छोटे जलाशयमें छोटी मछली और बड़े जलाशयमें बड़ी मछली होती हैं। कुलके प्रमाणसे बचपनमें बालकोंको शुद्ध, साफ सफाई स्वच्छतासे बर्त्तनेको सिखाया है या नहीं, उसी प्रकार उनके द्वारा बड़े होनेपर भी

शुद्धताका वा अशुद्धताका बर्त्ताव होता रहता है। इसी प्रकार जिसको जैसा कुछ समझानेवाला जिस प्रकारका गुरु मिला, उसने जैसा समझा दिया, वैसा ही उसके चेलोंकी बुद्धिमें भी दृढ़ निश्चय हो गया वा हो जाता है। उसी मिथ्या मानन्धीको सत्य मानकर वे भ्रम-धोखेके बन्धनमें सदा पड़े रहते हैं; बिना पारख ॥ ४ ॥ २ ॥

क्षत्री सो जो कुटुम सो जूझै। पाँचौ मेटि एककै बूझै ॥३॥
जीव मारि जीव प्रतिपारे। देखत जन्म आपनो हारे ॥४॥
हाले करे निशाने घाऊ। जूझि परे तहाँ मन्मथ राऊ ॥५॥

क्षत्री सोई जानिये, जूझै कुटुम मँझार ॥ पाँचों विषयको मेटिके, जीवका करे उबार ॥५॥ जीव मारि तन पालहीं, सो सब श्वान सियार ॥ अन्त महा दुःख पावहीं, चौरासी मझधार ॥६॥ जल्द जाय जो करत है, जौन निशाने घाव ॥ जूझि गये तहाँ मनमथी, अन्त सोई तन पाव ॥ ७ ॥

कुटुम=परिवार, अपने ही वंश, कुटुम्बमें, जैसे कौरव-पाण्डव लोग महायुद्ध करके कट मरे थे; सो वैसे ही लड़ाकू क्षत्रिय लोग, जो कि समय आनेपर कुटुम्बी-जनोंसे भी परस्पर जूझै=लड़ाई करके मारकाट करते हैं। मनुष्य, हाथी, घोड़े, ऊँट और खच्चर—इन पाँचोंको मारकाटसे मिटाकर एकमात्र राज्य-सत्ता अपने हाथमें कर लेनेकी बात ही बूझै=समझते हैं। ऐसे स्वार्थ-साधक होते हैं ॥ ३ ॥

अथवा वास्तवमें सच्चा क्षत्रिय उसीको जानलो, जो कि अपने तन-मनमें रहने-वाली दश इन्द्रियाँ, चित्त-चतुष्टय और इनके विकाररूप कुटुम्बसे अपने तन-मनके बीचमें ही जूझै=खूब लड़ाई करे और फिर पाँचों विषयोंको एकदम मेट-मिटा करके एक=अपने जीवको ही सत्य समझकर अपना उबार=उद्धार कर लेवे। शारीरिक और मानसिक सब विकारको विनाश कर डाले, वही शूरवीर धीर सच्चा क्षत्रिय क्षत्रपति है। वही भव-बन्धनसे छूटकर मुक्त होता है ॥५॥ जो निर्बल पशु, पक्षी आदि जीवोंको और शक्तिहीन अन्य देशवासी मनुष्य आदि जीवोंको शिकार और युद्धादिसे मारकर महान् हत्याकाण्ड फैलाकर मांस और धन-सम्पत्ति आदि लूटके लाकर अपने जीवके शरीर और परिवारोंके शरीरका पालन-पोषण करते हैं, वे सब क्रूर दानव, राक्षस और कुत्ते, सियार, बाघ आदि हिंसक जन्तुओंके समान घातक बने हैं। जैसे अपनेको दुःख होता है, अपना शरीर और प्राण प्यारा है, वैसा ही सब जीवोंको भी होता है; ऐसा प्रत्यक्ष देखते हुए भी मूर्खतासे स्वार्थ-सिद्ध करनेके लिए जीव-हिंसा, हत्याकाण्डमें लगनेवाले अपने मनुष्य-जन्मको व्यर्थ ही हारकर बरबाद कर रहे हैं। अन्त समयमें पाप कर्मोंके अध्यासवश चौरासी योनियोंके मझधारमें पड़ेंगे। जीव-हत्याका बदला देते हुए वे महान् दुःख भोगते रहेंगे। जीव-हिंसाका बदला उनको अवश्य ही चुकाना पड़ेगा। अतः दयाधर्म पालन करके अपना उद्धार करो! ॥४॥६॥ सिपाही लोग चान्द-मारीमें जिस जगह निशान लगाया रहता है, उसी जगह हाले=जल्दी-जल्दी निशानाके

ऊपर गोली छोड़नेका अभ्यास करके उसमें घाऊ=चोट लगाते हैं। इस प्रकार युद्धके कार्य सिखी हुई फौज ले जाकर मन्मथ=कामासक्त मन्मती, राऊ=राजा लोग किसी स्त्रीके लिए अथवा धन-सम्पत्ति, राज्यादि हड़पनेके लिए शत्रु-सेनाके ऊपर रणस्थलमें जल्दी-जल्दी निशाना लगा करके बाण, गोली आदि छोड़कर शत्रुओंको घायल करके मार डालते हैं। इस प्रकार परस्पर जूझि=लड़-भिड़कर वहाँपर मारकाट, विनाश करनेमें वे लगे रहते हैं; बिना विचार ॥५॥ अथवा स्वार्थी प्रपञ्ची लोग जल्दीसे जाकर जिस निशानामें घाव करते हैं, वहाँ और भी बाहरसे गोली, बाण आदि प्रहार करके और वाणीका बाण भी छोड़कर विनाश कर डालते हैं। वहाँपर मन्मती लोग अपने मनको मथन करके काम, क्रोध, लोभ, मोहादिसे अथवा भ्रम-कल्पनासे लड़-भिड़ गये, इस कारण बुद्धि-विचार और शरीरको विनाश करनेसे अन्तमें अध्यासवश चौरासी योनियोंमें भी वे वैसा ही देह धारण करके दुःख भोगते रहेंगे ॥ ७ ॥

साखीः—मन्मथ मरै न जीवै। जीवहि मरण न होय ॥
शून्य सनेही राम बिनु। चले अपन पौ खोय ॥८३॥

साखीः—मनमथ कहिये कल्पना, औ मनमथ अनुमान ॥ सो तो मरै न जीवै, जीवहि मरण न जान ॥८॥ सनेही कहिये जीवको, शून्य कहिये ब्रह्म ॥ राम कहिये आतमा, जो जीवहि को भर्म ॥९॥ सोइ भरम जाने बिना, चले अपन पौ खोय ॥ आपुहि कल्पि अनुमान कियो, आपुहि चला बिगोय ॥ १० ॥

मन्मथ=कामदेवरूप विषय-भोगेच्छा, जगत्‌की वासना, यह वास्तवमें मरै=मरा हुआ मुर्दावत् केवल जड़ भी नहीं है और जीवै=सदा जीते रहनेवाला चैतन्य जीववत् भी नहीं है। इसलिए जड़ देह और चैतन्य जीवकी सत्ता सम्बन्धमें इच्छा-वासना उत्पन्न होती है। देहादि सम्बन्धसे विषयभोग करनेपर पुनः उसका अध्यास हृदयमें टिक जाता है। वही अध्यासका बन्धन जीवके साथमें लगा रहता है। अविनाशी जीवके स्वरूपका विनाशरूप मरण तो कभी तीनकालमें नहीं होता है। केवल आयु पूर्ण होनेपर स्थूल शरीरका ही मरणरूप विनाश होता है। शून्य स्थानरूप स्त्रीके भगद्वारमें भोगासक्तिसे स्नेह, प्रेम लगानेवाले अध्यासी जीव, राम=निज रमैयाराम चैतन्य स्वरूपको जाने बिना और विषयानन्दरूप आरामको जगत् बन्धनका कारण समझे बिना अज्ञानतासे अपने हंसपदके गुण-लक्षणोंको खोकर विषयाध्यासवश पुनः चौरासी गर्भवासमें चले जा रहे हैं; बिना विचार ॥ ८३ ॥

अथवा कल्पना और अनुमानको भी मन्मथ कहते हैं; क्योंकि मन मथन करके ही वे वाणीद्वारा बाहर निकलते हैं। वे अनुमान, कल्पना मरै=मुर्दारूप बिल्कुल मरे हुए जड़ तत्त्व भी नहीं हैं और जीवै=सदा जीते रहनेवाले जिन्दा चैतन्य जीव भी नहीं हैं। इसलिए वे तो केवल मिथ्या मानन्दी भ्रम-भूल ही मात्र हैं। अब दूसरी ओर अमर अविनाशी चैतन्य जीवका मरणरूप विनाश तो कभी त्रिकालमें नहीं होता है। शरीरके सम्बन्धमें मनसे अनुमान-कल्पना करके मिथ्या वाणीजालमें जीव बँधा रहता

है। इसलिए यह एक भ्रमका बन्धनमात्र है; ऐसा जानो ! ॥८॥ आकाशवत् ब्रह्मको शून्य निर्गुण-निराकार कहा है। उससे स्नेह करनेवाले अबोध नरजीवको सनेही कहते हैं। सर्वत्र परिपूर्ण भरे हुए आत्माको राम कहते हैं; जो कि ब्रह्म, परमात्मा, आत्माराम; ऐसा मानना ये अबोध जीवका मिथ्या भ्रम ही मात्र है ॥९॥ उसी भ्रम-भूल धोखा, मिथ्या मानन्दीको यथार्थ परख करके असत्य जाने बिना अपने हंसपद, मुक्ति-स्थितिको खो करके सब अबोध जीव भव-बन्धनकी ओर ही बहते हुए चले जा रहे हैं। बिना विचार आप ही वाणी कल्पि = कल्पना करके ब्रह्म-ईश्वरादिका अनुमान दृढ़ किये, पुनः अपने-आप ही मनुष्य-पदको भ्रमसे बिगाड़कर अध्यासवश चौरासी योनियोंमें चले जा रहे हैं। अतः खानि-वाणी दोनों ओरके भव-बन्धनोंको यथार्थ परखकर परित्याग करो ! निज पारख-स्वरूपमें स्थिर होकर निर्बन्ध मुक्त हो जाओ ! ॥१०॥८३॥

॥ ❀ ॥ रमैनी ॥ ८४ ॥ ❀ ॥

येजियरा ! तैंअपने दुःखहि सम्हार । जेहि दुःख व्यापि रहा संसार ॥१॥
माया-मोह बन्धा सब लोई । अल्प लाभ मूल गौ खोई ॥२॥

टीका; गुरुमुख-दोहाः—ये जियरा तैं आपने, दुःखहि सम्भारहु भाय ॥ जो झाँईं अनुमान करी, जगमा रहेउ समाय ॥१॥ प्रथमें झाँईं भूलिया, मनमा भयो आनन्द ॥ ता आनन्दमा अन्ध भौ, समुझा नहीं यह फन्द ॥२॥ तहवाँ धीरज छूटिया, भौ आकाश अनुमान ॥ दया ते वायु शीलते तेज, विचारते जल जान ॥३॥ सत्त सोइ धरती भई, झाँईंके गुण येह ॥ गुण प्रकृति सब पलटिया, उपजी कच्ची देह ॥४॥ अब यह दुःख सम्भारहू, जाते सकल उपाध । इच्छाते नारि नारिते जग भौ, औ बानी कथी अगाध ॥५॥ ब्रह्म केरी बातमें, भूलि रहा सब लोय ॥ किञ्चित मुक्तिके कारणे, जीवहु आयो खोय ॥६॥ मुक्ती कहिये समाधिको, मुक्ती बोधको नाम । मुक्ती कहिये इस्त्रीको, जाते खलित भौ काम ॥ ७ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे नरजीव ! तुम अपने पारख-स्वरूपको पहचानकर अपने-आपको भव-बन्धन, त्रयताप, जन्म-मरणादिके सर्व दुःखोंसे छुड़ाकर अपनी मुक्ति-स्थितिको सम्भालो ! भव-बन्धनमें पड़कर अध्यासवश जिस आवागमन त्रयतापादिका दुःख सारे संसारके जीवोंमें व्याप्त हो रहा है, उस दुःखसे अपने जीवको छुड़ाओ ! निज स्वरूपका ज्ञान पारखबोध प्रकाश करके सब अध्याससे रहित जीवन्मुक्त हो जाओ ! ॥ १ ॥

अथवा हे जीव ! अब तो तुम स्वयं मुक्त होनेका प्रयत्न करो ! अपनी मनमानन्दीसे होनेवाले सर्व दुःखोंके बीज, वासना, जड़ाध्यासको ज्ञानाग्निसे जलाकर, हे भाई ! सर्व दुःखोंसे अपनेको बचाकर सम्हालो ! सारे संसारमें जो दुःख व्याप्त हो रहा

है, उससे अपनेको छुड़ाओ ! वाणी—कल्पनासे जो झाँई=गाफिलीरूप भ्रमकी छायाके झलकको ब्रह्म अनुमान करके, पुनः उसे सर्वव्यापक मानकर सर्व जगत्‌रूप चौरासीमें ही जाकर समा रहे हो। यही ब्रह्म-झाँईका अध्यास ही आवागमन-दुःख भोगते रहनेका कारण है; ऐसा जानकर भ्रमको परित्याग करो ! ॥१॥ प्रथमें=मनुष्य-देहमें ही सर्वप्रथम अबोध जीव निज स्वरूपको भूल गया, तब झाँईरूप ब्रह्म-भ्रमकी गाफिलीमें गाफिल हुआ, निज चैतन्य-पदको भूल ही गया। कुछ देर वृत्ति स्थिर होनेसे उस अबोध जीवके मनमें बड़ा आनन्द हो गया। उसी भ्रमरूप ब्रह्मानन्दमें अन्ध=विवेक-विचारकी दृष्टिहीन खूब भ्रमिक हो गया। परन्तु यह तो मुझ जीवको फँसानेवाला फन्द=भ्रमका जाल है; ऐसा उसने सर्वथा नहीं समझा। इसीसे वाणी-कल्पनाके महाजालमें जीव स्वयमेव फँस गया ॥२॥ तदुपरान्त उस भ्रमके आनन्दमें भूलकर धैर्य गुण छूट गया। अधैर्यसे—आकाशवत् व्यापक ब्रह्म जो है सो मैं हूँ; ऐसा मिथ्या अनुमान करके निश्चय किया। पुनः दया गुण छूट जानेसे वायुवत् सर्वत्र भरा हुआ कोई एक सर्वशक्तिमान् ईश्वर कल्पना कर लिया। शील गुणको छोड़कर तेजवत् ज्योति-स्वरूप परमात्मा ठहरा दिया; और जब विचार गुण भी छूट गया, तब जलवत् परमेश्वरको जगत्‌के मूलकारण बीजरूपमें जान लिया वा मान बैठा ॥३॥ और जब सत्य गुण भी छूट गया, तब—पृथ्वीवत् सर्वाधिष्ठान कोई एक परब्रह्म है, ऐसा भ्रम धारण कर लिया। इस प्रकार असत्यमें पहुँचकर गुण-स्वभावका उलट—पलट होते रहना, यही झाँई=गाफिली, छाया, ब्रह्म-भ्रमका गुण=अवगुण है। वाणीसे ऐसी कल्पना किया कि झाँईरूप निर्गुण ब्रह्मसे इच्छा करके यह त्रिगुणमय जगत् उत्पन्न हुआ, पुनः सम्पूर्ण जगत् लय होनेपर एक ब्रह्म ही बाकी रहता है। इस प्रकार ब्रह्मसे जगत् और जगत्‌से ब्रह्म होते रहनेका रहट-चक्र फिरता ही रहता है। इस कारण वैसी मिथ्या मानन्दी करनेके उपरान्त भ्रमिक जीवने सत्यको छोड़कर असत्यको ले लिया, वही पृथ्वीवत् कठोरता धारण किया। विचारको छोड़कर अविचार ले लिया, वही जल-वत् अकर्ममें नीचे—नीचे बहता गया। शीलको छोड़कर अशील धारण किया, क्रूर, कर्कश, क्रोधी हो गया, वही अग्निवत् सबको जलाकर भस्म करनेवाला हो गया। दयाको छोड़कर निर्दयता करने लगा, वही वायुवत् चञ्चल, उड़ानेवाला चोर, डाकू, व्यभिचारी, हिंसक बन गया। और धैर्यको छोड़कर अधैर्य ले लिया, वही आकाशवत् महाअज्ञान, मूढ़, गाफिल हो गया। ऐसा उलट—पलट हो जाना, यही ब्रह्मरूप जगत्-का गुण है। वैसे ही त्रिगुण और पचीस प्रकृति; ये सब भी पलट गईं। मनुष्य-देहमें ही पशुके समान कच्चा स्वभाव उत्पन्न हो गया। इसलिए मुक्ति-सहायक नरदेहके पक्के सद्‌गुण सब छूट गये। दुर्गुणकी देह हो गई। ऐसी कच्ची देह उत्पन्न हुई। भ्रम-भूलमें पड़ जानेसे ऐसी बड़ीभारी हानि होकर भव-बन्धन दृढ़ हुआ। अध्यासवश चौरासी योनियोंमें पड़ा जीव दुःख भोग रहा है ॥४॥ इसलिए तुमको सचेत करके दया-दृष्टिसे मैं कहता हूँ—हे नरजीव ! अब तो आवागमन त्रयतापादि इन सर्व दुःखों-से छूटनेके लिए सम्हलो ! अपनी सुरक्षा करो ! मुक्ति-सहायक सद्‌गुणोंको सम्हालो ! कर्त्तव्य सुधारो ! जिससे सम्पूर्ण खानि—वाणीके जगत्‌की उपाधिसे लेकर आवागमन

आदि दुःख भी मिट जाय; ऐसा महान् पुरुषार्थ करो ! अज्ञानग्रस्त जीव विषयभोगकी प्रबल इच्छा-वासनारूप अध्याससे स्त्री-देहधारी हुआ। पुनः भोगेच्छासे स्त्रीका सङ्ग-साथ किया, स्त्री-भोगसे नाना सन्तान उत्पन्न करके जगत्-जालरूप भवसागर विस्तार किया। दूसरी ओर भ्रम-भूलकी इच्छासे ही नारी=वेदादि बहुत-सी अगाध वाणी कथन किया। उसी वेदादि वाणीसे—अगाध=अत्यन्त गहरा, अपार, अथाह कोई एक ब्रह्म है, ऐसा कथनीसे निरूपण किया। जगत्-ब्रह्मको एक ठहराया। ऐसा भ्रमसे ही भवसागरका विस्तार हो गया। उसमें सब भ्रमिक लोग बँधे पड़े हैं। पारख-दृष्टिसे उसको यथार्थ परखो ! खानि-वाणीकी मिथ्या मानन्दी, इच्छा-वासना, भ्रम-भूलको सर्वथा मिटाकर परित्याग करो ! निजस्वरूपमें स्थिर हो रहो ! तभी तुम्हारे सब दुःख छूट जायेंगे ॥ ५ ॥

माया=गुरुवा लोग और स्त्रीकी खानि-वाणीकी मोह-ममता, आसक्तिमें सब लोग बिना विचार खूब बँधते जा रहे हैं। विषयानन्द और ब्रह्मानन्दके अल्प सुखरूप लाभमें भूलकर मूल=मनुष्यपद, जो मुक्ति होनेका स्थान है, सो सम्पूर्ण आयु व्यर्थमें खो गई। बिना विवेक भव-बन्धनमें जीव बँधे पड़े हैं ॥ २ ॥

अथवा मायारूप ब्रह्मादि पण्डित गुरुवा लोगोंकी कल्पित बातोंमें और वेदादि वाणीकी अनुमान-कल्पनाकी मोह-ममतामें पड़कर सब अविचारी लोग खूब भूलकर बद्ध हो रहे हैं। मानी हुई कल्पित चार मुक्तिका लाभ तो किञ्चित=बहुत थोड़ा-सा, वास्तवमें असत्य भ्रम-मात्र है। परन्तु उसी मुक्ति-प्राप्तिके कारणसे भ्रम-धोखेमें जाकर हंसपदका मूल=सम्पूर्ण सद्गुण ही अबोध जीवने खो आया। लाभ तो कुछ नहीं हुआ, किन्तु हानि तो महान् हुई; बिना विचार ॥६॥ शून्य समाधि लगाये रहनेको योगी लोग मुक्ति कहते हैं, ज्ञानी लोग ब्रह्म-बोधको मुक्ति बतलाते हैं और भक्त लोग नाम-स्मरणको मुक्तिदाता ठहराते हैं। वैसे ही संसारी विषयी लोग, जिस स्त्रीके सम्बन्धसे काम स्खलित होता है, उसी स्त्रीको सब दुःखोंसे छुड़ाकर विषयानन्दरूप भुक्ति-मुक्ति देनेवाली सुख-स्वरूपा कहते हैं। अतएव यथार्थ जीवन्मुक्ति सुख, भव-बन्धनसे रहित होनेको उन किसीने भी जान नहीं पाया। वे सब भ्रम-धोखेमें भूले बँधे पड़े हैं; बिना पारख ॥ ७ ॥

मोर–तोरमें सबै बिगुर्चा। जननी गर्भ वोद्रमा सूता ॥३॥
बहुतक खेल खेलें बहुरूपा। जन भँवरा अस गये बहूता ॥४॥

जगत ब्रह्मके बीचमें, आतम निश्चय कीन्ह ॥ पारख बिनु भूले सकल, गर्भवास पुनि लीन्ह ॥८॥ बहु प्रकार ते खेलहीं, गुरुवा धरि बहु रूप ॥ जन भँवरा अस बहुतक, जाय परे भ्रमकूप ॥ ९ ॥

जगत्-प्रपञ्च, भेष-प्रपञ्च और वाणी-प्रपञ्च—इन सबमें मोर=मेरा बड़ा, और तोर=तेरा छोटा, एवं मेरा अच्छा, तेरा खराब; ऐसे राग-द्वेष, छल-कपट, मोह-ममता, खैंचतानमें पड़ करके सब-के-सब बिगुर्चा=धोखेमें पड़कर दिक्कत, असमञ्जसके कठिन

बन्धनमें बँधते जा रहे हैं। इसलिए खानि-वाणीके जड़ाध्यासवश अध्यासी जीव जननी=माताके गर्भवासरूप वोर=पेटमें जाकर घोर निद्रामें सोते हुए गाफिल पड़े रहते हैं। पुनः बारम्बार आवागमनका दुःख भोगते रहते हैं; बिना विचार॥ ३॥

अथवा भ्रमिक ब्रह्मज्ञानी जनोंने मोर=मेरा ब्रह्म,और तोर=तेरा जगत्; इन दोनों-के बीचमें सम्बन्ध करानेवाला माध्यम एक आत्माको सर्वाधिष्ठान व्यापक निश्चय कर लिया; तथापि मिथ्या भ्रम-धोखेके कठिन भव-बन्धनमें ही वे बँध गये। यथार्थ पारख-दृष्टिके बिना वे सब लोग निज पारख-स्वरूपको भूलकर जड़ाध्यासी बद्ध हुए। इसलिए अध्यासवश अन्तमें पुनः माताके गर्भवासमें अचेत होकर पहुँच गये। इसी तरह चौरासी गर्भवासमें निवास करते जा रहे हैं॥ ८॥ विषय-भोगोंके लिए बहुत प्रकारके रूप बनाकर बहुरूपिये विषयी लोग बहुतेक भोगोंके खेल खेले, भोगके चौरासी आसनादि भी किये। भँवराके समान बने हुए भोगीजन ऐसे बहुत-से जगत्-के पञ्चविषयभोगोंकी ओर चले गये और भी जा ही रहे हैं; जिससे पशुवत्‌भव-बन्धनमें बँधे पड़े हैं॥४॥ अथवा भ्रमिक गुरुवा लोग षट्दर्शनोंके भेषोंके बहुत रूप धारण करके बहुरूपिये बनकर अनेक प्रकारसे भक्ति, योग, ज्ञानादिकी साधनाओंका खेल खेल रहे हैं। योगी, ज्ञानी, भक्तजनादि भँवरेके समान बनकर ऐसे बहुत-से अबोध जीव वाणी-कल्पनाके भ्रमकूपमें ही जाकर गिर पड़े,भ्रम-बन्धनमें खूबबँधे पड़े हैं; बिना विचार॥६॥

उपजि-बिनशि फिर जुइनी आवै। सुखको लेश सपनेहु नहिं पावै॥५॥
दुःख सन्ताप कष्ट बहु पावै। सो न मिला जो जरत बुझावै।६॥

उपजत-बिनसत रहत हैं, फिर फिर जुइनी आय॥ सुखका लेश कहुँ जीयरा, सपनेहु नाहीं पाय॥१०॥ दुःख सन्ताप औ कष्ट बहु, निशि दिन जियरा पाय॥ सो पारख कहुँ ना मिला, जो जरतहिं लेत बुझाय॥ ११॥

पशु, पक्षी, अण्डज—इन तीन खानियोंमें वासनाके अनुसार विभिन्न शरीर धारण करकेउपजि=जन्म लेते और विनशि=मृत्यु होते हुए, वैसे अनेक जन्म बिताकर, फिर कभी नये कर्म बनानेके लिए जड़ाध्यासी जीव जुइनी=मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर आता है। परन्तु यहाँ भी विषयासक्त हो और वाणी-कल्पनामें भूलकर अनेक प्रकार-से सदा दुःख ही भोगता रहता है। इसलिए यहाँ भी सर्व अध्यास रहित पारख-स्वरूपकी स्थिति जीवन्मुक्तिसे होनेवाले महान् सुखका तो लवलेश-मात्र स्वप्नमें भी जान नहीं पाता है। अथवा निवृत्ति सुखका स्वप्नवत् झलक भी उसे कभी प्राप्त नहीं होता है। बिना पारख भव-बन्धनमें पड़ा दुःख ही भोगता रहता है॥ ५॥

अथवा चौरासी योनियोंमें भी जन्मते-मरते अध्यासी जीवोंके शरीर तो बनते-बिगड़ते ही रहते हैं। अनेक योनियोंमें फिर-फिरके आवागमन भी लगा ही रहता है। इस प्रकार कर्मानुसार अनेक जन्मोंतक तीन खानियोंमें घूमते-फिरते, नाना प्रकारके दुःख भोगते हुए फिरते-फिरते, भटकते-भटकते कभी शुभ संस्कार उदय होनेसे जुइनी=मनुष्य-जन्ममें जीव आ जाता है। तबभी पूर्ववत् खानि-वाणीके महा-

जालमें ही भूलकर सम्पूर्ण आयु व्यर्थ बिता देता है, जड़ाध्यासवश भव-बन्धनमें खूब बँध जाता है। इस कारण निज स्वरूपकी स्थिति, निवृत्तिके नित्य सुखका लेशमात्र भी कभी कहीं वैसे जीव स्वप्नवत् थोड़ी देरके लिए भी अनुभव कर नहीं पाते हैं! सदा अशान्त, असन्तुष्ट बेचैन हो भव-बन्धनसें बँधे दुःख भोगते रहते हैं ॥१०॥ दुःख = जन्म, मरण, गर्भवासादिका दुःख, सन्ताप = त्रयताप, कष्ट = मन, वचन, कर्म और परिवारादि जन-समाजकी ओरसे होनेवाली उपाधिके कष्ट-क्लेश, चिन्ता-शोक इत्यादि अनेक प्रकारके दुःख दिन-रात बद्ध जीव बहुत ही पा रहे हैं। सुख-शान्ति कहीं-किसीको मिल नहीं रही है। ऐसे महान् दुःखकी ज्वालामें जलते हुएको समझा-बुझाकर शान्त-शीतल, सन्तुष्ट, निर्बन्ध मुक्त कर देनेवाले, सो वैसे सच्चे पारखी सद्गुरुदेवका दर्शन और पारखबोध भी उन किसीको नहीं मिला वा नहीं मिल रहा है। वे भी पारखी सद्गुरुके पासमें जाकर नहीं मिल रहे हैं। इस कारण अबतक सब जीव उसी दुःख, सन्ताप, कष्टकी ज्वालाओंमें जलते, तड़फते जा रहे हैं। पारखबोध प्राप्त होनेपर वे सब दुःख जीवके छूट जाते हैं। अतः पारखबोध प्राप्त करके सुखी हो जाओ! ॥ ६ ॥ ११ ॥

मोर-तोरमें जरे जग सारा। धृग स्वारथ झूठा हङ्कारा ॥७॥
झूठी आस रहा जग लागी। इन्हते भागि बहुरि पुनि आगी॥८॥
जेहि हितके राखेउ सब लोई। सो सयान बाँचा नहिं कोई ॥९॥

मोर-तोरमें जरत है, ब्रह्म जगत मँझार ॥ धृग धृग झूठा स्वारथ, झूठा है हङ्कार ॥१२॥ झूठ ब्रह्मकी आसमें; रहा सकल जग लाग ॥ एक आगते बाँचिया, बहुरि नारि पुनि आग ॥१३॥ सोरठाः—ज्ञानी पण्डित दास, ये बड़-बड़ जगमें भये ॥ सबै रहे गर्भवास, जिनकी प्रीति सब जगतको ॥१४॥

मेरा-तेरा, मैं-ममता, छोटा-बड़ा, खींचतान, राग-द्वेषमें सम्पूर्ण जगत्के संसारी जीव जल रहे हैं। जगत्-प्रपञ्च स्वार्थके सब अहङ्कार झूठे हैं। ऐसे स्वार्थी अहङ्कारियोंको धृग = धिक्कार है ॥७॥ अथवा भ्रमिक गुरुवा लोग 'मेरा मत बड़ा, तुम्हारा छोटा' कहकर एक-से-एक लड़ाई-झगड़ा करते हैं। कोई ब्रह्मका पक्ष लेकर और कोई जगत्का पक्ष लेकर वाद-विवाद करते हैं। इस प्रकार ब्रह्म-जगत्के बीचमें खानि-वाणीका मिथ्या पक्ष लेकर संसारी और भेषधारी सब लोग मेरा-तेरा कहकर अभिमानकी अग्निमें जल रहे हैं। इसलिए उनके झूठे स्वार्थको धिक्कार-धिक्कार है। और उनका अहङ्कार भी सर्वथा झूठा ही है। ऐसे मिथ्या अहङ्कारमें मत भूलो! ॥१२॥ स्त्री, पुत्र, धन, जन, घर, राज, काज इत्यादि झूठी आसक्ति, आशा-तृष्णामें जगत्के सब अबोध जीव लग रहे हैं। कोई-कोई इन मोटी मायासे भागकर बहुरि = फिर पुण्य-प्राप्तिकी इच्छासे झीनी मायाकी अग्निमें जाकर भ्रम-धोखेमें जल मरते हैं। बिना पारख कोई

कहीं नहीं बचते हैं ॥८॥ अथवा ब्रह्म-प्राप्तिकी झूठी आशामें जगत्भरके सब ब्रह्मज्ञानी आदि गुरुवा लोग लग रहे हैं। कोई बिना विचार ईश्वर, स्वर्गादि प्राप्त करना चाहते हैं। यह तो ऐसा हुआ, जैसे कोई एक आगसे बच करके दूसरी आगमें भागकर जाके जल मरे। इसी प्रकार जगत्की घर-गृहस्थीसे भागकर गुरुवा लोगोंके भेष और मिथ्या वाणी-कल्पनाकी अग्निमें जा-जाकर बुद्धि-विचारको जलाकर अबोध लोग मरते जा रहे हैं। वे अध्यासी जीव पुनः अध्यासवश स्त्रीकी गर्भाग्निमें जाकर झुलसते वा जलते रहते हैं। जन्म होनेपर कुछ कालके लिए गर्भाग्निसे छूट पाये थे; परन्तु युवक होनेपर फिर स्त्री-भोगकी आगमें जलते हुए मर जाते हैं। अन्तमें पुनः चौरासी योनियोंमें जा जाकर जन्म-मरणादिकी अग्निमें जलते हुए दुःख भोगते रहेंगे; बिना पारख ॥१३॥ जिन स्त्री, पुत्र, धन, घर, पञ्च विषयभोगको हित समझ करके सब संसारी लोग खूब सुरक्षा करके अपने पासमें रक्खे हैं, सो उनमेंसे सयान = बड़े-बूढ़े चतुर बुद्धिमान् कहलानेवाले भी भव-बन्धन एवं आवागमनके दुःखसे कोई नहीं बचे। एक-एक दिन सब मरते गये। अतः पारखबोध प्राप्त करके अपना जीवन-कल्याण करो! ॥ध॥ अथवा ब्रह्मज्ञानी परमहंस विज्ञानी, योगी, ईश्वरादिके भक्तरूप दास और पण्डित इत्यादि जो बड़े-बड़े सिद्ध-साधक लोग जगत्में हुए और हैं, जिनके वाणी-वचन, अनुमान-कल्पनामें अबतक सब जगत्-जीवोंको प्रेम-प्रीति लग रही है, विचार करके कहो—अब वे कहाँपर हैं? उनकी स्थिति कहाँ हुई? पारख-स्वरूपका बोध प्राप्त न होनेसे उन किसीकी स्वरूप-स्थिति, जीवन्मुक्ति नहीं हुई। इसलिए जड़ाध्यासी बद्ध हो-होकर वे सब अध्यासवश चौरासी योनियोंके गर्भवास-में जाकर रहे। बाकीके और सब भी वहीं रहनेको जा रहे हैं। अतः पारखबोध प्राप्त करके जीते ही अपनी स्थिति करो! ॥ १४ ॥ ६ ॥

साखीः—आपु-आपु चेते नहीं। कहौं तो रुसवा होय ॥
कहहिंकबीरजोआपु न जागे।निरास्तिअस्ति न होय॥८४॥

टीका; गुरुमुख-सोरठाः—आपुहि आपु न जान, औ जाना सब ज्ञानको ॥ बिनु पारख न ठिकान, कहाँ रहेगा जीव यह ? ॥१५॥ काह कहौं समुझाय ?, कहौं तो रुसवा होत है ॥ पारख नहीं थिति पाय, चले जीव सब भूलमें ॥१६॥ कहाँ है ब्रह्म अनुमान ?, कहाँ आतमा जगत कहाँ ? ॥ तोही ते सब जान, बानी खानी कल्पना ॥१७॥ तू जिव चेतन जान, पारख बिना तोहि ठौर नहीं ॥ कहहिं कबीर प्रमान, पारखमा थिति होय रहू ॥१८॥ जो तू आपन जान, नास्ती अस्ती होय नहीं ॥ परखो धोखा ज्ञान, पारख तेरो रूप है ॥१९॥ भयो रमैनी को अन्त; सुख साहेबकी दयाते ॥ पुनि बिनवों अब सन्त, शब्द बुझारथ कारणे ॥ २० ॥

॥*॥ इति रमैनी टीका सहित सद्गुरुदेवकी दयासे सम्पूर्णम् ॥*॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—ये अबोध भ्रमिक जीव अपने आप तो कभी सचेत नहीं होते। इसीसे निज पारख-स्वरूपका बोध इनको अपने-आप अभीतक प्राप्त नहीं हुआ। मोटे-झीने मायाजालमें भूलकर अचेत हो रहे हैं। यदि मैं अपनी ओरसे दया करके यथार्थ निर्णयकी बात कहता हूँ कि हे जीव! तुम्हारा चैतन्य स्वरूप ही सत्य है, ब्रह्म-ईश्वरादि वाणी-कल्पना और संसारके सम्पूर्ण विषय-भोग मिथ्या हैं; अब भी सचेत होकर समझो! निज स्वरूपमें स्थिति करो! ऐसा जो कहता हूँ, इसे सुनकर तब तो वे सब लोग रुसवा=बहुत रुष्ट, क्रोधित हो जाते हैं। ऐसी मन्द बुद्धि है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—देखो! ये अबोध जीव आप स्वयं भी नहीं जागते हैं और मेरे जगानेपर भी नहीं जागते, मेरी बातको नहीं समझते। उलटा नाराज हो जाते हैं। खानि-वाणीकी गाढ़ी निद्रामें सोकर अपने जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं। परन्तु निरास्ति=नास्ति, जो सत्य नहीं है। सर्वथा असत्य भ्रम-धोखारूप ब्रह्म, ईश्वर, खुदादि और विषय-भोगादि मिथ्या मानन्दी मात्र है। इसलिए वह कभी अस्ति=सदा बने रहनेवाला सत्य अविनाशी नित्य चेतन तो कदापि हो नहीं सकता है। चाहे कितना ही भाव-भक्ति करके मानो, तो भी असत्य तीनकालमें सत्य हो नहीं सकता है और सत्य कभी असत्य नहीं होता है। इसलिए निरास्ति=ब्रह्म कभी अस्ति=जीव नहीं होता। जीव भी कभी ब्रह्म नहीं होता। जड़ कभी चैतन्य नहीं होता और चैतन्य कभी जड़ नहीं होता। केवल जड़ाध्यासी भ्रमिक बद्ध होकर जीव आवागमनमें पड़ा दुःख भोगता रहता है। अब भी सचेत होकर अपने पारख-स्वरूपमें स्थिति करके, सर्व जड़ाध्यासको मिटाकर मुक्त हो जाओ!॥ ८४॥

अथवा भ्रमिक गुरुवा लोग और सब संसारी अबोध नरजीवोंमेंसे कोई भी अपने-आप विवेक करके निज पारख-स्वरूपको सर्वथा नहीं जानते, और अपनेसे भिन्न अनुमान-कल्पना करके या प्रत्यक्ष जगत्को देखकर वाणी-खानिके सर्व विषयरूप ज्ञानको तो जानते, उसे भ्रमसे सत्य भी मानते हैं। तथापि सब विषय-ज्ञानको तो जाना; किन्तु निजस्वरूपको ही नहीं जाना। पारख-स्वरूपका बोध और स्थिति हुए बिना और उपायसे जीवकी मुक्तिका ठिकाना कहीं नहीं लगता है। जड़ाध्यासी बद्ध होकर यह जीव चौरासी योनियोंको छोड़कर और कहाँ जाकर रहेगा? क्योंकि आकाशवत् माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि कोई सत्य वस्तु ही नहीं है। ऊपर कहीं स्वर्गादि लोक भी सत्य नहीं है। चार मुक्ति माना हुआ भी सत्य नहीं है। इसलिए उसमें कहीं भी जाकर वा मिलकर जीव रह नहीं सकता है। इसीसे अध्यासवश चौरासी योनियोंमें ही जाकर रहेगा और आवागमनमें पड़ा दुःख भोगता रहेगा; ये निश्चय॥ १५॥ अब मैं अपने सत्यन्याय-निर्णय, अनुभवकी बात ऊपर कहे अनुसार समझाकर किसको कहूँ? क्या कहूँ? क्योंकि यदि मैं यथार्थ सत्य-सत्य ही निर्णय करके कहता हूँ, तब तो उसे सुनकर अविचारी मिथ्या पक्षपाती भ्रमिक एवं विषयासक्त लोग सब-के-सब हमसे खूब नाराज, रुष्ट, क्रोधित हो जाते हैं। इस कारण जो जिज्ञासु नहीं है, उससे निर्णयकी बात कहना भी ठीक नहीं होता है। सब जीव तो अज्ञानवश मनमाने धोखासे भ्रम-भूलकी ओर ही चले जा रहे हैं। स्वरूप-ज्ञान पारखबोध उन किसीको

भी नहीं है। इसलिए मुक्तिका स्थिति-ठहराव वे कहाँसे पावेंगे ? जबतक पारखबोध नहीं होगा, तबतक स्थिति प्राप्त नहीं होती है। अतः मोटी-झीनी मायामें बँधे जीव भव-बन्धनमें भटकते हुए सदा दुःख भोगते रहते हैं ॥१६॥ अब जिसको तुमने मालिक माना है, वह ब्रह्म अनुमान कहाँ है ? आत्मा कहाँ है ? जगत् कहाँ है और ईश्वर कहाँ है ? इसका विचार करो ! वे बाहर सत्य वस्तु तो कहीं नहीं हैं। ब्रह्म कहाँ है ? जीवके ही मिथ्या अनुमानमें हैं। ईश्वर कहाँ है ? मिथ्या कल्पनामें। आत्मा-परमात्मा कहाँ है ? मिथ्या भासमें। और जगत् कहाँ है ? मिथ्या अध्यासमें। इस प्रकार ये सब भ्रम-भूल धोखेके बन्धनमें ठहरते हैं। वैसी मिथ्या मानन्दीसे मुक्ति नहीं होती है। सम्पूर्ण वाणी और सर्व खानि; इन दोनों जालोंकी समस्त भ्रम-कल्पना एवं विषयोंका विस्तार जितना है, हे जीव ! तुमसे ही अज्ञानतासे प्रकट हो-होकर फैला है; ऐसा ठीकसे जानो ! कभी उसको सत्य मत् मानो ! वास्तवमें वह सब तुमको बाँधनेका महा बन्धन, कालजाल ही है। ऐसा जानकर पहले ही उसको परित्याग करो ! ॥१७॥ हे जीव ! तुम ही चैतन्य नित्य-सत्य अखण्ड, अविनाशी सबका जनैया हो। तुम्हारे स्वरूपसे परे और कोई सत्य वस्तु नहीं है। अब ऐसा यथार्थ जानो ! परन्तु अपरोक्ष पारख-स्वरूपके बोध-विचारसे अभी प्रत्यक्ष निजपदमें स्थिति-ठहराव किये बिना और उपायसे तुमको कहीं जाकर मुक्तिका ठौर=स्थिति नहीं मिलेगी। क्योंकि और सब जगह तो भव-बन्धनका ही विस्तार है। उसमें तो प्रत्यक्ष पड़े ही हो। अतएव सद्गुरु श्रीकबीर-साहेबके कहे बीजक-वचनके प्रमाणसे निज पारख-स्वरूपमें ही स्थिर हो रहो ! भ्रम-धोखेमें मत् भूलो ! जाग्रत् होओ ! यथाः—"सन्तो ! जागत नीन्द न कीजै ॥ काल न खाय कल्प नहिं व्यापै। देह जरा नहिं छीजै ॥ कहहिं कबीर भूलकी औषध। पारख सबकी भाई ! ॥ पारख बिना विनाश है। कर विचार होहु भीन ॥ जो जानहु जग जीवना। जो जानहु सो जीव ॥ पानी पचावहु आपना। तो पानी माँगि न पीव ॥" इत्यादि ॥

इस प्रकार पारखपदमें स्थिर हो रहनेके लिए बीजकमें सद्गुरुदेवके वचनका प्रमाण है ॥१८॥ जो तुम सत्यको जानना चाहो, तो अपना चैतन्य जीवके पारख-स्वरूपको ही नित्य-सत्य जानलो ! उससे परे और कोई सत्य वस्तु नहीं है। वाणी-कल्पनासे माने हुए ब्रह्म, ईश्वरादि मिथ्या भ्रम-धोखा ही मात्र होनेसे वे नास्ति=वस्तु तो कुछ भी नहीं हैं। वैसा नास्ति कभी भी अस्ति=सत्य चैतन्य जीवका स्वरूप हो नहीं सकता है। ब्रह्म-ईश्वरादि कभी सत्य हो नहीं सकता है। वैसे भ्रम-धोखारूप ब्रह्मज्ञानको अच्छी तरहसे विवेक-विचारकी दृष्टिसे परखो ! यथार्थ समझो ! अन्तमें एकबार फिर मैं तुमसे कहता हूँ—वास्तवमें हे जीव ! शुद्ध चैतन्य पारख ही तुम्हारा सत्य स्वरूप है। ऐसा जानकर निज चैतन्य-पदमें स्थिर, निर्भ्रान्त, शान्त, खानि-वाणीके अध्याससे रहित जीवन्मुक्त हो जाओ ! ॥ १६ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजी एवं पारख-बोधदाता सद्गुरु श्रीसुखलालसाहेबजीकी दयासे प्रथम रमैनी प्रकरणका त्रिजा बुझारथ दोहा, सोरठा आदि टीकाके रूपमें अब अन्तमें यहाँपर चौरासी रमैनी सम्पूर्ण हुआ। पुनः शब्द प्रकरणादिकी टीका बुझारथ करनेके लिए मैं अब पारखी सन्त बोधक सद्गुरुदेवसे विनयरूप वन्दना करता हूँ;

जिससे बीजककी टीका करनेका कार्य निर्विघ्न पूर्ण हो ! ऐसा सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी अन्तके सोरठामें कहे हैं ॥ २० ॥ ८४ ॥

॥ ॐ ॥ संक्षेपार्थके अन्तमें गुरुपदकी विशेषता, वन्दनादि वर्णन ॥ ॐ ॥

दोहाः—पारख बोध प्रकाशक । साहेब कबीर महान् ॥
बीजक दीन्हीं ज्ञान धन । सर्वोपरि बलवान् ॥ १ ॥
खानि वाणि बन्धन सकल । परखाये बिलछान ॥
जीव परे कोई नहीं । चेतन आप पिछान ॥ २ ॥
ईश ब्रह्म परमातमा । जीवहि का अनुमान ॥
चेतन जीवहि सत्य है । पारख शुद्ध ठिकान ॥ ३ ॥
शरण ग्रहण सत सङ्गति । गुरु पारखि सुविवेक ॥
निज स्वरूप का ज्ञान हो । रहनी हंस कि एक ॥ ४ ॥
कबीर साहेब बीजक । मूलरूप कहि दीन्ह ॥
पूरण साहेब पारखी । त्रीजा टीका कीन्ह ॥ ५ ॥
गुरुमुख भाव प्रकाश करी । त्रीजा प्रथम बनाय ॥
कही बुझारथ बोध दै । सहज सरल दरशाय ॥ ६ ॥
मूल रमैनी सबन की । एक शब्द लौं सोय ॥
दोहा में टीका करी । त्रीजा में अस होय ॥ ७ ॥
दोय शब्द से अन्त लग । भाषा टीका कीन्ह ॥
श्री गुरु पूरण साहेब । यहि विधिसे कहि दीन्ह ॥ ८ ॥
रामस्वरूप यहि दासको । जस गुरु दीन्हीं बोध ॥
संक्षेपारथ याहि की । सन्तन के अनुरोध ॥ ९ ॥
सब रमैनि चौरासि औ । शब्द एक तक जौन ॥
टीका दोहादिक सहित । मूल भाव कहि तौन ॥१०॥
भाषामें संक्षेप करी । उभय अर्थ कहि सार ॥
कीन्हीं यहि संलग्न है । रामस्वरूप गुरु पार ॥११॥
बीजक भाष्य रमैनि का । भाष्य साखि लौं अन्त ॥
तामें कहि विस्तार युत । पढ़ि गुनि जानहु सन्त ॥१२॥
त्रीजा के सम्पूरण । भाव भाष्य में राखि ॥
जिज्ञासु विस्तार के । सो तेहिमें लखि चाखि ॥१३॥

गुरुकी कृपा आधार ते। बाधा विघ्न कै पार ॥
बीजक त्रिजा औ भाष्य हूँ। उभय रूप तैयार ॥१४॥
सद्गुरु कबीर साहेब। पूरण साहेब आप ॥
रामस्वरूप त्रय बन्दगी। बोधक गुरु परताप ॥१५॥

॥ ❀ ॥ इति रमैनी संक्षेपार्थ सहित श्रीसद्गुरुदेवकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

❀ बीजक मूल सद्ग्रन्थः ❀

॥ ❀ ॥ शब्द द्वितीय प्रकरणम् प्रारम्भः ॥ २ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी—॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते शब्द प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित।]

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! भक्ति सतोगुर आनी ॥ १ ॥
नारी एक पुरुष दुइ जाया। बूझो पण्डित ज्ञानी ॥ २ ॥

टीका बुझार्थ; गुरुमुख-दोहाः—सन्तो कहिये जीवको, सन्तो शान्ति स्वरूप ॥ सन्तो कहिये श्रोता, जो निरुवारत रूप ॥१॥ भक्ती कहिये भावना, भक्ती बानी नाम ॥ भक्ती कहिये ईस्त्री, जाते उपजत काम ॥२॥ सतोगुर ब्रह्माको कही, जो जानत हैं वेद ॥ सतोगुर गुरुवनको कही, जो जगमें करत निषेद ॥३॥ नारी कहिये बानिको, जिन सब जग भरमाय ॥ नारी कहिए इस्त्री को, जिन

भोंदि सकल जग खाय ॥४॥ हिन्दू तुरुक दो पुरुष हैं, नारी एकै आय ॥ पण्डित ब्रह्माको कहिये, ज्ञानी शम्भु कहाय ॥ ५ ॥

गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे सन्तो ! कोई एक ब्रह्म—ईश्वरादिकी अनुमान-कल्पना करके, उसकी प्राप्तिके लिए भक्ति, योग, ज्ञानादिकी वाणी सतोगुर=ब्रह्मादि गुरुवा लोगोंने रचना करके संसारमें ले आई। जिसको पढ़-सुनकर सब अबोध लोग भ्रम-धोखेमें पड़े भूल रहे हैं ॥ १ ॥

अथवा सार्वजनिक प्रचलितरूपसे सन्त-महात्माओंको तो 'सन्तो' कहा ही जाता है। उनके अतिरिक्त चैतन्य जीवको भी 'सन्तो' कहते हैं। शान्त वा शान्ति-स्वरूपको भी सन्तो कहा जाता है और श्रोताजनोंको भी सन्तो कहते हैं। जो सत्सङ्गमें विवेक-विचारद्वारा जड़-चैतन्य एवं सत्य-असत्य स्वरूपको निरुवार=निर्णय करते हैं, ऐसे श्रद्धालु जिज्ञासु श्रोताजनोंको सन्तो ही कहा जाता है ॥१॥ इसी प्रकार शुभ भावना, प्रेम-प्रीति, निष्ठाको तो भक्ति कहते ही हैं। उससे अतिरिक्त वेदादि वाणीका नाम भी भक्तिके अन्तर्गत आ जाता है और उसके अलावा स्त्रीको भी भक्ति, माया, मोहिनी, भक्तिनी कहते हैं। क्योंकि विषय-भोगादि स्वार्थ-सिद्धिके वास्ते वह पुरुषोंसे खूब प्रेम-प्रीतिका भाव करती हुई लिपट जाती है। जिससे पुरुषोंको खूब कामोद्वेग, मोह-ममता, आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। फिर विषयासक्त पुरुष स्त्री-लम्पट होकर चौरासी योनियोंसे कभी छूट नहीं पाते ॥२॥ भ्रमिक गुरुवा लोग ब्रह्माको 'सतोगुर' कहते हैं। जो चारों वेदोंको जानते, मानते, कथन करते और कर्मकाण्डका उपदेश करते हुए वाणी-कल्पनाको दृढ़ाते हैं, उनको रजोगुणी ब्रह्मा कहा जाता है। परन्तु वे लोग भीतरी सतो=सत्य विचारके गुर=सार युक्तिको बाहर निकालकर दूर फेंक देनेवाले, वैसे विचित्र सतोगुर होते हैं। इसीसे ब्रह्मादि गुरुवा लोगोंने भ्रमसे वास्तविक सत्य-सार निज चैतन्य स्वरूपके विचारको बाहर निकालकर दूर ही फेंक दिया और असत्य-असार, ब्रह्म-ईश्वरादिकी मिथ्या मानन्दी, वाणी-कल्पनाको हृदयमें दृढ़ करके गाँठ बाँधकर रख लिया। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी आदि भ्रमिक गुरुवा लोगोंको भी उनके चेले लोग 'सतोगुर' कहते हैं। इसीसे वे भी सत्य-सारकी युक्तिसे हीन हो रहे हैं। जो कि जगत्में वेद-वेदान्तादि वाणीके प्रमाणसे विधि-निषेधका कथन करते हैं। ब्रह्मका विधि=निरूपण, विधान करते हैं और जगत्का निषेध=खण्डन, मनाही करते फिरते हैं। अपने भ्रम-धोखेमें पड़कर औरोंको भी भ्रमाते-भुलाते फिर रहे हैं; बिना पारख ॥३॥ एक आदिमाया स्त्रीने दो प्रकारके पुरुष, एवं अपने ही लिए दो पति जाया=उत्पन्न किये। हे पण्डित ज्ञानी ! इस बातको समझो ! ॥२॥ अथवा एक वाणी-कल्पनाको एक नारी कहते हैं, जिसने ईश्वर और खुदा—ऐसे जगत्के मालिकरूप दो पुरुष उत्पन्न करके सब संसारको भ्रमा-भुला रक्खा है। अथवा प्रत्यक्ष व्यवहारमें नारी तो स्त्रीको ही कहते हैं। सब स्त्रियाँ एकसमान ही होती हैं। जो स्त्रियाँ सम्पूर्ण जगत्के विषयी पुरुषोंको भोंदी=मूर्ख बनाकर भ्रमा-भुला करके उनका सर्वस्व खा गयीं और भी खाती जा रही हैं। इस भेदको वे अबोध लोग नहीं जान रहे हैं ॥४॥ हिन्दू और तुरुक=मुसलमान; ये दो प्रकारके पुरुष उत्पन्न होकर परस्पर विरोधी बने हैं। परन्तु उनकी मातारूप स्त्री

तो एकसमान ही हैं। वे परस्पर भाई-भाईके रूपमें हैं; तथापि मूर्खतासे वैर-विरोध करके लड़-झगड़ रहे हैं। इस प्रकार एक स्त्रीसे हिन्दू और तुरुक; ऐसे दो पुरुष उत्पन्न हुए। वैसे ही एक वाणी-कल्पनासे ईश्वर और खुदा, ये दो पुरुष उत्पन्न किये। हिन्दू-ने ईश्वरको कर्त्ता माना और मुसलमानने अल्लाह खुदाको सबका मालिक ठहराया। इसी प्रकार वाणी-खानिजालोंमें दोनों ओरके सब लोग भूले बँधे पड़े हैं। अथवा एक स्त्रीने दो पुरुष उत्पन्न किये। उनमें एक पण्डित हुआ, दूसरा ज्ञानी बना। उन दोनोंको उस स्त्रीने अपना पति भी बना लिया। इस बातको समझो ! ब्रह्माको पण्डित कहते हैं और शम्भु=महादेव ज्ञानी कहलाते हैं। ये दोनों भी खानि-वाणी महाजालोंमें खूब फँसे। जीवनभर छूट नहीं पाये। इस बातकेमर्मको अब तुम लोग अच्छी तरहसे बूझो=समझो ! अपना उद्धार करो ! ॥ ५ ॥ २ ॥

पाहन फोरि गङ्ग एक निकरी। चहुँदिश पानी-पानी ॥३॥
तेहि पानी दुइ पर्वत बूड़े। दरिया लहर समानी ॥४॥
उड़ि माखी तरवर को लागी। बोलै एकै बानी ॥५॥
वह माखी को माखा नाहीं। गर्भ रहा बिनु पानी ॥६॥

पाहन मन प्रेम गङ्ग, पानी बानी जान ॥ दोऊ दीन दोऊ पर्वत, दरिया ब्रह्म बखान ॥६॥ लहर जीव माखी बानी, तरवर देह कहाय ॥ माखा ब्रह्म गर्भ अनुमान, पानी बानि लखाय ॥ ७ ॥

हिमालय पहाड़से पाहन=पत्थरको फोड़कर गङ्गोत्तरीके बागद्वार मुहानेसे एक गङ्गानदीकी धारा निकल आई। उसका धारा-प्रवाह नीचे-नीचे बहता हुआ चला गया। बीच-बीचमें अन्य सहायक नदी-नाले मिलनेसे खूब बढ़ गया। वर्षामें बाढ़ आनेपर चारों दिशाओंमें पानी-पानी फैलकर भूमि जलमग्न हो जाती है ॥२॥ तद्वत् यहाँपर पाहन=पत्थरके समान कठोर मनको ही फाड़ करके प्रेमरूपमें एक गङ्गाके समान वाणी-कल्पना और विषय-भोगकी इच्छा-वासना निकली। इसी प्रकार चहुँदिश=चारों दिशाओंमें रहनेवाले सब जीवोंके चित्त-चतुष्टयादि तन-मन एवं वचनमें वही पानी-पानी=वाणी-ही-वाणी और विषयोंकी इच्छा-वासना ही सब ओर फैल रही है। चारों वेदोंमें भी वाणी-कल्पना ही भरी है। उसी पानीमें सब डूबते जा रहे हैं; बिना विचार ॥३॥ हिन्दू और मुसलमान, ये दो दीन कहलानेवाले लोग ही दो पर्वतके समान बने; परन्तु मनसे उत्पन्न उसी वाणी-कल्पना और विषय-वासना, तृष्णादिके महान् बाढ़में वे दोनों ओर खूब डूब गये। अन्तमें वाणी-कल्पनाकी धाराका बाढ़—दरिया=समुद्रके समान ब्रह्म, ईश्वर, खुदा कोई एक महासागर है, ऐसा वर्णन करते हुए, लहर=तरङ्ग-रूप बने हुए अबोध जीव उसी भ्रम=धोखेमें जाकर समा रहे हैं। अथवा उसी विषयकी इच्छारूप पानीमें हिन्दू-मुसलमानरूप दोनों पर्वत डूबे। अन्तमें उनके तन-मनकी लहर-रूप तरङ्ग स्त्रीरूप दरियामें जाकर समा गई। विषयाध्यासवश मरनेपर चौरासी योनि-

योंके समुद्रमें जा-जाकर समा रहे हैं, बिना विचार ॥ ४ ॥ ६ ॥ जैसे मक्खी उड़कर समीपके तरुवर=वृक्षमें जाकर बैठी। सब मक्खियाँ एक-से स्वभाव, आदतवाली होती हैं। तद्वत् माखी=वाणी-कल्पना मक्खीके समान चञ्चल बनी है। एक मनुष्यके मन और मुखसे उड़कर दूसरे मनुष्यके तरवर=वृक्षरूप देह और मनमें जाकर, भ्रमसे लगकर बैठ गई, तब एकसमान भ्रमकी ही वाणी सब बोलने लगे। कोई एक ईश्वर, ब्रह्म, खुदा अवश्य ही है, उसकी प्राप्तिके लिए अनेक साधन करो! इत्यादि बताकर सब भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं। अथवा विषय-वासनारूप मक्खी उड़कर देहधारी पुरुषोंके पीछे लग गई। सब विषयासक्त लोग एकसमान विषयकी वाणी बोलते हुए वैसी ही आदतमें फँसकर खूब बँधे पड़े हैं ॥५॥ उस माखी=वाणी-कल्पनाका माखा=पतिरूप ब्रह्म, ईश्वर, खुदा जो माना है, सो तो वास्तवमें कोई वस्तु ही नहीं है। इसलिए वह किसीको प्राप्त हुआ भी नहीं और प्राप्त भी नहीं होता है। केवल पानी=वाणी-कल्पनाको ही देख-दिखाकर वा लख-लखाकर बिना ही विचारसे गर्भ=अनुमानका गर्व, घमण्ड, अहङ्कार ही मात्र दृढ़ होकर भव-बन्धनमें ही जीव रह गया; बिना पारख ॥६॥७॥ अथवा उष्मज खानिके जीवमें नर-मादाका सम्बन्ध नहीं होता है। इसलिए पानीरूप रज-वीर्यके बिना ही अध्यासवश गर्भ रहकर देह बन जाती है। फिर कर्मानुसार फल-भोग होता रहता है ॥ ६ ॥

नारी सकल पुरुष वै खाये। ताते रहै अकेला ॥७॥
कहहिं कबीर जो अबकी बूझै। सोई गुरू हम चेला ॥८॥१॥

नारी वानी इस्त्री, पुरुष सकल जिव खाय ॥ ताते गुरुपद भिन्न है, प्रत्यक्ष दियो लखाय ॥८॥ कहहिं कबीर यह बूझिहैं, सोई गुरू कहाय ॥ हम हन्ता संसार है; सो सब चेला आय ॥ ९ ॥ १ ॥

नारी=वाणी-कल्पना और स्त्रीने सम्पूर्ण पुरुषरूप अबोध जीवोंको भ्रमा-भुलाकर उनके तन-मन, बुद्धि-विचारको खा लिया; और भी नित्यप्रति खाकर विनाश करती ही जा रही है। ऐसे खानि-वाणीमें फँसे जीव सब भव-बन्धनमें बँधे पड़े हैं। इस कारण मोटी-झीनी मायाके सम्पूर्ण घेरासे गुरुपदरूप पारख-पद मुक्ति-स्थिति एकदम भिन्न, सर्वथा दूर होकर निज भूमिकामें अकेला ही ठहरा रहता है। जीवका शुद्ध स्वरूप पारख है। प्रत्यक्षमें सद्गुरुदेव यही बोध लखा दिये हैं। अब उसी निजस्वरूप पारखपदमें अकेला खानि-वाणीके घेरासे रहित स्थिर हो रहो! इस प्रकार जीवन्मुक्त हो जाओ! ॥७॥८॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब इस प्रकार समझा-बुझाकर पारखबोध देते हुए इस प्रथम शब्दके अन्तमें अपने सत्य निर्णयका फैसला करके कहते हैं—जो कोई जिज्ञासु नरजीव अबकी=इसबार इस मनुष्य-जन्ममें मेरे इस बीजकके सारशब्द निर्णयको बूझै=समझेंगे, सो वे मोटी-झीनी मायाके सर्व भव-बन्धनसे छूटकर मेरे समान निर्बन्ध मुक्त होनेसे गुरु=गुरुपदमें स्थितिवान्, अज्ञान-अन्धकारसे रहित, बड़े, गुरुत्त्व पारख-पदमें स्थिर गुरुरूप कहलाते हैं वा महान् कहे जायेंगे। और दूसरी ओर अबूझ-

अज्ञान, हम-हन्ताको लेनेवाले, अहंब्रह्म अथवा हम अमुक वर्ण, आश्रम, सम्प्रदायवाले हैं—ऐसा अभिमान लेनेवाले सारे संसारके अबोध जीव भव-बन्धनमें बँधे पड़े हैं। वैसे बद्ध सब लोग चेला = छोटा, लघु, अज्ञानग्रस्त, आवागमनके अधिकारी बने हैं। खानि-वाणी दोनों ओर फँस-फँसाकर भव-बन्धनमें पड़े सब जीव दुःख भोग रहे हैं। अतएव सम्पूर्ण अहङ्कारादि विकारको परित्याग करके पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गद्वारा पारखबोध प्राप्तकर निजपदमें स्थिर हो रहो ! ॥ ८ ॥ ६ ॥ १॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! जागत नीन्द न कीजै ॥ १ ॥

काल न खाय कल्प नहिं व्यापै। देह जरा नहिं छीजै ॥ २ ॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तू चैतन्य है। चैतन्य कहिये जो जाग्रत्–स्वप्न–सुषुप्ति, ज्ञान-विज्ञान, दुःख-सुख जाननेवाला। ऐसा तू जाग्रत् होके अचेत नींद मत् करे। ये अर्थ ॥१॥ तेरेको काल नहीं खाता औ कल्पना नहीं व्यापती। क्योंकि तू चैतन्य है और काल, कल्पना आदि सब जड़ हैं। सो जड़ तेरेको कैसे खायगा ? तू अचेत मत् होय। तू तो चैतन्य, और तेरी देह कहिये ज्ञान स्वरूप जो पारख है, सो भी जरा-मरणसे रहित है। सो तू अपने स्वरूपमें ठहर और सबको परख। ये अर्थ ॥ २ ॥

उलटी गङ्ग समुद्रहि सोखै। शशि औ सूरहि ग्रासै ॥३॥

नौ ग्रह मारि रोगिया बैठो। जलमें ब्रिम्ब प्रकासै ॥४॥

'गङ्ग' कहिये बानीको। सो बानी नाना प्रकारकी तेरेसे पैदा हुई, फिर उलटिके तेरेको सोखने लगी। सो तू समझ। 'शशि' कहिये योगी, 'सूर' कहिये ज्ञानी। इस प्रकारसे कहीं ज्ञान दृढ़ाया और कहीं योग दृढ़ाया, और दोनोंको भ्रमाया, ग्रास किया ॥३॥ जहाँ योग दृढ़ाया, तहाँ चन्द्र–सूर्य दोऊ खैंचके, नौ द्वार मूँदके ब्रह्मरोगमें ग्रसित हुआ। बैठके ध्यान लगाया, तब देहमें एक प्रतिबिम्ब प्रकाश हुआ। सो तो प्रतिबिम्बका प्रकाश-कर्त्ता प्रतिबिम्बमें मग्न हुआ। सो भी धोखा। और जहाँ ज्ञान दृढ़ाया, तहाँ श्रवण-मनन करके पञ्च विषय और अन्तः-करण चतुष्टय, ये नवोंका निदिध्यासन करके साक्षात्कार जाना कि 'मैं आत्मा हूँ।' तब जीवमें आनन्द पैदा हुआ और वो आनन्दमें भूला। इस प्रकारसे तेरेमें विकार पैदा होता है और तेरेको खाता है। सो तू गाफिल मत् होय। ये अर्थ॥४॥

बिनु चरणनको दहुँदिश धावै। बिनु लोचन जग सूझै ॥५॥
संशय उलटि सिङ्घको ग्रासै। ई अचरज कोइ बूझै ॥६॥

बिनु चरणनकी कल्पना। सो कल्पना दशों दिशामें दौरती है। फिर नाना प्रकारके अनुमान करके आनन्द होता है। आँखें मूँदके बोलता है कि सब जगत् मेरेको आत्मा सूझता है। और प्रत्यक्ष अनुमानमें अन्धा हुआ है ॥५॥ संशय कहिये बानीको, सिङ्घ कहिये जीवको। सो संशय इस जीवसे पैदा होता है और फिर इस जीवको ग्रासके घेरता है। उलटके इसकी कल्पना इसीको बन्धन होती है, ये आश्चर्य जानना। ये अर्थ ॥ ६ ॥

औंधे घड़ा नहीं जल बूड़े। सीधे सो जल भरिया ॥७॥
जेहि कारण नर भिन्न-भिन्न करें। सो गुरु प्रसादे तरिया ॥८॥

औंधे घड़ा कहिये ब्रह्म, सो कदहीं जीवमें बूड़ता नहीं; क्योंकि ब्रह्म तो जीवका अनुमान है। इसवास्ते जीव ही अनुमानमें बूड़ा औ घट-घटमें भरा ॥७॥ जीवमुखः—तब जीव बोलने लगा कि जिस वास्ते सबसे न्यारा ईश्वर, न्यारा ब्रह्म बोलते थे; सो गुरु ब्रह्मा, गुरु विष्णु, गुरु महेश्वर—इनके प्रसादसे वेदान्त अनुभवसे जाना कि एक आत्मा अद्वैत एकरस सदा निरन्तर है। ये अर्थ ॥८॥

बैठि गुफामें सब जग देखै। बाहर किछउ न सूझै ॥ ९ ॥
उलटा बाण पारधिहि लागै। सूरा होय सो बूझै ॥१०॥

गुरुमुखः—भँवरगुफामें अनुमान कर-करके समाधिमें जानता है कि एक आत्मा है, और ज्ञानगुफामें श्रवण-मनन-निदिध्यासन करिके जानता है कि एक आत्मा सत्य है। और बाहर तो अनेक मालूम होता है। जब कछु मालूम नहीं भया, तब कहा कि जैसा-का-तैसा सम्पूर्ण है। इस प्रकारसे निश्चय किया ॥९॥ देखो—हे सन्तो ! इसीका अनुमान इसीको लगता है। इसका तर्क उलटके इसीको लगा। ये अर्थ ॥ औ पारधी कहिये ज्ञानी, बाण कहिये ज्ञान। सो जिससे ज्ञान हुआ, उसीको उलटके लगा औ बोधमें निश्चय किया; बिना पारख। जो कोई पारखी होय सो बूझै। ये अर्थ ॥ १० ॥

गायन कहै कबहुँ नहिं गावै। अनबोला नित गावै ॥११॥

नटवट बाजा पेखनी पेखै । अनहद हेत बढ़ावै ॥१२॥

गायन कहिये बानी। सो सब बानीको कहनेवाला जीव। इस जीवको कोई नहीं गाता। अब अनबोला जो अनुमान, ताको सब जगत् नित गाता है ॥११॥ नटवट कहिये चौरासी आसन, सो भी जीवकी कल्पना । बाजा कहिये दशनाद अनहद, सो भी जीवकी कल्पना। पेखनी कहिये दश मुद्रा, सो भी जीवकी कल्पना। अनहद कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये अनुमान । तामें यह जीव हेत बढ़ाता है। ये अर्थ ॥ १२ ॥

कथनी-बदनी निजुकै जोवै । ई सब अकथ कहानी ॥१३॥
धरती उलटि अकाशहि बेधै । ई पुरुषनकी बानी ॥१४॥

कथनी कहिये बानीको, सो सब बन्धन है, जीवकी कल्पना । सो धोखेको यह निश्चय करके जानता है । सो सत्य नहीं । सब मिथ्या बानी बन्धन है, जीवकी कल्पना। ये अर्थ ॥१३॥ पुरुष कहिये सनकादिक, नारदादि, शौनकादिक, व्यासादि; जिनकी बानी सुनि-सुनि धरतीके जीव आकाशको सुरति लगाते हैं। यह आश्चर्य। ये अर्थ ॥ १४ ॥

बिना पियाला अमृत अँचवै। नदी नीर भरि राखै ॥१५॥
कहैं कबीर सो युगयुग जीवै । जो राम सुधारस चाखै ॥१६॥२॥

जैसा कोई एक अन्धा बिना प्याला मनसे कल्पिके कल्पनाका पानी पीता है औ नदीमें पानी भरा है—सो नहीं लेता है। अथवा जैसा कोई एक गाफिल रास्ता चला जाता है, उसकी गोदीमें खाँड़के लड्डू हैं औ उसको भूख लगी तो मनके लड्डू खाता है, तो भूख कैसे जायगी ? इसवास्ते तू पारखमें स्थिर हो औ सबको परख। ये अर्थ ॥१५॥ मायामुखः—गुरुवा लोग बोलते हैं कि जो सबमें रमा है सो राम। इसको सुनके श्रवण, मनन, निदिध्यासन करके जिन्होंने जाना, सो युग-युग अमर हुआ। जिनने 'मैं आत्मा' ऐसा अमृत पिया। ये अर्थ ॥१६॥२॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! घरमें झगरा भारी ॥१॥
राति-दिवस मिलि उठि-उठि लागे । पाँच ढोटा एक नारी ॥२॥

न्यारो-न्यारो भोजन चाहैं। पाँचों अधिक सवादी ॥३॥

टीका गुरुमुखः—हे जीव! ये घरमें जो बड़ा झगरा मचा है, सो तू परख ॥१॥ रात-दिवस उठ-उठके उपाधि लगती है जीवको—पाँच तत्त्व औ एक बानी ॥२॥ न्यारा-न्यारा वे भोजन चाहते हैं। आकाश शब्द चाहता है, वायु स्पर्श चाहती है, तेज रूप चाहता है, जल रस चाहता है, धरती गन्ध चाहती है औ बानी तो जीवको ग्रासने चाहती है*। इस प्रकारसे पाँचों बड़े स्वादी हैं। ये अर्थ ॥३॥

कोइ काहूका हटा न मानै। आपुहि आप मुरादी ॥४॥
दुर्मति केर दोहागिन मेटै। ढोटेहि चाँप चपेरे ॥५॥
कहहिं कबीर सोई जन मेरा। जो घरकी रारि निबेरे ॥६॥३॥

कोई किसीका हटा = कहा मानते नहीं। आप-ही-आप मुख्त्यार हैं। सो तू इनमें मत् फँसे; परखके न्यारा हो। ये अर्थ ।४॥ दुर्मति कहिये ब्रह्मा आदि गुरुवा, जिनकी मति सुनके जीव दूरमें बन्ध हुआ। इनकी बानीको चीन्हके मेटे, पाँचों विषयनके वश न होय, परखै सोई जन पारखी! पारखरूप। ये अर्थ ॥६॥३॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४ ॥ ❀ ॥

सन्तो! देखत जग बौराना ॥१॥
साँच कहौं तो मारन धावै। झूठे जग पतियाना ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! देखत जग बौराना। देखते

* जड़ पञ्चतत्त्व निर्जीव होनेसे उनमें इच्छा, वासना, चाहना नहीं है। वास्तवमें आकाशके उपासक ॐकार शब्दकी ध्वनि एवं दशनाद अनहद ध्वनि सुनना चाहते हैं। वायुके उपासक स्पर्शरूप आनन्द चाहते हैं। तेजके उपासक ज्योतिरूप देखना चाहते हैं। जलके उपासक अमृत-रस लेना चाहते हैं। और पृथ्वीके उपासक आन्तरिक कमलकी गन्ध सूँघना चाहते हैं। गुरुवा लोग कल्पित वाणी सुनाकर अबोध जनोंको ग्रास करना चाहते हैं।

इसी प्रकार संसारी गायक लोग शब्द गायन करना वा सुनना चाहते हैं। भोगी लोग स्पर्श चाहते हैं। कोई सुन्दर रूप देखना, रस चाखना, और गन्ध-सुगन्ध लेना चाहते हैं। और स्त्री तो विषयी पुरुषको ग्रास ही करना चाहती है।

शरीरमें पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ पञ्च विषयोंकी ओर स्वाभाविक आकर्षित होती हैं। इच्छा-वासना अबोध जीवको ग्रास ही कर लेना चाहती है। ऐसा भावार्थ समझ लेना चाहिये!

हैं कि सब कल्पना मानुषरूपसे उठी। और वही कल्पनाकी खोज करते-करते सब मर गये। अब उनकी बातें सुन-सुनके दिवाना हुआ। ये अर्थ ॥१॥ 'साँच जीव' कहौं तो मारने धावता है औ झूठे धोखेमें जगत्‌ने प्रतीत किया। ये अर्थ ॥२॥

नेमी देखा धर्मी देखा। प्रात करे अस्नाना ॥३॥
आतम मारि पषाणहि पूजें। उनमें किछउ न ज्ञाना ॥४॥

नेमी-धर्मी—जो नेम-धर्मके करनेवाले हैं, प्रातः स्नान करते हैं ॥३॥ औ आत्माको कष्ट देते हैं, पाषाण पूजन करते हैं। उनमें कछु ज्ञान नहीं, अज्ञान है। ये अर्थ ※ ॥ ४ ॥

बहुतक देखा पीर औलिया। पढ़ें कितेब कुराना ॥५॥
कै मुरीद तदबीर बतावैं। उनमें उहै जो ज्ञाना ॥६॥

※ टिप्पणीः—शब्द ४ की ३-४ चौपाई का भाष्य :—

नेमी देखा धर्मी देखा। प्रात करे अस्नाना ॥ ३ ॥

भाष्यः—नेमी = नित्य नियमसे प्रातःकाल ४ बजे उठकर स्नान, सन्ध्या, जप, पूजा, पाठ, होम इत्यादि कार्य नियम पूर्वक करनेवाले कर्मकाण्डी, नेमी-प्रेमी लोग भी कईएक देखनेमें आए। उन्हें भी अच्छी तरहसे देखा। धर्मी = दान-पुण्य, धर्म-कर्म करनेवाले; सदावर्त्त, अन्नक्षेत्र चलानेवाले; प्याऊ, धर्मशाला, अनाथालय, विद्यालय इत्यादि खोलनेवाले धार्मिक लोग भी कई जनें देखनेमें आए। उन्हें भी समीपसे भली-भाँतिसे देखा। वे नेमी-धर्मी लोग प्रतिदिन, पर्वोंके दिन और माघ आदिमें विशेषरूपसे एक महीनाभर प्रातःकाल ३-४ बजे ही उठकर, नदी आदिमें जाकर पूरा स्नान कर लिया करते हैं। चाहे कितनी ही ठण्डी पड़े, तो भी वे लोग स्नान करनेका नियम पूरा ही कर लेते हैं। हठ पकड़कर ठण्ढे जलमें ही स्नान करते हैं। ऐसा बाहरी कार्य करते हैं; परन्तु सत्सङ्ग करनेमें वे प्रेम नहीं लगाते। इसीसे उनका अज्ञान भी नहीं मिटता है ॥ ३ ॥

आतम मारि पषाणहि पूजे। उनमें किछउ न ज्ञाना ॥ ४ ॥

इस प्रकार नेमी-धर्मी बने लोग प्रातः स्नान करके आकर, पषाणहि=जड़ पत्थर आदिकी ही देवी-देवताओंकी जड़ मूर्त्ति बनाकर मन्दिरादिमें स्थापना करके विधि-विधानसे जड़-पूजा करते हैं। उन्हीं जड़ मूर्त्तिके सामने वलिदानके नामसे जीवित आत्मारूप बकरा, मुर्गा, बतक, कबूतर आदिकोंको मारकर जीवहिंसा वा पशु-हत्या करते हैं। वैसे जीवात्माको कष्ट देकर हत्या करके पाषाणकी ही पूजा करते-कराते हैं। अतएव उनमें पूरा अज्ञान अन्धकार, मूढ़ता ही तो भरी है। ज्ञान, बोध, विवेक, विचार, दयादि तो उनमें कुछ भी नहीं रहते हैं। बाहरके स्वाँग, आडम्बर दिखाते हुए भी निर्दयी काल ही बने हैं। जन्मान्तरमें उसका बदला उनको चुकाना ही पड़ेगा। जगत्-जीव वैसे अज्ञानमें बौरा रहे हैं ॥ ४ ॥

बहुतक पीर, औलिया देखा–जो किताब, कुरान पढ़ते हैं ॥५॥ चेला करके नाना प्रकारकी हिकमतें, करामात बताते हैं। उनमें वही ज्ञान है धोखा। ये अर्थ ॥६॥

आसन मारि डिम्भ धरि बैठे। मनमें बहुत गुमाना ॥७॥
पीतर पाथर पूजन लागे। तीरथ गर्भ भुलाना ॥८॥

कोई आसन मारि डिम्भ धरके बैठे, औ मनमें बहुत अभिमान किया ॥७॥ पीतर–पाथर पूजने लगे औ तीरथ-गर्भमें भूले। ये अर्थ ॥ ८ ॥

टोपी पहिरे माला पहिरे। छाप–तिलक अनुमाना ॥ ९ ॥
साखी शब्दै गावत भूले। आतम खबरि न जाना ॥१०॥

कोई एक टोपी पहिरे, माला पहिरे औ छाप और तिलक लगा करके अनुमानमें परे ॥९॥ साखी-शब्द गानेमें भूले; लेकिन 'आतमा मेरा अनुमान' ये खबर परी नहीं। ये अर्थ ॥ १० ॥

हिन्दू कहैं मोहिं राम पियारा। तुरुक कहैं रहिमाना ॥११॥
आपुस में दोउ लरि-लरि मूये। मर्म न काहू जाना ॥१२॥

'हिन्दू कहैं मोहिं राम पियारा औ मुसलमान कहैं रहिमाना' ॥ ११ ॥ 'आपसमें दोनों लरि-लरि मूये; परन्तु ये धोखेका मर्म किसीने जाना नहीं।' ये अर्थ ॥ १२ ॥

घर–घर मन्तर देत फिरतु हैं। महिमाके अभिमाना ॥१३॥
गुरू सहित शिष्य सब बूड़े। अन्तकाल पछताना ॥१४॥

घर-घर जो मन्त्र-दीक्षा देते हैं, महिमाके अभिमानसे जीवनको बन्धन करते हैं ॥ १३ ॥ सो गुरु सहित शिष्य सब भ्रममें बूड़े। अन्तमें स्थिति न मिली। ताते बहुत पछतावेंगे। ये अर्थ ॥ १४ ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! ई सब भरम भुलाना ॥१५॥
केतिक कहौं कहा नहिं माने। सहजे सहज समाना ॥१६॥४॥

जो अनुमान सबने किया, उनकी स्थिति कहाँ है ? हे जीव सुनो ! ई सब भ्रममें भूले ॥१५॥ मैंने केता कहा, कोई कहा मानते नहीं। सब धोखेमें समाये। ये अर्थ ॥ १६ ॥ ४ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! अचरज एक भौ भारी । कहौं तो को पतियाई ? ॥१॥
एकै पुरुष एक है नारी । ताकर करहु बिचारा ॥२॥
एकै अण्ड सकल चौरासी । भरम भुला संसारा ॥३॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! यह बड़ा आश्चर्य हुआ । निर्णय कहौं तो कोई पतियाता नहीं ॥१॥ एक पुरुष जो जीवरूप, औ एक नारी जो स्त्री है—इनके ऊपर और कोई नहीं । यह विचार करो । ये अर्थ ॥२॥ एकै कहिये जीव, अण्ड कहिये झाँई, जामें व्यापक होके सकल चौरासी पैदा किया औ सब संसार नाना प्रकारके भ्रममें भूला । ये अर्थ ॥ ३ ॥

एकै नारी जाल पसारा । जगमें भया अन्देशा ॥४॥
खोजत–खोजत काहु अन्त न पाया । ब्रह्मा विष्णु महेशा ॥५॥

एकै नारी कहिये बानी, जो कल्पना कर-करके जाल पसारा । फिर वही बानी सुन-सुनके सब जगत्‌में अन्देशा भया कि कोई कर्त्ता दूसरा है ॥४॥ तब सब मिलके खोजने लगे । सो खोजते-खोजते किसीने अन्त पाया नहीं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि । तब कहा कि हमहीं ब्रह्म । ये अर्थ ॥ ५ ॥

नाग फाँस लिये घट भीतर । मूसेनि सब जग झारी ॥६॥
ज्ञान-खड्ग बिनु सब जग जूझैं । पकरि न काहू पाई ॥७॥

नाग फाँस कहिये बानीको । सो नाना प्रकारकी कल्पना करके बानी बनाई औ सब जगत्‌को झारिके लूटा ॥६॥ इनके ज्ञानमें सब जगत् मारा गया, बिना तलवार । परन्तु ये बानीके अनुमानको कोई पकरि नहीं पाया । ये अर्थ ॥७॥

आपै मूल फूल फुलवारी । आपुहि चुनि-चुनि खाई ॥८॥
कहहिं कबीर तेई जन उबरे । जेहि गुरु लियो जगाई ॥९॥५॥

आप ही ब्रह्म बना औ फूला औ फुलवारी जगत् पैदा किया। फिर आप ही चुनि-चुनि खाने लगा ॥८॥ गुरु कहते हैं कि हे जीव ! वही जीव उबरे, जिनको पारख गुरुने परखाया सब धोखा । उनकी स्थिति पारखपर भई । ये अर्थ ॥९॥५॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! अचरज एक भौ भारी । पुत्र धइल महतारी ॥ १ ॥

पिताके सङ्ग भई बावरी। कन्या रहल कुँवारी ॥ २ ॥
खसमहि छाड़ि ससुर सङ्ग गौनी। सो किन लेहु विचारी ॥ ३ ॥

टीका गुरुमुखः—हे सन्तो ! ये बड़ा आश्चर्य है—जो स्त्रीसे पुरुष पैदा हुआ और फिर स्त्रीको जायके धरा। क्या इसको मालूम नहीं—जो मैं स्त्रीसे पैदा हुआ औ मेरी माता स्त्री थी ? अब मैं किसको जायके पकड़ता हौं ? ये अर्थ ॥१॥ पिता कहिये झाँईं, औ झाँईं कहिये जहाँसे सबकी उत्पत्ति भई। सोई झाँईं आत्मा, सोई झाँईं ब्रह्म। कन्या कहिये जीव, सो जीवने दूसरा खसम अनुमाना औ उस झाँईंके सङ्ग दिवाना हुआ। दिवाना कहिये भक्त, जो भक्ति नारी कहाये और कोई पुरुष है—ऐसा अनुमान करके भक्ति करने लगे। इस प्रकारसे बहुत भक्ति करके खोजते-खोजते अन्त नहीं पाया, तब कहा कि ब्रह्म बेअन्त है। याते कन्या बिना खसमकी रह गई ॥२॥ बेअन्त कहिये खसम छोड़ा औ गुरुवा लोगनके सङ्गमें गया। फिर ज्ञान-विचार करने लगा। ये अर्थ ॥ ३ ॥

भाईके सङ्ग सासुर गौनी। सासुहि सावत दीन्हा ॥ ४ ॥
ननद-भौज परपञ्च रचो है। मोर नाम कहि लीन्हा ॥ ५ ॥

यह जीव जब कहीं अन्त नहीं पाया, तब बड़े भयको प्राप्त हुआ कि मेरी कौन गति होयगी ? ऐसे भयके सङ्ग जब गुरुवा लोगोंके पास गया, तब गुरुवा लोगोंने एक सावत दीन्हा। सावत कहिये उपदेश, उपदेश कहिये बोध ॥४॥ फिर उस बोधका अनुभव करके "ननद-भौज मिलि परपञ्च रच्यो है।" ननद कहिये गुरुवा, जासे नेह लगा। भौज कहिये चेला, जो भयको प्राप्त हुआ। प्रपञ्च कहिये बानी, जासे सब कोई धोखामें परे। फिर अनुमान करके बोला कि मोर नाम; नाम कहिये कल्पना कहि लीन्हा। ये अर्थ ॥ ५ ॥

समधीके सङ्ग नाहीं आई। सहज भई घरबारी ॥६॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो। पुरुष जन्म भौ नारी ॥७॥६॥

समधी कहिये ब्रह्मज्ञानी, नाहीं कहिये जीव। सो यह जीव ब्रह्मज्ञानीके सङ्गमें आयके सहज समाधिमें स्थिति पाया। सहज समाधि कहिये अनुमान, जो सहजै धोखेमें मग्न हुआ। जब मग्न हुआ, तब नाना प्रकारसे अनुमान करके ब्रह्मपदको ठहराने लगा ॥६॥ सो पद कहाँ है ? हे जीव ! सो तेरी झाँईं।

सुनो—हे सन्तो ! पुरुष जीव था, सो दूसरा पुरुष अनुमान करके आप नारी हुआ। ये अर्थ ॥ ७ ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! कहौं तो को पतियाई ? झूठ कहत साँच बनि आई ॥१॥
लौके रतन अबेध अमोलिक ; नहिं गाहक नहिं साँई ॥२॥
चिमिक-चिमिक चिमकै दृग दहुँदिश । अर्ब रहा छिरियाई ॥३॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंने जो झूठा अनुमान बताया, सोई जीवको साँचा हुआ औ प्रतीत किया। साँचा पारख बताये तो कोई पतियाता नहीं। ये अर्थ ॥१॥ जैसा कोई अनुमानसे अपने मनमें एक हीरा बनाया। फिर उस हीराको अपनी बुद्धिसे निश्चय करके बोलता है कि हीरा अबेध है, अमोल है। ऐसा बोलके मग्न होता है। परन्तु मनके लड्डूसे कहीं भूख जाती है ? औ मनके रत्नोंकी कहीं माला बनती है ? हे सन्तो ! जिनने मनसे अनुमान ग्रहण किया—सो भी झूठा औ अनुमान भी झूठा। ये अर्थ ॥२॥ जब गुरुवा लोगोंकी शरणमें यह जीव गया, तब उन्होंने एक अलक्ष्य मुद्रा बताई। तब यह जीव आँखोंकी पलक न लगे, ऐसी पूर्ण समदृष्टिसे देखने लगा। तब नेत्रपर पित्त चढ़ा औ चकचक, चिमचिम नाना प्रकारके दृग दृश्य होने लगा। ऐसा होते-होते नेत्रोंमें मूर्च्छा आई औ अन्ध्यारी छाय गई। ये समाधि धोखा मिथ्या। ये अर्थ ॥ ३ ॥

आपै गुरु कृपा कछु कीन्हा। निर्गुण अलख लखाई ॥४॥
सहज समाधी उन्मनि जागे। सहज मिले रघुराई ! ॥५॥

टीका जीवमुखः—जब समाधि छूटी, तब जीव स्तुति करने लगा कि आप ही गुरुने कछु कृपा करी—जो निर्गुण अलख लखाया ॥४॥ और सहज समाधि उन्मनीमें जगाया। जासे सहज आनन्दको प्राप्त हुआ औ आत्मा-परमात्माकी एकता भई। ये अर्थ। यह जीवमुख अर्थ गुरुने दर्शाया ॥ ५ ॥

जहाँ-जहाँ देखो तहाँ-तहाँ सोई। मन मानिक बेधो हीरा ॥६॥
परमतत्त्व गुरु सो पावै। कहैं उपदेश कबीरा ! ॥७॥७॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'जहाँ-जहाँ देखो—तहाँ-तहाँ सोई ब्रह्म धोखा छाय रहा है।' जो मनसे माना, सो अनुमानमें जीव बन्धा; बेधा औ अचेत होय रहा ॥६॥ मायामुखः—तब गुरुवा लोग कहते हैं कि परमात्माकी प्राप्ति वेदान्त अनुभवसे होती है। ये निश्चय ॥ ७ ॥ ७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! आवै-जाय सो माया ॥१॥
है प्रतिपाल काल नहिं वाके। ना कहुँ गया न आया ॥२॥

टीका गुरुमुखः—हे सन्तो ! "आवै जाय सो माया।" जो पारख है, सो उसका काल कदहीं नहीं। ना कहीं जाता है, ना कहीं आता है। स्थिर पद है। ये अर्थ ॥ १ ॥ २ ॥

का मकसूदन मच्छ कच्छ न होई। शङ्खासुर न सङ्घारा ॥३॥
है दयाल द्रोह नहिं वाके। कहहु कौनको मारा ? ॥४॥
वै कर्त्ता नहिं बराह कहाये। धरणि धर्‌यो नहिं भारा ॥५॥
ई सब काम साहेब के नाहीं। झूठ कहैं संसारा ॥६॥
खम्भ फोरि जो बाहर होई। ताहि पतीजे सब कोई ॥७॥
हरणाकुश नख वोद्र बिदारा। सो कर्त्ता नहिं होई ॥८॥
बावनरूप न बलिको जाचै। जो जाचै सो माया ॥९॥
बिना विवेक सकल जग भरमें। माया जग भरमाया ॥१०॥
परशुराम क्षत्री नहिं मारे। ई छल माया कीन्हा ॥११॥
सतगुरु भेद भक्ति नहिं जाने। जीवहि मिथ्या दीन्हा ॥१२॥
सिर्जनहार न ब्याही सीता। जल पषाण नहिं बन्धा ॥१३॥
वै रघुनाथ एक कै सुमिरै। जो सुमिरै सो अन्धा ॥१४॥
गोपी ग्वाल न गोकुल आया। कर्त्तें कंस न मारा ॥१५॥
है मेहरवान सबहिन को साहेब। ना जीता ना हारा ॥१६॥

वै कर्त्ता नहिं बौद्ध कहावै। नहीं असुर सङ्घारा ॥१७॥
ज्ञानहीन कर्त्ता कै भरमें। माये जग भरमाया ॥१८॥
वै कर्त्ता नहिं भये निष्कलङ्की। नहिं कालिङ्गहि मारा ॥१९॥
ई छल-बल सब माया कीन्हा। जत्त-सत्त सब टारा ॥२०॥
दश अवतार ईश्वरी माया। कर्त्ता कै जिन पूजा ॥२१॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! उपजै खपै सो दूजा ॥२२॥८॥

ओ जो कर्त्ता है सो मानुषरूप। दश अवतार कर्त्ता न होय। ब्रह्माकी बानीका भेद काहुको जान परा नहीं, इस वास्ते सब धोखेमें भरमें। दश अवतार माया। माया कहिये जो सब जीवोंको बन्धन देवै। जो सब बात वेदने ठहराई, सो कहाँ है? सब कल्पना। गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! जो पैदा होता है औ नाश होता है, सो कछु दूसरा। पारख नहीं। ये अर्थ ॥२१॥२२॥८॥ *

---

* टिप्पणीः—शब्द ८ का पूरा भाष्यः—

॥ * ॥ शब्द ॥ ८ ॥ * ॥

सन्तो! आवै-जाय सो माया ॥ १ ॥

भाष्य; गुरुमुखः—सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो! कर्मानुसार अध्यासवश गर्भवासमें रहकर शरीर बना करके स्थूल देहयुक्त योनिद्वारा जो जन्म लेकर आया, अथवा जो इसी तरह अवतार ले करके आता है और आयु पूरी होनेपर कालगतिसे मृत्यु होकर उस स्थूल देहको यहीं छोड़कर सूक्ष्म देहयुक्त विषय-संस्कार ले करके पुनः जो चार खानि चौरासी योनियोंके गर्भवासमें ही अध्यासवश चला जाता है, सो क्या है? माया-मोह, विषयाध्यास, काया, कल्पना, अनुमान आदिमें फँसा हुआ बद्ध जीव ही तो है। इसी प्रकार विभिन्न देह बनाकर अवतार लेनेवाला, भू-भार हरण करनेको आनेवाला और कार्य पूरा होनेपर, अवतारमें बनाये शरीरको त्यागकर पुनः लोक विशेषमें चले जानेवाला—ऐसा जो माने हैं, सो मायाके रूप जीवोंको धोखा देकर विनाश करनेवाले एवं बन्धनदायी हुए हैं। अतः अवतारी लोग कालका ही कर्म अधिक रूपमें करके गये, दयालका कार्य नहीं किये। मुक्त चेतन कहीं किसी निमित्तसे आता-जाता नहीं। कहीं आने-जानेका साधन सूक्ष्म देह, कर्म-संस्कार, अध्यास, इच्छा-वासनादि कोई कुछ भी विकार शुद्ध मुक्त चेतनके पासमें बिलकुल नहीं रहता है। फिर वह कैसे कहीं आयगा-जायगा। किसीकी प्रार्थनाको सुनकर उसको दुःखसे छुड़ानेके लिए वा दूसरेको मुक्त करनेके लिए भी मुक्त चेतन-को अवतार लेकर आनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। वह वैसा आ भी नहीं सकता

है। और किसीको मुक्त करके ले जाकर पहुँचानेका कहीं कोई मुक्तिका विशेष लोक-धाम भी नहीं है। क्योंकि कहा है:—"मोक्षस्य न हि वासोस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ॥ अज्ञान हृदय ग्रन्थीः नाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥" शास्त्र ॥ दोहा:—"कतहूँ मुक्तिको धाम नहीं। जहाँ बसत कोइ ग्राम ॥ भव-बन्धनते छूटिवो। मुक्ति तिसीको नाम ॥" इस कारणसे सत्यलोक, वैकुण्ठ, कैलास आदि लोकोंसे स्वइच्छासे अवतार लेकर आने-जानेकी बात असत्य कल्पित ही ठहरती है। मुक्तिके लोकमें दिव्य शरीरसे सुख भोग होता है, ऐसा कहना भी मिथ्या बात है। क्योंकि केवल सूक्ष्म शरीरयुक्त अध्यासी जीव अधरमें ठहरे रह नहीं सकता। अध्यासवश खानियोंमें जा करके ही टिकाव होता है। स्थूल देहके सम्बन्ध बिना केवलसूक्ष्म देहसे मात्र सुख-दुःखका भान नहीं होता है। केवल सूक्ष्म देहमें इच्छा-सञ्चालन भी नहीं होता और इच्छा-मात्रसे कर्म-नियमके विरुद्ध कोई बीचमें शरीर बना भी नहीं सकता। इसलिए मुक्त जीव सदाके लिए आवागमनसे रहित हो जाता है। देह धारण करके जो आता-जाता रहता है, सो माया-कायाका अध्यासी बद्ध जीव है; ऐसा जानना चाहिए! पारख-प्रकाश करके सर्व अध्यासको मिटाकर इसी नरदेहमें जीवन्मुक्त हो जाना चाहिये!॥ १ ॥

है प्रतिपाल काल नहिं वाके। ना कहुँ गया न आया ॥२॥

मुक्तिप्रदाता बन्दीछोर पारखी सद्गुरु जो हैं, वे सब जीव-मात्रके प्रतिपालक, रक्षक, अत्यन्त दयालु, स्वाभाविक दयास्वरूप हैं। इसलिए उनके पासमें कालका कर्म-क्रूरता, कठोरता, हिंसा-घातादि रत्तीमात्र भी नहीं रहता है। कालरूप कल्पना, ठगाई, धोखा देना इत्यादि विकार भी उनमें नहीं रहता है। इस कारण वे कभी कहीं किसी कल्पित लोकादिमें गये-आए नहीं। वैसे किसी लोकमें कभी वे नहीं जाते-आते हैं। जिनका आवागमन छूट गया है, उनका कहीं आना और जाना कभी नहीं होता है।

अथवा जीवका शुद्ध स्वरूप जो पारख है, सो सदा एकरस रहता है। प्रतिपाल= प्रतिपल, हरक्षण, हरवक्त चेतनस्वरूप नित्य-सत्य, अखण्ड ही बना रहता है। अतएव त्रिकालाबाध्य, अविकारी पारखका काल=विनाश, परिवर्तन, मृत्यु, अभाव कभी नहीं होता है। वह चैतन्य तो अमर अविनाशीस्वरूप है। उसका कोई काल ही नहीं है। इस कारण वह न कभी कहीं जाता है और न कभी कहींसे आता है। पारख-स्वरूप कहीं गया भी नहीं और आया भी नहीं है। वह तो सदा स्थिर पद, अटल-अचल है। इस प्रमाणसे विदेहमुक्त होकर निराधारमें स्थित हुए सद्गुरु श्रीकबीर-साहेब शुद्ध पारखस्वरूपमें अटल-अचल हो गये। इसलिए वे कहीं कल्पित सत्य-लोकादिमें गये भी नहीं और वहाँसे आये भी नहीं। अब कहीं किसीके लिए वे आते-जाते भी नहीं। उनका बार-बार अवतार धारण भी नहीं होता है और वैसा हुआ भी नहीं है। वे मनुष्यरूपमें सच्चे सद्गुरु हुए। पारखबोध प्रकाशकर जिज्ञासुओंको मुक्ति-मार्ग दरशाकर स्वयं निर्बन्ध मुक्त हो गये। जिसमें कालका घेरा नहीं, वैसा शुद्ध

पारख मुक्तस्वरूप जो है, सो कहीं गया-आया भी नहीं और कहीं जाता-आता भी नहीं है। अतः सर्व अध्यासको मिटाकर जीवन्मुक्त हो करके पारखपदमें ही स्थिर हो रहना चाहिये ! ये अभिप्राय ॥ २ ॥

का मकसूदन मच्छ कच्छ न होई। शङ्खासुर न सङ्घारा ॥३॥

पारखगुरुको मधुसूदन होनेका क्या काम ? वे मच्छ-कच्छ भी नहीं हुए। उनने शङ्खासुरका संहार भी नहीं किया। जिसने यह सब काम किया, वह तो छली-कपटी, हिंसक मायाका रूप था। संक्षिप्त कथामें कहा है—

मधु और कैटभ नामक दो भाई पराक्रमी दानव थे। छल-कपटसे विष्णुने उन दोनोंको जानसे मारकर हत्या कर दी। इस कारण विष्णु एवं श्रीकृष्णका नाम तबसे मधुसूदन पड़ा, ऐसा लिखा है। पुराणोंमें वर्णन है—'शङ्खासुर दानवने आकर ब्रह्माके हाथोंसे वेदकी पुस्तकको छीनकर, शङ्खमें बैठ करके समुद्रमें ले भागा। तब ब्रह्माके प्रार्थना करनेपर विष्णु आकर मत्स्यावतार धारणकर शङ्खासुरका वध करके संहार किया। उसने समुद्रमें छितरा दिये हुए वेदके पृष्ठोंको एकत्र बटोरकर लाके पुनः ब्रह्माको दे दिया।' इत्यादि लिखा है। समुद्र-मंथनके लिए मन्दराचल पहाड़ समुद्रमें डालनेपर डूब जाता था। देवताओंके प्रार्थना करनेपर विष्णुने कच्छप (कछुवे) का रूप धारण करके समुद्रमें तैरकर मन्दराचलको अपने पीठपर थामा। तब वासुकी नागकी रस्सी बनाके लपेटकर एक ओर देवता और दूसरी ओर दानव मिलकर समुद्र मथन किये। जिससे—"श्री मणि रम्भा वारुणी, अमी शङ्ख गजराज ॥ धन्वन्तरि शशि धेनु धनु, कल्प वृक्ष विष बाज ॥" ऐसे चौदह रत्न निकले। इत्यादि वर्णन किया है। पुराणोंमें इन सब कथाओंका काल्पनिक वर्णन विस्तारसे किया है। अधिक लोग उन कथानकोंको जानते ही हैं और न जाननेवाले अन्यत्र देख-पढ़-सुनकर जान ही जायेंगे। इस कारणसे और विस्तारमें खास लाभ न होनेसे उनका सारांश-मात्र यहाँपर दरशा दिया गया है ॥ ३ ॥

है दयाल द्रोह नहिं वाके। कहहु कौनको मारा ? ॥४॥

कल्याणकारी सद्गुरुदेव तो परम दयालु करुणामय, दया-क्षमादि सर्व सद्गुण सम्पन्न हैं। चारों खानियोंके छोटे-बड़े देहधारी किसी भी जीव-मात्रपर द्रोह-डाह, वैर, ईर्षा, द्वेषादि जलन-विकार उनके पासमें किञ्चित्, लवलेशमात्र भी नहीं है और कभी नहीं रहता है। इस कारणसे वैसे दयालु सत्पुरुष कहो तो भला ! किसको मारेंगे ? वा उन्होंने किसको हत्या करके मारा है ? सो कहो ! कभी किसीको द्रोह करके नहीं मारा है और वैसा वे किसीको नहीं मारेंगे वा मार नहीं सकते। दयालुका काम तो सदा दया करके जीव-मात्रकी रक्षा करनेका होता है। अवतारी कहानेवाले सब तो निर्दयी काल बने थे। इसलिए द्रोहकर उन लोगोंने जीव-हत्या करके कई लोगोंको मारा था। यदि वे सबके घट-घटमें व्यापक होते, तो उनकी बुद्धि पलटाकर सुबुद्धि बना देनेसे ही हो जाता था। फिर उनका वध ही कर डालनेका क्या काम

था ? अतः वे सब भी कर्माध्यासी एकदेशी बद्ध जीव ही थे—यह सिद्ध हुआ। हितेच्छुक मनुष्योंको सदा दयालु होकर सबपर दया ही रखना चाहिये ! ॥ ४ ॥

वै कर्त्ता नहिं बराह कहाये। धरणि धर्‌यो नहिं भारा ॥ ५ ॥

पुराणोंमें लिखा है—'हिरण्याक्ष' नामक दानवने एक समयमें सर्व पृथ्वीको ही चुराकर उठाके ले जाकर पातालमें विष्ठाका घेरा, परकोटा बना करके छिपा दिया। तब देवताओंके विनय करनेपर विष्णुने बराह = सूअरका रूप बनाकर पातालके विष्ठासे पृथ्वीको बाहर निकाल करके समुद्रके ऊपरमें ले आया और अपने दोनों दाढ़ोंके बीचमें पृथ्वीको धारण करके रक्खा। पुनः युद्ध करनेको आनेसे उसी बराहरूपसे हिरण्याक्ष दानवको जानसे मार डाला। इत्यादि कल्पित कथा वर्णन है। इस प्रकार जो बराह अवतार कहाये, वे भी जड़-चेतनरूप सारे संसारको बनानेवाले कर्त्ता-धर्त्ता नहीं हैं। क्योंकि जड़-चेतनका मूल स्वरूप और समस्त भू-मण्डल एवं खगोल-मण्डल अनादिकालके स्वयं सिद्ध हैं। पृथ्वी, समुद्र, पाताल, विष्ठा, हिरण्याक्ष और बराह इत्यादिका वर्णन होनेसे विश्व अनादि ठहरता है। अतएव बराह जगत्‌का कर्त्ता नहीं है और उसने धरणि=समूचे भूगोल पृथ्वीका भारा = वजन, बोझा उठा करके धर्‌यो नहिं = अपने दोनों दाढ़ोंके बीचमें धारण भी कभी किया नहीं है। यदि वह पृथ्वीको धारण करता, तो अपने-आप कहाँ खड़े रहता ? किन्तु भूगोल-मण्डल तो स्वयं गुरुत्त्वाकर्षणशक्तिसे निराधारमें ठहरकर अनादिसे सूर्यके चारों ओर भ्रमण कर रहा है, यही बात सिद्ध है। इस कारणसे उसने धरणिका भार भी धरा नहीं है और वह कर्त्ता भी नहीं है। ऐसी-ऐसी वाणी-कल्पना आदिको बनानेवाला कर्त्ता जो है, सो यही मानुषरूप जीव ही है। ऐसा समझकर भ्रम-कल्पनामें नहीं पड़ना चाहिये ! ॥ ५ ॥

ई सब काम साहेब के नाहीं। झूठ कहैं संसारा ॥ ६ ॥

मधु-कैटभको मारना, मछली और कछुवे होना, शङ्खासुरका संहार करना, सूअर बनना और पृथ्वीका बोझा ढोना इत्यादि, यही सब काम अवतारीलोगोंने किया; ऐसा वर्णन है। परन्तु ये सब बन्धनोंके काम मुक्तिदाता दयालु सद्‌गुरु साहेबके नहीं हैं। श्रेष्ठ साहेब वैसा हीन बन्धनका काम कभी नहीं करते। अतएव वैसा तामसी, निर्दयी काम करनेवाले अवतारीलोग श्रेष्ठ साहेब भी नहीं हैं और हो भी नहीं सकते। उनको श्रेष्ठ कर्त्ता-धर्त्ता बतलानेवाले संसारी लोग संसारमें सरासर झूठा ही कहते हैं। वैसी मनगढ़न्त बिलकुल झूठी बात संसारमें अबोध लोगोंको भुलानेके वास्ते भ्रमिक गुरुवा लोगोंने ही कही है और झूठी बात ही कह रहे हैं। परखकर उसके भेदको जान करके भ्रमसे अलग होना चाहिये ! ॥ ६ ॥

खम्भ फोरि जो बाहर होई। ताहि पतीजे सब कोई ॥ ७ ॥
हरणाकुश नख वोद्र बिदारा। सो कर्त्ता नहिं होई ॥ ८ ॥

भक्त-पुत्र प्रह्लादकी विष्णुभक्तिसे नाराज होकर हिरण्यकशिपुने अत्याचार करके उसे बहुत दुःख दिया, सताया। एक समय स्वयं उसे मारनेको खड़ा हुआ, तब प्रह्लाद

भक्तकी रक्षाके वास्ते विष्णुने नृसिंह अवतार धारण किया, बैठककी खम्भा फोड़कर बाहर प्रकट हुआ। हिरणाकुशको पकड़कर, उसे अपनी गोदमें लेटाकर तीक्ष्ण नखोंसे उसका वोद्र=पेट, विदारा=फाड़ करके उसे मार डाला। उसकी आतें निकालके अपने गलेमें पहन लिया। इत्यादि वर्णन है। इस प्रकार छल-कपटकी युक्तिसे खम्भाको तोड़-फोड़कर कमरके ऊपर आधाभागमें सिंहका शिरयुक्त खाल ओढ़कर, वैसा छल-कपटरूपमें जो नृसिंह बन बाहर प्रकट हुआ, अज्ञानी अविचारी, अबोध जन सब कोई उसे ही 'सच्चा भगवान् परमेश्वरका अवतार हुआ' समझकर विश्वास किये और कर-करा रहे हैं। विवेकसे छानबीन न करके अन्ध भक्त सब कोई वैसी बातोंको पतिया लेते हैं। यह तो निम्न उदाहरणवत् हुआ—

जैसा कि तुरुकदेशमें मुसलमानोंका अन्धविश्वास प्रकटरूपसे जाहिर करानेके लिए एक महात्मा फकीरने रत्न-जड़ित एक हाथ लम्बा एक जूता और एक कटोरी गुप्तरूपसे छिपाकर रात्रिमें ले जा करके वहाँके प्रसिद्ध जूमा मसजिदमें रख आया। सवेरा होनेपर वहाँके मुसलमान लोग नमाज पढ़नेको उस मसजिदमें जब गये, तब उस एक ही विचित्र जूता और कटोरीको देखकर आश्चर्य-चकित हो गये। सबने उसे खूब गौरसे देखकर यही निश्चय किया कि 'भाई! यह रत्न-जड़ित जूता किसी मनुष्यका तो हो नहीं सकता है। क्योंकि यह एक हाथ लम्बा है। ऐसा जूता कोई इन्शान तो नहीं पहन सकता। इस कारण अवश्य ही यह जूता खुदातालाका होगा। यह कटोरी भी खुदाकी ही होगी। रातमें खुदा इस पवित्र मसजिदमें उतर आए होंगे और सबेरे जाते समय ये दोनों चीज छूट गई होंगी। अथवा मेहरवानीकर हम लोगोंको पाक करनेके लिए ये दोनों चीज खुदा यहाँ छोड़ दिये होंगे।' इत्यादि कल्पना बढ़ा करके वे सब वही कल्पित बात विश्वास कर लिये। तब हरेकने आकर उस जूता और कटोरी-को मुखसे चूमकर शिर, आखोंसे लगाते गया। शहरभरमें खबर फैल गई। सब आ-आकर जूताको चूमते गये। दूसरे दिन वे ही महात्मा आकर लोगोंसे पूछने लगे—भाई! रात्रिमें मेरा एक जूता और एक कटोरी चोरी हो गयी है। शहरके बाहर धर्म-शालामें मैं सोया था। कौन चुरा ले गया होगा? तुम बता सकते हो? अन्तमें वहाँके राजाके पासमें फिर्याद ले गये। राजाने पूछा—वह जूता और कटोरी किस प्रकारकी थी? महात्माने अपने पासका वैसा ही दूसरे पैरका एक जूता दिखाया और कहा—जूता इसीका जोड़ा था और वह कटोरी मेरे पेशाब करनेकी थी। उनका पता लगवा करके मुझे दिला दीजिये! मैं परदेशी हूँ, इत्यादि कहा। मसजिदमें कल ही एक जूता, एक कटोरी मिलनेकी बात राजा भी सुन चुके थे। इससे वहाँसे वे जूता, कटोरी मँगवाके मिलाके देखे। ठीक मिल गया। महात्माने भी 'ये जूता-कटोरी मेरे ही हैं' कहकर सबके सामने पहनकर दिखलाया। उनके पैरमें ठीक बैठ गया। वैसा देखकर सबको अचरज हुआ। महात्मा तो चले गये। तब सब मुसलमान लोग अपनी गलती समझ पछताकर तोबा! तोबा! करने लगे। आदमीका जूता और पेशाब करनेकी कटोरी चूमकर हम भ्रष्ट हुए समझकर खिन्न हुए, हाथ मलते रह गये। तबसे खुदाको बेचून-बेनमून, लामुकाम होनेका पक्का यकीन कर लिये; इत्यादि।

इसी प्रकार खम्भा फोड़कर जो बाहर हुआ, उसी बातको सब कोई प्रतीत किये। वह क्या कैसा है ? इसबारेमें कोई विवेक-विचार ही नहीं करता है। अन्धविश्वाससे आँखें मूँदकर सब वैसा ही मानते जाते हैं ? ॥७॥ और जिसने हरणाकुश = हिरण्यकशिपु के, वोद्र = पेटको अपने तीखे नखोंसे बिदारा = फाड़ दिया, उसे जानसे मार डाला, सो = वह नृसिंहरूप अवतार भी सर्व जगत्का कर्त्ता नहीं है और वह कर्त्ता हो भी नहीं सकता है। क्योंकि उसके प्रकट होनेके पहलेसे ही सर्व चराचर जगत् मौजूद था। तब वह कर्त्ता किसका ? और कैसे हो सकेगा ? हो नहीं सकेगा ॥ ८ ॥

बावनरूप न बलिको जाचै। जो जाचै सो माया ॥ ९ ॥
बिना विवेक सकल जग भरमें। माया जग भरमाया ॥१०॥

दानवोंका राजा बलि यज्ञ करके सबको मुँहमाँगे महादान देने लगा। यह देखकर देवता डर गये। ऐसा ही महादान देता रहेगा तो अन्तमें हमारा स्वर्गलोक और इन्द्रासन भी वह छीन लेगा, ऐसा सोचकर भयभीत हो सब देवताओंने विष्णुसे पुकारा किया और राजा बलिके यज्ञमें विघ्न कर दीजिये—कहा। इसी कारणसे विष्णु कश्यप-पुत्र वामन = बावन अंगुलके शरीरयुक्त बौना होकर पैदा हुए। राजा बलिके यज्ञमें वामन ब्रह्मचारीके रूपमें गये। छल-कपटसे तीन पैर पृथ्वी राजा बलिसे माँगकर दानमें ले लिये। पश्चात् पैर बढ़ाकर तीन पैरमें तीन लोक नापकर बलिराजाको बाँध करके पातालमें भेज दिये। इस तरह दान लेकर उलटा धोखा दिये। इत्यादि कहा है।

पारखी श्रेष्ठ सद्गुरु साहेब इस प्रकार बावनरूपमें भी प्रकट नहीं होते, तथा बलिराजासे भी भिक्षुक बनकर याचना करके नहीं माँगते और दान लेकर धोखा देके बलिराजाको भी नहीं बाँधते। यह सब काम श्रेष्ठ साहेबका नहीं है। बावनरूप बनाकर जिसने बलिराजासे याचना की, वह श्रेष्ठ साहेब नहीं है। इस रीतिसे जो जिसने बलिसे जाचै = याचना की, माँगा, सो वह तो माया = छली-कपटी, ब्राह्मणरूपमें धोखा देनेवाला गुरुवा था, वाणीका मायाजाल फैलानेवाला भ्रमिक था। वह भी कर्त्ता हो नहीं सकता है ॥९॥ पारखबोध न होनेसे विवेक-विचारके बिना ही मनमाने कल्पना फैलाकर जगत्के सकल नरजीव धोखेमें भरमें, भूले, भटक रहे हैं। उन सबको भी माया = छली-कपटी, प्रपञ्ची गुरुवा लोग ही अनेक प्रकारकी रोचक-भयानक कल्पित वाणी सुना करके जगत्के सब मनुष्योंको खूब भ्रमाये, भुलाये, फँसाये और भी फँसाते, भ्रमाते ही जा रहे हैं। वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादिकी सब वाणी-कल्पना भी उन्हीं मायारूप गुरुवा लोग ही बनाकर संसारमें फैलाये हैं। वैसे पहलेसे मायाने ही जगत्को भरमाया। इसलिए जगत्के सब जीव बिना विवेक भ्रममें पड़ते बँधते जा रहे हैं। बिना पारख वह भ्रम-भूल किसीकी नहीं मिटती है। परखकर उस भ्रम-भूलको मिटाना चाहिये ! ॥ १० ॥

परशुराम क्षत्री नहिं मारे। ई छल माया कीन्हा ॥११॥
सतगुरु भेद भक्ति नहिं जाने। जीवहि मिथ्या दीन्हा ॥१२॥

सहस्रार्जुनके मागनेपर भी जमदग्निने कामधेनु गौ उसे नहीं दी। इसीसे लोभ और क्रोधके कारणसे जमदग्निकी हत्या करके कामधेनु गौको हरणकर सहस्रार्जुनने ले गया। घरमें आनेपर यह हालत एवं माता रेणुकाका शोक देख-सुनकर अत्यन्त क्रोधावेशके कारण परशुरामने जाकर सहस्रार्जुनको ससैन्य फरशेसे काटकर मार डाला। पश्चात् जितने क्षत्रिय उनके सामने युद्ध करनेको आये, उन सबको भी मार गिराया। इस तरह इक्कीस बार क्षत्रियोंको मारकर निःक्षत्रिय करके सब भूमि ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया। इत्यादि वर्णन किया है।

इस कारण परशुराम होकर जिसने क्षत्रियोंको मारा, सो वह श्रेष्ठ सद्गुरु साहेब नहीं है। श्रेष्ठ साहेब तो कभी परशुराम भी नहीं हुए और किसी क्षत्रियको भी नहीं मारे। यह मार-काट, हत्या, हिंसा, अङ्गभङ्ग,तोड़-फोड़ादि क्रूर कर्म करने-करानेका काम तो माया=छली-कपटी, क्रूर, तामसी लोगोंका है। इसलिए यह छल-बल-कपट करके माया=गुरुवा लोगोंनेही युद्ध किया-कराया है। श्रेष्ठ साहेब वैसा कर्म कभी करते-कराते नहीं हैं ॥११॥ अबोध मनुष्योंने जिनको सद्गुरु मानकर भक्ति-भाव किया, उन ब्रह्मादि त्रयदेव गुरुवा लोगोंने तो और भी जीवोंको भ्रमा-भुलाकर मिथ्या धोखेमें ही लगा दिया। उन ब्रह्मादिकी वाणी-कल्पनाका यथार्थ भेद किसीको भी जानने-समझनेमें नहीं आया। इसीसे सब लोग मिथ्या धोखेके भ्रममें भूले रहे। अब जो जिज्ञासु नरजीव सच्चे पारखी सन्त सद्गुरुको पहचानकर सत्य प्रेम, भक्ति-भावसे उनकी शरण, सत्सङ्गमें लगे रहेंगे, वे ही खानि-वाणीके सब सिद्धान्तोंके भेदको अच्छी तरहसे जानेंगे, समझेंगे-बूझेंगे। नहीं जाननेसे प्रथम जो अपने जीवको मिथ्यामें लगा दिये थे, भेद जान लेनेपर पश्चात् उस मिथ्या धोखेसे न्यारे हो जावेंगे। फिर उनको कोई भुला नहीं सकेंगे। पारखी सद्गुरुके पारखका भेद और चैतन्य साधु-गुरुकी भक्तिका यथार्थ भाव जो नहीं जाने वा जान नहीं पाते, वे अबोध लोग अपने सहित सब जीवको मिथ्या मानन्दीमें ही लगा दिये वा लगा देते हैं और असत्यमें ही लग-लगा रहे हैं। अतः सद्गुरुसे पारखबोध प्राप्त करके, सब भेदको जानकर चैतन्य-भक्ति करके सत्यमें लगकर अपना उद्धार कर लेना चाहिए ! ये भावार्थ ॥ १२ ॥

सिर्जनहार न ब्याही सीता। जल पषाण नहिं बन्धा ॥१३॥
वै रघुनाथ एक कै सुमिरै। जो सुमिरै सो अन्धा ॥१४॥

तन-मन, प्राण-प्रकृति, स्थूल-सूक्ष्म, खानि-वाणी, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, ब्रह्म-जगत् इत्यादि सबको सृजना करनेवाला, वैसा सिर्जनहार तो स्वयं चैतन्य जीव ही है; परन्तु उस सत्य चैतन्य-स्वरूपको छोड़कर और ही कोई निर्गुण-निराकार सर्वशक्तिमान् ब्रह्म-परमात्मा, परमेश्वर जगत्कर्त्ता सिर्जनहार जो माना है, सो मिथ्या कल्पनाकी भ्रान्ति है। वैसा कल्पित सिर्जनहार कभी रामचन्द्र हुआ भी नहीं और उसने सीतासे विवाह भी नहीं किया है। समुद्रके जलमें पषाण=पत्थरका पुल भी उसने नहीं बाँधा। और जो दशरथके पुत्ररूपमें देह धारण करके आया, रामचन्द्र नाम धराया; जिसने सीतासे विवाह किया, समुद्रके जलमें पाषाणका पुल बाँधा; इत्यादि व्यावहारिक कार्य किया,

वह तो एक जड़ाध्यासी आवागमनमें पड़ा हुआ बद्ध जीव ही था। ऐसा विवेक करके जानना चाहिए ! केवल मिथ्या महिमा बढ़ा देनेमात्रसे वह सत्य हो नहीं सकता है ॥१३॥ इस कारणसे वै=कल्पनासे माने हुए निराकार ब्रह्म-ईश्वरादिको और रघुनाथ= रघुकुलके नाथ माने गये साकार, देहधारी रामचन्द्रको एक कै=एक रूपमें ही समझ करके जो नित्य सुमिरै=स्मरण,भजन, नाम-जप,ध्यान करते हैं,जो साकार-निराकार, सगुण-निर्गुण, बद्ध-मुक्त, ब्रह्म-जगत सबको एक ही समझते हैं; वैसे गोलमाल करके जो उसका स्मरण, याद करते-कराते हैं, सो वैसे असत्यरूपसे सुमिरण करनेवाले वास्तवमें सरासर अन्धे, पारखहीन अविवेकी बने हैं। इसीसे उनको सत्यासत्यका ज्ञान नहीं होता है। मनमाने कल्पनासे असत्यको मानते-मनाते हुए भ्रम-धोखेमें भूले पड़े रहते हैं। अथवा मुक्त चेतनको और बद्ध रघुनाथको एक ही समझ करके जो सुमिरण करते हैं, सो वैसे लोग भी अन्धे हैं। अथवा पारखको और ब्रह्म, आत्मा, राम, कृष्णादिको एक समझनेवाले भी अविवेकी अन्धे बने हैं। अथवा मुक्तिदाता बन्दीछोर पारखी सद्गुरुको और भ्रमिक सब गुरुवा लोगोंको जो एक समझते हैं, वैसे लोग भी अन्धे हो रहे हैं। अतएव यथार्थ परीक्षा करके सब भ्रम-भूलको मिटाकर, निर्मल दृष्टि प्रकाश करके पारखपदमें स्थिति-ठहराव किये रहना चाहिए ! ॥ १४ ॥

गोपी ग्वाल न गोकुल आया। कर्ते कंस न मारा ॥१५॥
है मेहरवान सबहिन को साहेब। ना जीता ना हारा ॥१६॥

निर्विकार शुद्ध मुक्त चेतन स्वरूप कभी विकारी होकर देहधारी अवतारी नहीं बनता। मुक्तसे बद्ध न कभी हुआ है न होता है। इस कारणसे वैसा शुद्ध चेतन कभी कृष्ण बनके गोकुलमें भी नहीं आया और गोपिकाओं एवं ग्वालबालोंके सङ्ग-साथमें भी कभी खेल, क्रीड़ा, विलास नहीं किया। हाथसे उसने कंशको भी नहीं मारा। अथवा निराकार माना हुआ ब्रह्म-ईश्वरादि कर्त्ता भी गोकुलमें नहीं आया। गोपी-ग्वाल भी नहीं हुआ और उनके साथमें भी वह नहीं खेला। उस कर्त्तेने कंसको भी नहीं मारा। अतएव जड़ाध्यासी बद्ध जीव ही कर्मानुसार देह धारण करके देवकीके गर्भसे जन्म लिया, वसुदेवके द्वारा उठाकर गोकुल ले आया गया, 'कृष्ण' नाम धराया, नन्द-यशोदाके घरमें पालन-पोषण हुआ और गोकुलकी गोपिकाएँ एवं ग्वाल बालकोंसे खेल-विलास इत्यादि विषय-भोगोंके कार्य करके, युवा होनेपर मथुरामें जाकर कंसको पकड़कर जानसे मार डाला। ऐसे बन्धनके कार्य बद्ध जीव ही करते रहते हैं। इसलिए कृष्णजी भी श्रेष्ठ साहेब नहीं हैं ॥१५॥ क्योंकि पारखी सन्त सद्गुरु श्रेष्ठ स्थितिवान् जीवन्मुक्त साहेब जो हैं, सो वे तो मेहरवान्=परम दयालु दयाके स्वरूप, करुणाके सागर ही हैं। निज-पर दयाको वे पूर्णरूपसे पालन करते हैं। वे सभी जीवोंके ऊपर सदा दया ही बनाये रखते हैं। इसलिए वे समस्त प्राणी और मनुष्योंमें सर्वश्रेष्ठ हैं। सबोंको दया करनेवाले श्रेष्ठ साहेब सदा जीत-हारसे परे रहते हैं। अतः उन साहेबने न तो किसीसे युद्ध करके जीता और न किसीसे हारा। मारकाट, हार-जीत, राग-द्वेषादि विकारसे उन साहेबको कोई काम वा प्रयोजन ही नहीं रहता

है। वे स्वयं जीवन्मुक्त होकर, जिज्ञासुजनोंको भी पारखबोध देकर बन्धन छुड़ा करके मुक्त कर देते हैं। उनकी ही शरण, सत्सङ्गमें लगकर पारखस्थिति बना करके अपना कल्याण कर लेना चाहिए ! ॥ १६ ॥

वै कर्त्ता नहिं बौद्ध कहावै। नहीं असुर सङ्घारा ॥१७॥
ज्ञानहीन कर्त्ता कै भरमें। माये जग भरमाया ॥१८॥

हिन्दूलोग जगन्नाथको ही बौद्ध अवतार मानते हैं। जिसने रक्तबीज आदि नाना असुरोंको वध करके संहार किया और अपने पुरीधाममें जाति-पाँतिका भेद-भाव मिटाकर सबको एकसमान बनाया—इत्यादि कहा है। इस प्रकार जिसने असुरोंका संहार किया और बौद्ध कहलाया, वह भी जगत्कर्त्ता नहीं है। अथवा निराकार माना हुआ कर्त्ता कभी बौद्ध भी नहीं कहाता और असुरोंका संहार भी कभी नहीं करता। अथवा वे श्रेष्ठ साहेब कभी कर्त्ता-धर्त्ता भी नहीं होते, बौद्ध भी नहीं कहलाते और किन्हीं असुरोंका भी कभी संहार नहीं करते ॥१७॥ ऐसी यथार्थ बातको न जाननेवाले ज्ञानहीन, बुद्धि-विचारके हीन, पारखहीन अबोध, अज्ञानग्रसित भ्रमिक लोग नाना प्रकारसे मनगढ़न्त अनुमान-कल्पनाको फैला करके जिस-तिसको कर्त्ता-धर्त्ता मानकर कोई एक जगत्कर्त्ताकी कल्पना कर-करके भ्रममें पड़े, भटके, धोखेमें भूल गये। परन्तु माये=माया-मोह, वाणीकी कल्पना दृढ़ाकर सब जीवोंको बाँधनेवाले कालरूप महामाया बने गुरुवालोगोंने ही प्रथमसे अबतक अनेक प्रकारसे सारे जगत्-जीवोंको खूब भ्रमाया, भुलाया, फँसाया, भटकाया, नाना तरहसे नाच नचाया, भव-बन्धनोंमें जंकड़कर बाँधा और अभी भ्रमाकर वैसे ही बाँध रहे हैं। सब दोष उन्हीं मायारूप गुरुवा लोगोंका ही है, तो भी ज्ञानहीन लोग ठीकसे उनको पहचानते नहीं। इसीसे भ्रम-चक्रमें पड़कर आवागमनके दुःख भोग रहे हैं। कोई विरले ही जिज्ञासुजन पारख गुरुके शरणागत हो पारखबोध प्रकाश करके उक्त भ्रम-भूलसे छूट जाते हैं। वे ही भवबन्धनसे छूटते हैं ॥ १८ ॥

वै कर्त्ता नहिं भये निकलङ्की। नहिं कालिङ्गहि मारा ॥१९॥
ई छल-बल सब माया कीन्हा। जत्त-सत्त सब टारा ॥२०॥

निःकलङ्की अवतार होकर 'कालिङ्ग' नामक दानवको मारा वा मारेगा, ऐसा कहते हैं। परन्तु वह भी कर्त्ता नहीं है वा नहीं हो सकता है। निराकार-निर्गुण व्यापक माना हुआ कर्त्ता भी न कभी निःकलङ्की हुआ न होगा। और न कभी उसने कालिङ्गको ही मारा न मारेगा। वह कुछ कार्य करनेवाली वस्तु ही नहीं है। अथवा वे श्रेष्ठ सद्गुरु साहेब भी वैसा कर्त्ता न कभी हुए न होते हैं। निःकलङ्की भी वे नहीं हुए न होंगे और कालिङ्गको भी उन्होंने नहीं मारा, न मारेंगे ही। साहेब तो सदा सबकी रक्षा ही करते हैं। अतः निःकलङ्की कभी श्रेष्ठ साहेब हो नहीं सकता है। वह तो एक मायाका रूप है ॥१९॥ इस प्रकारके ऐसे-ऐसे छल-बल-कपट, धोखाधड़ी, मारकाट, हत्या, पाप, लोभ, काम, क्रोध, मोह, मद-मत्सर, ईर्षा-द्वेष, द्रोह, विनाश, संहार इत्यादि समस्त

कर्म-अकर्म मायारूप अवतारी बने लोगोंने और जीवोंको बन्धन देनेवाले माया= गुरुवा लोगोंने ही बारम्बार किया-कराया और वैसे ही कार्य कर-करा रहे हैं। इसी कारण उन लोगोंने मायाजाल फैला करके जत्त=यति लोगोंके यत, त्याग-वैराग्यादि सद्गुणोंको, और सत्त=सती लोगोंके सतीत्त्व, सत्यवादियोंके सत्य इत्यादि हितकारी गुण-लक्षणोंको भी सबके पाससे छीनकर सब-के-सब विनाश करके टार दिया, अलग, खाली करा दिया। उसके बदले समस्त दुर्गुण लाकर भर दिया। नारद, शारदा, मत्स्येन्द्रादिका जत्त टार दिया, वृन्दादिका सत्त टारा, युधिष्ठिरादिका सत्य-वाद टरा दिया। माया ऐसी प्रबल बनी है। मोटी-झीनी मायाके सर्व जालोंसे कोई बिरले ही पारखी सन्त न्यारे होकर बचे रहते हैं। पारखी सद्गुरुकी शरण, सत्सङ्गमें दृढ़तासे लगे रहनेवाले जिज्ञासुजन भी गुरुकी दया और पारखबोधके बलसे सब मायाजालोंसे छूटकर निर्बन्ध मुक्त हो जाते हैं। वैसा ही होना चाहिए ! ॥२०॥

दश अवतार ईश्वरी माया। कर्त्ता कै जिन पूजा ॥२१॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! उपजै खपै सो दूजा ॥२२॥८॥

मत्स्य, कच्छप, बाराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बौद्ध और निः-कलङ्की; ऐसे नामवाले दश अवतार जो हुए, वे सब ही माया=कायाके साथ ईश्वरी= ऐश्वर्य, बलादि संयुक्त विशेषरूपवाले छली-कपटी, हिंसकी, अपना कार्य साधनेवाले स्वार्थी ही बने थे। अनेक युक्ति-प्रयुक्तिद्वारा सब तरहसे सब जीवोंको जो बन्धन दिये वा देते हैं, उनको ही माया, गुरुवा, अवतारी, सिद्ध पुरुष, कार्य साधनेमें सिद्धहस्त, जीवोंके काल इत्यादि नामोंसे कहा जाता है। छूटनेको कठिन बन्धनदायी जो हैं, उनको ही ईश्वरी माया कही गयी है। दश अवतार ईश्वरी मायाकी मिथ्या मानन्दी, असत्य पक्ष अबोध लोगोंको जो दृढ़ हो गया है, सो बिना पारख सहजमें नहीं छूटता है। उसे हे मनुष्यो ! अब अच्छी तरहसे समझकर परखो !

दश अवतारको तुमलोग जो श्रेष्ठ समझकर मान रहे हो, वह तो जीवोंको बन्धन देनेवाली ईश्वरी मायाके रूप, वाणी-खानिका महाजाल-जञ्जाल है। उन्हीं दश अव-तारको जगत्का कर्त्ता-धर्त्ता-हर्त्ता, सुख-दुःखदाता, उद्धार करनेवाले—ऐसी कल्पना कर-करके मानकर, जिन-जिन अबोध लोग उनकी जड़ मूर्ति-प्रतिमादि बना-बना-कर पूजा, आरती, वन्दनादि किये, उनका अज्ञान, दुःख, दरिद्रता एक भी नहीं मिटी। इस तरह कभी नहीं मिटेगी। सब मिथ्या धोखेमें पड़कर भूल गये। जिनको दश अवतार मानते हो, सो वे अब कहाँ हैं ? अध्यासवश चौरासी योनियोंमें देह धारणकर वे स्वयं ही दुःख भोग रहे हैं। तव उनकी आशासे तुम्हें क्या सुख मिलेगा ? कुछ नहीं। तुम वैसे ही जन्म-मरणमें पड़ते रहोगे। नाहक मिथ्या कल्पनामें क्यों भूलते हो ? अब तो जाग्रत होकर सत्यकी पूजामें लगो ! ॥२१॥ सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! मेरे यथार्थ निर्णयको अब शान्त चित्तसे सुनो ! समझो ! बूझो ! जो सत्य स्वरूप है, सो तुम्हारे जीवका चैतन्य स्वरूप ही है। उससे परे और कोई सत्य वस्तु नहीं है। उपजै=जो उत्पन्न होता है, बनता है, जन्मता है, प्रकट होता है और *

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! बोले ते जग मारे ॥१॥

अनबोले ते कैसक बनि है ? शब्दहि कोइ न विचारे ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! प्रथम आरम्भमें जो ब्रह्मादि, सनकादि बड़े-बड़े ज्ञानी निर्णय करके बोले, सो सब अनुमानमें मारे गये। ये अर्थ ॥१॥ जब बोलते-बोलते थके औ बुद्धि ना चली, तब अनुमान किये कि मैं सर्वसाक्षी अबोल आत्मा। तो ए बोला जब ना भया, बानी न भया तो यह बानी-बोलका साक्षी। तब यह अनबोला आत्मा कैसे होगा ? 'अनबोला अनुमान' इस शब्दको कोई विचार नहीं करता, धोखेमें जाता है। ये अर्थ ॥२॥

पहिले जन्म पुत्र का भयऊ। बाप जन्मिया पाछे ॥३॥

बाप-पूतकी एकै नारी। ई अचरज कोइ काछे ॥४॥

पुत्र कहिये जीवको, सो पहिले पैदा हुआ। औ बाप कहिये ब्रह्म, सो पीछे पैदा हुआ। जब जीवने अनुमान किया, तब ब्रह्म सिद्ध हुआ। येअर्थ ॥३॥ फिर बोला कि जीव औ ब्रह्म—दोनों इस जगत्‌में हैं। ये आश्चर्य। जो कहते हैं कि

---

* आता है, सो एकदिन अवश्य ही खपै = विनाश होता है, बिगड़ता है, मरता है, गुप्त होता है और चला भी जाता है। इसी तरह अध्यासवश दशों अवतारमें जन्म लेकर जो जीव आये थे, वे सब एक-एक दिन मर-मरकर पुनः चौरासी योनियोंमें ही चले भी गये। आज उनकी पूजा करनेसे तुम्हारा कुछ हित-कल्याण नहीं होगा। वे दूसरे ही थे। तुम दूसरे ही हो। विजातिका मेल कैसे होगा ? बनने-बिगड़नेवाले जड़ शरीरका रूप अलग ही है और अविनाशी चैतन्य जीव दूसरा ही है। इसका विवेक करो ! एवं पैदा होकर विनाश होनेवाला अलग है और अविनाशी पारख उससे अलग दूसरा ही है। वे दोनों कभी एक हो नहीं सकते। जड़-चैतन्यके स्वरूप सदा भिन्न-भिन्न विजातीय ही बने रहते हैं। जड़ाध्यास मिटानेसे ही निज चैतन्य पारख-स्वरूपकी स्थिति होती है। समयानुसार दश अवतार उत्पन्न होकर विनाश भी हो गये। उन किसीको भी पारख-स्वरूपका बोध प्राप्त नहीं हुआ। इसीसे भव-बन्धनसे भी वे कोई नहीं छूटे। उनकी जड़-भक्तिसे अब किसी जीवकी मुक्ति हो नहीं सकती है। अतएव पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गद्वारा विवेक-विचार करके ब्रह्म, ईश्वर, खुदा, दश अवतार, भूत, प्रेत, देवी-देवता इत्यादिकी मिथ्या मानन्दी भ्रम-भूलको सर्वथा मिटाकर सबसे न्यारा हो निज सत्य स्वरूप पारखपदमें ही अटल-अचल, स्थिर होकर जीते ही मुक्त हो जाओ ! ये अभिप्राय ॥ २२ ॥ ८ ॥

पिण्डमें जीव औ ब्रह्माण्डमें ब्रह्म। ये आश्चर्य कोई बूझै। औ पुत्र कहिये मानुष, बाप कहिये ब्रह्मा। सो मानुष पहिले पैदा हुआ। पीछे ब्रह्मा पैदा हुआ। ब्रह्मा भी स्त्रीसे पैदा हुआ औ मानुष भी स्त्रीसे पैदा होते हैं। ये आश्चर्य। औ पुत्र कहिये ब्रह्मा औ पिता कहिये विष्णु। सो ब्रह्मा पहिले पैदा हुआ, पीछे विष्णु पैदा हुआ—एक अष्टङ्गीसे। ये अर्थ ॥ ३ ॥ ४ ॥

दुन्दुर राजा टीका बैठे। विषहर करै खवासी ॥ ५ ॥
श्वान बापुरा धरिन ढाकनो। बिल्ली घरमें दासी ॥ ६ ॥

दुन्दुर कहिये वेद, राजा कहिये ब्रह्म। जो वेदने दृढ़ाया, सोई टीका बैठा, गद्दी बैठा। यह सबको निश्चय हुआ, तब गुरुवा लोग सब गुलामी करने लगे ॥५॥ श्वान कहिये ॐकार, ॐकार कहिये शब्दको। सो शब्दका भ्रम जीवपर ढाँका, भ्रमाया। ये अर्थ। बिल्ली कहिये बानीको। सो नाना प्रकारकी बानी घट-घटमें पैठी, तब ये जीव दूसरा पुरुष अनुमान करके धोखेका दास बना। ये अर्थ ॥ ६ ॥

कार-दुकार कार करि आगे। बैल करें पटवारी ॥ ७ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! भैंसे न्याव निबेरी ॥ ८ ॥९॥

कार कहिये क्षर, दुकार कहिये अक्षर। सो क्षर-अक्षरसे रहित निःअक्षर बोला। इस प्रकारसे गुरुवा लोगोंने सबको दृढ़ाया ॥७॥ सो निःअक्षर कहाँ है? सो तो जीवका अनुमान जानिये! जब अक्षरमें नहीं आया, तब अक्षरहीसे निःअक्षर बोला। तब निःअक्षर कैसे सिद्ध हुआ? मिथ्या धोखा। ये अर्थ। देखो—नाना प्रकारके भय लगायके गुरुवा लोगोंने यह न्याय निबेरा कि सब अक्षरका जाननेवाला निःअक्षर है। ये अर्थ ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १० ॥ ❀ ॥

सन्तो ! राह दुनों हम दीठा ॥ १ ॥
हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानें। स्वाद सबनको मीठा ॥ २ ॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! दोनों राह हमने देखा- ॥१॥ जो हिन्दू-तुरुक हटा नहीं मानते। अपना-अपना स्वाद सबको मीठा लगा। ये अर्थ ॥ २ ॥

हिन्दू बरत एकादशी साधे। दूध सिंघारा सेती ॥ ३ ॥
अन्नको त्यागे मनको न हटके। पारन करे सगौती ॥ ४ ॥

हिन्दू एकादशी व्रत साधते हैं ॥३॥ अन्नको त्याग करते हैं, मनको नहीं हटकते। तो दश इन्द्री औ ग्यारहवाँ मनको स्थिर करै, सो एकादशी। ये अर्थ* ॥४॥

---

* टिप्पणीः—शब्द १० की ३-४ चौपाई का भाष्यः—

हिन्दू बरत एकादशी साधे। दूध सिङ्घारा सेती ॥३॥

भाष्यः—हिन्दू-धर्मावलम्बी लोग सब व्रतोंमेंसे विशेषतः एकादशी व्रतको उत्तम समझते हैं। उस रोज आहार साधना करनेका दिन मानते हैं। प्रतिपदासे गिन कर उस पक्षके ग्यारहवें रोजको एकादशीका पवित्र दिन मानकर, उस दिन व्रत रख करके विभिन्न साधनाएँ करते हैं। जैसे कोई निराहार रहकर कुछ भी नहीं खाते, कोई निर्जल रहनेवाले जल भी नहीं पीते, कोई दूधमात्र पीते और कोई फलाहार करते हैं। दूधके साथ सिङ्घाड़ेके आटेकी रोटी, हलुवा भी खाते हैं। कोई सिङ्घाड़ेको उबालकर ही खाता और उबालकर आलू, कन्द-मूल, फूल-फलादिका भोजन ही उस दिन करता है। इस प्रकार दूध, सिंघाड़े आदिका भोजन, पौष्टिक माल खाकर खूब पेट भर करके एकादशीका व्रत रखनेका ढोंग, स्वाँग, तमाशा दिखलाकर मिथ्या अभिमान करके फूले न समाते हैं। परन्तु इस तरह एकादशीका सच्चा व्रत नहीं होता है। उसका केवल उपहास-मात्र होता है। वास्तवमें पञ्च विषयोंका आहार मनको न देकर, मन सहित दशों इन्द्रियोंको साध करके अपने वशमें कर रक्खै—सो यही हितकारी सच्चा एकादशीका व्रत है। ऐसा व्रत तो कोई करता नहीं और भूठे ही व्रतमें सब भूल गये और भी भूलते ही जा रहे हैं; बिना पारख ॥ ३ ॥

अन्नको त्यागे मनको न हटके। पारन करे सगौती ॥ ४ ॥

केवल एकादशीके एक रोज मात्र चावल, उरद, मसूरादिकी दाल इत्यादि सब प्रकारके अनाजोंको त्याग करते हुए उस दिन अन्नका भोजन तो नहीं करते हैं; परन्तु फलाहारके नामसे मनमाने दूध, सिङ्घाड़ा, मिठाई आदि स्वादिष्ट पदार्थ पेट भरके खा लेते हैं। अन्नको तो त्यागे, मनको तो कभी नहीं हटकते, नहीं रोकते। अर्थात् लोभ, काम, क्रोध, मोह, भय एवं मद-मत्सरादि विकार, कुवृत्ति, कुमार्गादिकी ओर मन दिन-रात जा रहा है। उधरसे अपने मन-इन्द्रियोंको कभी नहीं हटाते, नहीं रोकते हैं; किन्तु विषय-वासनासे भोगोंमें ही मनको निधड़क लगा करके, छिपकर कर्म-कुकर्म भी करते रहते हैं। बाहर दम्भ दिखाकर लोगोंको ठगते फिरते हैं। एकादशी महात्म्य-की भूठी ही कथा सुना करके लोगोंको भ्रमाकर भुलाते रहते हैं; परन्तु व्रतके रोज भी मांसादि अभक्ष भक्षणके स्वादके लिए ललचाये रहते हैं। व्रतका बन्धन होनेसे उस दिन जिस किसी तरह कठिनाईसे मांसादि खानेसे रुकते हैं, तो भी रात्रि कब व्यतीत होगी, यही सोचते रहते हैं। द्वादशीके रोज जब सबेरा होता है, तब झटपट स्नानादिसे *

तुरुक रोजा निमाज गुजारे । बिसमिल बाँग पुकारे ॥५॥
इनको बिहिस्त कहाँसे होवै ? जो साँझै मुरगी मारे ॥६॥

तुरुक रोजा-निमाज गुजारते हैं और सब मिलके बाँग देते हैं ॥५॥ साँझको मुरगी मारते हैं । तो इनकी मोक्ष कहाँसे होयगी ? दया सोई मोक्ष । ये अर्थ ॥६॥

हिन्दुकी दया मेहर तुरुकनकी । दोनों घटसे त्यागी ॥७॥
ई हलाल वै झटका मारे । आग दुनों घर लागी ॥८॥

हिन्दू-तुरुक दोनोंने दया, मेहर छोड़ी ॥७॥ और कोई छूरीसे, औ कोई तलवारसे पशुका गला काटते हैं । इस प्रकारसे दोनों घरमें आग लगी । ये अर्थ ॥

हिन्दू-तुरुककी एक राह है । सतगुरु सोइ लखाई ॥९॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! राम न कहूँ खुदाई ॥१०॥१०॥

हिन्दू-तुरुककी एक राह है—जो ब्रह्मा औ मुहम्मदने बताई । ये अर्थ ॥९॥

---

* निवृत्त होकर चार आनेका गो-दानरूप दक्षिणा ब्राह्मणको दे करके, कुछ खाकर व्रत समाप्ति कर देते हैं । उसे ही "पारन वा पारण" करना कहते हैं । तदनन्तर तुरन्त ही बकरादि जीवोंकी हिंसा करके (सगौती = गोश्तको कहते हैं) मांसादिके नाना व्यञ्जनादि सहित स्वादिष्ट तरकारी तैय्यार कराकर प्रसन्न हो करके उसे खूब खा लेते हैं । वैसे व्रतके दूसरे ही दिन पारण करके मांस, मछली, अण्डे इत्यादि तामसी राक्षसी खाना खा लेते हैं । अब कहिये ! वह एकादशीका व्रत सफल हुआ कि निष्फल ? जीव-हिंसादि कुकर्म पूर्ण राक्षसी स्वभावकी कुआदत हुई कि नहीं ? ऐसे हिन्दूलोग उलटी चालसे चल रहे हैं । एकादशीका सच्चा व्रत करनेके लिए मनको शमन और दशों इन्द्रियोंको दमन करके पञ्च विषयोंकी ओरसे उनको निराहार बनाकर रोक रखना, विषयासक्तिसे रहित रो रहना, यही तो सच्चे व्रतका लक्षण है । अथवा "धृति, क्षमा, दम (शम), अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, बुद्धि, विद्या, सत्य और अक्रोध" धर्मके इन दश लक्षणोंको पूर्णरूपसे धारण करके पालन करना ! उसीसे नित्य एकादशी-व्रत करनेका असली फल प्राप्त होनेका लाभ होता है । वैसे हितकारी व्रतका पालन तो वे लोग कोई नहीं करते । झूठा पाखण्डकी बनावटी, दिखावटी पसारा-मात्र करते हैं । एकदिन अन्न मात्रको त्यागे, किन्तु मनको हटा करके तो नहीं रोकते । मांसादि अभक्ष भक्षण करके पारण करते हैं । परन्तु वैसी कुचालसे चलनेवाले सब लोग सगोत्र, कुल-कुटुम्ब सहित सदा भव-बन्धनोंमें ही बँधे पड़े रहेंगे । अभी भवपार हो नहीं सकेंगे । अतः ऊपर कहे अनुसार सच्चा व्रत रखनेवाला गुणवान् सच्चा मनुष्य ही होना चाहिये ! ॥ ४ ॥

गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! न कहूँ राम है, न कहूँ खुदा है। सब धोखा है। ये अर्थ ॥ ० ॥ १० ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ११ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! पाँड़े निपुण कसाई ॥१॥

बकरा मारि भैंसा पर धावै। दिलमें दर्द न आई ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! पण्डित पक्के कसाई ॥ ॥ बकरा मारिके देवीका पूजन करावै, कसाईका कर्म करे, सोई कसाई। ये अर्थ ॥२॥

करि अस्नान तिलक दै बैठे। विधिसों देवि पुजाई ॥३॥
आतम राम पलकमें बिनसे। रुधिर की नदी बहाई ॥४॥
अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये। सभा माहिं अधिकाई ॥५॥
इन्हते दीक्षा सब कोइ माँगे। हँसी आवै मोहि भाई ! ॥६॥
पाप कटन को कथा सुनावैं। कर्म करावैं नीचा ॥७॥
हम तो दूनों परस्पर देखा। यम लाये हैं धोखा ॥८॥
गाय बधे ते तूरुक कहिये। इनते वै क्या छोटे ? ॥९॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! कलिमा ब्राह्मण खोटे ॥१०॥११॥

—इसवास्ते हिन्दू-तुरुक दोनों झूठे हैं। ये अर्थ ॥११॥*

---

* टिप्पणीः—शब्द ११ का पूरा भाष्यः—

सन्तो ! पाँड़े निपुण कसाई ॥ ॥

भाष्य; गुरुमुखः—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! पाँड़े = ब्राह्मण, पण्डित लोग कर्मकाण्डी हो करके भी हिंसक, घातकी कर्म करते-कराते रहते हैं। इसवास्ते वे पाँड़े लोग कसाईके कर्ममें परम निपुण होते हैं। इसीसे पाँड़ेजी निपुण = चतुर, पक्के कसाई = बधिक, जीवहिंसक काल बने हैं। जो कसाईका कर्म करते-कराते हैं, वे ही पक्के कसाई कहे जाते हैं। पण्डित लोग तो वाणी-कल्पनाकी तलवारसे भी खूब कसकर जीवोंके ज्ञान, बुद्धि, विचारादिको काट देते हैं और बलिदानके नामसे खड्गसे पशुओंकी हत्या भी करते हैं एवं मांस, मत्स्य आदि अभक्ष भक्षण भी करते हैं। इसी कारण वे निपुण कसाई सब कसाइयोंमें प्रधान, मुखिया ही बने हैं। तब उनसे किसीका क्या भला होगा ? कुछ नहीं होगा ॥ १ ॥

बकरा मारि भैंसापर धावै। दिलमें दर्द न आई ॥२॥

क्योंकि बकरा, खसी, भेड़ा आदि पशुओंको खड़ा करके उनके नीचे एक लकड़ी लम्बी वा तिरछी रखकर हाथमें तेज खड्ग, तलवार पकड़के पण्डित ब्राह्मणोंने ही स्वयं अपने हाथसे बकरादिको एक झटकेसे जानसे मारकर हत्या किया हुआ दृश्य भी प्रथमावस्थामें प्रत्यक्ष हमको देखनेमें आया था। अतः इस शब्दका कथन अक्षरशः सत्य अनुभव सिद्ध निर्णय है, ऐसा जानना चाहिये !

पण्डित ब्राह्मणलोग देवी, काली, भैरवादि जड़ मूर्तियोंके सामने खड़ा करके खम्भेपर रस्सीसे बलि-पशुके शिर बाँधकर पहले असहाय बकराको जानसे मार करके उसका खून छिड़ककर बकरेका मूँड़ देवीकी जड़ मूर्तिके सामने रख देवी, कालि आदि-का तामसी पूजन करते-कराते हैं। तत्पश्चात् उतनेसे देवी-पूजा पूर्ण नहीं हुई समझकर महादेवी, महाकाली आदिको प्रसन्न करानेके भ्रमसे महिसासुरका रूप समझकर किसी भैंसाके ऊपर धावा करके दौड़ पड़े, हाथमें तेज खड्ग लेकर भैंसाका गला भी एक झटकेमें काटकर गिरा दिये, रुण्डसे मुण्ड अलगकर रक्तका फौवारा बहा करके देवीके सामनेमें भैंसाका मूँड़ भी धर दिये, दो-चार श्लोक बड़बड़ाकर दर्शकलोगोंको भुला दिये। उस अनाथ बकरा और भैंसाको मारनेके लिए बड़े क्रूर, कठोर काल कसाई बन गये। क्षण-भरमें उनकी हत्या करके प्राण ले लिये। उन पशुओंकी हत्या करते समय पण्डित ब्राह्मणोंके दिल=हृदय वा मनमें तनिक भी दया, दुःख, दर्द, वेदनाकी स्मृतितक नहीं आई। बड़े निर्दयी घातकी बाघ, चीतादि हिंसक जन्तुरूप पशुवत् ही बन गये। इस कारण हे सन्तो! ये पाँड़े लोग कसाईकर्ममें निपुण, पक्के कसाई ही तो बने हैं। अब इनसे किसीका क्या हित-कल्याण होगा? अपने अङ्गमें चाकू आदिसे कभी थोड़ा कट जानेपर कितनी वेदना होती है? तुरन्त ही मलहम पट्टी बाँधकर खून बन्द करना पड़ता है। अपने बच्चोंको कभी चोट लगी वा कहीं कट गया, खून बहते देखा तो कितना दुःख, घबराहट होने लगता है। फौरन ही उपचार, दवा करनेमें लग जाते हैं। इसी प्रकार दुःख-दर्द तो सब प्राणियोंको एक समान ही होता है। ऐसा समझकर सब प्राणियोंकी रक्षा करना, दया रखना परम धर्म है। परन्तु पाँड़े लोगोंके दिलमें तो दयाधर्म रहता ही नहीं। बिलकुल दयासे शून्य होते हैं। तभी तो बकरा-भैंसादिकी हत्या करके कसाई बन रहे हैं। ऐसे लोगोंकी कुसङ्गति त्यागकर हितेच्छुक मनुष्योंको अपने ही दिलमें दया धारण करके अपना हित-कल्याण करना चाहिये ! ॥ २ ॥

करि अस्नान तिलक दै बैठे। विधिसों देवि पुजाई ॥३॥

पाँड़े-पण्डित ब्राह्मण लोग सबेरे उठकर प्रथम पूरा स्नान करते, स्नानादि कार्यसे निवृत्त होकर कहीं घाट वा मन्दिरादिमें आसन बिछाकर बैठ जाते हैं। फिर अपने माथेपर भस्मका त्रिपुण्ड्र तिलक और चन्दनादिका पण्डिताई तिलक लगा लेते हैं। वैसे गङ्गादिमें स्नानकर मस्तकमें तिलक स्वरूप देकर कहीं मन्दिरादिमें जाकर बैठ गये। अष्टभुजी देवी, सोलहभुजी देवी, शतसहस्रभुजी देवी, काली, महाकाली, विकराली देवी, शीतला देवी, नवदुर्गा इत्यादि जड़मूर्ति स्थापित मन्दिरोंमें जाके बैठ-कर, अथवा अपने घरमें वैसी देवियोंकी छोटी-छोटी प्रतिमा स्थापित करके विधि-

विधानसे षोड़शोपचार [आवाहन, आसन, जल, अर्घ्य, पञ्चामृत, स्नानजल, वस्त्र, उपवीत, चन्दन, अबीर, सिन्दूर, अक्षता, फूल और माला, धूप, दीप, नैवेद्य, आचमन, फल-फूल, पान-सुपारी, द्रव्य, भेंट, आरती, पुष्पाञ्जलि, प्रदक्षिणा, प्रार्थना, दक्षिणा, विसर्जन] द्वारा पण्डित लोग अपने स्वयं भी इस तरह देवी-देवताओंकी विधिसे पूजा करते हैं और यजमानोंसे भी उसी विधिसे देवी-देवताओंकी पूजा करवाते हैं। आग जलाके यज्ञमें होम-हवन करवाते हैं। देवीभक्त शाक्त लोग विशेष करके देवीको ही पूजते-पुजवाते हैं ॥ ३ ॥

आतम राम पलकमें विनसे । रुधिर की नदी बहाई ॥४॥

परन्तु इतना आडम्बर दिखाकर विधि-विधानसे देवीपूजा करनेके बाद अन्तमें बलिदानके नामसे जीवहिंसारूप प्रत्यक्ष पाप कर्म करवाते हैं। घट-घटमें आत्माराम-का निवास है, एक आत्माराम ही सब घटमें रम रहा है—ऐसा शास्त्रोंमें लिखा है। कभी वे पण्डित लोग भी, वही आत्माराम सब घटमें है, वैसा भी कहते हैं। तथापि स्वार्थान्ध हो वे ही लोग पण्डित, ब्राह्मण, पुरोहित-पुजारी बनकर बकरे, भैंसादि पशुओंमें रहनेवाले आत्मारामका प्रत्यक्ष गला काटकर जीवहिंसा, घात, वध करके पलकभरमें उनका प्राण लेकर विनाश कर देते हैं, बहुत-से पशुओंकी हत्या करके रुधिर=रक्त, खूनकी धारा नदीके समान विशेष करके बहा देते हैं। ऐसे महान् घातकी वधिक कसाई बने हैं। कहा है :—

"बोलता चालता सजीव बकरा, देवके आगे काटे ॥
सभी आलम मिलकर खा गये, देवको बतावैं झाँटे ॥"

देवीके नामसे जीवहत्या करके वे लोग अपने ही उस पशुका मांस खा जाते हैं। जिह्वा-स्वादमें लम्पट होकर ही इस तरह वधिककर्म करके एक पलकमें आत्मा-रामका विनाश किये, रुधिरकी नदी बहाये। इसी कारणसे पाँड़ेको निपुण कसाई कहा गया है। वैसे लोगोंकी कुसङ्गतिसे सदा बचकर दूर रहना चाहिए ! ॥ ४ ॥

अति पुनीत ऊँचे कुल कहिये ! सभा माहिं अधिकाई ॥५॥

ये पण्डित ब्राह्मण लोग स्वयं कहते हैं कि हम विराट् भगवान्के मुखसे सर्व-प्रथम उत्पन्न हुए हैं, इसलिए हम अति पुनीत=अत्यन्त पवित्र, शुद्ध-साफ हैं, ब्रह्माकी सन्तान हम ब्राह्मण लोग ऊँचे कुल=बहुत बड़े कुल-गोत्रवाले सबसे श्रेष्ठ कुलीन हैं, हम ऊँची जातिवाले अग्रगण्य-मान्य कहलाते हैं, सब लोग हमें 'पण्डितजी ! पाय लागी' कहते हैं, हमारा आशीर्वाद चाहते हैं। ऐसे उनके वचनोंको सुन-सुनकर सब अज्ञानी, अविचारी लोग भी उनको ही अति पवित्र, ऊँचे कुलवाले, भगवान्के मुखरूप, पृथ्वीतलके देवता कहकर मानते हैं, सब कोई ब्राह्मणोंसे डरते हैं। बड़े-बड़े सभा-सम्मेलनोंमें भी उन्हीं पण्डित ब्राह्मणोंकी अधिकाई=विशेषता, ज्यादा मान-सम्मान होता रहता है। उनको सब लोग बड़े ही मानते हैं। सब सामाजिक कार्योंमें पण्डितों-को अगुवा बनाते हैं। वैसी उनकी प्रभुताई, महिमा हिन्दूसमाजमें फैली है ॥ ५ ॥

इन्हते दीक्षा सब कोइ माँगे । हँसी आवै मोहि भाई ! ॥६॥

परन्तु छली-कपटी, जीवहिंसक, वधिक-कर्ममें रत, मिथ्यावादी, दुराचारी स्वार्थी बने हुए पण्डे-पुजारी; इन्हीं पण्डित, गुरु-पुरोहितादि ब्राह्मणोंके पासमें जा-जाकर उनसे ही सब कोई हिन्दूलोग दीक्षा मन्त्र, आशीर्वाद माँगते हैं, कान फुँका लेते हैं। शिक्षा, उपदेश, ज्ञान दीजिये—इत्यादि कहते हैं। हे भाई सन्तो ! अज्ञानी लोगोंकी वैसी उलटी समझ, प्रत्यक्ष खराब कर्म करते हुए देखकर भी उनमें श्रद्धा-भाव, अन्धविश्वास रखना, इस तरह निर्बुद्धिके विपरीत कार्य देख करके मुझे तो हँसी आती है। इसलिए अन्य जिज्ञासुजनोंको सचेत करनेके वास्ते मुझे यथार्थ भेद दरशाकर कुछ कहना ही पड़ता है। मुझे हँसी आना भी सत्योपदेश देनेमें सहायक हो जाता है। हँसकर भी मैं सारशब्द निर्णय ही कहता हूँ। जिसे श्रवण-मनन करनेवाले जिज्ञासुओं-का हित-कल्याण ही होगा। अतः परीक्षा करके पण्डितोंके जालोंसे अलग रहना चाहिये ! ॥ ६ ॥

पाप कटनको कथा सुनावैं । कर्म करावैं नीचा ॥ ७ ॥

ये पण्डित ब्राह्मणलोग और लोगोंके किये हुए कायिक, वाचिक और मानसिक नाना प्रकारके बड़े-बड़े पापोंको काटनेके वास्ते उन्हें भ्रमा-भुला, फुसलाकर—'हमारी कथा सुननेसे तुम्हारे सब पाप कट जायेंगे, तुम्हें महान् पुण्य फल प्राप्त होगा, अन्तमें स्वर्गादिमें जाकर बड़ा सुख भोगोगे'—इत्यादि मिथ्या बात बताकर भागवतकी कथा; गरुड़पुराण, रामायण, देवीभागवत्, मार्कण्डेयपुराण, स्कन्धपुराण, विष्णुपुराण, शिव-पुराण इत्यादि मुख्य अठारह पुराण और गौण अठारह उपपुराणादिकी कथा अनेक प्रकारसे रोचक-भयानक वाणीका विस्तार करके बढ़ा-चढ़ाकर सुनाते रहते हैं। परन्तु उनका अपना ही पाप-विकार नहीं छूटा, तो उनकी कथासे दूसरोंका पाप क्या-कैसे कटेगा ? क्योंकि वे आप भी जीवहिंसादि नीचा=छोटा, घृणित, तुच्छ कर्म करते हैं और सब यजमानोंसे भी वैसा ही नीचा=बलिदानके नामसे पशु आदि जीवोंकी हत्या कराना, मांस-मत्स्यादि अभक्ष खाना-खिलाना इत्यादि पाप कर्म ही कराते हैं। अब कहो—पापसे पाप भी कभी कहीं कटा है कि कटेगा ? मैलासे मैला कभी छूटता है ? नीच कर्मसे कभी पुण्य होता है ? कभी नहीं। कथा तो सुनाते हैं पाप काटनेके लिए; एवं कर्म तो और भी नीच पाप ही होनेवाला कराते हैं। उनकी ऐसी विपरीत मति है, तो भी अपनेको बड़े पण्डित, ऊँचा समझकर मिथ्या अभिमानमें चूर, मदान्ध बने रहते हैं। उनके वैसे धोखेमें कभी नहीं पड़ना चाहिये ! ॥ ७ ॥

हम तो दूनों परस्पर देखा । यम लाये हैं धोखा ॥८॥

सद्गुरु कहते हैं—हमने तो हिन्दू और मुसलमान; इन दोनोंको परीक्षा करके अच्छी तरहसे देखा, जाना, पहचाना है—परस्पर वे दोनों बड़े हिंसकी, एक-से-एक घातकी, पातकी, मांसाहारी, शराबी, अहङ्कारी, चाल-कुचालसे चलनेवाले मन्मति हो रहे हैं। तो भी वे लोग परस्परमें थोड़ी-थोड़ी बातोंको लेकर लड़ते-झगड़ते, दङ्गा करके मारकाट भी कर लेते हैं। नीच कर्म करनेमें भी कोई किसीसे कम नहीं है। इसीसे यम=एक तो मनमें जमी हुई विषयवासना एवं भ्रम-कल्पनाने, दूसरे—यमराज-

रूप भयङ्कर क्रूर-कठोर बने गुरुवा लोगोंने कालरूपसे हिन्दू और तुरुक, दोनोंको भुला-भ्रमाकर मिथ्या धोखेमें ही लगा दिया है। दोनों ओर यमके लाये धोखेमें ही सब फँसे हैं। बिना पारख उस धोखेसे कोई भी छूट नहीं पाता है। अतः पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गसे परखकर उस धोखामें नहीं पड़ना चाहिये ! ॥ ८॥

गाय बधे ते तूरुक कहिये ! इनते वै क्या छोटे ? ॥९॥

गायका वध करनेसे वे तुरुक=मुसलमान कहे जाते हैं। उनको ब्राह्मण लोग म्लेच्छ, गौहत्यारे नीच, कसाई इत्यादि कहकर नीच समझते, अवहेलना करते हैं। अब विचार कीजिये—इन हिन्दू ब्राह्मणोंसे वे तुरुकलोग किस बातमें क्या छोटे हुए ? सो कहिये ! गौका दूध पीनेसे गौ माताके समान हुई, तो भैंसका भी दूध पीते हैं। भैंस भी माताके समान ही ठहरेगी। बकरी-भेड़ीका दूध पीते हैं, वे भी माताके समान ही होंगी। भैंसा, बकरा, भेड़ भी पिताके समान ठहरेंगे। ऐसा होनेपर भी बकरे, भेड़े, खसी, च्यांग्राएँ और भैंसे एवं बहुत प्रकारके पक्षियोंको भी देवीउपासक सब ब्राह्मण लोग और मांसाहारी सब हिन्दूलोग देवी-देवताओंके नामसे वा मनमाने जब चाहे तब उनका वध वा हत्या करके मांस-मत्स्यादि और अण्डे खाते ही हैं। कुछ ब्राह्मणोंको छोड़कर शराब भी सब पीते ही हैं। चोरी-व्यभिचारादि अनाचार, अकर्म भी मौका पड़नेपर सब करते ही हैं। नीच छोटे कर्म सब तो ये लोग स्वयं भी कर ही रहे हैं। चाहे गाय हो या और बकरे आदि पशु हों, जीवहत्याका दोष, पाप वैसा ही बराबर लगेगा। बल्कि एक गायकी अपेक्षा दश बकरे आदिको मारनेवालेको दशगुना अधिक पाप लगेगा। इस दृष्टिसे हिन्दू ब्राह्मणादि अधिक पापके भागीदार बन रहे हैं। गाय, भैंस, भैंसा, बैल, बकरे इत्यादि सब प्राणियोंके रक्त, मांसादि सप्त-धातु भी एक-से ही हैं। एकका मांस खाया तो उसने सब प्राणीका मांस खाये समान ही हो जाता है। अतएव गौ मारनेसे वह मुसलमान कहलाया; परन्तु इन ब्राह्मणोंसे हिंसारूप वधिक-कर्ममें वे क्या कुछ कम किये ? कुछ नहीं। और सब बात तो इन दोनोंकी उसी-उसी प्रकार बराबर ही चल रही है। तब इन ब्राह्मणसे वे तुरुक क्या छोटे हुए वा होंगे ? नहीं होंगे। विषयासक्ति भव-बन्धनमें कोई किसीसे कम नहीं है। सब आगे ही बढ़े-चढ़े हैं। इसलिए सिद्धान्तमें हिन्दू और मुसलमान—दोनों झूठे बने हैं ॥ ९ ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! कलिमा ब्राह्मण खोटे ॥१०॥११॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! मेरा सत्य निर्णय और उनकी वाणी भी सुनो ! समझो ! बूझो ! परखो ! ऊपर कहे अनुसार छानबीन करके देखनेपर, और उनकी चाल-चलन, आचार-विचार, रहन-सहन, वाणी-वचन इत्यादिकी अच्छी तरहसे परीक्षा कर लेनेपर यही निष्कर्ष निकलता है कि कलिमा=कलियुगरूप इसी संसारमें जहाँपर सब रह रहे हैं, इस दुनियाँमें पाँड़े-पण्डितादि शाक्त, जीव-हिंसकी ब्राह्मण लोग सबसे ज्यादे खोटे=नकली, झूठे, मिथ्याचारी, गयेबीते निपुण कसाई बनकर खानि-वाणीजालोंमें स्वयं फँसे पड़े हैं और दूसरोंको भी फँसाकर उन्हीं*

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १२ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! मते मातु जन रङ्गी ॥१॥

पियत पियाला प्रेम सुधारस । मतवाले सतसङ्गी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! ये सब नाना प्रकारके मतोंमें माते । योगी योगके रङ्गमें रङ्गा, ज्ञानी ज्ञानके रङ्गमें रङ्गा औ भक्त प्रेम-लक्षणामें रङ्गा ॥१॥ जो बानी सुनी, सो अनुमानमें बँधा । जैसी बानी सुनी, तैसी मूर्ति अपने मनसे बनाई औ उसको पुरुषपना दिया, आपने स्त्री-भाव लेके आसकी की औ प्रेममें मग्न हुआ । इस प्रकारसे अपने-अपने सत्सङ्गमें सब मतवाले हुये । ये अर्थ ॥ २ ॥

अर्धें-ऊर्धें भाठी रोपिनि । लेत कसारस गारी ॥३॥

मूँदे मदन काटिं कर्म कस्मल । सन्तति चुवत अगारी ॥४॥

'अर्धें' कहिये पिण्ड, तामें जीव; 'ऊर्धें' कहिये ब्रह्माण्ड, तामें ब्रह्म । इस प्रकारसे दो जगह रोपन्त किया, ब्रह्माकी बानीने औ गुरुवा लोगोंने । सो सब बड़े-बड़े जीव उस बानीका बिलछान करने लगे, औ उसका रस जो 'अनुभव', सो पीने लगे ॥३॥ औ आनन्दमें मूँदते = मुदित होते भये, सब कर्म-कचरा काटिके शुद्ध चैतन्य हुये । आगे सन्तति चूवने लगी । अनुभव बानी बनायके जगत्में उपदेश करने लगे । ये अर्थ ॥ ४ ॥

गोरख दत्त वशिष्ठ व्यास कपि । नारद शुक मुनि जोरी ॥५॥

बैठे सभा शम्भु सनकादिक । तहाँ फिरै अधर कटोरी ॥६॥

गोरख, दत्त, वशिष्ठ, व्यास, हनुमान, नारद, शुकदेव मुनि जुटे ॥५॥ सन-कादि-येते एकमिलि सत्सङ्ग महादेवकी सभामें बैठके करते हैं, और अनुभवका तर्क वहाँ फिरता है, अनुमानकी कटोरी । ये अर्थ ॥ ६ ॥

अम्बरीष औ याज्ञ जनक जड़ । शेष सहस्र मुख फाना ॥७॥

कहाँलौं गनौं अनन्त कोटिलौं । अमहल-महल दिवाना ॥८॥

---

* जालोंमें बाँधते ले जा रहे हैं। जड़ाध्यासवश अन्तमें चौरासी योनियोंमें जाकर दुःख-भोगी हो रहे हैं। अतः पारख-दृष्टिसे वैसे लोगोंको ठीकसे पहचानकर, उनके जालोंसे स्वयं सदा न्यारे हो रहना चाहिये ! ये भावार्थ ॥१०॥११॥

अम्बरीष, याज्ञवल्क्य, जनक-विदेही, जड़भरत, शेष आदि सहस्र मुखसे विचार करते-करते सब धोखेमें दिवाने हुये ॥७॥ गुरु कहते हैं कि कहाँलौं गनौं ? अनन्त कोटिलौं सब अनुमानमें दिवाने हुए। ये अर्थ ॥ ८ ॥

ध्रुव प्रह्लाद विभीषण माते। माती शेवरी नारी ॥९॥
निर्गुण ब्रह्म माते वृन्दावन। अजहूँ लागु खुमारी ॥१०॥

ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, शवरी नारी आदि प्रेम-लक्षणा भक्तिमें मस्त हुये ॥९॥ औ योगी लोग निर्गुण ब्रह्म होयके संसारमें मस्त हुये। 'वृन्दावन' कहिये संसार। सो अभीतक खुमारी छूटी नहीं, गाफिली छूटी नहीं। ये अर्थ ॥१०॥

सुर नर मुनि यति पीर औलिया। जिन रे! पिया तिन जाना ॥११॥
कहैं कबीर गूँगेकी शक्कर। क्योंकर करे बखाना? ॥१२॥१२॥

टीका मायामुखः—माया कहती है कि—सुर, नर, मुनि, यति, पीर, औलिया; जिन्होंने यह प्याला पिया, तिन्होंने जाना कि एक ब्रह्म सत्य, औ सब मिथ्या। जिन्होंने जाना, सो मौन हुए ॥११॥ जैसे गूँगेको शक्कर खिलाई और उसका स्वाद पूछो, तो वह स्वाद कैसे कहेगा ? इस प्रकार समाधिमें मग्न मौन हुआ। ये अर्थ ॥ १२ ॥ १२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १३ ॥ ❀ ॥

राम ! तेरी माया दुन्द मचावै ॥१॥
गति–मति वाकी समुझि परे नहिं। सुर नर मुनिहि नचावै ॥२॥

टीका गुरुमुखः—'राम' कहिये जो सब योनिनमें रमा औ नाना मतिमें वा नाना मतनमें प्रकाश हुआ, सो जीव। गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तेरी कल्पनाने बड़ी दुन्द मचाई। ये अर्थ ॥१॥ वो कल्पनासे जो-जो मत औ जो-जो बानी बनी, सो काहूको समुझ परी नहीं। कल्पनाने सुर, नर, मुनि सबको नचाया। ये अर्थ ॥ २ ॥

क्या सेमर तेरि शाखा बढ़ाये? फूल अनूपम बानी ॥३॥
केतेक चातृक लागि रहे हैं। देखत रुवा उड़ानी ॥४॥

सेमर कहिये माया, शाखा कहिये पण्डित। सो गुरु कहते हैं कि हे कल्प-

ना ! तेरी बानी बहुत बढ़ी औ पण्डित लोगोंने बहुत दृढ़ाई पुष्पित वाच ॥३॥ जा बानीके सुनेसे केतेक जीव आशाबन्ध होय रहे । आगे कछु प्राप्ति न भई। ये अर्थ । जैसे सेमरका वृक्ष अच्छा देखकर औ बड़ा फूल देखके तोतेने सेवन किया कि मेरेको कुछ फल मिलेगा । सो वहाँ कुछ प्राप्ति नहीं भई । ये अर्थ ॥ ४ ॥

काह खजूर बड़ाई तेरी ? फल कोई नहिं पावै ॥५॥
ग्रीषम ऋतु जब आनि तुलानी । तेरी छाया काम न आवै ॥६॥

क्या बानी बड़ाई तेरी ? जो अर्थ, धर्म, काम औ मोक्ष—ये चार फल बताये, सो काहूने भी नहीं पाये ॥५॥ औ जो तेरा आसरा किया, सो भी जब मौत आयके तुलायगी, तब काम नहीं आनेका । आशा-त्रासा सब छूट जायगा। ये अर्थ ॥ ६ ॥

आपन चतुर औरको सिखवै । कनक-कामिनि सयानी ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! राम चरण ऋतु मानी ॥८॥१३॥

गुरुवा लोग अपनी चतुराई औरनको सिखाते हैं—बहुत प्रकारकी बानी द्रव्य पैदा करनेकी औ उपदेश करनेकी । औ वशीकरण, मारण, जारण, उच्चाटन आदि सब विद्या बनाते हैं ॥७॥ सो गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! ये सब मिथ्या। कहाँ है ? अनुमानकी बानी ये जीवने मान ली । ये अर्थ ॥ ८॥ १३ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १४ ॥ ❀ ॥

रामुरा संशय गाँठि न छूटै । ताते पकरि-पकरि यम लूटै ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जो गुरुवा लोगोंने उपदेश किया, सो अनुमानकी गाँठी छूटती नहीं । इसवास्ते फिर-फिर गर्भवासमें आता है औ फिर-फिर गुरुवा लोग पकरि-पकरिके तेरेको लूटते हैं । ये अर्थ ॥ १ ॥

होय कुलीन मिस्कीन कहावै । तू योगी संन्यासी ॥२॥
ज्ञानी गुणी सूर कवि दाता । ये मति किनहु न नासी ॥३॥

अरे ! तू ही कहीं ब्राह्मण हुआ और तू ही कहीं मिस्कीन = भक्त हुआ । और तू ही कहीं योगी हुआ और तू ही कहीं संन्यासी हुआ ॥२॥ औ कहीं ज्ञानी हुआ और कहीं गुणी हुआ औ कहीं शूर हुआ और तू ही कहीं कवीश्वर हुआ,

कहीं दाता हुआ। परन्तु ये धोखा किसीने नाश किया नहीं। ये अर्थ। कुलीन कहिये ब्रह्मा, मिस्कीन कहिये विष्णु, योगी कहिये महादेव, संन्यासी कहिये दत्तात्रेय, ज्ञानी कहिये सनकादिक, गुणी कहिये नारदादि, शूर कहिये भीष्मादि, कवि कहिये व्यासादि, दाता कहिये कर्ण आदि। देखो—येते सब हुये, परन्तु अनुमान किसीसे भी नाश नहीं भया। ये अर्थ ॥ ३ ॥

सुमृति वेद पुराण पढ़ें सब। अनुभव भाव न दरसे ॥४॥
लोह हिरण्य होय धौं कैसे? जो नहिं पारस परसे ॥५॥

स्मृति, वेद, पुराण पढ़ते हैं, सब अनुभव भावना करते हैं ॥४॥ परन्तु सब पशु। मानुष कहाँसे होय? पारख पाये बिना। ये अर्थ * ॥ ५ ॥

---

* टिप्पणी:—शब्द १४ की ५ वीं चौपाईका भाष्य:—

लोह हिरण्य होय धौं कैसे? जो नहिं पारस परसे ॥ ५ ॥

भाष्य:—इस प्रकार ग्रन्थ-मात्र ही पढ़कर मिथ्या भावना दृढ़ कर लेनेसे न किसीकी मुक्ति हुई है न होगी। क्योंकि जो यदि परदा रहित होकर पारसमणिका स्पर्श बराबर नहीं होगा, तब कहो तो भला—काला जङ्ग लगा हुआ लोहा, हिरण्य= शुद्ध-साफ सुवर्ण कैसे होगा? कभी नहीं होगा। तद्वत् लोह=षट् पशुधर्ममें आसक्त, षट् पक्षपातमें ग्रस्त, षट्पशु बने हुए लोग अज्ञान विकारका मुर्चा लगे लोहेवत् पशु-बुद्धिवाले विकारी काले हो खानि-वाणीमें फँसकर बन्धे पड़े हैं। अब वे लोग जो यदि पारखी साधु-गुरुके शरण-सत्सङ्गमें प्रेम, भक्ति; श्रद्धासे नहीं लगेंगे, नहीं आयेंगे, तो उनकी भ्रम-भूल कौन मिटायेगा? उनको पारखबोध और कौन देगा? पारखबोध पाये बिना नरजीव सच्चा मनुष्य, हंस भी कैसे बनेगा? जबतक जीव जिज्ञासु बनकर पारखी सद्गुरुदेवसे निज स्वरूपका ज्ञान पारस=पारखबोध, नहिं परसे=नहीं प्राप्त कर लेगा, तबतक उसका जड़ाध्यास बन्धन, भ्रम-भूल और उपायसे कभी नहीं मिटेगा। इस कारणसे पूर्वका लोहरूप अज्ञान, पशुस्वभाव कभी नहीं छूटेगा, नहीं पलटेगा। फिर वह हिरण्य=शुद्ध कञ्चनके समान निर्मल, मल-विक्षेप-आवर्णादि सब विकारोंसे रहित, अष्ट महान् सद्गुण रहनि-रहस्य सम्पन्न सच्चा मनुष्य, हंस पारखी, सच्चे साधु-रूपमें निर्बन्ध मुक्त तो भी कैसे? किस प्रकारसे, होय धौं=होगा भला? पारखबोध प्राप्त हुए बिना वैसा शुद्ध स्थितिवान् कभी कोई नहीं होगा। अतएव—

"और जतन कछुवो मत करहू। केवल पारख साहेब लहहू ॥ १८०२ ॥
शङ्का सन्धि रहत कछु नाहीं। नाशक आपुहि आप बिलाहीं ॥ १८०३ ॥
बोध चहहु पारख प्रभु शरणा। बिना प्रयासे भव जल तरणा ॥ १८०५ ॥
॥ टकसार, पञ्चग्रन्थी चौपाई ॥*

जियत न तरेहु मुये का तरि हो? जियतहि जो न तरै ॥६॥
गहि परतीत कीन्ह जिन्ह जासों। सोई तहाँ अमरे ॥७॥

जियते नहीं तरे, तो मुये क्या तरिहो ? जीयते अनुमानमें बन्ध भये, मुये कहाँसे छूटेंगे ? ये अर्थ ॥६॥ सो जो जीवने जहाँ पकड़िके प्रतीत किया, सो तहाँ ही मरा। ये अर्थ ॥ ७ ॥

जो कछु कियउ ज्ञान-अज्ञाना। सोई समुझ सयाना ॥८॥
कहहिं कबीर तासों क्या कहिये? जो देखत दृष्टि भुलाना ॥९॥१४॥

जो कुछ प्रथमारम्भमें भूलकी बानी बनाई, सोई अब जीवने समझके निश्चय किया। सो निश्चय मिथ्या है ॥८॥ जो देखता है दृष्टिसे कि जीवरूपसे और कुछ नहीं; औ फिर भूलता है, उससे क्या कहना ? ॥ ये अर्थ ॥९॥१४॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १५ ॥ ❀ ॥

रामुरा चली बिना बनमा हो! घर छोड़े जात जोलहा हो! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—हे जीव! ये माया गुरुवा लोग नाना प्रकारकी बानी पढ़िके औ कल्पना करके संसारमें दृढ़ावने चले, जाके पीछे ये जीव सब घर छोड़के चले। ये अर्थ ॥ १ ॥

गज नौ गज दस गज उनइसकी। पुरिया एक तनाई ॥२॥
सात सूत नौ गण्ड बहत्तर। पाट लागु अधिकाई ॥३॥

अब कौन प्रकारसे कल्पना करके बानी दृढ़ाई ? सो सुनो—प्रथम एक अनुमान हुआ—जो मेरा कर्त्ता कोई दूसरा है। तब नाना प्रकारके शब्दकी कल्पना उठने लगी। फिर उसका अर्थ मिलाय-मिलायके नौ व्याकरण बनाया। फिर शब्दका निश्चय करके चार वेद बनाया। तामें निर्णय किया तीन पदका—तत्, त्वं, असि। फिर छै शास्त्र बनाया। इस प्रकारसे उनइसका एक ताना तनाया, तामें सब जीव बँधे ॥२॥ फिर शोधन करने लगा कि पाँच तत्त्व, छठवाँ

❋ हे मनुष्यो! अब भी जिज्ञासु बनकर पारखी सन्त सद्गुरुके शरणागत हो, सत्सङ्ग द्वारा सब भ्रम-संशयको मिटाओ! सद्गुणधारी हंस होओ! पारखपदमें ही स्थिति-ठहराव करो! इस प्रकार अपना कल्याणरूप मुक्तिका कार्य पूरा करलो! नरजन्म पानेका यही मुख्य कर्त्तव्य है ॥ ५ ॥

मन, सातवाँ जीव, औ नौ द्वार, बहत्तर कोठा; येतेसे जो अधिक है सो मैं आत्मा। ये अर्थ ॥ ३ ॥

तापट तुला तुले नहीं गज न अमाई। पैसन सेर अढ़ाई ॥४॥
तामें घटे-बढ़े रतियो नहिं। करकच करे गहराई ॥५॥

तब फिर अनुभव पट बढ़ा कि कहीं तौलेसे तूलता नहीं। तब बेअन्त कहा। औ 'एक आत्मा' ये निश्चय किया, तब सर्व व्यापक हुआ। 'पैसन सेर अढ़ाई'। ये अर्थ ॥४॥ 'तामें घटै-बढ़ै रतियो नहीं।' जैसे-का-तैसा। न पाप, न पुण्य, न कर्म, न धर्म। 'करकच करे गहराई।' पशुवत् धर्म आचरण करने लगा। ये अर्थ ॥ ५ ॥

नित उठि बैठि खसम सो बरबस। तापर लागु तिहाई ॥६॥
भीझी पुरिया काम न आवै। जोलहा चला रिसाई ॥७॥

मैं आत्मा नित्य हौं, निरन्तर हौं—ऐसा मानके नाहक जबरदस्ती बन्धनमें परा। ता ऊपर त्रिपुटी लगी—सत्, चित्, आनन्द। ये अर्थ ॥६॥ जब त्रिपुटी लगी, तब सर्व आपै ठहरा। जब आपै ठहरा, तब दूसरा भाव न रहा। जब दूसरा भाव न रहा, तब सर्व दुःख-सुखका कारण आपु ही रहा औ आवागमनमें आप ही रहा। इस प्रकारसे 'भीझी पुरिया काम न आवै।' नाना प्रकारकी बानीमें जब ये जीव भीजा, तब असिपद हुआ। तब तत्-त्वं दोनों एक हुए। जब दोनों एक ही हुए, तब पूर्ववत् जैसे-का-तैसा रहा। कुछ काम नहीं आया। एकदिन यह चोला छूट गया, तब आप खिसियायके गर्भवासको प्राप्त हुआ। ये अर्थ ॥७॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! जिन्ह यह सृष्टि बनाई ॥८॥
छाड़ पसार राम भजु बौरे! भवसागर कठिनाई ॥९॥१५॥

गुरु कहते हैं कि हे जीव! जो अनुमान करते हो, सो कहाँ है? जो यह अनुमान करनेवाला है, उसीने सब सृष्टि बनाई ॥८॥ हे सन्तो! सुनो—जहाँतक अनुमान कर्त्तव्य है, सो सब छोड़ो! आत्मा मानके दिवाने हुए, सो भागो। परखके न्यारे होवो! आत्मा ही भवसागर औ आत्मा ही सर्व बन्धन है। ये अर्थ ॥९॥१५॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १६ ॥ ❀ ॥

रामुरा झीझी जन्तर बाजै। कर चरण बिहूना नाचै ॥१॥

टीका मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं कि हे जीव ! इस शरीरमें झीना नाद उठता है, सो तुम सुनिके ब्रह्म-पुरुषमें मिलि रहो ! हाथ-पाँव बिना नाच होता है, नाना प्रकारके दृग-दृश्य। सो तुम नेत्र उलटके ठहरके देखो ! ये अर्थ ॥१॥

कर बिनु बाजै सुनै श्रवण बिनु। श्रवण श्रोता सोई ॥२॥
पाटन सुबस सभा बिनु अवसर। बूझो मुनि जन लोई ! ॥३॥

तहाँ हाथ बिना बाजा बजता है। सो दोनों कानको ठेंठी देकर सुनो ! सुनते-सुनते गगनमें मग्न हो आप आपन पौ बिसार दे ! ये अर्थ ॥२॥ ब्रह्मशुभस्थानमें पञ्च विषय औ अन्तःकरण चतुष्टय नहीं। इसमें सभा बिना बड़ा आनन्द है। ये अनुभव कोई मुनिजन, योगीजन समुझेंगे। ये अर्थ ॥ ३ ॥

इन्द्रि बिनु भोग स्वाद जिभ्या बिनु। अक्षय पिण्ड बिहूँना ॥४॥
जागत चोर मन्दिर तहाँ मूसै। खसम अछत घर सूना ॥५॥

बिना इन्द्रिय वहाँ भोग होता है। बिना जिह्वा वहाँ स्वाद है। रूप-रेखा वहाँ कछु नहीं। काया बिना अक्षय है। ये अर्थ ॥४॥ गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जीव जागृत होके अनुमान चोर घर लूटता है। आप ही खाविन्द होयके शून्यमें घर किया। ये अर्थ ॥ ५ ॥

बीज बिनु अंकुर पेड़ बिनु तरिवर। बिनु फूले फल फरिया ॥६॥
बाँझकि कोख पुत्र अवतरिया। बिनु पग तरिवर चढ़िया ॥७॥

मायामुखः—'बीज बिनु अङ्कुर पेड़ बिनु तरिवर।' गुरुवालोग कहते हैं कि ब्रह्म शुद्ध चैतन्य। जहाँ जगत् अङ्कुर नहीं, जहाँ अज्ञानका पेड़ नहीं, ऐसा निर्विकल्प सुखका वृक्ष है। जहाँ वृक्ष नहीं, बीज नहीं, तहाँ बिना बतलाये अनुभव होता है—सहजै सहज। ये अर्थ ॥६॥ गुरुमुखः—अब गुरु कहते हैं कि ये आश्चर्य। जैसा कोई कहै कि बाँझके कोखमें पुत्र पैदा भया और बिना चरण झाड़पर चढ़ा। जैसा ये आश्चर्य मिथ्या, ऐसा गुरुवालोगोंका विचार। कि जैसा कोई एक धूपका मारा गर्मीसे बहुत व्याकुल हुआ, तब बिना पेड़ उसीने एक वृक्ष अनुमान किया और कहा कि क्या गहिरी छाया है। सो धूपकी गर्मी कैसे जायेगी ? अथवा जैसा कोई एक भूखा है, बिना बीज एक वृक्ष अनुमान करता है औ उसके तो फूलका ही ठिकाना नहीं, तिसमें बहुत फल लगा। तब अपने मनसे तोड़-तोड़

खाता है, तो भूख कैसे जायगी ? जैसे 'बाँझ-पुत्र न्याय' । ये अर्थ ॥ ७ ॥

मसिबिनु द्वाइत कलम बिनु कागद । बिन अक्षर सुधि होई ॥८॥
सुधिबिनु सहज ज्ञान बिनु ज्ञाता । कहहिं कबीर जन सोई ॥९॥१६॥

मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं कि बिना मसी, बिना द्वाइत, बिना कलम, बिना कागज, बिना अक्षर शुद्ध चैतन्य है—निःअक्षर । ये अर्थ ॥८॥ गुरु-मुखः—गुरु कहते हैं कि बिना जीव जो धोखामें मग्न होता है सहजै सहज, सो कहाँ है ? बिना ज्ञान जो जानता है सो धोखा । ये अर्थ ॥ ९ ॥ १६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १७ ॥ ❀ ॥

रामहि गावै औरहि समुझावै । हरि जाने बिनु बिकल फिरे ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि ये गुरुवा लोग रामको गाते हैं और दूसरेको समुझाते हैं; परन्तु मायाका मर्म जाने नहीं । जो बानीने सबको भ्रमाया, उसको नहीं जाने । इसवास्ते व्याकुल होयके फिरते हैं । ये अर्थ ॥ १ ॥

जेहि मुख वेद गायत्री उचरे । ताके बचन संसार तरे ॥२॥
जाके पाँव जगत उठि लागे । सो ब्राह्मण जीव बद्ध करे ॥३॥

जाके मुखसे वेद-गायत्री उच्चारण होता है औ जाके मुखसे संसार मुक्त होना चाहता है ॥२॥ औ जाके पाँव संसार सब पड़ते हैं, सो ब्राह्मण जीव-वध करते हैं । ये आश्चर्य ॥ ३ ॥

आपन ऊँच, नीच घर भोजन । घीन कर्म हठि वोद्र भरे ॥४॥
ग्रहण-अमावस ढुकि-ढुकि माँगे । कर दीपक लिये कूप परे ॥५॥

आप ऊँच, औ नीच घर भिक्षा माँगते हैं, औ भोजन करते हैं औ नीच कर्म करके हठसे दान लेते हैं, पेट भरते हैं । ये अर्थ ॥४॥ ग्रहण, अमावसमें दान-प्रतिग्रह लेते हैं, औ हाथमें नाना प्रकारकी पोथी पुस्तक लेके भ्रम-कूपमें पड़ते हैं । ये अर्थ ॥ ५ ॥

एकादशी व्रत नहिं जाने । भूत-प्रेत हठि हृदय धरे ॥६॥
तजि कपूर गाँठी विष बाँधे । ज्ञान गँवाये मुग्ध फिरे ॥७॥

एकादश जो आत्मा है, सो उसका व्रत नहीं जानता । दया, क्षमा, शान्ति, आर्जव आदि ये व्रत नहीं जानता, औ भूत-प्रेत पूजन करके जीवहिंसा करता है, हृदयमें हठ धरता है । ये अर्थ ॥६॥ कपूर कहिये जीव, सो छाड़के विष कहिये विषय, सो गाँठी बाँधता है । इस प्रकारसे ज्ञान गँवाये मूर्ख चौरासीमें फिरता है । ये अर्थ ॥ ७ ॥

छीजै साहु चोर प्रतिपाले । सन्त जनाकी कूटि करे ॥८॥
कहहिं कबीर जिभ्याके लम्पट । यहि विधि प्राणी नर्क परे ॥९॥१७॥

साहु कहिये जीव, चोर कहिये अनुमान । सो अनुमानका प्रतिपाल करके जीवका नाश होता है । औ सन्तजनोंकी मसखरी करता है, ताते चौरासीको प्राप्त होता है । ये अर्थ ॥८॥ गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जो-जो बड़े-बड़े कविताकार कवि लोग भये जिह्वाके लम्पट, सो सब यही प्रकार करते-करते नर्कको प्राप्त भये । ये अर्थ ॥ ९ ॥ १७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १८ ॥ ❀ ॥

राम गुण न्यारो ! न्यारो ! न्यारो ! ॥१॥
अबुझा लोग कहाँलों बूझै । बूझनहार विचारो ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! राम कहिये आत्मा, आत्मा कहिये सच्चिदानन्द, गुण कहिये वेद । सो आत्माका निर्णय करते हैं तीन प्रकारसे—तत्, त्वं, असि । सो पारखसे न्यारा है । ये अर्थ ॥१॥ अबुझा कहिये जहाँ बुद्धि ना पहुँची, सो मिथ्या अनुमान । बूझनहार कहिये जीव । सो यह जीव अपने मिथ्या अनुमानके पीछे लगा है । कहाँलग बूझेगा ? जहाँलग कल्पना करता है, तहाँलग अनुमानकी वृद्धि होती है । ये अर्थ ॥ २ ॥

केतेहि रामचन्द्र तपसीसे । जिन्ह यह जग बिटमाया ॥३॥
केतेहि कान्ह भये मुरलीधर । तिन्ह भी अन्त न पाया ॥४॥
मच्छ-कच्छ बराह स्वरूपी । वामन नाम धराया ॥५॥
केतेहि बौद्ध निकलङ्की कहिये । तिन्ह भी अन्त न पाया ॥६॥

औ केते दश अवतार भये, तिन्ह सब खोजते-खोजते अन्त नहीं पाया, तब

हारि कहा बेअन्त * ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

* टिप्पणी:—शब्द १८ की ३, ४, ५, ६ चौपाईका भाष्यः—

केतेहि रामचन्द्र तपसी से। जिन्ह यह जग बिटमाया ॥ ३ ॥

भाष्य गुरुमुखः—अनन्त देहधारी चैतन्य जीव और कार्य-कारणरूप पाँचों तत्त्वोंका विस्तार यह सारा संसाररूप विश्व अनादिकालसे स्वयं सिद्ध है। इसको बनानेवाला कोई ईश्वरादि कर्त्ता-धर्त्ता नहीं है। कर्त्ता माना हुआ अबोध मनुष्योंकी मिथ्या कल्पना ही मात्र है, ऐसा जानना चाहिये ! इस कारण अनादिकालके संसारमें कितने ही रामचन्द्र हुए। रामचन्द्रके जन्मरूप अवतार भी कितने ही बार हुए, इनकी भी कुछ गणना हो नहीं सकती है। क्योंकि रामका जीव भी अध्यासी था। अनन्तों बार अध्यासी जीवोंका जन्म-मरण हो चुका और भी होता ही रहेगा। तपस्वी जैसे भेषधारी वनवासी राम भी कईएक हुए। वैरागी वैष्णव लोग उसी तपसीभेषमें बहुत-से हुए और अभी हैं। 'रामचन्द्र' नामधारी भी कईएक हुए और हैं। पुराणोंमें भी कहीं लिखा है कि—"जब हनुमान रामकी अँगूठी लेकर गये, बीच मार्गमें एक मुनिका आश्रम मिला। मुनिके कमण्डलुमें वह अँगूठी रखकर, फल खाकर आनेपर जब हनुमानने अँगूठी माँगी, तब मुनिने उसी कमण्डलुसे निकालकर ले जाओ कहा। उसमें देखनेपर वैसी ही अनेकों अँगूठी दिखीं। हनुमान आश्चर्यचकित हुए। मेरी लायी मुद्रिका कौन है ? पूछनेपर मुनिने कहा—इसमें जितनी मुद्रिका हैं, उतनी बार रामके अवतार हो चुके। तुम भी उतनी बार आये हो। ये सब तुम्हारी ही लायी हुई रामकी अँगूठी हैं। तुम इसे नहीं जानते हो। मैं जानता हूँ। कोई एक मुद्रिका ले जाओ ! फरक नहीं पड़ेगा। इत्यादि कहा तब एक अँगूठी लेकर हनुमान चले गये।" इसका भी तात्पर्य वही है—कितने ही रामचन्द्र तपसी जैसे हुए और होते ही जा रहे हैं, जिन्होंने इस जगत्‌में आकर बारम्बार कर्मानुसार अपने शरीरको बिटमाया=बनाया। बिना पारख अनेक वाणी-कल्पनाको भी बनाकर आप भी भ्रममें भूले जगत्‌विषयोंमें फँसा रहा, औरोंको भी खूब भ्रमाया-भुलाया। अन्तमें अध्यासवश आवागमनमें ही पड़ा रहा ॥३॥

केतेहि कान्ह भये मुरलीधर। तिन्ह भी अन्त न पाया ॥ ४ ॥

इसी प्रकार अनेक बार मुरली=बाँसुरी धारण करनेवाले कान्ह=एक आँख मूँदकर काणेके समान देखनेका नकल करनेवाले कृष्णजी भी कितने ही हो गये। भगवद्-गीता अ० ४, श्लोक ५ में भी श्रीकृष्णका वचन लिखा है :—'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ॥ तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥ ५ ॥

"हे अर्जुन ! मेरे और तेरे बहुत-से जन्म हो चुके हैं; परन्तु हे परंतप ! उन सबको तू नहीं जानता है और मैं वे सब जानता हूँ," इत्यादि। श्रीकृष्ण ही नाम और वैसे ही रूप-रङ्ग धारण करनेवाले लोग भी बहुत-से हुए और अभी हैं। इसलिए मुरलीधर कृष्ण, कन्हैया देहधारी भी कितने हुए ? उनकी गिनती नहीं हो सकती। ईश्वर, ब्रह्म आदि अनुमानकी खोज करते-करते तिन्ह=रामचन्द्र और कृष्ण आदिकोंने भी उसका

अन्त = पता, आखिरी, हद, पहुँच कुछ भी अपने देहान्ततक जान नहीं पाया। तब हार मान करके उसे बेअन्त, अगम-अथाह, अपार बतलाया। इसलिए वह किसीको प्राप्त होनेवाली कोई सत्य वस्तु नहीं है। अबुझ ब्रह्मका भ्रम मिथ्या धोखा ही है। परीक्षा करके उस भ्रम-भूलको मिटाओ ! पारखपदमें ही स्थिर हो जाओ ! ॥ ४ ॥

मच्छ-कच्छ बराह स्वरूपी। वामन नाम धराया ॥ ५ ॥

मच्छ = मत्स्यावताररूपमें जलचर मछलियाँ और कच्छ = कच्छपावताररूपमें जल-थलचर कछुवे भी अनादिकालसे अनेकों उत्पन्न हुए। समयानुसार वे मर भी गये और अभी असंख्य जलचर जलमें विचर ही रहे हैं। उसी प्रकार बराह = सूअरके स्वरूप-में अवतार धारण करनेवाले भी अबतक कितने हुए ? और कितने हैं ? उनकी गिनती हो नहीं सकती। और जिनका नरसिंह, वामन = बौना (बावन अंगुलकी देहवाला) उपेन्द्र एवं परशुराम नाम धराया गया है, जिनको हिन्दू लोग अवतारी मानते हैं, वे भी एक-दो नहीं, समयानुसार अनेकों देहधारी हुए और होते चले आ रहे हैं। नाटक करनेवाले अभी वैसे ही सब रूप बना करके दिखला भी रहे हैं। छली-कपटी, क्रोधी, हिंसक, धोखेबाज लोगोंकी अभी कोई कमी नहीं है। इसलिए वैसे अवतार भी बहुत-से हुए। वे सब भव-बन्धनोंमें ही पड़े और पड़ रहे हैं ॥ ५ ॥

केतेहि बौद्ध निकलङ्की कहिये ! तिन्ह भी अन्त न पाया ॥ ६ ॥

पुनः बौद्धावतार और निःकलङ्की अवतार जिनको कहते हैं, वैसे भी कितने ही हो गये, जिनकी संख्या की जा नहीं सकती। अभी बौद्धमतावलम्बी और निःकलङ्कीको माननेवाले लोगोंके मनुष्यदेहरूप अवतार भी बहुत-से हैं। उसी तरह त्रिगुणीरूपमें अनेकों ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि भी हो गये, अभी हैं और आगे भी होते रहेंगे। एकका शरीर न रहनेपर भी वह पद, गुण और उस पदके गुणमें आनेवाले लोग आते ही रहते हैं। अतएव वे एक-ही-एक एकबार मात्र हुए—ऐसी बात नहीं है। इसीसे वे कितने हुए ? उनकी संख्या बतायी भी जा नहीं सकती है। क्योंकि जीवका स्वरूप अमर अखण्ड है। सब जीव अध्यासवश आवागमन-चक्रमें पड़े ही हुए हैं। दश वा चौबीस अवतार माने गये सब लोग भी देहधारी जीव ही थे। असंख्य युग, अनेकों कल्प-कल्पान्तमें अनेकों अवतार हुए और वैसे ही समय आनेपर पुनः होते जाते हैं—ऐसा वर्णन शास्त्रोंमें भी लिखा है। इसलिए वे कई बार कितने ही हुए और होते ही रहते हैं। जब उनका ही बन्धन, चौरासी चक्र नहीं मिटा, तब उनके उपासकोंका बन्धन कैसे मिटेगा ? कभी नहीं मिटेगा। वैसे कितने ही दश अवतार हुए, उन लोगोंने भी अनुमानसे ब्रह्मको खोजते-खोजते कहीं उसका अन्त नहीं जान पाया। इससे वे थकित हो हारकर उसे बेअन्त कहे और जड़ाध्यासी बन आवागमन-चक्रमें ही पड़े रहे। अब उनको माननेवालोंकी मुक्ति कैसे होगी ? कभी नहीं होगी। अभी उनको ढूँढ़ करके भी कहीं उनका अन्त नहीं पाओगे। अतः पारखबोध प्राप्त करके वैसी मिथ्या मानन्दीको परित्याग करो ! ॥ ६ ॥

केतेहि सिद्ध साधक संन्यासी । जिन्ह बनवास बसाया ॥७॥
केतेहि मुनिजन गोरख कहिये । तिन्ह भी अन्त न पाया ॥८॥

केते ही कपिल आदि सिद्ध हुये औ केते साधक भये औ केते ही संन्यासी भये औ केते ही मुनि औ केते ही गोरख भये, तिन्ह भी अन्त न पाये । जहाँलग कल्पना किया, तहाँलग बढ़ती गई; औ जहाँ थका, तहाँ 'एक आत्मा' कहीके अनुमानमें बँधा । ये अर्थ ॥ ७ ॥ ८ ॥

जाकी गति ब्रह्मै नहिं जानी । शिव सनकादिक हारे ॥९॥
ताके गुण नर ! कैसेक पैहो ? कहहिं कबीर पुकारे ॥ १० ॥१८॥

जा अनुमानको ब्रह्माने नहीं जाना, शिव-सनकादिक सब हारि रहे हैं ॥९॥ ताके खोजमें सब नर पड़े हैं, सो कैसे पार पावेंगे ? गुरु कहते हैं कि जाको सब जग ब्रह्म करके मानते हैं, सो अनुमान मिथ्या है । नहीं तो विचार करके देखो ! ये अर्थ ॥ १० ॥ १८ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १९ ॥ ❀ ॥

ये तत्तु राम जपो हो प्रानी ! तुम बूझहु अकथ कहानी ! ॥१॥
जाके भाव होत हरि ऊपर । जागत रैनि बिहानी ॥२॥

टीका मायामुखः—माया कहती है कि हे जीव ! एक आत्मा सत्य, और सब मिथ्या । सो तुम जानो ! यह बात अकथ है ॥१॥ जिसका भाव भगवान्‌पर रहता है, सो आठ प्रहर ध्यान कर-करके रात-दिन बीत जाता है । ये अर्थ ॥ २ ॥

डाइनि डारै स्वनहा डोरे । सिंह रहै बन घेरे ॥३॥
पाँच कुटुम्ब मिलि जूझन लागे । बाजन बाजु घनेरे ॥४॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि इस प्रकारकी बातें गुरुवा लोग दृढ़ाते हैं; तब स्वनहा कहिये ॐकार, तासों जीवकी सुरति लगी । ये जीव सिंह, औ बन = बानी । बानी सुनके सो जीव बानीमें घिरे रहते हैं । ये अर्थ ॥३॥ पाँच कुटुम्ब कहिये पाँच देह, पाँच कुटुम्ब कहिये पाँच इन्द्रिय; सो इनमें मिलके जीव सब नाश होने लगे । तब बाजन कहिये बानी, सो कल्पि-कल्पिके बहुत बानी बोले । ये अर्थ ॥४॥

रेहु मृगा संशय बन हाँके। पारथ बाणा मेलै ॥५॥
सायर जरे सकल बन डाहे। मच्छ अहेरा खेलै ॥६॥

रेहु कहिये ब्रह्म, मृगा कहिये मन। सो मनसे जो कल्पना उठी, सो संशय। संशयसे जो बनी, सो बानी। बन कहिये बानीको। इस प्रकारसे बानी हुई। आगे सब बानीका विचार किया, चार देहका साक्षी हुआ, तब कछु आगे सूक्ष्म परा नहीं। तब कहा कि मैं साक्षी, बोध। इस प्रकारसे अनुमानमें रहा। सब बानी छोड़के निर्विकल्प होके मनहीमें ब्रह्म हुआ। ये अर्थ। पारथ कहिये पण्डित, बाण कहिये ज्ञान। सो नाना प्रकारके ज्ञान पण्डित लोग बोध करने लगे। ये अर्थ ॥५॥ सायर कहिये बानी, बन कहिये संसार। सो बानीकी अग्निमें सब जग जरता है। मच्छ कहिये जीव; सो सब जीव अपनी-अपनी कल्पनासे बानीका जारा बनाते हैं, फिर एक-को-एक फँसाते हैं। ये अर्थ ॥ ६ ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! जो यह पद अर्थावै ॥७॥
जो यह पदको गाय विचारे। आप तरे औ तारे ॥८॥१९॥

गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! कबीर कहाँ है? जो यह पद परखावै, सोई पारख, सोई कबीर ॥७॥ जो इस पदको गायके विचार करे, सो आप भी तरे औ केते ही जीवोंको तारे। सबको परखके पारखरूप हुआ। ये अर्थ ॥८॥१९॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २० ॥ ❀ ॥

कोइ राम रसिक रस पीयहु गे! पीयहु गे युग जीयहु गे! ॥१॥

टीका मायामुखः—जो सबमें रमा सो राम। रामरस कहना—जो सुनके विचार करके, निश्चय करके जाना कि मैं आत्मा एकरस। सो कोई मुमुक्षुजन 'एक आत्मा' ऐसा जानै, तो आवागमनसे रहित होय। ये अर्थ ॥१॥

फलकृत बीज नहिं बकला। शुक पन्छी तहाँ रस खाई ॥२॥
चुवै न बुन्द अङ्ग नहिं भीजै। दास भँवर सब सङ्ग लाई ॥३॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि इस प्रकारसे मायाने फलकी अंक्रित तो बताई। अंक्रित कहिये अनुमानको। रूप-रेख कछु नहीं, तहाँ शुक पन्छी कहिये जीवको—सो रस खाने लगे, पीने लगे, अनुभव लेने लगे ॥२॥ शुकाचार्य

आदि दै जो फल अनुमान किया, सो अनुमानका फल। कदहीं उसमेंसे रसकी एक बून्द चूवती भी नहीं, औ अङ्ग भीजा भी नहीं। नाहक अनुमानके गुलाम होयके अनुमानमें फँदते हैं कमल-भ्रमर न्याय। ये अर्थ ॥ ३ ॥

निगम रसाल चारि फल लागे। तामें तीनि समाई ॥४॥
एक दूरि चाहें सब कोई। जतन-जतन काहु बिरले पाई ॥५॥

टीका मायामुखः-मायाका उपदेश ऐसा है कि वेदने जो चार फल बताये-अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि; सो उनका रस देखके सुर, नर, मुनि सब बन्धनमें परे ॥४॥ इसके आगे और कुछ है, जो सबका जाननेवाला सर्वसाक्षी। सो उसकी चाह सब कोई करते हैं; परन्तु यतन-यतन अनेक जन्ममें कोई बिरलेको प्राप्त होता है। ये अर्थ ॥ ५ ॥

गये बसन्त ग्रीषम ऋतु आई। बहुरि न तरिवर तर आवै ॥६॥
कहैं कबीर स्वामी सुखसागर! राम मगन होय सो पावै ॥७॥२०॥

जब पञ्च विषय छूट जायेंगे, तब मन स्थिर हो जायगा। जब मन लय हुआ, तब आवागमनसे रहित हुआ। फिर ओ चोलेमें नहीं आवता। ये अर्थ ॥६॥ अब इसका साधन कहता हौं—प्रथमारम्भमें मन नाभिमें स्थिर करै! 'सोहं-सोहं' शब्दमें जब मग्न होवै, तब आप आपन पौ सब विसर्जन होके सुखके समुद्रमें बूड़े! सोई आत्म-स्थितिको प्राप्त होता है, मुक्त होता है। ये अर्थ ॥ ७ ॥ २० ॥

॥ * ॥ शब्द ॥ २१ ॥ * ॥

राम न रमसि कौन डण्ड लागा? मरि जैबे का करबे अभागा ॥१॥
कोइ तीरथ कोइ मुण्डित केसा। पाखण्ड मन्त्र भरम उपदेशा ॥२॥
विद्या वेद पढ़ि करे हङ्कारा। अन्तकाल मुख फाँके छारा ॥३॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव! तू कौन धोखेमें लगा है? क्यों धोखेसे न्यारा नहीं होता? अरे हे अभागी! तू मर जायगा, फिर तेरी सहायता कोई नहीं करेगा। ये अर्थ ॥१॥ कोई तीरथ करता है। सो तीरथ भी अपनी जगह रह जायगा, तेरी सहायता नहीं करनेका। क्योंकि तीरथ जड़ औ तू चैतन्य। कोई मूँड़ मुँड़ाय संन्यासी भये; सो भी जड़ अपनी जगह रहेगा। तेरी कल्पना तेरी

सहायता क्या करेगी ! पाखण्डीलोगोंने जो भ्रम बताया है मन्त्र उपदेश, सो भी जड़ तेरी कल्पना। उससे तेरा कल्याण नहीं होनेका ॥२॥ औ विद्या–वेद पढ़िके जो अहङ्कार करते हैं, सो भी कल्पना मिथ्या । आखिरको मुखमें खाक पड़ेगी । अरे ! तू चैतन्य होयके जड़ कर्मोंका आश्रित हुआ । ता जड़से तेरा कल्याण कैसे होयगा ? औ जड़ तेरी सहायता कैसे करेगा ! । ये अर्थ ॥ ३ ॥

दुःखित–सुखित ह्वै कुटुम जेवाँवै । मरण बार एकसर दुःख पावै ॥४॥
कहहिंकबीर यहकलि है खोटी। जो रहै करवा सो निकरै टोटी॥५॥२१

अपना सुख छोड़के नाना प्रकारके कर्म, कष्ट करके कुटुम्बका प्रतिपालन करता है । मरण बेर वे भी सङ्ग होते नहीं । अपने ही दुःख भोगनेको परता है ॥४॥ गुरु कहते हैं कि हे जीव ! सब मिथ्या धोखा है । यह बानी जो गुरुवा लोगोंने बताई, सो सब मिथ्या । पारख कहीं नहीं । देखो—जो जिसके घटमें रही, सो उसके मुखमेंसे निकली कल्पना । ये अर्थ ॥ ५ ॥ २१ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २२ ॥ ❀ ॥

अवधू ! छाड़हु मन विस्तारा ॥१॥
सो पद गहो जाहिते सद्गति । पारब्रह्म सो न्यारा ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे योगी लोगो ! हे ज्ञानी लोगो ! जो मनसे कल्पना करके बानीका विस्तार भया औ योग विस्तार भया औ अनुमान विस्तार भया, सो छोड़ो ॥१॥ पारखको गहो, जासे सब धोखा मिट जाय । जो पारब्रह्मसे न्यारा सर्व पारखी । ये अर्थ ॥ २ ॥

नहीं महादेव नहीं महम्मद । हरि–हजरत कछु नाहीं ॥३॥
आदम–ब्रह्मा नहिं तब होते । नहीं धूप नहिं छाहीं ॥४॥
असी सहस्र पैगम्बर नाहीं । सहस्र अठासी मूनी ॥५॥
चन्द्र सूर्य तारागण नाहीं । मच्छ–कच्छ नहिं दूनी ॥६॥
वेद–कितेब सुमृति नहिं सञ्जम । नहिं जीवन परछाँई ॥७॥
बाँग निमाज कलमा नहिं होते । रामहु नाहिं खुदाई ॥८॥
आदि अन्त मन मध्य न होते । आतश पवन न पानी ॥९॥

लख चौरासी जीव जन्तु नहिं । साखी शब्द न बानी ॥१०॥

टीका ब्रह्ममुखः—न महादेव, न महम्मद, न हरि, न हज़रत ॥३॥ न आदम, न ब्रह्मा, न धूप, न छाँहीं ॥४॥ न एक लाख अस्सी हजार पैगम्बर, न अठासी सहस्र ऋषि ॥५॥ न चन्द्र, न सूर्य, न तारागण, न मच्छ, न कच्छ, न सृष्टि ॥६॥ न वेद, न किताब, न स्मृति, न योग, न जीव, न माया ॥७॥ न बाँग, न निमाज, न कलमा, न राम, न खुदा ॥८॥ न आदि, न अन्त, न मध्य, न मन, न बुद्धि, न अग्नि, न पवन, न पानी ॥९॥ न लख चौरासी जीव-जन्तु, न साखी, न शब्द, न बानी; ये कछु न थे। पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द अद्वैत एकरस। ये अर्थ ॥ १० ॥

कहहिं कबीर सुनो हो अवधू ! आगे करहु विचारा ॥११॥
पूरण ब्रह्म कहाँ ते प्रगटे ? कृत्तिम किन्ह उपराजा ॥१२॥२२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे अवधू ! आगे विचार करो ॥११॥ जो पूर्ण ब्रह्म सच्चिदानन्द कहते हो, सो कहाँसे प्रकटे ? किनने अनुमान किया ? औ कौनको आनन्द हुआ ? औ ये बानी, वेद, जगत् आदि कर्त्तव्य किसने किया ? कहाँ रहिके ? सब मनुष्यकी ही कल्पना है। ये अर्थ ॥ १२ ॥ २२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २३ ॥ ❀ ॥

अवधू ! कुदरतकी गति न्यारी ! ॥१॥
रङ्क निवाज करे वै राजा। भूपति करे भिखारी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे ज्ञानी ! हे योगी ! ये नाना प्रकारकी सिद्धि औ नाना प्रकारके धोखा जीवको देवै, सो कुदरत। कुदरत कहिये माया ॥१॥ जो कङ्गालको राजा करै, औ राजाको भिखारी करै। मनुष्य जो सबका राजा था, उसको याचक बनाया औ धोखा जो पाषाण आदिक, उसको दाता बनाया। ये अर्थ ॥ २ ॥

याते लोग हरफना लागे। चन्दन फूल न फूला ॥३॥
मच्छ शिकारी रमें जङ्गलमें। सिंह समुद्रहि झूला ॥४॥

"याते लोग हरफना लागे।" लोग कहिये जीव, हर कहिये जामें सब हर गये, फना कहिये जो कछु नहीं। सो धोखेमें ये जीव फूले तत्त्वमसि कहायके। ये

अर्थ ॥३॥ मच्छ शिकारी कहिये गुरुवा लोग, सो संसारमें रमते हैं। उनकी बातें सुनिके जीव सिङ्ग, सो अनुमान समुद्रमें झूलता है। ये अर्थ ॥ ४ ॥

रेंड़ रूख भये मलयागिर। चहुँ दिश फूटी बासा ॥५॥
तीन लोक ब्रह्माण्ड-खण्डमें। अँधरा देखै तमाशा ॥६॥

रेंड़ रूख कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये धोखा। सो धोखा निश्चय हुआ। चारों तरफसे वासना फूटी ॥५॥ धोखामें जीव अन्धा हुआ, औ पिण्ड-ब्रह्माण्डमें तीन-लोकका तमासा देखने लगा—मुद्रा, ध्यान-धारणा लगायके। ये अर्थ ॥५॥६॥

पङ्गा मेरु सुमेरु उलंघै। त्रिभुवन मुक्ता डोलै ॥७॥
गूङ्गा ज्ञान-विज्ञान प्रकाशै। अनहद बानी बोलै ॥८॥

पङ्गा कहिये मन, मन कहिये कल्पना। सो कल्पना मेरु-सुमेरुपर उड़ने लगी। तब विचार करके अर्ध, ऊर्ध्व, मध्य; ये तीन लोकमें एक आत्मा, ये निश्चय किया मुक्त होके। ये अर्थ ॥७॥ फिर मौन हुआ, कहा कि आत्मा अनिर्वाच्य। तब विज्ञान आत्म-निर्णय और ज्ञान ब्रह्म-निर्णय प्रकाश किया। बेअन्त बानी बोला कि आत्मा बेअन्त। इसका हद्द नहीं। ये अर्थ ॥ ८ ॥

अकाशहि बाँधि पतालहि पठवै। शेष स्वर्ग पर राजै ॥९॥
कहैं कबीर राम है राजा! जो कछु करै सो छाजै ॥१०॥२३॥

आकाश कहिये ब्रह्माण्ड, और पाताल कहिये पिण्डण्ड; सो पिण्डके श्वासको ब्रह्माण्डमें स्थिर किया। शेष कहिये ब्रह्म; सो ब्रह्माण्ड घर करके ब्रह्म हुआ, धोखेमें परा। ये अर्थ ॥९॥ जीवमुखः—जीव कहता है कि राम राजा है, सबका मालिक है, जो कछु करे सो सही। ये अर्थ ॥ १० ॥ २३ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २४ ॥ ❀ ॥

अवधू! सो योगी गुरु मेरा। जो यह पदका करे निबेरा ॥१॥
तरिवर एक मूल बिनु ठाढ़ा। बिनु फूले फल लागा ॥२॥
शाखा पत्र किछू नहिं वाके। अष्ट गगन मुख गाजा ॥३॥

टीका जीवमुखः—हे ज्ञानी अवधू! सो योगी गुरु मेरा! जो ये आत्म-पदका नित्यानित्य विचार करके जानते हैं कि आत्मा नित्य औ सब जग अनित्य।

ये अर्थ ॥१॥ तरिवर कहिये देह, एक कहिये जीव; सो ये जीवरूप कहाँसे पैदा भया बिना मूल ? आत्माकी जगहपर तो स्फुरणा भी नहीं औ जगत् निर्माण हुआ, सो कहाँसे हुआ ? ॥२॥ शाखा कहिये गुण, पत्र कहिये बानी—सो तो आत्माकी जगह नहीं। आत्मा तो निर्गुण, अनिर्वाच्य, सप्त स्वर्ग-अपवर्ग पर्यन्त अखण्ड एकरस। ये अर्थ ॥ ३ ॥

पौ बिनु पत्र करह बिनु तुम्बा। बिनु जिभ्या गुण गावै ॥४॥
गावनहार के रूप न रेखा। सतगुरु होय लखावै ॥५॥

टीका मायामुखः—माया कहती है कि जहाँ रूप नहीं, सो पौ। पौ कहिये आत्मा, बिनु पत्र कहिये बिना रूप। सो रूप कहाँ है ? मिथ्या मृगजलवत्। ये अर्थ। करह कहिये आधार, तुम्बा कहिये आत्मा; सो आत्मा निराधार सर्व शून्य। ये अर्थ। जिसकी सत्तामात्रसे सब जगत् निर्माण हुआ। बिना जिह्वा वेद गाया ॥४॥ सो गानेवालेका रूप-रेखा कछु नहीं। जो सत्गुरु ब्रह्मा, सनकादिक सम मिलें, तो ज्ञान-अञ्जन देके दिखावें। ये अर्थ ॥ ५ ॥

पन्छिक खोज मीनको मारग। कहैं कबीर दोउ भारी ॥६॥
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम ! मूरतिकी बलिहारी ! ॥७॥२४॥

आत्म-स्थिति दिखानेको विहङ्गम मार्ग—खेचरी आदि पाँच मुद्रा, औ मीन मार्ग—श्वासा उलटि चलावना औ सर्व विषयनका लय होना औ सर्वोपरि आनन्दकी प्राप्ति होना; ये दोनों महा कठिन हैं ॥६॥ अरे ! जाका पारावार नहीं, अपरम्पार है, सर्वसाक्षी, उत्तम पुरुष निःअक्षर, सो मूर्तिकी बलिहारी ! ये अर्थ ॥ ७ ॥ २४ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २५ ॥ ❀ ॥

अवधू ! वो तत्तु रावल राता। नाचै बाजन बाजु बराता ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि ये ज्ञानी ! ये योगी लोग ! वह तत्त्वमा राते, जहाँ सनकादि, नारदादि सब रते थे—ब्रह्मपदमें। ये अर्थ। बाजन कहिये इन्द्रिय, बराता कहिये तत्त्व-प्रकृति। जब श्वासा ब्रह्माण्डको खैंची औ नाभि-स्थानसे पलटिके डण्डायमान हुई, तब इन्द्रिय सब कम्पायमान होयके ब्रह्माण्डमें दश प्रकारका नाद बजने लगा। ये अर्थ ॥ १ ॥

मौरके माथे दुलहा दीन्हा । अकथ जोरि कहाता ॥२॥
मँड़येके चारन समधी दीन्हा । पुत्र व्याहिल माता ॥३॥

सो नाद, बिन्दु औ कला; तीनों मिलिके ज्योति-प्रकाश हुआ । सो ज्योतिको मौर कहिये, दुलहा कहिये जीव । सो जीव ज्योतिके ऊपर दिया । जो कथनेमें न आवे सो अकथ, अकथ कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये भ्रम—सो खाविन्द कहाने लगा ॥२॥ मँड़या कहिये वेद, चारन कहिये उपदेश, समधी कहिये ब्रह्मज्ञानी, पुत्र कहिये जीव, माता कहिये गायत्री, गायत्री कहिये बानी । सो बानीका उद्देश ब्रह्मज्ञानी लोगोंने जीवोंको दृढ़ाया वेदके प्रमाणसे, तब जीवकी लगन बानीसे लगी । ये अर्थ ॥ ३ ॥

दुलहिन लीपि चौक बैठारी । निर्भय पद परकाशा ॥४॥
भातै उलटि बरातिहि खायो । भली बनी कुशलाता ॥५॥

दुलहिन कहिये वृत्ति, सो वृत्ति बानीमें लिप्त होयके शून्य हुई । चौक कहिये चित्त, मन, बुद्धि औ अहङ्कार । सो बुद्धि बोधमें लीन हुई, मन अहङ्कारमें लीन हुआ, अहङ्कार चित्तमें लीन हुआ औ चित्त बुद्धि लेके अन्तःकरणमें लीन हुआ । इस प्रकारसे चारों स्थिर बैठके ब्रह्म निर्भय पद प्रकाश हुआ । सो ब्रह्म जीवका अनुमान जीवसे उठा ॥४॥ भात कहिये अन्तःकरण, औ बराती कहिये चित्त, मन, बुद्धि आदि सर्व तत्त्वनको खाया । तब जीवने मान लिया कि भली कुशल भयी, हम जीवन्मुक्त भये । ये अर्थ ॥ ५ ॥

पाणि ग्रहण भयो भौ मण्डन । सुषमनि सुरति समानी ॥६॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! बूझो पण्डित ! ज्ञानी ! ॥७॥२५॥

इस प्रकारसे जगत्में वानी ग्रहण भई औ लौ लगी ब्रह्मसे । सुषुमनामें सुरति समाई । सो सब धोखा मिथ्या है ॥६॥ हे सन्तो ! सुनो और परखो ! जो पण्डित ब्रह्मा औ ज्ञानी महादेव, इन्होंने जो बूझा सो धोखा । ये अर्थ ॥७॥२५॥

॥ ❋ ॥ शब्द ॥ २६ ॥ ❋ ॥

भाई रे ! बहोत बहोत क्या कहिये ? कोई बिरले दोस्त हमारे ॥१॥
गढ़न भञ्जन सँवारन आपै । ज्यों राम रखे त्यों रहिये ॥२॥

टीका गुरुमुखः—भाई रे ! कहिये जीवको; सो गुरु कहते हैं कि बहुत-बहुत क्या कहना ? कोई बिरले दोस्त हमारे । जो कोई पारखसे दोस्ती करै सो पारखी ये अर्थ ॥१॥ जीवमुखः—जीव कहता है कि पैदा करनेवाला औ नाश करनेवाला औ प्रतिपालन करनेवाला एक आपै राम है । सो जैसा भगवान् रक्खे, तैसा रहना । ये अर्थ ॥ २ ॥

आसन पवन योग श्रुति-सुमृति । ज्योतिष पढ़ि बैलाना ॥३॥
छौ दर्शन पाखण्ड छियान्नवे । ये कल काहु न जाना ॥४॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि अब कोई मायाकी बातें सुनके आसन, पवन, योग साधने लगा रामको मिलनेके वास्ते । कोई श्रुति-स्मृति पढ़िके दिवाना हुआ, अनुमानमें रत हुआ । ये अर्थ ॥३॥ छौ दर्शन, छियानवे पाखण्ड, ये सब हुए । परन्तु ये धोखा कोई नहीं जाना । ये अर्थ ॥ ४ ॥

आलम दुनियाँ सकल फिरि आये । ये कल उहै न आना ॥५॥
तजि करिगह जगत्र उचाये । मनमों मन न समाना ॥६॥

आलम दुनिया सबै फिरि आये; लेकिन वह खाविन्द जिसे बनाया, तिसको कोई न ले आया ॥५॥ करिगह कहिये संसार, सो संसार छोड़िके जगत्से उदास हुए । परन्तु जिस खाविन्दको इन्होंने माना, सो कदहीं इनके मनमें आयके समाया नहीं । मनकी कल्पना । ये अर्थ ॥ ६ ॥

कहहिं कबीर योगी औ जङ्गम । फीकी उनकी आशा ॥७॥
रामहि नाम रटै ज्यों चातक । निश्चय भक्ति निवासा ॥८॥२६॥

इसवास्ते गुरु कहते हैं कि हे जीव ! कल्पना कहाँ है ? जीवके अनुमाने होती है । इसवास्ते योगी और जङ्गम, इनको कछु आकार मिला नहीं । जब उनकी आशा फीकी परी ॥७॥ तब 'रामनाम' रटने लगे—जैसे चातक । ऐसा निश्चय भक्तिमें किया कि जैसा सब बानी कहैं, सो प्रमाण है । जैसे बड़े-बड़े चले गये, तैसे अपने भी चलना । ये अर्थ ॥ ८ ॥ २६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २७ ॥ ❀ ॥

भाई रे ! अदबुदरूप अनूप कथ्यो है । कहौं तो को पतिआई ?॥१॥

जहाँ–जहाँ देखो तहाँ-तहाँ सोई। सब घट रहा समाई ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे भाई रे ! जहाँ चित्त, मन, बुद्धि पहुँ-चती नहीं; ऐसा अद्भुत रूप बड़े-बड़े गुरुवालोगोंने कथा। अब मैं कहौं कि झूठ अनुमान है, तो कोई नहीं मानता, पतियाता नहीं ये अर्थ ॥१॥ जहाँ-जहाँ देखौ, तहाँ-तहाँ सोई अनुमान घट-घटमें समाय रहा है ॥ २ ॥

लक्ष बिनु सुख दरिद्र बिनु दुःख । नीन्द बिना सुख सोवै ॥३॥
जस बिनु ज्योति रूप बिनु आसिक। ऐसो रतन बिहूना रोवै ॥४॥

लक्ष कहिये देखना, सो बिना देखे सुख माना। जैसे द्रव्य अपने पास है नहीं औ आँखिसे कभी देखा भी नहीं, औ सुख मान लिया कि मैं भाग्यवान् ! सो मिथ्या है। ऐसा आत्मा-ब्रह्म भी मिथ्या है। कि जैसा कोई बड़ा भाग्यवान् है, सो स्वप्नमें दुःखित भया कि मैं महादरिद्री, महादुःखी। सो मिथ्या। इस प्रकारसे सब जगत् विचार बिना दरिद्र–दुःखी भया। दरिद्र कहिये ब्रह्म, दुःखी कहिये जीव। सो नाना प्रकारकी कल्पना करिके आँखि मूँदिके ध्यान लगाया। नींद बिना सुषुप्ति हुई। ये अर्थ ॥३॥ तब बिना उजियारेका ज्योति-प्रकाश हुआ औ बिना रूप जीव आशिक हुआ। ऐसे सब बिना विचार अन्धे हो रोते हैं। ये अर्थ ॥४॥

भ्रम बिनु गञ्जन मणि बिनु नीरख। रूप बिना बहु रूपा ॥५॥
थिति बिनु सुरति रहस बिनु आनन्द। ऐसो चरित अनूपा ॥६॥

सब मिथ्या अनुमानमें परे। सो बिना भ्रम, नाहक भ्रम करिके जीवनको गञ्जन होता है, दुःख होता है। बिना मणि हीराकी कीमत करते हैं। बिना रूप सब देखते हैं बहुरूप। सनक--सनन्दन आदि सबने ठहराया कि निर्गुण ब्रह्म, रूप-रेख रहित। ये अर्थ ॥५॥ स्थिति कछु है नहीं औ नाहक सुरति रक्खी है सोहं शब्दमें। सोहं शब्दकी उत्पत्ति नाभिसे। सो नाभि नाशवन्त औ शब्द भी नाश-वन्त। सो वो शब्दमें सुरति रक्खी औ बिना जागृति, बिना जाने आनन्द हुआ, मग्न हुआ। ये अर्थ। ऐसा चरित्र गुरुवा लोग करते हैं। ये आश्चर्य मिथ्या धोखा। ये अर्थ ॥ ६ ॥

कहहिं कबीर जगत हरि मानिक। देखो ! चित अनुमानी ॥७॥
परिहरि लाख लोभ कुटुम तजि। भजहु न शारङ्गपानी ॥८॥२७॥

गुरु कहते हैं कि हे जीव ! सब जगत्‌ने जो मानिक माना, सो मानिक कहाँ है ? जिसको अपने चित्तके अनुमानसे देखते हैं, सो सब मिथ्या धोखा जानो ! ॥७॥ जाने सबका मन हर लिया, सो उन्मनी माया झाँईं। ये अर्थ ॥८॥२७॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २८ ॥ ❀ ॥

भाई रे ! गइया एक विरञ्चि दियो है। गइया भार-अभार भौ भारी॥१॥
नौ नारीको पानि पियतु है। तृषा तेउ न बुझाई ॥२॥

टीका गुरुमुखः—भाई रे ! कहिये जीवको, गइया कहिये बानी, बानी कहिये ॐकार; बिरञ्चि कहिये ब्रह्माको। सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जो बानी ब्रह्माने जगत्‌में फैलायके दृढ़ाई, सो उस बानीका भ्रम बहुत बढ़ा। ये अर्थ ॥१॥ नौ नारी कहिये नौ व्याकरण, पानी कहिये बानी। सो नौ व्याकरणकी बानी पढ़ी, परन्तु तृषा तो बुझाई नहीं। ये अर्थ ॥ २ ॥

कोठा बहत्तर औ लौ लावै। बज्र केंवार लगाई ॥३॥
खूँटा गाड़ि दवरि दृढ़ बाँधेउ। तैयो तोर पराई ॥४॥

तब बहत्तर कोठासे स्वासा खैंचिके धोखेमें लौ लगाई, बज्र केंवार आँखि-सों लगाय लिया। ये अर्थ ॥३॥ खूँटा कहिये ब्रह्म, सो अनुमानमें सुरति दृढ़ बाँधी औ मौन हुआ कि मैं औ मेरी सब मिथ्या। नाभिमें सुरति लगाई, तब उस नाभिसे वोहं-सोहं दो अक्षर उठा जीवके अनुमानसे। फिर ये जीव मगन हुआ। ताहूपर मौन तोरिके आगेको बढ़ा। अब तीन पद बाँधा कि वोहं कहिये त्वंपद, सोहं कहिये तत्पद—दोनों पद मिलके मग्न हुआ सो असिपद। इस प्रकारसे त्रिपुटी अनुमान करके तीनों पदका विचार किया। ये अर्थ ॥ ४ ॥

चारि वृक्ष छौ शाखा वाके। पत्र अठारह भाई ! ॥५॥
येतिक ले गम कीहिसि गइया। गइया अति रे ! हरहाई ॥६॥

सोई चार वृक्ष वेद, छौ शास्त्र छौ शाखा, अठारह पुराण पत्ता, एक बानी-का वृक्ष पैदा किया। ये अर्थ ॥५॥ एतिक बानी लेके ब्रह्मादि, सनकादि सबने गम वा गमन किया; परन्तु वही बानीने सबको भ्रमाया। बड़ी हरहाई। ये अर्थ।

ई सातों औरों हैं सातों। नो औ चौदह भाई ! ॥७॥
येतिक ले गइया खाय बढ़ायो। गइया तैयो न अघाई ॥८॥

दो कल्पना किया—समष्टि, व्यष्टि। औ ई सातों कहिये पाँचों तत्त्व, छठवाँ मन, सातवाँ जीव; औरों हैं सातों कहिये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, हिरण्यगर्भ औ ईश्वर; ये समष्टि–व्यष्टि प्रमाण किया। नौ कहिये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, चित्त, मन, बुद्धि औ अहङ्कार। चौदह कहिये चौदह देवता ॥७॥ एतिक सब लेके खाय डारा वह बानीने, परन्तु ताहूपर गइया जो है बानी, सो अघाई नहीं औ खाती चली जाती है। ये अर्थ ॥ ८ ॥

पुरतामें राति है गइया। सेत सीङ्गि है भाई ! ॥ ९ ॥
अबरण वर्ण किछउ नहिं वाके। खद्ध–अखद्धहिं खाई ॥ १० ॥

जब वोहं–सोहं दो शब्द नाभिसे उठने लगे औ उनमें सुरति लगी; तब शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, अहङ्कार, बुद्धि, चित्त—ये सब मनमें लीन हुए। मन उन्मुन निर्विकल्प हुआ, तब सब नाश हुए। ये अर्थ। निर्विकल्प हुआ तब सर्वव्यापी हुआ। तब पूर्ण होयके वो बानी फिर उसमें राती। सेत कहिये हंस, हंस कहिये शुद्ध। सो मैं परमहंस, परम शुद्ध ऐसा कहाये। ये अर्थ ॥९॥ तब कहा कि मैं अवर्ण; वर्ण मेरे कछु नहीं। मैं खद्ध-अखद्ध सब चराचर सम, ऐसा कहिके कौन मरता है ? कौन जीता है ? एक आत्मा निरन्तर, ऐसा कहिके एक-अनेक भक्षण करने लगा। ये अर्थ ॥ १० ॥

ब्रह्मा–विष्णु खोजि ले आये। शिव सनकादिक भाई ! ॥११॥
सिद्ध अनन्त वाके खोज परे हैं। गइया किनहुँ न पाई ॥ १२॥

यह खोज ब्रह्मा औ विष्णुने लाया। सोई शिव, सनकादिकने ग्रहण किया ॥११॥ औ सिद्ध अनन्त वाके खोजमें परे हैं; परन्तु वो बात काहूने जान न पाई। ऐसी बात माया उपदेश करती है। ये अर्थ ॥ १२ ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! जो यह पद अर्थावै ॥१३॥
जो यह पदको गाय विचारै। आगे होय निर्बाहै ॥१४॥२८॥

सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जो मायाने उपदेश किया, सो मिथ्या भ्रान्ति। जो यह पदको निर्णय करै, सो पारखी ॥१३॥ औ ये पद तत्त्वमसि आदिक गायके विचार करे औ आगे पारखको प्राप्त होय, तब आवागमनसे रहित होय। ये अर्थ ॥ १४ ॥ २८ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ २९ ॥ ❀ ॥

भाई रे ! नयन रसिक जो जागे ॥१॥
पारब्रह्म अविगति अविनाशी । कैसहुकै मन लागे ॥२॥

टीका मायामुखः—माया उपदेश करती है कि हे जीव ! जो नैननमें प्रेम जागे, औ जीवको अनुराग होय ॥१॥ कैसे ही तरहसे भी, जो पारब्रह्म अविगत है, जाकी गति ब्रह्मादि नहीं जानते, अविनाशी—जाको नाश नहीं, उसमें मन लगे । ये अर्थ ॥ २ ॥

अमली लोग खुमारी तृष्णा । कतहुँ सन्तोष न पावै ॥३॥
काम-क्रोध दोनों मतवाले । माया भरि-भरि आवै ॥४॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जो मायाने उपदेश किया, सो जीवको निश्चय हुआ, औ सब लोग विरही हुये । अनुमानकी खुमारी चढ़ी औ तृष्णा बढ़ी । सो कहीं सन्तोष न मिला, तब 'सब आत्मा' ये निश्चय करता है ॥३॥ इस प्रकारसे काम कहिये ब्रह्मा, क्रोध कहिये शङ्कर—सो दोनों मस्त हुये; औ कल्पना भरि-भरि आवने लगी, तब नाना प्रकारकी बानी बोले । ये अर्थ ॥ ४ ॥

ब्रह्म कुलाल चढ़ाइनि भाठी । लै इन्द्री रस चाहै ॥५॥
सङ्गहि पोच ह्वै ज्ञान पुकारे । चतुरा होय सो पावै ॥६॥

ब्रह्म कहिये भ्रमको, कुलाल कहिये कुम्हारको, औ भाठी कहिये रस्तेको । सो भ्रममें परा औ 'मैं चैतन्य सर्व कर्त्ता' ऐसा कहा औ नाना प्रकारके ज्ञान वेद आदि सब चलाया । कि प्रथमारम्भमें जो मानुष था, वह अहन्ता ग्रहण करके 'मैं ब्रह्म' ऐसा भाव लिया, तब एक स्त्रीरूप पैदा भया । ताते कर्त्ता कुम्हार बने, जो नाना प्रकारके घट पैदा किये, उत्पत्तिका रास्ता चलाये । अब सब इन्द्रिनका रस लेने चाहते हैं ॥५॥ औ उसी स्त्रीके सङ्गमें सभी खाली हुये औ नाना प्रकारके ज्ञान बोले कि कोई चतुर होय सो पावेगा । ये अर्थ ॥ ६ ॥

सङ्कट सोच-पोच यह कलिमा । बहुतक व्याधि शरीरा ॥७॥
जहाँ धीर गम्भीर अति निश्चल ! तहाँ उठि मिलहु कबीरा ॥८॥२९॥

सो गुरु कहते हैं कि इस मिथ्या बानीमें औ स्त्रीमें नाना प्रकारका कष्ट है

औ नाना प्रकारको कल्पना है औ आवागमन है औ नाना प्रकारकी व्याधि शरीरको है औ नाना प्रकारकी चिन्ता है ॥७॥ ताते बानी, स्त्री आदि सर्व मिथ्या उपाधि। सो तू त्यागन कर और जहाँ धीरज—विचार सहित पारख है निश्चल, तहाँ उठिके मिलो—हे जीव ! । ये अर्थ ॥ ८ ॥ २९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३० ॥ ❀ ॥

भाई रे ! दुइ जगदीश कहाँ ते आया ? कहु कौने बौराया ? ॥१॥
अल्लाह—राम, करीमा—केशव। हरि—हजरत नाम धराया ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! दो जगदीश कहाँते आये ? जो कोई अल्लाह, कोई राम, कोई करीम, कोई केशव, कोई हरि और कोई हजरत; ऐसे नाना प्रकारके नाम धराये—सो कौन है ? कहो—तुमको किसने भरमाके दिवाना किया ? ॥ १ ॥ २ ॥

गहना एक कनकते गहना। यामें भाव न दूजा ॥३॥
कहन सुननको दुइ करि थापे। एक निमाज एक पूजा ॥४॥

सबका अनुमान एक; कि जैसा एक सोना औ नाना प्रकारके आभूषण बना करके न्यारा-न्यारा नाम रखते हैं, परन्तु सुवर्ण औ भूषण दो नहीं। इस प्रकारसे अनुमान एक, औ नाम न्यारे-न्यारे ॥३॥ कहने—सुननेको दुइकर थापे कि एक निमाज, एक पूजा। ये अर्थ ॥ ४ ॥

वोही महादेव वोही महम्मद। ब्रह्मा—आदम कहिये ॥५॥
को हिन्दू को तुरुक कहावै ? एक जिमीं पर रहिये ॥६॥

वही अनुमान महादेवने माना, वही अनुमान मुहम्मदने कहा, वही ब्रह्माने कहा, वही आदमने कहा ॥५॥ इसवास्ते कौन हिन्दू ? औ कौन तुरुक कहना ? सब एक अनुमानकी भूमिपर रहे। ये अर्थ ॥ ६ ॥

वेद—कितेब पढ़ै वै कुतबा। वै मोलना वै पाँड़े ॥७॥
बेगर—बेगर नाम धराये। एक मिट्टी के भाँड़े ॥८॥

कोई वेद पढ़ा ब्राह्मण हुआ; औ कोई किताब पढ़ा, निमाज पढ़के तुरुक कहाया ॥७॥ इस प्रकारसे न्यारे-न्यारे नाम धराये, परन्तु एक माटीके बासन पाँच तत्त्व आदि; औ जीव सब एक। ये अर्थ ॥ ७ ॥

कहहिं कबीर वै दूनों भूले ! रामहि किनहु न पाया ॥ ९ ॥
वै खसी वै गाय कटावैं । बादिहि जन्म गमाया ॥१०॥३०॥

गुरु कहते हैं कि ये दोनों भूले; परन्तु जो सबमें रमा है, सो काहूने भेद न पाया ॥ ९ ॥ हिन्दू बकरा मारिके शक्तिकी पूजा करने लगे औ तुरुक गाय मारने लगे। इस प्रकारसे नाहक बादहीमें जन्म गमाये, पारख न पाये। ये अर्थ ॥१०॥३०॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३१ ॥ ❀ ॥

हंसा ! संशय छूरी कुहिया । गइया पीवै बछरुवै दुहिया ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! संशयरूपी छूरी, जो सबके घटमें पैठी है, सो सब जीवनका नाश करती है। संशय कहिये बानी। ये अर्थ। गइया कहिये बानी, गइया कहिये स्त्री; बछरू कहिये जीव। सो ये बानी औ स्त्री जीवको खाती, सोखती है। जीव क्षीण होता है। ये अर्थ ॥ १ ॥

घर-घर सावज खेले अहेरा। पारथ ओटा लेई ॥२॥
पानी माहिं तलफ गई भुँभुरी। धूरि हिलोरा देई ॥३॥

सावज कहिये उपदेश, उपदेश कहिये जो गुरुवा लोगोंने दृढ़ा दिया, सो अनुमान—सो घट-घटमें पैठा। औ गुरुवा लोग सब जीवनको फाँदने लगे। औ सब जीव गुरुवा लोगोंके आश्रित होने लगे ॥२॥ पानी कहिये बानीको, भुँभुरी कहिये जीवको; सो नाना प्रकारकी बानीमें जीव सब तलफ गये। धूरि कहिये अनुमान, अनुमान कहिये मिथ्या, हिलोरा कहिये अनुभव; सो मिथ्या अनुभव करने लगे। ये अर्थ ॥ ३ ॥

धरती बरसे बादर भीजे। भीट भये पौराऊ ॥४॥
हंस उड़ाने ताल सुखाने। चहले बिन्दा पाऊ ॥५॥

धरती कहिये माया, माया कहिये गुरुवा लोग—सो नाना प्रकारकी बानी बरसने लगे। औ बादर कहिये जीव—सो सब वह बानीमें भीजे। भीट कहिये वेद—सो सबको तारनेवाले भये। ये अर्थ ॥४॥ सूखा ताल कहिये निर्गुण, निर्गुण कहिये जो कछु नहीं; तहाँ ये जीव उड़ा, सो नाना प्रकारके बानीमें बन्ध हुआ। चहला कहिये जगत्; सो जगत् आत्मा हुआ। ये अर्थ ॥ ५ ॥

जौलों कर डोले पगु चाले। तौलों आश न कीजे ॥६॥
कहहिं कबीर जेहि चलत न दीसे। तासु बचन का लीजे?॥७॥३१॥

गुरु कहते हैं कि हे जीव! जबलग चोला साबूत है, तबलग आशा किसी पदार्थकी मत् कर—ब्रह्मकी या जगत्की। या अनुमान भी मत् माने ॥६॥ अरे! जो चलते नजर नहीं आता, सो धोखा। उसका नाम क्या लेना? सबको परखके स्थिर होना। ये अर्थ ॥ ७ ॥ ३१ ॥

विरह अर्थः—हंसा कहिये जीव, संशय कहिये स्त्री। सो स्त्री सब जीवनका नाश करती है। ये अर्थ। गइया कहिये स्त्री, बछरू कहिये पुरुष। सो स्त्री भग-मुखसे पुरुषको पीती हैं औ पुरुष दूहा जाता है। ये अर्थ ॥ १ ॥

सावज कहिये नारी, सो घर-घर शिकार खेलती है। कवित्तः—"भौंह है कमान जाकी, नैन दोउ बान लाये। कामकी गाँसि ठहराये, मारत हिये तानिके॥ कुचा दोउ गुरज जाके, शीश पर भुजङ्ग ताके। बिलारी-सी चाल जाकी, मारत जिव जानिके॥ महाकाली रूप धार, जगको कीन्हों सङ्घार। नर जाने मेरी नार, लीन्हीं निज मानिके॥ पूरण कहते बिचार, नारी नहीं नर्क भार। कीन्हा बहुते सिङ्गार, जीवनको खान के॥"

इस प्रकारसे घर-घर स्त्री शिकार खेलती है, औ जीव सब बड़े-बड़े उसीका आसरा लेते हैं कि—जैसे ब्रह्मादि सब चले आये, वैसे अपने भी चलना ॥२॥ पानी कहिये कामको, सो जीव कामके मारे तलफने लगे। धूरि कहिये स्त्री, सो कामका हिलोरा देने लगी। ये अर्थ ॥३॥ धरती कहिये स्त्री, बादर कहिये पुरुष। सो स्त्री नाना प्रकारकी मोहबानी बरसाती है, औ जीव सब भीज रहे हैं, मोहित होय रहे हैं। भीट कहिये संसार, सो संसारमें डूबे। ये अर्थ ॥४॥ आखिर एक-दिन जीव तन छोड़ चले, तब गर्भवासको प्राप्त भये। ये अर्थ ॥५॥ इसवास्ते जब-लग चोला साबूत है, तबलग स्त्री–पुत्र किसीकी आशा मत् करना! सब नाशवन्त मिथ्या ॥६॥ जो चलते नहीं नजर आता, उससे प्रीति क्या करना? ये अर्थ ॥ ७ ॥ ३१ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३२ ॥ ❀ ॥

हंसा हो! चित्त चेतु सबेरा। इन्ह परपञ्च कैल बहुतेरा ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे हंसा! तू चैतन्य है, ताते जल्दी चेत!

इन गुरुवा लोगोंने बहुत प्रपञ्च किया । सो तू जान ! । ये अर्थ ॥ १ ॥

पाखण्ड रूप रचो इन्ह त्रिगुण । तेहि पाखण्ड भुलल संसारा ॥२॥
घरके खसम बधिक वै राजा । परजा क्या धौं करै विचारा ?॥३॥

नाना प्रकारके पाखण्ड स्वरूप रचा । त्रिगुण—ज्ञानी, भक्त औ योगी; इनके पाखण्डमें सब संसार भूला । ज्ञानी सुनि-सुनि ये जीव भ्रमा । ये अर्थ ॥२॥ अरे ! जाको तन–मन--धन अर्पण किया, सोई गुरुवा नाना प्रकारकी कल्पना–भ्रममें बाँधिके जीवका नाश करने लगे । अब चेले लोग ये जीव बिचारे क्या करेंगे ? जैसा राजा, जो देशका मालिक है, सोई अपने देशके लोगोंको फाँसी देने लगा, तब परजा कैसे बचें ? औ क्या करें बिचारे ? । ये अर्थ ॥ ३ ॥

भक्ति न जाने भक्त कहावै । तजि अमृत विष कै लिन सारा ॥४॥
आगे बड़े ऐसेहि बूड़े । तिनहुँ न मानल कहा हमारा ॥५॥

भक्ति कहिये जो स्त्री आदि सब मायासे भगै–सो भक्ति । सो भागना तो जानते नहीं औ भक्त तो कहलाते हैं । ये आश्चर्य । अमृत = जीव, विष = ब्रह्म, ब्रह्म कहिये भ्रम, जासे जीव नाश होता है । सो जीवको छोड़के ब्रह्मको सार किया । ये अर्थ ॥४॥ आगे जो सनकादिक सरीखे बड़े-बड़े भये, सो सब अनुमान करते-करते अनुमानमें बूड़े । परन्तु हमारा कहा तो उनहुने न माना । ये अर्थ ॥ ५ ॥

कहा हमार गाँठि दृढ़ बाँधो ! निशिबासर रहियो हुशियारा ॥६॥
ये कलि गुरु ! बड़े परपञ्ची । डारि ठगौरी सब जग मारा ॥७॥

इसवास्ते जो गुरुने परखाया, सो पारख निश्चय दृढ़ करो ! औ रात-दिन कभी गाफिल न रहो ! हुशियार रहो ! ये अर्थ ॥३॥ यह संसारमें गुरुवा लोग बड़े प्रपञ्ची हैं, नाना प्रकारकी कल्पना डारिके सब जगत्‌को मारे वा मारते हैं । ये अर्थ ॥ ७ ॥

वेद–कितेब दोउ फन्द पसारा । तेहि फन्दे परु आप विचारा॥८॥
कहहिं कबीर ते हंस न बिसरे । जेहिमा मिले छुड़ावनहारा !॥९॥३२॥

वेद–किताब दोनों फन्द पसारा । ता फन्देमें आप भी परा औ दूसरेको भी डारने लगा । सो मिथ्या धोखेकी फाँसी है ॥८॥ गुरु कहते हैं कि कहाँ है ?

वो हंस कदहीं भूलनेका नहीं, जामें छुड़ानेवाले पारखी मिले । सो सदा पारख हुआ । ये अर्थ ॥ ९ ॥ ३२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३३ ॥ ❀ ॥

हंसा प्यारे ! सरवर तजि कहाँ जाय ? ॥१॥
जेहि सरवर बिच मोतिया चुगत होते । बहुविधि केलि कराय ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'हे हंसा प्यारे ! सरवर तजि कहाँ जाय ?' देह छोड़के कहाँ जाओगे ? ॥१॥ जेहि देहमें मुक्ति चाहते थे औ नाना प्रकारकी क्रीड़ा करते थे, सो देह छोड़के अब कहाँ जाओगे ? । ये अर्थ ॥२॥

सूखे ताल पुरइनि जल छाँड़े । कमल गये कुम्हिलाय ॥३॥
कहहिं कबीर जो अबकी बिछुरे । बहुरि मिलो कब आय ? ॥४॥३३॥

सूखा ताल कहिये ब्रह्मको, पुरइनी कहिये जीवको, जल कहिये देहको, ब्रह्म कहिये भ्रमको । सो धोखेके भरोसे जीवने देह छोड़ी, सो गर्भवासको प्राप्त हुआ। ये अर्थ ॥३॥ गुरु कहते हैं कि जिस धोखेके भरोसे जीव बेफिक्र होयके देह छोड़ता है, सो कहाँ है ? मिथ्या धोखा । ये अर्थ । हे सन्तो ! सुनो ! जो मानुषतन पायके पारख न मिला, तो फिर कब मिलेगा ? सबको परखके पारख-पर स्थिर होओ ! ये अर्थ ॥ ४ ॥ ३३ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३४ ॥ ❀ ॥

हरिजन हंस दशा लिये डोले । निर्मल नाम चुनी-चुनि बोले ॥१॥

टीका मायामुखः—माया कहती है कि जो हरिके जन हैं—ज्ञानी, सो हंस-दशा = शुद्ध परमहंसदशा लेके डोलते हैं, विचरते हैं—बाल, पिशाच, जड़, मूक, उन्मत्त होके । ये अर्थ । और कोई योगीजन, जो निर्मल नाम = तत्त्वमसि आदि लेके मग्न-मौन होते हैं । ये अर्थ ॥१॥

मुक्ताहल लिये चोंच लोभावै । मौन रहे की हरि यश गावै ॥२॥
मानसरोवर तटके बासी । राम चरण चित अन्त उदासी ॥३॥

और कोई अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि मुक्ताफल लेके मुखसे नित भजन-कीर्तन करके भगवान्को लोभाते हैं कि मौन रहते हैं । अथवा कोई बोले तो हरिका

गुणानुवाद गाते हैं। ये अर्थ ॥२॥ 'मानसरोवर तटके बासी।' जो माना सो मानसरोवर। तहाँके रहनेवाले, रामचरणपर चित्त रखनेवाले सब जगसे उदास रहते हैं—घर, दारा, सुत, कलत्र आदि सबसे उदास। ये अर्थ ॥ ३ ॥

कागा कुबुद्धि निकट नहिं आवै। प्रतिदिन हंसा दर्शन पावै ॥४॥
नीर-क्षीरका करे निबेरा। कहहिं कबीर सोई जन मेरा! ॥५॥३४॥

कागा कुबुद्धि = संसार। सो ये संसारके निकट नहीं आवते, दिन-प्रतिदिन, नित्यप्रति हरिजन, भगवत्जन दर्शन पावते हैं—बद्रीनाथ, जगन्नाथ, द्वारिकानाथ, रामनाथ आदिका। ये अर्थ ॥४॥ गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि ये हंस ना होय, जो नाना प्रकारकी कल्पना औ अनुमानमें बन्ध होके पृथिवीपर प्रतिमा, शिला जड़-सेवन करते हैं। जो जड़-चैतन्य एक करते हैं, सो बगुले। और जो नीर-क्षीरका निबेरा करते हैं, सो पारखी। नीर कहिये काया, काया कहिये माया, माया कहिये छाया, छाया कहिये नाशवन्त, नाशवन्त कहिये बानी, नाशवन्त कहिये वेद, नाशवन्त कहिये कल्पना-अनुमान; ये नीरका अर्थ। क्षीर कहिये जीव, सो नाना प्रकारके भ्रममें फँसा। इसका जो निबेरा करता है, सोई पारखी पारखपर स्थिर है। और सब कहाँ हैं? मिथ्या धोखा। ये अर्थ ॥ ५ ॥ ३४ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३५ ॥ ❀ ॥

हरि मोर पिउ मैं रामकी बहुरिया। राम बड़ो मैं तनकी लहुरिया ॥१॥
हरि मोर रहँटा मैं रतन पिउरिया। हरिका नाम ले कतति बहुरिया॥२॥

टीका जीवमुखः—जीव कहता है कि जाने सब भक्तनका मन हर लिया, सो हरि, सो मेरा खाविन्द। मैं, जो सबमें रमा है, सो रामकी स्त्री हूँ। ये अर्थ। राम बड़ो = सर्वज्ञ है कर्त्ता-धर्त्ता ईश्वर। ये अर्थ। 'मैं जीव भगवान्के अणुरेणुका सहस्रवाँ अंश। ये त्वं पदार्थ ॥१॥ हरि कहिये जो अविद्या मायाको हरे। अविद्या माया कहिये अज्ञान कारण। अविद्या हरे सो विद्या माया। विद्या माया कहिये ज्ञान; जो स्थूल, सूक्ष्म, कारणका साक्षी तत्पदार्थ। रहँटा कहिये देह, जो चलता है। सो मैं ज्ञानदेही ब्रह्म। ये अर्थ। रतन कहिये ज्ञान, पिउरी कहिये शुद्ध; सो मैं शुद्ध चैतन्य। ये अर्थ। शुद्ध ज्ञानका अर्थ पिउरी क्यों? ऐसी जो शङ्का होय, तो पिउरी कहते हैं कि जो चरखामें परे और जामें सूत

निकले औ पट बने, सो पिउरी। ऐसा शुद्ध ज्ञानानन्द जब जीव हुआ, तब महा-कारण सब कारणका मूल हुआ। जो महाकारण हुआ, तो चित्त-चतुष्टयके चरखे-में परा। जब चित्त-चतुष्टयके चरखेमें परा, तब कारण सूत्र पैदा हुआ; जासे सब जगत् पट पैदा हुआ। ये अर्थ। गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि इस प्रकारसे ज्ञान-रूप कहके हरिका नाम कहिये 'ॐ' सो लेके कथने लगे —'बहुरिया' = माया, गुरुवा। ये अर्थ ॥ २ ॥

छौ मास तागा बरस दिन कुकुरी। लोग कहैं भल कातल बपुरी ॥३॥
कहहिं कबीर सूत भल काता। चरखा न होय मुक्तिका दाता ॥४॥३५॥

छौ मास कहिये छौ शास्त्र, ज्ञानरूपी पिउरीसे धागा निकरा। वर्ष दिन कहिये बारह मास—त्वंपद, तत्पद, असिपद; क्षर, अक्षर, निःअक्षर; जहद्, अजहद्, जहदाजहद; जीव, ब्रह्म औ आत्मा। ये बारह मास एक जगह लपेटिके एक कुकुरी आत्मा*। ये अर्थ। कौन प्रकारसे बारह पद एकमें मिले ? सो सुनो—त्वंपद सोई क्षर, क्षर सोई जहद, जहद सोई जीव। इसका जाननेवाला तत्पद। तत्पद सोई अक्षर, अक्षर सोई अजहद्, अजहद् सोई ब्रह्म। असिपद सोई निःअक्षर, निःअक्षर सोई जहदाजहद् जहदाजहद् सोई आत्मा। ये अर्थ। नहीं जानता सो जीव, जानता सो ब्रह्म। नहीं जानता सो अज्ञान, औ जानता सो ज्ञान। ये दोनों उपाधि छूटी, सोई आत्मा सम्पूर्ण जैसे-का-तैसा। न तत्, न त्वं, न क्षर, न अक्षर, न जहद्, न अजहद्, न जीव, न ब्रह्म। एक आत्मा जैसा-का-तैसा। ये अर्थ। ब्रह्म कहिये समुद्र, जीव कहिये सरिता, वापी, कूप, तड़ाग बहुत नाँव; परन्तु जल एक। खारा, फीका, मीठा—ये सब उपाधि। अन्तरभूत जल एक। इस प्रकारसे नाम-रूप-उपाधि मिथ्या, आत्मा सत्य। ये कुकुरीका अर्थ। आत्माको कुकुरी संज्ञा भई। जो तन्तु- पटका अधिष्ठान, सो कुकुरी। जीव-ब्रह्मका अधिष्ठान, सो आत्मा। ये अर्थ। जीवमुखः—अब जीव सब कहते हैं कि भाई ! बहुत निर्वाण ज्ञान कथा, जीवन्मुक्त। ये अर्थ ॥३॥ गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि तत्त्वमसि आदि सूत बहुत

---

* द्वादश अवान्तर वाक्यः—
त्वंपद = क्षर = जहद = जीव; इसका जाननेवाला तत्पद।
तत्पद = अक्षर = अजहद = ब्रह्म; इसका साक्षी असिपद।
असिपद = निःअक्षर = जहदाजहद = आत्मा—सर्वरूप जैसा-का-तैसा।

काता, पर ये चरखा, रहटा चला ही जाता है, एक अनेक होता जाता है; परन्तु इससे कल्याण नहीं। बिनु पारख-स्थिति सब झूठी। ये अर्थ। पारख कहिये जो सब कल्पना-अनुमानको परखावै और स्थिर रहै। ये अर्थ ॥ ४ ॥ ३५ ॥

॥ ॥ शब्द ॥ ३६ ॥ ॥

हरि ठग ठगत ठगौरी लाई। हरिके वियोग कैसे जियहु? रे भाई!॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हरिठग कहिये ज्ञानी, सो सबको ठगते फिरते हैं, धोखा देते हैं। ठगौरी कहिये बानी, सो गुरुवा लोगोंने लगाई। अब इन गुरुवा लोगोंके विरह-वियोगसे कैसे जीवोगे? अरे भाई! वियोगहीमें मरि जाहुगे, बिना पारख॥ ये अर्थ ॥ १ ॥

को काको पुरुष? कौनकाकी नारी? अकथ कथा यम दृष्टिपसारी ॥२॥

को काको पुत्र? कौन काको बाप? को रे मरै? को सहै सन्ताप?॥३॥

अरे! कौन किसका पुरुष? औ कौन किसकी नारी? जो पुरुष अनुमान किया, सो जीवहीने किया; औ जीव आप नारी बना। अपने मनसे पैदा हुई जो कल्पना—सो नारी अपनी; तिसको पुरुष बनाया। ये अकथ बात है, कथने योग्य नहीं। जो गुरुवा लोगोंने दृष्टि पसारके कथा, सो सब कल्पना। ये अर्थ ॥२॥ 'को काको पुत्र? कौन काको बाप?' जो जिसका कर्त्ता, सोई तिसका बाप। कर्त्ता आप मानुष होयके अपने जो अनुमान किया—सो अपना पुत्र; ताको अपना बाप बनाया औ आप पुत्र बना। ये अर्थ। अब जो जीवने कल्पना किया-इष्ट देवता, स्वर्गादिक, सो सब निर्जीव। तिसका सन्ताप जीवको लगा। अनुमान-कल्पना करनेवाला जीव, औ अनुमान-कल्पना निर्जीव मुवा हुआ। ये अर्थ ॥ ३ ॥

ठगि-ठगि मूल सबनका लीन्हा। राम ठगौरी काहु न चीन्हा ॥४॥

कहहिंकबीर ठगसो मनमाना। गई ठगौरी जब ठग पहिचाना॥५॥३६॥

इस प्रकारसे ये माया गुरुवा लोगोंने नाना प्रकारके धोखा देके ठग-ठगके सबका जीव लिया। परन्तु राम ठगौरी जो बानी है औ स्त्री है, सो काहू बिरलेने चीन्हा, परखा। ये अर्थ ॥४॥ गुरु कहते हैं कि हे जीव! जो ठगसे तेरा मन माना, सो कहाँ है? ये गुरुवा लोगोंकी ठगौरी जबलग पारख नहीं मिली, तबलग है; और जब पारख मिली, तब ठग-धोखेको पहिचाना। स्त्री-बानी सब धोखा

ठहरी । तब सब धोखेको चीन्हा औ ठगौरी गई । ये अर्थ ॥ ५ ॥ ३६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३७ ॥ ❀ ॥

हरिठग ठगत सकल जगडोलै । गौन करत मोसे मुखहु न बोलै ॥१॥
बालापनके मीत हमारे । हमहिं तजि कहाँ चलेउ सकारे ?॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हरिठग कहिये गुरुवा लोग; सो सब संसारको ठगते फिरते हैं, पुजाते हैं धोखा देके। ये अर्थ । कौन तरहसे फिरते हैं ? सो सुनो—पृथ्वीपर विचरते हैं, मोहसे मौन होके बोलते नहीं । मोह कहिये अनुमान; सो अनुमान किये अपने मनसे और मौनी हुए ॥१॥ जीवमुखः—तब कहने लगे कि हे भगवान् ! तुम हमारे जीवपनाके मित्र। अब हमको छोड़के कहाँ जावोगे ? जीव ब्रह्मका अंश । ये अर्थ ॥ २ ॥

तुमहिं पुरुष मैं नारि तुम्हारी । तुम्हरी चाल पाहनहुते भारी ॥३॥
माटिको देह पवनको शरीरा ।हरि ठग-ठगसों डरे कबीरा ॥४॥३७॥

तुम ही पुरुष, मैं तुम्हारी नारी । ये अर्थ । तुम्हारी चाल पाहनहूते भारी। पाहन कहिये पर्वत; सो पर्वत मेरु चला जायगा, परन्तु तुम अचल, कबहीं न चलोगे । ये अर्थ ॥३॥ टीका गुरुमुखः—'माटीको देह पवनको शरीरा ।' माटीकी देह कहिये स्थूल, पवनका शरीर कहिये सूक्ष्म । सो गुरुवा लोग बड़ी–मोटी माया छुड़ायके सूक्ष्म मायामें फँसाते हैं। कबीरा कहिये जीवको, सो गुरुवालोगोंने जो डर लगाया पाप-पुण्यका, तासे डरते रहते हैं । निशिदिन शोग लगा रहता है। ये अर्थ ॥ ४ ॥ ३७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ३८ ॥ ❀ ॥

हरि बिनु भर्म बिगुर्चनि गन्दा !॥ १ ॥
जहाँ-जहाँ गयउ अपन पौ खोयेउ ! तेहि फन्दे बहु फन्दा ॥२॥

टीका मायामुखः—हरि कहिये जो सर्वस्व हर लेय । जो सर्वस्व हरे सो तुर्या । सो तुर्या बिना, ज्ञान बिना मैं जीव अजान; ऐसा कहिके भ्रममें नाश हुआ, खराब हुआ । गन्दा = जीव, गन्दी देहसे न छूटे सोई गन्दा । ये अर्थ ॥१॥ गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि ऐसी–ऐसी बातें सुनी जीवने । अरे ! जहाँ-जहाँ तू गया, तहाँ-तहाँ तू अपना पौ खोया । स्थूलमें गया तब कहा कि मैं स्थूल । मेरी माता, मेरे

पिता, मेरा भाई, मेरा घर, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र, कुटुम्ब, द्रव्य, सम्पत्ति सब मेरी। मेरी-मेरी कहिके बहुत मायामें फँदा। और जब नाना प्रकारकी बानी सुनी कि गुरु बिना औ भगवत्-भजन बिना जीवका कल्याण नहीं, तब गुरुवा लोगोंकी शरणमें गया। तब नाना प्रकारके विचार वेदान्तसिद्धान्त—जो गुरुवा लोगोंने बताया, सो विचार करने लगा कि 'मैं स्थूलका जाननेवाला स्थूल नहीं'। जैसे घरका रहनेवाला कछु घर नहीं। जो घरका रहनेवाला घर होय, तो घर कौन कहै? ऐसा जो मैं स्थूल होता, तो स्थूल कौन कहता? स्थूल तो साढ़े तीन हाथ; पाँच तत्त्व, तीन गुण, चौंदह देवता, दश इन्द्रियाँ, जागृति अवस्था। सो मैं जागृति अवस्थाको जानता हौं। जो-जो देखनेमें आवे, सो जागृति। जागृति नेत्र-स्थानमें रहती है और विश्व उसका अभिमान है। सो मैं जागृति औ विश्व कभी नहीं, इसका साक्षी। स्थूलके तत्त्व पाँच—आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी। सो मैं आकाशको भी जानता हौं और आकाशकी प्रकृतिको भी जानता हौं। काम जो शरीरमें स्फुरण होता है सो भी मैं जानता हौं, और क्रोध जो आता है सो भी मैं जानता हौं, और मोह जो होता है सो भी मैं जानता हौं, औ लोभ जो होता है सो भी मैं जानता हौं, औ हर्ष जो होता है सो भी मैं जानता हौं। काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष—यही जो मैं होता, तो मुझे कामने सताया, औ मुझे क्रोध आया, औ मुझे मोह भया, औ मुझे लोभ हुआ, औ मुझे हर्ष भया—ऐसा कौन कहता? तो मैं आकाश औ आकाशकी प्रकृतिको जाननेवाला न्यारा हूँ। जैसा जो दिवालको जानता है सो दिवाल नहीं। जो आप ही दिवाल होता, तो दिवाल कौन कहे? दूसरा वायु तत्त्व; सो मैं वायु तत्त्वको भी जाननेवाला औ वायुकी प्रकृतिको भी जाननेवाला। बल करना, धावना, पसारना, संकोच करना औ बोलना—ये वायु तत्त्वकी प्रकृति क्या मैं नहीं जानता? मैं तो जानता हौं। तो मैं वायु नहीं, वायुका भी साक्षी। अग्नि तत्त्वकी पाँच प्रकृति—नींद भी मैं जानता हौं, जम्भुवाई भी मैं जानता हौं, आलस भी मैं जानता हौं, भूख-प्यास आदि अग्नितत्त्वका मैं जाननेवाला न्यारा हूँ। जलको भी मैं जानता हौं औ जलकी प्रकृतिको भी जानता हौं। रुधिर, पसीना, मूत्र, बिन्दु और रार; इनका भी मैं साक्षी इनते न्यारा हूँ। पृथिवी और पृथिवीकी प्रकृति भी मैं जानता हौं। हाड़, मांस, नाड़ी, त्वचा औ रोम; इनका जाननेवाला मैं स्थूलसे न्यारा सूक्ष्म हूँ। मैं स्थूल नहीं। तीन गुण

कहनेवाला मैं त्रिगुण नहीं। स्थूलका देवता ब्रह्मा, औ गुण रजोगुण। इसका भी मैं साक्षी। स्थूलके देवता चौदह—मनका देवता चन्द्रमा, जासे मन कल्पना करता है। बुद्धिका देवता ब्रह्मा, जासे बुद्धि निश्चय करती है। चित्तका देवता नारायण, जासे चित्त चलता है। हङ्कारका देवता शंकर, जासे अहन्ता आती है। नेत्रका देवता सूर्य, जासे नेत्र देखते हैं। कानका देवता दिशा, जासे कान सुनते हैं। जीभका देवता वरुण, जासे जिह्वाको स्वाद होता है। नाकका देवता अश्विनीकुमार, जासे नाकको बास लेनेका ज्ञान होता है। हाथका देवता इन्द्र जासे हाथ लेता-देता है। पाँवका देवता उपेन्द्र, जासे पाँव चलता-फिरता है। त्वचाका देवता वायु, जासे त्वचाको स्पर्शका ज्ञान होता है। औ वाचा इन्द्रीका देवता अग्नि, शिश्नका देवता प्रजापति और गुदाका देवता यम, जासे गुदा प्रच्छालन होता है। इस प्रकार चतुर्दश देवतासे स्थूल देहका व्यवहार होता है। सो मैं चतुर्दश देवता और इनकी इन्द्रियाँ व्यवहार सहित सबका जाननेवाला हूँ। स्थूलका कोश अन्नमय। सो अन्नमय कोशका जितना विस्तार है, उन सबका जाननेवाला मैं अन्नमय नहीं। तारक ब्रह्म नाम, त्रिकुटी स्थल, वाल्य अवस्था, ब्रह्मचर्य आश्रम आदि जेतिक स्थूलकी सम्पत्ति हैं, सो सबका जाननेवाला मैं स्थूल नहीं। जैसे घरका रहनेवाला और जाननेवाला घर होय, तो मैं भी स्थूल होऊँगा। तो मैं सूक्ष्म। इस प्रकारसे आपन पौ खोयके सूक्ष्म देह निजकर जानके बन्धनमें परा। नाना प्रकारकी क्रिया करने लगा, योग करने लगा—खेचरी आदि मुद्रा, समाधि, प्राणायाम आदि। इस प्रकारसे सूक्ष्म देहके कर्मके फन्देमें बहुतेक फन्दे। कोई और अनुमान किया कि मैं सूक्ष्मका जाननेवाला सूक्ष्म कैसा ? जो स्थूल नहीं, तो मैं सूक्ष्म भी नहीं। सूक्ष्म कहिये अंगुष्ठ प्रमाण, स्वप्न अवस्था, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध ५। चित्त, मन, बुद्धि, हङ्कार ४। प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान ५। दश इन्द्रियाँ सूक्ष्म, पचीसवाँ अन्तःकरण औ छवीसवाँ जीव। इस प्रकारसे छब्बीस कला एकत्र होय, तब सूक्ष्म देह होती है, औ स्वप्न होता है कण्ठमें। सो मैं स्वप्न देखता हौं, तो मैं स्वप्न कैसे होऊँगा ? सूक्ष्म औ सूक्ष्मकी तत्त्व-प्रकृति मैं जानता हौं। तो मैं सूक्ष्म भी नहीं। अरे ! जो जल देखनेवाला जल होय, तो मैं भी सूक्ष्म होऊँगा। जैसे जल जाननेवाला जलसे न्यारा; तैसा मैं सूक्ष्म ते न्यारा। गृहस्थ आश्रम, गुरु-

नेह, पिशाच दशा, तैंजस अभिमान, वोहं दीक्षा, योग आनन्द, अक्षर मात्रा, वेद छन्द, द्रव्य शक्ति, मार्तण्ड देवता, काम अग्नि, भूचरी मुद्रा, उकार मात्रा, मध्यमा वाचा, विष्णु देवता, सत्त्वगुण, कण्ठ स्थान, दण्डक ब्रह्म नाम, यजुर्वेद, वरुण देवता, मठाकाश आदि जेतिक सूक्ष्म देहकी सम्पत्ति हैं, सो सबका जानने-वाला मैं सूक्ष्म कैसे होऊँगा ? तो मैं सूक्ष्म भी नहीं औ स्थूल भी नहीं। स्थूल-सूक्ष्म दोनोंको जाननेवाला मैं इन सबते न्यारा, सबते परे ईश्वर। त्वंपद सम्पूर्ण। इस प्रकारसे जहाँ–जहाँ गयउ, आपन पौ तेही खोयो। "तेहि फन्दे बहु फन्दा !" तब कोई एक और अनुमान किया कि मैं ईश्वर भी नहीं। मैं ईश्वरका साक्षी, सुषुप्ति अवस्थाका साक्षी। जो सुषुप्ति अवस्थाका सुख है, सो मैं हृदयमें जानता हौं। जो जाना नहीं, तो कहा किसने ? जो सुषुप्ति मैं कहता हौं, तो सुषुप्ति मैं कैसे होऊँगा ? सुषुप्ति अवस्था, कारण देह; जहाँ प्राण, अपान, समान, व्यान औ उदान—हृदय स्थानमें ये तत्त्व मिले, तब सुषुप्ति भई। सो मैं जाननेवाला चैतन्य ब्रह्म। मेरी अवस्था तुर्या। ये जगत् सब इन्द्रजालवत् अज्ञान; मैं ज्ञान सर्वसाक्षी। जब अपानमें गन्ध मिली औ गन्धमें पृथिवी मिली। उदानमें रस मिला औ रसमें जल मिला। प्राणमें रूप मिला औ रूपमें अग्नि मिली। समानमें स्पर्श मिला औ स्पर्शमें वायु मिली। व्यानमें शब्द मिला औ शब्दमें आकाश मिला। जब दश तत्त्वनकी लय भई, तब सुषुप्ति अवस्था भई। सो मैं सुषुप्तिका जाननेवाला चैतन्य। सुषुप्ति अचेत, औ मैं चैतन्य। कोई कहेगा कि जब सुषुप्ति भई, तब कछु खबर रहती है ? तो खबर कहना—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि ये दश तत्त्व जहाँ लय हुये, तहाँ खबर किस वस्तुकी रहेगी ? जैसे विश्व प्रलय हुआ औ कोई एक संन्यासी रहा, सो उन्हें क्या कहना ? औ किससे कहना ? औ वस्तु भी कुछ नहीं। ऐसा मैं चैतन्य, औ जगत् सब इन्द्रजालवत्। मैं अविनाशी, औ जगत् सब नास्ति। कारण देह औ जेती कारण देहकी सम्पत्ति है, सो सबका मैं साक्षी। कारण देह—अर्धपर्व, प्राज्ञ अभिमान, हृदय स्थान, मनोमयकोश, वानप्रस्थ आश्रम, आत्मलिङ्ग, विश्वप्रलय, उन्मत्त दशा, सुषुप्ति अवस्था, शिवोहं दीक्षा, अद्वैतानन्द, निदि-ध्यासन साधन, अज्ञान शक्ति, क्षेत्रज्ञ निर्णय, रुद्र देवता, मन्दाग्नि, तमोगुण, तृतीयपाद–गायत्री, चाँचरी मुद्रा, मकार मात्रा, कुण्डल्य ब्रह्म, मध्यमा वाचा, महदा-काश, कपीमार्ग, विश्व प्रलय, अग्नि तत्त्व, अथर्वण वेद, बुद्धि-बोधन्य व्यवहार, सौले-

ष्टता भूमिका, आनन्दमय कोश आदि जेतिक कारण देहकी सम्पत्ति है, सो मैं जानने-वाला हूँ। इस प्रकारसे त्रिगुण त्यागन करके ब्रह्मनिष्ठामें जीव बँधा। 'जहाँ-जहाँ गयउ आपन पौ खोयउ'। ये अर्थ। तत्पदार्थ। आगे और कोई उलटके तत्पदका शोधन करने लगा कि मैं जो चैतन्य होता, तो चैतन्य कौन कहता ? मैं तुर्या अवस्थाका जाननेवाला तुर्या नहीं। ज्ञान तो मेरा विकार है। अरे ! मैं तुरीयातीत कैवल्य आत्मा। ज्ञान-अज्ञान दोनों उपाधि। इनका साक्षी मैं विज्ञानरूपी। अरे ! जगत्-ब्रह्म दोनों उपाधि। मैं निरुपाधि आत्मा। जो तुर्याका कहनेवाला तुर्या नहीं, तो ज्ञानका कहनेवाला ज्ञान नहीं। जैसा-का-तैसा सर्व सम। जैसे नदीका पानी नदी नहीं, औ समुद्रका पानी समुद्र नहीं। परन्तु पानी सत्य औ नाम-रूप उपाधि मिथ्या। इस प्रकारसे आत्मा सत्य। ब्रह्म-जगत् दोनों उपाधि असत्य। तुर्या महाकारणरूप, मसुर प्रमाण, नाभिस्थान, नीलवर्ण, परा वाचा, वायु तत्त्व, चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार। अपान मिला बुद्धिमें, प्राण मिला मनमें, उदान मिला अहङ्कारमें, समान मिला चित्तमें, और व्यान मिला अन्तःकरणमें। इस प्रकारसे महाकारणरूप तुर्या अवस्था, चतुर्थ आश्रम, महाप्रलय, मौन दशा, सायुज्य मुक्ति, प्रत्यगात्मा अभिमान, सोहं दीक्षा, विदे-हानन्द, साधन साक्षात्कार, इच्छाशक्ति, ॐपद, बड़वाग्नि, अगोचरी मुद्रा, शुद्ध सतोगुण, ईश्वर देवता, इकार मात्रा, अर्धचन्द्र ब्रह्म, सूर्य क्रिया, ऋग्वेद, चिदाकाश, मीनमार्ग, सुलीन भूमिका आदिक जेतिक उपाधि हैं, सो आत्माकी जगहमें नहीं। येती उपाधि मेरेको काहेको चाहिये ? मैं शुद्ध-बुद्ध निरञ्जन निर्विकार। मेरी स्फुरणामात्रसे जगत् निर्माण हुआ—"जल-तरङ्ग न्याय"। अहं परमहंस। न दुःख, न सुख। उन्मनी वाचा, स्वसंवेद, निर्गुण। न मैं मुक्त, न मैं बन्ध। सर्वोपरि आनन्द, अनामयोहं जान, कूटस्थ, सदाशिव, पुण्यगिरी, ब्रह्माग्नि, सर्व-साक्षिणी मुद्रा, द्रष्टा-दृश्य रहित निर्विकल्प, कलातीत कला, भावातीत भाव, आकाशवत् निजाकाश, मात्रा शून्य, शिखा स्थान, शेषमार्ग। सो मैं आत्मा सच्चिदानन्द असि पदार्थ। इस प्रकारसे गुरु कहते हैं कि जहाँ-जहाँ गया, तहाँ-तहाँ फँदा ये जीव; बिना पारख। ये अर्थ। अरे ! जहाँलग अनुमान किया, तहाँ-लग बढ़ा। जब थका तब एक आत्मा कहा। ये अर्थ ॥ २ ॥

योगी कहैं योग है नीका। दुतिया और न भाई ! ॥३॥

नुञ्चित मुण्डित मौनि जटाधारी । तिन कहु कहाँ सिद्धि पाई ?॥४॥

योगी कहिये जो योग, ध्यान, समाधि करके पूर्वोक्त मन शान्त किया, सो कहते हैं कि योग है नीका । जहाँ दुतिया और नहीं—एकानन्द ॥३॥ नुञ्चित कहिये जैनी, मुण्डित कहिये संन्यासी; इन कहाँ सिद्धि पाई ? कहाँ स्थिति पाई ? ये अर्थ । मौनी जो बोलते नहीं, पर उनका मन तो उन्मुन हुआ नहीं । फिर उन कहाँ स्थिति पाई ? जटाधारी = तपस्वी, बिना स्थिति वे जङ्गलमें फिरते हैं पशुवत्, औ कहते हैं कि हम योगी, हम सिद्ध सहजमें स्थिति पाई । ये अर्थ ॥४॥

ज्ञानी गुणी सूर कवि दाता । ई जो कहैं बड़ हमहीं ॥५॥
जहाँसे उपजे तहाँ समाने । छूटि गये सब तबहीं ॥६॥

ज्ञानी कहते हैं कि एक आत्मा निरन्तर सोहं; दुतिया कोई नहीं । सदा एकरस अद्वैत । ये अर्थ । 'गुणी' कहिये भक्त, सो कहते हैं कि हम भगवत्-भजनमें सदा प्रेममें बूड़े रहते हैं, हम मुक्त । शूर कहते हैं कि हम सर्व आशा-बासा छोड़के अपना चोला छोड़ते हैं, हम मुक्त । कवि कहते हैं कि हम ही बड़े, सर्व वेद छान-छानके नाना प्रकारके कवित्त किये । दाता कहते हैं कि हम बड़े दाता, हम ही बड़े ॥५॥ परन्तु जहाँसे पैदा हुये गर्भवासते, तहाँ समाये । तब ज्ञान, गुण आदि सभी छूट जायेंगे; पारख बिना । ये अर्थ ॥ ६ ॥

बायें-दहिने तजू विकारा । निजुकै हरि पद गहिया ॥७॥
कहैं कबीर गूँगे गुर खाया । पूछे सो क्या कहिया ? ॥८॥३८॥

बायें कहिये वाममार्ग, दहिने कहिये दक्षिणमार्ग; सो दोनों छोड़के निश्चय ज्ञानपद गहिया औ मौन हुआ कि दूसरा कौन है—जासे बोलना ? अपने मनसे अनुमान करके मान लिया । ये अर्थ ॥७॥ मायामुखः—माया कहती है कि जैसे गूँगेने गुर = गुड़ खाया औ पूछे तो क्या कहेगा ? इस प्रकारसे ज्ञानी अपनेको आप जानके मौन हुआ । ये अर्थ ॥ कवित्तः—हरी कहिये विद्या माया, जासे सकल अविद्या हरे ! तेहि बिनु कहीं जीव मूर्ख, सकल भ्रममें नशायो है ॥ गन्दा कहिये जीवको, गन्दी देह मेरी कह्यो । विषयनमें लम्पट भयो, ताते गोता खायो है ॥१॥ गुरुमुख कवित्तः—ऐसी-ऐसी बातें सुनी, जहाँ-जहाँ जीव गयो । तहाँ-तहाँ गुरुवनने, फन्दमें फँदायो है ॥ आपन पौ आप खोयो, थाप रखी औरनकी ।

तेहीते बार-बार, बहुते ठगायो है ॥ तुर्यातीत अवस्था आतम, जैसे-के-तैंसा है जानिके। अजान भयो अस देखत, भूलि देखते भुलायो है ॥ कहैं पूरन परख न लह्यो, ऐसो गँवार पारख बिना। फिर-फिर भयो बुद्धिहीन, जहाँ-को-तहाँ समायो है ॥१॥ योगी कहिये कपिल मुनि, जिन सिद्ध ऐसो नाम धर्यो। जैनी संन्यासी बौद्ध, तपसी तु छायो है। ज्ञानी सनकादि औ, गुनी नारदादि भये। शूर भीष्मादि जिन्ह, शूरता जनायो है ॥ कवी व्यासादि जिन्ह, अष्टादश पुराण गाये। वेदनके सूत्र बनाये, महिमा बहु भायो है ॥ दाता कहिये कर्ण जे, जगमें समर्थ भये। सबै करनी पाछे रही, जब गर्भबास पायो है ॥ जगत् ब्रह्म दोऊ छोड़ि, आतमपर टिका रह्यो। जैसे गूँगा खायो गुर, पूछेसे क्या बतायो है ? ॥२॥ ये अर्थ ॥८॥३८॥

॥ ❁ ॥ शब्द ॥ ३९ ॥ ❁ ॥

ऐसो हरि सो जगत लरतु है। पाण्डुर कतहूँ गरुड़ धरतु है ? ॥१॥
मूस–बिलाई कैसन हेतू ? जम्बुक करै केहरिसों खेतू ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हरि कहिये माया, माया कहिये भक्ति, योग, ज्ञान; ज्ञान कहिये वेदान्त। सो वेदान्तसे सब जगत् लरते हैं। ये अर्थ। पाण्डुर कहिये जीव, गरुड़ कहिये माया, माया कहिये बानी, बानी कहिये कल्पना। सो जीवसे कहीं कल्पना पकड़ी जाती है ? ॥१॥ अरे ! मूससे औ बिलाईसे कैसी प्रीति बने ? मूस कहिये जीवको, बिलाई कहिये कल्पना। जो कल्पनासे इन्होंने प्रीति किया; सोई कल्पना इनका काल हुआ। जम्बुक कहिये पण्डित, केहरी कहिये बानी, बानी कहिये कल्पना; और केहरी कहिये स्त्री। सो पण्डित लोग वेदबानीसे लड़ते हैं पक्ष पकड़-पकड़के। ये अर्थ ॥ २ ॥

अचरज एक देखो संसारा ? स्वनहा खेदै कुञ्जर असवारा ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई ! इहै सन्धि काहु बिरलै पाई ॥४॥३९॥

स्वनहा कहिये गुरुवनको, औ स्वनहा कहिये ॐकारको, कुञ्जर = मन, असवार = जीव। सो गुरु कहते हैं कि पण्डित ॐकारका उपदेश करके जीवको नाना प्रकारके कर्मोंमें खेदते हैं। ये अर्थ ॥३॥ कहहिं कबीर कहिये गुरु, गुरु कहिये पारख, सन्तो कहिये पारखी—जो परखे, भाई कहिये जीव। सो गुरु कहते हैं जीवको कि हे जीव ! जो गुरुवा लोगोंने ज्ञान औ कर्म दृढ़ाया, सो सब

मिथ्या । इसकी पारख कोई बिरलेको प्राप्त भई । ये अर्थ ॥ ४ ॥

विरह अर्थः—ऐसा स्त्रीसे संसार लरता है; जैसे गरुड़से सर्प लड़ने गया, सो उसने देखते ही खाय लिया । ये अर्थ ॥१॥ अरे ! मूसा बिलाईका खुराक, सो पकड़नेके वास्ते दाँव लगा रही है । फिर मूसा उस बिलाईसे प्रीति करने गया, तो बिल्ली मूसाको खा गई । ऐसे ही स्त्री जीवको पकड़के खाती है । जम्बुक = जीव, औ केहरी = स्त्री । सो जीव उस स्त्रीसे भोग करने लगा, सो उसने भगमुखसे खाय लिया ॥२॥ गुरु कहते हैं कि ये आश्चर्य—जो कुतिया, कुतिया कहिये स्त्री, सो जीवको भगावती फिरती है । ये स्त्री किसीके 'स्वनहा' कहिये परखनेमें न आई । किसी बिरलेने परखी । ये अर्थ ॥ ३ ॥ ४ ॥ ३९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४० ॥ ❀ ॥

पण्डित ! बाद बदे सो झूठा ॥१॥

रामके कहै जगत गति पावै । खाँड़ कहै मुख मीठा ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—पण्डित कहिये ज्ञानीको । जाकी वेद-शास्त्र पढ़िके बुद्धि पण्डा होय—सो पण्डित । पण्डित कहिये बड़ी बुद्धि । सो गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! जो बाद करते हो, सो सब मिथ्या ॥१॥ अरे ! रामके कहेसे संसारकी गति होय, तो खाँड़ = शक्करके कहेसे मुँह भी मीठा होगा । जो शक्करके कहे मुख मीठा नहीं होयगा, तो राम-रामके कहेसे क्या होगा ? । ये अर्थ ॥ २ ॥

पावक कहै पाँव जो डाहै । जल कहै तृषा बुझाई ॥३॥

भोजन कहै भूँख जो भाजै । तो दुनियाँ तरि जाई ॥४॥

"पावक कहै पाँव जो डाहै । जल कहै तृषा बुझाई" ॥३॥ "भोजन कहै भूख जो भाजै । तो दुनियाँ तरि जाई" ॥ ४ ॥ *

---

* टिप्पणीः—शब्द ४० की ३-४ चौपाईका भाष्यः—

पावक कहै पाँव जो डाहै । जल कहै तृषा बुझाई ॥ ३ ॥

और भी सुनिये—यदि पावक = अग्नि-अग्नि कहनेमात्रसे ही उस कहनेवालेके जो कि पाँव = पैर वा चरणमें अग्नि पहुँचकर डाहै = जलाने लग जावे, देहमें ताप आ जाय, पैर आदि अङ्ग जल जाय, अग्निको पुकारते ही सब ठण्ढी दूर हो जाय; ऐसा प्रत्यक्ष कार्य हो जावे, तब न माना जायगा कि राम कहनेसे पाप भस्म होगा । जब वैसा नहीं होता है, तब कैसे माना जायगा कि राम कहनेवाले तर जायेंगे ? कैसे गति*

नरके सङ्ग सुवा हरि बोले। हरि परताप न जानै ॥५॥
जो कबहीं उड़ि जाय जङ्गलमें। तो हरि सुरति न आनै ॥६॥

* पावेंगे ? जब अग्नि कहनेसे किसीके पैरादि नहीं जलते, तब राम कहनेसे भी कोई नहीं तरेगा। किन्तु कर्माध्यासानुसार चौरासीमें जाकर सब दुःख भोगते रहेंगे। इसी प्रकार प्यास लगनेपर कोई जलका ही नाम-स्मरण करे, 'हे जल ! हे गङ्गा, जमुना, गोदावरी, नर्मदा, सिन्धु आदिके पवित्र ठण्ढा जल ! ओ पानी ! मेरे मुखमें आओ ! मेरी प्यास मिटाओ !' इत्यादि रटना कर-करके जलको पुकारा करे, तब उसकी क्या तृषा = प्यास, बुझाई = मिटेगी ? बुझेगी ? शान्त हो जायगी ? कभी न होगी। यदि जल-जल कहनेमात्रसे ही स्नान हो जाय, किसीकी प्यास सचमुच ही मिट जाय, तब राम-राम कहनेसे भी सुगति प्राप्त हो जायगी—ऐसा माना जायगा। यदि घण्टों बैठकर जल-जल कहके रटते रहनेपर भी उसकी प्यास नहीं मिटेगी, बल्कि और प्यास बढ़ जायगी, तब कर्म सुधार न करके एवं सत्सङ्गमें लगकर सद्गुणोंको धारण न करके, ज्ञान-बोध-विचार-वैराग्यादि न लेकर केवल 'राम-राम' मात्र रटते रहनेवालोंकी इच्छा-वासना और बन्धनोंकी प्यास कभी नहीं मिटेगी। जड़ाध्यासी होकर और अधिक दुःख भोगते रहेंगे। अतः कर्त्तव्यका सुधार ही करके ज्ञान-मार्गमें लगनेसे लाभ होगा ॥३॥

भोजन कहै भूँख जो भाजै। तो दुनियाँ तरि जाई ॥ ४ ॥

और किसीको पेटमें भूख लग रही हो, बाहर भोजन जुटाकर खानेका उपाय न करके कहीं बैठकर वह खाली भोजनका ही नाम-स्मरण करता रहै; जैसा कि "लड्डू, पेड़ा, पूरी, जलेबी, सीरा, तस्मै, दाल, भात, साग, रोटी आओ ! आओ ! मेरे मुखमें, मेरे पेटमें भर जाओ !" इत्यादि दोहराकर बारम्बार रटता रहै, तो कहो-क्या वैसा भोजन-भोजन कहते रहनेसे उसकी भूख जो है, सो भाजै = भाग जायगी ? मिट जायगी ? कभी नहीं मिटेगी। यदि भोजन कहनेमात्रसे ही भूख भागे, तृप्ति हो जाय, तभी जानना कि साधना, अभ्यास, सत्सङ्ग, ज्ञान, बोध, वैराग्यादि और पुरुषार्थ कुछ भी न करके केवल "राम-राम, सीताराम, राधेश्याम, हरेराम ! श्रीराम ! जयराम ! जय जय राम !" इत्यादि रटन करके कहते रहनेमात्रसे तब तो सारी दुनियाँ ही सहजमें पार उतर जायगी। यदि बिना खाये भोजन कहनेमात्रसे किसीकी भूख नहीं मिटेगी, तब राम कहनेसे भी दुनियाँ कैसे तर जायगी ? कभी न तरेगी। किन्तु भव-सागररूप चौरासीमें जाकर ही डूब जायगी। कहा है:—

"सन्तो ! राम कहै दुनियाई। कहु कौने गति पाई ? ॥ राजा कहै कहै पुनि वेश्या। कहै चोर औ साहू ॥ हरि चरचा हम घर-वर देखा। तरत न देखा काहू ॥"

॥ ग्यारह शब्दके शब्द-६ ॥

वैसे भ्रम-धोखेमें पड़कर रामनाम-स्मरण मात्र करके न कोई भवपार उतरा है, न उतरेगा। इस प्रकार किसीकी गति-मुक्ति नहीं हो सकती है। अतः वैसे भ्रम-धोखेमें नहीं पड़ना चाहिये ! ॥ ४ ॥

जैसे नरकी सङ्गतिसे सुवा राम-राम बोलता है; परन्तु राम कौन ? ये नहीं जानता ॥५॥ फिर जो कभी पिञ्जरासे उड़िके जङ्गलमें जायगा, तब राम-नामकी याद भी नहीं रहनेकी ॥ इस प्रकारसे ये जीव जबलग नरदेहीके सङ्ग रहता है, तबलग ज्ञान, भक्ति, योग आचरण करता है । जो कदहीं देह छोड़के चौरासीको जायगा, तब कुछ एक भी खबर नहीं रहनेकी ॥ ६ ॥

बिनु देखे बिनु अर्स-पर्स बिनु ! नाम लिये क्या होई ? ॥७॥
धनके कहे धनिक जो होवै । निर्धन रहै न कोई ॥८॥

अरे ! जो चीज देखी नहीं औ उसका दर्शन भी नहीं हुआ, औ कभी स्पर्श भी नहीं हुआ, तो वाके नाम लिये क्या होयगा ? ये अर्थ ॥७॥ अरे ! जो दौलत-दौलत कहेसे दौलतवन्त होय, तो कङ्गाल कोई ना रहे । इस प्रकारसे जो राम-राम कहेसे ज्ञान होय, तो अज्ञानी कोई न रहे । ये अर्थ ॥८॥

साँची प्रीति विषय माया सो । हरि भक्तनकी फाँसी ॥ ९ ॥
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु ! बाँधे यमपुर जासी ॥१०॥४०॥

बानीकी मायासे साँची प्रीति लगाते हैं, ये ही हरिभक्त लोगोंकी फाँसी है ॥९॥ सो गुरु कहते हैं कि 'एक राम' ऐसा अनुमान जो है, सो उस अनुमानसे भागे बिना ये जीव बन्धनमें है । सो बाँधा गर्भवासको जायगा । ये अर्थ । 'एक राम' कहिये एक आत्मा; सो अनुमान । तासे भाग औ पारखपर ठहर । ये अर्थ । ॥१०॥४०॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४१ ॥ ❀ ॥

पण्डित ! देखहु मनमें जानी ! ॥१॥
कहुधौं छूति कहाँसे उपजी ? तबहि छूति तुम मानी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! तुम अपने मनमें विचार करके देखो ॥१॥ कि छूति कहाँसे उपजी ? जो छूति तुमने मानी ॥२॥

नादे-बिन्दे रुधिर के सङ्गे । घट ही में घट सपचै ॥३॥
अष्ट कँवल होय पुहुमी आया । छूति कहाँते उपजै ? ॥४॥

नाद-बिन्द पुरुषका औ रुधिर स्त्रीका मिलिके स्त्रीके गर्भमें तुम्हारा चोला पैदा हुआ ॥४॥ औ भगद्वारेसे बाहर आया । औ छूति कहाँसे उपजी ? ॥४॥

लख चौरासी नाना बहु बासन। सो सब सरि भौ माटी ॥५॥
एकै पाट सकल बैठाये। छूति लेत धौं काकी? ॥६॥

चौरासी लक्ष्य योनी—जैसे नाना प्रकारके बासन एक माटीके। 'सो सब सरि भौ माटी।' सरिके गलि गये ॥५॥ औ एक पाट धरती, तापर सब बैठे। अब छूति तो भी किसकी लेता है?। ये अर्थ ॥ ६ ॥

छूतिहि जेंवन छूतिहि अँचवन। छूतिहि जगत उपाया ॥७॥
कहहिं कबीर ते छूति विवर्जित। जाके सङ्ग न माया ॥८॥४१॥

खान-पान सब छूति ही भया औ स्त्रीकी छूतिसे सब संसार पैदा हुआ। सब छूतिका मूल स्त्री—सो तो अङ्गीकार किया, औ छूति किसकी विचारते हो? ॥७॥ गुरु कहते हैं कि सोई छूतिसे न्यारा है, जाके सङ्ग स्त्री औ कल्पना नहीं। ये अर्थ ॥ ८ ॥ ४१ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४२ ॥ ❀ ॥

पण्डित! शोधि कहो समुझाई? जाते आवागवन नसाई ॥१॥
अर्थ धर्म औ काम मोक्ष कहु? कौन दिशा बसे भाई! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित! तुम शोधिके समुझायके कहो, जासे आवागमन नशाये। ये अर्थ ॥१॥ अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष; ये चार फल कहो—कौन दिशामें रहते हैं? ॥२॥

उत्तर कि दक्षिन, पूरब कि पश्चिम? स्वर्ग पताल कि माहीं? ॥३॥
बिना गोपाल ठौर नहिं कतहूँ। नर्क जात धौं काहीं? ॥४॥

"उत्तर कि दक्षिण, पूर्व कि पश्चिम? स्वर्ग-पाताल कि माहीं?" जाकी स्थापना तुमने किया। ये अर्थ ॥३॥ भला! जो तुमने कहा कि बिना आत्मा कहूँ ठौर नहीं। सोई मालिक। तो आत्मा नर्कमें क्यों जाता है? ॥४॥

अनजाने को स्वर्ग-नर्क है। हरि जानेको नाहीं ॥५॥
जेहि डरसे भव लोग डरतु हैं। सो डर हमरे नाहीं ॥६॥

मायामुखः—माया कहती है कि अज्ञानी—जिन्होंने आत्मा नहीं जाना, ताको स्वर्ग-नर्क है। परन्तु जो ज्ञानी हैं, जिन्होंने 'सर्व आत्मा' ऐसा निश्चय किया,

उसको न स्वर्ग, न नर्क। सच्चिदानन्दरूप सदा निरन्तर है ॥५॥ ब्रह्ममुखः--"जेहि डरसे सब लोग डरतु हैं" कि स्वर्ग-नर्क औ नाना प्रकारकी चौरासी। सो डर हमको नहीं। हम शुद्ध चैतन्य ॥ ६ ॥

पाप-पुण्य की शङ्का नाहीं। स्वर्ग-नर्क नहिं जाई ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! जहाँका पद तहाँ समाई ॥८॥४२॥

हमको पाप न पुण्य, न विधि, न निषेध। न हम स्वर्गको जायँ, न हमको नर्ककी इच्छा। हम आत्मा जैसा-का-तैसा। ये अर्थ ॥७॥ गुरुमुखः--गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! ये सब मिथ्या जीवका अनुमान है। सो ये जीवने अपने अनुमानसे कल्पना किया औ आप अपनेमें मग्न हुआ, औ कहा कि एक आत्मा। ऐसा कहिके आत्मा-जगत् हुआ, तब जहाँका पद तहाँ समाया। जैसा-का-तैसा, सर्व "जल-तरङ्ग न्याय"। जब सर्व आत्मा ठहरा, तब गर्भवासका आवागमनका कारण ठहरा। जो सर्व आत्मा है, तो आवागमनमें कौन है ? झाँईंका पद झाँईंमें समाया। तब आवागमनमें आप ही है। इसवास्ते गर्भवाससे निकरा, हे सन्तो ! फिर गर्भमें समाया। ये अर्थ ॥ ८ ॥ ४२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४३ ॥ ❀ ॥

पण्डित ! मिथ्या करहु विचारा। ना वहाँ सृष्टि न सिरजनहारा ॥१॥

टीका गुरुमुखः--गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! जो तुम नाना प्रकारकी बानीका विचार करते हो, सो सब मिथ्या। अरे ! जहाँ तुम अनुमान किये हो, तहाँ न सृष्टि, न सिरजनहारा। मानुषसे अनुमान होता है। कछु अनुमान मानुष नहीं। ये अर्थ ॥ १ ॥

थूल अस्थूल पौन नहिं पावक। रवि शशि धरणि न नीरा ॥२॥
ज्योति स्वरूप काल नहिं जहवाँ। बचन न आहि शरीरा ॥३॥

जब अनुमान मानुष नहीं, तो अनुमानमें कछु कर्त्तव्य भी नहीं। तो अनुमान तो मिथ्या अनुमान ही है। न वो स्थूल, न वो सूक्ष्म; वो तो झाँईं मिथ्या। न वहाँ पवन, न अग्नि, न चन्द्र, न सूर्य, न धरणी, न नीर ॥२॥ न वहाँ ज्योति-स्वरूप, न वहाँ काल, न वचन, न शरीर ॥ ३ ॥

कर्म-धर्म किछुवो नहिं उहवाँ। ना वहाँ मन्त्र न पूजा ॥४॥

सञ्जम सहित भाव नहिं जहवाँ। सो धौं एक कि दूजा ? ॥५॥

न कर्म, न धर्म, न मन्त्र, न पूजा ॥४॥ न संयम, न भाव। न वहाँ एक, न दोय। सो मिथ्या झाँई। अरे! जो जीवका अनुमान, तहाँ क्या रहेगा? वो मूलमें अनुमान ही झूठा; फिर वहाँ क्या होयगा ? ॥ ५ ॥

गोरख-राम एकौ नहिं उहवाँ। ना वहाँ वेद विचारा ॥६॥
हरि हर ब्रह्मा नहिं शिव शक्ती। तीर्थउ नाहिं अचारा ॥७॥

न वहाँ गोरख, न राम। एकौ भी नहीं नजर आवते, जो उस अनुमानमें लीन हुए। औ वहाँ वेदका विचार भी नहीं ॥६॥ न हरि, न हर, न ब्रह्मा, न शिव, न शक्ति, न तीर्थ, न आचार ॥ ७ ॥

माय-बाप-गुरु जहवाँ नाहीं। सो धौं दूजा कि अकेला ? ॥८॥
कहहिं कबीर जो अबकी बूझै। सोई गुरू! हम चेला ॥९॥४३॥

न माय, न बाप, न गुरु। जहाँ कछु नहीं, सो मिथ्या अनुमान जीवकी कल्पना। अरे! अनुमानमें क्या रहता है ? जैसे अपने मनसे एक आम बनाया औ मनसे ही खाया। न तो जीभपर मालूम हुआ, न दाँतको लगा। न खट्टा, न मीठा। न पेट भरा, न भूख गई। इस माफिक नाना प्रकारके जो अनुमान करते हैं, सो कहाँ है ? हे जीव! सो सब तेरी कल्पना ॥८॥ जिन्ह अबके वक्त समुझिके पारखपर ठहरा—सोई गुरु, औ हम आत्मा, हम ब्रह्म, हम जगत्—ऐसा जो कहे, सो सब चेला। इसका परखानेवाला सोई गुरु। ये अर्थ ॥९॥४३॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४४ ॥ ❀ ॥

बुझ-बुझ पण्डित! करहु विचारा। पुरुषा है की नारी ? ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित! हे बुद्धिमान्! जो तुम सबने विचार किया, सो खूब समझो! अरे! जो कोई एक पुरुष अनुमान किया, सो कहाँ है ? कि ये जो कहते हो, सो सब बातें भर हैं ? कहबे मात्र हैं ?। ये अर्थ ॥ १ ॥

ब्राह्मणके घर ब्राह्मणी होती। योगी के घर चेली ॥२॥
कलमा पढ़ि-पढ़ि भई तुरुकनी। कलमें रहत अकेली ॥३॥

जो बानी ब्रह्माके घर गायत्री भई औ योगीके घर सिद्धि भई ॥२॥ औ मुसलमानके घर कलमा भई, सो सब बानी जीवकी कल्पना संसारमें अकेली रहती है। लेकिन ब्रह्म-खुदा ये कुछ नहीं ॥ ३ ॥

बर नहिं बरे ब्याह नहिं करे। पुत्र जन्मावनहारी ॥४॥
कारे मूँड़को एकहु न छाँड़ी। अजहूँ आदि कुमारी ॥५॥

अरे! जो बानीने एक खसम बताया, सो उसने आयके किसीकी शादी भी नहीं की। औ उसकी आश लगाके बिरहिनी तो बहुत भईं। परन्तु विवाह किसीसे भया ही नहीं औ उसके अनुमानसे ही पुत्र होने लगे, शिष्य--शाखा होने लगे। ये अर्थ ॥४॥ ऐसी ये बानी है कि कारे मूँड़को कोई नहीं छोड़ी। स्त्री औ पुरुष सबको भ्रमाया। जो खसम कोई ठहरा नहीं; अजहूँ आदि कुमारी। गायत्रीका नाम कुमारी, ब्रह्मचारिणी। ये अर्थ ॥ ५ ॥

मैके रहै जाय नहिं ससुरे! साँईं सङ्ग न सोवों ॥६॥
कहैं कबीर मैं युग-युग जीवों! जाति-पाँति कुल खोवों ॥७॥४४॥

मैके कहिये जहाँ पैदा होय, ससुरे कहिये जहाँ आशिक होय। सो ये बानी जगत्‌में पैदा भई औ जगत्‌में रही। जहाँ आशिकी भई, तहाँ कदहीं भी गई नहीं। ये अर्थ। जीवमुखः—साँईं कहिये ब्रह्मको। सोई जीव कहता है कि मैं ब्रह्म-विचार करके ब्रह्म भया, अब मैं चैतन्य हुआ। सोवना कहिये अज्ञानको, सो मैं अज्ञान नहीं ॥६॥ मैं ज्ञानरूपी युग-युग अविनाशी चैतन्य। न मेरी जाति न पाँति, न मेरा कुल न कुटुम्ब। ये सब नास्ति। मैं अस्ति चैतन्य। नारी = बानी, नारी = स्त्री। ये अर्थ ॥ ७ ॥ ४४ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४५ ॥ ❀ ॥

कौन मुवा? कहो पण्डित जना! सो समुझाय कहो मोहि सना ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि पण्डित जन कहिये ज्ञानीको। सो हे ज्ञानी लोग! मुवा कौन? क्या जड़ मुवा? कि चैतन्य मुवा? सो मेरेको समुझायके कहो! जो जड़ मुवा कहना, तो पाँचों तत्त्व बने ही हैं; औ जो चैतन्य मुवा कहना, तो जीवको मरण है नहीं। तब मुवा तो भी क्या? जो अनुमानमें, कल्पनामें लगा सोई मरा, औ नाम-रूपका नाश हुआ। केही तरहसे? कि

मरण नाम मिथ्याका है। नाम-रूप तब कहाँ हैं ? सो जो मिथ्यामें लगा, सो मिथ्यारूप हुआ। मिथ्या कहिये देह, मिथ्या कहिये ब्रह्म, मिथ्या कहिये कल्पना, मिथ्या कहिये अनुमान। ये चारों मिथ्यामें जो परा सो मरा, फिर-फिर उत्पत्ति-प्रलयमें परा। जो ये चार मिथ्याको परखके छूटा—सो बचा, पारखरूप हुआ, आवागमनसे रहित हुआ। ये अर्थ ॥ १ ॥

मूये ब्रह्मा विष्णु महेशू। पार्वती सुत मुये गणेशू ॥२॥
मूये चन्द्र मुये रवि शेषा। मुये हनुमन्त जिन्ह बाँधल सेता ॥३॥

अरे ! बड़े-बड़े ज्ञानी, योगी, भक्त; सो सब मर गये। कोई बचा नहीं। ब्रह्मा; विष्णु, महेश, शक्ति औ गणेश—ये पाँचों देवता सर्वोपर; सो भी कईएक बेर पैदा भये औ कईएक बेर मरे, परन्तु कोई पारख पायके छूटा नहीं। सब धोखेमें मरे। ये अर्थ ॥३॥ चन्द्र, सूर्य, शेष, हनुमन्त; ये भी कईएक बेर पैदा भये औ कईएक बेर मर गये। बिना पारख धोखेमें परे। ये अर्थ ॥ ३ ॥

मूये कृष्ण मुये करतारा। एक न मूवा जो सिरजनहारा ॥४॥
कहहिं कबीर मुवा नहिं सोई। जाको आवागवन न होई ॥५॥४५॥

कृष्ण भी मरे औ कर्त्तार भी मरे। कर्त्तार कहिये ईश्वर, जाने सृष्टिको पैदा किया झाँईके वश होयके, सो भी झाँईमें परा। आप ही ब्रह्म कहलाया औ जगत्‌रूपी हो गया। सो नाना कष्ट भोगता है। परन्तु एक न मुवा, जो सिरजन-हारा। सिरजनहारा कहिये झाँई धोखा, सो न मरा। कि जाकी समरसताई (सामर्थताई) से जीवको नानात्व दशाकी प्राप्ति भई औ जीव सब ही भूलमें परे, ताते अनेक दुःख भोगते हैं। ये अर्थ। सो गुरु कहते हैं कि जो झाँईमें समरस हुआ, सो कहाँ है ? वो तो मिथ्या झाँईमें परा औ सूने घरका पाहुना हुआ, औ कहा कि जगत् सब मेरा घर औ जगत् सब मेरा स्वरूप—'कनक-कुण्डल न्याय"। ऐसा कहके फिर जगत्-जालमें पहले सरीखे पड़े रहे। सो जगमें मरना-जीना लगा ही है ॥४॥ परन्तु सोई नहीं मुवा कि जिन्हने ब्रह्म औ जगत् आदि जाल सम्पूर्ण परखके छोड़ा औ पारखस्थिति परम शान्तिको प्राप्त भया, सोई नहीं मुवा। क्योंकि फिर ताको आवागमन नहीं। पारखस्थिति सबसे न्यारी। सो सबको परखके शुद्ध पारख हुआ, सोई नहीं मुवा औ आवागमनसे रहित हुआ। ये अर्थ ॥ ५ ॥ ४५ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४६ ॥ ❀ ॥

पण्डित ! एक अचरज बड़ होई ॥१॥
एक मरि मुये अन्न नहिं खाई। एक मरे सीझै रसोई ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! यह एक बड़ा आश्चर्य है ॥१॥ जो एक मर जाता है--अपना बेटा कि अपना बाप, तो रोते हैं औ अन्न नहीं खाते हैं। औ कोई पशु (जानवर) लायके, मारिके उसको रसोईमें पकाते हैं औ खुशी होते हैं। तो क्या अपने सरीखा दूसरा नहीं ? गरीब जीवको दुःख देते हैं उन्मत्त। यही कर्मसे वो जीव नाना योनिमें जाते हैं औ नर्क भोगते हैं। ये अर्थ ॥ २ ॥

करि अस्नान देवनकी पूजा। नौ गुण काँध जनेऊ ॥३॥
हँड़िया हाड़, हाड़ थरिया मुख। अब षट कर्म बनेऊ ॥४॥

ऊपर डिम्भ = दम्भ देखो ! तो स्नान करते हैं औ देव-पूजन करते है, नौ गुणका काँधेमें जनेऊ पहिरते हैं ॥३॥ औ हाँड़ीमें हाड़, थारीमें हाड़, मुखमें हाड़; औ षट्कर्मी कहलाते हैं ब्राह्मण। सो ये षट्कर्म बना, जो श्वानका कर्म आचरण करने लगे। ॥ ४ ॥

धर्म करे जहाँ जीव बधतु है। अकर्म करे मोरे भाई ! ॥५॥
जो तोहराको ब्राह्मण कहिये ! तो काको कहिये कसाई ? ॥६॥

और जहाँ यज्ञ होता है—अश्वमेध; नरमेध, गोमेध; अजामेध; तहाँ जीव पशु मारे जाते हैं। तहाँ कहते हैं कि बड़ा धर्म। अरे ! जहाँ जीवहिंसा होय, सो तो महापाप; ताको धर्म कहते हैं। इस प्रकारसे अकर्म करते हैं ॥५॥ जो तुम्हारे को ब्राह्मण कहना, तो कसाई किसको कहना ? जो जीवहिंसा करे औ करावे, सोई कसाई। ये अर्थ ॥ ६ ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! भरम भूलि दुनियाई ॥७॥
अपरम्पार पार पुरुषोत्तम ! या गति बिरले पाई ॥८॥४६॥

इस प्रकारसे सब यज्ञ--यागादिक करते--कराते मरि--मरि चौरासीमें गये। अब कहाँ हैं ? सुनो हो सन्तो ! सब दुनिया नाहक भ्रममें भूली ॥७॥ जो कहते

हैं कि अपरम्पार ! जाका पारावार नहीं, सो सबके परे उत्तम पुरुष निःअक्षर । ये जीवकी कल्पना काहू बिरलेको मालूम भई । ये अर्थ ॥ ८ ॥ ॥ ४६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४७ ॥ ❀ ॥

पाँड़े ! बूझि पियहु तुम पानी ॥१॥
जेहि मटिया के घरमें बैठे । तामें सृष्टि समानी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! तुम बूझिके पानी पीते हो, सो किससे बूझते हो ? ॥१॥ अरे ! जिस माटीके घरमें तुम बैठे हो, ताहीमें सब सृष्टि समाई । तुमसे न्यारा कौन है ? । ये अर्थ ॥ २ ॥

छप्पन कोटि यादव जहाँ भिजे । मुनि जन सहस्र अठासी ॥३॥
पैग-पैग पैगम्बर गाड़े । सो सब सरि भौ माटी ॥४॥

छप्पन कोटि यादव जहाँ सड़ि गये औ अट्ठासी हजार ऋषि सब सड़ि--सड़ि माटीमें मिल गये; सो माटीका एक पाट पृथिवी, तापर सब बैठे । अब ये पाटसे न्यारा कौन है ? जाकी तुम छूति लेते हो ॥३॥ अरे ! एक लाख अस्सी हजार पैगम्बर सब माटीमें मिल गये, सोई माटीमें सब रहते हैं । अब छूति तो भी किसकी लेते हो ? । ये अर्थ ॥ ४ ॥

मच्छ-कच्छ घरियार बियाने । रुधिर नीर जल भरिया ॥५॥
नदिया नीर नर्क बहि आवै । पशु मानुष सब सरिया ॥६॥

भला ! पानी बेछूति कहना, तो मच्छ, कच्छ, मगर आदि जन्तु पानीमें रहते हैं, उसीमें जन्मते हैं । उनका रुधिर पानीमें मिलता है ॥५॥ औ नदीमें नर्क-गोबर सभी बह आते हैं औ पशु--मानुष सब मुर्दा नदीमें डालते हैं, सो सब उसीमें सड़ते हैं । ऐसा पानी तुम आचार करते हो, तो ये कसर जाना नहीं । अरे ! जो किसीने पानी छुइ लिया, तो कैसे छूति होती है ? क्या पानीमें कोई मिल जाता है ? तो कोई पानी लावे औ पात्र शुद्ध होवे, तो नेत्रसे देख लेना औ छानि लेना, तब पीवना ॥ ६ ॥

हाड़ झरी-झरी गूद गली-गलि । दूध कहाँसे आया ? ॥७॥
सो ले पाँड़े जेंवन बैठे । मटियहि छूति लगाया ॥८॥

अरे ! शरीरमें सब मैला भरा है औ छूति तो भी किसकी-किसकी लेना औ मानना ? भला ! जो गऊ जल पान करती है, सो उसको चारों वर्ण छूते हैं। औ उसकी चूँचीमेंसे दूध निकलता है—"हाड़ झरि-झरि, गूद गलि-गलि ॥७॥ सो तो लेके पण्डित सब जेवने बैठे, औ देहको छूति लगाई। देह तो माटी है। जो पृथिवी छूति होय तो देहको भी छूति लगाना, औ पृथिवी छूति न होय तो देह भी छूति नहीं ॥ ८ ॥

वेद-कितेब छाँड़ि देहु पाँड़े। ई सब मनके भरमा ॥ ९ ॥
कहहिं कबीर सुनो हो पाँड़े। ई सब तुम्हरो कर्मा ॥१०॥४७॥

ये वेद-कितेब सब छाँड़ देवो पण्डित ! ये सब मनके भ्रम हैं ॥९॥ जीव कहाँ है ? क्या पदार्थ है ? और सभी मिथ्या हैं। हे सन्तो ! सुनो—ये सब तुम्हारे ही कर्म हैं। अनुमान-कल्पना सब तुम्हारा कर्त्तव्य। ये अर्थ ॥ १० ॥ ४७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४८ ॥ ❀ ॥

पण्डित ! देखहु हृदय विचारी। को पुरुषा को नारी ? ॥१॥

टीका मायामुखः—माया कहती है कि हे पण्डित ! हे बुद्धिमान् ! हृदयमें विचारके देखो कि आत्मा पुरुष है ? कि नारी ? ॥ १ ॥

सहज समाना घट-घट बोलै। वाके चरित अनूपा ॥२॥
वाको नाम काह कहि लीजै ? ना वाके वर्ण न रूपा ॥३॥

सर्व आत्मा। घट-घट बोलती है, सो तो प्रकृति। औ आत्मा अबोल, अडोल। अरे ! वह आत्मा, जाका ये सब चरित अनूप, नाना प्रकारके रूप दिखते हैं। जैसा जलके ऊपर बुद्‌बुदा, फेन, तरङ्ग—ऐसा आत्मा बिना कछु नहीं। ओला जल न्याय सर्व आत्मा ॥२॥ आत्माका ना वर्ण ना रूप; तो वह अरूप, अज, निराकार। उसका नाम तो भी क्या कहना ? जो सर्व नामका कहनेवाला औ सर्व रूपका देखनेवाला औ सर्व अक्षरको बनानेवाला; सो उसको क्या कहना ? । ये अर्थ ॥३॥

तै मैं क्या करसी ? नर बौरे ! क्या मेरा ? क्या तेरा ? ॥४॥
राम-खुदाय शक्ति-शिव एकै। कहुधौं काहि निहोरा ? ॥५॥

अरे ! नर दिवाना ! तैं-मैं क्या करता है ? 'तू--मैं' को कहाँ ठिकाना है ? अरे ! क्या मेरा ? औ क्या तेरा ? ये आश्चर्य ॥४॥ आत्मा तो एक--'तन्तु-पट

न्याय'। राम, खुदाय, शक्ति, शिव—सर्व आत्मा। ये नाना प्रकारका विकार आत्मामें खड़ा हुआ; पर आत्मा सदा अलिप्त। पवनमें जैसा भँवर पैदा होता है औ विकार बौंडरपर मालूम होता है; परन्तु वह पवन ही है—'मृत्तिका-घट न्याय'। अब संसार नाहक कल्पना करता है, तो किससे कहेगा ?। ये अर्थ ॥ ५ ॥

वेद-पुराण कितेब-कुराना। नाना भाँति बखाना ॥६॥
हिन्दू-तुरुक जैनि औ योगी। ये कल काहु न जाना ॥७॥

नाना प्रकारकी कल्पना किया—वेद—पुराण, कितेब--कुरान; नाना भाँति बखाना ॥६॥ कोई हिन्दू हुआ, कोई तुरुक हुआ, कोई, जैनी हुआ, कोई योगी हुआ; परन्तु ये बात किसीने न जानी कि आत्मामें नाना उपाधि काहेको चाहिये ? आत्मा केवल शुद्ध चैतन्य। ये अर्थ ॥ ७ ॥

छौ दर्शनमें जो परवाना। तासु नाम मन माना ॥८॥
कहहिं कबीर हमहिं पै बौरे ! ई सब खलक सयाना ॥९॥४८॥

गुरुमुखः—अब गुरु कहते हैं कि जो छौ दर्शनमें प्रमाण भया, सोई नाम और सबने माना, औ सब धोखेमें परे। हे जीव ! जो छौ दर्शनमें प्रमाण भया, सो कहाँ है ? अरे ! सब तेरी कल्पना है ॥८॥ मैं ब्रह्म--आत्मा हूँ, ऐसा कहके सब बौराये, दिवाने हुए। सयाना कहिये जीव, सो कहने लगा कि ये सब खलक सकल आत्मा, सोई मैं। ऐसा गाफिल हुआ, बिना पारख। ये अर्थ ॥९॥४८॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ४९ ॥ ❀ ॥

बुझ-बुझ पण्डित ! पद निर्बान ! साँझपरे कहवाँ बसे भान ? ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! हे बुद्धिमान ! जो तुमने निर्वाण पदको बूझा औ बूझमें समाया। बूझ कहिये ज्ञान, और बूझ कहिये बोध। तो चोला छूटेगा, तब जानना कहाँ रहेगा ? भान कहिये जानना, साँझ कहिये मरना। ये अर्थ ॥ १ ॥

ऊँच-नीच पर्वत ढेला न ईंट। बिनु गायन तहवाँ उठे गीत ॥२॥
ओस न प्यास मन्दिर नहिं जहवाँ। सहस्रों धेनु दुहावै तहवाँ ॥३॥

मायामुखः—माया कहती है—ऊँच = ब्रह्माण्ड औ नीच = पिण्डाण्ड; सो पिण्डाण्डका प्राण ब्रह्माण्डमें चढ़ाना। जहाँ ढेला ना ईंट, औ बिनु गायन तहाँ

गीत हो, सो नादमें मिलि रहना ॥२॥ जहाँ न ओश, न प्यास, न मन्दिर; निरामय है। जिसको सहस्रों धेनु दुहावती हैं, सहस्रों श्रुति जिसको गावती हैं। ये अर्थ ॥ ३ ॥ ❋

❋ टिप्पणी:—शब्द ४९ की २-३ चौपाईका भाष्य—

ऊँच–नीच पर्वत ढेला न ईंट। बिनु गायन तहवाँ उठे गीत ॥ २ ॥

मायामुखः—ऐसा प्रश्न श्रवण करके गुरुवालोग कहते हैं—हे पण्डितो! विचार करो! सन्ध्या, रात्रि होनेपर भी सूर्य तो अपनी ही जगहमें ज्यों--का--त्यों बना रहता है। केवल पृथ्वीकी आड़ पड़कर एक भागमें अँधेरा हो जाता है, तो भी दूसरे भागमें प्रकाश बना रहता है। वैसा परब्रह्मरूप सूर्यको आड़ करनेवाला कोई दूसरा नहीं है। क्योंकि स्वजाति, विजाति, स्वगत भेदसे वह सर्वथा रहित है। अतः ब्रह्मसे ऊँचा और नीचा भी कोई नहीं है। पर्वत=मायाकी आड़, परदा; ढेला=नानात्त्व भाव, जीवकी ढेरी, और ईंट=परोक्ष ईश्वरका जमाव; ये भी कोई कुछ ब्रह्ममें नहीं हैं। उसमें साँझ भी कभी नहीं पड़ती है। अतः वह जहाँ--का--तहाँ ही रहता है। किसीके गाये बिना ही वहाँ वेदका गीत गायन हो उठता है।

अथवा अपरोक्ष अनुभवसे उस बातको जाननेके लिए योगाभ्यास करना चाहिये! तभी स्वयमेव ब्रह्म साक्षात्कार हो जायगा। ऊँच=उच्च स्थान ब्रह्माण्ड भ्रमर-गुफामें ले जाकर नीच=नीचे पिण्डाण्डरूप नाभिसे प्राण-पवनको खैंचकर चढ़ा देना। जहाँपर पर्वत=सबसे परे रहनेवाला परब्रह्म एकसमान रहता है। ज्योति-स्वरूपमें उसका दर्शन मिलेगा। वहाँ ढेला=मन, और ईंट=अहङ्कार भी बाकी नहीं रहता है। मैदान साफ होनेसे परमानन्दमय रहता है। किसीके गायन–वादन किये बिना ही वहाँपर अपने--आप दशनाद अनहद ध्वनिका गीत बज उठता है। वह गीत सदा बजता ही रहता है। उसी नादमें लक्ष्य लगाकर एक-सा तदाकार होकर मिले रहना! सो वही निर्वाणरूप परमपदकी प्रत्यक्ष स्थिति है—ऐसा जानना! ॥ २ ॥

ओस न प्यास मन्दिर नहिं जहवाँ। सहस्रों धेनु दुहावै तहवाँ ॥ ३ ॥

जहाँपर उस ब्रह्म-स्थितिमें ओस=आशारूपमें ओसकी बुन्द भी नहीं रहती है। प्यास=तृष्णारूपमें इच्छाकी वृद्धि भी नहीं रहती है और मन्दिर=जो मनमें दृढ़ किया सो मन्दिर है। मन-मन्दिरमें विषयोंकी दृढ़ता भी नहीं रहती है। सबसे परे वह निर्मल निरामय रहता है। अतएव तहवाँ=वहींपर ब्रह्माण्डमें परमात्माके समीपमें, सहस्रों धेनु=कामधेनु गौके समान सहस्रों श्रुतियाँ सदा--सर्वदा उसीका गुणानुवाद, दुहावै=महिमा वर्णन करती हुई गाती रहती हैं। वहाँ सदा सामगान होता रहता है। वैसा गाते--गाते अन्तमें पार नहीं पाकर वेद भी "नेति--नेति श्रुतिः" कहकर हार जाता है। इस प्रकार जहाँ ओस नहीं, प्यास नहीं, मन्दिर नहीं, आशा नहीं, तृष्णा नहीं, मनमें विषयादि दृढ़ ही नहीं, वहींपर ब्रह्म निर्वाण पदमें परमानन्द स्थिति है। सहस्रों श्रुतियाँ उसीका गुणगान करती रहती हैं। वही सर्वोपरि महान् पद है ॥ ३ ॥

नित्त अमावस नित संक्रान्ति । नित-नित नौ ग्रह बैठे पाँति ॥४॥

अमावस योग कहिये जहाँ चन्द्रका लय होय औ सूर्यका प्रकाश होय । दोनों नेत्रोंकी काली पुतरी भृकुटीमें लय करना ! ये अर्थ । शङ्कामें राता सो संक्रान्ति । सोहं-सोहं शब्दमें लीन हुआ । इस प्रकारसे नित्य-नित्य योगी लोग नौ ग्रह मारके आसन लगायके बैठते हैं, नौ दरवाजा मूँदके सन्मुखीमें प्रवेश करते हैं । ये अर्थ ॥ ४ ॥

मैं तोहिं पूछौं? पण्डित जना ! हृदया ग्रहण लागु केहि खना ? ॥५॥
कहहिंकबीर इतनो नहिं जान। कौन शब्द गुरु लागा कान?॥६॥४९

गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! हे योगीजन ! मैं तुमको पूछता हौं कि तुम्हारे हृदयमें ये ग्रहण कबसे लगा ? ग्रहण कहिये धोखा; सो धोखा तुमको कबसे लगा ? ॥५॥ हे जीव ! तुम जिस वस्तुका अनुमान करता है, उसका तो कहीं ठिकाना ही नहीं ! इतना भी नहीं जानता, जो जीवसे अनुमान, बानी, कल्पना, योग, समाधि, ज्ञान, विज्ञान, आनन्द सब पैदा होते हैं । तो अब कौन शब्द लेके गुरु कहाते हो ? शिष्य लोगोंके कानमें क्या कहते हो ? निर्णय बिना । ये अर्थ ॥ ६ ॥ ४९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५० ॥ ❀ ॥

बुझ-बुझ पण्डित ! बिरवा न होय । आधे बसे पुरुष आधे बसेजोय ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे पण्डित ! जानो-जानो ! बूझ कहिये जानना, पण्डित कहिये माया, माया कहिये गुरुवा । सो गुरु कहते हैं कि ये गुरुवा लोगोंने जो जाना है, बूझा है सो अबूझ । अबूझ कहिये धोखा; जो कछु है नहीं । ये अर्थ । 'आधे बसे पुरुष आधे बसे जोय ।' जो एक पुरुष और एक स्त्री है, औ कोई नहीं । ये अर्थ ॥ १ ॥

बिरवा एक सकल संसारा । स्वर्ग शीस जर गई पतारा ॥२॥
बारह पखुरिया चौबिस पात । घने बरोह लागे चहुँ पास ॥३॥
फूले न फले वाकी है बानी । रैन-दिवस बेकार चूवै पानी ॥४॥

मायामुखः—सब संसारमें एक ईश्वर है, जाका शीश स्वर्ग औ जड़ पाताल । स्वर्ग कहिये भँवरगुफा, शीश कहिये ब्रह्माण्ड, पतार कहिये अर्ध, अर्ध

कहिये नाभि; जर कहिये जीव। सो जाकी स्थिति भँवरगुफामें, और सर्व व्यवहार नाभिसे करता है। ये अर्थ ॥२॥ बारह पखुरिया कहिये बाहर राशि, चौबीस पात = चौबीस अवतार। तो नाम-रूप सर्व उसीका है। ये अर्थ। बरोह कहिये रोमांश; सो एक-एक रोममें अनेक ब्रह्माण्ड चौतरफ लगे हैं। ये अर्थ॥३॥ फिर कदहीं न फूलता, न फलता, न बढ़ता, न घटता है। उसीकी सब बानी औ उसीके सब चरित्र। रैन-दिवस जाकी उत्पत्ति-प्रलय। जब आँखें मूँदी, तब सर्व प्रलय। औ जब आँखें खोली, तब सर्व उत्पत्ति। ये अर्थ। जाके शरीरका पानी विकार पसीना सब चूवता है, सो सब पानी समुद्र-नदी आदि। ये अर्थ ॥ ४ ॥

कहहिंकबीरकछुअछलोनतहिया॥हरिबिरवाप्रतिपालेनिजहिया॥५॥५०

गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जो मायाने उपदेश किया, सो मिथ्या धोखा, कछु है नहीं। अरे! जब यह मानुष हता, तब कोई नहीं हता। तब इसमें कल्पना उठी कच्चे तत्त्वके स्वभावसे। सोई कल्पनाने सब मानुषकी बुद्धि हरली। तब कहा कि कोई बड़ा ईश्वर हमारा प्रतिपालन करनेवाला होयगा। तबसे बहुत कल्पना कर-करके नाना बानी बोला औ आप बन्धनमें परा; बिना पारख। ये अर्थ ॥ ५ ॥ ५० ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५१ ॥ ❀ ॥

बुझ-बुझ पण्डित मनचितलाय। कबहिंभरलि बहै कबहिं सुखाय॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि "बुझ-बुझ पण्डित मन चित लाय।" पण्डित कहिये ब्रह्मा, जो नाभिमें मन-चित्त लायके बूझते-बूझते अबूझ हो गये। बूझ कहिये जीव, अबूझ कहिये ब्रह्म। बूझ कहिये जानना, अबूझ कहिये न जानना। बूझ कहिये ज्ञान, अबूझ कहिये अज्ञान। बूझ कहिये चैतन्य, अबूझ कहिये अचेत। सो अचेत हुआ। ये अर्थ। अब कबहीं तो बानी सब विधि स्थापना करती जाती है औ कबहीं सब निषेध करती है कि सब विधिवाद मिथ्या। ये अर्थ ॥ १ ॥

खन ऊबै खन डूबै खन औगाह। रतन न मिलै पावै नहिं थाह॥२॥
नदिया नहिं साँसरि बहे नीर। मच्छ न मरे केवट रहै तीर॥३॥

ऐसी विधि-निषेधकी बानी सुनिके कबहीं ये जीव ऊब उठता है, बेजार

होता है; औ कवहूँ वही बानीमें डूब जाता है, भ्रम जाता है । औ छिनमें बोलता है कि अवगाह है । ये अर्थ । रतन कहिये ज्ञान; सो उस ज्ञानका अन्त मिला नहीं, तब कहा कि अथाह है । जब पार नहिं मिला, तब अपार कहा ये अर्थ ॥२॥ भवसागर कहीं नदी नहीं । साँसरी कहिये संशय, नीर कहिये बानी; सो संसार सब संशयकी बानीमें बहता है । ये अर्थ । मच्छ कहिये जीव, केवट कहिये गुरुवा, सो सदा नजदीक रहते हैं । जीव कुछ मरता नहीं, एक चोला छोड़ा औ दूसरा बनाया । इस प्रकारसे जीव अनेक चोला बनाता है, तहाँ-तहाँ गुरुवा लोग नजदीक रहते हैं फाँदनेको । ये अर्थ ॥ ३ ॥

पोहकर नहिं बाँधल तहाँ घाट । पुरइनि नाहिं कँवल महँ बाट ॥४॥
कहहिं कबीर ई मनका धोख । बैठा रहै चला चहै चोख ॥५॥५१॥

अरे ! जहाँ ताल नहीं, तहाँ । घाट बाँधा । ताल कहिये ब्रह्म; सो जहाँ कुछ नहीं, तहाँ अनुमान बाँधा । पुरइनी नहीं, पुरइनी कहिये जीव, कँवल = ब्रह्म । सो जहाँ जीव नहीं, तहाँ ब्रह्म अनुमान बाँधा । तो जहाँ जीव नहीं, तहाँ कुछ नहीं । ये अर्थ ॥४॥ अरे जीव ! तेरे अनुमानसे ही ब्रह्म है । तू नहीं, तहाँ क्या है ? ये सब मनका धोखा ! जो समाधि करके बैठ रहे हो औ ज्ञानदशा—बाल, पिशाच, मूक, जड़ औ उन्मत लेके फिरे, सो सब मनकी कल्पना । ये अर्थ ॥५॥५१॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५२ ॥ ❀ ॥

बूझ लीजै ब्रह्म ज्ञानी ! ॥१॥
घूरि-घूरि वर्षा वर्षावै । परिया बुन्द न पानी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि बूझ लीजै—जो ब्रह्मका ज्ञान गुरुवा-लोग कल्पि-कल्पि उपदेश कर-करके दृढ़ाते हैं । ये अर्थ ॥१॥ बुन्द कहिये केवल केवल कहिये ब्रह्म; कहीं नहीं है । पानी कहिये बानी, सो बानी भर है औ कुछ नहीं । ये अर्थ ॥ २ ॥

चिउँटीके पग हस्ती बाँधो । छेरी बीग रखावै ॥३॥
उदधि माँह ते निकरि छाँछरी । चौड़े ग्रह करावै ॥४॥

चिउँटी कहिये बानी, चिउँटी कहिये स्थूल, स्थूल कहिये स्त्री; हस्ती कहिये मन, मन कहिये कल्पना, कल्पना कहिये सूक्ष्म । सो मनने कल्पना किया, तहाँ

चित्त चला। सोई बुद्धिने निश्चय किया बोध। सोई बोधमें बोधोहं, ये अहङ्कार। मैं कहिके बानीमें बन्ध हुआ। ये अर्थ। औ छेरी कहिये जीव, जीव कहिये जो सकल कल्पना करनेवाला। बीग कहिये माया, माया कहिये स्त्री, औ माया कहिये गुरुवा; सो सब जीवनकी रखवारी करने लगे, जो यह जीव चौरासीके बाहर न जाय। ये अर्थ ॥३॥ उदधि कहिये संसार, संसारकहिये स्त्री, स्त्री कहिये भग; औ संसार कहिये पुत्र—दारा आदिक। छाँछरी कहिये जीव, चौड़ा कहिये मैदान, चौड़ा कहिये जङ्गल, चौड़ा कहिये ब्रह्म, ब्रह्म, कहिये भ्रम। सो गुरुवा लोगोंकी बातें सुनिके जीव भग-भोगादि संसार छोड़के भ्रममें घर किया, बनवास किया, परमहंस हुआ, धोखेमें परा। ये अर्थ ॥ ४ ॥

मेण्डुक सर्प रहत एक सङ्गे। बिलैया श्वान बियाई ॥५॥
नित उठि सिङ्घ सियारसों डरपै। अद्भुद कथ्यो न जाई ॥६॥

मेण्डुक कहिये जीव, जो संसार सागरमें रहै। सर्प कहिये मन, मन कहिये कल्पना, सो जीवके सङ्ग सदा रहती है। ये अर्थ। बिलैया कहिये स्त्री, बिलैया कहिये गुरुवा, गुरुवा कहिये ब्रह्म, औ बिलैया कहिये काया; श्वान कहिये वेद, वेद कहिये ॐकार। सो ॐकार देहसे उठा, तो जीवकी कल्पनासे बानी उठी।

ॐकार चौपदी कवित्तः—प्रथम भँवर गुफामें शून्य, अर्धमात्रा नाभी जान। मकार अर्धपर्व अनुमान, हृदय स्थान जानिये ॥ उकार कण्ठमें कहि दीन्ह, भर अङ्गुष्ठ वाकी चीन्ह। अकार त्रिकुटीमें भौ लीन, ऐसी बानी मानिये ॥ ऐसी बानी है ॐकार, सारा कल्पनाका थार। काहु कियो न बिचार, सब अनुमान जीव ही को ॥ पहिली कल्पना ॐकार, भौ सब जगतको भरतार। आपु हो गयो है नार, जो भरतार सबहिन को ॥ भौ अब बानीको विस्तार, काहु लह्यो नाहिं पार। खोजत थके हैं अपार, तब बिचार एक कियो है को ॥ स्थूल त्यागिये अकार, सूक्ष्म बासना उकार। कारण अज्ञान है मकार, मैं तो साक्षी तीनोंको ॥ मैं तू द्वैत जहाँ मिटि जाय, सोई बिन्दु पञ्चम आय। सोहं आत्मा कहलाय, टीका रह्यो सबहिनको ॥ पूरन परख सुखकी खान, गुरु बिनु को देई पहिचान। सकलो भ्रमजाला मान, पारख माहिं स्थिर होय रहो को ॥ १ ॥

गुरु कहते हैं कि इस प्रकारसे नाना कल्पना जीवमें उठी कच्चे चोलेके तरफसे। फिर जीव उस कल्पामें खराब होता है। ये अर्थ ॥५॥ सिङ्घ कहिये

जीव, सियार कहिये माया, माया कहिये बानी, बानी कहिये वेद । सो वेद जीवकी कल्पना । सो अपनी कल्पनासे अपनेको डर भया । जामें नित्यानित्य लड़ता रहता है, विचार करता है । ये बड़ा आश्चर्य ! कछु कहा नहीं जाता । जो अपनी कल्पनामें आप विचार करके गोता खाता है। ये अर्थ ॥ ६ ।

कौने संशय मृगा बन घेरे ? पारथ बाणा मेले ॥७॥
उदधि भूपते तरिवर डाहै । मच्छ अहेरा खेले ॥८॥

कौने संशय कहिये जो नाना प्रकारके कवित्त्व कानमें फूँका जावे, सो कौने संशय । संशय काव्य—ज्ञान, भक्ति और योग । ये अर्थ । मृगा कहिये मन, मन कहिये कल्पना, बन कहिये बानी, बन कहिये संसार । सो संशयके काव्यने मनको बानीमें बाँधिके संसारमें घेरा, ब्रह्मास्मि कहाये । ये अर्थ । पारथ कहिये ब्रह्मा, जाने पराका अर्थ बताया । परार्थ कहिये ज्ञान; सोई ज्ञान सब एक-अनेक दृढ़ाने लगे ॥७॥ उदधि कहिये संसार समुद्र, भूप कहिये जीव, तरिवर कहिये मानुष-देहरूप वृक्ष । सो मानुषजीवसे सब वेदादि बानी बनी । सकल संसार, सो सब उस वेदबानीके धोखेमें जरने लगे । अरे ! ये बड़ा आश्चर्य है ! जो मच्छ भी शिकार खेलने लगा । मच्छ कहिये जीव, सो जीव भी गुरुवाई करके एक-अनेकको फँसाने लगे । ये अर्थ ॥ ८ ॥

कहहिं कबीर यह अद्बुद ज्ञाना । को यह ज्ञानहि बूझै ? ॥९॥
बिनु पङ्खै उड़ि जाय अकाशै । जीवहि मरण न सूझै ॥१०॥५२॥

गुरु कहते हैं कि इस जीवने बेबुध ज्ञान कथा, जहाँ मन-बुद्धि पहुँचती नहीं । अब इस जीवकी कल्पनामें जीव ही परा । अब कौन ये कल्पनाको बूझै औ कौन बुझावै पारख बिना ? ॥९॥ अरे ! बिना पङ्ख आकाशको उड़ता है । पङ्ख कहिये पक्ष; सो पक्षापक्ष छोड़के बोला कि मैं निर्पक्ष आकाशवत् । जीव कहिये जो कभी मरे नहीं । मरण कहिये जो धोखा है, जहाँ जीव नहीं । सो जीव धोखामें ग्रस्त हुआ, ब्रह्म हुआ । कछु सूझा नहीं । ये अर्थ ॥ १० ॥ ५२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५३ ॥ ❀ ॥

वै बिरवा चीन्हे जो कोय ! जरा-मरण रहित तन होय ॥१॥

टीका मायामुखः—माया कहती है कि उस परमात्माको जो कोई चीन्है,

सो जरा–मरणसे रहित होय । जरा कहिये वृद्ध, मरण कहिये मृत्यु । सो जन्म–मरणसे रहित होवेगा । ये अर्थ ॥ १ ॥

बिरवा एक सकल संसारा । पेड़ एक फूटल तिनि डारा ॥२॥
मध्य कि डारि चारि फल लागा । शाखा पत्र गिने को वाका ? ॥३॥

कैसा जानना ? कि 'बिरवा एक सकल संसारा ।' जगत् सब एक आत्मा; 'जल-तरङ्ग न्याय' । दूसरा कोई नहीं । ये अर्थ । पेड़ एक = परब्रह्म, तीन डार कहिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश ॥२॥ तामें मध्यकी डार = विष्णु चार फलके मालिक । चारफल—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष; जो कोई विष्णुका भक्त होय, ताको ये प्राप्त होते हैं । शाखा कहिये अवतार औ पत्र कहिये वेद-श्रुति । सो जाके अगणित अवतार औ अगणित श्रुति, कछु गिनती नहीं ॥ ये अर्थ ॥ ३ ॥

बेलि एक त्रिभुवन लपटानी । बाँधे ते छूटै नहिं ज्ञानी ॥४॥
कहहिंकबीर हम जात पुकारा । पण्डित होयसो लेइ विचारा ॥५॥५३॥

गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि इस प्रकारकी बानी तीनिलोकमें लपटाई । बेलि कहिये बानी, एक कहिये जीव । सो बानी जीवसे बनी औ तीनिलोकमें बन्धन किया । ये अर्थ ॥४॥ गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जो 'अहं ब्रह्म' कहते हो, सो कहाँ है ? मिथ्या जीवकी कल्पना । ये अर्थ । अहं ब्रह्म कहते-कहते सब चौरासीको प्राप्त भये, गर्भवासमें गये जो बड़े-बड़े पण्डित भये ते सब । हे सन्तो ! बिना पारख उनकी स्थिति कहाँ होयगी ? ये विचार लेवो ! ये अर्थ ॥५॥५३॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५४ ॥ ❀ ॥

साँईके सङ्ग सासुर आई ॥१॥

सङ्ग नहिं सूति स्वाद नहिं मानी । गयो जोवन सपनेकी नाँई ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि साँई कहिये गोसाँई, गोसाँई कहिये ब्रह्म; ब्रह्म कहिये भ्रम । सो भ्रमके सङ्ग सासुर आई, गुरुवा लोगोंके पास आई । ये अर्थ ॥१॥ न कदहीं साँईके सङ्ग सोयी; औ उसका कछु स्वाद भी नहीं मालूम भया । नाहक धोखेको मानके मानुष-जन्म स्वप्नवत् गया । ये अर्थ ॥२॥ औ साँई कहिये झाँई, सासुर कहिये जगत् । सोई जीव झाँईके सङ्ग चौरासीको प्राप्त

भया। चौरासी कहिये भग ॥१॥ औ फिर झाँईका आश्रित हुआ; परन्तु न सङ्ग ही हुआ, न स्वाद ही मिला। ये संसार नाहक धोखेके भरोसे स्वप्नवत् चला जाता है। ये अर्थ ॥ २ ॥

जना चारि मिलि लगन सोधाये। जना पाँच मिलि माँड़ो छाये॥३॥
सखी सहेलरि मङ्गल गावैं। दुःख-सुख माथे हरदि चढ़ावैं॥४॥

जना चारि कहिये अन्तःकरण चतुष्टय; सो जो कल्पना किया मनने कि कोई दूसरा कर्त्ता है, तहाँ चित्त चला। निश्चय किया बुद्धिने कि सच है। सो माना कि जगत्कर्त्ता ब्रह्म—ये अहङ्कारने लगन सोधी। ये अर्थ। और कल्पना किया मनने कि मेरे सरीखा दूसरा रूप होना। सो चित्त चला। तासे विषय पैदा हुआ। निश्चय किया बुद्धिने कि सो स्त्री पैदा भई। उस स्त्रीको माना सो अहङ्कार। औ स्त्री--पुरुषका संयोग हुआ। ये अर्थ। जना पाँच कहिये पञ्चकोश, माँड़ो कहिये बानी; सो पञ्चकोश कल्पिके नाना प्रकारकी बानी छाई। ये अर्थ। और पाँच जना = पाँच तत्त्व जब मिले स्त्रीके संयोग समय, सोई मँड़वा = चोला तैयार भया। ये अर्थ॥३॥ सखी कहिये भक्त, सहेलरि कहिये योगी, सो सबने एक खाविन्द स्थापन करके मङ्गल गाने लगे, आनन्द भये। ये अर्थ। औ सखी कहिये प्रकृति, सहेलरि कहिये दश इन्द्रियाँ। सो इन्द्रियाँ अपना-अपना विषय लेने लगीं औ प्रकृति सब अपने-अपने भावसे चलने लगीं। ये अर्थ। दुःख-सुख नाना प्रकारके, सो जीवपर चढ़ाने लगीं। हलदी = विषय। ये अर्थ। औ दुःख-सुख सब बिसरि गया भगवत्-भजनमें। जैसे शरीरमें हलदी लगाई औ रगड़के निकार डारी; ऐसा नाना प्रकारके दुःख-सुख जो लगा था जीवको, सो मैल। उसके ऊपर हेतु भगवत्-प्राप्तिका, सो हलदी लगायके दुःख-सुख दूर किया। ये अर्थ ॥ ४ ॥

नाना रूप परी मन भाँवरि। गाँठि जोरि भाई पतियाई॥५॥
अर्घा दै ले चली सुवासिनी। चौके राँड़ भई सङ्ग साँई॥६॥

"नाना रूप परी मन भाँवरी।" नाना रूप कहिये योगी, जङ्गम, सेवड़ा, संन्यासी, दर्वेश, ब्राह्मण; ये नाना रूप। इनकी अनेक उपासना देखके मन भ्रम गया, आवागमनके चक्करमें परा। ये अर्थ। औ नाना रूपकी स्त्री, सो देखके मन, भ्रमा, भगचक्रमें परा। ये अर्थ। जो नाना रूपने उपदेश किया धोखा, सो

उसकी गाँठी जोरके प्रतीत किया, सुरति ठहरायके ध्यानस्थ हुआ । ये अर्थ । औ जब भगचक्रमें मन परा, तब चित्त चला । बुद्धिने निश्चय किया । ताका अहं-कर्तृत अध्यास आया, सो अहङ्कार । इस प्रकारसे अहङ्कारकी गाँठी परी, ताते जीव दूसरी देहको प्राप्त हुआ । ये अर्थ ॥५॥ 'अर्घा दै ले चली' सुवासिनी = भक्त-को संसारसे पानी छोड़के भेष अपने सङ्ग ले चले विरक्त बनायके । ये अर्थ । कि जब स्त्रीका संकल्प किया, तब काम उपजा । तब शरीरको लेके सुरति चली स्त्री सङ्ग करनेको । ये अर्थ । कि जब भेष संसारसे विरक्त करके ले चले, तब एक चौकेमें बैठायके ध्यान लखाया कि देख ! ये तेरा खाविन्द है । तू पतिव्रता-न्याय, चन्द्र—चकोर न्याय ध्यान लगावो ! तब ये जीव राँड़ भया, धगड़—धोखेसे ध्यान लगाया । ये अर्थ । और आप खाविन्द था—सो स्त्रीका सङ्ग करके भगद्वारमें प्रीति लगाया विषयसे, सो आप ही स्त्री हुआ । ये अर्थ ॥६॥

भयो विवाह चली बिनु दुलहा । बाट जात समधी समुझाई ! ॥७॥
कहैं कबीर हम गौने जैबे ! तरब कन्थ लै तूर बजैबे ! ॥८॥५४॥

इस प्रकारसे दीक्षा हुई । गुरुवा लोगोंकी शरणमें जीव गया; परन्तु जा खाविन्दके ऊपर राँड़ बना, सो खाविन्द ना मिला । बाट कहिये भक्ति । सो प्रेम-लक्षणासे चलने लगा, तब समधी कहिये ब्रह्मज्ञानी, सो ब्रह्मज्ञानीने समु-झाया ब्रह्मज्ञान । ये अर्थ । कि बाट कहिये भग; सो भगमें जाते, विषय करते-करते समधी कहिये स्त्री, सो स्त्रीने अपनेमें सम कर लिया । जब चोला छूटा तब गर्भवासमें गया, फिर गर्भवाससे पैदा भया । ये अर्थ ॥७॥ जीवमुखः—जीव फिर कहता है कि हम गौने जैबै—जो सतलोक, जनलोक, तपोलोक, भूर्लोक, महरलोक, भुवरलोकको जायेंगे, अपने खसमका नाम लेके तरेंगे, मुक्तिके नौबत बजावेंगे । ये अर्थ ॥ ८ ॥ ५४ ॥

॥ * ॥ शब्द ॥ ५५ ॥ * ॥

नरको ढाढ़स देखो आई ! कछु अकथ कथ्यो है भाई ! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—नर कहिये रूपमानुष, रूपमानुष कहिये जगत्; सो गुरु कहते है कि जगत्की ढाढ़स देखो आई । ढाढ़स कहिये दृढ़ापन, दृढ़ापन कहिये जहाँ बन्धा होय । जहाँ बन्धा होय सो स्त्री औ बानी । सो बानीसे जो अकथ, कछु कथनेमें न आवे, सो कथा ब्रह्म । ये अर्थ ॥ १ ॥

सिंह–शार्दुल एक हर जोतिनी। सीकस बोइनि धानै ॥२॥
बनकी भुलइया चाखुर फेरे। छागर भये किसाने ॥३॥

औ सिंह कहिये जीव, शार्दूल कहिये माया, माया कहिये काया; सो जीव-रूपको एक हरिकी भक्तिमें लगाया। हरि कहिये कल्पना। ये अर्थ। 'सीकस बोइनि धाने।' सीकस कहिये सिखापन; सो सिखापन जो गुरुवा लोगोंने दिया, सोई धान बोया, मन अनुमानका बीज बोया। ये अर्थ ॥२॥ बन कहिये बानी, वन कहिये संसार; भुलइया कहिये स्त्री, बनकी भुलइया कहिये पण्डित; चाखुर कहिये वेद; सो नाना प्रकारकी कल्पना करके चार वेद बनाये, सो पण्डित लोग संसारमें दृढ़ावते फिरते हैं। ये अर्थ। छागर कहिये गदहा, गदहा कहिये ब्रह्मज्ञानी। सो जीव सब वेदबानी सुनकर ब्रह्मज्ञानी भये। किसान कहिये जीव। ये अर्थ ॥३॥

छेरी बाघै ब्याह होत है। मङ्गल गावै गाई ! ॥४॥
बनके रोझ धरि दायज दीन्हों। गोहलो कन्धे जाई ॥५॥

छेरी कहिये जीव, बाघ कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये भ्रम; सो जीवका ब्रह्मसे ब्याह होता है, लगन लगती है। गुरुवा लोग उपदेश करते हैं। ये अर्थ। मङ्गल कहिये कीर्तन, सो सर्व भेष भक्त लोग गावते हैं। गाय कहिये भेष। ये अर्थ ॥४॥ औ बनके रोझ कहिये ॐकार—सो जीवको धरिके दायज दीन्हा, उपदेश दीन्हा। ये अर्थ। गोहलो कहिये गुरुवा लोग, सो छिपकर कानपर कपड़ा डारकर उपदेश किया ॥ ५ ॥

कागा कापर धोवन लागे। बकुला किरपहि दाँते ॥६॥
माखी मूँड़ मुँड़ाबन लागी। हमहूँ जाब बराते ॥७॥

कागा कहिये गुरुवा लोग, कापर कहिये जीव; सो गुरुवालोग नाना प्रकारके कर्म लगायके जीवको धोवने लगे, शुद्ध करने लगे। ये अर्थ। बकुला कहिये पण्डित; सो पण्डित दाँत कीर्पने लगे, नाना प्रकारकी फलश्रुति, कर्मश्रुति दृढ़ा-वने लगे। ये अर्थ ॥६॥ माखी कहिये संसारके जीव, माखी कहिये बानी; सो नाना प्रकारकी बानी सुनी–सुनि संसारके जीव सब मूँड़ मुँड़वाने लगे। ये अर्थ। कोई योगी भये, कोई बैरागी भये, कोई संन्यासी भये। इस प्रकारसे विरक्ति लिये कि हम भी स्वर्गादिक भोग, ब्रह्मादि-भोग, ईश्वरादि-भोग करने जायेंगे ॥७॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! जो यह पद अर्थावै ॥८॥
सोई पण्डित ! सोई ज्ञाता ! सोई भक्त कहावै ! ॥९॥५५॥

गुरु कहते हैं कि यह जो सब कल्पना की, सो कहाँ है ? मिथ्या धोखा है। हे सन्तो ! सुनो—जो अनुमान ब्रह्माने किया, सोई महादेवने कहा, सोई विष्णुने कहा। सोई अनुमान सब जगत् कहते हैं, ताते कल्पि-कल्पि गर्भवासमें जाते हैं। जो ये सबको परखता है, सो पारखमें रहता है। ये अर्थ ॥८॥९॥५५॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५६ ॥ ❀ ॥

नरको नहिं परतीत हमारी ॥१॥
झूठा बनिज कियो झूठे सो। पँजी सबन मिलि हारी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि "नरको नहिं परतीत हमारी ॥१॥" झूठा बनिज कहिये जो जीवका अनुमान, अनुमान कहिये आत्मा, अनुमान कहिये ब्रह्म; सो ब्यापार किया झूठे सौदागरके सङ्ग, गुरुवा लोगनके सङ्ग। झूठे सौदागर कहिये गुरुवा लोग। पूँजी कहिये जीव; सो सबन मिलि अपना जीव हारे गुरुवा लोगोंकी सङ्गतिमें, भ्रममें परे। ये अर्थ ॥ २ ॥

षट दर्शन मिलि पन्थ चलायो। त्रिदेवा अधिकारी ॥३॥
राजा देश बड़ो परपञ्ची। रैयत रहत उजारी ॥४॥

ब्रह्मादि गुरुवनकी बातें सुनिके जीव सब व्याकुल भये कि दूसरा ईश्वर है। उसकी प्राप्ति बिना जीव चौरासीमें रहता है। ऐसा भ्रम जब जीवमें पैठा, तब जीव उदास भया, तब घर छोड़के जङ्गलमें चला। कोई योग धारण करने लगा, कोई कल्पि-कल्पि नाना प्रकारके ज्ञान करने लगा। कोई नाना प्रकारके कर्म आचरने लगा, कोई नाना उपासना करने लगा, कोई 'मैं ही ब्रह्म' कहने लगा, कोई कर्त्ता न्यारा कहने लगा, कोई मैं-तू छोड़के आत्मा बना। इस प्रकारसे छौ दर्शन बने औ कल्पि-कल्पि नाना मत बनाये, जामें संसारको वैराग्य होय। सो उनकी मति देख-देखके सब जीव बौराये औ पन्थ चले। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव सब पन्थके अधिकारी ठहरे, मान्य ठहरे। ये अर्थ ॥३॥ इस प्रकारसे छौ दर्शनकी कल्पना बढ़ी औ त्रिदेवनकी कल्पना बढ़ी, तब पञ्चकोश परपञ्च रचा,

तत्त्वमसिका निर्णय किया। आखिर जीव सब जहाँ कुछ नहीं, तहाँ उजारमें बसने लगे, ब्रह्म धोखेमें बसने लगे, आत्मा-ब्रह्म कहाये। ये अर्थ ॥ ४ ॥

इतते उत, उतते इत रहहू। यमकी साँड़ सँवारी ॥५॥
ज्यों कपि डोर बाँधु बाजीगर। अपनी खुशी परारी ॥६॥

इतते उत—जब इधर जगत्‌से स्थूल, सूक्ष्म, कारण औ महाकारणका निर्णय किया, तब ब्रह्म हुआ। प्रथम श्रवण किया, फिर मनन किया, विचार किया अपने मनमें; फिर निदिध्यासन किया। उसपर ध्यान बैठा, निश्चय हुआ। फिर साक्षात्कार जो जाना अपने अनुभवसे कि सर्व आत्मा अद्वैत है। इस प्रकारसे जब अद्वैत आत्मा हुआ, तो फिर स्थूल हुआ औ चौरासी सब आप ही हुआ। जो वो आत्मा हुआ, तो चौरासी क्या उससे न्यारी है? इस प्रकारसे इतते उत, उतते इत रहा ही। जो सर्वहीमें रहते हैं, फिर सर्वसाक्षी कहाते हैं। जड़का साक्षी चैतन्य। ये अर्थ। कोई योग करके इत = पिण्डाण्ड, उत = ब्रह्माण्ड; सो पिण्डाण्डसे प्राण ब्रह्माण्डमें रखते हैं और फिर समाधि जागी, तब पिण्डाण्डमें आते हैं—'रहट-घट न्याय।' कोई गर्भवाससे बाहर आया और फिर गर्भवासमें जाता है। भगसे निकरा फिर भगमें चला। ये अर्थ। यमकी साँड़ सँवारी। यम = गुरुवा, यम = स्त्री, साँड़ सवारी = जीव; सो गुरुवा लोगोंकी बातें सुनिके कहता है कि मैं चार देह नहीं, औ चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कारका साक्षी आकाशवत्। तब जैसे आकाशसे चार तत्त्व पैदा भये औ चारों आकाशमें समाये। इस प्रकारसे शुद्ध ब्रह्मसे जो स्फुरणा हुई, सो सबल ब्रह्म। औ सबल-ब्रह्मसे तीन गुण पैदा भये—स्थूल, सूक्ष्म, कारण आदि। फिर जब नाश हुए, तब एक-में-एक समाये वा मिलिके केवल आकाशवत् हुए। फिर जैसे आकाशसे पृथ्वी, तैसा ब्रह्मसे जगत्। इसप्रकारसे जीव गुरुवा लोगोंकी साँड़ सँवारी हुआ, आवागमनमें पड़ा। ये अर्थ। औ जब स्त्रीके भगसे निकरा, फिर जब स्त्रीको देखा, तब नाना प्रकारके व्यवहार करके फिर स्त्रीके गर्भमें गया ॥५॥ जैसे बन्दरके गलेमें रस्सी बाँधके बाजीगर नचावे, तैसा ये जीव गुरुवनके फन्दमें फँसके अपनी खुशी नाचता है, औ स्त्रीके फन्देमें बिषयनमें फँसके नाना योनिमें नाचता है। ये अर्थ ॥ ६ ॥

इहै पेड़ उत्पति परलयका। विषया सबै बिकारी ॥७॥

जैसे श्वान अपावन राजी । त्यों लागी संसारी ॥८॥

इहै बानीसे जो गुरुवा लोगोंने झाँईं बताई, सो धोखा उत्पत्ति-प्रलयका पेड़ है । प्रथमारम्भमें झाँईंमें भूला, सो ये हाल हुये । औ अब फिर झाँईंमें ही माना, तब ये जीवपद भ्रष्ट हुआ । ये अर्थ । उत्पत्ति-प्रलयका पेड़ स्त्री, जो पैदा करती है औ फिर अपने गर्भमें छिपाय लेती है, समाय लेती है । ये अर्थ । इस-वास्ते विषय ज्ञान, विषय योग, विषय विज्ञान और विषय स्त्री आदि जेतिक विषय हैं, सो सबहीं विकार हैं—विषय आनन्द । ये अर्थ ॥७॥ अरे ! जैसे श्वान हाड़ चोखता, चूसता है, सो उसीके दाँतसे लोहू निकरता है औ उसीके जीभको लोहू लगता है । सो वो जानता है कि हाड़मेंसे लोहू निकरता है । परन्तु लोहू तो उसके दाँतका है । इस प्रकार जीवमेंसे आनन्द पैदा होता है औ जीवसे ही कल्पना पैदा होती है । जीव बिना कल्पना कुछ पैदा होती नहीं । तो जीवसे ही कल्पना पैदा होती है, औ नाना विषय पैदा होते हैं । सो जीव मान लेता है कि आनन्द कहीं बाहरसे आता है । परन्तु आनन्द जीवसे ही होता है औ काम अपना ही झड़ता है औ मूर्च्छा अपनेहीको आती है । नाहक स्त्रीको पकड़ता है—'श्वान-हाड़ न्याय' । ये अर्थ । औ ध्यान अपने ही अनुमानसे होता है और फिर उसमें आप ही आनन्द पाता है । औ उपासना आपहीसे होती है—येही जीवके निश्चयसे । जैसी भावना करता है, तैसा रूप खड़ा होता है—इसकी दृढ़ताईसे । सो ये जानता है कि अपना खाविन्द कोई और जगहसे आता है । 'श्वान-हाड़ न्याय' अपनी कल्पनामें आप ही भूला । ये अर्थ ॥ ८ ॥

कहहिं कबीर यह अद्‌बुद ज्ञाना । को मानै बात हमारी ? ॥९॥
अजहूँ लेहुँ छुड़ाय काल सों । जो करै सुरति सँभारी ॥१०॥५६॥

गुरु कहते हैं कि यावत् कल्पना औ अनुमान औ कर्त्तव्य, सो सब नाश-वन्त मिथ्या है । जेता ये ब्रह्मादि गुरुवा लोगोंने अद्‌बुद ज्ञान कथा, सो कहाँ है ? गुरु कहते हैं कि सब संसार कल्पनामें बौराया । अब कौन हमारी बात मानता है ? ॥९॥ परन्तु अब भी कालचक्र ब्रह्मज्ञानादि धोखेसे छुड़ाय लेऊँ, परखायके पारखपर स्थिर करूँ—यदि ये जीव अपनेको सम्भारिके सुरति करे औ प्रीतिसे मेरे तरफ देखे तो । ये अर्थ ॥ १० ॥ ५६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५७ ॥ ❀ ॥

ना हरि भजसि न आदत छूटी ॥१॥
शब्दहि समुझि सुधारत नाहीं । आँधर भये हियेहुकी फूटी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि नाहरि कहिये बाघिन, नाहरि कहिये माया, माया कहिये काया, काया कहिये स्त्री । सो ना तो स्त्रीसे तू कदही भागा, ना तेरे आने-जानेकी आदत छूटी । ये अर्थ । कि नाहरि कहिये बानी; सो बानी तेरे परखनेमें कदहीं आई नहीं औ तेरी आदत जो कल्पना—सो कदहीं भी छूटती नहीं, ताते आवागमनमें परा है । ये अर्थ ॥१॥ औ शब्द = ॐकार, सोई समुझके धोखेमें परा । ये नहीं जानता है दिवाना कि ॐकारकी आदि कौन है ? जो सबका खसम बना है, सो सब जीवकी कल्पना है । बिना जीव शब्द कौन अनुमान करेगा ? ॐकारकी आदि जो ॐकारको लिखै औ मेटि डारे—सोई है, ऐसा समुझिके सुधारता नहीं । नाहक धोखा खाता है । ये अर्थ । प्रत्यक्ष देखता है कि नाना कल्पना जीव ही करता है औ नाना बानी मानुष ही बोलता है । फिर सब वेदका प्रमाण करता है औ कर्त्ता कोई दूसरा मानता है । ऐसा अन्धा हुआ, औ हियेहुकी फूटी = बुद्धि नाश हुई । ये अर्थ ॥ २ ॥

पानी माहिं पषाणकी रेखा । ठोंकत उठे भभूका ॥३॥
सहस्र घड़ा नित उठि जल ढारै । फिर सूखेका सूखा ॥४॥

पानी कहिये बानी, पषाण कहिये मन, रेखा कहिये बुद्धि; सो नाना प्रकारकी बानीमें मानुषने अपनी बुद्धिसे निश्चय किया । अब जरा ही जीवको ठोंको = कहौं तो आगका भभूका होता है, क्रोधित होता है । ये अर्थ ॥३॥ सहस्र घड़ा कहिये जो हजारों चोले धरि-धरिके जीवने छोड़े--जैसे रात-दिन, दिन-रात । फिर सूखेका सूखा हुआ कहिये फिर आत्माका आत्मा बना । ये अर्थ ॥४॥

सेतहिं सेत सितङ्ग भौ । सैन बाढु अधिकाई ॥५॥
जो सन्निपात रोगियन मारै । सो साधुन सिद्धि पाई ॥६॥

सेत कहिये शून्य, सेत कहिये मिथ्या; सो झूठे-धोखेको अनुमान करके आप भी विचारशून्य झूठा हुआ, ब्रह्म अनुमान करके ब्रह्म हुआ । ये अर्थ । सैन कहिये अनुभवका इशारा—सो बहुत बढ़ा, अनुमान बहुत बढ़ा । ये अर्थ ॥५॥

सन्निपात कहिये रोग, सिद्धि कहिये विज्ञानदशा—मूक, बाल, पिशाच, उन्मत्त, जड़वत् । इस प्रकारसे जिस जीवको हुआ, सो जीवको पारख कैसे मिलेगी ? क्योंकि उन्मत्त भया । ये अर्थ ॥ ६ ॥

अनहद कहत–कहत जग बिनसै। अनहद सृष्टि समानी ॥७॥
निकट पयाना यमपुर धावै। बोलै एकै बानी ॥८॥

अनहद कहिये जाकी हद नहीं । जाकी हद नहीं सो अनुमान । सो अनुमानकी कुछ हद तो है नहीं, जहाँलों बढ़ा तहाँलों आगे ही बढ़ता है । इसवास्ते सब जग 'अनहद ब्रह्म–अनहद ब्रह्म' कहिके नाश हुआ । फिर सृष्टिमें समाया ब्रह्म बनके । ये अर्थ ॥७॥ अरे ! मौत तो नजदीक आई औ गर्भमें जाता है बिना स्थिति, औ नाहक अनुमान करता है । बोलै एकै बानी = एक आत्मा बोलता है । ये अर्थ ॥ ८ ॥

सतगुरु मिलै बहुत सुख लहिये ! सतगुरु शब्द सुधारैं ॥९॥
कहहिं कबीर ते सदा सुखी हैं। जो यह पदहि बिचारैं! ॥१०॥५७॥

जीवमुखः—"सतगुरु मिले बहुत सुख लहिये ।" सत कहिये ॐकार, गुरु कहिये सोहं । सो चित्त सोहं-सोहंमें मिलै तो बहुत सुख लहिये, आनन्द लहिये—'सच्चिदानन्द' । इस प्रकारसे 'सतगुरु'में ऐसा जो शब्द, सो ताका निरुवार किया । सतगुरु शब्दको सुधारे, विचारे । ये अर्थ ॥९॥ गुरुमुखः—हे जीव ! जो ये सच्चिदानन्द भये, सुखी भये, सो कहाँ हैं ? औ कहाँ रहे ? जिन्ह यह पदका विचार किया, सो कहाँ है ? अनुमानमें मग्न होयके गर्भवासको गये; बिना पारख । ये अर्थ ॥ १० ॥ ५७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५८ ॥ ❀ ॥

नरहरि लागि दौं विकार विनु इन्धन। मिले न बुझावन हारा ॥१॥
मैं जानों तोही से ब्यापै। जरत सकल संसारा ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि नरहरि कहिये बानी, नरहरि कहिये स्त्री, नरहरि कहिये कल्पना । जो नरको हर लेय, सो नरहरि । सो बानीकी आग विकार कल्पना लगी । सो कहीं इन्धन = लकड़ी भी नहीं । इन्धन कहिये ब्रह्म; सो ब्रह्म तो कहीं है नहीं, औ उसके विरहमें ये संसार सब जरता है । ये अर्थ ।

अरे ! ये आगको बुझानेवाला = परखावनेवाला न मिला ॥१॥ अब पारख मैं जानता हौं कि यह आगी तेरेहीसे लगी । अरे ! बिना जीव कल्पना कहाँसे उठेगी ? तो कल्पना निर्जीव । इसवास्ते सब कल्पना तेरेहीसे उठी । अब सब संसार जल रहा है । ये अर्थ ॥ २ ॥

पानी माहिं अग्निको अङ्कुर । जरत बुझावै पानी ॥३॥
एक न जरे जरें नौ नारी । युक्ति न काहू जानी ॥४॥

पानी कहिये बानी, अग्निको अङ्कुर = ब्रह्म; सो बानी सुनिके जीवको अनुमान हुआ औ जीव सब जरने लगे । जब बानी सुनी, तब कहा कि कोई कर्त्ता है । तब कर्त्ताकी प्राप्तिके वास्ते नाना कर्म करने लगे । घर-घर दुनियाँमें वैराग्य उठा । ये अर्थ ।

कवित्तः—अब कोई त्यागी औ कोई बैरागी, कोई अभागी पञ्च अगिनिमें जरि रहे ॥ कोई संन्यासी औ कोई जटाधारी, कोई कर–कर तपस्या कोई बन ही में मरि रहे ॥ खैंचि कोई पौन श्वासा, अर्धकी ऊर्ध चलाय, करिके बहु योग कोई गुहनमें परि रहे ॥ कोई सखीभाव धार नीर झरन लागे नैननसे, कोई अन्न वस्त्र छाँड़ि दूब जङ्गलकी चरि रहे ॥ कोई ठाढ़ेश्वरि कोई ऊर्धबाहु; कोइ मौनि बने, कोई नेत्र उलटे तने खेचरी सी धरि रहे ॥ कोई बाल कोई पिशाच मूक जड़ उन्मत्त भये, सबै बातें छाँड़ि पूरण आत्मासे बनि रहे ॥ १ ॥

इस प्रकार बानीमें अग्निका अंकुर निकरा औ सब जरने लगे, तो बानी-से ही बुझावने लगे, समुझावने लगे ॥३॥ कौन प्रकारसे ? सो सुनो—"एक न जरे, जरें नौ नारी ॥" मायामुखः—एक आत्मा नहीं जरता, अजर । ये अर्थ । जरें नौ नारी = जगत् नास्ति, नौ व्याकरण नास्ति, शब्द नास्ति । आत्मा निःशब्द । ये युक्ति काहू नहीं जानी । युक्ति कहिये विचार। सो विचार आत्मा-को काहूने नहीं जाना । ये अर्थ ॥ ४ ॥

शहर जरे पहरू सुख सोवै । कहै कुशल घर मेरा ॥५॥
पुरिया जरै वस्तु निज उबरै । बिकल राम रङ्ग तेरा ॥६॥

गुरुमुखः—शहर = संसार, शहर = शरीर, सो नाना प्रकारके विरहमें औ नाना प्रकारके दुःखमें जरता है । औ पहरू कहिये जीव, सो धोखामें मग्न हो रहा है, गाफिल हो रहा है । सुख = सोहं, तामें समाधि भई—सोई सोया । ये अर्थ ।

जीवमुखः—तब जीव क्या कहता है ? "कहै कुशल घर मेरा ।" कहै मेरा आनन्द घर । ये अर्थ ॥५॥ मायामुखः:—पुरिया = बानी, पुरिया = देह; सो नाम--रूप नास्ति औ आत्मा सत्य अस्ति । ये अर्थ । गुरुमुखः —गुरु कहते हैं कि "बिकल राम रङ्ग तेरा ।" राम रङ्ग कहिये ज्ञानरङ्ग, ज्ञानसमाधि—सो सब देह रहेगी तबलग हैं । औ जो कहता है कि मैं आत्मा; सो भी जब देह छूटेगी, तब सब बिकल हो जायगा । बिना पारख सब नाश हो जायगा । ये अर्थ ॥६॥

कुबजा पुरुष गले एक लागा । पूजि न मनके सरधा ॥७॥
करत विचार जन्म गौ खीसे । ई तन रहत असाधा ॥८॥

जैसे कोई तरुण स्त्रीके गले नपुंसक पुरुष लगा, तो उससे कछु स्त्रीके मनकी श्रद्धा, इच्छा पूरी नहीं भई । स्त्री तरुण औ पुरुष नपुंसक, तो श्रद्धा पूर्ण कैसे होयगी ? इस प्रकारसे एक ब्रह्म इस जीवके गले लगा, गुरुवा लोगोंके उपदेशके प्रमाणसे । सो अनुमान मिथ्या औ जीव तो तरुण = चैतन्य । अब अनुमानका प्रमाण करके आपने नारी भाव लिया औ उसको पुरुष बनाया औ कल्पना बढ़ी, तरुण हुई । सो इसकी कल्पना कुछ अनुमानसे बूझी नहीं । क्योंकि जीवकी कल्पना निर्जीवसे कैसे बूझेगी ? ॥७॥ तब नाना विचार किया, विचार करते-करते जन्म खीस गया, आयुर्बल सम्पूर्ण भया, तब ये तन रह गया असाध्य । अब कहा कि कछु नहीं, सर्व मिथ्या । यह जैसा-का-तैसा है । ये अर्थ ॥ ८ ॥

जानि–बूझि जो कपट करतु है । तेहि अस मन्द न कोई ॥९॥
कहहिं कबीर तेहि मूढ़को ! भला कौन विधि होई ? ॥१०॥५८॥

अपार, आनन्दरूप, अथाह, अभेद । जब पार नहीं पाया, तब कहा अपार । जब थाह नहीं पाया, तब कहा अथाह । जब भेद नहीं पाया, तब कहा अभेद । जब चित्त, मन, बुद्धि सब थकी, तब कहा आनन्द । इस प्रकारसे "जानि-बूझि जो कपट करतु है", समुझ-बूझिके जो धोखेमें परते हैं, तेही सम मन्द न कोई । अरे ! जो जानता है औ देखता है कि बिना जीव कछु नहीं होता । और फिर कल्पना करता है, तेहि अस मूर्ख और कोई नहीं ॥९॥ गुरु कहते हैं कि तेहि मूढ़को भला कौन विधि होय ? आवागमनसे कैसे रहित होय ? बिना पारख । ये अर्थ ॥ १० ॥ ५८ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ५९ ॥ ❀ ॥

माया महा ठगिनी हम जानी ॥१॥

त्रिगुणी फाँस लिये कर डोले। बोले मधुरी बानी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि माया कहिये गुरुवा, माया कहिये स्त्री, सो दोनों महा ठगिनी। जो सबको ठगे सो ठगिनी। सो देखो ! ये जीवको कैसे ठगा ? कहीं ब्रह्म बनाया, कहीं आत्मा बनाया, कहीं ईश्वर बनाया और कहीं न कछु ठहराया—ये गुरुवा लोगोंने। जैसे कोई सपना देखे अरु तैसा ही बोले। इस प्रकारसे एक ही जीव जैसी कल्पना देखने लगा, तैसा ही बोलने लगा। ये अर्थ। कि जैसे माया कहिये स्त्री—सो देखो ! ये जोवको कैसे ठगी ? कहीं ब्राह्मण बनाया, कहीं क्षत्रिय बनाया, कहीं वैश्य, कहीं शूद्र, कहीं यवन, कहीं अति शूद्र बनाया। औ गुरुवा लोगोंने कहीं योगी, कहीं जङ्गम, कहीं सेवड़ा, कहीं संन्यासी, कहीं दरवेश, कहीं ब्रह्मचारी औ कहीं वैरागी बनाया। इस तरहसे मानुषको ठगा, ताते महाठगिनी हम जानी। ये अर्थ ॥१॥ त्रिगुणी फाँस कहिये बानी वेद; त्रिगुण कहिये भक्ति, ज्ञान, योग। सो तीन प्रकारकी बानी लेके गुरुवा लोग फिरने लगे, मीठी--मीठी बातनसे जीवनको दृढ़ाने लगे। ये अर्थ। औ त्रिगुण कहिये काम, क्रोध, मोह; सो त्रिगुण फाँस लेके स्त्री सब जीवनको फँसाती है॥

छप्पयः—प्रथम देखते देय, उठाय के काम को। जब जीव कामी भयो, तज्यो धन धाम को॥ अब निशदिन देखत फिरै, नारिन के चाम को। तब ज्ञान बुद्धि सब गई, भयो बेकाम को॥ ये प्रकार की फाँस त्रिया, अपने कर लीन्हिसु आज। कहहिं पूरण फन्द जाहुगे, नाहिं तो नर ! ताहि तज ॥१॥ जा त्रियासे यही रत्यो, ताही से और जो राते। तब ऊठै क्रोध मन माहिं, करन चाहे जिव घाते॥ कोई कहै लाख समुझाय, मानै नहिं एकौ बाते। कहै मरों मारों मैं ताहि, याहि नारी के साथे॥ तैं देखु फाँस यह नारिकी, नाहक में नर मरि रह्यो। कहहिं पूरण यह अधम नर, गुरु पारख नाहीं लह्यो ॥२॥ जब लग्यो नारिको मोह, तब ये हिये बहुत फन्दानो। धन सुत गृहके काज, आपनो हित नहिं जानो॥ भय--भय धावत फिरे, चाहि खर्चनको नानो। त्रियाको तो वस्त्र चाही, और कछु चाहै सोनो॥ ऐसेहि करत--करत, एकदिन मरिगो निर्लज। त्रिगुणी फाँस यह नारिकी, ताते पूरण कहत तज ॥३॥

माया दो प्रकारकी—मोटी औ झीनी। सो झीनी कहिये गुरुवा लोगोंका उपदेश; उपदेश कहिये ज्ञान, भक्ति औ योग। मोटी माया कहिये स्त्री, घर, धन आदि। ये अर्थ ॥ २ ॥

केशवके कमला ह्वै बैठी। शिवके भवन भवानी ॥३॥
पण्डाके मूरति ह्वै बैठी। तीरथहूमें पानी ॥४॥

अब माया केशवके घर कमला होय बैठी। केशव कहिये जो जलके ऊपर शयन करे, सो केशव। के कहिये जल, शव कहिये सोना। जल कहिये क्षीर-सागर; तापर शयन करनेवाले जो नारायण, तिनके सङ्ग कमला होय बैठी। कमला कहिये जो कमलसे पैदा होय। जो कमलसे पैदा भई सो लक्ष्मी; तो लक्ष्मी होय बैठी। ये अर्थ। केशव कहिये ज्ञानी, केवल कहिये झाँई। के कहिये पानी, पानी कहिये बानी, शव कहिये सोना। सो जो बानीमें सोया, सुनिके, विचारके, निश्चय ठहरायके जाना कि आत्मा, तहाँ केवल होय बैठी। ये अर्थ। 'शिवके भवन भवानी।' शिव कहिये जो सदा समाधिमें मग्न रहै सो शिव। शिवका भवन = कैलाश, तामें भवानी = पार्वती होय बैठी। औ शिव कहिये आनन्द; सो आनन्दमें अहंशक्ति भई। ये अर्थ ॥३॥ 'पण्डाके मूरति होय बैठी।' पण्डा कहिये पुजारी, तिनके यहाँ मूर्ति = जड़ प्रतिमा भई। तीर्थ = गङ्गादि, पुष्करादिकनमें पानी होय रही और सबनको अरुझाया। ये अर्थ ॥ ४ ॥

योगीके योगिनि ह्वै बैठी। राजाके घर रानी ॥५॥
काहूके हीरा ह्वै बैठी। काहूके कौड़ी कानी ॥६॥

योगी कहिये जो योग करे। योग कहिये जो पाँच कर्मइन्द्रियाँ औ पाँच ज्ञानइन्द्रियाँ, पच्चीस प्रकृति सहित मन लय करे, सो योगी। तिनके यहाँ अणिमा, लघिमा, गिरिमा, महिमा आदि सिद्धि होय बैठी। ये अर्थ। 'राजाके घर रानी' बनी। राजा कहिये मानुष; सो मानुषके यहाँ स्त्री बनी। ये अर्थ ॥५॥ 'काहूके हीरा होय बैठी।' काहूको हीराकी प्रीति औ काहूको कौड़ी प्यारी भई ॥ ६ ॥

भक्ताके भक्तिन ह्वै बैठी। ब्रह्माके ब्रह्मानी ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! ई सब अकथ कहानी ॥८॥५९॥

भक्त लोगोंके यहाँ नवधाभक्ति और भक्तिन बनी। ब्रह्माके यहाँ ब्रह्माणी

बनी, सावित्री बनी । ये अर्थ ॥७॥ गुरु कहते हैं कि कहाँ है ? ई सब अकथ कहानी । जो ये मायाकी बात अकथ है, कथनेमें नहीं आवती, मिथ्या अनुमान । ये अर्थ । नाना प्रकारकी माया पैदा भई औ नाश हुई । जो जीव मान लेय सो माया, औ न माने तो ब्रह्म । ये दोनों मिथ्या । पारख सत्य । ये अर्थ ॥

कवित्तः—माया बड़ी बलबण्ड, कियो सबहिनको खण्ड । व्यापि रही ब्रह्मण्ड, तीनों देव जेर किये ॥ त्रिगुणी फाँस लीन्हीं हाथ, किये बहुते अनाथ । काटे बहुतनके माथ, भई न सङ्ग काहुके ॥ तब तो मिथ्या यह बात, जीव माने चली जात । उलट जीव ही को खात, घात देखो जीव की ॥ पूरन परख दियो छाँड़, गह्यो तत्त्वनकी माँड़ । ताते फाटत है गाँड़, त्राहि त्राहि करतु है ॥१॥८॥५९॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६० ॥ ❀ ॥

माया मोह मोहित कीन्हा । ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि "माया मोह मोहित कीन्हा ।" माया कहिये गुरुवा, माया कहिये स्त्री; सो नाना प्रकारकी बानी सुना-सुनाके जीवको सब मोहित किये । "ताते ज्ञान रतन हरि लीन्हा ।" जीव सब अज्ञानदशाको प्राप्त भये, अचेत भये । ये अर्थ ॥ १ ॥

जीवन ऐसो सपना जैसो । जीवन सपन समाना ॥२॥
शब्द गुरू ! उपदेश दीन्हों । तं छाड़ू परम निधाना ॥३॥

अब जीवको जीना-मरना कैसा भया ? जैसे स्वप्न । जैसे जागृतिसे स्वप्न औ स्वप्नसे जागृति । इस प्रकार अब जीव स्वप्नमें समाया, अनुमानमें समाया । ये अर्थ ॥२॥ जो शब्द ब्रह्माने उपदेश किया ॐ, सो तू छोड़ ! हे परमनिधान ! हे जीव ! । ये अर्थ ॥ ३ ॥

ज्योति देखि पतङ्ग हुलसै । पशू न पेखै आगि ॥४॥
काल फाँस नर मुग्ध ! न चेतहु ? कनक-कामिनी लागि ॥५॥

ज्योति देखिके जैसे पतङ्गका मन हुलास होता है औ फिर उस ज्योतिमें गिरता है; इस प्रकारसे संसार-पशु नहीं देखता कि ये बानी औ स्त्री आग हैं, जामें सब जर जाते हैं । जैसा पतङ्गने ज्योति देखी औ हुलास हुआ । इस प्रकारसे इस पशुने जब स्त्री देखी, तब इसका मन हुलास हुआ । जब मन हुलास हुआ,

तब यह स्त्रीसे रता, गर्भाग्निमें जरा । ये अर्थ ॥४॥ परन्तु ये नहीं देखा कि मैं आजतक ब्रह्माग्निमें औ गर्भाग्निमें जरता हौं । अरे ! ऐसा यह नर मूर्ख भया, जो इसको कालकी फाँसी नहीं मालूम भई । काल कहिये कल्पना; सो कल्पनाकी फाँसी परी जीवके ऊपर । जीवने प्रेम लगाया कनक-कामिनीमें ॥

चौपदीः—कनक औ कामिनी दोऊ, आपुहि कल्पि ठाढ़ि कियो । ताहीके बस भयो, ताते बहु दीन है ॥ कोई करि रहै ज्ञान, कोई बैठि धरे ध्यान । कोई नाटक चाटक पुराण, कथि ताहीमें लीन है ॥ कोई करत बहु उदीम, कोई धौकत पाषान । कोई करत प्रयोग धनके, नर याहीमें छीन है ॥ पूरन कहते अनाथ, कनक औ कामिनीकी बात । मोपै कही नहीं जात, जैसी इन्ह कीन्ह है ॥१॥५॥

शेख सैय्यद कितेब निरखें । सुमृति शास्त्र विचार ॥६॥
सतगुरुके उपदेश बिनु तैं । जानिके जिव मार ॥७॥

'शेख-सैय्यद कितेब निरखें ।' कोई हिन्दू स्मृति-शास्त्रका विचार करते हैं ॥६॥ परन्तु मुसलमानके सतगुरु जो मुहम्मद भये, उसने भी नहीं उपदेश दिया कि जीवहिंसा करना । औ हिन्दूका सतगुरु ब्रह्मा, इन्ह भी जीवहिंसा करनेका हुकुम, उपदेश नहीं दिया । देखो ! ये जानते हैं कि जीव है, औ फिर मारते हैं । ये अर्थ ॥ ७ ॥

कर विचार विकार परिहर । तरण-तारण सोय ॥८॥
कहहिं कबीर भगवन्त भजू नर ! दुतिया और न कोय ॥९॥६०॥

इसवास्ते गुरु कहते हैं कि विचार करके जेता मन, वच, कर्मसे विकार पैदा हुआ है, सो सब छोड़ देओ । अरे ! जिन्ह विचार करके सब परखके विकार त्याग दिया, सोई पारखी । पारखी कहिये जो पारखभूमिपर रहे, तद्वत् होय सोई गुरु ! सोई तरण-तारण ! ये अर्थ ॥८॥ हे जीव ! जिसे तुम भगवान् कहते हो, सो कहाँ है ? मिथ्या धोखा, तेरी कल्पना । सो तुम तज देओ, परखके पारखपर स्थिर रहो ! ये अर्थ ॥ ९ ॥ ६० ॥

॥ * ॥ शब्द ॥ ६१ ॥ * ॥

मरि हो रे ! तन का लै करि हो ? प्राण छुटे बाहर ले डरि हो ॥१॥
काया बिगुर्चन अनबनि भाँती । कोइ जारे कोइ गाड़े माँटी ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! भला ! जो तनका अभिमान करके तुम मानते हो कि मैं ब्राह्मण, मैं क्षत्रिय, मैं वैश्य, मैं शूद्र, मैं सुन्दर, मैं कुरूप, मेरी देह, मेरा घर, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र आदि । ऐसा देह 'मैं' मानके देह-सम्बन्धी सब व्यवहार मान-मान करते हो, ताके पीछे नाना प्रकारके सुख औ दुःख भोगते हो, सो जब मरोगे तब तुम्हारे सङ्ग कुछ नहीं रहेगा । अरे ! जब देह छूट जायगी, तब व्यवहार औ जाति, वर्ण, कुल सबहीं यहीं रहि जायेंगे । तेरे काम कोई आनेका नहीं । जाको तू मेरी देह कहता है, सो भी तेरे काम नहीं आनेकी । प्राण छूटे उपरान्त सब बाहर डार देवेंगे ॥१॥ औ जो कायाको लोग अनेक तरहसे मान रहे हैं, सोई सब माटीमें मिलाय देवेंगे ॥२॥

हिन्दु ले जारे तुरुक ले गाड़े। यहि विधि अन्त दुनों घर छाड़े ॥३॥
कर्म फाँस यम जाल पसारा । जस धीमर मछरी गहि मारा ॥४॥

हिन्दू जराते हैं औ तुरुक गाड़ते हैं । इस प्रकारसे अन्तमें दोनों घर छाड़ते हैं । फिर जाति, कुल, वर्ण कहाँ रहता है ? तो नाहक मिथ्या धोखेकी मानन्दीमें पचि-पचि क्यों मरते हो ! परखके छोड़ देओ । ये अर्थ ॥ जो तू नहीं छोड़ेगा, तो फिर ये सब अन्तमें आप ही छूट जायेंगे । फिर उनके अध्याससे तेरेको नाना प्रकारके दुःख औ जन्म प्राप्त होयगा । जन्मका कारण अध्यास है । सो तुम परखके छोड़ देओ । ये अर्थ ॥३॥ कर्मफाँस जो गुरुवा लोगोंने दृढ़ाई है, सो सब जाल है । तामें जीव सब फँसे हैं, तासे जन्म–मरणको प्राप्त होते हैं । जैसा धीमर मच्छ पकड़नेके हेतु जाल बनाता है, तामें माटीकी आशा लगाता है । औ जब पानीमें डारता है, तब आवाज होती है । सो सुनिके मच्छ सब मिलते हैं कि कछु चारा आया । फिर जालमें आयके फँसते हैं । तेही प्रकारसे ब्रह्मादि गुरुवालोगोंने कल्पना कर–करके कर्मफाँसका जाल पसारा है कि संध्यादि, योगादि, उपासनादि कर्म किये बिना जीवका कल्याण नहीं । इसवास्ते चारों वर्णने अपने-अपने कर्म आचरण करके देवतनकी उपासना करना । देवता प्रसन्न होयगा, तब जीवका परम कल्याण होयगा । धन-धान्य, मान-सम्मान आदि सिद्धि प्राप्त होयगी । अन्त समयमें देवलोक प्राप्त होयगा । और योगसाधना करके भगवान् ! जो सर्वव्यापी है, तिसके स्वरूपमें एक होना ! तासे जीवका कल्याण है । औ मनकी सदा एकाग्रताई होनेसे वाचासिद्धि औ मनसासिद्धि औ त्रिकाल ज्ञान

होता है, ऐसी आशा लगाई। तब जीव सब जायके कर्मजालमें फँसे औ आशामें बन्ध होयके मरे, तासे फिर जन्मको प्राप्त भये ॥४॥

राम बिना नर ! होइहैं कैसा ? बाट माँझ गोबरौरा जैसा ॥५॥
कहहिं कबीर पाछे पछतैहो ! या घरसे जब वा घर जैहो ॥६॥६१॥

इसवास्ते गुरु कहते हैं कि "राम बिना नर होइ हैं कैसा ?" कि जैसे बाटमें गोबरौरा कीड़ा गोबरकी गोली बाँधके, फिर उसके पीछे ढनगाता फिरता है, फिर उसी छन्दमें मरता है। कीटकी स्थिति कहीं होती नहीं। इसी तरह यह जीव 'राम-राम' कहते-कहते कल्पनामें पड़के मरता है, फिर अध्यासवश नाना जन्मको प्राप्त होता है; बिना पारख ॥५॥ अरे ! जिसका नाम-स्मरण करते हो, सो वस्तु क्या है ? औ कहाँ है ? जब तुम्हारा देह नाश होयगा, तब तुम्हारा अनुमान कहाँ रहेगा ? ये देह छोड़के फिर गर्भवासमें जाओगे, तब पीछे पछताओगे। ये अर्थ ॥६॥६१॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६२ ॥ ❀ ॥

माई ! मैं दूनों कुल उजियारी ! ॥१॥
सासु-ननद पटिया मिलि बँधलों। भसुरहिं परलों गारी ॥२॥

टीका जीवमुखः—माई कहिये माया, माया कहिये काया, काया कहिये जगत्; सो जगत्में जीव बोलता है कि मैं दोनों कुलमें प्रकाश हौं। दोनों कुल कहिये ब्रह्म औ जगत्। सो मैं ब्रह्मका प्रकाशी औ जगत्का प्रकाशी; क्षरका प्रकाशी औ अक्षरका प्रकाशी; जीवका प्रकाशी औ ब्रह्मका प्रकाशी; निवृत्तिका प्रकाशी औ प्रवृत्तिका प्रकाशी; चर-अचरका प्रकाशी; स्त्री-पुरुषका प्रकाशी; सो सर्व आत्मा। ये अर्थ ॥१॥ सासु = गुरु, औ ननद = चेला—दोनों बानीमें बन्धे हैं, इसवास्ते पारब्रह्ममें लौ लगाये हैं। सो ब्रह्म औ जगत् दोनों उपाधि। मैं दोनोंका प्रकाशी अनिर्वाच्य। ये अर्थ ॥ २ ॥

जारों माँग मैं तासु नारिका। जिन सरवर रचल धमारी ॥३॥
जना पाँच कोखिया मिलि रखलों। और दुई औ चारी ॥४॥

उस बानीका रास्ता है, सो सब जाला है। जिस बानीसे संसारमें धूम मची है, सो बानी-बोधमें सब बन्धे हैं। मैं निःअक्षर। ये अर्थ ॥३॥ पाँच तत्त्व भी

मेरे पेटमें हैं औ पाँच देह भी मेरे पेटमें हैं । जगत् औ ब्रह्म, ये दोनों मेरे पेटमें हैं औ चारिउ अन्तःकरण भी मेरे गर्भमें हैं । मैं सर्वका अधिष्ठान । ये अर्थ ॥४॥

पार परोसिनि करों कलेवा । सङ्गहि बुद्धि महतारी ॥५॥
सहजे बपुरे सेज बिछावल । सुतलिउँ मैं पाँव पसारी ॥६॥

पराकी बानी मैं भक्षण करता हौं । मेरी बुद्धिमाया सदा मेरे सङ्ग है, जासे ये जगत्‌चेष्टा देखती है । मैं सदा आनन्द । ये अर्थ ॥५॥ सहज ही अनुभवरूपी सेज बिछी है, जापर मैं मग्न हो शयन करता हौं । जैसा घट–मठमें बाहर–भीतर एक आकाश भरा है । ये अर्थ ॥६॥

आवों न जावों मरों नहिं जीवों । साहेब ! मेंट लगारी ॥७॥
एक नाम मैं निजुकै गहलों । ते छूटल संसारी ॥८॥

ना मैं आवों, ना मैं जावों, ना मैं मरों, ना मैं जीवों । जैसे घट–मठका नाश, कछु आकाशका नाश नहीं । ये अर्थ । जो पारब्रह्मकी लगार थी, सो भी मेरेमें नहीं ॥७॥ एक आत्मा ये निश्चय, और सब मिथ्या । इस प्रकारसे जो मेरेको जानता है, सो संसारसे छूटै । जो एक आत्मा नहीं जानता, सो सर्व बन्ध । जानै सो मुक्त । ये अर्थ ॥८॥

एक नाम मैं बदिकै लेखों । कहहिं कबीर पुकारी ! ॥९॥६२॥

गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि एक आत्मा जो कहते हो, सो तो सदा बन्ध है, कबहीं मुक्त नहीं । भला ! जो आत्माको मुक्त मानिये, तो बन्ध किसको मानिये ? एक आत्मा तो कुछ एकदेशी नहीं, औ मुक्त तो एकदेशी होता है । सर्वदेशमें तो नाना प्रकारके कष्ट भोगता है औ अनेक बन्धनमें है । जो बन्धनमें नहीं होता, तो नाना प्रकारके दुःख–सुखका पुकारा क्यों होता है ? औ नाना प्रकारका उपदेश किसको होता है ? इसवास्ते जिस बातका अनुमान तुमने कर रक्खा है, सो कहाँ है ? जिससे सब अनुमान छुटै, सो गुरुपद । जाको पारख कहते हैं । ये अर्थ ॥ ९ ॥ ७२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६३ ॥ ❀ ॥

मैंकासोंकहौं?कोसुने?को पतियाया? फुलवाकेछुवतभँवर मरिजाय॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! मैं कासों कहौं ? इस संसार-

में नाना प्रकारकी बानी दृढ़ होय रही है, जाकी आशामें जीव सब बन्ध होय रहे हैं। अब निर्णय कौन सुनता है ? औ जबलग प्रीतिपूर्वक श्रवण करके विचार नहीं करनेका, तबलग प्रतीति कैसे होयगी ? इसवास्ते सम्पूर्ण बानीका पक्ष छोड़के विचार करे, तो उसे कहना। ये अर्थ। 'फुलवाके छुवत भँवर मरि जाय।' फुलवा कहिये काया औ फुलवा कहिये अनुमान, भँवर कहिये मन औ भँवर कहिये सनकादि भेष, जो अनुमानमें मग्न हुए औ जीयत ही मरे। ये अर्थ ॥१॥

जोतियेन बोइये सींचियेन सोय। बिनुडार बिनुपात फूल एकहोय॥२॥
गगन मण्डल बिच फुल एक फूला। तर भौ डार ऊपर भौ मूला ॥३॥

'जोतिये न बोइये सींचिये न सोय।' न जोता, न बोया, न सींचा; औ अपने अनुमानसे एक सहस्र दलका कमल बनाया, गगन-मण्डल = ब्रह्माण्ड बीच। न तो उसकी डार है, न उसका पात है। एक अनुमानका गलबा खड़ा हुआ ॥२॥ सो अनुमानके गलबेको खोज करने लगा, श्वासमें सुरति लगाया। तब जैसे-जैसे श्वासमें सुरति लय होने लगी, तैसा-तैसा देहका अभाव होने लगा। जैसे-जैसे श्वास बैठने लगा, तैसा-तैसा इन्द्रियनका अभाव होने लगा। औ जब नाभिमें जायके श्वास-सुरति एक भई, तब एक स्फुरण हुआ। ताका मूल ऊपर ब्रह्माण्डमें औ डार तले पिण्डाण्डमें। ये अर्थ ॥ ३ ॥

फुलभलफुललमलिनिभलगाँथल। फुलवाबिनशिगौभँवरनिरासल॥४॥
कहहिंकबीर सुनो सन्तोभाई! पण्डितजन फुल रहल लुभाई॥५॥६३॥

'फूल भल फुलल मलिनि भल गाँथल।' जब खूब सुरति लगी, तब देह जागी औ कमल सहस्रदल खुला। तब अन्तःकरण विषय परम आनन्दकी घटा उठी औ महाद्वारका परदा फूटा। तब मक्र-तारकी डोरी लगी मेरुदण्डपरसे। हंस-सोहं एक हुआ, ब्रह्माण्डमें जायके समाधिस्थ हुआ। ये अर्थ। भला जबलग देह रही, तबलग समाधिका आश्रित भया औ सहस्रदलका आश्रित भया। जब देह छूटी औ कमल विनशि गया, तब ये जीव निराश भया, पूर्व अध्यासवश फिर गर्भवासमें देह पाया। ये अर्थ ॥४॥ देह छूटे उपरान्त समाधि कहाँ रहेगी ? हे सन्तो ! तुम सुनो औ परखो ! जो सब पण्डित लोग फूलमें लोभाय रहे हैं, अहं अनुमानमें भुलाय रहे हैं। ये अर्थ। फुलवा = ब्रह्म, भँवर = मन, डार = श्वास, मूल = सोहं शब्द, पण्डितजन = सनकादि, ब्रह्मादि। ये अर्थ ॥ ५ ॥

विरह अर्थः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! 'मैं देह' ऐसा मानके नाना प्रकारके विषयरसमें खराब होता है । अरे ! जहाँसे पैदा हुआ, फिर तहाँ जायके शिर, नवावता है। 'मैं कासों कहौं ? को सुने ? को पतियाय ?' ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश सबहीं भूले । ये अर्थ । फुलवा कहिये भग, भँवर कहिये मन; सो मनसे काम सङ्कल्प हुआ, तब ब्रह्माण्डमें काम-कमल खुला । तब चित्तने अनुसन्धान किया । तब इच्छारूपी नारी अवतरी । बुद्धिसे दूसरा भाव निश्चय हुआ औ अहङ्कारने चलाया, तब स्त्रीके पास गया । स्त्रीके मनने भी प्रेरणा किया औ काम जागा, तब स्त्रीके काम-कमलका मुख अर्ध—सो खुला । तब उस कमलमें लिङ्ग प्रवेश हुआ औ छूते ही एकाग्रता होयके बिन्दु पतन हुआ औ मन मरा । बिन्दु पतन हुआ, तब कमल मूँद गया । तब उस कमलके भीतर माताका रुधिर औ पिताका बिन्दु एक भया । सो नरका बिन्द भारी औ नारीका रज हलका । सो नारीबिन्द रजमें नरबिन्द बन्धि गया, ताते हाड़, नाड़ी, मेंदा पैदा भये । माताके रुधिरसे मांस, रक्त, त्वचा पैदा हुये । रोम दोनोंकी सन्धिसे हुआ । इस प्रकारसे सप्तधातुकी देह जीवके संयोगसे पैदा भई । जब पहिले नारीका काम उतरा तो नारी रूप भया, औ पुरुषका काम प्रथम उतरा तो पुरुष रूप ॥१॥ फिर वह रूपमें बिना जोते, बिना बोये एक कमल पैदा हुआ—बिना डार, बिना पातका । स्त्रीरूपको भगकमल प्राप्त भया औ पुरुषरूपको लिङ्गकमल प्राप्त भया ॥२॥ फिर गगनमें कामका कमल फूला औ तरेसे झरने लगा । परन्तु कामका मूल ऊपर है । ये अर्थ ॥३॥ 'फूल भल फुलल मलिनि भल गाँथल ।' फूल = काम, मलिनि = मनसा, जो रातदिन कामवश होयके मलिन होय रही है। ये अर्थ । जब-जब काम फूला, तब-तब मनसा प्रबल भई औ जब काम नाश हुआ, तब मन निराश भया । ये अर्थ ॥४॥ ताते गुरु कहते हैं कि सम्पूर्ण विषय नाशवन्त, ऐसा न जानिके ब्रह्मादि पण्डितजन सब उसमें लोभाय रहे हैं । ताते जब यह चोला छूटेगा, तब विषय अध्याससे फिर गर्भवासको प्राप्त होयके नाना प्रकारके सुख-दुःख भोगेंगे । ये अर्थ ॥५॥६३॥

॥ * ॥ शब्द ॥ ६४ ॥ * ॥

जोलहा ! बीनहू हो हरि नामा । जाके सुर नर मुनि धरें ध्याना ॥१॥

टीका मायामुखः—जोलहा कहिये जीवको; सो माया कहती है कि हे जीव ! हरिनाम जो सोहं है, ताको बीनो ! जैसे जोलहा तारपर चित्त लगायके बीनता है, नरी फेंकता है। इस प्रकारसे श्वासामें चित्त लगायके, मनको एकाग्र करके सोहं शब्द नाभि, नासिकामें जपते रहना। जाका सुर, नर, मुनि ध्यान धरते हैं, सो सोहं शब्द सर्वके ऊपर। ये अर्थ ॥ १ ॥

ताना तनेको अहुठा लीन्हा। चरखी चारिउ वेदा ॥२॥
सरकुण्डी एक राम-नरायण। पूरण प्रगटे कामा ॥३॥

गुरुमुखः—'ताना तनेको अहुठा लीन्हा।' गुरु कहते हैं कि देखो—अहुठा कहिये देहको; सो गुरुवा लोगोंने देह धारण करके नाना प्रकारके ताना तना, जाके अध्याससे आवागमन जीवको लगा। ये अर्थ। चार वेद येही एक चरखा किया ॥२॥ तामें राम-नारायण, ये सरकुण्डी, लगाया। जामें जीव सूत लपटा गया। ये अर्थ ॥ ३ ॥

भवसागर एक कठवत कीन्हा। तामें माँड़ी साना ॥४॥
माँड़ीका तन माँड़ि रहा है। माँड़ी बिरले जाना ॥५॥

भवसागर कहिये संसार, सोई एक कठवत; तामें माँड़ी साना। माँड़ी कहिये बानी; सो बानी नाना प्रकारकी जगत्‌में गुरुवा लोगोंने दृढ़ा दिया। ये अर्थ ॥४॥ अब वह बानीका ताना कहिये ब्रह्म, सो सब देशमें मँड़ रहा है। परन्तु यह 'माँड़ी बिरले जाना।' यह बानी बिरलेको जान परी कि मनुष्य देहकी कल्पना है। ये अर्थ ॥ ५ ॥

चान्द-सूर्य दुइ गोड़ा कीन्हा। माँझ दीप कियो माँझा ॥६॥
त्रिभुवन नाथ जो माँजन लागे। श्याम मुररिया दीन्हा ॥७॥

'चाँद-सूर्य दुइ गोड़ा कीन्हा।' चाँद कहिये बाँया सुर, सूर्य कहिये दाहिना सुर; ये दोनों गोड़ा कीन्हा। गोड़ा कहिये जामें ताना तना रहता है। सोई इङ्गला-पिङ्गला, जामें देह तनी है। माँझ दीप कहिये ताना, सोई सुषुम्ना ॥६॥ त्रिभुवननाथ कहिये मन—सो माँजने लगे, रेचक-पूरक करने लगे। ये अर्थ। श्याम मुररिया कहिये कुम्भक; सो कुम्भक करके, श्वासा स्थम्भन करके फेरा मेरुदण्डसे। ये अर्थ ॥ ७ ॥

पाईके जब भरना लीन्हा । वै बाँधन को रामा ॥८॥
वै भरा तिहुँ लोकहिं बाँधे । कोई न रहत उबाना ॥९॥

'पाईके जब भरना लीन्हा ।' रेचक, पूरक, कुम्भक करके श्वासा ब्रह्माण्ड-में शनै-शनै चढ़ी । 'वै बाँधनको रामा ।' वै कहिये नाड़ी इङ्गला-पिङ्गला; तामें 'राम' ऐसे दो अक्षर बाँधे ॥८॥ फिर वे नाड़ी भरिके तीनों लोक बाँधे ॥९॥

तीनिलोक एक करिगह कीन्हा । दिग-मग कीन्हों ताना ॥१०॥
आदि पुरुष बैठावन बैठे । कबिरा ! ज्योति समाना ॥११॥६४॥

तीन लोक कहिये त्रिकुटी, हृदय औ नाभि । करिगह कहिये मार्ग, दिगमग कहिये दशों दिशा, दशों दिशा कहिये दशों इन्द्रियाँ; सो तहाँसे मन खैंचिके श्वासामें संयम किया । ये अर्थ ॥१०॥ आदिपुरुष कहिये सोहं, सो ताको बैठा-वते-उठावते कबिरा कहिये जीव = सो स्थूल, सूक्ष्म औ कारण, ये तीनों देह छोड़के, नाद-बिन्दु कलातीत होयके ज्योतिमें समाया । ये अर्थ ॥११॥६४॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६५ ॥ ❀ ॥

योगिया फिरिगौ नगर मँझारी । जाय समान पाँच जहाँ नारी ! ॥१॥
गयेउ देशान्तर कोइ न बतावै । योगिया बहुरि गुफा नहिं आवै ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'योगिया फिरिगौ नगर मँझारी ।' नगर कहिये ब्रह्माण्ड; सो ब्रह्माण्डमें श्वासा फेरके योगी लोग बैठे । योगी कहिये मन, सो ब्रह्माण्डमें लय हुआ । ये अर्थ । पाँच नाड़ी कहिये धनञ्जय, कूर्म, नाग, कृकल औ देवदत्त । ये पाँच नाड़ी ब्रह्माण्डकी तामें जाय समाया । ये अर्थ ॥१॥ गुरु कहते हैं कि भला ! जबलग चोला रहा, तबलग ब्रह्माण्डमें रहेगा । औ चोला छोड़ेगा, तब कहाँ जायगा ? यह तो कोई बताता ही नहीं । सब भ्रममें भूले । ये अर्थ । 'योगिया बहुरि गुफा नहिं आवै ।' जो ब्रह्माण्ड तो फूट गया, फिर ब्रह्माण्डमें तो आ सकता नहीं । तो भ्रमणमें जा पड़ा । ये अर्थ ॥२॥

जरि गयो कन्था धजा गइ टूटी । भजि गयो डण्ड खपर गयो फूटी ॥३॥
कहहिं कबीर यह कलि है खोटी । जो रहे करवा सो निकरे टोटी ॥४॥६५॥

कन्था कहिये देह, सो जरके माटीमें मिल गई । ध्वजा कहिये श्वास, सो

निकर गया। डण्ड कहिये योग, सो भजि (भाग), टूट गया। खपर कहिये खोपड़ी, सो फूट गई ॥३॥ गुरु कहते हैं कि तब जीव कहाँ रहेगा ? अरे ! जब देह नाशवन्त ठहरी, तब देहसे जो कर्म हुआ सो भी नाशवन्त। योग, समाधि, मुद्राका अधिष्ठान देह। कछु देह बिना योग होता नहीं। जब देह नास्ति ठहरी, तो योग सहज ही नास्ति है। करवा कहिये देह—सो छोड़ा जब जीवने, तब योगस्थिति तो नास्ति भई औ पूर्व अध्यासवश गर्भवासको प्राप्त भया। ये अर्थ ॥४॥६४॥

विरह अर्थः—नगर कहिये गर्भवास; सो जो ये गर्भसे आया था, सो गर्भमें फिर गया। जो भगद्वारेसे पैदा भया, सो फिर भगद्वारेसे गर्भमें समाया। जहाँ पाँच नाड़ी—प्राण, अपान, समान, व्यान औ उदान, सो तहाँ समाया। ये अर्थ ॥१॥ 'गयेउ देशान्तर कोई न बतावे।' जब यह जीव चोला छोड़के गया, तब कोई भी न बताया—जो मैं फलानी जगह रहूँगा। औ कहते हैं कि आवागमनसे रहित भया; सो कहाँ है ? समाधि तो देहमें रही, विषयमें रही। ये अर्थ ॥२॥ जब देह छूटी, तब पुनः दूसरी देहको प्राप्त भया औ नाना प्रकारके कर्म-धर्म सब देहके सङ्ग रहे ॥३॥ तो गुरु कहते हैं कि-जो कोई कहेगा कि स्वर्गमें गया, सो भी झूठा; औ जो कोई कहेगा कि यमलोकको गया, सो भी झूठा; औ जो कोई कहेगा कि परमात्माके स्वरूपमें मिला, सो भी झूठा। काहेते ? कि ये कछु वस्तुतः नहीं। इससे जीव फिर-फिर गर्भवासको प्राप्त होता है। अथवा कोई कहेगा कि गर्भवासमें नहीं जाता; तो पैदा कहाँसे होता है ? जो गर्भवासमें रहता है, सोई भगद्वारेसे बाहर निकरता है। ये अर्थ ॥ ४ ॥ ६५ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६६ ॥ ❀ ॥

योगियाके नगर बसो मति कोई। जोरे बसे सो योगिया होई ॥१॥

टीका गुरुमुखः—इसवास्ते गुरु कहते हैं कि 'योगियाके नगर बसो मति कोई।' योगियाके नगर कहिये ब्रह्माण्ड; सो ब्रह्माण्डमें कोई मत बसो। नाहक शून्यमें क्यों समाते हो ? जो ब्रह्माण्डमें बसे सो योगी। ये अर्थ ॥ १ ॥

ये योगियाको उलटा ज्ञान। काला चोला नहिं वाके म्यान ॥२॥
प्रगट सो कन्था गुप्ताधारी। तामें मूल सजीवन भारी ॥३॥

'ये योगियाको उलटा ज्ञान।' जो श्वासा उलटके ब्रह्माण्डमें ब्रह्म जानना,

तो क्या पिण्डाण्डमें और कछु है ? और ब्रह्माण्डमें और कछु है ? जो पिण्डाण्डमें है सोई ब्रह्माण्डमें है, तो योग करनेका कारण क्या? नाहक शून्यमें समायके अपनी चैतन्यता क्यों मूँदना ? । ये अर्थ । 'काला चोला नहिं वाके म्यान ।' योगी लोगोंने शून्यस्वरूप निराकार सही किया । ये अर्थ ॥२॥ 'प्रगट सो कन्था गुप्ता-धारी ।' प्रकट जो स्थूल देह है, तामें निर्गुण-निराकार—ऐसा गुप्त आधार धारण किया । ये अर्थ । 'तामें मूल सजीवन भारी ।' मूल सजीवन कहिये जीव, जाकी सत्ता पायके समस्त जीवन्त होते हैं । सो जीवको शून्यमें भरा । आप निर्गुण-निराकार कहिके शून्य हुआ । ये अर्थ ॥ ३ ॥

वो योगियाकी युक्ति जो बूझै । राम रमै तेहि त्रिभुवन सूझै ॥४॥
अमृतबेली छिन-छिन पीवै । कहैंकबीर योगी युग-युग जीवै॥५॥६६॥

मायामुखः—'वो योगियाकी युक्ति जो बूझै ।' गुरुवा लोग बोलते हैं कि जेहि युक्तिसे योगी लोग मग्न रहते हैं, सो युक्ति बूझिके राममें रमे । 'राम कहिये आत्मा—जो सर्वका अधिष्ठान है, तामें रमे । आत्मस्थिति होय तब तीन भुवन सूझै । तीन भुवन कहिये त्रिकुटी, श्रीहट औ गोल्हाट । इनका साक्षी होय, तब जीव-ईश्वरकी एकता होय । ये अर्थ ॥४॥ 'अमृत बेली छिन-छिन पीवै ।' अमृत बेली कहिये स्वासा । सो स्वासाको कुण्डलीमुखसे जो छिन-छिन पीता है, सो योगी युग-युग अमर हुआ, आवागमनसे रहित हुआ । ये अर्थ ॥५॥६६॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६७ ॥ ❀ ॥

जो पै बीजरूप भगवान ! तो पण्डित का पूछो आन ? ॥१॥
कहाँ मन ? कहाँ बुद्धि ? कहाँ हङ्कार? सतरजतम गुण तीन प्रकार ॥२॥

टीका गुरुमुखः—'जो पै बीजरूप भगवान । तो पण्डित का पूछो आन ?' गुरु कहते हैं कि आत्मामें जगत् 'कञ्चन-मोहर' प्रकार है, तो नाना प्रकारका उपदेश किसको होता है ? आप ही अपनेको तो कोई उपदेश करता नहीं और जीवनको जीव उपदेश करते हैं । तो ये आश्चर्य है । जो बीजरूपी भगवान् औ वृक्षरूपी जगत् ठहरा, तो बीजमें वृक्ष औ वृक्षमें बीज । फिर परस्पर भाव करके जोई बीज—सोई वृक्ष, ऐसा अधिष्ठान असी सिद्ध हुआ तो सम्पूर्ण विकाररूप ही हुआ । तो फिर और विकार क्या पूछते हो ? ये अर्थ ॥१॥ फिर मन कहाँ ? चित्त

कहाँ ? बुद्धि कहाँ ? औ अहङ्कार कहाँ ? ये तो सम्पूर्ण आप ही हुआ । तो अन्तःकरण नाम किसने रक्खा ? औ किसको भास हुआ ? फिर भास–भासिक एक हो गया । ये आश्चर्य । रजोगुण, सतोगुण औ तमोगुण–ये त्रिगुण आत्मामें सम्भवते नहीं । फिर त्रिगुण आत्मामें सिद्ध होय रहे हैं । ये आश्चर्य ॥ २ ॥

विष अमृत फल फलें अनेका । बहुधा वेद कहे तरबेका ॥३॥
कहहिं कबीर तैं मैं क्या जान ? को धौं छूटल? को अरुझान?॥४॥६७॥

आत्मा तो एक सर्वदेशी । फिर सम्पूर्ण एकके समुझे सबको समुझना कि नहीं ? तो नाना प्रकारके विष–अमृत फल माना है । कहीं कहता है कि मैं सर्वज्ञ, कहीं कहता है कि मैं किञ्चिज्ज्ञ, कहीं कहता है कि मैं ईश्वर, कहीं कहता है कि मैं जीव, कहीं कहता है कि मैं ब्रह्म, कहीं कहता है कि मैं आत्मा । ऐसा नाना प्रकारसे खराब होय रहा है । अखण्डरूप कैसे मानिये ? ये अर्थ । 'बहुधा वेद कहैं तरबे का ।' नाना प्रकारसे तरनेका उपाय वेद किसको कहता है ? औ कौन तरता है ? अद्वैत उपदेश तो सबने किया, परन्तु द्वैत सबनको भासा । जो द्वैत नहीं भासा, तो किससे अद्वैत उपदेश किया ? फिर द्वैताद्वैत एक करके 'बीज-वृक्ष न्याय' ठहराया । तब गुरु कहते हैं कि देखो ! इनका निर्णय कहाँ रहा ? औ पारख कछु इनको प्राप्त भया नहीं । ये अर्थ ॥३॥ 'कहहिं कबीर तैं–मैं क्या जान ? ।' जब विज्ञान में जाना, तब ज्ञान--अज्ञान दोनों समभाव हुआ । तैं--मैं कछु रहा नहीं । तब बन्धा कौन ? औ छूटा कौन ? सारा दिन पिसान पीसा, चलनीमें उठाया, हलाय देखा तो खाली-का-खाली । ये अर्थ ।

साखीः—मृगतृष्णा का तोय अरु, बाँझपुत्र को न्याय ॥
अस बिचार वेदान्त का, अन्त कछु न लखाय ॥१॥४॥६७॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६८ ॥ ❀ ॥

जो चरखा जरि जाय, बढ़ैया ना मरे ॥१॥
मैं कातों सूत हजार । चरखुला जिन जरै ॥२॥

टीका जीवमुखः—जीव बोलता है कि 'जो चरखा जरि जाय, बढ़ैया ना मरे ॥' ब्रह्म सत्य औ जगत् मिथ्या । चरखा कहिये देह; सो देह तो नाश हो जायगा, औ बढ़ैया = जो देहका बनानेवाला है भगवान् ! सो रहेगा ॥१॥ तो

हे देह ! तू जल्दी नाश मत् होय । मेरेको भगवान्‌की भक्ति सहस्र प्रकारसे करने दे । ये अर्थ ॥ २ ॥

बाबा ! मोर ब्याह कराव । अच्छा बरहि तकाय ॥३॥
ज्यों लौं अच्छा बर ना मिलै । तौ लों तुमहि बिहाय ॥४॥

'बाबा मोर ब्याह कराव ।' बाबा कहिये गुरुवा लोगोंको; सो जीव गुरुवा लोगोंके पास जायके बोलता है कि हे स्वामी ! परमात्मासे मेरी लगन लगावो ! जामें मेरेको भगवत्-प्राप्ति होय । अच्छा वर = भगवान् । ये अर्थ ॥ ३ ॥ औ जबलग अच्छा वर मेरेको ना मिले, तबलग मेरे तुम ही खाविन्द हो । तुम्हारे बिना मेरा कोई नहीं—भगवत्-प्राप्तिके हेतु । ये अर्थ ॥ ४ ॥

प्रथमें नगर पहूँचते । परिगौ शोग सन्ताप ॥५॥
एक अचम्भव हम देखा ! जो बिटिया ब्याहिल बाप ॥६॥

गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'प्रथमें नगर पहूँचते, परिगौ शोग सन्ताप ।' तब गुरुवा लोगोंने उपदेश किया कि परमात्मा प्रभुजीका भजन करना औ तन, मन, धनका अभाव करना; नहीं तो यमलोककी शाँसत महाकठिन है । ऐसा उपदेश देहमें पहुँचते नाना प्रकारका शोग--सन्ताप उपजा कि कौन प्रकारसे ! किस तरहसे प्रभुजीकी प्राप्ति होयगी ? औ यमयातना चूकेगी ? घटमें बानी पहुँचते इस प्रकारसे शोग--सन्ताप पड़ा । ये अर्थ ॥५॥ 'एक अचम्भव हम देखा, जो बिटिया ब्याहिल बाप ।' सो ये बड़ा आश्चर्य है कि, बिटिया कहिये जीव, औ बाप कहिये ईश्वर; सो ईश्वरसे जीवकी लगन लगी । ये अर्थ ॥ ६ ॥

समधीके घर लमधी आये । आये बहूके भाय ॥७॥
गोड़े चूल्हा दै-दै । चरखा दियो दृढाय ॥८॥

'समधीके घर लमधी आये ।' समधी कहिये गुरुवा लोगोंको कि जिनकी बुद्धि शास्त्रमें सम हुई । लमधी कहिये जीवको कि जाकी बुद्धि बानीमें आलम्भ भई । सो गुरुवा लोगोंके घरमें जीव आया, भ्रममें आया । ये अर्थ । 'आये बहूके भाय ।' बहू कहिये बानीको, भाय कहिये पण्डितको ॥७॥ सो बहु बानीके वक्ता आयके नाना प्रकारकी बानी कानमें फूँकके ब्रह्म-रहटा दृढ़ किया । ये अर्थ ॥८॥

देवलोक मरि जायेंगे । एक न मरे बढ़ाय ॥९॥

यह मन रञ्जन कारणे। चरखा दियो दृढ़ाय ॥१०॥

'देवलोक मरि जायेंगे, एक न मरे बढ़ाय। जब महाप्रलय होयगा, तब देवलोक, मानुषलोक सब नाश हो जायेंगे। एक परमात्मा सच्चिदानन्द रहेगा, और कछु रहनेका नहीं ॥९॥ इस प्रकारसे जीवके मनरञ्जन करनेके वास्ते चरखा = बानी दृढ़ कर दिया। ये अर्थ ॥१०॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! चरखा लखे जो कोय ॥११॥
जो यह चरखा लखि परे। ताको आवागवन न होय ॥१२॥६८॥

सो गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनो—जो चरखा = ब्रह्म, जीवको दृढ़ाया, सो कहाँ है ? मिथ्या धोखेमें जीव फँसा है। ये तत्त्वमसि औ सच्चिदानन्द जीवका अध्यास है। इस अध्यासको जो परखै औ जिसके परखनेमें आवे, सो पारखमें ठहरके आवागमनसे रहित होय। ये अर्थ ॥११॥ २॥६८॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ६९ ॥ ❀ ॥

जन्त्री जन्त्र अनूपम बाजे। वाके अष्ट गगन मुख गाजे ॥१॥

टीका गुरुमुखः—जन्त्री कहिये जीवको, जन्त्र कहिये यन्त्र—देहको; सो गुरु कहते हैं कि सर्व उपाधिका मूल देह। सो देहसे अनेक कल्पना भई, जामें तू बँधा है। ये अर्थ। अनूपम कहिये ब्रह्म, सो देहसे सङ्कल्प भया औ सात स्वर्ग, आठवाँ अपवर्ग निश्चय किया। सो सम्पूर्ण कल्पना देहसे उठी। अरे ! देह छोड़के सङ्कल्प कछु होता नहीं। निर्गुण-निराकार अद्वैत आत्मा देह बिना कछु भी सिद्ध हो सकता नहीं। ये अर्थ ॥१॥

तू ही बाजे तू ही गाजे। तूहि लिये कर डोले ॥२॥
एक शब्दमों राग छतीसों। अनहद बानी बोले ॥३॥

सो तू ही कल्पना करता है औ तू ही निश्चय करता है। तेरी कल्पनाको तू ही हाथमें लिये हुए फिरता है ॥२॥ एक ॐकार शब्द तू ही अनुमान किया; फिर छत्तीस प्रकारसे उस ॐकारको गाया, आखिरको अनहद बोला। ये अर्थ ॥३॥

मुख कै नाल श्रवण कै तुम्बा। सतगुरु साज बनाया ॥४॥
जिभ्याके तार नासिका चरई। मायाका मोम लगाया ॥५॥

जीवमुखः—'मुखकै नाल श्रवणकै तुम्बा, सत्गुरु साज बनाया।' जीव बोलता है कि मैं किञ्चिज्ज्ञ, मेरेसे क्या होता है ? ये यन्त्र सत्गुरुने बनाया, ब्रह्माने बनाया। ये अर्थ। मुख सोई नाल, श्रवण सोई तुम्बा ॥४॥ जीभ सोई तार, औ नाक है सोई खूँटी। इस प्रकारसे बीणा बाजा बनाया। ता ऊपर मायाका मोम लगाया, चाम-मांससे मढ़ा है। ये अर्थ ॥ ५ ॥

गगन मण्डलमें भया उजियारा। उलटा फेर लगाया ॥६॥
कहैं कबीर जन भये विवेकी ! जिन जन्त्रीसों मन लाया ॥७॥६९॥

अब जो लक्ष्य बाहर फैल रहा है, सो एकाग्र करके फिर श्वासाको मेरु-डण्डके तरफसे फेरके उलटा लक्ष्य लगाया। तब गगन-मण्डलको मीनमार्गसे उलटा लक्ष्य चढ़ा औ भँवरगुफामें ठहरा। तब महाप्रकाश हुआ—सोई ब्रह्म ॥६॥ इस प्रकारसे जो यन्त्रीसों मन लगावे औ साक्षात्कार होवे, सोई जन विवेकी मोक्ष आरूढ़ ! ऐसा जीव बोलता है। ये अर्थ ॥ ७ ॥ ६९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७० ॥ ❀

जस मास पशुकी तस मास नरकी। रुधिर-रुधिर एक सारा जी ! ॥१॥
पशुकी मास भखें सब कोई। नरहिं न भखें सियारा जी ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जैसा नरका मांस, वैसा ही पशुका मांस; औ रुधिर भी एक सरीखा है ॥१॥ सो पशुके मांसको राक्षसगण हिंसकजीव श्वान-सियार समान भक्षण करते हैं औ बोलते हैं कि अहंब्रह्म, हमारेको विधि-निषेध नहीं। 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म।' ये सम्पूर्ण एक ब्रह्म ही है, मारनेको, मरनेको कोई दूसरा नहीं—ऐसा बोलते हैं तो ये अपने पुत्रको औ अपनी स्त्रीको क्यों नहीं मारके खाते ? जैसे सियार ढोर मुरदा खाता है औ अपनी जातिको नहीं खाता। तद्वत् ऊपर-ऊपर सब अद्वैत कहते हैं औ भीतर-भीतर सबको द्वैत भासता है। जो द्वैत नहीं भासा तो खाते किसको हैं ? । ये अर्थ ॥ २ ॥

ब्रह्म कुलाल मेदिनी भइया। उपजि-बिनशि कित गइया जी ! ॥३॥
मास मछरिया तैं पै खइया। ज्यों खेतनमों बोइया जी ! ॥४॥

'ब्रह्म कुलाल मेदिनी भइया। उपजि-विनशि कित गइया जी ! ॥' ब्रह्म कुम्हार पृथिवीपर पैदा होके नाना प्रकारकी बानी बनाया औ सृष्टि रचना किया,

ऐसा वेद बोलता है। सो ब्रह्म निराबेब कि साबेब ? अगर कोई कहेगा कि ब्रह्म भी कहीं साबेब होता है? तो निराबेबसे कहीं सृष्टि रचना होती है? साबेब बिना स्फुरण भी नहीं होता औ इच्छा भी नहीं हो सकती। जो साबेब हुआ, तो 'उपजि-विनशि कित गइया जी ?।' ऐसा ब्रह्म कुलाल पृथ्वीपर पैदा भया, फिर उपजि-विनशि कित गया ? ॥३॥ अरे ! जासे तुमने आरम्भ औ परिणाम माना है, सो तो जीवकी कल्पना है। सो कल्पनामें तुम समरस होयके ब्रह्म कहलाते हो औ मांस-मछरिया खाते हो। जैसा किसान खेतमें तरकारी बोवता है औ जब चाहे तब उखाड़के खाता है। इस प्रकारसे ये काल जीव जब चाहते हैं, तब मांस-मछरिया खाते हैं ॥ ४ ॥

माटीके करि देवी–देवा। काटि–काटि जिव देइया जी!॥५॥
जो तोहरा है साँचा देवा। खेत चरत क्यों ना लेइया जी?॥६॥

(—मिट्टी-पत्थरादिके देवी-देवतोंकी जड़ प्रतिमा बनाकर उनके सामने सजीव बकरे, कबूतर, बतख आदिके गले काट-काटकर बलिदान दे देते हैं। ऐसे जीव-हत्यारूप महापापका कर्म करते–कराते हैं) ॥५॥ भला ! कोई कहेगा कि शास्त्रका प्रमाण है, सो प्रमाणसे हम देवता निमित्त उपासना करके खाते हैं। तो तुम्हारा देवता जो खाता है और उसके बिना देवताकी तृप्ति नहीं होती, तो जब बकरी खेतमें चरती है, तब तुम्हारा देवता क्यों नहीं खाता ? क्या देवताको किसीका धाक है ? कि किसीने रोका है ? कि कोई मारता है ? तो खेत चरते क्यों नहीं खाता ? तो देवता मिथ्या औ पुजारी सच्चा; जिसने अपनी कल्पनासे देवता भी माटीका बनाया। अरे ! तुम अपनी कल्पनासे देव-देवी बनाते हो, सो निर्जीव मिथ्याभूत। और उसके आगे सजीव काटके रखते हो। ये कैसी गाफिली तुम्हारेको घेरी है ? गुरु कहते हैं—हे जीव ! देवता कहाँ है ? तेरी कल्पना। ये अर्थ ॥६॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! राम नाम नित लेइया जी ! ॥७॥
जो कछु कियहु जिभ्याके स्वारथ। बदला पराया देइयाजी!॥८॥७०॥

भला ! जो तुम रामनाम नित लेते हो, तो वेदका प्रमाण है कि 'जो सबमें रमा है सो राम।' तो भला ! जिसकी भक्ति करना, उसका कहीं गला काटना ? अगर कोई आप-ही-आप कहेगा, तो भी गला काटना सम्भवता नहीं। कोई

अपना गला आप काटके अपनेको आप खाते देखा भी नहीं औ सुना भी नहीं। तब तुम्हारा कर्त्तव्य मिथ्याभूत । ये अर्थ ॥७॥ ये जो जिह्वाके स्वादके हेतु औ नाना प्रकारके विषय-स्वार्थके हेतु तुम जीवहिंसा करते हो, सो पराया बदला देना पड़ेगा; कछु छूटनेका नहीं। जीवहिंसा विषयके अध्याससे फिर नाना जन्म होयके तुम्हारी भी वैसी हिंसा होयगी । ये अर्थ ॥८॥७०॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७१ ॥ ❀ ॥

चातृक ! कहाँ पुकारो दूरी ? सो जल जगत रहा भरपूरी ॥१॥
जेहि जल नाद–बिन्दको भेदा । षटकर्म सहित उपानेउ वेदा ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'चातृक कहाँ पुकारो दूरी ?' चातृक कहिये जीवको; जल कहिये अज्ञान, जल कहिये बानी, जल कहिये काम, जल कहिये कल्पना। सो हे जीव ! कल्पना सम्पूर्ण संसारमें भर रही है, ताते तू दूर आशा लगायके पुकारता है। सो जाके हेत तुम पुकारते हो, सो कछु है नहीं। तेरी कल्पना । ये अर्थ ॥१॥ 'जेहि जल नाद-बिन्दको भेदा।' नाद कहिये सूक्ष्म, बिन्द कहिये स्थूल; इन दोनोंका भेद कहिये कला, कला कहिये अज्ञान, अज्ञान कहिये जामें जीव आवृत्त हो रहा है, अन्धाधुन्ध हो रहा है। अन्धाधुन्ध कहिये असि आनन्द । जहाँ ज्ञान-अज्ञान कछु नहीं सूझे, ताको अन्धाधुन्ध कहिये। ये अर्थ । सोई अनुमानसे षट्कर्म उपजे औ सोई अनुमानसे चारों वेद पैदा भये, सोई अनुमानका अधिष्ठान बना ! । ये अर्थ ॥ २ ॥

जेहि जल जीव शीवको बासा । सो जल धरणी अमर प्रकासा॥३॥
जेहिजल उपजल सकल शरीरा। सोजल भेद न जानुकबीरा॥४॥७१॥

जीव कहिये आप, औ शीव कहिये ईश्वर। सो आपहीने ईश्वर अनुमान किया औ आपहीने आत्मा अनुमान किया; फिर आप ही ब्रह्म होयके आत्मा निश्चय किया। ये अर्थ। 'सो जल धरणी अमर प्रकाशा।' सोई आत्मा सम्पूर्ण प्रकाश हुआ ॥३॥ सो आत्मामें ये स्थित भया, ताहीसे सब शरीर औ सम्पूर्ण विकार उपजा औ सब विकारका अधिष्ठान भया। इस प्रकारसे जीवको भेद नहीं मालूम भया कि जो विकारसे नाना दुःखकी प्राप्ति भई, सोई विकाररूपी मैं कैसे होता हूँ ? सो तू परखके न्यारा हो ! । ये अर्थ ॥४॥७१॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७२ ॥ ❀ ॥

चलहु का ? टेढ़ो ! टेढ़ो !! टेढ़ो !!! ॥१॥

दशहूँ द्वार नर्क भरि बूड़े। तूँ गन्धीको बेड़ो ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'चलहु का ! टेढ़ो ! टेढ़ो !! टेढ़ो !!!' प्रथम टेढ़ो = त्वंपद, दूसरा टेढ़ो = तत्पद, तीसरा टेढ़ो = असिपद। इस प्रकारसे चलते-चलते पूर्ण आत्मभावको प्राप्त हुआ ॥१॥ तब दशों दिशामें भरपूर कहाया। तब अधिष्ठानरूप हुआ, तो गन्धीका बेड़ा हुआ। ये अर्थ। गन्धी कहिये संसारको, गन्धी कहिये नर्कको, बेड़ा कहिये जहाजको; सो आत्मा हुआ, तब कहा कि मैं निर्विकार हुआ। परन्तु सम्पूर्ण विकारका औ जगत्का अधिष्ठान हुआ। ये अर्थ ॥२॥

फूटे नैन हृदय नहिं सूझै। मति एकौ नहिं जानी ॥३॥
काम-क्रोध तृष्णाके माते। बूड़ि मुये बिनु पानी ॥४॥

देखो ! इनकी आखें फूटीं औ ऊपरकी भी आखें फूट गईं। जो जगत्-विकार देखते हैं औ कहते हैं कि मेरेको जगत् दिखता नहीं, अस्ति आत्मा दिखता है। और हृदय नहिं सूझै। हियेमें जो ज्ञान था, सो भी खोया औ कहने लगे कि ज्ञान-अज्ञान ये दोऊ मेरे विषय नहीं हैं, मैं केवल आत्मा। तब चारों गईं। ये अर्थ ॥३॥ काम = भक्ति, क्रोध = योग, तृष्णा = ज्ञान; ये तीनों मतमें मस्त होयके बिना पानी बूड़ि मुये, अपने ही अनुमानमें आप मग्न हुए। ये अर्थ ॥ ४ ॥

जो जारे तन भस्म होय धुरि। गाड़े किर मिटी खाई ॥५॥
सीकर श्वान कागका भोजन। तनकी इहै बड़ाई ॥६॥

'जो जारे तन भस्म होय धुरि। गाड़े किर मिटी खाई ॥' अरे ! देह तो नाशवन्त ठहरी, जारे भस्म हो जायगी औ गाड़े तो कीड़े, माटी खा जायेंगी ॥५॥ औ ऊपर पड़ी रहेगी, तो सियार, कुत्ते, कौवे, चील आदि खा जायेंगे। 'तनकी इहै बड़ाई।' ये अर्थ ॥ ६ ॥

चेति न देखु ? मुग्ध नर बौरे ! तोहि ते काल न दूरी ॥७॥
कोटिन यतन करो यह तनकी। अन्त अवस्था धूरी ॥८॥

'चेत नहीं देखता है मुग्ध नर दिवाना ! तोहिते काल न दूरी ।' जो तू कल्पता है औ मानता है, सोई तेरा काल है ॥७॥ ये तनके वास्त कोटि यतन करो, परन्तु अन्त अवस्थाको धूरमें मिलेगी ॥ ८ ॥

बालूके घरवा में बैठे। चेतत नाहिं अयाना ॥९॥
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु। बूड़े बहुत सयाना ॥१०॥७२॥

जैसे बालूके घरमें कोई बैठता है तो रहनेको आश्चर्य है, परन्तु जानेको कछु आश्चर्य नहीं। ऐसी यह देह है। सो जानता नहीं अज्ञान ! ॥९॥ सो गुरु कहते हैं कि 'एक राम' ऐसा अनुमान जो दृढ़ किया है, सोई बन्धन है। सो छूटे बिना बाँधा गर्भवासको जायगा। ये अर्थ ॥ १० ॥ ७२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७३ ॥ ❀ ॥

फिरहु का ? फूले ! फूले !! फूले !!! ॥१॥
जब दश मास ऊर्ध मुख होते। सो दिन काहेक भूले ? ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि कोई भक्तिमें फूल गये, कोई योगमें फूले, औ कोई ज्ञानमें फूले। इस प्रकारसे त्रिबन्धनमें परे ॥१॥ ये त्रिबन्धन जबलग परखनेमें नहीं आवे, तबलग गर्भवास छूटता नहीं। ये अर्थ ॥ २ ॥

ज्यों माखी सहते नहिं बिहुरे। सोचि-सोचि धन कीन्हा ॥३॥
मुये पीछे लेहु-लेहु करें सब। भूत रहनि कस दीन्हा ? ॥४॥
देहरि लों बर-नारि सङ्ग है। आगे सङ्ग सुहेला ॥५॥
मृतक थान लों सङ्ग खटोला। फिर पुनि हंस अकेला ॥६॥
जारे देह भस्म होय जाई। गाड़े माटी खाई ॥७॥
काँचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया। तनकी इहै बड़ाई ॥८॥

(चौपाई दो से आठतक) मध्य अर्थ स्पष्ट है।

राम न रमसि मोहके माते। परेहु कालवश कूवा ! ॥९॥
कहहिंकबीर नर! आपुबँधायो। ज्यों नलिनी भ्रमसूवा ॥१०॥७३॥❀

❋टिप्पणी:—शब्द ७३ का पूरा भाष्य—

फिरहु का फूले ! !! फूले !! फूले !!! ॥ १ ॥

आगे 'राम न रमसि मोहके माते ।' नाना प्रकारके मोहमें मस्त हुआ, सोई तेरा काल औ 'एक राम' ऐसा अनुमान जो वेदने सिद्ध किया, सो भी तेरा काल । ऐसे-ऐसे अध्यासमें बन्ध होयके अन्धकूपमें परा, अज्ञानमें परा, फिर गर्भ-वासको प्राप्त हुआ ॥९॥ जो तू ब्रह्म औ आत्मा सिद्ध करता है, सो कहाँ है ? मिथ्या तेरा अध्यास है । तामें तू 'सुआ-नलिनी न्याय' बन्धायमान हुआ । सो तू परखके देख औ स्थिर हो । ये अर्थ ॥ १० ॥ ७३ ॥

भाष्यः गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे संसारी मनुष्यो ! तुम लोग पूर्वप्रारब्ध कर्मानुसार अभी सुन्दर देह, स्त्री, पुत्र, परिवारादिकी अधिकता होनेसे, विशेष धन-सम्पत्ति पानेसे, व्यावहारिक विद्यामें निपुण हो, उच्च पद, मान-मर्य्यादा पानेसे, इत्यादि नाशवान् चीजका घमण्ड करके बिना विचार तनसे, मनसे, वचनसे बालक, युवा, वृद्ध हो क्या फूले-फूले-फूले फिरते हो ? अधिक फूला हुआ एकदिन फूटकर पचक जाता है। वैसा तुम्हारा फूला हुआ सारा घमण्ड भी अन्तमें चकनाचूर हो पचक जायगा। देहादिका हङ्कार लेकर फूलना भी बन्धन है। धनमदमें फूलना भी बन्धन है और विद्या-पदादिके अभिमानमें फूलना भी बन्धन है। ऐसे त्रिविध बन्धनमें पड़े अकड़कर क्या फूले-फूले चलते-फिरते हो ? अपने जीवन, मनुष्यपदका विनाश क्यों करते हो ? वैसा मिथ्या अभिमान छोड़कर, नम्र बनकर पारखी सन्त-महात्माओंकी सत्सङ्गतिमें लगो ! जीवन सुधार करो !

अथवा हे नरजीवो ! तुम लोग बिना विवेक प्रथम—कल्पनासे जड़भक्तिमें क्यों फूले फिरते हो ? द्वितीय—योगमार्गमें क्यों फूले चलते हो ? और तृतीय—ब्रह्मज्ञानकी मिथ्या मानन्दीमें क्यों फूले भटकते हो ? वे तीनों तुम्हारे लिए कठिन बन्धन हैं। अपनी खुशीसे ही वैसे त्रिबन्धमें जाके क्यों बँध जाते हो ? जबतक उन त्रिबन्धोंको परखकर परित्याग नहीं करोगे, तबतक आवागमन, गर्भवासका दुःख नहीं छूटेगा। ऐसा यथार्थ जानकर पारखबोध प्राप्त करके सत्य स्वरूपमें स्थिति करो ! ॥ १ ॥

जब दश मास ऊर्ध मुख होते । सो दिन काहेक भूले ? ॥ २ ॥

जब = जिस समय दश महीनेतक माताके पेटरूप गर्भ-स्थानमें तुम बन्धे पड़े थे, उस वक्त तुम्हारा सर्वाङ्ग गर्भकी झिल्लीमें लिपटा हुआ था। देहमें मुख और शिर ऊर्ध= सबसे ऊपर बने होनेपर भी कुछ बोल नहीं सकते थे। वैसा ऊर्ध्व मुख होनेपर भी प्राणवायुका सञ्चार नाभिमें लगी नालसे माताके मुख-नासिकाद्वारा ही होता था और माताके मुखसे खाये हुए भोजनका रस ही गर्भस्थ शिशुमें भी पहुँचता था। इस प्रकार परमुखापेक्षी हो, गर्भवासमें जब दशमासतक तुम्हारे ऊर्ध्व मुख=मुख्य कार्य सब ऊपरसे ही हो रहे थे। तुम सर्वथा पराधीन हो अन्धेरी गुफामें बन्धे पड़े थे। वैसी दुर्दशाके दिन, महान् कष्टका समय अब क्यों ? कैसे भूल गये ? तब तो तुम्हारा कुछ भी सामर्थ्य नहीं था। अब क्या वाहियात फूले फिरते हो ? परमार्थमें लगो ! और कर्त्तव्यका सुधार करो ! तभी मनुष्यदेह पानेका सार होगा। [लिखा है—गर्भस्थ शिशुका शिर दोनों

घुटनोंके बीच कोखमें सटा रहता है। वैसी हालतमें दशमहीने तक उसका उलटा मुख लटकना सिद्ध नहीं होता है। जन्मते समय ही प्रसूतवायुके वेगसे शिशुका शिर नीचे हो जाता है। नहीं तो गोदमें लियेवत् ही ऊर्ध्वमुखसे शिशु गर्भझिल्लीमें लिपटा रहता है। ऐसा वैद्यकशास्त्रका प्रमाण है। अतः "ऊर्ध मुख" का भाव ऊपरसे सम्बन्धित होना ही यथार्थ है।]

अथवा हे ज्ञानी, योगी, भक्तो ! जब दशमास=चार वेद एवं षट् शास्त्र; इन दशों ग्रन्थोंकी वाणीको पढ़ने-पढ़ानेमें कई वर्षोंतक सतत प्रयत्न करते हुए तुम्हारा मुख ऊर्ध=ऊपर कष्ट-क्लेशकी रेखा होते-होते कभी मुख सूख जाता, मुरझा भी जाता था। ऊपर मुख करके तपस्यादि करनेमें दुःख भी बहुत भोगे, कष्टसे समय बिताये। वे दिन अब कैसे भूल गये ? बिना विवेक मिथ्या मानन्दीसे कल्पित ज्ञान, योग, भक्ति आदिमें फूले-फूले अन्धाधुन्ध क्या फिर रहे हो ? अब तो परीक्षा करके सत्य पारख-बोधका ग्रहण और असत्य भ्रम-धोखेका परित्याग करो ! ॥ २ ॥

ज्यों माखी सहतें नहिं बहुरे। सोचि-सोचि धन कीन्हा ॥ ३ ॥

जैसे मधुमक्खियाँ बहुत प्रयत्न करके दुःख उठाकर शहदका छत्ता इकट्ठा कर लेती हैं, उसे बढ़ानेके ही उद्योगमें सदा लगी रहती हैं। शहद तैयार होनेपर उसे वे खा भी नहीं लेतीं, और उसे सहते=शहदको, बिहुरे=छोड़ करके भी कहीं चली नहीं जातीं। उसीकी रक्षा करके वहीं बैठी रहती हैं। अन्तमें शहद निकालनेवाले आकर, उनको अग्निसे जलाके, धुँएँ करके सब शहद निकालकर ले जाते हैं।

तद्वत् संसारी मनुष्य अनेक बातोंको सोच-सोचकर धन कमानेके लिए बहुत-सी चिन्ता, फिक्र संयुक्त उद्योग-धन्धा, खेती-बाड़ी, किसानी, वणिज-व्यापार, नौकरी-चाकरी, कारीगरी, कारखाना चलाना इत्यादि नाना उपायसे धन-सम्पत्ति कमाकर जमा किया करते हैं। कन्जूस, मक्खीचूस, अति लोभी-लालची, स्वार्थी होनेसे अपने कमाये धनको परमार्थ, दया-दानमें एवं साधु-सन्त महात्माओंकी सेवा, परोपकारमें भी कभी कुछ नहीं लगाते हैं। मधुमक्खीवत् केवल वे धन जमा करना भर ही जानते हैं। उसे अपने उपभोगोंमें भी ठीकसे नहीं लगाते हैं। रूखा-सूखा खाकर निर्वाह करते हैं। उस धनको खुशीसे देकर उसे छोड़ते भी नहीं हैं। केवल उसकी रखवाली करके व्यर्थका बोझा ढोये रहते हैं। अन्तमें एकदिन मर जाते हैं और अधिक धनकी वासना रहनेपर साँप-बिच्छू होते हैं।

"बहुत कष्ट कै दाम कमावै। सो सब विषयके फन्द उड़ावै ॥९९॥
कृपिण कनक बहु भाँति जोगावै। सर्प होय निज जन्म गमावै ॥१००॥"

॥—मानुष विचार, पञ्चग्रन्थी ॥

वैसे तुम मधुमक्खीवत् सोच-सोचकर बहुत-सा धन जमा किये हो। परमार्थमें धन लगाकर उसका मोह, आसक्ति भी नहीं छोड़ते हो, तब अन्तमें तुम्हारी दुर्गति होकर चौरासीमें दुःख भोगनेके सिवाय और क्या होगा ?।

अथवा ये भ्रमिक लोग भी अनेक प्रकारकी वाणी÷कल्पनाओंको सोच-सोचकर

द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत इत्यादि सिद्धान्तोंकी मानन्दीरूप वाणी-कल्पनाके धनको बहुत-सा इकट्ठा किये बैठे हैं, बहुत-से श्लोक, वाणी-वचनोंको भी याद कर रक्खे हैं। मधुमक्खीके शहदवत् वे ही उनके सार संग्रह हैं। उन्हें वे कभी नहीं त्यागते। ग्रन्थ भी बहुत जमा कर रक्खे हैं। उन्हीं भ्रम-कल्पनादिके वे संरक्षक बने हैं। अन्तमें वे कुछ भी उनके काम नहीं आवेंगे। जड़ाध्यासी जीव अकेला चौरासीमें जाकर दुःख भोगता रहेगा। सब किया-कराया व्यर्थ हो जायगा; बिना पारख ॥ ३ ॥

मुये पीछे लेहु-लेहु करें सब। भूत रहनि कस दीन्हा ? ॥ ४ ॥

हे धनिक मनुष्यो ! जो तुमने बहुत धन कमाकर छिपा रक्खा है, उसे जीते ही खुशीसे अपने हाथोंसे साधु-गुरुकी सेवा, दान-धर्मादि परमार्थमें लगाओ! यही धनका सार है। यदि ऐसा नहीं करोगे, तो यह बात निश्चयसे समझ लो कि तुम्हारे मरनेके थोड़ी देर पश्चात् ही तुम्हारे पुत्र-पौत्रादि परिवार इकट्ठे होकर कहेंगे कि 'लो! यह सूम तो मर गया, अब अच्छा हुआ—कण्टक निकल गया, इसने तिजोरीकी चाबी कहाँ रक्खी है ? सो ले लो! इसके गलेसे सोनेका सङ्कल निकाल लो! अंगुलीसे अँगूठी निकालो! कानसे टप निकालो! बाहूसे बाजुबन्द निकालो! कमरसे चाँदीकी करधनी निकाल लो! और इसने कहाँ-कहाँ धन छिपाके रक्खा है, सो सब ढूँढ़कर ले लो! ले लो! सब रकम अपने अधिकारमें करलो!' इत्यादि कहकर जिसे जो मिला, सो वही लूट मचा लेगा। इस प्रकार भूत=जीवन बीतनेपर वा मृत्यु होनेपर विभूतिरूप धन-सम्पत्तिको उस मृतकके अङ्गमें वा यत्र-तत्र पड़े कैसे रहने देंगे ? परिवारके लोग आ-आकर रो-गाकर सब समेट लेंगे। तदुपरान्त बीत चुके पञ्चभौतिक लाशको भी घरमें बहुत देरतक रहने नहीं देंगे। जल्दी निकालनेके प्रबन्धमें लग जायेंगे। ऐसी ही दुनियाँकी रीति प्रसिद्ध है। अतः जीते ही तन, मन, धनको परमार्थमें लगाकर जीवन सुधार करो!

अथवा गुरुवा लोगोंने ब्रह्म आदि मानन्दी, वाणी-कल्पनाका धन बहुत इकट्ठा किया, मठ-मन्दिरादिमें बाह्य धन-संग्रह भी खूब किया। इसी तरह मुये=जड़ाध्यासी हो-होकर मर गये। तत्पश्चात् उनके शिष्य भक्तवर्ग आदि आकर महिमा कथन करके कहते हैं—सब कोई इनके गुण, सिद्धान्त, उपदेशादि अपनेमें धारण करलो! भाई! अन्तिम दर्शन करलो! ये सिद्ध महात्मा थे। इनको ओढ़ाये हुए वस्त्र, चद्दर आदि प्रसादमें रखलो! इससे लाभ ही होगा। इत्यादि कहकर वस्त्रको चिन्धी-चिन्धी फाड़कर बाँट लेते हैं। महात्माके मरनेके पीछे सब—'आओ! इनका प्रसाद लेओ-लेओ!' कहते जो मिला सो ले-लेके जाते हैं। मठकी सारी वस्तुओंको उनके उत्तराधिकारी चेले लोग आदि सम्हाल लेते हैं। जीवन व्यतीत होनेपर उस देहको भी कोई नहीं रखते और धनादि पदार्थको भी बेवारिस कैसे कोई रहने देंगे ? इसी तरह जहाँ-के-तहाँ सब छूट जाते हैं। इसीसे जीते ही निज पारख-स्वरूपमें स्थिर हो जाना चाहिये! ॥४॥

देहरि लों बर नारि सङ्ग है। आगे सङ्ग सुहेला ॥ ५ ॥

हे गृहस्थ लोगो ! तुम्हारी बर नारि=श्रेष्ठ मानी हुई स्त्री भी तुम्हारी मृत्यु होनेके

उपरान्त, देहरि लों=मकानके मूल दरवाजेतक ही लाशके सङ्ग-साथमें रहती है, फिर रो-गाके भीतर चली जाती है। उसके आगे आँगनसे इकट्ठे होकर सुहेला=मित्रवर्ग, रिस्तेदार, परिवार, सम्बन्धीके लोग सङ्ग-साथमें लगे मरघटतक चले जायेंगे। ऐसी रीति-रिवाज है। सो देख ही रहे हो।

अथवा योगी, ज्ञानी, भक्त, विज्ञानी आदिके शरीरस्थ श्रेष्ठ नौ नाड़ियाँ भी देहान्तके समय दशों द्वारोंके पासतक ही सङ्ग रहती हैं। आगे सुहेला=प्रिय, सुन्दर माना हुआ सूक्ष्म प्राण सूक्ष्म देहके साथमें जायगा। अथवा देह छूटनेपर उनकी चेली-भक्तिनियाँ दरवाजेतक सङ्ग रहेंगी और उसके आगे प्रेमी मित्रवर्ग, शिष्यवर्ग साथमें चले जायँगे। ऐसी ही परिपाटी देखनेमें आती है॥ ५॥

मृतक थान लों सङ्ग खटोला। फिर पुनि हंस अकेला॥ ६॥

संसारी गृहस्थ लोगोंके, अथवा भेषधारी साधु-सन्त-महन्तादि लोगोंकी मृत्यु होनेपर उनके रिवाज अनुसार ही खटोला=छोटी खाट, अर्थी, बाँससे निर्मित ठट्टर, अथवा मुर्दाको बैठाकर लेजानेका विमान, उसीमें महन्तोंको बैठाकर,और सबको लेटाकर ले जाते हैं। इस तरह मृतकथान=श्मशानभूमि, लों=तक शव-यात्रामें खटोलाका सङ्ग-साथ रहेगा। तदुपरान्त देहके साथी भी सब वहींसे छोड़कर चले आवेंगे। तब जीवका साथी कौन होगा? कोई नहीं। आयु पूर्ण होते ही स्थूल शरीरको जीव छोड़ देगा। प्राणकी चलनगति बन्द हो जायगी। फिर जीव उस देहमें लौटकर पुनः प्रवेश नहीं करेगा। तभी हंस=अध्यासी चैतन्य जीव आप अकेला सूक्ष्म देहमें भरे संस्कार-युक्त चौरासी योनिके गर्भवासमें वासनानुसार सीधा चला जायगा। मरघटमें लाश पहुँचानेतक जीव साथमें नहीं रहता है। लाशको जलाने वा गाड़नेपर जीव अकेला चला जाता है, ऐसा कहनेका यहाँ तात्पर्य नहीं है। क्योंकि वैसा नहीं होता है। पहले ही चौ० ३में कहा है—"भूत रहनि कस दीन्हा?" मृतक देहको कोई कैसे घरमें रहने देगा? उसे तो बाहर दूर ले जाकर फेकेंगे ही। उस निकम्मी हो चुकी लाशके लिए भी कौन-कहाँतक साथ देता है? वही बात "मृतक थानलों सङ्ग खटोला" यहाँतक दरशायी गई है। फिर कहो—आगे हंसका साथी पुनः और कौन है? कोई नहीं। वह अकेला है। जैसा अकेला आया था, वैसा अकेला ही चला गया। परन्तु मृत्यु होते ही उसी वक्त जीव अकेला अध्यासवश चला जाता है। इस कारण खानि-वाणीके मायाजालोंमें फूले मत फिरो! समय रहते ही चेतकर अपना जीवन-कल्याण करो! पारखपदमें ठहरो! यही कहनेका अभिप्राय है॥ ६॥

जारे देह भस्म होय जाई। गाड़े माटी खाई॥ ७॥

मृत्यु होनेपर मुर्दा शरीरको लकड़ी आदिकी चितामें जला देनेसे देखते-ही-देखते समूची देह जलकर भस्म=राखकी ढेरी हो जाती है। यदि कहीं कोई पृथ्वीपर खाई=गड्ढा खोदकर मुर्दे गाड़ देंगे, तो सड़-गलकर वह मिट्टीमें ही मिल जायगा। कार्य शरीर अन्तमें कारणरूप पञ्चतत्त्वोंमें ही जाकर समा जायगा। अध्यासी जीव वासनानुसार चौरासी योनियोंमें जाकर कर्मफल भोगता रहेगा॥ ७॥

काँचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया । तनकी इहै बड़ाई ॥ ८ ॥

जैसे मिट्टीके कच्चे कुम्भ=घड़ेमें, उदक=जल लाकर पूरा भर दिया जावे तो वह उसमें बहुत देरतक ठहर नहीं सकता। गीला होते-होते शीघ्र ही टूट-फूटकर विनाश हो जायगा। चाहे परीक्षा करके देख लीजिये ! तद्वत् काँचे कुम्भ=यह तुम्हारा स्थूल शरीररूपी घट भी अत्यन्त कच्चा, क्षणमें विनाश होनेवाला, तत्त्वोंके कार्यरूपमें बना है। इसमें उदक=जलवत् प्राणवायुको अध्यासी जीवने हृदयमें भर दिया है। प्रारब्ध-भोग पूर्ण होनेपर यह शरीर उसी वक्त विनाश हो जाता है। फिर उसे सदा स्थिर करके कोई रख नहीं सकता है। मृत्यु होनेपर कोई जला देते, कोई गाड़ देते, कोई जङ्गलमें फेंक देते और कोई नदियोंमें डुबा या बहा देते हैं। यही इस शरीरकी अन्तिम बड़ाई=प्रशंसा, महिमा, अधिकता हो जाती है। नहीं तो मृतक शरीरकी कौन बड़ाई है ? कुछ नहीं। हाँ ! जीते ही नरदेहके साथ जो कुछ धर्म-कर्म, दान-पुण्य, परोपकार-सहायता, भक्ति-भाव, सदाचार, सत्सङ्ग, विवेक-विचार, बोध-वैराग्य और पारखस्वरूपकी स्थिति, ठहराव कर लिया जाता है, उन्हीं शुभ सत्कर्मके कारण उन मनुष्योंकी बड़ाई होती है। सत्यासत्य विवेक करके मनुष्य ही जीवन्मुक्त हो सकते हैं। इसीसे मनुष्य-शरीरकी विशेषता बताकर बड़ाई की जाती है। किन्तु पशुवत् विषय-भोगोंके कर्ममें व्यर्थ आयु बिताकर मरनेवालोंकी कोई बड़ाई नहीं है। अतः परमार्थी सच्चा मनुष्य होकर अपनी मुक्तिका कार्य पूर्ण करना चाहिये ! ॥ ८ ॥

राम न रमसि मोहके माते । परेहु कालवश कूवा ! ॥९॥

हे मनुष्यो ! तुम लोग जो स्त्री, पुत्र, परिवार, देह, घर-बार, राज-काज इत्यादिकी मोह-ममता बढ़ाकर मोहान्ध हो विषय-भोगोंमें उन्मत्त हो रहे हो, उसी कारण काल=स्त्री और विषयोंके वशीभूत हो-होकर महाअज्ञानतासे भग-भोगादि अन्धे कुएमें गिरे पड़े हो। जहाँ संसारभरके कष्ट-क्लेश सहन कर रहे हो। अन्तमें कालवश मृत्यु होनेपर उसी अध्याससे पुनः योनिकूपसे गर्भवासके कुएमें पड़ जाओगे, चौरासीमें पड़े दुःख ही भोगते रहोगे। अतएव मैं तुम्हें चेतावनी दे रहा हूँ—अभी सचेत हो जाओ ! पाँचों विषयोंके आराम, सुखासक्तिमें मत् रमो ! विषयानन्दकी आसक्ति ही तुम्हारा काल है। मोहमें उन्मत्त मत् होओ ! सब संसारकी मोह-ममताको परखकर परित्याग करो ! पारखी सन्तोंकी सत्सङ्गतिसे बोध-वैराग्यादिको धारण करो ! तब उक्त कालके घेरासे पार उतर जाओगे। समय रहते ही सम्हलो ! अपना उद्धार करो !

अथवा एक आत्मा सर्वव्यापक सर्वाधिष्ठान मैं हूँ, ऐसा वाणी-कल्पनाके अनुमानसे मानकर जो उसमें रम रहे हो और वेद-शास्त्रादिकी वाणीकी रोचकतामें मोहित होकर मग्न-मस्त उन्मत्त हो रहे हो, सो वही तुम्हारी भूल, अज्ञानता है। सो उसी काल=गुरुवा लोग, वाणी, कल्पना, भास, अध्यासके वशीभूत हो-होकर भ्रमकूप, अन्धकूप, जगत्कूपके गहरे गढ़्डेमें गिरे पड़े हो। अब भी उससे निकलनेका प्रयत्न नहीं कर रहे हो। तुम्हारा ब्रह्म कहाँ है ? आत्मा कहाँ है ? सब जगत्रूप ही तो सिद्ध हो रहे हैं। वही धोखा तुम्हारा काल बनकर संहार कर रहा है। अन्तमें वही चौरासी-

कूपमें ले जाकर गिरायेगा। कभी निकल नहीं पाओगे। यदि अब भी अपना हित चाहते हो तो सुनो! उस अनुमानके राममें मत् रमो! परखकर उस भ्रमको त्यागो! सो सत्य-सार अपना चैतन्य जीवका स्वरूप है। उसीमें रमो! पारखपदमें स्थिर हो जाओ! तभी तुम्हारा जीवन-कल्याण हो जायेगा।

अपने शुद्ध चैतन्य पारख-स्वरूपमें क्यों नहीं रमते हो? खानि-वाणीके मोहमें उन्मत्त क्यों होते हो? उसी मोहके माते कालवश गहरे कुएमें पड़े हो। इस तरह तो बारम्बार गर्भकूप, चौरासी-कूपमें ही पड़े रहोगे। अतः अभी मोटी-झीनी सब मायाका मोह त्यागकर पारखमें स्थिर हो रहो! ॥ ६ ॥

कहहिं कबीर नर! आपु बँधायो। ज्यों नलिनी भ्रम सूवा! ॥१०॥७३॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे नरजीवो! कहींसे और कोई काल आकर तुम्हें जकड़कर बाँध नहीं रक्खा है। किन्तु तुम अपने-आप ही आ-आकर भव-बन्धनोंमें खुशीसे बन्धे-बन्धाये अरुझे पड़े हो। तुम्हारी ही खुशीका कैद है। जैसे नलिनी= बाँसकी नलिका, चोंगादिके बनाये चरखीयन्त्रको लाल फलके लोभ-लालचवश सूवा= शुकपक्षी, तोता स्वयं आकर पकड़ लेता है। चरखी घूम जाती है, तो भी तोता उसे छोड़कर उड़ नहीं जाता है; किन्तु और जोरोंसे पकड़कर लटकते हुए पङ्ख फड़फड़ाता रहता है। उसे भ्रमसे दृढ़ हो जाता है कि अब मुझे दूसरेने पकड़ लिया, छूट नहीं सकता। इतनेमें बहेलिया (व्याधा) आकर उसे फँसाके पिञ्जड़ेमें डालकर ले जता है। इस तरह भ्रमसे सुग्गा नलिकामें अपने-आप बँधा गया। तद्वत्—

अध्यासी जीव स्वयं आकर मनुष्य-जन्म लेता है। माता-पिता, स्त्री-पुत्र परिवारादि, एवं पालतू पशु, जमीन-जायदाद, घर-बार इत्यादिको ही खाश अपना सुखदायी समझकर, उन सबकी मोह-ममता, देह, विषयादिकी आसक्ति, लोभ-लालचादि सर्व विकारोंमें लिप्त होकर नरजीव आप ही बन्धायमान् हो गया है। नलिनी=कमलवत् कोमलाङ्गी स्त्रीविषयादिमें भ्रम-भूलसे सूवा=संसारी जीव स्वयं फँसा-फँसाया पड़ा है। बिना पारख उससे छूट नहीं पाता। आवागमनके चक्रमें ही पड़ रहा है।

अथवा वैसे ही वाणीजालमें भी अबोध नरजीव स्वयमेव बन्धा पड़ा है। नलिनी= विष्णुकी नाभिसे कमल उत्पन्न हुआ, उस कमलके फूलमें ब्रह्मा प्रकट हुआ, वेद ईश्वरके श्वाससे निकलके ब्रह्माके चार मुखसे विस्तार हुआ, अतः वेद-प्रमाण ही सत्य है— इत्यादि मिथ्या भ्रम-कल्पनाको दृढ़ किया। सूवा=अबोध जीव नलिनीवत् वेद-शास्त्रादि वाणी-कल्पनाको पकड़ करके खूब भ्रमिक हुआ। मोक्ष-फलकी प्राप्ति तो नहीं हुई, दूर ही छूट गई। जगत् ब्रह्मका स्वरूप एक मानकर आप ही भ्रमसे ब्रह्म बना। उसीमें आप बँध गया और बहुत-से लोग अनेक मत-मतान्तर विस्तार करके उनकी मिथ्या मानन्दी, नाना वाणीके धोखेमें भी अपने-आप ही जा-जाकर बद्ध हो गये। पारखबोध उन किसीको नहीं हुआ। "श्रुति पुराण बहु कथ्यो उपाई। छुटै न अधिक-अधिक अरुझाई ॥तु०॥" इसीसे भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनामें सब बँध गये। पारखी साधु-गुरुसे पारखबोध प्राप्त करनेवाले जिज्ञासुजन उन जालोंसे छूटे और छूटेंगे।

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७४ ॥ ❀ ॥

ऐसो योगिया बदकर्मी । जाके गमन अकाश न धरणी ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'ऐसो योगिया बदकर्मी ।' योगिया कहिये मन, योगिया कहिये ब्रह्म; बदकर्मी = अकर्मी; जो संसारमें 'सूत्र-मणि न्याय' होयके नाना कुकर्म करते हैं । ये अर्थ ॥ १ ॥

हाथ न वाके पाँव न वाके । रूप न वाके रेखा ॥२॥
बिना हाट हटवाई लावै । करे बयाई लेखा ॥३॥

हाथ, पाँव, रूप, रेखा तो उसकी कछु कहते ही नहीं औ उसीका ही सम्पूर्ण जगत् स्वपना बोलते हैं औ सम्पूर्ण उसीका ही कर्त्तव्य बोलते हैं । तो भला ! रूप--रेखा बिना कहीं स्वप्न होता है ? औ अवयव बिना कहीं कर्त्तव्य होता है ? तो वेदकी कहानी असम्भव मिथ्या धोखा । ये अर्थ ॥२॥ 'बिना हाट हटवाई लावै ।' बजार तो है नहीं, बैपार लगाया । 'करे बयाई लेखा ।' बयाई कहिये दलाली । सो ब्रह्मादिक जो बड़े-बड़े दलाल हुए, सो सबहीं नाना प्रकारकी कल्पना करके दलाली करने लगे औ नाना तर्क करके अनुमानका लेखा बाँधने लगे, कर्म, योग, ज्ञानका उपदेश करने लगे । ये अर्थ ॥ ३ ॥

कर्म न वाके धर्म न वाके । योग न वाके युक्ती ॥४॥
सीङ्गी पात्र किछुउ नहिं वाके । काहेक माँगे भुक्ती ? ॥५॥

कर्म, धर्म, योग, युक्ति, सीङ्गी, पात्र उसके कछु नहीं; तो सम्पूर्ण निराकार । भला ब्रह्म तो निराबेब है, फिर भीख क्यों माँगता है ? औ भोग क्यों भोगता है ? भला ! आप तो सच्चिदानन्द स्वरूप पूर्ण हैं । तो ये संसारमें बदकर्म जो होता है, सो कौन करता है ? भला ! रूप-रेखा जिसका नहीं, तासों रचना कैसे होयगी ? रूप--रेखा बिना स्फुरण तो भी कहाँते होयगा ? भला ! सच्चिदानन्दका निश्चय करनेवाला कौन है ? ऐसा न जानकर नाहक मिथ्या धोखेमें भूले औ नाना प्रकारके मिथ्या गलबे उठाये । ये अर्थ ॥ ४ ॥ ५ ॥

कवित्तः—जैसा कोई दलाल आये, गुदरीमें ठाढ़ भये । कहत एक अद्भुत

अतः खानि--वाणीको परखकर उन जालोंसे अलग हो जाओ ! पारख-स्वरूपमें स्थिर हो रहो ! मनुष्य-जीवनका यही मुख्य कार्य है ॥ १० ॥ ७३ ॥

वस्तु, बिक्रीको आई है ॥ शशात्रृङ्गको कमान, वर्णतको ताहि जान ? जो कोई पावत सोई, जानत अधिकाई है ॥ धाय--धाय जीव सब, दलाल से पूछन लागे । बड़े हमारे भाग जागे, जो आप ऐसी गाई है ॥ ऐसा ब्रह्मका बिचार, गुरुवनने कीन्ह पुकार । रूप-रेख नहीं तासों, रचना उपजाई है ॥ १ ॥ ५ ॥

मैं तोहिं जाना तैं मोहि जाना । मैं तोहिं माँहि समाना ॥६॥
उत्पति-परलय एकहु न होते । तब कहु कौन ब्रह्मको ध्याना ? ॥७॥

ब्रह्ममुखः—'मैं तोहिं जाना तैं मोहिं जाना । मैं तोहिं माँहि समाना ॥' मैं कहिये ब्रह्म सबको जाननेवाला; औ मेरेको कोई नहीं जान सकता—जो पै ब्रह्मा, विष्णु, महेशहु होय । ऐसा सर्वसाक्षी मैं तत्पदार्थ । तैं कहिये त्वंपद जीव; जो कछु जानता नहीं, महा अविद्याके वश अज्ञान । तो मेरा ज्ञान रूप । तेरा अज्ञान रूप । सो मैं ज्ञान जब तेरे हृदयमें प्रकाश हुआ, तब तैंने मोंको जाना कि चराचर सम्पूर्णमें बाहर-भीतर एक ब्रह्म है—'घट-जल न्याय ।' जो घट-जल न्याय' हुआ, तो घड़ा जलमें औ जल घड़ेमें । 'मैं तोहिं माँहिं समाना' । ये अर्थ ॥६॥ 'उत्पति-परलय एकहु न होते ।' घटमें जो जल बाहर, सो जल भीतर । तो अब उत्पत्ति-परलय किसका होगा ? कछु दो नहीं, जो एकका प्रलय होय औ एककी उत्पत्ति होय । तो एक अद्वैतमें न उत्पत्ति है, न प्रलय है । एक जाति-विजाति--स्वगत भेद रहित । ये अर्थ । तब कौन ब्रह्मको ध्याना ? जो घड़ा पानीमें, औ पानी घड़ेमें निश्चय हुआ, तो जाति कहिये जो घड़ेमेंका पानी औ बाहरका पानी, विजाति कहिये घड़ा, स्वगत भेद कहिये मिलाप; ये त्रिपुटी कहिये । जब पानी निश्चय हुआ, तो घट नास्ति औ पानी तो एक । तब ध्याता, ध्यान, ध्येय—ये कहाँ हैं ? कौन ब्रह्मको ध्याना ? । ये अर्थ ॥ ७ ॥

योगी आन एक ठाढ़ कियो है । राम रहा भरपूरी ! ॥८॥
औषध मूल किछउ नहिं वाके । राम सजीवन मूरी ॥९॥

गुरुमुखः—'योगी आन एक ठाढ़ कियो है । राम रहा भरपूरी ॥' इस प्रकारसे योगी लोगोंने औ ज्ञानी लोगोंने एक अनुमान आनिके ठाढ़ किया है कि राम = जो सबमें रमा है, सोई आत्मा पूर्ण है । ये अर्थ ॥८॥ 'औषध मूल किछउ नहिं वाके । राम सजीवन मूरी ॥' कि सब जीवनका अधिष्ठान एक राम है—'जल-

तरङ्ग न्याय ।' इसमें न कछु रोग है, न कछु औषध है । गुरु–शिष्य ये सम्पूर्ण कल्पना । एक आत्मा सत्य । ये अर्थ ॥ ९ ॥

नटवट बाजा पेखनी पेखे । बाजीगर की बाजी ॥१०॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! भई सो राज बिराजी ॥११॥७४॥

'नटवट बाजा पेखनी पेखे ।' नटवट कहिये चौरासी आसन, बाजा कहिये दश नाद, पेखनी कहिये दश मुद्रा; ये सम्पूर्ण बाजीगर = गुरुवा लोगोंकी बाजी है ॥१०॥ तामें फँसके 'राज–बिराजी भई ।' सच्चेसे झूठा भया, चैतन्यसे जड़ाध्यासी हुआ, जीवसे ब्रह्म भया, भूला औ मिथ्या भासमें मग्न हुआ । तू ये सबको परखके पारखपर स्थिर हो । ये अर्थ ॥ ११ ॥ ७४ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७५ ॥ ❀ ॥

ऐसो भरम बिगुर्चन भारी ॥१॥
वेद–कितेब दीन औ दोज़ख । को पुरुषा ? को नारी ? ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'ऐसो भरम बिगुर्चन भारी ।' इस प्रकारसे नाना प्रकारके भ्रमचक्रमें परा ॥१॥ वेद–किताब, दीन औ दोज़ख, माया औ ब्रह्म; ऐसी नाना प्रकारकी कल्पनामें फँसा । ये अर्थ ॥ २ ॥

माटीका घट साज बनाया । नादे बिन्द समाना ॥३॥
घट बिनसे क्या नाम धरहुगे ? अहमक खोज भुलाना ॥४॥

'माटीका घट साज बनाया ।' नाद = सूक्ष्म, औ बिन्दु = स्थूल; सो स्थूलमें सूक्ष्म समाया, सो नाना प्रकारका नाम धराया ॥२॥ 'फिर घट बिनसे क्या नाम धरोगे ?' अरे अहमक ! खोज करके देख ! भूला क्यों फिरता है ? ॥४॥

एकै त्वचा हाड़ मल मूत्रा । एक रुधिर एक गूदा ॥५॥
एक बून्दसे सृष्टि रची है । को ब्राह्मण ? को शूद्रा ? ॥६॥

एक त्वचा, हाड़, मल, मूत्र, एक गुदा, एक रुधिर ॥५॥ एक बून्दसे सृष्टि सब रची है । इसमें कौन ब्राह्मण ? औ कौन शूद्र ? मिथ्या सब कल्पना । ये अर्थ ॥ ६ ॥

रजोगुण ब्रह्मा तमोगुण शङ्कर । सतोगुणी हरि होई ॥७॥

कहहिं कबीर राम रमि रहिये ! हिन्दू तुरुक न कोई ॥८॥७५॥

रजोगुण = काम, सोई ब्रह्मा; तमोगुण = क्रोध, सोई शङ्कर; सतोगुण = मोह, सोई विष्णु ॥७॥ गुरु कहते हैं कि ये सब मिथ्या धोखा औ 'एक राम' ऐसा जो असिपद अनुमान किया है, तासो रमि रहिये = न्यारा हो रहिये पारख-पर । औ हिन्दू—तुरुक दोनों कल्पना । ये अर्थ ॥ ८ ॥ ७५ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७६ ॥ ❀ ॥

आपन पौ आपहि बिसर्‌यो ! ॥१॥
जैसे श्वान काँच मन्दिरमें । भरमित भूसि मर्‌यो ॥२॥
ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल । प्रतिमा देखि पर्‌यो ॥३॥
वैसे ही गज फटिक शिलामें । दशनन आनि अर्‌यो ॥४॥
मर्कट मूठि स्वाद नहिं बिहुरे । घर-घर रटत फिर्‌यो ॥५॥
कहहिं कबीर नलिनीके सुवना ! तोहि कौने पकर्‌यो ? ॥६॥७६॥

टीका गुरुमुखः—'आपन पौ आप ही बिसरयो ।' ये शब्दका अर्थ स्पष्ट है । काँच मन्दिर = वेद बानी । श्वान = पण्डित । ये अर्थ ॥७६॥ *

---

* टिप्पणीः—शब्द ७६ का पूरा भाष्य—

॥ * ॥ शब्द ॥ ७६ ॥ * ॥

आपन पौ आप ही बिसरयो ! ॥१॥

भाष्यः गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे सन्तो ! जैसे एक राजा तीव्र नशा खा-पीके अपने श्रेष्ठ राजपदको भूल गया था । जब उसने अपनेको दरिद्र मानकर भीख माँगने लगा, तब मन्त्रियोंने पकड़कर दवा कराके उसका नशा उतारा । नशा उतरनेपर वह आप ही आश्चर्यचकित हो गया । तबसे उसने नशेका परित्याग करके अपना सुधार किया । तद्वत् चैतन्य जीव सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्तम, स्वयं सत्य सर्वोपरि पारख-स्वरूप अक्षय, अखण्ड महान् पदसे संयुक्त है । परन्तु देहके सम्बन्धमें जड़ाध्यासी, बद्ध, संसारासक्त होनेसे इसने स्वयं ही दो प्रकारका नशा ग्रहण कर लिया है । एक तो स्त्री-भोगादि पञ्च विषयोंका नशा तेज शराबवत् खूब अधिक पी लिया है, जिससे पशुवत् कर्मोंमें दिन-रात लिप्त पड़ा हुआ है । इसे और कुछ नहीं सूझता है । उसीमें सारा जीवन बिता रहा है । और दूसरा नशा अनेक मत-मतान्तरोंकी जटिल वाणी-कल्पनाके भाँगवत् लाकर घोटमघोट करके खूब मनका पेट भर-भरके पी रहा है । इस कारणसे दीन-हीन, मलिन, भिक्षुक भ्रमिक, अज्ञानी बन-बनकर उन्हीं नशेमें जहाँ-तहाँ मारा-मारा फिरते भीख माँग रहा है । अब जिसको पारखी सद्गुरुसे पारखका

बोध होगा, उसीको वे दोहरे नशे उतरकर यथार्थ पारख-स्वरूपका ज्ञान होगा। वही जीवन सुधारकर कल्याण-पथमें लगेगा। इस प्रकार अपने पौ = पद, स्वरूप, हंस-भूमिका रूप मूलको एवं पाँसेके जीतके एक दाव समान परम पुरुषार्थको समेत् नरजीवने अपने-आप ही बिसर्‍यो = भूल गया। "लख चौरासी फेरिके, पौ पर अटका आय॥ अबकी पाँसा ना पड़े, फिर चौरासी जाय॥" तुलसी०॥ क्यों भूल गया ? पारखबोध न होनेसे भूल गया। बोध क्यों नहीं हुआ ? खानि-वाणीमें आसक्त रहनेसे पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग-विचार नहीं करता, इसीसे बोध नहीं हुआ। बोध कैसे होगा ? जब सत्सङ्गमें लगकर विवेक-विचार करेगा, तब बोध होगा। तबतक अबोधदशामें भूला पड़ा है। अनादि-प्रवाहसे स्थूल-सूक्ष्म देहका सम्बन्ध कर्म-अध्यास लगा होनेसे नरजीवको भ्रम-भूल होती है। इसीसे अपने पदको आप ही भूला है। पारख-प्रकाश होनेसे वह भूल-भ्रमका बन्धन छूट जाता है। अतः अभी वर्तमानकी नरदेहमें पूर्ण परीक्षा करके सब भ्रम-भूलसे रहित पारखस्वरूपमें स्थिर जीवन्मुक्त हो जाओ ! यही मुख्य कर्त्तव्य है॥ १॥

जैसे श्वान काँच मन्दिरमें। भरमित भूसि मर्‍यो ॥२॥

जैसे एक श्वान = कुत्ता, काँच = शीशा, दर्पण चारों ओर जड़ित, वैसे काँचके मन्दिरमें जाकर घुस गया। वहाँपर उसे सब ओर अपनी ही परछाँईं (प्रतिबिम्ब) दिखाई दी। तब उसी प्रतिबिम्बको 'और बहुत-से कुत्ते आकर अपनेको घेर रहे हैं, यहाँ अपना पराक्रम दिखाये बिना बचाव नहीं होगा'—ऐसा समझकर वह भ्रमित हो धोखेसे जोर-जोरसे भूँक-भूँककर अति भयसे बेचैन हो अन्तमें वहीं मर गया। वैसा उस कुत्तेने अपने पदको आप ही भूला। तद्वत्—

श्वान = वाणी-कल्पनाको सूँघते फिरनेवाले पण्डित लोग जाकर काँच मन्दिर = वेदादि वाणी, जो कच्ची सब ओर कल्पनासे वेष्ठित है, उसमें मन लगाकर घुस गये, वेदादि वाणी पढ़ करके अपने मनमें दृढ़ कर लिये। वेदको ईश्वरीय ज्ञान, अपौरुषेय, अकाट्य प्रमाण मानकर उसमें लिखी वाणीको दृढ़ करके कोई एक परमेश्वर परब्रह्म जगत्का कर्त्ता है, उसीकी उपासनासे स्वर्गादि सुख, चार फलकी प्राप्ति होती है, वेदविहित कर्म न करनेसे नरक-यातना होती है, स्वर्ग-नरक, देवी-देवता, भूत-प्रेतादि, ऋद्धि-सिद्धि, शाप-अनुग्रह इत्यादि वेद-शास्त्रोक्त कथन सब सत्य हैं, अतएव हे सनातनी हिन्दू जनो ! ब्राह्मण और वेद-शास्त्रोंका कहा प्रमाण मानो ! अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म-कर्मको पालन करके चलो ! उसीसे तुम्हें भुक्ति और मुक्ति दोनों मिल जायेंगी—इत्यादि कथन भूसि = जो चोकर, भूसावत् असार है, सो वर्णन कर-करके, वही पढ़-पढ़ाकर अनेक मानन्दीके मिथ्यारूप देख-दिखा करके भूक-भूककर भ्रमिक जड़ाध्यासी हो आयु बिताकर मर गये। उसी तरह अब भी भ्रमकी वाणी बोल-बोलकर गुरुवा लोग मरते जा रहे हैं। वैसा जीवने अपने पदको आप ही भूला।

अथवा श्वान = विषयी नरजीव मनुष्य हो करके भी कुत्तेवत् विषयासक्त मलिन हो रहा है। काँच मन्दिर = अतीव कच्चा, क्षणभंगुर स्त्रीके शरीरकी बाहरी शोभा, सुन्द-

रता, चमक-दमक देखकर, उसीको सुखरूप दृढ़ निश्चय करके, उसीके भीतर भोग-विलासमें लवलीन हो पुरुष प्रविष्ट हो गया। जब अनेक सन्तानोंको अपने समान आकृतिवाले देखा, तो उनमें भूल गया। और हानि-लाभ, सुख-दुःख, जीवन-मरण, यश-अपयश, बनना-बिगड़ना इत्यादि कार्य होते देखकर सबकी मति भ्रमित हो गई। तब बहुतेरे हाय! हाय! करते-करते, रोते-धोते, गाली बकते-झकते, हँसते-गाते, वैसा ही भूँकते-भूँकते=बोलते-बोलते पशुवत् मरे वा मर रहे हैं। और कितनेक लोग 'ये सब करने-करानेवाला कोई एक ईश्वर, भगवान्, देवी-देवतादिकी शक्ति है' ऐसा मानकर भ्रम-धोखेसे उसी कल्पनाका पुकारा, विनय-स्तुति, प्रार्थना करते-करते भूसी कूटनेके समान व्यर्थ आयु बिताकर जड़ाध्यासमें बँधे हुए मर गये और भी वैसे ही मरते जा रहे हैं। बिना विचार स्त्री, पुत्र, परिवार, शरीरादिकी चिन्तासे रो-रोकर, अनेक बातें कह-कहकर भ्रम-धोखेमें पड़ करके मरे और मरते हैं। इस प्रकार अपने-आप निजपदको भूले हैं। वैसे भूल-भ्रमसे कोई बिरले ही सत्सङ्गी जीव छूटेंगे। सो छूट जाना चाहिये! ॥ २ ॥

ज्यों केहरि बपु निरखि कूप जल। प्रतिमा देखि परयो ॥३॥

ज्यों=जैसा, केहरि=सिंह अपना ही, बपु=शरीरकी परछाँई, कूप जल=कूएके स्वच्छ जलमें पड़ी हुई, निरखि=देखकर भ्रम-धोखेसे उसी प्रतिमा=प्रतिबिम्बको दूसरा सिंह समझकर भ्रमकी दृष्टिसे कूदकर मर गया।

अर्थात् एक समय एक जङ्गली सिंह जङ्गलमें बने कुएके ऊपर आ पहुँचा। उसके नीचे जल स्वच्छ था। सिंहने कुएमें झाँका तो उसे अपनी ही देहका प्रतिबिम्ब नीचे दीख पड़ा। भ्रमसे उसको दूसरा सिंह अपना बैरी समझकर, उससे युद्ध करनेके लिए नीचे कूदा, तब वह कुएके जलमें डूबकर मर गया। तद्वत्—

केहरि=शक्तिमान् नरजीव योगी, ज्ञानी, भक्त इत्यादि सिंहवत् होकर संसाररूप जङ्गलमें फिरने लगे। पहले मस्तकरूप कूपमें बिन्दुरूप जलके साथ नादका घर्षण होनेसे सूक्ष्म देहका भास, तत्त्वोंका प्रकाश दीख पड़ा। उसी प्रतिबिम्बरूप ज्योति-प्रकाशकी प्रतिमाको दूसरा परमेश्वरका दर्शन हुआ समझकर भ्रमिक योगी लोग गाफिलीमें कूदकर जड़ाध्यासी होकर मरे। दूसरे वेद--वेदान्तरूप कूपमें वाणी-कल्पनारूप जलको देखा, तो अपनी ही मानन्दीरूप मनकी छाया एक अद्वैत ब्रह्म सर्वत्र व्यापक प्रतिमारूप मानन्दी दीख पड़ी। भ्रमसे उसको दूसरा कोई सर्वशक्तिमान्, अपना अधिष्ठान समझकर ज्ञानी-विज्ञानी लोग धोखेमें कूदकर जड़ाध्यासी हो मर गये। तीसरे भक्तिमार्ग-प्रतिपादक शास्त्रोंके कूपमें मनगढ़न्त भावनादिरूप वाणीके जलको देखा, तो अपनी ही मन-कल्पनाकी मिथ्या प्रतिमा एवं बाहर अनेक रूपमें जड़ अष्ट प्रतिमा देखनेमें आई। भ्रम भूलसे उसे परमेश्वर-भगवान्का साक्षात् दर्शन हुआ समझकर सर्व उपासक भक्त लोग उसीमें कूद पड़े, जड़ाध्यासी बद्ध हो मर गये। चौथे कर्मकाण्डके कूपजलमें झाँकने--झँकानेवाले पण्डित-पुरोहित लोग स्वच्छ तेल--घी भरे पात्रमें छाया-दर्शन करते--कराते हैं। उसमें अपनी प्रतिमा साफ दीखनेपर ग्रह-शान्ति हो गई, सब अनिष्ट मिट गया कहते हैं। वैसे भ्रम--कल्प-

नामें कूदकर बद्ध हो-होकर मर रहे हैं। पाँचवें मानन्दीके कूपजलमें प्रातः-सायं सूर्यके प्रकाशरूप धूपमें खड़े हो, निर्निमेष एकटक थोड़ी देर देखकर, वैसे ही पलक न झपकाके स्वच्छ आकाशमें देखनेसे अपनी देहकी पूरी आकृति रेखाचित्रवत् दीखती है। उसे छायापुरुषका दर्शन कहते हैं। यदि छायापुरुषमें शिरोभाग नहीं दिखेगा तो छः महीनेमें मृत्यु होगी, ऐसी कल्पना कर रक्खे हैं। उसी भ्रम-धोखेमें कूदकर छायादर्शन करने-करानेवाले भी मरे। इस प्रकार वाणी जालके विभागमें पाँच प्रकारसे कूपजलमें झाँक-झाँककर भ्रम-भूलसे धोखेमें पड़े बहुतेरे नरजीव जड़ाध्यासी होकर मरे, आवागमन-चक्रमें पड़े और भी पड़ रहे हैं। कोई-कोई पारखी सन्त उस धोखेसे छूटे और छूटते हैं। जिज्ञासुको उससे अलग रहना चाहिये!

अथवा केहरि=संसारी गृहस्थ पुरुष लोग, बपु=स्थूल देहकी मोह-ममता, आसक्तिसे स्त्रीकी देहको देखकर, उसमें मोहित, आकर्षित हो गये, तब स्त्रीकी योनिरूप कूपमें जलरूप रज-वीर्यके पतनसे होनेवाले सुख, विषयानन्दको देखकर वा जानकर, और उससे उत्पन्न हुए पुत्र-पुत्री आदि सजीव प्रतिमामय प्रतिरूपको देखकर ऐसे आसक्त बुद्धिहीन हो गये कि उसी भोगमें कूदकर सारा जीवन बिताके मर गये। पुनः चौरासी-चक्रमें पड़े वा पड़ते जा रहे हैं।

मैं जीव सत्य हूँ, कूपजलमें दृश्य छाया झूठी है, ऐसा स्मरण न होनेसे ही भ्रमसे स्वयं कुएमें कूदके सिंह मरा। वैसे ही अपने अविनाशी सत्य स्वरूपका यथार्थ ज्ञान, परीक्षा-दृष्टि, विवेक, वैराग्य और पारखी सन्तोंका सत्सङ्ग, रहनि-रहस्यकी धारणा न होनेसे खानि-वाणी जालोंकी कुसङ्गतिमें पड़कर, भ्रम-भूल धोखेसे सब जीव बद्ध हो जड़ाध्यासवश आवागमनमें पड़े और भी पड़ते जा रहे हैं। उसे परखकर त्यागके अपने जीवनका कल्याण करना चाहिये!॥ ३॥

वैसे ही गज फटिक शिलामें। दशनन आनि अरयो ॥४॥

उसी प्रकारसे ही गज=मदोन्मत्त हाथीने भी जाकर पहाड़ोंकी खदानमें रहे हुए स्फटिकशिला, जो दर्पणवत् स्वच्छ-साफ होता है, उसमें अपना प्रतिबिम्ब देखा। भ्रमसे उस छायाको दूसरा शत्रु हाथी समझकर क्रोधान्ध हो, उससे लड़नेके लिए अपने दोनों दशनन=बड़े-बड़े दाँतोंको बहुत जोरोंसे आनि=ले आकर उसी स्फटिक शिलामें अर्‍यो= अड़ाया, गड़ाया, धसाया, टकराया। जब पत्थरकी सन्धिमें दाँत फँस गया, तब उसे निकाल नहीं सका। अन्तमें हाथी वहीं मर गया। तद्वत्—

प्रथम; गज=ब्रह्मज्ञानीने स्फटिकशिलारूप वेदान्तकी वाणी-कल्पनामें भ्रमसे अपना भास देखकर जीव-भावको विनाश करनेके लिए मन-मानन्दीरूप दाँत लाकर उसमें ऐसा फँसाया कि दशों दिशामें परिपूर्ण व्यापक एक अद्वैत ब्रह्म ही सत्य है, जगत् द्वैत तीनकालमें कहीं है ही नहीं। गुरु-शिष्य, बन्ध-मुक्ति आदि कहीं कुछ भी नहीं है। "एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति" "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" इत्यादि कथन करके मदोन्मत्त होकर उसी भ्रम-धोखेमें वे लोग खूब फँस गये, जड़ाध्यासी होकर मर गये और भी मरते जा रहे हैं।

बी० त्रि०; ४२—

दूसरे; गज=योगी लोग हुए। वे स्फटिकशिलावत् योगशास्त्रसे प्रतिपादित षट्चक्र-भेदनादि क्रियासे ब्रह्माण्डकी भ्रमरगुफामें पहुँचे, तो वहाँपर एक शुभ्र ज्योति-प्रकाश देखे। उसे अपना मालिक परमात्मा समझकर, उसमें मिले रहनेके लिए भीतर-के दाँतरूप मन सहित सूक्ष्म देहके दशों भाग वहीं ब्रह्माण्डमें ले जाकर फँसाके टिका दिये। इसी तरह जड़ाध्यासको दृढ़ करके भ्रममें मर गये।

तीसरे; गज=उपासक लोग हुए। वे स्फटिकशिलासे निर्मित इष्ट देवताकी जड़प्रतिमा-पूजामें लवलीन हुए, मानसिक ध्यानमें कल्पित इष्टरूपको देखकर उसीमें मिल जानेके लिए अति विह्वल हो-होकर भाव-विभोर होने लगे, उसीमें दाँतरूप दशों इन्द्रियाँ और मनादि चतुष्टय भी लाकर खूब धँसाकर फँसा दिये, भ्रमिक जड़ाध्यासी हो मर गये।

चौथे; गज=विद्यामदमें मदान्ध पण्डित लोग वाणीकी अनुमान--कल्पनारूप स्फटिकशिलामें पहुँचकर बिना देखे ही स्वर्ग-नरकादि लोक-लोकान्तरोंका वर्णन अतिशय बढ़ा-चढ़ाके करने लगे, चारों वेद, छहों शास्त्रोंका दाँत लाकर उसीमें फँसा दिये, उसी तरह अपनी जीविका चलाकर बद्ध होके मर गये।

पञ्चम; गज=विषयोन्मत्त भोगी संसारी लोग स्फटिकशिलारूप स्त्रीके गौर चमक-दमकयुक्त स्थूल शरीर, वस्त्राभूषणसे सजे सुन्दर रूपको देखकर मोहित हो गये। कामासक्ति जगी, तब दशों इन्द्रियोंका दाँत लाकर स्त्रीभोगमें फँसाये। अब उनका मन उससे निकल नहीं सकता। फिर कभी कोई अन्य पुरुषको उस स्त्रीसे बात करते हुए देखकर, उसे शत्रु समझ करके क्रोधसे जाकर लड़न्त--भिड़न्तकर मार डालता है, या तो कभी स्वयं ही मर जाता है, वा मारा जाता है। वैसा आप ही विनाश कर लेता है।

इस प्रकार वाणीभागमें चार तरहके और खानिभागमें एक, सब पाँच प्रकारके गजवत् बने हुए नरजीव स्वयमेव भूलते--भटकते हुए जा--जाकर मोटी-झीनी मानन्दी-रूप स्फटिकशिलामें भ्रमसे छाया, माया, काया आदि आभास देखकर, धोखेसे उसे मिटाने वा मिल जानेके लिए तन- मनादिका दाँत उसीकी सन्धिमें फँसा देते हैं। फिर शक्तिहीन होकर उससे निकल नहीं पाते हैं। जड़ाध्यासी बद्ध हो अन्तमें मरकर चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं। संसारमें ऐसा ही कार्य हो रहा है। कोई जिज्ञासु नरजीव ही पारखबोध प्राप्त करके बचते हैं। सो इस बातको समझकर अपना बचाव करो!॥ ४॥

मर्कट मूठि स्वाद नहिं बिहुरे। घर--घर रटत फिरयो ॥५॥

कलन्दरने छोटे मुँहवाली हण्डीमें कुछ चने रखकर, हण्डीको जमीनमें मजबूत बैठा दिया, कुछ चने बाहरभी छिड़क दिये। बाहरके चने खाकर फिरमर्कट=बन्दरने हण्डीमें हाथ डाला, मुट्ठी भरके चने निकालने लगा। हण्डीका मुँह छोटा होनेसे मुट्ठी नहीं निकली। अब बन्दर चनेका स्वाद भी नहिं बिहुरे=नहीं छोड़ सकता और मुट्ठी भी नहीं निकलती। उसी प्रयत्नमें वह एकाग्र हुआ। तभी कलन्दर आके उसे पकड़कर

फँसाके ले गया, सोंटेसे पीट-पीटकर उसे नाचने सिखाया। इस तरह मदारीके साथमें फँसा हुआ बन्दर घर-घरमें रटत=बार-बार नाच दिखाकर घूमता फिरा, अन्ततक नहीं छूटा। तद्वत्—

ज्ञानी, योगी, भक्त, पण्डितादि साधक लोग मर्कटवत् बने हैं। उनको फँसानेवाले बड़े-बड़े गुरुवा सिद्ध लोग कलन्दरके समान हैं। ज्ञान, योग, भक्ति और कर्मकाण्डकी हण्डीमें चनेरूप ज्ञानानन्द, योगानन्द, प्रेमानन्द, कर्मानन्दको रोचक बनाकर रख दिये हैं। तब साधकोंने अधिक आनन्द-प्राप्तिके लिए मन-मानन्दीकी बड़ी-सी मुट्ठी भर ली; किन्तु वह किसी प्रकार एकदम नहीं निकलता, नहीं मिलता है। उन आनन्दोंका थोड़ा-सा स्वाद उनको जो लग गया है, सो स्वादको भी वे छोड़ नहीं सकते। इस कारण जीतेतक भी मदारीरूप गुरुवा लोगोंके साथ बँधे हुए घरोंघरमें उसी मिथ्या कल्पनाका रटन करते हुए भ्रम-धोखेकी साधनाओंमें नाचते फिरते हैं। पुनः शरीर छूटनेपर भी जड़ाध्यासमें बँधे हुए वासनानुसार चौरासी योनियोंके घर-घर=घट-घटमें देह धारण-कर अनेक स्वाँग दिखाके नाचते, घूमते फिरे वा फिरते रहेंगे। बिना पारख आवागमन-से जीव कभी नहीं छूटेंगे।

अथवा संसारमें विषयलोलुप कामासक्त विषयी लोग बन्दरवत् बने हैं। भोगोंमें लिप्त स्त्री ही मदारी बनी है, घर-गृहस्थीकी हण्डीमें विषयभोगरूप चने रख दी है। थोड़ा-सा भोगोंका स्वाद मिलनेपर पुरुषोंने तन-मनसे लिप्ततारूप बड़ी मुट्ठी बाँधकर गृहस्थीमें जीवको फँसा डाला है। अब न तो वह मुट्ठी ही छूटती है, न स्वाद ही छोड़ा जाता है। विषय-भोगोंका स्वाद भी नहीं छोड़ पाते और मनकी आसक्तिकी मुट्ठी भी नहीं छूटती। इसी दोहरे कारणसे विषयी जीव घर-गृहस्थीमें खूब फँसे पड़े हैं। उनको मदारी स्त्री और भी पकड़-पकड़कर अच्छी तरह फँसाती जा रही है। अनेक ताड़ना, रोना, दुःख दिखाना, हाव-भाव-कटाक्षादिके सोटोंसे पीटकर धनादि कमाने आदिके जगत्धन्धामें नाचना सिखाती है। स्त्री-लम्पट हो उसके सिखाये अनुसार रटना करके घरोंघरमें जाकर काम-धाम करते, कमाई करके लाते, स्त्रीके साथ जीवनभर घूमते फिर रहे हैं। अन्तमें विषयाध्यासवश पशु, पक्षी, उष्मजादि योनियोंके घर-घरमें भी बार-बार विषय भोगते, दण्ड पाते फिरते हैं। बिना विचार नरजीव अपने-आप भव-बन्धनोंमें बँधे पड़े हैं। पारखी साधु-गुरुका सत्सङ्ग करके अपने जीवको उक्त खानि-वाणीके भव-बन्धनोंसे छुड़ाना चाहिए! पारखपदमें स्थिर हो रहना चाहिये! ॥ ५ ॥

कहहिं कबीर नलिनी के सुवना। तोहि कौने पकरचो ? ॥ ६ ॥ ७६ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—नलिकामें फँसे हे सुग्गे! तुझे किसने पकड़ा है? नलिकाने तुझे पकड़ा है कि तूने ही नलिकाको भ्रमकी दृढ़तासे पकड़ रक्खा है? सो इसका ठीकसे विचार करके नलिकाको छोड़कर शीघ्र मुक्त हो जा! शुकपक्षीके माध्यमसे वा रूपक सम्बोधनद्वारा यहाँ जिज्ञासु नरजीवोंको उपदेश दिया गया है।

शब्द-७३ की चौपाई १० में कहे अनुसार बहेलिया लोग बाँसकी नलिकाका

चरखी-यन्त्र बनाकर, ऊपर पासमें कोई लाल फल और नीचे जलका पात्र रख देते हैं। शुकपक्षी फलके लोभ-लालचसे आकर नलिकाको मजबूत पकड़ लेता है, तभी चरखी घूम जानेसे शिर नीचे लटक जाता है। उसे भ्रम दृढ़ हो जाता है कि नलिकाने मुझे पकड़ लिया, गिरनेपर नीचे जलमें डूब मरूँगा। इसी भ्रमसे और जोरोंसे पकड़-कर पंख फड़फड़ाता रहता है। इतनेमें बहेलिया आकर उसे फँसाके पिञ्जड़ेमें डालकर ले जाता है। तद्वत्—

सुवना = अबोध नरजीवोंको फँसाकर पकड़नेके लिए बहेलियारूप गुरुवा लोग नलिकाके समान वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल इत्यादि वाणी—कल्पनाकी चरखी बनाकर उसमें ऊपर चार फल, चार मुक्ति, स्वार्गादि सुखकी रोचक वाणी फलरूपमें रख दिये। नीचे जलरूपमें भयानक वाणी—कल्पना भर दिये। उस महिमाको दूरसे ही देख-सुनकर अबोध मनुष्य खुशी—खुशीसे आये, उक्त नलिकाको मानन्दीसे दृढ़ करके पकड़ लिये, किसी एक सम्प्रदायमें भी प्रविष्ट हो गये। तभी कल्पनाकी चरखी घूम गई कि जीते ही स्वर्गादि सुख-प्राप्ति नहीं होती है, वह तो मरनेपर प्राप्त होता है। बस! कल्पनाको दृढ़तासे पकड़कर लटक गये। यदि इस मत—पन्थादिकी मानन्दीको हम छोड़ेंगे तो भवसागरमें डूब मरेंगे। पुनः यम-यातना भोगनी पड़ेगी। इत्यादि त्राससे और दृढ़ होकर भ्रम—कल्पनाको पकड़ करके धोखेमें सारा जीवन बिता रहे हैं। उनको फँसाके गुरुवा लोग यथेष्ट स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। इस प्रकार वाणी-कल्पना-को किसने पकड़ा? जीवहीने पकड़ा है। ईश्वर ब्रह्म, देवतादि एवं वेदादि आकर जीवको नहीं पकड़े हैं। किन्तु ईश्वरादिने जीवको बन्धनमें डाला है और वही छुड़ा सकता है, ऐसा भ्रमसे मानकर ईश्वरादिके आशा—भरोसा, स्तुति आदि करके धोखेमें जीव भूले पड़े हैं। उसी भ्रम-अध्यासको स्वयं पकड़कर अन्तमें आवागमन-चक्रमें भी पड़े रहते हैं। पूर्ण परीक्षा करके अब उस कल्पना, भ्रम-भूलको परित्यागकर अलग हो पारखपदमें ठहर जाओ!॥

अथवा माता—पिता एवं गुरुवा लोग बहेलियाके समान बने हैं। अबोध लड़के नवयुवक लोग सुग्गेवत् हुए हैं। नलिका-यन्त्रवत् नवयुवती स्त्रीको बनाये हैं। उसमें विषयानन्दादि अनेक सुन्दर फल लगा रक्खे हैं। गृहस्थीके बाहर जलरूप अनेक दुःखोंका वर्णन भर दिया गया है। सांसारिक सुखोपभोगके लोभ—लालचसे जब नव-युवक लोगोंने स्वयं ही प्रसन्नतासे विवाह आदि करके स्त्रीको दृढ़तासे पकड़ा, तब वह अनेक स्वाँग, नखरा प्रदर्शित करके चरखीवत् घूम गई। पुरुष अबोध होनेसे उसे खूब दृढ़तासे पकड़कर घर-गृहस्थीमें लटक गया। स्त्रीको छोड़नेसे बाहरके दुःखमें डूब जाऊँगा—ऐसा समझकर और दृढ़तासे स्त्रीको पकड़ा। फिर उसे अच्छी तरह संसारके पिञ्जड़ेमें फँसाकर माता-पितादि परिवार अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। तब भी मूर्ख यही समझता है कि मैंने खुशीसे गृहस्थीका बन्धन नहीं पकड़ा है, महामायाने ही मुझे पकड़कर संसारके बन्धनमें डाला है, अब भी वही मुझे पकड़ रही है, छोड़ नहीं रही है, मैं लाचार हूँ, वही माया समर्थ है। परन्तु विचार कीजिये—मनकी आसक्ति,

॥ ❁ ॥ शब्द ॥ ७७ ॥ ❁ ॥

आपन आश कीजे बहुतेरा । काहु न मर्म पावल हरि केरा ॥१॥
इन्द्री कहाँ करे विश्रामा ? सो कहाँ गये ? जो कहत होते रामा ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि अपने-अपने मनसे ऐसा तर्क समस्त साधु औ भेष सनकादिकने किया; परन्तु हरिका मर्म किसीने नहीं पाया । हरि कहिये जहाँ चित्त, मन, बुद्धि आदि समस्त इन्द्रियनका हरण होय, सो मिथ्या झाँई । ऐसा मर्म नहीं पाया, ताते धोखामें रहा । ये अर्थ ॥१॥ भला ! जबलग देह रही, तबलग तो इन्द्री देहमें परम विश्रामको प्राप्त भई; परन्तु जब देह छूटेगी, तब विश्राम कहाँ होयगा ? अरे ! सो कहाँ गये ? जो आप ही राम कहाये थे औ राजा दशरथके घर अवतार लिया था; सो जब तन त्यागा, तब कहाँ गये ? जो जीयत ही मुक्त कहायके असिपदमें समाये थे, सो मरे उपरान्त जगत्अधिष्ठाता जगत्रूप होय रहे ॥ २ ॥

सो कहाँ गये ? जो होत सयाना ? होय मृतक वह पदहिं समाना ॥३॥
रामानन्द रामरस माते । कहहिं कबीर हम कहिकहि थाके॥४॥७७॥

अरे ! देख विचार करके कि बड़े-बड़े सयाने = ज्ञानी पुरुष जो भये, सो कहाँ गये ? सब मर-मरके फिर गर्भवासमें आये । ये अर्थ ॥३॥ 'रामानन्द रामरस माते ।' विषयानन्द, जगदानन्द, योगानन्द, गन्धर्वानन्द, देवानन्द, त्रिगुणानन्द; ये सम्पूर्ण आनन्द जो आनन्दमें लय हुए—सो रामानन्द, सर्वउत्कृष्ट

विषय-वासना, अज्ञानको तो जीवने ही पकड़ रक्खा है । और कौन महामाया है, जो जीवको पकड़ेगी । माता और स्त्री, ये चेतन जीव होनेसे अपने स्वार्थके लिए कुछ पकड़ी हैं । परन्तु जिसको दृढ़ वैराग्य और बोध होता है, उसे कोई माया पकड़ नहीं सकती । कोई रोक-टोक उसको लग नहीं सकता । यह प्रत्यक्ष है । इसलिए अबोध आसक्ति, सुखमानन्दीवश जीव ही माया, काया, स्त्री, विषय, परिवारादि समस्त नलिकाको भ्रमसे पकड़ करके संसार-बन्धनमें लटक रहा है । और किसीने जबरन जीवको पकड़कर बाँध नहीं रक्खा है । जीव अपने-आप भ्रम-धोखेसे भव-बन्धनमें बन्धा पड़ा है । इस प्रकार नरजीवने अपने पदको आप ही कैसे भूला है ? जैसे—१. श्वान, २. केहरि, ३. गज, ४. मर्कट, और ५. सुवनाके समान मिथ्या भ्रम-धोखेसे ही भूला है । अतः हे नरजीवो ! पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्ग-विचारद्वारा पारखबोध प्राप्त करके ऊपर कही समस्त खानि-वाणीकी मानन्दीको परखकर सर्वथा परित्याग करो ! निज सत्य पारखस्वरूपमें स्थिर, शान्त हो निर्बन्ध-मुक्त हो जाओ ! ॥६॥७६॥

आनन्द । ये अर्थ । सो आनन्दके रसमें माते सब जीव, परन्तु ये न जाना कि ये आनन्द मेरेसे हैं औ मैं कैसे आनन्द होता हौं ? ऐसा न समझा, सो अध्यास-के वश होयके नाना दुःख भोगते हैं । मैं कहि-कहि थका, परन्तु संसारका धोखा कछु छूटता नहीं । ये अर्थ ॥४॥७७॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७८ ॥ ❀ ॥

अब हम जानिया हो ! हरिबाजी को खेल ॥१॥
डङ्क बजाय देखाय तमाशा । बहुरी लेत सकेल ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हरि कहिये माया, माया कहिये काया; बाजी कहिये कल्पना । सो सम्पूर्ण वेद, पुराण, शास्त्र हमने जाना कि कायासे कल्पना हुई, औ सो बाजीमें सब जीव अरुझे । ये अर्थ । हरि कहिये गुरुवा लोग, बाजी कहिये नाना बानी, जामें सब जीव दृढ़ होय रहे हैं ॥१॥ सो 'डङ्क बजाय देखाय तमाशा । बहुरी लेत सकेल' । ये अर्थ ॥ २ ॥

हरि बाजी सुर नर मुनि जहँड़े । माया चाटक लाया ॥३॥
घरमें डारि सकल भरमाया । हृदया ज्ञान न आया ॥४॥

इस कल्पनामें सुर, नर, मुनि सब जहँड़े, खराब हुए औ भूले । उस बानीने सबको चाटक लगाया । किसीको स्वर्ग-प्राप्तिका चाटक लगाया औ किसीको सिद्धि-प्राप्तिका चाटक लगाया औ किसीको देवता पञ्चायतन-प्राप्तिका चाटक लगाया औ किसीको जीव-ईश्वर एकताका चाटक लगाया ॥३॥ औ किसीको आत्मस्थिति आनन्दका चाटक लगायके अपने घरमें डारके सबको भरमाया । परन्तु किसीके हृदयमें भी समझ परी नहीं ये कल्पना । ये अर्थ ॥४॥

बाजी झूठ बाजीगर साँचा । साधुन की मति ऐसी ॥५॥
कहहिं कबीर जिन जैसी समुझी । ताकी गति भइ तैसी ॥६॥७८॥

ता उपरान्त सब सन्त-महन्त जो महानुभाव भये, तिन्ह निश्चय किया कि बाजी झूठी, बाजीगर साँचा । जगत् मिथ्या, ब्रह्म सत्य । सम्पूर्ण बोलनेमें जो बानी आई सो सर्व मिथ्या, औ 'नेति-नेति' प्रमाणसे जो अनिर्वचनीय सिद्ध हुआ, सोई ब्रह्म सत्य । जो देखनेमें संसार बाजी आई—सो मिथ्या, औ अदेख बाजीगर सचा । इस प्रकारसे हार-हारके साधुनकी मति ऐसी हुई ॥५॥ परन्तु

गुरु कहते हैं कि देखो–ये सब मिथ्या धोखेमें फँसे। जिसने जैसा समझा, ताकी गति तैसी भई। परन्तु अनुमान–कल्पना करके अनुमान–कल्पना ही हो गये। पुनि गर्भवासको प्राप्त भये। ये अर्थ ॥ ६ ॥ ७८ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ७९ ॥ ❀ ॥

कहहु हो अम्मर! कासो लागा? चेतनहारा चेत सुभागा! ॥१॥
अम्मर मध्ये दीसे तारा। एक चेता एक चेतवनहारा ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे अम्मर! हे जीव! तू किससे लगा है? अरे! अपनी चैतन्यता तूने हारिके अचेत होय रहा है, ब्रह्म होय रहा है। अरे सुभागा! तेरा धर्म नहीं, जो जड़ होना औ गाफिल होना औ अन्धाधुन्धमें पड़ना औ अपने–आपुहीको हारना। सो तू परखके सब धोखेको छोड़। ये अर्थ ॥१॥ 'अम्मर मध्ये दीसे तारा।' अम्मर कहिये जीवको, तारा कहिये ब्रह्मको, ब्रह्म कहिये भ्रमको। सो जीवमें एक भ्रम खड़ा हुआ कि हमारा कर्त्ता कोई दूसरा है। सोई कल्पना सबको ग्रहण हुई औ ताकी खोज करने लगे। जो होय तो पाइये! नहीं सो कहाँसे मिलेगा? खोजनेके हेत नाना प्रकारके कर्म किया—योग, यज्ञ, जप, तप आदि। जब न देखा, तब कल्पना सहित आप ही ब्रह्म कहाया। श्रवण-मनन-निदिध्यासन करके साक्षात्कार जाना कि जो ब्रह्म वेदने ठहराया, सो मैं ही हूँ और दूसरा कोई नहीं। इस प्रकारसे 'एक चेता, एक चेतवनहारा।' एक चेता, आप सहविकल्प समाधिमें ठहरा। फिर दूसरा निर्विकल्प समाधि खोजके चेतन हारके गुमसुम हुआ ॥ २ ॥

जो खोजो सो उहवाँ नाहीं। सो तो आहि अमरपद माँही ॥३॥
कहहिं कबीर पद बूझै सोई। मुख हृदया जाके एकै होई॥४॥७९॥

परन्तु गुरु कहते हैं कि 'जो खोजते हो, सो उहवाँ नाहीं।' जो ब्रह्म तुम खोजते हो, सो कछु वहाँ सहविकल्प समाधिमें भी नहीं औ निर्विकल्प समाधिमें भी नहीं। सो तो जीवका धोखा जीवमें है ॥३॥ गुरु कहते हैं कि देखो! सबने जो ब्रह्मपद निश्चय किया, सो कहाँ है? उसको निश्चय करनेवाला जीव तो है। निश्चयकर्त्ता सो अस्ति, औ जो निश्चय होता है सो नास्ति। परन्तु यह धोखाका पद तब ही बूझनेमें आवेगा—जो मुखसे पारख जैसा कहता है, तैसा जब जीवमें प्रकाश होगा तब। ये अर्थ ॥ ४ ॥ ७९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८० ॥ ❀ ॥

बन्दे ! करिले आपु निबेरा ! ॥१॥

आपु जियत लखु आपु ठौर करु ! मुये कहाँ घर तेरा ? ॥२॥

टीका गुरुमुखः—अर्थ स्पष्ट है । गुरु कहते हैं कि नाना प्रकारके जालमें जो तू बन्धमान होय रहा है, सो परखके अपना निरुवार करले । ये अर्थ ॥१॥ आपु जियत लखु और आप ठौर करु; नहीं तो मरे उपरान्त तेरा घर कहाँ है ? ॥२॥

यह औसर नहिं चेतहु प्राणी । अन्त कोई नहिं तेरा ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! कठिन कालको घेरा ॥४॥८०॥

ऐसा मानुषतन पायके जो तू नहीं चेतनेका, तो फिर अन्तमें तेरा साथी कोई नहीं ॥३॥ अब तूने ब्रह्म–आत्मा औ ईश्वर जो कल्पि-कल्पिके मान रक्खा है, सो कहाँ हैं ? ये सम्पूर्ण नास्ति कल्पना, सोई कालका घेरा । ताके वश होयके तू बहुत दुःख भोगेगा । इसवास्ते मिथ्या अध्यास छोड़के पारखमें स्थिर हो । ये अर्थ ॥ ४ ॥ ८० ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८१ ॥ ❀ ॥

ऊतो रहु ररा ममाकी भाँती हो ! सब सन्त उधारन चूनरी ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि ऊतो कहिये सनकादि, बालमीकादि ररा-ममाकी भाँतिमें रहे, ररा–ममाकी रटनामें रहे । ये अर्थ । 'सब सन्त उधारन चूनरी ।' सब सन्तनने संसारके उद्धारण हेतु एक भक्तिरूपी चूनरी बीनी, सो बड़े-बड़े समर्थनने पहिरी । 'प्रेम पाटका चोलना, पहिर कबीरू नाच ।' अहो सन्तो ! देखो ! ये जीवने आपै तो 'राम' ऐसा दो अक्षर कल्पा औ अस्ति-भाति-प्रियरूप आत्मा—ये सिद्ध किया । सो तुम परखो कि कल्पना किसने किया औ अस्ति-भाति-प्रियरूप कहिके आत्मा कौन होता है ? तो वही होता है । ये अर्थ ॥ १ ॥

बालमीक बन बोइया । चुनि लीन्हा शुकदेव ॥२॥
कर्म बिनौरा होइ रहा हो ! सूत काते जैदेव ॥३॥

अस्ति कहिये स्थूल । जो नारद ऋषिने बालमीकको 'राम' ऐसा दो अक्षर सुनाया और कहा कि जबलग मैं लौटके न आऊँ, तबलग 'राम–राम' इस प्रकारसे

श्वासके सङ्ग रटा करना मक्र-तार न्याय । जैसे मकरी तारपर चढ़ती–उतरती है और तार टूटने नहीं पाता; तद्वत् तार टूटने नहीं पावे । ऐसा उपदेश किया, सो अस्ति = सत्य जानके वालमीकने निश्चय किया औ फिर तार बाँधिके रटने लगा। रटते-रटते तार जब बँधा, स्थूलका अभाव हुआ, सोई भाति = सूक्ष्म । निदिध्यास, स्तब्धता, स्थूल-सूक्ष्म दोनोंका अभाव—सोई प्रिय = कारण । अस्ति–भाति कार्य, औ प्रिय कारण । ये दोनोंका अभाव औ अपना भाव चिन्मय, सोई रूप महा-कारण । और जब चिन्मय ज्ञप्ति-वृत्तिका लय हुआ औ निर्विकल्प समाधि हुई, सोई केवल आत्मा–ऐसा जाना । सोई अनुमान लेके नाना प्रकारकी बानी कथन किया, सोई कपास बोया । औ नाना कथा–इतिहास अङ्कुर निकरिके वृक्ष बढ़ा। ये अर्थ ॥

कवित्तः---रामनाम बीज औ, इतिहास सो अङ्कुर जामें । जैसे केवलरूपसे, स्फूर्ण कहत गाई है । कथा सोई शाखा पत्र–, श्लोकनसे मूँद रही । जैसे अविद्या आय, स्वयं चेतन पर छाई है ॥ नाना दृष्टान्त सोई, फूलन सो छाय रही । कारणके बीच जैसी, सूक्ष्मता जनाई है । औ दृष्टान्त राम-कीर्ति, सोई फल आये । सगुण अवतार सर्व, स्थूलको सराही है ॥ १ ॥

इस तरहसे वाल्मीकिने वन बोया । फिर ज्ञान-कपास अन्वय-व्यतिरेक करके शुकदेवजूने चूनी ॥२॥ श्रवन–मनन करके वो बिनौरारूप हो रहे । अब वो ज्ञान-कपासका सूत = भक्ति, सो जयदेवजूने काता । ये अर्थ ॥ ९ ॥

तीन लोक ताना तनो है । ब्रह्मा विष्णु महेश ॥४॥
नाम लेत मुनि हारिया । सुरपति सकल नरेश ॥५॥

तीन लोक = ज्ञान, भक्ति औ योग–ये ताना तने ब्रह्मा, विष्णु, महेशने ॥४॥ औ नाम पाँजनी करते-करते इन्द्रादि समस्त नरेश औ मुनीश सर्व हारे । जहाँ थके, तहाँ विश्वरूप कहा । लक्ष्य करते-करते जब लक्ष्य थका, तब पित्त शिरपर चढ़ा और वायु बन्द हुआ । फिर सोई मूर्च्छा आई, ताका नाम समाधि । सोई स्वरूप कहा । अथवा कोई दृष्टिसे देखने लगा, मुद्रा किया, तब आँखिपर पित्त चढ़ा औ लाल, काला, पीला, हरा, सफेद रङ्ग नजर आया औ मग्न हुआ, तब मूर्च्छा आई । तहाँ स्वरूप बनाया औ कोई ज्ञान सुनि मग्न हुआ । ये अर्थ ॥५॥

विष्णु जिभ्या गुण गाइया । बिनु बस्तीका देश ॥६॥

सूने घरका पाहुना। तासों लाइनि हेत ॥७॥

विष्णुने कहा कि न वहाँ सूर्य, न वहाँ चन्द्र है, न वहाँ अग्नि है। इङ्गला, पिङ्गला, सुषुमना आदि जगत् जहाँ नहीं, सोई परमधाम। तो जहाँ कछु नहीं सो शून्य। ये अर्थ ॥६॥ सोई बात सुनके 'सूने घरका पाहुना हुआ।' ये जीव शून्यसे नेह लगाया औ धोखेसे नेह लगाया, जहाँ कछु नहीं। सूने घरका पहुना कहिये ब्रह्म। ये अर्थ ॥ ७ ॥

चारि वेद कैंड़ा कियो। निराकार कियो राछ ॥८॥
बिने कबीरा चूनरी। मैं नहिं बाँध लबारि ॥९॥८१॥

'चार वेद कैंड़ा कियो, निराकार कियो राछ।' चार वेद सोई काँड़ी लेके निराकारकी टेक देके गुरुवा लोग चुनरी बिनते हैं ॥८॥ धोखेका जाल बिन-बिनके सब जीवनको बाँधते हैं लवार। गुरु कहते हैं कि मैं तो किसीको नहीं बाँधता, सबको परखायके छुड़ावता हौं। ये अर्थ ॥ ९ ॥ ८१ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८२ ॥ ❀ ॥

तुम यहि विधि समुझो लोई! गोरी मुख मन्दिर बाजै ॥१॥

टीका गुरुमुखः—हे लोगो! तुम यही तरहसे समझो! जेहि तरहसे 'गोरी मुख मन्दिर बाजे।' गोरी कहिये भक्त सनकादि-नारदादि, मन्दिर कहिये ढोल; सो ये गुरुवा लोगोंके मुखसे जैसी बात निकरी, तैसी तूने समझी ॥ १ ॥

एक सर्गुण षट चक्रहि बेधे। बिना बृषभ कोल्हू माचा ॥२॥
ब्रह्महिं पकरि अग्निमा होमै। मच्छ गगन चढ़ि गाजा ॥३॥

समझके एक सगुणभक्ति करने लगा, एक षट्चक्र बेधके योग करने लगा। 'बिना वृषभ कोल्हू माचा' = बिना बैल चरखा चलने लगा। वृषभ कहिये ब्रह्मको, कोल्हू कहिये बानीको; सो ब्रह्मका तो कहूँ ठिकाना ही नहीं, औ उसकी बानी तो चली। ये अर्थ ॥२॥ 'ब्रह्महिं पकरि अग्निमा होमै। मच्छ गगन चढ़ि गाजा॥' ब्रह्म कहिये रजोगुण; सो रजोगुणको पकड़िके योगअग्निमें होमे। औ मच्छ कहिये जीवको, सो ब्रह्माण्डमें चढ़िके बोला कि मैं ब्रह्म। ये अर्थ ॥ ३ ॥

नित अमावस नित ग्रहण होई। राहु ग्रासै नित दीजै ॥४॥

सुरभी भक्षण करत वेद मुख। घन बर्सें तन छीजै ॥५॥

'नित अमावस नित ग्रहण होई। राहु ग्रासै नित दीजै ॥' खेचरीकी दृष्टि तीन—पूर्णदृष्टि पूर्णिमा, ऊर्ध्वदृष्टि प्रतिपदा = परवा, अन्तरदृष्टि अमावस। सो जब खेचरी अन्तर चढ़ी औ काली पूतरी आकाशमें बेधी, तब अन्धकार अविद्या ग्रहण होयके चेतनपर छाई। फिर बिजली-सी चमकी औ तारागणकी पंक्ति मालूम होयके चन्द्रार्क-मण्डल प्रकाशके फिर महातेज प्रकटा। ता तेजने जीवको ग्रास किया। समाधि हुई। नेत्रपर पित्त छाया। मूर्च्छामें मग्न हुआ। राहु कहिये तेज, दीजै कहिये जीव। ये अर्थ ॥ ४ ॥ 'सुरभी भक्षण करत वेद मुख। घन बर्सें तन छीजै ॥' सुरभी कहिये गैया, गैया कहिये बानी, वेदमुख कहिये ब्राह्मण, ब्राह्मण कहिये ब्रह्मवेत्ता। सो बड़े-बड़े सनकादि, याज्ञवल्क्यादि, शुकादि जो ब्रह्मवेत्ता भये, सो सबनको बानीने भक्षण किया। 'अस्ति ब्रह्म' ऐसी बानी जो उठी, ताहीने सब ज्ञानीको खाया। गुरुवा लोग घन बरसने लगे, नाना प्रकारसे दृढ़ाने लगे, तामें सब जीव छीजने लगे। ये अर्थ ॥ ५ ॥

त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बाजै। औघट अम्मर छीजै ॥६॥
पुहुमिका पनियाँ अम्मर भरिया। ई अचरज कोइ बूझै ॥७॥

'त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बाजै। औघट अम्मर छीजै ॥' जो गुरुवा लोगोंने उपदेश किया, सो सब जगत्‌में दृढ़ हुआ। त्रिकुटी कुण्डलीके भीतर दृष्टि फेरके ब्रह्माण्डमें ध्यान लगाया, तब अनहद नाद दश प्रकारका उठा। सो नौ नाद छोड़के घण्टानादमें सुरति लगी, औघटमें अम्मर जीव छीजने लगा, लय होने लगा। ये अर्थ ॥६॥ 'पुहुमिका पनिया अम्मर भरिया। ई अचरज कोइ बूझै ॥' पुहुमी कहिये अर्ध; सो अर्धकी श्वासा ऊर्ध्वमें ले जायके भरे औ अचेत होय रहे। कहते हैं कि हम ब्रह्म हुए। ये बड़ा अचरज कोई बूझै। ये अर्थ ॥ ७ ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! योगिन सिद्धि पियारी ॥८॥
सदा रहे सुख संयम अपने। वसुधा आदि कुमारी ॥९॥८२॥

गुरु कहते हैं कि सर्व मिथ्या धोखा। कहाँ है ? ये योगी लोगोंको सिद्धि बड़ी प्यारी हुई ॥८॥ इसवास्ते सदा सुख संयममें रहते हैं। बहुत खाते नहीं, बहुत पीते नहीं, बहुत बोलते नहीं, बहुत सोते नहीं, बहुत चलते नहीं। सदा सर्व-

काल नासाग्र अवलोकन करके मनको स्थिर करते हैं । वसुधा = अहुटपीठ, आदि कुमारी = तुरिया; सो तुरियामें सदा रहते हैं योगी लोग । तहाँसे सब सिद्धि पावते हैं, परन्तु देहके सङ्ग सब नाश होयगी । आगे कछु रहनेका नहीं । ताते सब मिथ्या धोखा । ये अर्थ ॥ ९ ॥ ८२ ॥

विरह अर्थः—गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'तुम यहि विधि समुझो लोई । गोरी मुख मन्दिर बाजे ॥' देखो ! जैसे गोरी कहिये स्त्री; सो स्त्रीका मुख देखके औ उसकी मीठी-मीठी बातें सुनके संसार सब भूल रहा है, लुब्ध होय रहा है । ये अर्थ ॥१॥ सगुण कहिये सुन्दरता; सो कोई सुन्दरताईमें मस्त हुए औ षट्चक्रमें बेधे । षट्चक्र कहिये दोनों नेत्र, दोनों स्तन, मुख औ भग; ये षट्चक्रमें कैसे सब बँधे ? जैसे कमलमें भँवरा बँधा । इस प्रकारसे बन्धनमें परे, और जो बिछुरे तो प्राण जाना चाहता है । इस प्रकारसे बिना बैलका कोल्हू माचा, मैथुन होने लगा । ये अर्थ ॥२॥ 'ब्रह्महिं पकरि अग्निमा होमै ।' ब्रह्म कहिये काम, ताको पकड़ जठरअग्निमें होमे । 'मच्छ गगन चढ़ि गाजा ।' जब काम खलित हुआ, तब कामके वश होयके जीव अष्टकमललग गया । फिर काम खलित हुआ तब ब्रह्माण्डपर चढ़ा ॥३॥ 'नित अमावस नित ग्रहण होई ।' इस प्रकारसे नित स्त्रीके पास आयके अन्धा होता है औ नित काम उमड़ता है औ विषय-ग्रहण नित लगता है । जैसा सूर्य तो अति प्रकाशवान् है; परन्तु जब ग्रहण लगता है तब काला हो जाता है । इस प्रकारसे जीव तो प्रकाशक चैतन्य सही; परन्तु विषयमें लपटा, तब अन्धाधुन्ध, मलिन जड़वत् नजर आता है । राहू = काम ग्रासन करता है जीवको ॥४॥ और सुरभी = स्त्री भक्षण करती है कामको । औ जैसे-जैसे कामकी वर्षा होती है, तैसा-तैसा तन छीजता है । फिर तन छीजते—छीजते एक दिन मरा तो वहीं गर्भवासमें जाता है ॥५॥ 'त्रिकुटी कुण्डल मध्ये मन्दिर बाजै ।' त्रिकुटी कुण्डल कहिये भगयन्त्र, तामें मन्दिर बाजे । जैसा जो जाग्रत् विषय देखता है औ सुनता है, सोई अध्यासका स्वप्न होता है । फिर स्वप्नको सुषुप्ति खाय लेती है । ता सुषुप्तिमें सम्पूर्ण अध्यासका बीज रहता है, तासो जागृति होती है । इस प्रकारसे जबलग स्थूल देह रहता है तबलग जो कछु विषय आदि अध्यास रहता है, सो जब स्थूल छूटता है तब अध्यासीको अध्यासरूप चोला प्राप्त होता है कण्ठमें गतागत भूमिकाके ऊपर; ताको नाम सूक्ष्म । सो चोला नौ तत्त्वका—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध

चित्त, मन, बुद्धि औ अहङ्कार; ये नौ तत्त्व कहिये । गन्ध-बुद्धि पृथ्वीका अंश, रस- मन पानीका अंश, अहङ्कार-रूप अग्निका अंश, चित्त-स्पर्श वायुका अंश, शब्द-अन्तःकरण आकाशका अंश । पाँच ज्ञानइन्द्री सहित ये लिङ्ग देह खड़ा होता है। तेही उपरान्त अन्त समयमें सुषुमना चलती है । ता सुषुमनामें सौलेष्टता भूमिका उदय होती है । सो सौलेष्टता लिङ्ग देह सहित गतागत भूमिकाको खाती है । फिर सुषुप्ति अवस्था सहित जीवको लेके सुषुमना चली जाती है । औ ता भूमिकामें स्थूल-सूक्ष्म दोनोंका बीज रहता है, सो ताको निगलके सुषुमना अन्तरालसे ले चली । जैसे गन्धको लेके वायु चली जाती है । इस प्रकारसे फिर वो गन्ध पृथ्वीमें लय होती है । इसी प्रकार जीव स्थूलमें समाता है । जैसा उस जीवमें बीज होता है, तैसी जगहमें त्रिकुटी कुण्डल मध्य मन्दिर बाजता है, अर्ध मैथुन होता है । तहाँ जायके उसकी सुषुमनामें ये सुषुमना मिलती है । फिर नाद-बिन्दु संयुक्त होयके कला गर्भमें समाती है । 'औघट अम्मर छीजै' = गर्भवासमें जीव छीजता है । भला ! ये जीवकी जाग्रत्-स्वप्न दोनों अवस्थायें लय होती हैं, तब सुषुप्तिमें कछु खबर रहती है ? जो खबर नहीं रहती, तो जो अध्यास करता है, ताहीकी प्राप्ति कैसे होती है ? । ये शङ्का । तो जैसे नाना प्रकारके बीज पृथिवीपर पड़ते हैं, परन्तु जा भूमिकाका बीज, ता भूमिकाको उड़ता जाता है, तब जामता है । नहीं तो लवङ्ग आदिका बीज कछु जामता नहीं । तैसा सुषुप्ति विषय जो जागृति-स्वप्नका बीज रहता है सो कछु मालूम नहीं रहता; परन्तु जब जामता है, तब मालूम होता है। कि जैसे सूर्यके विषय अन्धकारका अभाव; परन्तु जब रात्रि होती है, तब मालूम होता है । इस प्रकारसे 'औघट अम्मर छीजै' । ये अर्थ ॥६॥ 'पुहुमिका पनियाँ अम्मर भरिया । ई अचरज कोई बूझै ॥' पुहुमिका पनियाँ = काम, अम्मर = जीव; सो जीव काममें मिश्रित होयके गर्भमें भरा । ये आश्चर्य, जो चैतन्य होयके जड़का आश्रित हुआ । ये अर्थ ॥७॥ 'कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! योगिन सिद्धि पियारी ॥' हे सन्तो ! पारखमें कछु आवागमन नहीं ठहरता; तो सर्व मिथ्या। योगिनको सिद्धि पियारी । योगी कहिये जो काममें युक्त हैं, तिनको सिद्धि पियारी, स्त्री पियारी । ये अर्थ ॥८॥ 'सदा रहै सुख संयम अपने । वसुधा आदि कुमारी ॥' वसुधा = स्त्री, सो अपने विषयके संयममें सदा रहती है । बहुत जीवनका काम शोषण किया; परन्तु तृप्ति नहीं भई, कुवाँरी-की-कुवाँरी ही रही । ये अर्थ ॥ ९ ॥ ८२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८३ ॥ ❀ ॥

भूला बे अहमक नादाना! जिन्ह हरदम रामहिं ना जाना ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि भला ! ये संसारके जीवोंकी भक्ति देखो ! जो सब मिलि रामको खाविन्द ठहराते हैं। रामका अर्थ करते हैं कि जो सबमें रमा है सो राम। फिर यज्ञ आदिक जब करते हैं, तब वो रामको मुक्किनसे मारके चेंदा निकारते हैं, औ कोई बकरा-बकरी मारके ऐसे ही काट खाते हैं। तो देखो-इनकी अहमकताई औ नादानताई! जो सबमें रमा है सो क्या बकरेमें नहीं है? ॥ १ ॥

बरबस आनिके गाय पछारी। गरा काटि जिव आपु लिया ॥२॥
जीयत जीव मुरदा करि डारे। ताको कहत हलाल हुआ ॥३॥

औ तुर्कनका तरीका तो देखो! जो कहते हैं कि खालिक खलकमें भरा है। फिर जबरदस्ती गाय पछारी। तब क्या उसमें खालिक नहीं है? सो देखो! खालिकका गला काटके मुरदा करके खा गये, औ मुँहसे कहते हैं कि हमने हलाल किया। ये अर्थ ॥२॥ जो कहोगे कि खालिक सबमें है; तो कोई आपको आप मारता है? औ आपको आप खाता है? देखो—अहमककी बात ॥ ३ ॥

जाहि माँसको पाक कहत हो! ताकी उत्पति सुन भाई! ॥४॥
रजो-बीर्यसे माँस उपानी। सो माँस न पाकी तुम खाई! ॥५॥

अरे! जा मांसको पाक कहते हो, ताकी उत्पत्ति रज औ वीर्यसे होती है। जो कोई स्त्री रजस्वला होती है, ताके छूये स्नान करते हो। औ कुरानमें ऐसा बोलता है कि पेशाबका छीटा लगे, तो उतनी जगह काट डारना, तब पाक होता है। तो उस पेशाबकी देह, ताको मांसु तुम पीरको कैसे फातिया (नैवेद्य) देते हो? औ कैसे खाते हो?। ये अर्थ ॥ ४ ॥ ५ ॥

अपनी देखि कहत नहिं अहमक! कहत हमारे बड़न किया ॥६॥
उसकी खून तुम्हारी गर्दन। जिन्ह तुमको उपदेश दिया ॥७॥

अपनी देखी कहते नहीं औ अहमक कहते हैं कि हमारे बड़ोंने योंही किया ॥६॥ परन्तु जिनने तुमको ऐसा उपदेश दिया, तिनने आप अपना गला कटाया है। ऐसा खून उसके शिरपर चढ़ा। ये अर्थ ॥ ७ ॥

स्याही गई सफेदी आई। दिल सफेद अजहूँ न हुआ ॥८॥
रोजा बाँग निमाज क्या कीजे? हुजरे भीतर पैठि मुवा ॥९॥

अरे! स्याही गई, सफेदी आई, पर अन्तःकरण कुछ अबहीं शुद्ध हुआ नहीं। ये अर्थ ॥८॥ अरे! जो तुम रोजा, बाँग, निमाज करते हो, सो तो करते-करते मुहम्मद मर गये। उनकी स्थिति तो भई नहीं, औ तुमको क्या होगी? ॥९॥

पण्डित! वेद-पुराण पढ़ैं सब। मुसलमान कुराना ॥१०॥
कहहिंकबीरदोउगयेनर्कमें। जिन्हहरदमरामहिंनाजाना॥११॥८३॥

पण्डित वेद-पुराण पढ़ते हैं औ मुसलमान कुरान पढ़ते हैं ॥१०॥ परन्तु ऐसा-ऐसा कर्म करते हैं, इसवास्ते नर्कको प्राप्त भये। सर्व घटमें अपने जीव सरीखा जीव नहीं जाना औ अज्ञानतावश घात किया। ये अर्थ ॥ ११ ॥ ८३ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८४ ॥ ❀ ॥

काजी! तुम कौन कितेब बखानी? ॥१॥
झंखत बकत रहहु निशि-वासर। मति एकौ नहिं जानी ॥२॥
शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो! मैं न बदोंगा भाई! ॥३॥
जो खुदाय तेरि सुन्नति करतु है। आपुहि कटि क्यों न आई? ॥४॥
सुन्नति कराय तुरुक जो होना। औरतको क्या कहिये? ॥५॥
अर्ध शरीरी नारि बखानी। ताते हिन्दू रहिये! ॥६॥
पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना। मेहरी क्या पहिराया? ॥७॥
वो जन्मकी शूद्रिन परसे। तुम पाँड़े क्यों खाया? ॥८॥
हिन्दू-तुरुक कहाँ ते आया? किन्ह यह राह चलाया? ॥९॥
दिलमें खोजि देखु खोजादे। बिहिस्त कहाँ ते आया? ॥१०॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! जोर करतु हैं भाई! ॥११॥
कबिरन ओट रामकी पकरी। अन्त चलै पछताई ॥१२॥८४॥

टीका गुरुमुखः—अर्थ स्पष्ट है। "कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! जोर करतु हैं भाई! ॥ कबिरन ओट रामकी पकरी। अन्त चलै पछताई ॥" योग, यज्ञ,

जप, तप, जाति, कुल, वर्ण, आश्रम सर्व मिथ्या । विचारमें कुछ ठहरता नहीं। परन्तु 'जोर करतु हैं भाई !' जबरदस्ती करके ठहराते हैं बिना विचारसे भाई ! ॥१॥ कबिरन कहिये जीव; सो जीवोंने आसरा रामका पकड़ा । सो नास्ति धोखा कबहूँ अस्ति हुआ है ! । ये अर्थ ॥ १२ ॥ ८४ ॥ *

---

* टिप्पणीः—शब्द ८४ का पूरा भाष्य—

॥ * ॥ शब्द ॥ ८४ ॥ * ॥

काजी ! तुम कौन कितेब बखानी ! ॥१॥

भाष्य; गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे काजी ! तुम लोग मुसलमान-धर्मके न्यायाधीश बने हो। इसलिए मैं तुम लोगोंसे पूछता हूँ कि कहो—यह तुम लोगोंने कौन सा कितेब=धर्मपुस्तकरूप कुरानका वर्णन किया है ? आसमानका कितेब है कि जमीनका कितेब है ? खुदाई कितेब है कि तुम्हारे मनका जुदा ही कितेब है ? सो कहो—तुमने कौन कितेब कहा है ? क्योंकि मनमाने उटपटाङ्ग झूठी बातें बताना, गप्प हाँकना, नियम-विरुद्ध उलटी चाल चलना-चलाना, अधर्मका काम करना-कराना इत्यादि बात तुम कहते, करते-कराते हो । अब कहो—यह कौन-सा कितेबका वर्णन है ?

"काजी सो जो काज करावै । नहिं अकाज सो राजी ॥ ११ ॥
जो अकाज की राह चलावै । सो काजी नहिं पाजी ॥ १२ ॥"

॥ ग्यारह शब्दके शब्द-४ ॥

अपने स्वार्थ साधनेके वास्ते कुरान बनानेवालेने भी वैसी ही विचित्र विपरीत बातें लिख रक्खी है। उसका अर्थ करनेवाले काजी लोग भी अपने मतलबकी ही मन-मानी बात सुनाते हैं। इसलिए सारे मुसलमान लोग महाअज्ञानतासे मिथ्या भ्रम-धोखेमें पड़े हैं। कोई बिरले ही सत्य बातको समझेंगे ॥ १ ॥

झंखत बकत रहहु निशि-बासर । मति एकौ नहिं जानी ॥ २ ॥

हे काजी लोगो ! तुम इधर-उधर झंखत=झाँकते, खीजते, झीखते, बकते-झखते हुए बेढङ्ग कार्य करते रहते हो ! इसी तरह निशि-बासर=रात-दिन व्यर्थके काममें बिता रहे हो। मति=शुद्धबुद्धि, गुरुबुद्धि, हितकारी मनुष्यबुद्धिसे तो जड़-चैतन्य, सारासार, बन्धन-मुक्ति इत्यादिमेंसे परमार्थकी एक बात भी नहीं जानते हो। पशुबुद्धिसे मूड़-पेल करके झूठी बातको जबरन मनाते और मानते हो। फिर कहो-तुमने यह कौन-से नये कितेबकी बात बखान की है ? सुमति, सुगति, सुकर्म, सुचाल, सुमार्ग, सुधर्म इत्यादिमेंसे कोई एक भी तो तुमने नहीं जाना। फिर क्या 'हम बड़े काजी हैं' ऐसा घमण्ड करके दिन-रात बकते-झखते रहते हो ? इस तरह तुम ही धोखेमें बन्धे पड़े हो। फिर तुमसे दूसरोंकी हानिके सिवाय क्या भला होगा ? अतः अब भी सचेत होकर अपनी बुद्धि एवं कर्मका सुधार करो ! ॥ २ ॥

शक्ति अनुमाने सुन्नति करतु हो ! मैं न बदोंगा भाई ! ॥ ३ ॥

हे काजी ! एवं सब मुसलमानो ! इस्लाम बनकर शक्ति=कुरानकी कल्पित वाणीका दबाव, जोर, मुहम्मद पैगम्बरके बल एवं उनकी बीबी (स्त्री) की प्रचण्ड शक्ति-रूप आज्ञासे प्रचलित रीति-रस्मको ही भ्रम-अनुमानसे 'खुदाकी शक्तिसे उतरा हुआ कुरानका वचन सच्चा है' ऐसा समझकर धोखेमें पड़के तुम सब लोग अपनी और अपने सब शिशु पुत्रोंकी भी जन्मसे आठवें दिनमें सुन्नति=लिङ्गके अगले हिस्सेकी त्वचा काट देनेका रस्म पूरा करते हो, जिसे 'सुन्नत वा खतना' करनेका रस्म अदा किया कहते हो। इस तरह अपनेको खुदाकी ओरसे सच्चा मुसलमान बना हुआ समझते हो। किन्तु हे भाई ! इस तरहकी झूठी बातको मैं तो कभी न बदोंगा=सच्चा नहीं कहूँगा। क्योंकि वह कर्म प्रत्यक्ष ही खराब और झूठा, वाहियातका ही है।

कहा जाता है—अपनी स्त्रीसे बाजी वा शर्तमें हार जानेपर स्त्रीकी ही आज्ञारूप प्रेरणासे सर्वप्रथम अपना स्वयं सुन्नत करके मुहम्मदने खतना करानेका उक्त रीति-रस्म जारी किया। उसी रीतिपर मुहम्मदके प्रमुख साथी - पहलेके चार खलीफे चले। उन सबने खतना कराया। तबसे यह मुसलमानी मजहबका खास अङ्ग होता चला आ रहा है। मुसलमान लोग जन्मसे आठवें दिन बचपनमें ही सब बच्चोंका सुन्नत करा देते हैं, जिससे बच्चे व्यर्थका कष्ट भोगते हैं। कहा है:—

"कबीर सुन्नत मुसलमान की। हुकुम राँड़के होय ॥
मानी हुकुम हरम की। इमान इलाही खोय ॥ २२६ ॥"

(इसबारेमें आया दृष्टान्त 'कबीर परिचय' की उक्त साखी-२२६ की टीकामें विस्तारसे एवं साखी-२३३ तक वहीं और भी कहा है; चाहे देख लीजिए !)

इस प्रकार स्त्रीरूप मायाशक्तिकी वा कुरानकी वाणीकी अनुमान-कल्पनासे सुन्नति करते और कराते हो. यही रिवाज सब मुसलमानोंमें अन्धाधुन्ध चला रक्खे हो। हे भाई ! उसे मैं तो खुदाके हुक्मसे हुआ—ऐसा भी नहीं कहूँगा और सच्ची अच्छी चाल है—ऐसा भी नहीं कहूँगा। हाँ ! वह चाल बुरी, खराब, पूर्ण झूठी, धोखा है, ऐसा तो जरूर कहूँगा ॥३॥ क्योंकि इसका कारण सुनो !—

जो खुदाय तेरि सुन्नति करतु है। आपुहि कटि क्यों न आई ? ॥ ४ ॥

जो यदि तुम्हारी मिथ्या मानन्दीके अनुसार खुदा ही कुरानसे तुम्हें सुन्नत वा खतना करने-करानेकी आज्ञा देता है, खुदाकी आज्ञासे ही तुम सुन्नत करते हो, अथवा खुदा ही तुम्हारा सुन्नत करता है वा कराता है, तब कहो तो भला ! बचपनमें सुन्नति करने-करानेका क्या काम ? जब माताके गर्भमें बच्चेका शरीर बनता है, तब भीतर ही लिङ्गकी खाल=चमड़ीको खुदा स्वयं ही क्यों नहीं काट देता है ? फिर लिङ्गमें चमड़ी लगाकर ही खुदा क्यों भेजता है ? बिना चमड़ीका ही लिङ्ग क्यों नहीं बना देता है ? जब बाहर कटाना पड़ता है, तब भीतर उसे बनानेका क्या काम ? गर्भमें ही अपने-आप उतनी चमड़ी कटकर, बिना खलड़ीके कटी-कटाई तैयार बनकर क्यों न आया ? यदि वैसा होता, तब खुदाकी ओरसे सुन्नत हुआ, ऐसा माना जाता और फिर छोटे बच्चेको भी जख्म, पीड़ा न होता। जब वैसा नहीं होता है, तब सुन्नत करना-कराना, यह खुदाकी ओरसे कतई नहीं है। तुम्हारी ही अज्ञानता वा अज्ञानी अगुवे गुरुवा

लोगोंकी ओरसे है, ऐसा यथार्थ जानकर उस भ्रम-धोखेसे अलग हो जाओ ! ॥ ४ ॥

सुन्नति कराय तुरुक जो होना । औरत को क्या कहिये ? ॥ ५ ॥

यदि बचपनमें ही लिङ्गइन्द्रियके अग्रभागकी त्वचा कटा देनारूप सुन्नत करा करके ही तुरुक=पक्का-सच्चा मुसलमान हो जाता है, वैसा न करनेसे नहीं होता है, ऐसा कहते हो, यही तुम्हारा सिद्धान्त है, जो तुम्हारे मतमें वैसा सुन्नत कराके ही तुरुक होना सिद्ध होता है तो सुनो ! तुम्हारी औरत=स्त्री एवं माताएँ, लड़कियाँ, जो घरमें हैं, फिर उनको क्या कहना ? क्योंकि उनके योनि-स्थानसे तो कोई चमड़ी कटाके भी सुन्नत नहीं करते हो। वह तो अन्ततक बिना सुन्नतकी ही रहती है। तुम्हारी माता, स्त्री, पुत्री आदि सब औरतोंका तो कभी सुन्नत भी नहीं हुआ, न कभी होता है। ऐसी हालतमें उन औरतोंको क्या कहना ? हिन्दू कहना कि मुसलमान कहना ? तुम्हारी माताका सुन्नत नहीं हुआ, फिर तुम्हारा हुआ तो क्या हुआ ? इस कारण सुन्नत करके ही पक्का तुरुक होता है, यह कथन भी तुम्हारा सिद्ध नहीं हुआ, झूठा ठहरा। कहिये तो भला ! औरतके बारेमें क्या कहते हो ? ॥ ५ ॥

अर्ध शरीरी नारि बखानी । ताते हिन्दू रहिये ! ॥ ६ ॥

जन-समाजमें स्त्रीका आधा हिस्सा वा आधा भाग सर्व कार्यमें बटा रहता है। स्त्री-पुरुषके संयोगसे रज-वीर्यका पूरा भाग मिलकर ही स्थूल देह भी बनती है। इसीसे सब लोग विवाहिता स्त्रीको पुरुषकी अर्द्धाङ्गिनी, अर्द्धशरीरी, बायाँभाग कहते हैं। वैसा ही शास्त्रोंमें भी वर्णन किया है। सब शुभ कार्य गृहस्थ स्त्री—पुरुष साथमें रहकर ही करते हैं। ऐसी ही पद्धति चली आ रही है। इन सब कारणोंसे और ऊपर कहे अनुसार तुम्हारी मातादि औरतोंका सुन्नत न होनेसे, उनके द्वारा निर्मित तुम्हारा पूरा शरीर है, इसलिए सब प्रकार तात्त्विक-दृष्टिसे तुम हिन्दू ही रह गये। अब चाहे सुन्नत करो वा न करो, हिन्दूसे पृथक् तो तुम कभी हो नहीं सकते हो। क्योंकि हिन्दू-वत् ही तुम्हारा जन्म हुआ, सर्वाङ्ग भी वैसा ही है। फिर बीचमें थोड़ा-सा सुन्नत करके भी तुम तुरुक कैसे हो सकते हो ? पुनः हिन्दुस्तानमें जन्मे, यहीं बढ़े, खाये, पीये, यहीं घर-गृहस्थी किये, जवान और बूढ़े हुए, अन्तमें यहीं मर गये। इस तरह तुम सब लोग तो हिन्दू-के-हिन्दू ही रह गये। जो तुर्कदेशमें रहता है सो तुरुक होगा, और यहाँ रहनेवाले तो यहींके होंगे (इसबारेमें रमैनी-६२ की चौ० ४ का भाष्य भी देख लीजिये !) इसलिए मिथ्या मानन्दी, झूठा झगड़ा छोड़कर शान्तिसे मिलजुलकर सुखी रहो ! सत्सङ्गमें लगकर अपना सुधार एवं उद्धार करो ! ॥ ६ ॥

पहिरि जनेउ जो ब्राह्मण होना । मेहरी क्या पहिराया ? ॥ ७ ॥

वैसे ही इधर हिन्दुओंमें मुख्यतया ब्राह्मण लोग यज्ञोपवीत=जनेऊधारी होते हैं। जनेऊका और ब्राह्मणत्त्वका उनको बड़ा अभिमान रहता है। शूद्रोंको जनेऊ पहिरनेका अधिकार नहीं है, ऐसा कहते हैं। अतः उनको नीच ठहराते हैं। अब उनसे पूछते हैं-हे ब्राह्मणो ! यदि तुम्हारे कथनानुसार यज्ञोपवीतरूप सूत्र वा तागारूप जनेऊको गलेमें पहनकर, उसे धारण करके इतने ही मात्रसे जो तुम ब्राह्मण होना, उच्च, श्रेष्ठ होना सिद्ध

करते हो, यही मानते, कहते हो, तब यह बतलाओ कि तुम्हारी मेहरी = धर्मपत्नीको एवं माता-बहनादि अन्य स्त्रियोंको, जो विवाहिता हैं, उन सबको भी क्या तुमने पहनाया है ? उनके गलेमें तुम कौन-सा जनेऊ पहनाये हो ? सो तो बताओ ! तुम्हारी माता बिना जनेऊकी रही, फिर तुम पुत्रने जनेऊ पहन लिया तो क्या विशेषता हुई ? यदि जनेऊ पहनकर ही ब्राह्मण होता है, जनेऊ न पहिरनेवाला शूद्र होता है, तो तुम्हारी स्त्री और माताएँ जो हैं, जिनके गलेमें जनेऊ नहीं है, आदि-से-अन्ततक भी उनके गलेमें जनेऊ नहीं रहता है; फिर वे क्या हुईं ? ब्राह्मण कैसे ठहरीं ? अतएव जनेऊ पहनके भी तुम ब्राह्मण नहीं ठहरे। (इस बारेमें और खुलासा विस्तार रमैनी-६२ की चौ० १ से ३ तकके भाष्यमें कहा है, देख लीजिये !) शम, दम, तप, शौच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य; इन नौगुण सम्पन्नको शास्त्रोंमें सच्चा ब्राह्मण कहा है। फिर चाहे कोई उनको धारण करले। अतः जनेऊमात्र पहनकर कोई ब्राह्मण नहीं ठहरता। क्योंकि उनके घरमें ही उनकी स्त्रियाँ जनेऊ नहीं पहनती हैं। अतः जनेऊका अहङ्कार करना मिथ्या है ॥ ७ ॥

वो जन्मकी शूद्रिन परसे। तुम पाँड़े क्यों खाया ! ॥ ८ ॥

वो = तुम्हारी स्त्री और माताएँ, जिनके गलेमें जनेऊ नहीं है, यज्ञोपवीत संस्कार जन्मसे ही जिनका नहीं हुआ है, वे जन्मकी शूद्राणियोंका बनाया हुआ भोजन, और जन्मकी शूद्राणी स्त्रीका परोसा हुआ भोजन फिर तुम पाँड़े = ब्राह्मण, पण्डित, श्रेष्ठ, जनेऊधारी, वेदपाठी होकर क्यों ? कैसे खा लिया ? यह तो बताओ ! जब जनेऊ पहनके ही ब्राह्मण होता है ऐसा कहते हो, तब तुम्हारी स्त्रियोंको जनेऊ क्यों नहीं पहनाया ? जनेऊ न पहननेसे तुम्हारी स्त्री तो जन्मसे ही शूद्राणी बनी रही। फिर उसके बनायी और परोसी हुई दाल, भात, साग आदिको तुमने क्यों खाया ? और कैसे खाया ? इस कारणसे जनेऊ पहनकर ब्राह्मण होता है, यह बात भी झूठी ठहरी। जिसके मनमें जो आया, सोई मिथ्या बात भ्रमसे मान लिया; बिना विचार ॥ ८ ॥

हिन्दू-तुरुक कहाँ ते आया ! किन्ह यह राह चलाया ? ॥ ९ ॥

भू-मण्डलभरमें पाँचों तत्त्व जड़ एकसमान हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागणादि भी कभी नहीं बदलते, अनादिसे वैसे ही हैं। जीवका चैतन्य-स्वरूप भी अविनाशी एकरस ही है और सब मनुष्योंके आकार-प्रकार, स्थूल देहकी बनावट भी एक-सी ही देख पड़ती है। फिर विचार करके कहो—हिन्दू = चारोंवर्णके लोग वेद, पुराण, स्मृतियोंके पक्षपाती, जो अपनेको-'भारतीय आर्योंके वंशज होनेसे हम हिन्दू हैं' ऐसा कहते हैं। और तुरुक = तुर्किस्तानके निवासी तुर्कजाति, जो रूस और अफगानिस्तानके बीचमें तुर्कोंका देश पड़ता है, सारे मुसलमान लोग कुरानके पक्षपाती बनकर 'हम तुरुक हैं' ऐसा कहते हैं। अब ये हिन्दू और तुरुक लोग आये तो कहाँसे आये ? स्त्रीके गर्भवाससे योनिद्वारा आये। क्यों आये ? पूर्वकर्मोंके फल भोगनेके लिए आये। यह हिन्दू है और यह तुरुक है, ऐसा अक्षर उनके माथेपर लिखा रहता है क्या ? नहीं। गर्भहीसे कोई बालक हिन्दू-तुरुकका अलग-अलग चिन्ह लेकर आता है क्या ? नहीं। तब फिर हिन्दू-

तुरुक शब्द और मानन्दी कहाँसे आई ? मनुष्योंकी भ्रम-कल्पनासे बाह्य देशोंकी मानन्दी लेकर यहींसे आई। न ईश्वरकी ओरसे आई, न खुदाकी ओरसे आई। निर्गुण-निराकारसे तो कुछ नहीं आया है। मनुष्योंका भ्रम अज्ञानी मनुष्योंसे ही आया है। यह बात स्वयं सिद्ध है। और फिर हिन्दू-तुरुकके, ये दोनों ओरका राह=मार्ग, मत-मजहब, सम्प्रदाय, वेद-कुरान, रीति-रिवाज एवं दोनोंमें विरुद्ध पक्षका झगड़ा भी किसने चलाया ? पारखहीन स्वार्थी पक्षपाती, अविचारी मनुष्योंने ही बनाकर चलाया है। मनुष्य बिना उसे और कौन बनायेगा ? कौन चलायेगा ? क्योंकि निराकार ईश्वर-खुदासे तो वेद-कुरानादि वाणी बनी ही नहीं है। साकार मनुष्यरूप ऋषि-मुनि, पीर-पैगम्बरोंसे ही सब वाणीग्रन्थ बने और सब उपदेश भी उन्हीं लोगोंने दिया। इसलिए इनके विरोधी, प्रतिद्वन्दी बने हुए विभिन्न विचारवाले गुरुवालोग ही ये सम्पूर्ण मार्ग बनाकर चलाये। उन्हींमें ये हिन्दू-तुरुक भेड़ियाधसानवत् अन्धाधुन्ध चलते-चलाते जा रहे हैं; बिना पारख ॥ ९ ॥

दिलमें खोजि देखु खोजादे। बिहिस्त कहाँ ते आया ? ॥ १० ॥

खोजादे=ईश्वर-खुदादिकी खोज-तलाश करनेवाले हे मनुष्यो ! तुम लोग व्यर्थ ही खोजा=हिंजड़ावत् शक्तिहीन भ्रमिक क्यों बनते हो ? विवेकदृष्टिसे देखो ! सत्सङ्गमें लगो ! पारखी सन्तोंसे सारासारको समझो ! फिर अपने ही दिल=अन्तःकरणमें विवेक-विचार करके सत्य-असत्यको छान-बीनकर हृदयमें ही अच्छी तरहसे खोज करके देखो ! चैतन्य जीवका स्वरूप ही सत्य है। ईश्वर, खुदादि मानन्दी मिथ्या है। फिर उसे बाहर कहाँ ? क्या खोजते हो ? जब ईश्वर-खुदा, देवी-देवता, हूर-फरिस्ते आदि मिथ्या कल्पना है, कोई चीज ही नहीं है, तब उनके लोक, अर्श, वास-स्थान भी सत्य कहाँसे हो सकते हैं ? इस कारण बिहिस्त=स्वर्गादि लोक, यह भी कहाँ है ? कहाँसे आया ? वहाँ कहाँ जानेकी जगह है ? कि जाओगे ? कुछ नहीं। मिथ्या धोखा है। वह भ्रम-कल्पनाकी वाणी तो भ्रमिक मनुष्योंसे ही अज्ञानी मनुष्योंमें आई और ग्रन्थोंमें एकत्र होकर रही। अब चाहे अर्शसे फर्शतक भीतर-बाहर खोज करके देखो ! बिहिस्त-दोज़ख, स्वर्ग-नरक, ईश्वर-खुदा, देवता-फरिस्ते, यमदूत-शैतान इत्यादि कहाँ हैं ? और कहाँसे आये ? तुम्हारे ही मनमें उन सबकी कल्पना बैठी है और तुम्हारे ही मनसे मुखद्वारा कानतक वाणी आया-जाया करती है। इसलिए उन मिथ्या भ्रमको परखकर परित्याग करो ! और सत्य-सार पारखस्वरूपमें स्थिति-ठहराव करो ! ॥ १० ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! जोर करतु हैं भाई ! ॥ ११ ॥

सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब कहते हैं—हे सन्तो ! तुम्हीं लोग शान्त चित्तसे सुनो और सत्य निर्णयसे यथार्थ बातको समझो-बूझो ! ये हिन्दू-मुसलमान दोनों ओरके अविचारी, हठी, शठी, पक्षपाती, अन्यायी बने लोग अपनी-अपनी खानि-वाणीका मिथ्या पक्ष पकड़कर जोर-जुल्मसे जबरदस्ती बल प्रयोग करते हैं। हे भाई ! वे तामसी लोग शान्त हो करके कुछ समझना, सुधारना, सार लेना नहीं चाहते हैं, पशुबलसे झूठाको सत्य और सत्यकी मिथ्या ठहराकर जो मनमें आया सो काम करते-कराते हैं।*

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८५ ॥ ❀ ॥

भूला लोग कहैं घर मेरा ! ॥१॥
जा घरमें तू भूला डोले। सो घर नाहीं तेरा ! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि 'भूला लोग कहैं घर मेरा।' भूला लोग—जो माटी, पानी, काष्ठ, पाषाणका घर बनाया, ताको कहते हैं कि घर मेरा ॥१॥ अरे ! जा घरमें तू भूला डोलता है सो देह भी तो तेरी है नहीं। वो भी तो पाँच तत्त्वोंकी है। उसमें तो भी तेरा क्या है ? जब देह तेरी ना ठहरी, तो देह सम्बन्धी लोग तेरे कब होंगे ? तो मिथ्या जालमें फँसा। ये अर्थ ॥२॥

---

* शासन-अधिकारादिके घमण्डसे कभी जोर--जुल्म करके जबरन कितने हिन्दुओंको मुसलमान बनाते गये, और किसी मुसलमानको हिन्दू भी बना लेते हैं। ऐसा करने--करानेको कोई ईश्वर--खुदादि तो नहीं आते हैं। ये ही अविचारी लोग जोर करते--कराते हैं। इसलिए वैसे मदान्ध उन्मत्त तामसी लोग न किसीकी अच्छी बात सुनते, न समझते ही हैं, न सुधार ही करते हैं। उनको किसीका उपदेश नहीं लगता। जिज्ञासुजनोंको ही अपना कर्त्तव्य सुधार करके हित--कल्याण करना चाहिये ! ॥ ११ ॥

कबिरन ओट रामकी पकरी। अन्त चलै पछताई ॥ १२ ॥ ८४ ॥

कबिरन=अबोध नरजीव अज्ञानतासे कहीं हिन्दू बने, कहीं मुसलमान बने, कहीं यहूदी, पारसी, ईसाई आदि और भी बहुत-सी मिथ्या मानन्दीवाले बने। तहाँ उनके भ्रमिक गुरुवा लोगोंने जैसा दृढ़ाया, वैसी ही वाणी-कल्पनाको भ्रमसे दृढ़ कर लिया। उन सब अबोध नरजीवोंने अपनी--अपनी मानन्दी अनुसार कोई एक परमात्माराम, परमेश्वर, ब्रह्म, खुदा, अल्लाह, गाड़ इत्यादिको सब जगत्‌का कर्त्ता, मालिक, सुख-दुःख-का दाता, त्राता मानकर, उसीकी ओट=आड़, आश्रय, शरण, पूर्ण आधार पकड़ लिया है। परन्तु वह तो कोई वस्तु ही नहीं है। जीवकी मिथ्या कल्पना न कभी सत्य हुई है, न होगी। सो भ्रम नास्ति धोखा है। इसलिए उस अनुमानरूप रामने उन किसीकी रक्षा, सहायता, मुक्ति कभी नहीं की, न करेगा। उसका आसरा पकड़ा हुआ भी व्यर्थ ही हुआ। देह रहेतक उन लोगोंने जीवहिंसादि पाप कर्म जो कुछ भी किये--कराये थे, वही अध्यास--वासना उनके मनमें जमा हो रही थी। वही साथमें लेकर अन्तमें मरते समय पछताई=दुःखी, व्याकुल, निराश हो तड़फनारूप वैसा पछताकर मर गये। फिर उसी अध्यासवश चारखानिकी चौरासी योनियोंमें चले गये। आवागमन-चक्रमें पड़कर वे तो अब भी दुःख भोग रहे हैं, और अब जो जीव कल्पित रामका आसरा पकड़े बैठे हैं, वे भी वैसे ही अन्तमें निराश हो पछताकर चौरासीमें दुःख भोगनेको चले जायेंगे। अतएव हे सज्जनो ! दयाधर्मको पालनकर निजचैतन्य--स्वरूपके पारख-बोधसे अपना कल्याण करो ! ॥ १२ ॥ ८४ ॥

हाथी घोड़ा बैल बाहना । संग्रह कियो घनेरा ॥३॥
बस्तीमासे दियो खदेरा । जङ्गल कियो बसेरा ॥४॥

हाथी, घोड़ा, बैल, बाहन, रथादि—ये सब स्थूलके योगसे संग्रह किया; परन्तु जब चोला छूटा, तब जहाँके तहाँ गये । तब जीवको कहाँ ठिकाना है ? बहु भ्रममें पड़ा ॥३॥ सो फिर ये घरकी फिकिर छोड़ा औ दूसरा घर बनाया ॥४॥

गाँठी बाँधि खर्च नहिं पठयो । बहुरि न कीयो फेरा ॥५॥
बीबी बाहर हरम महलमें । बीच मियाँका डेरा ॥६॥

कदहीं इस घरकी खबर भी नहीं लेता औ गाँठीमें बाँधके खर्च भी नहीं भेजता, पत्र भी नहीं भेजता। ये सब धोखेका जाल है। आखिर तू छोड़ देयगा, फिर अध्यासके वश तेरेको बड़ा दुःख होयगा । सो तू आगे ये क्यों नहीं छोड़ता ? । ये अर्थ ॥५॥ 'बीबी बाहर हरम महलमें, बीच मियाँका डेरा ।' बीबी कहिये अपनी सुरति, औ हरम कहिये साहबकी सुरति बानी; सो सब वेद–किताबकी बानी घरमें पैठी, तब अपनी सुरतिको बाहर निकारा औ ता बानीके बीच घर किया, स्थिति किया । ये अर्थ ॥ ६ ॥

नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझै । जन्म–जन्म उरझेरा ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! यह पदका करहु निबेरा ॥८॥८५॥

'नौ मन सूत अरुझि नहिं सुरझे ।' नौ मन कहिये लिङ्ग देह नौ तत्त्वोंकी, ताकी वासनामें बहुत अरुझा । झीनी मायासे कोई छूटने नहीं पाता । तीर्थ, व्रत, होम, हवन, यज्ञ, दान, पुण्य, सन्ध्या—ये बातनमें सूत = जीव अरुझा, फिर सुरझने नहीं पाया । जब-जब जन्म धारण किया, तब–तब प्रपञ्चविषयमें औ गुरुवा लोगोंके बानीविषयमें अरुझ रहा ॥७॥ सो गुरु कहते हैं कि आवागमनका कारण बानी औ विषयअध्यास है । सो ता पदका निबेरा करो औ पारखपर ठहरो । ये अर्थ ॥ ८ ॥ ८५ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८६ ॥ ❀ ॥

कबिरा ! तेरो घर कन्दला में । यह जग रहत भुलाना ॥१॥
गुरुकी कही करत नहिं कोई । अहमल महल दिवाना ॥२॥

टीका गुरुमुखः—कबिरा कहिये जीवको, कन्दला कहिये गन्दला, चहला,

कीचड़; चहला कहिये जड़–चैतन्य मिलि एक ब्रह्म, कीचड़ कहिये काम । सो हे जीव! तेरा घर ब्रह्ममें हुआ वेदके प्रमाणसे। परन्तु ब्रह्म तो देहका अनुमान। सो जब देह छूटेगी, तब देहका अनुमान कहाँ रहेगा ? वो भी जायगा । तब जीव काम कन्दलामें प्राप्त होयगा । सो हे जीव! तेरा घर बानीमें औ बानीके अध्यासमें, काममें, स्त्रीमें । ये अर्थ। हे सन्तो! ये संसार मिथ्या धोखेके भरोसे भूला रहता है ॥१॥ जो गुरुवा लोगोंने कही, सो संसारमें निश्चय भई; औ यथार्थ पारख कोई करता नहीं । 'अमहल महल दिवाना।' जो कछु महल नहीं, सो अमहल मिथ्या धोखा; तामें सब संसार दिवाना हुआ । ये अर्थ ॥ २ ॥

सकल ब्रह्ममों हंस कबीरा । कागन चोंच पसारा ॥३॥
मन्मथ कर्म धरे सब देही । नाद–बिन्द विस्तारा ॥४॥

'सकल ब्रह्ममों हंस कबीरा । कागन चोंच पसारा ॥' सकल जगत् ब्रह्म; मैं अखण्ड, अद्वैत एकरस । 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' ऐसा कहिके 'कागन चोंच पसारा। गुरुवा लोगोंने मुख पसारके कहा। ये अर्थ ॥३॥ 'मन्मथ कर्म धरे सब देही ।' देही कहिये जीवको, जो देहका रहनेवाला । मन्मथ कर्म कहिये ब्रह्मको। जो मनसे कल्पना भई कि कोई एक ब्रह्म है, सोई ब्रह्म सर्व जीवने धारण किया औ बोलने लगा—'अहं ब्रह्म ।' औ नाद-बिन्द दो प्रकारकी रचना चलाई—एक गृहस्थी बिन्दसे पैदा होने लगी औ एक विरक्त चेला-चाटी नादसे पैदा होने लगे। ये दो प्रकारका विस्तार चलाया । ये अर्थ ॥ ४ ॥

सकल कबीरा बोले बानी । पानीमें घर छाया ॥५॥
अनन्त लूट होत घट भीतर । घटका मर्म न पाया ॥६॥

'सकल कबीरा बोले बानी । पानीमें घर छाया ॥' सकल जगत् ब्रह्मरूप है, ऐसी जो बानी वेदने बोली—सर्वं खल्विदं ब्रह्म; सो बानी में उन्होंने घर छाया ॥५॥ औ अनन्त लूट घट भीतर होने लगी । अनन्त कहिये जाका अन्त नहीं । सुर, नर, मुनि किसीको प्राप्ति नहीं भई, सो मिथ्या धोखाकी घट–घटमें लूट होने लगी औ जीवनको भरमाया। ये अर्थ। परन्तु किसीने घटका मर्म पाया नहीं कि एक ब्रह्म औ आत्मा औ नाना बानी ये घटसे उठीं, फिर घट विनशे कहाँ जायँगी ? देहके सङ्ग सब विनाश होयेंगी। ये मिथ्या धोखामें मैं क्यों पड़ा हूँ ? ऐसा न जाना। ये अर्थ ॥ ६ ॥

कामिनि रूपी सकल कबीरा ! मृगा चरिन्दा होई ॥७॥
बड़-बड़ ज्ञानी मुनिवर थाके । पकरि सके नहिं कोई ॥८॥

'कामिनी रूपी सकल कबीरा । मृगा चरिन्दा होई ॥' सकल कबीरा कहिये जीवको, सो सब कामिनीरूप भये औ एक पुरुष अनुमानसे खड़ा किया–सच्चिदानन्द । ताका विरह बढ़ा कि सच्चिदानन्दका अनुभव हमको कैसे प्राप्त होयगा ? 'सो मृगा चरिन्दा होई ।' मृगा कहिये मनको, सो अब चरिन्दा हुआ कि नाना बानीमें चरने लगा । औ नाना भाव उठने लगा कि परमात्माको एक कहना तो कहाँ है ? नजर नहीं आता । औ अनेक कहिये तो नाश होता है । ऐसा जानके परम बेहाल भये कि अब परमात्माका निश्चय कैसे करना ? सो निश्चयके हेतु दिवाने भये, सो मनके पीछे लगे कि किस तरहसे इस मनको स्थिर करना ? ॥७॥ सो बड़े-बड़े ज्ञानी, मुनिजन थके; परन्तु मनको कोई भी पकड़ सका नहीं । ये अर्थ ॥८

ब्रह्मा बरुण कुबेर पुरन्दर । पीपा औ प्रहलादा ॥९॥
हरणाकुश नख वोद्र विदारा । तिन्हको काल न राखा ॥१०॥

ब्रह्मा, वरुण, कुबेर, इन्द्र, पीपा, प्रहलाद औ नरसिंह भी—येते महान् भये, परन्तु सब मनहीके रङ्गमें दिवाने भये । मन काहूसे स्थिर न हुआ । जो मनसे कल्पना किया, ताहीमें नाना प्रकारसे मन लगाया । फिर जब भावना परिपक्व हुई, तब उस मनका स्वरूप सहचैतन्य खड़ा हुआ । ताहीको भगवान् करके मानते भये । फिर उसीके रङ्गमें दिवाने हुए औ उस रूपसे सिद्धान्त पायके संसारको भ्रमाने लगे । परन्तु ये मनका स्वरूप है–ऐसा समझनेमें नहीं आया, तब मनहीकी सेवामें नाश भये । तो उनकी स्थिति काहेकी ? जब स्थिति नहीं भई तो फिर कहाँ रहेंगे ? गर्भवासको प्राप्त होयेंगे ॥९॥ प्रहलादके मनका जो रूप बना, सोई नरसिंह हिरण्यकशिपुका पेट फाड़ा औ जगत्में विख्यात हुआ । फिर कहाँ गया ? उसका मन उसीमें समाया औ उसको भी मनने रक्खा नहीं, नाश किया । ये अर्थ ॥ १० ॥

गोरख ऐसो दत्त दिगम्बर । नामदेव जैदेव दासा ॥११॥
तिनकी खबर कहत नहिं कोई । उन्ह कहाँ कियो है बासा ?॥१२॥

'गोरख ऐसो दत्त दिगम्बर । औ नामदेव, जयदेव आदि दास हुए' ॥११॥

परन्तु इनकी खबर कोई कहता नहीं कि इन सबने कहाँ बास किया ? जब चोला छूटा, तब ये कहाँ रहे ? सो इनकी खबर कोई नहीं कहता। भला ! जो कोई ऐसा कहै कि ब्रह्ममें मिले। तो ब्रह्म कहाँ है ? वो तो देह सम्बन्धी अध्यास देहके सङ्ग रह गया। अथवा कोई कहेगा कि ब्रह्म कहीं देह सम्बन्धी होता है ? वो तो देहातीत है। तो देह छोड़के कोई ब्रह्म हुआ भी नहीं औ ब्रह्म कहा भी नहीं। तो देहसंयुक्त होयके देहातीत भी बोला, तो देहका अध्यास हुआ। भला ! जो बानीके अनुमानसे ब्रह्म माना जाय, तो बानी ऐसा बोलती है कि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूप है। तो भला ! जगत्‌रूप रहा तो आवागमनमें रहा कि नहीं ? तो गर्भवासमें बासा भया। ये अर्थ ॥ १२ ॥

चौपर खेल होत घट भीतर। जन्मका पासा डारा ॥१३॥
दम–दमकी कोई खबरि न जाने। कोई कै न सकै निरुवारा ॥१४॥

'चौपर खेल होत घट भीतर। जन्मका पासा डारा ॥' चौपर कहिये चित्त, मन, बुद्धि, हङ्कार। सो नाना प्रकारकी बानी सुनके मनने सङ्कल्प किया कि भाई ! भगवत्‌गुणानुवाद सुनते जाना ! जैसे-जैसे बड़े–बड़े चलते गये, तैसे-तैसे चलना ! तब नाना इतिहास–पुराण सुना, तामें नाना प्रकारकी उपासनाका महात्म्य औ नाना प्रकारके योगका महात्म्य औ नाना कर्मका महात्म्य औ ज्ञानका महात्म्य कहीं कहता है, सो सुनके घटमें सङ्कल्प–विकल्प होने लगा।

चौपदीः—कहीं कहत विष्णुसे न, देव कोई और दूजा। जगके उद्धार हेत, लीला जिन धारी है ॥ कोई कहत शङ्करसे, भोला न और कोई। मुक्ती और सम्पतिको, दाता त्रिपुरारी है ॥ कहीं कहै उत्पत्ती स्थिती, लयको कारण है भानु। तीन लोक माँझ जान, जाकी उजियारी है ॥ कहीं तो गणेशजी की, महिमा अति देखियत। कहीं शक्ति आगे सब, देवता बिचारी है ॥ पूरण कहत देखो, बानी कृपाण पैनी। छेद जात वार-पार, जैसी कटारी है ॥ १ ॥

इस प्रकारसे नाना बानीके सङ्कल्प–विकल्प भये। फिर जो जिसे प्यारी लगी, तहाँका अनुसन्धान बाँधा चित्तने। फिर बुद्धिसे निश्चय करके उस करतूतका अभिमान किया—सो हङ्कार। फिर देवताका अभिमानी कोई, शास्त्रनका अभिमानी कोई, देहका अभिमानी कोई। ज्ञानका अभिमानी चित्त, औ उपासनाका अभिमानी बुद्धि, औ शास्त्रनका अभिमानी मन, औ देहका अभिमानी अहङ्कार।

इस प्रकारसे चौपर खेल घट भीतर होने लगा, ताते जन्मका पासा डारने लगे। जो कछु करतब करते हैं सो सब बन्धन होके जन्मको लाता है। ये अर्थ ॥१३॥ परन्तु दम-दमकी खबर कोई जानता नहीं कि हम पल-पल ध्यान करते हैं औ पल-पल स्मरण करते हैं सो किसका ? ये सम्पूर्ण हमारा बन्धन है, ऐसा निरुवार कोई पारख बिना कर नहीं सकता। ये अर्थ ॥ १४ ॥

चारि दृग महि मण्डल रच्यो है। रूम-शाम बिच डिल्ली ॥१५॥
तेहि ऊपर कछु अजब तमाशा। मारो है यम किल्ली ॥१६॥

'चारि दृग महिमण्डल रच्यो है। रूम-शाम बिच डिल्ली ॥' चार दृग कहिये चार किल्ला जीवनके बन्धन हेतु ब्रह्मादि गुरुवा लोगोंने रचा, तामें सर्व जीव कैद भये। चार दृग कहिये चार वेद; औ चार दृग कहिये त्रिकुटी, श्रीहट, गोल्हाट, औटपीठ; औ चार दृग = चार वर्ण, चार दृग = चार अवस्था, औ चार दृग = ज्ञान, योग, उपासना, कर्म। इस प्रकारसे पृथिवीपर गुरुवा लोगोंने बन्दीखाना किया। सो ताहीं बन्दीखानेमें जीव सब बन्ध भये। स्वतःप्रकाश प्रथम अनुमान किया, सो बन्धनमें परे औ ब्रह्मज्ञानी भये। दूजे दुतिया मालिक अनुमान करके दास कहाये, भक्ति कोटमें बन्ध भये। तीसरे योग बन्धनमें परे, सो योगको साधके सिद्ध कहाये, योगी कहाये। चौथे कर्मके बन्दीखानामें परे औ होम, हवन, तीर्थ, व्रत, नेम, आचार करने लगे, लोक-बासका बिचार किये। ये अर्थ। 'रूम-शाम बिच डिल्ली।' रूम कहिये पश्चिम, शाम कहिये पूरब, पश्चिम कहिये चन्द्र, पूरब कहिये सूर्य। इस प्रकारसे इङ्गला-पिङ्गला दोनोंके बीच सुषुमना ॥१५॥ तेहि सुषुमनाके ऊपर कछु अजब तमाशा। जो परमानन्द ब्रह्मकी प्राप्ति है सो अकह वस्तु, कछु कहनेमें नहीं आवती। ऐसा कहिके यम कहिये बन्धन करनेवाले गुरुवा लोगोंने किल्ली मारा ॥ १६ ॥

सकल अवतार जाके महि मण्डल। अनन्त खड़ा कर जोरे ॥१७॥
अद्बुद अगम औगाह रच्यो है। ई सब शोभा तेरे ! ॥१८॥

कि सकल अवतार जाके महिमण्डलपर भये राम-कृष्णादि, सो परमात्मा 'शिखा मध्ये व्यवस्थितः।' ताहीकी स्तुति वेद गावता है औ अनन्त ऋषि-मुनि ताहीके आगे करजोड़े खड़े हैं ॥१७॥ ऐसा कहिके समस्त जगत् फाँसेमें पड़े,

परन्तु 'ई सब शोभा तेरे ।' गुरु कहते हे कि हे जीव ! तेरे बिना कछु हुआ नहीं। अरे ! इङ्गला–पिङ्गला एक किया सो तू ही, औ सुषुमनामें लीन होयके ब्रह्माण्डमें गया सो तू ही, और कोई परमात्मा है—ऐसी कल्पना किया सो तू ही, औ सुषुमनामें आनन्द पैदा किया सो तू ही, औ आनन्दमें मग्न होयके ब्रह्म कहाया सो भी तू। धोखा उठाना औ धोखेमें मिलना, ये सब शोभा तेरे। तेरे ऊपर कोई और मालिक नहीं। ये अर्थ। तू परखके धोखा छोड़! पारख तेरा स्वरूप है। सो तू स्थिर हो ! ॥ १८ ॥

सकल कबीरा ! बोले बीरा ! अजहूँ हो हुशियारा ॥१९॥
कहहिं कबीर गुरु ! सिकली दर्पण । हरदम करहिं पुकारा ॥२०॥८६॥

'सकल कबीरा बोले बीरा ।' सकल कबीरा कहिये गुरुवा लोग, सो जो कुछ बोलते हैं सो सब धोखा। भाई हे जीव ! अब भी हुशियार होओ ! नहीं तो नाहक धोखेमें मारा जायगा। ये अर्थ ॥१९॥ अरे ! जो-जो तू मानेगा औ जो-जो तू कहेगा, सो सब तेरा अनुमान कहाँ है ? मिथ्या धोखा। हे जीव ! 'गुरु सिकली दर्पण ।' गुरु कहिये पारख, जासे सम्पूर्ण धोखा–गाफिली परखनेमें आवै औ सम्पूर्ण बन्धनसे जीव छूटे, सुखी होय, रहित होय–सोई रहित पद। ये अर्थ। सो हरदम जा घटमें पारख प्राप्त भया, ता घटसे हरदम = हरवक्त पुकारा करते हैं—जाते जीवको पारख प्राप्त होय। औ पारख तो सदा अविनाशी स्थिर पद, युग-युग भूल छुड़ाता है। ये अर्थ ॥ २० ॥ ॥ ८६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८७ ॥ ❀ ॥

कबिरा ! तेरो बन कन्दलामें । मानु अहेरा खेलै ॥१॥
बफुवारी आनन्द मृगा । रुचि–रुचि सर मेलै ॥२॥

टीका गुरुमुखः—कबीरा कहिये जीवको, बन कहिये बानोको, बन कहिये संसारको। सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तेरी बानी सब संसारसे पैदा भई। ब्रह्म, आत्मा निःअक्षर औ अनेक उपासना, वेद आदिक जेती बानी है सो सब संसारमें-से पैदा भई जीवकी कल्पनासे। और बानी कछु स्वर्गसे भी नहीं गिरी औ बानीका कुछ झाड़ भी नहीं उगा। तो तू देख—ये बानी संसारसे ही पैदा भई और संसारमें ही रही। कन्दला कहिये संसार। ये अर्थ। परन्तु वह बानीके अनुमानसे जो

माना कि कोई ब्रह्म है–'कोहं ब्रह्म,' अथवा मैं ही ब्रह्म हौं–'सोहं ब्रह्म,' या कोहं-सोहं छोड़के 'सर्वात्मा समं ब्रह्म'—सोई अध्यास शिकार खेलता है, अनुमानसे आवागमनमें डारता है। अरे! तेरी कल्पना तेरा नाश करती है। जो तू आप अपनेको कल्पिके बिसारके ब्रह्म अथवा किसीका गुलाम बनता है, ताते तेरी भूमिका तेरेसे छूट जाती है। सो तू चौरासी भ्रमता है। ताते सम्पूर्ण अध्यासको परख औ छोड़! मिथ्या धोखा। पारख तेरी भमिका है। सो ताको छोड़ा औ बहा। ये अर्थ ॥१॥ 'बफुवारी आनन्द मृगा।' बफुवारी = संसार, बफुवारी = बानी; आनन्द मृगा = मन, आनन्द मृगा = ब्रह्मज्ञानी; सो जो मन संसारमें आनन्द हो रहा है, ताको जो बानीमें आनन्द हो रहा है—सो ब्रह्मज्ञानी रुचि-रुचि शर मेलै, रुचि-रुचिके बानी दृढ़ करने लगे। ये अर्थ ॥ २ ॥

चेतत रावल पावन खेड़ा। सहजै मूल बाँधे ॥३॥
ध्यान धनुष ज्ञान बाण। जोगेश्वर साधे ॥४॥

'चेतत रावल पावन खेड़ा।' रावल कहिये जीवको; सो सुनि-सुनिके जैसा गुरुवा लोग समझाने लगे, तैसा ये जीव समझने लगा अपनी देह पावन करनेके वास्ते। ये अर्थ। सो सहजै मूलबन्ध करके ध्यान-धनुष पकड़ने लगे ॥३॥ धनुष-ध्यान कहिये खेचरी; जैसे कमानके तिल्लाको खैंचते हैं, तैसी आँखें ऊपरको खैंची॥

चौतुकः—भौंहैं कमान बीच, आँखि दोउ बान लाये। नासिका निशान देखि, ऐंच मेरे भाई!॥ कड़की कमान जैसी, बिजली-सी चमक भई। तारन सो टूटै तेज, बाद घटा छाई॥ तेजमें सुतेज देखो, कोटि भानु सम प्रकाश। बृत्ति सब थकित भई, सूक नजर आई। ताही निशान माँझ, लक्ष्य गाँसी जाय लगी। पूर्णानन्द प्रगट भयो, आपै आप जाई ॥ १ ॥

इस प्रकारसे लक्ष्य गाँसी धनुष-ध्यानमें जब लागी, तब मूर्च्छा आई। यही ब्रह्मध्यान योगेश्वर साधे। ये अर्थ ॥ ४ ॥

षट चक्र बेधि कमल बेधि। जाय उजियारी कीन्हा ॥५॥
काम क्रोध लोभ मोह। हाँकि सावज दीन्हा ॥६॥

'षटचक्र बेधि कमल बेधि। जाय उजियारी कीन्हा॥' षटचक्र कहिये मूला-धार, 'गुदाचक्र' चतुर्दल कमल; ताको बेधन किया। प्रथम गणेशक्रिया करके

गुदाको साफ किया । ता उपरान्त गुदासे पानी खैंचने लगा । जब पानी चढ़ने लगा, फिर पीछे छोड़ने लगा । ताको बस्ती क्रिया कहिये । तो बस्ती क्रिया जब पूरी भई, तब पवन चढ़ाने लगा औ गुदाचक्र बेधा । ता उपरान्त स्वाधिष्ठान-चक्र, लिङ्ग भूमि पेड़ूपर छौदल कमल, ताको बेधने लगा । सो गजक्रिया करने लगा । द्वादश अङ्गुलका गज बनाया औ लिङ्गमें चलाया । तासे लिङ्गद्वार साफ

कि … क्रिया सिद्ध
… लाया । तब
… भिस्थानमें
… लना, फिर
नि … धोतीक्रिया
सि … औ समान
दो … न, द्वादश-
दल … निकारना ।
फि … का दातुन
बन … कुञ्जलक्रिया
सि … मान तीनों-
को … ल कमल ।
ल … द्राके तरेकी
रग … इस यतनसे
जिह्वा … न करना ।
जब … विशुद्धिचक्र
बेधा … या करना ।
नाकरे … म करना ।
कण्ठ … आवे, तब

जिह्वाको ले जायके ऊर्ध्वद्वारमें लगाय देना । ऊर्ध्वद्वार बन्द करके अग्निचक्र बेधके जाय उजियारी कीन्हा ॥५॥ ब्रह्माण्डमें स्वास लय हुआ कुम्भक होयके, तब देह शून्य हो गया । काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये सब सावज हाँकि देके ब्रह्माण्ड बास किया ॥ ६ ॥

जबतक मनुज तन में रहा, तबतक बहुत संग्रह किया ॥
जब चला तन छोड़ के, कुछ ले गया ना हाथ में ॥ ३ ॥
नेकी बदी का जो रखा, सो तो बदन के सङ्ग लगा ॥
भोगना परिणाम तुमको, अवस ही त्रियताप में ॥ ४ ॥
साधून की सङ्गति करो, सब आश बासा छोड़ के ॥
भागवत अशरण शरण हैं, परख जिनके साथ में ॥ ५ ॥

॥७५॥ (राग मिश्रभैरवी गजल-ताल लावणी) भजन ॥

बाँझ सुत का बोल जो, सब जक्त में दृढ़ हो रहा ॥
निरुवार कर देखा नहीं, अनमोल हीरा खो रहा ॥टेक॥
गफलत पड़ी है जक्त में, दीदम रकम जाना नहीं ॥
बल बुद्धि अपनी खोय के, गाफिल दिवाना हो रहा ॥ १ ॥
मूल है ना वृक्ष है, नहिं डाल पत्ते फूल हैं ॥
अनुमान के अनुभव कि आशा, बद्ध जारी हो रहा ॥ २ ॥
सिद्ध साधक तपी रु मौनी, जटी नखी औ दिगम्बरी ॥
आश सबकी शून्य में, अध्यास धारी हो रहा ॥ ३ ॥
नाम बैरागी भया, औ राग तो छूटा नहीं ॥
जिस राग का त्यागन किया, सोइ राग प्राप्ती हो रहा ॥ ४ ॥
भागवत इस जक्त में, ऐसा न कोइ दयाल है ॥
जैसा गुरू कब्बीर का, उपकार भारी हो रहा ॥ ५ ॥

माना कि कोई ब्रह्म है–'कोहं ब्रह्म,' अथवा मैं ही ब्रह्म हौं–'सोहं ब्रह्म,' या कोहं-सोहं छोड़के 'सर्वात्मा समं ब्रह्म'—सोई अध्यास शिकार खेलता है, अनुमानसे आवागमनमें डारता है। अरे! तेरी कल्पना तेरा नाश करती है। जो तू आप अपनेको कल्पिके बिसारके ब्रह्म अथवा किसीका गुलाम बनता है, ताते तेरी भूमिका तेरेसे छूट जाती है। सो तू चौरासी भ्रमता है। ताते सम्पूर्ण अध्यासको

प[illegible] ो छोड़ा औ

ब[illegible] कुवारी =

ब[illegible] न संसारमें

अ[illegible] नी रुचि-

स[illegible]

चे[illegible] बाँधे ।।३।।

क्ष[illegible] साधे ।।४।।

[illegible] -सुनिके जैसा

गु[illegible] वन करनेके

व[illegible] ।।३।। धनुष-

ध[illegible] रको खैंची ।।

[illegible] मिका निशान

ढे[illegible] ई। तारन सो

टू[illegible] काश। बृत्ति

स[illegible] जाय लगी।

पू[illegible]

[illegible] र्छा आई। यही

ब्र[illegible]

षट[illegible] कीन्हा ।।५।।

काम क्रोध लोभ मोह। हाँकि सावज दीन्हा ।।६।।

'षटचक्र बेधि कमल बेधि। जाय उजियारी कीन्हा ।।' षटचक्र कहिये मूलाधार, 'गुदाचक्र' चतुर्दल कमल; ताको बेधन किया। प्रथम गणेशक्रिया करके

गुदाको साफ किया। ता उपरान्त गुदासे पानी खैंचने लगा। जब पानी चढ़ने लगा, फिर पीछे छोड़ने लगा। ताको बस्ती क्रिया कहिये। तो बस्ती क्रिया जब पूरी भई, तब पवन चढ़ाने लगा औ गुदाचक्र बेधा। ता उपरान्त स्वाधिष्ठान-चक्र, लिङ्ग भूमि पेड़ूपर छौदल कमल, ताको बेधने लगा। सो गजक्रिया करने लगा। द्वादश अङ्गुलका गज बनाया औ लिङ्गमें चलाया। तासे लिङ्गद्वार साफ किया। फिर लिङ्गसे दूध ऐंचने लगा। जब शहद ऐंचा, तब गजक्रिया सिद्ध हुई। फिर लिङ्गसे वायु ऐंचके स्वाधिष्ठान-चक्र बेधा औ अपानमें समान मिलाया। तब धीतीक्रिया करने लगा मणिपूरचक्र बेधनेके वास्ते। मणिपूरचक्र, नाभिस्थानमें दशदल कमल। सो दो अङ्गुल चौड़ी औ नौ हाथ लम्बी धोती लीलना, फिर निकारके मैल धोय डारना औ फिर लीलना; ऐसी तीन बार भई, तब धोतीक्रिया सिद्ध भई। तब नाभिसे पवन उठायके मणिपूरचक्र बेधा। फिर अपान औ समान दोनों प्राणमें मिलाना औ अनहदचक्र बेधना। अनहदचक्र, हृदयस्थान, द्वादश-दल कमल। सो कुञ्जलक्रिया करना। प्रातः समय खूब पानी पीना औ निकारना। फिर पीना, फिर निकार डारना—त्रिबार। तदनन्तर एक सवा हाथका दातुन बनाना रस्सीका। ताको चलाना औ पानी पी-पी छोड़ते जाना। तब कुञ्जलक्रिया सिद्ध हुई। तब वायु उठाना औ अनहदचक्र बेधना। प्राण, अपान, समान तीनों-को लाके उदानमें कण्ठमें मिलाना। सो कण्ठमें विशुद्धीचक्र, सोरहदल कमल। लम्बिकायोग करना। आहार दूध करना। बहुत बोलना नहीं। जिह्वाके तरेकी रग मसका औ सेंधौसे रगड़ना औ प्रातः समय जिह्वा-दोहन करना। इस यतनसे जिह्वा बढ़ायके ऊर्ध द्वारमें लगाना औ गजरमें अमृत चूवता है, ताको पान करना। जब अमृत-पान किया, तब देह जागी औ लम्बिकायोग हुआ। फिर विशुद्धिचक्र बेधा। तदनन्तर त्रिकुटीस्थानमें अग्निचक्र दोदल कमल। तहाँ नेतीक्रिया करना। नाकमें बत्ती चलायके धोना। फिर उदानवायुको जीतके प्राणायाम करना। कण्ठसे वायु उठाना औ विशुद्धिचक्र बेधके अग्निचक्रमें वायु जब आवे, तब जिह्वाको ले जायके ऊर्ध्वद्वारमें लगाय देना। ऊर्ध्वद्वार बन्द करके अग्निचक्र बेधके जाय उजियारी कीन्हा ॥५॥ ब्रह्माण्डमें स्वास लय हुआ कुम्भक होयके, तब देह शून्य हो गया। काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये सब सावज हाँकि देके ब्रह्माण्ड बास किया ॥ ६ ॥

गगन मध्ये रोकिन द्वारा । जहाँ दिवस नहिं राती ॥७॥
दास कबीरा ! जाय पहूँचे । बिछुरे सङ्ग साथी ॥८॥८७॥

गगन मध्ये श्वास चढ़ायके ऊर्ध्वद्वार रोका । 'जहाँ दिवस नहिं राती ।' दिवस = सूर्य औ राती = चन्द्र--ये दोनों जहाँ नहीं, तहाँ सुषुमना जाय ब्रह्माण्डमें भेदी ॥७॥ इस प्रकारसे 'दास कबीरा जाय पहुँचे ।' योगी लोग जाय पहुँचे ब्रह्माण्डमें औ सङ्ग-साथी = चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार आदि जेते सङ्ग–साथी थे, सो सब बिछुरे और निर्विकल्प हुआ । अन्धाधुन्धमें परा बानी सुनके । परन्तु जब चोला छूटेगा, तब योग औ बानी औ समाधि कहाँ रहेगी ? सबही नाश होयगी । अरे ! जो तूने माना, सोई तेरा काल तेरेको खाता है औ फिर गर्भवासको प्राप्त करता है । सो तू कसर परखके छोड़ दे औ पारखपर स्थिर हो ! ये समस्त तेरी कल्पना । ये अर्थ ॥ ८ ॥ ८७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८८ ॥ ❀ ॥

सावज न होइ भाई ! सावज न होई । वाकी माँसु भखे सब कोई ॥१॥

टीका गुरुमुखः—'सावज न होइ भाई ! सावज न होई ।' सावज कहिये मुर्दा, औ मांसु कहिये बानी; औ मुर्दा कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये भ्रम, भ्रम कहिये जो वस्तुतः कछु नहीं ।

सवैया चौबोलाः—रूप न रेख अदेख न देख, सबै सब भेख न एकौ जाने ॥ अज्ञान न ज्ञान अथान न थान, अमान न मान जो वेद बखाने ॥ जैसा को तैसा रहै भ्रम ऐसा, सो ताहिको आतम निश्चय माने ॥ कारण कारज जहाँ नहीं सोई, पूरण धोख महा भ्रम साने ॥ १ ॥

इस प्रकारसे जो निश्चय करते हैं, सो ब्रह्म कछु नहीं । जाकी बानी सब कोई पढ़ते हैं औ जाको 'महावाक्य' ऐसा भाखते हैं, सो मिथ्या धोखा । ये अर्थ ॥१॥

सावज एक सकल संसारा । अविगति वाको बाता ॥२॥
पेट फाड़ि जो देखिये रे भाई ! आहि करेज न आँता ॥३॥

'सावज एक सकल संसारा । अविगति वाकी बाता ।' ऐसा ब्रह्म एक संसारने निर्माण किया बानीके अनुमानसे ॥२॥ परन्तु 'पेट फारि जो देखिये रे भाई !' उस ब्रह्मको जबलग गुमसुम रहने देओ, तबलग अच्छा, औ जो

विवरण निर्णय करके देखने जावे तो कछु वस्तु ठहरती नहीं। औ पूछो कि जीवको छोड़के ब्रह्म कैसा है ? उसकी उत्पत्ति–स्थिति कुछ बताओ ! तो दाँत निपोर देते हैं। कछु कहा ही नहीं जाता। ये अर्थ। करेज कहिये जाकर यह सृष्टि, सो ईश्वर। औ आँता कहिये आत्मा; सो ना कहूँ ईश्वर, ना कहूँ आत्मा है। एक जीव है। ये अर्थ ॥ ३ ॥

ऐसी वाकी माँसु रे भाई ! पल–पल माँसु बिकाई ॥४॥
हाड़ गोड़ ले घूर पवाँरिनि। आगि–धुवाँ नहिं खाई ॥५॥

परन्तु ऐसी उसकी बानी है, जो पल–पल संसारमें बिक रही है। 'ब्रह्मार्पण' कहिके दानी दान देते हैं औ भिक्षुक तैसा ही कहके लेते हैं। बारम्बार ईश्वरका स्मरण होता है। ये अर्थ ॥४॥ 'हाड़ गोड़ ले घूर पवाँरिनि। आगि धुवाँ नहिं खाई ॥' हाड़ कहिये पर्वत आदि अचर, औ गोड़ कहिये चर—पशु, पक्षी, मानुष आदि; घूर कहिये आत्मा। सो चराचर जगत् सम्पूर्ण लेके आत्मामें डारे। आत्माको अधिष्ठान बनाया औ ज्ञानअग्निसे सब चराचर कचरा जराया। सो कहीं आगी भी लगी नहीं औ धुवाँ भी निकला नहीं। जैसा-का-तैसा ही रहा। तो जैसा कोई बावरा गाफिल पहाड़की शैर करने गया, सो महा-अरण्यमें जाय फँसा औ रास्ता भूल गया। सो वनमें घबराया औ नाना बाघ, रीछ औ सर्प आदिका भय मालूम भया, सो भागने लगा। जहाँ–जहाँ भागा, तहाँ-तहाँ धक्का खाया, ठोकर खाया औ झाड़ीमें अरुझा। ब्याघ्र आदि जन्तुनने घेरा, तब 'खाविन्द राजा राम' ऐसा बहुत गोहराया। जब कोई नजर नहीं आया, तब अपने अनुमानसे आँखें मूँदकर एक अनुमानकी बड़ी अग्नि पैदा किया औ कहा कि सम्पूर्ण वन औ ब्याघ्रादि जन्तुओंको जलाता है। सो आँखि मूँदिके अनुमानकी अग्नि लगाया, तब अनुमानसे मालूम हुआ कि वन जर गया। औ जब आँखें खोलके देखा, तब न कहूँ आग लगी, न कहूँ धूवाँ हुआ। ऐसा ब्रह्मज्ञानिनका विचार—जो अपने अनुमानसे जगत् चराचरका नाश करते हैं, एकान्तिक प्रलय बनाते हैं। परन्तु अनुमानकी अग्निसे कहूँ पर्वत जरते हैं ? मिथ्या धोखा। ये अर्थ ॥ ५ ॥

शिर सीङ्गी किछुवो नहिं वाके। पूँछ कहाँ वे पावे ? ॥६॥
सब पण्डित मिलि धन्धे परिया। कबिरा ! बनौरी गावै ॥७॥८८॥

अरे ! शिर सीङ्गी = जीवरूप वह कछु है नहीं, ताको तुम सब पूछते फिरते हो । तो जो कछु है नहीं, सो कहाँसे पायेगा ? ॥६॥ अरे ! ब्रह्मादि सब पण्डित धन्धेमें परिया, कल्पना करके अनुमानमें परे, तिनकी बनौरी = बानी, कबिरा = जीव गाता है, मिथ्या धोखामें बन्धमान होय रहा; बिना पारख । ये अर्थ ॥ ७ ॥ ८८ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ८९ ॥ ❀ ॥

सुभागे ! केहि कारण लोभ लागे ? रतन जन्म खोयो ! ॥१॥
पूर्वल जन्म भूमि कारण । बीज काहेक बोयो ? ॥२॥

टीका गुरुमुखः—सुभागे कहिये जीवको, लोभ कहिये धोखा, धोखा कहिये स्वर्ग आदि प्राप्ति । अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि, पुण्य आदि, द्रव्य आदिक लोभ केहि कारण तोहि लागा ? अरे ! जेते तेरा लोभ, तेते सम्पूर्ण तेरेको बन्धन है । सो बन्धनमें तू नाहक बन्धा औ रत्न जन्म खोया, मानुष जन्म खोया ॥१॥ पूर्वल जन्म भूमि कहिये ब्रह्म निर्विकल्प अधिष्ठान, सोई तो सर्व सङ्कल्प–विकल्प जगत्का कारण है । सो बीज काहेको बोया ? जो बीजसे तू नानात्व विकारको प्राप्त भया, सो ब्रह्म औ आत्मा तू क्यों बनता है ? ॥ २ ॥

बुन्दसे जिन्ह पिण्ड सञ्जोयो । अग्नि कुण्ड रहाया ॥३॥
जब दश मास माताके गर्भे । बहुरी लागल माया ॥४॥

'बुन्दसे जिन्ह पिण्ड सञ्जोयो । अग्नि कुण्ड रहाया ॥' बुन्द कहिये स्फुरण, सो जो ऐसा आत्मा है कि जाके स्फुरणसे जगत् निर्माण हुआ, सोई सम्पूर्ण जगत्में रहा ॥३॥ 'जब दशमास माताके गर्भे ।' दश कहिये चार वेद छौ शास्त्र, मास कहिये बानी, माता कहिये माया, माया कहिये काया । सो कायामें होयके चार वेद, छौ शास्त्र सब कल्पना किया । सो सब कल्पना इसीको बन्धन हुई । ये अर्थ ॥ ४ ॥

बारहु ते पुनि वृद्ध हुआ । होनहार सो हूवा ॥५॥
जब यम अइहैं बाँधि चलै हैं । नैनन भरि–भरि रोया ॥६॥

'बारहु ते पुनि वृद्ध भया ।' बार कहिये जीवको, औ वृद्ध कहिये ब्रह्मको;

सो जीवसे ब्रह्म हुआ। होनहार सो हुआ। जो ब्रह्म होनेकी चाह थी, सो नाना प्रकारके विचार करके जब थका, तब वेद-श्रुतिके प्रमाणसे आपै ब्रह्म बना ॥५॥ परन्तु जब चोला छूटेगा, तब कहाँ रहेगा ? अरे ! अध्यासमें बन्धा गर्भवासको चला जायगा। तब यम = गुरुवा लोग कछु छुड़ानेको नहीं आनेका। जो बन्धन देवै सोई यम। ये अर्थ ॥ ६ ॥

जीवनकी जनि आशा राखो। काल धरे हैं श्वासा ॥७॥
बाजी हैं संसार कबीरा ! चित चेति डारो फाँसा ॥८॥८९॥

अरे जीव ! जीवनकी आशा जनि रक्खो ! 'काल धरे हैं श्वासा।' जिन्ह-जिन्ह श्वासा ब्रह्माण्डमें धारण किया, सो भी मर गये। तुम जीनेकी आशा मत् रक्खो ! नहीं तो गाफिलीमें मरोगे। औ नैन भरि-भरि जो ब्रह्म औ जगत् देखते थे, सो छूट जायगा। पुनः यह गर्भवासको प्राप्त होयगा तब रोवेगा ॥७॥ अरे ! सम्पूर्ण संसारमें जो गुरुवा लोगोंने रची है सो बानी इन्द्रजाल है। हे जीव ! तू चैतन्य है, जाननेवाला है। तू जानिके सब फाँस डार दे औ पारख तेरा रूप है, सो पारखपर तू स्थिर हो ! ब्रह्म, जगत् औ आत्मा, ये सम्पूर्ण तेरेको फँसानेका फाँसा है। सो तू जान ! जो तू निश्चय करेगा, सोई तेरेको फाँसा। ये अर्थ ॥८॥

विरह अर्थः—सुभागे ! तेरेको स्त्री, पुत्र, घर, धनादि लोभ काहेको लगा ? अरे ! लोभमें तूने रत्न जन्म = मानुषजन्म क्यों खोया ? ॥१॥ औ पूर्वल जन्म भूमि कहिये स्त्री; जो पहले स्त्रीसे पैदा भया औ पैदाइशका कारण स्त्री है। जो स्त्री न होय, तब सब पैदा कहाँसे होय ? ऐसा उत्पत्तिका कारण स्त्री, तामें जायके फिर बीज काहेको बोया ? अरे ! तूने अपनी मायके पेटसे पैदा होके क्या किया ? नाना प्रकारके दुःखहीको प्राप्त हुआ। अरु बीज बोयके और जीवको दुःख क्यों दिया ? ॥२॥ हे सन्तो ! देखो जीवकी बाजी ! जो बुन्दसे पिण्ड साबुत करता है और अग्निकुण्डमें = गर्भवासमें रहता है। जीव ही मैथुन करता है औ जीव ही गर्भवास करता है ॥३॥ जब दश मास माताके गर्भमें रहता है, फिर भगद्वार होय बाहर आया। कछु दिन अज्ञानताईमें रहके गवाँया औ कछु दिन खेलमें गवाँया, फिर स्त्रीमें जाय लगा ॥४॥ सो उसीके मोहमें लड़काईसे बुड्ढा हुआ। विषय-इन्द्री सब शिथिल भईं ॥५॥ जब मृत्यु आई तो मोहके वश होयके नैन भरि-भरि रोवने लगा ॥६॥ तू देख ! जीवनकी आशा मत् रक्खो ! सम्पूर्ण विषय तू

आगे ही छोड़ दे, तो देख—तेरेको अन्तमें बड़ा सुख होयगा। औ तू जो विषय नहीं छोड़ेगा, तो ये आखिर तेरेको छोड़ देवेंगे। फिर तू ये विषयके अध्यासके वश होयके नाना योनिको प्राप्त होयगा औ तेरेको फिर बड़ा दुःख होयगा ॥७॥ ताते स्त्रीने विषयबाजी जीवको फँसानेके वास्ते रची है। सो हे जीव ! तू चैतन्य है। तो चेतिके खेलना समझके छोड देना। ये अर्थ ॥ ८ ॥ ८९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९० ॥ ❀ ॥

सन्त ! महन्तो ! सुमिरो सोई ! जो काल फाँसते बाँचा होई ! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—हे सन्तो ! हे महन्तो ! सोई सुमिरो, जो 'काल फाँसते बाँचा होय।' काल कहिये कल्पना, औ कालफाँस कहिये तत्त्वमस्यादि बानी। सो तत्त्वमस्यादि बानीसे जो बाँचा होय सो पारखी ! जबलग कालफाँस परखनेमें नहीं आई, तबलग कछु छूटती नहीं। औ जब तत्त्वमस्यादि बानीकी कसर मालूम भई, तब उचटी कि मेरी कल्पना औ मेरा अनुमान मेरेको बन्धन हुआ था, परन्तु वस्तुतः अनुमान मिथ्या औ मैं जीव सत्य। भला ! आजलग मैं यही फाँसमें फँसा था औ नाना दुःख भोगता था। औ अब मेरेको "तत्त्वमस्यादि कल्पना मिथ्या औ मैं जीव सत्य" ये काहेसे मालूम हुआ ? तो जबलग पारख नहीं थी, तबलग सब सत्य मालूम होता था औ असत्यको सत्य माना था। सोई बन्धनमें नाना दुःख भोगता था। अब पारख प्राप्त भई। ता पारखके प्रतापसे सम्पूर्ण फाँसी परखनेमें आई औ न्यारा हुआ। धोखा सब छूटा, तब मेरा स्वरूप शुद्ध पारख रहा। अब बानी, अनुमान, कल्पना—ये फाँसी कछु मेरे विषय सम्भवती नहीं। मैं शुद्ध पारख, ऐसा जो हुआ सो काल फाँसते बचा। तो हे महान् जीव ! ता पारखका सुमिरण करो ! पारखके तरफ फिर देखो ! जाते तुम्हारी फाँसी छूटै औ स्थिति होय। ये अर्थ ॥ १ ॥

दत्तात्रेय मर्म नहिं जाना। मिथ्या साधु भुलाना ॥२॥
सलिल मथि घृतकै काढ़िन। ताहि समाधि समाना ॥३॥

दत्तात्रेय पारखका मर्म नहीं जाना। अगर जो पारखको प्राप्त होते, तो मिथ्या धोखेमें क्यों पड़ते ? तो 'मिथ्या साधु भुलाना।' ब्रह्म-आत्मा कहायके मिथ्या धोखेमें भूले। ये अर्थ ॥२॥ 'सलिल मथि घृतकै काढ़िन। ताहि समाधि समाना॥' सलिल कहिये पानी, पानी कहिये बानी, बानी कहिये वेद। सो वेद

मथिके सार ॐकार निकारा, सो आत्माराम। 'ताहि समाधि समाना' = ताही समाधिमें समाये औ ब्रह्म बने। जो पारख पाते तो धोखेमें क्यों परते? ये अर्थ॥३॥

गोरख पवन राखि नहिं जाना। योग युक्ति अनुमाना॥४॥
ऋद्धि-सिद्धि सञ्जम बहुतेरा। पारब्रह्म नहिं जाना॥५॥

गोरखनाथको भी पारख नहीं प्राप्त भई। भला! जो पारख प्राप्त होती, तो पवन ब्रह्माण्डमें रखनेका क्या काम? तो वो भी योगयुक्ति करके अनुमानमें बन्धे॥४॥ 'ऋद्धि-सिद्धि सञ्जम बहुतेरा। पारब्रह्म नहिं जाना॥' ऋद्धि-सिद्धि औ संयम बहुत किया औ पारब्रह्म कहाये; बिना पारख। पारब्रह्म धोखा है, ये न जाना। ये अर्थ॥ ५॥

वशिष्ठ श्रेष्ठ विद्या सम्पूरण। राम ऐसे शिष्य शाखा॥६॥
जाहि रामको कर्त्ता कहिये। तिनहुँको काल न राखा॥७॥

'वशिष्ठ श्रेष्ठ विद्या सम्पूरण।' औ वशिष्ठ कहिये सब ज्ञानिनमें श्रेष्ठ! विद्या सम्पूर्ण जानते थे औ 'राम' ऐसे जाके शिष्य शाखा है॥६॥ औ जिस रामको सब कहते हैं कि कर्त्ता है, सो उनको भी पारख प्राप्त नहीं भई। देखो! जब रामचन्द्र वशिष्ठ मुनिकी शरण गये, तब वही तत्त्वमसिका उपदेश रामचन्द्रको दिया। ताको प्रमाण 'योगवासिष्ठ' कहता है। तो वो भी अनुमानमें फँसे, 'अहं ब्रह्मास्मि' कहाये। ये अर्थ॥ ७॥

हिन्दू कहैं हमहिं लै जारों। तुरुक कहैं हमारो पीर॥८॥
दोऊ आय दीनमें झगरैं। ठाढ़े देखै हंस कबीर!॥९॥९०॥

'हिन्दू कहैं हमहिं लै जारों। तुरुक कहैं हमारो पीर' *॥८॥ ये देखो!

---

* टिप्पणीः—शब्द ९० की ८वीं चौपाईका भाष्य—

हिन्दू कहैं हमहिं लै जारों। तुरुक कहैं हमारो पीर॥ ८॥

वेद, शास्त्र और पुराणादिको धर्मग्रन्थ माननेवाले सनातनी चारों वर्ण-आश्रमके रीति-रिवाजमें चलनेवाले हिन्दूमतावलम्बी लोग कहते हैं कि हम हिन्दूधर्मको मानते हैं। शास्त्रोंमें वर्णन किया है कि 'मृत्यु होनेपर शवको श्मशानमें लेजा करके, शास्त्रोक्त रीति-प्रमाणसे चिता बनाकर पुत्रके हाथसे अग्नि लगवाकर अन्त्येष्टि-क्रिया-कर्म करके मृतशरीरको सम्पूर्ण अग्निमें जला देना चाहिये! ऐसा नहीं करनेसे उसका जीव प्रेत बनकर बहुत दुक्ख पाता है।' इसलिए हे भाई! हम लोग तो जो भी हिन्दू मरेंगे; †

दोनों दीन बने औ झगरने लगे बिना पारख। औ जो पारखपर ठहरे, उनको क्या जलाना? औ क्या गाड़ना है? क्या ब्रह्म है? औ क्या जगत् है? सम्पूर्ण मिथ्या तमाशा देखा। ये अर्थ। हंस कहिये जो नीर-क्षीरका निबेरा करे, औ कबीर कहिये कायावीर जीव। नीर कहिये बानी, औ क्षीर कहिये जीव। सो जो जीवने बानी अलगाय दिया औ जीव अलगाय दिया, सो हंस! पारखके प्रतापसे सब अलगायके आप पारखरूप भया औ सबको परखने लगा, तमाशा देखने लगा। ये अर्थ ॥ ९ ॥ ९० ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९१ ॥ ❀ ॥

तन धरि सुखिया काहु न देखा! जो देखा सो दुःखिया! ॥१॥
उदय अस्तकी बात कहत हैं। सबका किया विवेका ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! तन धरि कोई सुखिया

❀ उनको ले जाकर जलावेंगे, और मरनेपर हमारे शरीरको भी ले जाकर चितामें जला देना! कहीं फेंक नहीं देना! यदि विधिपूर्वक हमारे मृत शरीरको नहीं जलाओगे तो फिर हम प्रेत बनकर दुःख पावेंगे और तुम लोगोंको भी दुःख दिया करेंगे। इसका विस्तारसे वर्णन 'गरुड़पुराण' और 'भागवत' आदिमें किया है। इसलिए मृतक कर्मरूप अन्त्येष्टि-क्रिया शास्त्रोक्त-रीतिसे विधिपूर्वक करना-कराना ही चाहिये! इत्यादि प्रकारसे जोर देकर पण्डित लोग कहते-सुनाते हैं। वही बात सब हिन्दू लोग दृढ़ कर-करा रक्खे हैं।

उसी प्रकार तुरुक=मुसलमान लोग भी कहते हैं कि हमारे पीर=गुरु, और पैगम्बर=खुदाका धर्मदूत, औलिया=सिद्ध एवं काजी=न्यायाधीश; इन सबके जमानेसे यही रीति-रिवाज चला आया है कि मृत्यु होनेपर मुसलमानोंकी लाशको कब्रमें ले जाकर गाड़के रखना। यही बात कितेबोंमें भी लिखी है। सोई हमको मान्य है। इसमें यह मतलब है कि महाप्रलय (क्यामत) होनेपर सब जीवको अल्लाह ताला अपने पासमें बुलाता है, तब उसी समय सब जीव कब्रसे उठ-उठकर खुदाके पासमें जा पहुँचते हैं। तभी सबकी नेकी-बदीका इन्शाफ होता है। यदि मुसलमानकी लाशको भूलसे भी जला दोगे, तब तो खुदा बहुत नाराज हो जायेंगे। इसलिए मुसलमानोंकी लाशको कब्रमें गाड़ देना ही हमारे रीति-रिवाज और मुख्य कर्त्तव्यरूप धर्म है। इत्यादि मनगढ़न्त बातें बना-बना करके हिन्दू और तुरुक दोनों मिथ्या धोखेमें भूले पड़े हैं। जीतेतक कर्मोंका सुधार तो वे करते ही नहीं। मरनेपर चाहे मुर्देको जलाओ वा गाड़ो! उससे जीवको कुछ हानि लाभ नहीं है। जीवनमें जैसा कर्म-संस्कार टिकाया है, अन्तमें चौरासीमें जाकर वैसा ही फल भोगते रहेंगे। अतः जीते ही सत्कर्म करो! अपने कर्त्तव्यका सुधार करो! ॥ ८ ॥

नहीं देखा। क्योंकि जो सम्पूर्ण दुःखका घर है सो देह है। अरे! जो कुछ सुख अथवा दुःख होता है, सो देहसे होता है। और जो देह नहीं, तो सुख-दुःखका क्या कहूँ झाड़ होता है? सुख-दुःखका झाड़ तो देह है। सो देह धारण करके सुखी कैसे होयगा? याते जो देखा सो दुःखिया। ये अर्थ ॥१॥ "उदय-अस्तकी बात कहत हैं। सबका किया विवेका।" अरे! जो महासिद्ध भये—व्यासादि, वाल्मीकि आदि, तिन सबका विवेक किया तो अपने--अपने देहमें सब कोई दुःखिया हैं ॥ २ ॥

बाटे-बाटे सब कोइ दुःखिया। क्या गिरही बैरागी? ॥३॥
शुकाचार्य दुःख ही के कारण। गर्भहि माया त्यागी ॥४॥

'क्या ग्रेही और क्या वैरागी?' वैरागीको वैरागका दुःख कि कहीं मेरा वैराग छूटने न पावे। अगर मेरा वैराग छूटेगा तो मेरेको ईश्वरकी प्राप्ति नहीं होनेकी। ऐसा निश्चय करके परम वैराग्यमें रहते हैं, कनक-कामिनीको देखते नहीं, कहीं अच्छा षटरस भोजन मिला तो खाते नहीं, कड़ू--कसैला, रूखा-सूखा, पाला-वाला खाते हैं। अगर कोई अच्छे कपड़े पहिरावे तो पहिरते नहीं। फटी-चीटी चींधी अगर मिले तो पहन लेते हैं। औ धूनी तापते हैं कि मेरा वैराग्य सिद्ध होय। ऐसी शङ्का पकड़के न कछु बातके वास्ते दुःखिया होय रहे हैं। ये अर्थ। औ गृहस्थ कहते हैं कि हमारी हुरमत कैसे निबहेगी? हमारा कुटुम्ब कैसे पोषण होयगा? औ द्रव्य कैसे मिलेगा? और भी अनेकन देहके दुःखसे दुःखी हैं। ये अर्थ ॥३॥ ऐसे-ऐसे दुःखके कारण शुकाचार्य गर्भहीमें माया त्यागी, जो बारह वर्ष गर्भहीमें बास किया। परन्तु आखिर तन धरके दुःख उनको भी न छूटा। ये अर्थ ॥ ४ ॥

योगी जंगम ते अति दुःखिया। तापस के दुःख दूना ॥५॥
आशा-तृष्णा सब घट व्यापी। कोइ महल नहिं सूना ॥६॥

योगी लोग योगक्रियाके दुःखमें पड़े हैं, नाहक नाना कष्ट भोगते हैं। औ जङ्गमको शिवाचारका दुःख, जो शिवाचार छोड़ेंगे तो नर्कमें जायेंगे। इसवास्ते अति दुःखिया = अति दुःखमें पड़े हैं। ये अर्थ। 'तापसके दुःख दूना।' गर्मीमें पञ्चाग्नि तापना, शीत समयमें जल-शयन करना, वर्षाऋतुमें अरण्यमें रहना, झाड़की पत्ती बीनके खाना—ऐसा दूना दुःख हुआ। ये अर्थ ॥५॥ अरे! 'आशा-तृष्णा सब घट व्यापी!' आशा कहिये स्वर्गादि-प्राप्ति एवं ब्रह्म होनेकी, औ तृष्णा कहिये

जगत्के धन, दारा, पुत्र, घर, सिद्धि-ऋद्धि, मुक्तिकी; ऐसी आशा-तृष्णा सब घट व्यापी । कोई घट मी खाली नहीं । कोई घटमें भी पारख नहीं मिली । ये अर्थ ॥६॥

साँच कहौं तो सब जग खीजे । झूठ कहा ना जाई ॥७॥
कहहिं कबीर तेई भौ दुःखिया । जिन्ह यह राह चलाई ॥८॥९१॥

साँच कहौं कि समस्त ये जीवकी कल्पना है औ जीव सत्य है, तो सब खीझते हैं औ मिथ्या धोखेका पक्ष लेते हैं । भला ! जो पूछो कि ब्रह्म कहाँ है ? औ कैसा है ? तो फिर दाँत निपोर देते हैं । और अपनेसे तो झूठ कहा नहीं जाता । हे सन्तो ! जो कछु वस्तु नहीं, ताको क्या कहना ? ॥७॥ अरे ! जिन्होंने यह नाना प्रकारकी बानी बनाई औ नाना प्रकारकी राह चलाई, सोई मनुष्य ये नाना बानीमें औ नाना कल्पनामें औ नाना मार्गनमें दुःखिया भये, दुःख पाते हैं । ये अर्थ ॥ ८ ॥ ९१ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९२ ॥ ❀ ॥

ता मनको चीन्हो मोरे भाई ! तन छूटे मन कहाँ समाई ? ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि ता मन कहिये जहाँ तुम्हारा मन लीन हुआ, जहाँ मन लीन हुआ सो ब्रह्म । सो उस ब्रह्मको चीन्हो कि मनमें तो उन्मुन होयके ब्रह्म हुआ औ जब तन छूटेगा, तब ब्रह्म कहाँ समायेगा ? ये अर्थ ॥१॥

सनक सनन्दन जैदेव नामा । भक्ति सही मन उनहुँ न जाना ॥२॥
अम्बरीष प्रहलाद सुदामा । भक्ति हेतु मन उनहुँ न जाना ॥३॥

सनक, सनन्दन, जयदेव और नामदेव—ये सब भक्त तो सही हुए, परन्तु मन उनहूँने नहीं जाना । अरे ! मन-मन तो सबने पुकारा, परन्तु मन क्या है ? औ मनका स्वरूप क्या है ? ये किसीने भी नहीं जाना । हक-नाहक धोखेमें परे । अरे ! मन तो जिसके ओ भक्त हुए, सोई उनका मन । परन्तु उनको मालूम नहीं हुआ कि जिसकी हम भक्ति करते हैं सो हमारा मन है । अगर मालूम होता तो उसको खाविन्द क्यों मानते ? औ आप दास क्यों बनते ? माने सोई मन । ये अर्थ ॥२॥ 'अम्बरीष प्रहलाद सुदामा । भक्ति हेतु मन उनहुँ न जाना ॥' अम्बरीष, प्रहलाद औ सुदामा आदि परमभक्त भये, परन्तु मनको उनहूँ नहीं जाना । जासे उन हेत किया औ भक्ति की औ जो स्वरूप साक्षात्कार उनको

था, सो उनका मन; परन्तु उनको न मालूम हुआ ! ये अर्थ ॥ ३ ॥

भर्थरि गोरख गोपीचन्दा । ता मन मिलि-मिलि कियो आनन्दा ॥४॥
जा मनको कोई जानु न भेवा । ता मन मगन भये शुकदेवा ! ॥५॥

'गोरख, भरथरी, गोपीचन्दा'—ऐसे-ऐसे वे सब योगी भये, सो उस मनहीके रङ्गमें मग्न हुए औ उन्मुन हुए। आनन्द किये मनमें मिलि-मिलिके, परन्तु मनको न पहिचाना । ये अर्थ ॥४॥ जिस मानन्दीरूपी मनका भेद कोई नहीं जाने, उसी मनहीके रङ्गमें शुकदेव मग्न हुए औ उस मनको न पहिचाना । ये अर्थ ॥५॥

शिव सनकादिक नारद शेषा । तनके भीतर मन उनहुँ न पेखा ॥६॥
एकल निरञ्जन सकलशरीरा ! तामहँभ्रमि-भ्रमि रहलकबीरा ॥७॥९२

शिव, सनकादि, नारद, शेषादि ज्ञानी भये, सो सब तनहीमें मग्न हुए औ जो तनमें कल्पना उठी सो कल्पनामें दिवाने हुए । मन कहिये तनको । अरे ! आठ पसेरी = चालीस सेर जहाँ एकन्दर भये, ताको नाम मन । औ पाँच तत्त्व तीन गुण—ये ही आठ पसेरी जहाँ एकन्दर होय, ताको नाम मन । औ रूप माया–काया, नाम मन । जब आठ पसेरी आठ तरफ जायगी; तब मन कहाँ रहेगा ? चालीस सेरका अर्थ—पचीस प्रकृति, औ पाँच ज्ञानइन्द्री–सतोगुणकी, औ पाँच कर्मइन्द्री–रजोगुणकी, औ विषयपञ्चक–तमोगुणके । ये चालीस सेर जहाँ मिले, ताका नाम मन कहिये । औ उस मनका रूप ताको तन कहिये । ताते तन-मन एक ही है । तनसे मन कछु भिन्न नहीं । जैसे चालीस सेरकी गठरीसे मन कछु न्यारा नहीं दीखता है, चालीस सेरकी गठरीका ही नाम मन । ऐसा तनहीका नाम मन कहिये। नाम है वाको मन कहिये, रूप ताको माया कहिये, औ तनसे जो अनुमान निश्चय होता है, ताको भी मन कहिये ॥६॥ 'एकल निरञ्जन सकल शरीरा । तामहँ भ्रमि-भ्रमि रहल कबीरा ॥' एकल निरञ्जन कहिये मनको; सो सम्पूर्ण शरीर मनका रूप है । तामें भ्रमि–भ्रमि रहा कबीरा = जीव । देहमें जीव भ्रमि रहा है । अरे ! जाने आकाशवत् कहा सो आकाशका अनुमान, वायुवत् कहा सो वायुका अनुमान, प्रकाशवत् कहा सो तेज, जलवत् कहा सो जल, मृत्तिकावत् कहा सो मिट्टी । श्री ब्रह्म–आत्मा कछु वस्तु नहीं, सब तत्त्वनका अनुमान-भास । ये अर्थ ॥ ७ ॥ ९२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९३ ॥ ❀ ॥

बाबू! ऐसो है संसार तिहारो। इहै कलि ब्यौहारो ॥१॥
को अब अनुख सहत प्रतिदिनको? नाहिं न रहनि हमारो ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—बाबू कहिये जीवको; सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! 'ऐसो है संसार तिहारो।' कलि कहिये बानीको; सो सब यह ब्रह्म-आत्मा औ ईश्वर आदि सब उपासना, औ कर्म-धर्म सब बानीका व्यवहार है, सो बानी तेरी कल्पना। ये अर्थ ॥१॥ 'को अब अनुख सहत प्रतिदिनको? नाहिं न रहनि हमारो ॥' गुरु कहते हैं कि हे भाई ! अब दिन-प्रतिदिन (रोज-रोज)की बुराई, उपाधि कौन सहे ? अपनेको क्या वास्ता ? ये सम्पूर्ण अपनी रहनि-गहनि कछु नहीं। ये अर्थ ॥ २ ॥

सुमृति सोहाय सबै कोइ जानै। हृदया तत्त्व न बूझै ॥३॥
निर्जिव आगे सर्जिव थापे। लोचन किछउ न सूझै ॥४॥

'सुमृति सोहाय सबै कोइ जानै।' सुमृति कहिये बानी; सो वेद-स्मृतिसे जो कहता है, उसके प्रमाणसे सब कोई जानते हैं; परन्तु अपने हृदयमें कोई बूझता नहीं ॥३॥ अरे ! निर्जीव पाषाण आदि धातु, मन्त्र, यन्त्र इत्यादि; ताको स्थापनकर्त्ता कौन ? औ वेद-स्मृति आदि सम्पूर्ण निर्जीव बखेड़ा आगे जो स्थापन किया है सो सजीवने किया है। अरु जड़ वस्तु कछु स्वतन्त्र नहीं है। तो ऐसा अपने कर्त्तव्यके आप गुलाम बने। इनके आँखिनसे भी नहीं दीखता है कि सजीव बिना निर्जीव कौन थापता है ?। ये अर्थ ॥ ४ ॥

तजि अमृत विष काहेक अँचवै? गाँठी बाँधिनि खोटा ॥५॥
चोरन दीन्हों पाट सिङ्घासन। साहुन से भौ ओटा ॥६॥

'तजि अमृत विष काहेक अँचवै ॥' अमृत कहिये जीवको, सो छोड़के नाना बानीके विषय क्यों ग्रहण करता है ? औ झूठी गाँठीमें ब्रह्म अथवा नाना देवता क्यों बाँधता है ? अरे ! जो वेद औ बानीकी गाँठी बाँधी है सो सब मिथ्या। ये अर्थ ॥५॥ 'चोरन दीन्हों पाट सिंघासन। साहुन से भौ ओटा ॥' चोर = प्रतिमा आदिक, ताको पाट-सिंहासन दिया; औ साहू = जो कोई भूखा-प्यासा जीव आवे, तो तासों मुँह छिपाते हैं, धमकायके निकार देते हैं। बधिक

गुरुवा लोगोंको पाट-सिंहासनपर बैठाते हैं और जो कोई विचारवान् सन्त आवें, तब मुँह पीछेको फेरते हैं, तो पारख कैसे प्राप्त होय ? । ये अर्थ ॥ ६ ॥

कहहिं कबीर झूठे मिलि झूठा । ठग ही ठग ब्यौहारा ॥७॥
तीनि लोक भरपूरि रहा है । नाहीं है पतियारा ! ॥८॥९३॥

'कहहिं कबीर झूठे मिलि झूठा ।' अरे ! जाको तुम निश्चय करते हो, सो कहाँ है ? सो गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! झूठे-धोखेमें मिलिके ये जीव भी झूठा हुआ औ ठग गुरुवा लोगोंके सङ्ग व्यवहार करके जीव भी ठगाय गया औ ठग हुआ । दुनियाँमें ठगाई–ज्ञान, योग, औ भक्ति फैलाई ॥७॥ औ कहा कि तीन-लोक आप-ही-आप आत्मा भरि रहा है । परन्तु इनकी बातका कछु इतबार नहीं । क्षणमें अद्वैत कहते हैं, औ कहीं द्वैत, कहीं नास्ति, कहीं सर्व आत्मा, कहीं जैसा-का-तैसा । इनकी बातकी कौन प्रतीत रही ? ॥ ये अर्थ ॥ ८ ॥

साखीः—"जाके जिभ्या बन्ध नहीं । हृदया नाहीं साँच ॥
ताके सङ्ग न लागिये ! घाले बटिया माँझ ॥८३॥"९३॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९४ ॥ ❀ ॥

कहो हो ! निरञ्जन ! कौने बानी ? ॥१॥
हाथ पाँव मुख श्रवण जिभ्या नहिं। का कहि जपहु हो प्रानी ?॥२॥

टीका गुरुमुखः—कहो निरञ्जन ! क्या बात है ? ॥१॥ अरे ! हाथ, पाँव, मुख, श्रवण, जिह्वा नहीं, तब क्या वस्तु है ? औ क्या कहिके जपते हो ? हे प्राणी ! बिना रूप कहीं नाम नहीं, औ नाम बिना कछु जाप नहीं । ये अर्थ ॥२॥

ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये ! ज्योति कौन सहिदानी ? ॥३॥
ज्योतिहि ज्योति ज्योति दै मारै । तब कहु ज्योति कहाँ समानी?॥४॥

'ज्योतिहि ज्योति ज्योति जो कहिये ।' 'ज्योतिस्वरूप परमात्मा' ऐसा कहिके जो तुमने सुरत ज्योति बाँधी है, तो ज्योतिकी क्या निशानी ? ॥३॥ जो ज्योतिमें तुमने सुरति लगाई, सोई तुम्हारी कल्पना तुम्हारा काल । जब दै मारेगा, चोला छूट जायगा, तब वो ज्योति कहाँ रहेगी ? । ये अर्थ ॥ ४ ॥

चारि वेद ब्रह्मा जो कहिया । उनहुँ न या गति जानी ॥५॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! बूझो पण्डित ज्ञानी ॥६॥९४॥

अरे ! चार वेद ब्रह्माने जो कहा औ सब सिद्धान्त किया-ज्योति, तद्योति, स्वयंज्योति। ज्योति कहिये जो देखनेमें आवे, औ जाते देखनेमें आवे सो तद्योति, औ जाके देखनेमें आवे सो स्वयंज्योति। औ सच्चिदानन्द आदि, तत्त्वमस्यादि बहुतक सिद्धान्त किये देह धरके; परन्तु देह छूटेगी तब असि, आनन्द औ ज्योति कहाँ रहेंगी ? ये गति ब्रह्माने भी नहीं जानी ॥५॥ तो आनन्द, असि औ ज्योति हे सन्तो ! कहाँ हैं ? ये तो सब देहका विकार औ तत्त्वनका स्वभाव। तत्त्व छूटे तब कछु नहीं, सब मिथ्या धोखा। हे पण्डित ! हे ज्ञानी ! तुम बूझो = समझो ! पण्डित = ब्रह्मा औ ज्ञानी = शम्भू, इनकी मति तुम बूझो ! सब धोखेमें परे; बिना पारख। ये अर्थ ॥ ६ ॥ ९४ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९५ ॥ ❀ ॥

को अस करे नगर कोटवलिया ? माँसु फैलाय गिद्ध रखवरिया ! ॥१॥
मूस भौ नाव मञ्जार कँड़िहरिया। सोवै दादुर सर्प पहरिया ॥२॥

टीका गुरुमुखः—'को अस करे नगर कोटवलिया ?' नगर कहिये संसार, कोटवलिया = इनशाफ़ी; सो गुरु कहते हैं कि ऐसे संसारमें कौन इनशाफ़ी करे ? जहाँ 'माँसु फैलाय गिद्ध रखवरिया।' माँसु कहिये बानी, गिद्ध कहिये गुरुवालोग, पण्डित लोग। सो बानी फैलायके संसारमें गुरुवा लोग रखवारी भये। जैसे खेत रखानेको रखवार बैठता है, इस तरहसे गुरुवा लोगोंने वेदबानीकी बाड़ लगायके जीवनको अन्दर डारके रखवारी करने लगे कि जामें जीव वेदबानीके बाहर न जाने पावे ॥ ॥ 'मूस भौ नाव मञ्जार कँड़िहरिया।' मूस कहिये जीव, मञ्जार कहिये बानी, मञ्जार कहिये माया, मञ्जार कहिये गुरुवा, सो जीव तो संसार-सागरमें नाव बने औ बानी-बयार बही, औ गुरुवा लोग खेवैया बने। 'सोवै दादुर सर्प पहरिया।' दादुर = जीव, सर्प = उपदेश अहंब्रह्म, ताके भरोसे जीव गाफिल हुआ। अहंब्रह्म कहायके विधि-निषेधको छोड़ा। ये अर्थ ॥ २ ॥

बैल बियाय गाय भइ बन्झा। बछरू दुहिये तीनितीनि सन्झा ॥३॥
नित उठि सिङ्घ सियारसों जूझै। कबिराका पद जन बिरला बूझै॥४॥९५

'बैल बियाय गाय भइ बन्झा।' बैल कहिये षट्दर्शन भेष, गाय कहिये

बानी; नाना प्रकारके उपदेश, मन्त्र सब षट्दर्शन भेषसे पैदा भये औ बानीसे कछु नहीं पैदा भया । बानी बाँझ जड़ । ये अर्थ । बछरू दुहिये तीनि-तीनि सन्झा ।' बछरू = बानी, बानीका सिद्धान्त ब्रह्म; सो त्रिकाल सन्ध्या करते हैं, यही दुहनेका अर्थ ।।३।। 'नित उठि सिङ्घ सियार सों जूझै।' सिङ्घ = कहिये जीव, सियार = वेदबानी; सो बानीसे जीव रोज-रोज लड़ता है। अध्यारोप-अपवाद करते हैं, एकपर एक पूर्वपक्ष करते हैं। एक-एकके मतको दोष लगावते हैं, जूझते हैं बानीका आसरा पकड़के नाहक। न कछु लेना न देना। ये कबीरा = जीव, इनका पद कोई बिरला बूझेगा। औ जो-जो इनने सिद्धान्त किया, सो सब इनको बन्धन। ये अर्थ ॥ ४ ॥

विरह अर्थ:—'को अस करे नगर कोटवलिया।' ऐसे जगत्‌में कौन इन-शाफ़ी करेगा ? भाई ! जहाँ 'माँसु फैलाय गिद्ध रखवरिया रहै।' माँसु कहिये माया—स्त्री, पुत्र, धन आदिक। ये सब संसारमें फैलाया जीवने औ मन रख-वारी रक्खा। आठोंपहर कभी भूलता नहीं ।।१।। 'मूस भौ नाव मञ्जार कँड़िहरिया।' मूस = मन, मञ्जार = माया; तो देखो ! ये मन तो मायाका खुराक है, ये मनको स्त्री चलावती है। ये अर्थ। दादुर = जीव, सर्प = काम; देखो ! ये जीव कामवश होयके गाफिल हुआ, नाना प्रकारके विषय-विष चढ़ा, तामें मग्न हुआ ॥ २ ॥

'बैल बियाय गाय भइ बन्झा।' बैल = पुरुष, गाय = स्त्री; सो पुरुषसे सन्तान उत्पन्न होता है। जो पुरुष न होय तो स्त्री बाँझ। गाय कहिये गायत्री बाँझ। उससे कुछ नहीं पैदा भया। ब्रह्मासे सन्तान पैदा भया। बछरू कहिये जीव, सो त्रिकाल स्त्री इनको दूहती है। अरु गाय = स्त्री, पुरुष = बैल, मन = बछरू; सो मनको शोषण त्रिकाल स्त्री करती है ।।३।। 'नित उठि सिङ्घ सियारसों जूझै।' सिंघ = जीव, सियार = स्त्रीसे नित जूझता है, मैथुन करते-करते मरता है। गुरु कहते हैं कि ये देखो ! जीवका पद स्त्री, जीवका अधिष्ठान स्त्री। सो स्त्रीसे पैदा होता है, फिर स्त्रीसे रति करता है औ विषयकी प्रीतिसे फिर स्त्रीके गर्भवासमें लय होता है। जैसे जलकी लहर जलसे पैदा होती है औ जलहीमें स्थित, तथा जलहीमें लय होती है। इस प्रकारसे जीव स्त्रीसे पैदा होते हैं औ स्त्रीमें आठोंपहर स्थित होते हैं औ फिर स्त्रीमें जाते हैं। ये अर्थ ॥ ४ ॥ ९५ ॥

॥ ❁ ॥ शब्द ॥ ९६ ॥ ❁ ॥

काको रोवों ? गैल बहु तेरा। बहुतक मुवल फिरल नहिं फेरा ॥१॥

जब हम रोया तब तुम न सँभारा । गर्भँवासकी बात विचारा ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे भाई ! मैं किसको-किसको कहौं ? बहुतेरे बानी, कल्पना, अनुमानमें बन्ध होयके स्त्रीके गर्भमें गये । मैंने बहुत-बहुत कहा फेरनेके वास्ते और बहुत-बहुत विचार बताया, परन्तु कोई फेरनेसे फिरे नहीं। ये अर्थ ॥१॥ भला ! जबसे तू आनन्द होयके आपै-आप भूला औ गर्भवासकी बात स्त्री औ बानीका विचार किया। इच्छासे नारी पैदा किया औ उसका सङ्ग करके नाना दुःखको प्राप्त भया। तब नाना बानी कल्पिके, तामें मग्न होयके बन्ध हो गया । जभीसे मैं तेरेको कहा था औ तेरा दुःख देखके रोया था, परन्तु तूने न सम्भारा । सोई बात तूने विचारा कि जासे गर्भवासको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥

अब तैं रोया ! क्या तैं पाया ? केहि कारण अब मोहिं रोवाया ? ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो सन्तो भाई ! कालके बसी परो मति कोई ॥४॥९६॥

गर्भवासको प्राप्त होनेकी बात एक स्त्री औ एक बानी ब्रह्म । सो जैसा तूने किया, तैसा गर्भवासको प्राप्त हुआ । अब संसारके दुःख देखके बहुत रोता है, तो क्या रोनेसे तेरा दुःख छूटेगा ? अरे ! जबलग देह बनी है, तबलग देहका भोग तो तेरेको भोगना होगा । भला ! अब तू रोता है, तो क्या पाया तूने? तो नाहक धोखेके भरोसेसे अब पश्चात्ताप करता है, सो देखके मेरेको बहुत दया आती है । तो फिर मेरेको क्यों रोवाता है ? क्यों बकाता है ? ॥३॥ अरे ! तूने जो अनुमान किया है औ जो-जो माना है, सो सब गर्भवासका कारण है । सो अब तो भी सब समझके परखके छोड़ औ निराश निर्बन्ध हो ! सब स्त्री, बानी आदिक कल्पनाकी फाँसी हैं। तो कोई फाँसीमें पड़ो मत् ! हे जीव ! सब फाँसी परखके पारखरूप हो जाओ ! ये अर्थ ॥ ४ ॥ ९६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९७ ॥ ❀ ॥

अल्लाह राम जियो तेरि नाँई । जिन्ह पर मेहर होहु तुम साँई ! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—'अल्लाह राम जियो तेरि नाँई ।' हे जीव ! तेरी नाँई जो कोई जीव भये, तिनने अल्लाहकी भी स्थापना की औ रामकी भी स्थापना की। अरे! निर्जीवसे भी कहीं स्थापना होती है ? भला ! जो ऐसा कहोगे कि अल्लाह-रामकी स्थापना भी कोई करता है ? तो राम--खुदाय किनने कहा ? औ किनने स्थापा ?

जो ऐसा कहा जाय कि उनने अपनी स्थापना आप ही की। तो वो निराबेब औ बेचून, ऐसा वेद–कुरान गावता है। तो निराबेब कैसे स्थापना करेगा? तो जीवहीसे अल्लाह-रामकी स्थापना भई। ये अर्थ। हे जीव! जिनपर तुम मेहर होवो औ रीझो, उसीको तुम मालिक करके स्थाप देओ! ये अर्थ ॥ १ ॥

क्या मुण्डी भुईं शिर नाये? क्या जल देह नहाये? ॥२॥
खून करे मिस्कीन कहाये। अवगुण रहे छिपाये ॥३॥

और तुम कहीं भुईंपर शिर नवावते हो, निमाज पढ़ते हो, तो ये क्या है? ये भी कल्पना। नाना तीर्थ नहाते हो, तो ये क्या है? यह भी तेरी कल्पना॥२॥ अरे! फकीर मिस्कीन कहिये गरीबको। तो देखो! ये मुसलमान फकीर बकरा–मुर्गा मारते हैं, खून करते हैं। तो काम कसाईका औ बाना फकीरका। तो जैसा ठग होता है, अपना अवगुण छिपाये रहता है, तैसा ये मिस्कीन। ये अर्थ॥३॥

क्या वजू जप मज्जन कीये? क्या महजिद शिर नाये? ॥४॥
हृदया कपट निमाज गुजारे। क्या हज मक्के जाये? ॥५॥

क्या वजू औ जप किये? तो वो भी कल्पना। औ मसज़िदमें शिर नवाते हैं, ये भी धोखा॥४॥ हृदया कपट-मत धारण किया निमाज औ हज। मक्केको गया तो क्या? ये सम्पूर्ण धोखा। ये अर्थ॥ ५॥

हिन्दू बरत एकादशी चौबिस। तीस रोजा मुसलमाना ॥६॥
ग्यारह मास कहो किन टारे? एक महीना आना ॥७॥

'हिन्दू बरत एकादशी चौबिस।' तो हिन्दूने वर्षमें चौबीस दिन मुक्तिके ठहराये कि एकादशीको मरे सो मोक्ष। ऐसा कहा, तो बाकी दिन किनने टारा? और तुरुक तीसों रोजा करते हैं कि फर्ज खुदाका है। तो भाई! ये ग्यारह महीना किनने दूर किया? अरे! खुदाको बेरूप–बेचून बोलते हो, तो हुकुम कैसे दिया? ये सम्पूर्ण तुम्हारी कल्पना मिथ्या॥ ६ ॥ ७ ॥

जो खुदाय महजीद बसतु है। और मुलुक केहि केरा? ॥८॥
तीरथ मूरत राम निवासी। दुइमा किनहुँ न हेरा ॥९॥

भला! जो खुदा मसजिदमें रहता है, तो और मुल्क किसका है? ॥८॥

और तीर्थ–मूर्तिमें राम निवास करता है तो सब संसारमें कौन रमा है ? अरे ! दूनोंमें किसीने भी नहीं तहकीक किया ॥ ९ ॥

पूरब दिशा हरीको बासा। पश्चिम अल्लह मुकामा ॥१०॥
दिलमें खोजि दिलहिमाँ खोजो! इहै करीमा– रामा ! ॥११॥

कोई कहते हैं कि पूर्व दिशामें भगवान्‌का बासा है, और कोई कहता है कि पश्चिम दिशामें खुदाका बासा है। अरे ! सब झूठ कल्पना ॥१०॥ तुम अपने दिलमें खोजके देखो औ संसारमें खोजके देखो, तो तू ही करीमाकी स्थापना करता है औ तू ही रामकी स्थापना करता है। तो स्थापना मिथ्या औ कर्त्ता सच्चा। ये अर्थ ॥ ११ ॥

वेद–कितेब कहा किन ? झूठा ! झूठा जो न विचारे ॥१२॥
सब घट एक–एक कै लेखे। भय दूजाके मारे ॥१३॥

'वेद–कितेब कहा किन ? झूठा।' अरे ! वेद–किताब किन्हने कहा है ? सो भी झूठा। औ जो विचार नहीं करता है, झूठ धोखेमें फँसा है सो भी झूठा ॥१२॥ देखो ! वेद सब घट एक-एक कर लेखता है कि सम्पूर्ण ब्रह्म अखण्ड, दुतिया कोई नहीं। फिर जब राम–कृष्णादि अवतार पैदा भये, तब वेदने स्तुति किया, तो क्यों किया ? और उनकी विशेषता क्यों बखानी ? जो एक अद्वैत है तो विशेषता और स्तुति नहीं सम्भवती। तो वह वेद औ ब्रह्मा झूठा, जो कहा अद्वैत औ भासता तो द्वैत था। ताते कहीं अद्वैत औ कहीं द्वैत, ऐसा कथन करके संसारको भय लगायके मारा। श्रीकृष्ण भगवान्‌ने अर्जुनको सब घट एक आत्मा समझाया औ फिर भय लगायके सब परिवारको मार गिराया। ताते अद्वैत कहनेवाले कृष्ण आदि भी सब झूठे, औ अर्जुन आदिक जीव भी झूठे—जो झूठेमें बन्धे हैं। ये अर्थ ॥ १३ ॥

जेते औरत मर्द उपानी। सो सब रूप तुम्हारा ॥१४॥
कबीर पोंगरा अल्लह रामका। सो गुरु! पीर! हमारा ॥१५॥९७॥

हे मनुष्य ! तू समझ देख कि जेते औरत औ मर्द उत्पन्न हुये, सो सब रूप तुम्हारा। अरु हे जीव ! तेरे बिना राम कहाँ है ? औ खुदा कहाँ है ? सब मिथ्या धोखा। ये अर्थ ॥१४॥ जीवमुखः—'कबीर पोंगरा अल्लह रामका। सो गुरु !

पीर ! हमारा ॥' पोंगरा = बेटा, कबीर = जीव; सो हिन्दू बोलता है कि परमात्माका अंश जो ब्रह्मा है सोई हमारे गुरु ! उनसे अधिक और कोई नहीं। औ तुरुक बोलता है कि पीर = मुहम्मद, जो खुदाके पैगम्बर नूर हैं, सो हमारे पीर ! उनसे ज्यादे कोऊ नहीं। ऐसा कहिके बधिक फाँसमें परे। ये अर्थ ॥ १५ ॥ ९७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ९८ ॥ ❀ ॥

आव बे आव मुझे हरिको नाम ! और सकल तजु कौने काम ? ॥१॥

टीका मायामुखः—गुरुवा लोग बोलते हैं कि हे जीव ! आव बे आव ! मुझे शरण हो ! अरु जो हम हरिनाम उपदेश करते हैं, ताकी रटना किया करो ! 'और सकल तजु कौने काम ?' सकल संसार माया प्रपञ्च मिथ्या। परमात्माका नाम सत्य। ये अर्थ ॥ १ ॥

कहाँ तब आदम ? कहाँ तब हव्वा ? कहाँ तब पीर पैगम्बर हुवा ? ॥२॥
कहाँ तब जिमी ? कहाँ असमान ? कहाँ तब वेद कितेब कुरान ? ॥३॥

'कहाँ तब आदम ? कहाँ तब हव्वा ? कहाँ तब पीर पैगम्बर हूवा ?' ॥२॥ 'कहाँ तब जिमी ? कहाँ असमान ? कहाँ तब वेद कितेब कुरान ?' ॥ अर्थ स्पष्ट है। तो जब परमात्मा था, तब कछु नहीं रहा। पीछेसे सम्पूर्ण माया-प्रपञ्च पैदा भया ॥ ३ ॥ *

जिन्ह दुनियाँमें रची मसीद। झूठा रोजा झूठी ईद ॥४॥
साँचा एक अल्लहको नाम ! जाको नइ-नइ करो सलाम ! ॥५॥

'जिन्ह दुनियाँमें रची मसीद। झूठा रोजा झूठी ईद।' ये सब फ़ना, नाश हो जायेंगे * ॥४॥ एक अल्लाहका नाम सच्चा है। उसको नै-नै हरवक्त सलाम करो ! उसके नामसे ज्यादा कछु नहीं ॥ ५ ॥

---

* टिप्पणीः—शब्द—९८ की २, ३, ४ चौपाईका भाष्य—

कहाँ तब आदम ? कहाँ तब हव्वा ? कहाँ तब पीर पैगम्बर हूवा ? ॥ २ ॥

भ्रमिक गुरुवा लोग कहते हैं:—जब दुनियाँ उत्पन्न नहीं हुई थी, उस समयमें निर्गुण-निराकार, बेचून-बेनमून एक अल्लाहरूप खुदा मात्र ही गोयमगोय था। तब उस समयमें आदम = मुसलमानी मतके अनुसार मनुष्योंका मूल, प्रथमपुरुष माना हुआ 'बाबा आदम' नामक आदमी भी कहीं नहीं था। और तब हव्वा = मुसलमानोंके मान्यतानुसार बाबा आदमकी स्त्री मामा हव्वारूप मनुष्योंकी आदिमाता भी कहाँ थी ?

पीर=गुरु और पैगम्बर=खुदाके धर्मदूत-ईसा,मूसा,मुहम्मद आदि भी तब कहाँ उत्पन्न हुए थे ? नहीं हुए थे। ये सब तो पीछेसे उत्पन्न हुए। जब मायाका प्रपञ्च फैला, तब ये लोग भी उत्पन्न हुए। अतः उसी 'हरिनाम'के स्मरणमें ही सदा मन लगाये रक्खो !॥

[अथवा हे भ्रमिक मनुष्यो ! विचार करो—उस समयमें तुम्हारा हरि कहाँ था ? ईश्वर-खुदा कहाँ थे ? और अभी कहाँ हैं ? और उनके नाम कहाँ हैं ? वाणीकी कल्पना-मात्र ही तो तुम्हारे पासमें है। तब=तुम्हारे माने हुए आदमरूप मूलपुरुष, आदिपुरुष एवं ब्रह्मादि उस समयके लोग अब कहाँ हैं ? वैसे ही हव्वारूप मूलप्रकृति, आदमकी स्त्री, मनुष्योंकी आदिमाता एवं आदिमाया, दुर्गादि देवियाँ, गायत्री, सावित्री, लक्ष्मी, पार्वती आदि ये सब भी अब कहाँ हैं ? अभी तो केवल मुसलमानोंके कुरानमें वाणीमात्र लिखी है और हिन्दुओंमें वाणीके साथ-साथ जड़ प्रतिमा भी बना रक्खी हैं। और फिर तुम्हारे माने हुए पहलेके पीर=अनेक मतवादको दृढ़ानेवाले गुरु लोग तथा पैगम्बर=धर्म-प्रचारक, रसूल, खुदाके धर्मदूत एवं अवतारी लोग और ऋषि-मुनि आदि जो पहले हुए, वे सब भी अब कहाँ हैं ? कहाँ गये ? समयानुसार उसी वक्त देह छोड़-छोड़कर जड़ाध्यासवश चौरासीचक्रमें ही वे सब चले गये, आवागमनमें पड़े हैं। क्योंकि निज शुद्ध चैतन्य-स्वरूपका पारखबोध उन किसीको भी नहीं था। इसीसे वे कोई मुक्त नहीं हुए। अब यदि उनके ही भ्रम-धोखेको लेओगे, तो तुम लोग कहाँसे मुक्त होओगे ? अतः भ्रम-धोखेको त्यागकर पारखबोधको ग्रहण करो !]॥ २॥

कहाँ तब जिमी ? कहाँ असमान ? कहाँ तब वेद-कितेब कुरान ! ॥ ३ ॥

गुरुवा लोग कहते हैं:—सृष्टिके पहले जिमी=पृथ्वी भी कहाँ थी ? कहीं नहीं थी ? और असमान=आकाश, अन्तरिक्ष-मण्डल भी नहीं था। तब उस समयमें वेद, कितेब, कुरान; ये भी कहाँ थे ? कहीं नहीं थे। एक अकेला परमात्मा ही निर्गुण-निराकार, निरञ्जन था। सारी सृष्टि तो उसकी इच्छा-मात्रसे बादमें उत्पन्न हुई। तब यह सब विस्तार मायोपाधिरूपमें हुआ। [इत्यादि उनका कहना है।]

[अथवा तब=उस समय तुम्हारा, जिमी=जैसी-तैसी वाणी-कल्पनासे जमाई हुई जमीनरूप अनेक मिथ्या मानन्दी कहाँ थीं ? अब वे बाहर कहाँ हैं ? सो भ्रम-कल्पना तो तुम्हारे अन्तःकरणमें ही टिकी है। और असमान=जो समान वा बराबर सत्य नहीं है, वैसे आकाशरूप बिहिस्त, खुदाके अर्शका तख्त एवं स्वर्गादि लोक अब बाहर कहाँ हैं ? कहीं नहीं। शून्य मिथ्या धोखा भ्रम तो तुम्हारे हृदयमें ही बैठा है। बाहरकी पृथ्वी और आकाश; इनका कभी उत्पत्ति-प्रलय नहीं होता है। पाँचों तत्त्व तो अनादिसे स्वयं ही हैं। उनके मूलको कौन बनायेगा ? कोई नहीं। वैसे ही तुम्हारे माने हुए चार वेदोंकी वाणीको एवं चार कितेबरूप कुरानकी वाणीको भी निराकार-निर्गुण ईश्वर एवं अल्लाहने कहाँ रचा है ? सो तो मनुष्योंसे ही रचना हुई और तुम मनुष्य लोग उनको पढ़-पढ़कर सत्य मानते एवं मिथ्या मानन्दी दृढ़ करते हो। इसलिए ये सब कर्त्तव्य अबोध मनुष्योंके ही हैं। बिना पारख धोखेमें भूले-भुलाये पड़े हैं। अब भी विवेक-विचार करके मिथ्या भ्रम-धोखेको त्यागो !]॥ ३॥ *

कहु धौं बिहिस्त कहाँ ते आई ? किसके कहे तुम छुरी चलाई?॥६॥
कर्त्ता किरतम बाजी लाई । हिन्दू-तुरुक की राह चलाई॥७॥

गुरुमुखः—अल्लाह बेमुकाम, बेचून, बेनमून रहता है, तो तुमने किसके कहेसे छूरी चलाई ? औ बिहिस्त तो भी कहाँसे पैदा हुई ? ॥६॥ अरे ! कर्त्ता मनुष्यने ये सब कृत्रिम बाजी बनाई अपनी कल्पनासे, बिना पारख। सो हिन्दू-तुरुक दुई राह चलाये औ धोखेमें परे ॥ ७ ॥

कहाँ तब दिवस? कहाँ तब राती?कहो तब किरतम किन उत्पाती?॥८॥
नहिंवाकेजातिनहींवाकेपाँती।कहहिंकबीर वाकी दिवसनराती॥९॥९८

'कहाँ तब दिवस ? कहाँ तब राती ?' अरे! जब रात-दिवस यह कछु ना हता, तब कृत्रिम बानी अल्लाहका नाम भी कहाँ था ? ॥८॥ अरे ! जाकी जाति नहीं, पाँति नहीं औ दिवस नहीं, रात्रि नहीं, ऐसा खुदा कहाँ है ? हे जीव ? सब

---

* जिन्ह दुनियाँमें रची मसीद। झूठा रोजा झूठी ईद ॥ ४ ॥

गुरुवा लोग कहते हैं:—जब पहले दुनियाँकी उत्पत्ति ही नहीं हुई थी, तब मसीद=मसजिद उस समयमें कौन बनायेगा ? कोई नहीं। जब अल्लाहने दुनियाँको बनाया, तब मुसलमान मनुष्योंने मसजिदकी भी रचना की। ये सारी दुनियाँ तो क्यामतके समयमें फना=विनाश हो जायेगा। तब मसजिद भी नहीं रहेगा। इसीसे तब तो रोजा भी झूठा और ईद भी झूठी हो जायगी। अतः झूठा रोजा, झूठी ईदकी मानन्दीमें न पड़कर एक हरिनाममें ही लौ लगाये रहना चाहिए ! इत्यादि ॥

[अथवा अनादिकालके संसारको किसी ईश्वर वा खुदाने कभी बनाया नहीं है, तब सारे संसारका कभी महाप्रलय वा कयामत भी नहीं होगा। जड़ और चैतन्य-स्वरूपकी कभी उत्पत्ति हुई और कभी प्रलय होगा, ऐसा मानना तो भ्रमिकोंकी मिथ्या कल्पना भ्रम ही मात्र है। जिस जीवने जड़ाध्यासी बद्ध होकर दुनियाँ=संसारमें देह धारण किया है, उसीने ही भ्रमसे मुसलमान बनकर अपनी मिथ्या मानन्दीके अनुसार बहुत-से ठिकानोंमें मसजिदकी रचना भी की। मुसलमानोंकी दुनियाँमें मसजिदकी मानन्दी लगी है। परन्तु वह मसजिद भी झूठा, मसजिद बनानेवाले भी झूठे, तीस दिनके रोजे भी झूठे और ईद, बकरीद आदि त्यौहार भी झूठी हैं। क्योंकि—"दिनको रहत हैं रोजा। राति हनत हैं गाय ॥ यह खून वह बन्दगी। क्योंकर खुशी खुदाय ॥" रमैनी ४९में वैसा स्पष्ट कहा भी है। ईद, बकरीद आदिमें भी बकरी आदिकी जीव-हिंसा करते हैं। मसजिद आदिमें भी गौ-कसी करते हैं। इस कारण मुसलमानोंके सब कार्य दोषपूर्ण मिथ्या धोखेके ही होते हैं। सज्जनोंको वैसे झूठे और हिंसारूप पापपूर्ण कार्यमें कभी नहीं लगना चाहिए ! ॥ ४ ॥

बी० त्रि०; ४९—

तेरा अनुमान मिथ्या धोखा। तुम परखके देखो। ये अर्थ ॥ ९ ॥ ९८ ॥

॥ ❁ ॥ शब्द ॥ ९९ ॥ ❁ ॥

अब कहाँ चलेउ ? अकेले मीता ! उठहु न करहु घरहुकी चिन्ता? ॥ १ ॥

टीका गुरुमुखः—'अब कहाँ चलेउ ! अकेले मीता !' अरे हे मित्र ! तुमने तो बहुत सङ्ग किया; परन्तु चोला छोड़के अब अकेले कहाँ चले ? अरे ! जब देह साबुत थी, तब तो कछु विचार किया नहीं औ पारखपदको भी प्राप्त भया नहीं। कहते थे कि हमारेको घरकी चिन्ता बड़ी है औ पुत्रकी चिन्ता बड़ी है औ धनकी चिन्ता बड़ी है। सो अब उठो न ! घरकी चिन्ता करो ! अब देह छोड़के कहाँ चले ? ॥ १ ॥

खीर–खाँड़ घृत पिण्ड सँवारा। सो तन लै बाहर कै डारा ॥ २ ॥
जो शिर रचिरचि बाँधहु पागा। सो शिर रतन बिडारत कागा ॥ ३ ॥

अरे ! खीर, खाँड़, घृत खाय–खाय देह बहुत पुष्ट किया था, सो तन सब भाई-बन्दने बाहर मशानमें डाल दिया। सो आजतलग देहका रक्षण करके मेरी-मेरी कहते थे। अब कैसे बाहर डारी गई ? ॥ २ ॥ जो शिरमें रचि-रचिके पाग बाँधते थे, सो शिर जब जङ्गलमें पड़ेगा, तब काग बिडार डारेंगे, फोर डारेंगे ॥ ३ ॥

हाड़ जरें जस जङ्गल लकड़ी। केश जरें जस घासकी पूली ॥ ४ ॥
आवत सङ्ग न जात सङ्गाती। काह भये दल बाँधल हाथी? ॥ ५ ॥

हाड़ लकड़ीके माफिक जल जायेंगे औ बार घासके माफिक जल जायेंगे ॥ ४ ॥ हे सन्तो ! देखो ! न तो कछु सङ्ग आया है, न तो कछु सङ्ग जायगा। दल-बादल औ तम्बू, हाथी, घोड़ा, सेना सब ही छूट गई ॥ ५ ॥

मायाके रस लेइ न पाया। अन्तर यम बिलारि है धाया ॥ ६ ॥
कहहिंकबीरनरअजहुँनजागा ! यमकामुगदरमाँझशिरलागा ॥ ७ ॥ ९९ ॥

'मायाके रस लेने नहीं पाया।' अन्त समय यम बिलार होयके धाया। जैसे मूसके ऊपर बिलाई झपट करती है, तैसे इसकी कल्पना यमरूप होयके स्वरूप-स्थितिमेंसे जीवको खैंचके ले चली गर्भवासको ॥ ६ ॥ याते गुरु कहते हैं कि हे नर ! मृत्यु तेरे समीप आय तुलानी। अब भी समझके न जागा, भ्रम अजहूँ न छोड़ा ! जब कालका मुगदर माँझ शिर लगेगा। माँझ शिर कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये भ्रम;

सो भ्रम अभी नहीं छूटा, तब कब छूटेगा ? । ये अर्थ ॥ ७ ॥ ९९ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०० ॥ ❀ ॥

देखउ लोगा ! हरि केर सगाई ! माय धरि पुत्र धियउ सङ्ग जाई॥१॥
सासु ननद मिलि अचल चलाई ! मँदरियाके गृह बैठी जाई ॥२॥

टीका गुरुमुखः—'देखउ लोगा ! हरि केर सगाई ।' हे सन्तो ! देखो ! ये लोगोंकी हरिरससे प्रीति लगी। हरि कहिये माया, हरि कहिये कल्पना, हरि कहिये बानी, रस कहिये अनुमान; जो देहसे कल्पना उठी, ता बानीने जो मालिक बताया, सो अनुमानके रसमें मिलके संसार सब गाता है। जैसे बादरकी पुतरी देखके लोग सब कल्पना करते हैं कि याके पुत्रकी सुन्दरताई अद्भुत है। उसके स्वरूपका हम क्या वर्णन कर सकेंगे ? जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेशका चित्त, मन, बुद्धि पहुँचती नहीं औ बड़े-बड़ेकी गति थकित भई, तहाँ हमारी कौन चलाई है ? परन्तु उसके रसको जिन्होंने जाना, ताको सब अमृत आदि रस फीके भये। ऐसा कहि-कहिके सब वा बानीके रसको गाने लगे, मिथ्या धोखेको गाने लगे । ये अर्थ । 'माय धरि पुत्र धियउ सङ्ग जाई ।' माय कहिये बानी पुत्र कहिये ब्रह्म-अल्लाह; सो माय = बानी जीवने धरी, औ पुत्र = ब्रह्मकी चाह भई । सो धिय = बुद्धिके सङ्ग जीव सब निश्चय करते चले । काहूने निर्गुण कहा, काहूने सगुण कहा, काहूने सबमें कहा, काहूने न्यारा कहा, काहूने एक कहा औ काहूने अनेक कहा । इस प्रकारसे सब बुद्धिके सङ्ग निश्चय करते चले । थाह काहूने नहीं पाया । ये अर्थ ॥१॥ 'सासु ननद मिलि अचल चलाई ।' सासु = गुरुवा लोग, ननद = चेला लोग; सो आदिसे जेते गुरुवा औ जेते चेले भये, सो सब मिलि कहा कि एक राम अचल है औ सब जगत् चलायमान् है। ऐसी बानी चलाई। और सासु कहिये वेद, औ ननद कहिये वेदान्त आदि शास्त्र, ताने 'ब्रह्म अचल' ऐसा सिद्धान्त चलाया। जीव मँदरियाके घर जाय बैठा सुननेके वास्ते। मँदरिया कहिये गुरुवा लोग, जो जीव बन्दरको ठौर-ठौर नचाते हैं। ये अर्थ ॥ २ ॥

हम बहनोई राम मोर सारा । हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा ॥३॥
कहहिं कबीर ये हरिके बूता । राम रमेते कुकुरिके पूता ॥४॥१००॥

मायामुखः—'हम बहनोई राम मोर सारा ।' जब जीव गुरुवा लोगोंके घर

जाय बैठा श्रवण करनेके वास्ते, तब गुरुवा लोग बोलते भये कि हम बहनोई = हम ज्ञानी; औ राम, जो सबमें रमा है, सोई हमारा रूप = सिद्धान्त, चार वेद छौ शास्त्रनका सार। ये अर्थ। 'हमहिं बाप हरि पुत्र हमारा।' हरि कहिये ज्ञान, सो हमारा पुत्र, जो हमसे पैदा हुआ। हम तो आत्मा अखण्ड, जैसा-का-तैसा; न ज्ञान, न अज्ञान; सर्वाधिष्ठान। ये अर्थ ॥३॥ गुरुमुखः—'कहहिं कबीर ये हरिके बूता। राम रमेते कुकुरीके पूता ॥' गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! देखो ! इन ज्ञानी लोगोंके ज्ञानका जोर देखो ! जो एक देशमें रमे थे, सो सबमें रम गये। कुकुरी कहिये बानी, सो बानीके पुत्र ब्रह्म बने। ये अर्थ ॥ ४ ॥ १०० ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०१ ॥ ❀ ॥

देखि-देखि जिय अचरज होई ! यह पद बूझै बिरला कोई ! ॥१॥
धरती उलटि अकाशै जाय। चिउँटी के मुख हस्ति समाय ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि देखि-देखि हे जीव ! बड़ा आश्चर्य होता है—जो ये जीवमेंसे कल्पना उठी कि हमारा कर्त्ता कोई बड़ा है ब्रह्म। ऐसी कल्पनाको कर्त्ता बनाया औ उसके अधीन भया औ उसीकी बानी स्तुति बहुत प्रकारसे गाई। औ गाय-गाय जब आपु ही थका, तब कल्पनाका रूप बना। सो देखि-देखि जीवमें बड़ा आश्चर्य होता है। ये अर्थ। 'यह पद बूझै बिरला कोई!' यह पद कहिये जा पदसे सकल ब्रह्म-ईश्वर आदि कल्पना उठी औ सम्पूर्ण बानी उठी, सो मानुष पद—ऐसा कोई बूझनेवाला बिरला। ये अर्थ ॥१॥ धरती उलटि अकाशै जाय। चिउँटीके मुख हस्ति समाय ॥' सोई बानी सुनि-सुनिके धरतीके जीव आकाशको चले—कोई योग करके, कोई नाना कर्म-धर्म करके उपासना करके आकाशको चले। सो ये सब धोखा। औ चिउँटी कहिये बानी, हस्ती कहिये मन; सो बानीके मुखमें मन समाया। कहीं दास बना औ कहीं ब्रह्म बना, उन्मुन हुआ। ये अर्थ ॥ २ ॥

बिना पवन सो पर्वत ऊड़े। जीव-जन्तु सब वृक्षा चढ़े ॥३॥
सूखे सरवर उठे हिलोरा। बिनु जल चकवा करत किलोरा ॥४॥

'बिना पवन सो पर्वत ऊड़े।' पर्वत कहिये दोनों दीन, सो बिना पवनसे उड़ने लगे। पवन कहिये विचार; सो बिना विचार दोनों दीन कल्पनामें उड़ने लगे।

'जीव-जन्तु सब वृक्षा चढ़े।' वृक्षा कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये अनुमान; सो अनुमानमें जीव चढ़े, ब्रह्म बने ॥३॥ 'सूखे सरवर उठे हिलोरा।' सूखे सरवर कहिये शून्य, शून्य कहिये जहाँ कछु है नहीं, जहाँ कछु नहीं सो ब्रह्म। सो ब्रह्म होयके हिलोरा अनुभवके उठने लगे, अनुमानके स्फुरण उठने लगे। ये अर्थ। बिनु जल चकवा करत किलोरा।' जल = बानी, चकवा = जीव; सो जीव जहाँ बानी नहीं, रूप नहीं, तहाँ अनुमानमें कलोल करने लगे। सो नाना प्रकारकी कलोल-कल्पनाकी बानी बनी ॥ ४ ॥

बैठा पण्डित पढ़ै पुरान। बिनु देखेका करत बखान ॥५॥

कहहिंकबीर यहपदको जान। सोई सन्त सदापरमान!॥६॥१०१॥

सोई पौराणिक लोग पुराण पढ़ने लगे औ बिना देखेका बखान करने लगे—स्वर्ग-नर्क आदि, लोक—परलोक आदि, देवता आदि, ब्रह्म-ईश्वर आदि। ये अर्थ ॥५॥ सो गुरु कहते हैं कि ये सब कहाँ हैं? जो बिना देखेका बखान करते हैं। यह पद कहिये मानुषपद; जासे समस्त सिद्धान्त बने औ समस्त बानी—विचार बना औ कल्पना—अनुमान, ब्रह्म आदि सब बने। सो सब मिथ्या धोखा औ मनुष्य सत्य—ऐसा जिसने जाना, ताका धोखा-कल्पना सब नाश हुआ। औ समस्त बानी-का अभाव हुआ, तब परम शान्तिको प्राप्त हुआ औ अपनी सत्यताई ठहरी। तब सोई सन्त सदा पारखरूप! जहाँ कोई भाव तत्त्वमस्यादि असम्भव, सो पारखरूप सदा परमान। ये अर्थ ॥ ६ ॥ १०१ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०२ ॥ ❀ ॥

हो दारीके ले देउँ तोहि गारी। तैं समुझि सुपन्थ विचारी! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—'हो दारीके ले देउँ तोहि गारी। तैं समुझि सुपन्थ विचारी।' दारी कहिये माया, स्त्री, बानी; सो गुरु कहते हैं जीवको कि हे देहीके गुलाम! औ हे स्त्रीके गुलाम! औ बानीके गुलाम! ले देउँ तोहि गारी = जैसा तूने ये बन्धन लिया, तैसा सब गारि डारता हौं, गला डारता हौं, धोखा सब परखायके दूर करता हौं। अरे! देह औ स्त्री औ बानी—ये सब जड़, औ तू जीव चैतन्य। सो इनके मिथ्या-धोखेमें तू क्यों पड़ता है? अरे! ये सब तेरेसे उपजे हैं औ तू ही इनमें बन्धायमान् हुआ, ताते नाना दुःख पाता है। ये समझके छोड़ दे! और सुपन्थ = सत्सङ्गके राहसे विचार कर। ये अर्थ ॥ १ ॥

घरहुक नाह जो अपना। तिनहुँसे भेंट न सपना ॥२॥
ब्राह्मण – क्षत्री बानी। तिनहुँ कहल नहिं मानी ॥३॥

'घरहुक नाह जो अपना। तिनहुँसे भेंट न सपना ॥' अब जो तूने घरका खाविन्द एक ईश्वर स्थापा है, सो तासे मिलना भी स्वपना है; क्योंकि मिथ्या है। ये अर्थ ॥२॥ गुरु कहते हैं कि हे भाई! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य–ये सब गाफिलीमें पड़के मग्न हैं। बहुत प्रकारसे कहा, परन्तु ये कोई नहीं मानते ॥३॥

योगी जङ्गम जेते। आपु गहे हैं तेते ॥४॥
कहहिं कबीर एक योगी! वो तो भर्मि–भर्मि भौ भोगी ॥५॥१०२॥

योगमें योगी लोग मग्न हुए, औ जङ्गम शिवाचारमें मग्न हुए। अपनी–अपनी मतिका अभिमान सबने पकड़ा। अब पारख कहाँसे प्राप्त होय? ॥४॥ सो गुरु कहते हैं कि एक धोखा समाधि जो योगी लोगोंने ठहराई। तो देह जब नास्ति तो देहकी समाधि क्या अस्ति? ओ भी नास्ति। ताके अध्याससे भ्रमि–भ्रमिके भौ = गर्भ-दुःख भोगते हैं; बिना पारख। ये अर्थ ॥ ५ ॥ १०२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०३ ॥ ❀ ॥

लोगा! तुमहीं मतिके भोरा! ॥१॥
ज्यों पानी–पानी मिलि गयऊ। त्यों धूरि मिला कबीरा! ॥२॥

टीका मायामुखः—हे लोगो! तुम ही मतिके भोरा ॥१॥ जो कबीरा कहिये ज्ञानी, सो परमात्मामें कैसे मिले? जैसे पानीमें पानी मिला, औ माटीका घर जैसा माटीमें मिला। औ अग्निका विकार जैसे दीपक–सो तो अग्नि ही है। औ जलका विकार—जैसे फेन, बुद्बुदा, तरङ्ग, सो तो जल ही हैं। तद्वत् आत्माका विकार जगत् जो है, सो आत्मा ही है। ये अर्थ ॥ २ ॥

जो मैथिलको साँचा ब्यास। तोहर मरण होय मगहर पास ॥३॥
मगहर मरे मरे नहिं पावै। अन्तै मरै तो राम लजावै ॥४॥

'जो मैथिलको साँचा ब्यास। तोहर मरण होय मगहर पास ॥' मैथिल कहिये मिथिला देश; सो ब्रह्ममय होयके अखण्ड एकरस रहते हैं, जिनके द्वैत भाव कबहुँ नहीं। ज्ञानअग्निमें कर्म सब जलाये औ समदृष्टि हुए। जो ब्राह्मण,

गाय, हाथी, कुत्ता औ चाण्डाल—ये सबमें समभाव जानते हैं, सो पण्डित साँचे ज्ञानी ! उसकी स्थिति मैथल = स्थल कहिये अधिष्ठान, अधिष्ठान कहिये आत्मा; सो मैं आत्मा । ये अर्थ । जो तू मैथिलका साँचा ब्यास है, जो तू ब्रह्मका सच्चा अंश है, 'तोहर मरण होय मगहर पास ।' मग कहिये रास्ता, हर कहिये ज्ञान; सो मगहर = ज्ञानमार्ग, तामें मरण होय, लौलीन होय । ये अर्थ ॥३॥ 'मगहर मरे मरे नहिं पावै ।' अरे ! जो ज्ञानमार्गमें मरे, सो मरण नहीं पावे; अर्थात् जीवन्मुक्त होय । ये अर्थ । अन्तै मरै तो राम लजावै ।' अरे ! जो जीवकी जन्मभूमिका, जहाँसे जीव स्फुरण हुआ, सो अधिष्ठान छोड़के अन्तै जो नाना प्रकारकी स्वर्ग-भोगादि वासना, अथवा जगत् आदि मोह-वासनामें जो मरा, सो बन्धनमें परा । राम कहिये जीव औ लज्जा कहिये बन्धन । ये अर्थ ॥ ४ ॥

मगहर मरे सो गदहा होय । भल परतीत राम सो खोय ॥५॥
क्या काशी ? क्या मगहर ऊसर ? जो पै हृदय राम बसै मोर ! ॥६॥
जो काशी तन तजे कबीरा ! तो रामहि कहु कौन निहोरा ? ॥७॥१०३॥

'मगहर मरे सो गदहा होय । भल परतीत राम सो खोय ॥' औ शास्त्र कहता है कि काशीमें मरे मुक्त, औ मगहर मरे सो गदहा होता है । तो ये मिथ्या । वो अविश्वासी लोग अज्ञानी; उनको आत्माकी प्रतीति नहीं ॥५॥ अरे ! क्या काशी ? क्या मगहर ? क्या ऊसर ? जो पै मेरे हृदयमें आत्म-प्रतीति है तो जैसा तीरथ-स्थान, तैसा सुपच घर, अथवा घूरा, अथवा क्षेत्र । अथवा कहीं क्यों नहीं मरता ? आत्मा सर्वदेशी सदा मुक्त ॥६॥ अरे ! जो काशीमें ज्ञानीने चोला छोड़ा औ मुक्त हुआ, तो ज्ञानकी क्या अधिकाई ? अरु भक्तिकी क्या अधिकाई ? इसवास्ते ज्ञानी कहीं मरे, सदा मुक्त स्वानुभवसे । ये अर्थ ॥ ७ ॥ १०३ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०४ ॥ ❀ ॥

कैसे तरो ? नाथ ! कैसे तरो ? अब बहु कुटिल भरो ! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—नाथ कहिये गुरुवा लोगोंको, जो आप भी नाथे गये औ दूसरे जीवनको भी नाथे । बन्धन देय सो नाथ । सो गुरु कहते हैं कि हे नाथ ! तुम कैसे तरोगे ? कैसे मुक्त होवोगे ? अब तो बहुत कुटिलता तुम्हारेमें भरी है, जो नाना प्रकारके भेष बनाते हो औ नाना तरहके तिलक करते हो औ

कोई भभूत लगाते हो । कोई नागा, कोई निर्बानी; ऐसी नाना प्रकारकी कुटिलाई करके जीवनको ठगते हो । अरे ! नाना प्रकारकी कल्पनामें औ मान-मर्य्यादामें बन्धे हो, तो पारख कहाँसे प्राप्त होयगी ? । ये अर्थ ॥ १ ॥

कैसीतेरी सेवा पूजा? कैसोतेरो ध्यान? ऊपरउजल देखो बगअनुमान॥२
भावतोभुजङ्गदेखोअतिबिबिचारी।सुरतिसचानतेरीमतितोमञ्जारी॥३

'कैसी तेरी सेवा पूजा ? कैसो तेरो ध्यान ? ऊपर उजल देखो बग अनुमान ॥' जैसा बगुला मछरियोंको पकड़नेके वास्ते ध्यान लगाता है आँखी मूँदके, और उसका स्वरूप भी परम सफेद रहता है। इस प्रकारसे हे गुरुवा लोगो! तुम जो ज्ञान—ध्यान औ पूजा करते हो, जो किसी तरहसे संसारके जीव आवें औ मेरेको मानें औ कछु द्रव्य भी देवें औ हमारे शिष्य होयँ और हमारा महात्म्य जगत्में होय । ऐसे नाना प्रकारके बन्धन तो अन्तःकरणमें बीज होय रहे हैं, तो तुम मुक्त कैसे होओगे ?। ये अर्थ ॥२॥ 'भाव तो भुजङ्ग देखो' भुजङ्ग कहिये सर्प; सो सर्पके ऐसा तो तुम्हारा भाव है कि जिनको डसते हो, ताको नाना प्रकारकी बानी औ कल्पनाका विष चढ़ा औ अति अविचारमें पड़ा । वेदका औ तुम्हारे मतिनका आसरा पकड़ा, सो स्वतः विचार करके नहीं देखता, औ कोई परखावे तो मानते भी नहीं । कहते हैं कि वेद जो कहता है सोई सत्य; अपनी समझ झूठ बिबिचार । ये अर्थ । 'सुरति सचान तेरी मति तो मञ्जारी ।' अरे ! तुम्हारी सुरति तो जैसे चिड़ियापर बाजकी सुरति लगती है, तैसा ही सब जीवनपर तुम्हारी सुरति लगी है । कितने ही पक्षी बाजने पकड़े, परन्तु तृष्णा कछु बूझती नहीं । जबलग जीता है, तबलग सुरति पक्षिनपर लगी रहती है । तैसी तुम्हारी सुरति अनेक जीवको पकड़ी, परन्तु तृप्त नहीं होती। और तुम्हारी मति जो देखता हौं, तो जैसी बिलारीकी मति चूहा पकड़नेके हेतु, तैसे संसारके जीवको भुलायके पकड़ते हो । ये अर्थ ॥ ३ ॥

अतिरे विरोधीदेखो ! अतिरे सयाना ! छौदर्शनदेखो! भेष लपटाना!॥४
कहहिंकबीर सुनोनर बन्दा! डाइनि डिम्भसकलजग खन्दा ॥५॥१०४

अरे ! अति सयाने जो बड़े-बड़े ज्ञानी भये, तिनकी परम विरुद्धता देखो ! जो मीमांसा-शास्त्रके आचार्य 'जैमिनी' कर्मकी स्थापना करते हैं; कहते

हैं कि जो कछु है सो कर्म ही है, जीवका अधिष्ठान कर्म, जीव कर्महीसे उद्भव होता है औ कर्महीमें रहके वर्त्तता है औ कर्महीमें लय पाता है, कर्म ही कङ्गाल करता है औ कर्म ही दुःख देता है औ कर्म ही सुख देता है, जो कछु होयगा सो कर्महीसे होयगा, कर्म बिना कछु नहीं; ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि देवता औ सनकादिक आदि ऋषि भये, परन्तु सब कर्मके अधीन रहे; ज्ञान–योग सब कर्मके अधीन हैं। अरे! ज्ञानी सबको ज्ञान बताते हैं औ योगी सबको योग बताते हैं औ भक्त सबको भक्ति बताते हैं और उपासक सबको उपासना बताते हैं। फिर ये सब स्वतन्त्र हैं तो प्रकाश क्यों नहीं होता? कोईको होता है औ कोईको नहीं होता। तब सब कर्मके अधीन औ कर्म सबका अधिष्ठान। कर्म ही ब्रह्म। कर्मसे ज्यादा कछु नहीं। ज्ञान, योग, वैराग्य—ये सब कर्मके अधीन। बिचारे! जिधर कर्म नचावे, उधर नाचते हैं। ये अर्थ। अब वैशेषिक या वैदिकशास्त्रके आचार्य 'कणाद' बोलते हैं कि कर्म तो कछु स्वतन्त्र नहीं, समयके वश है। कधो प्रातः समय न हुआ तो प्रातःकर्म होयगा? औ मध्याह्न समय न हुआ तो मध्याह्न-कर्म होयगा? औ सायंकाल न हुआ तो सायं-कर्म होयगा? नहीं होनेका। बाल-कालमें तरुणकालका कर्म नहीं होता, औ तरुणकालमें बालकालका कर्म नहीं होता, औ तरुणकालमें वृद्धकालका कर्म नहीं होता। तब तो कर्म कालके अधीन। काल ही ब्रह्म, औ कालसे आगे कछु नहीं। काल पायके ब्रह्मा, विष्णु, महेश पैदा होते हैं औ काल पायके नाश हो जाते हैं। काल पायके सृष्टि उत्पन्न होती है औ काल पायके प्रलय होती है। काल पायके अवतार आदि जीव पैदा होते हैं औ काल पायके सुख-दुःख भोगते हैं, औ काल पायके कर्मके भी उत्पत्ति–प्रलय होते हैं। तब कर्म परतन्त्र, औ काल स्वतन्त्र। कर्म जब चाहे तब कियेसे होता है औ काल कछु कियेसे होता नहीं। तब काल सत्य, औ कर्म असत्य। जैसे किसान किसानी करता है, परन्तु काल न होय तो कछु अनाज पकता नहीं। काल न होय तो उसका कर्म सब मिथ्या। तब काल सबका अधिष्ठान। काल ही ब्रह्म। ये अर्थ। तब न्यायशास्त्रके आचार्य 'गौतम' बोलते हैं कि काल क्षण आता है, क्षण जाता है औ कर्म घटते–घटते घट जाता है। तो ये काल औ कर्म नास्ति, परमात्मा अस्ति। तीनकाल आते-जाते हैं औ काल ईश्वरके अधीन है। ईश्वर चाहे तो वर्षाकालको धूपकाल करे औ धूपकालको वर्षा वा ठण्ढकाल करे,

चाहे तो रङ्कको राजा औ राजाको रङ्क करे, कालको अकाल औ अकालको काल करे।

कवित्तः—सर्वेश्वरकी कृपा बिना कछु, ज्ञान अज्ञान सो काम न आवै। चाहे तो ज्ञानि अज्ञानि करे, अज्ञानिको तुरतहि ज्ञान बनावै ॥ चाहे अकर्मी कुकर्मी मुक्तावैं, चाहे सुकर्मिन नर्क भुगावै। चाहे तो सृष्टि रचे पल माँहि जु, चाहे तो सब छिण माँहि मिटावै ॥ १ ॥

इस प्रकारसे समस्त ईश्वरके अधीन। सूत्रधारी ईश्वर जैसा दारु-पुतलीके माफिक संसारको नचाता है। तब ईश्वर अस्ति, औ काल, कर्म, स्वभाव सब नास्ति। ये अर्थ। तब पातञ्जलशास्त्रवाले 'शेष' बोलते हैं कि तूने ईश्वरको देखा है? कि ईश्वर कैसा होता है? जो देखा नहीं तो उसका क्या प्रमाण? अरे! ईश्वर क्या है? कहाँ है? और कैसा है? तूने कछु भी देखा है कि अनुमानसे ही मानता है? बिना अनुभव ताको कुछ प्रमाण नहीं। औ अनुमानसे पीतर, पाथर, काष्ठ आदि आठ प्रकारकी मूर्ति, प्रतिमा-पूजा स्थापते हो, सो सर्व मिथ्या। तीर्थ--व्रत आदि जो स्थापते हो, ये सब मिथ्या अनात्मा। सच्चिदानन्द सत्य आत्मा। सो हम योगमार्गसे देखते हैं, औ तुम्हारेको कछु अनुभव नहीं! तुम पाथर पूजते हो। हम ब्रह्माण्डका कारखाना सब पिण्डाण्डमें देखते हैं। सो हमारी बात सची औ तुम्हारी बात सब झूठी। ईश्वरका अनुभव हमको है। तो योग सत्य औ सब मिथ्या। बिना योग कछु अनुभव नहीं होता। ये अर्थ। तब सांख्य-शास्त्रवाले 'कपिल मुनि' बोलते हैं कि एकदेशी अनुभव औ एकदेशी ज्ञान कछु कामका नहीं। ब्रह्म तो सर्वदेशी, सर्वसाक्षी, अकर्त्ता। करतूत तो सारी प्रकृतिकी है। योगसमाधि सारी प्रकृतिसे जानिये! संसारकी उत्पत्ति, स्थिति, लय सब प्रकृतिसे होता है। सो पाँच तत्त्व औ पचीस प्रकृति चार देहके सब तत्त्व नास्ति। इनका जाननेवाला मैं सर्वसाक्षी अस्ति। सम्पूर्ण अनित्य, मैं नित्य। योग-कर्म इत्यादि सर्व अनित्य। ये अर्थ। औ वेदान्त-शास्त्रवादी 'व्यास' बोलते हैं कि सर्व कल्पित शास्त्र हैं नास्ति। अरे! एक ब्रह्म अखण्ड सम्पूर्ण, सब आप-ही-आप। तामें अस्ति--नास्ति कहाँ सम्भवती है? ध्याता--ध्यान--ध्येय, ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय; ऐसी त्रिपुटी ब्रह्ममें सम्भवती नहीं। ब्रह्म तो अखण्ड, अद्वैत, एकरस। तामें द्वैत, नित्यानित्य, अथवा समाधि, ये सम्भवती नहीं। सब देखना औ देखनेमें आना औ देखनेवाला सब ब्रह्म, और कछु नहीं, सर्व नास्ति। ये अर्थ। इस प्रकार

'अति रे विरोधी देखो ! अति रे सयाना' * । जो छौ शास्त्रनके आचार्य बड़े-बड़े सयाने भये, इनमें बड़ा विरोध; मत प्रमाण कैसे होय ? और चार वेदमें भी विरोध है—ऋग्वेद कहता है कि परमात्मा निराकार, निर्लेप, अलख, अगोचर— 'निरालम्ब ब्रह्मेति श्रुतिः ।' अथर्वणवेद बोलता है कि ये सब मिथ्या, औ प्रपञ्च जो दिखता है सोई सत्य । औ ब्रह्म निरालम्ब, निर्गुण कछु नहीं । जो मरा सो फिर लौटके नहीं पैदा होता । जैसे वृक्षसे पत्र टूटता है फिर वृक्षको नहीं लगता। ऐसा जो मरा सो गया । 'सर्वेवाहंपुरुषेति श्रुतिः ।' औ यजुर्वेद कहता है कि ये दोनों नास्ति । परमात्मा क्षीरसागर-निवासी नारायण अस्ति । 'सगुणब्रह्मेति श्रुतिः ।' औ सामवेद कहता है कि ये सर्व मिथ्या कल्पना है । न सगुण, न निर्गुण, न दृष्टिगोचर । अध्यारोप अपवाद नहीं । ये सम्पूर्ण ब्रह्म अखण्ड अद्वैत। 'तत्त्वमसीति श्रुतिः ।' इस प्रकारसे चारों वेदमें भी विरोध † है । फिर देखो ! छौ दर्शन औ छानवे पाखण्ड सब संसारमें न्यारे-न्यारे ही अपना-अपना मत दृढ़ाते हैं, एक-से-एक विरोध करते हैं। सोये जीव सब ऐसे-ही-ऐसे मतनमें बन्धायमान् भये औ एक-एक मतनका पक्ष लेके एक-से-एक लड़ते हैं । सो सब कहाँ हैं ? हे जीव ! सब तेरी कल्पना, तेरा स्वरूप नहीं ॥४॥ 'सुनो हे नर बन्दा !' 'डाइनि डिम्भ सकल जग खन्दा ।' डाइनि कहिये बानी, आशा, तृष्णा औ स्त्री; औ डिम्भ कहिये गुरुवा लोग भेष षट्दर्शन औ नाना मत; याहीने सब जग खाया; बिना पारख । ये अर्थ ॥ ५ ॥ १०४ ॥

अति रे ! विरोधी देखो, अति रे ! सयाना ।

* छौ शास्त्रोंके आचार्य और सिद्धान्त—

शास्त्र—	मिमांसा ।	वैशेषिक ।	न्यायशास्त्र ।	पातञ्जल ।	सांख्य शास्त्र !	वेदान्त ।
आचार्य—	जैमिनी	कणाद ।	गौतम ।	शेष, पतंजलि;	कपिलमुनि ।	व्यासमुनि ।
सिद्धान्त—	कर्म	समय ।	सर्वज्ञ कर्त्ता ।	ज्योति-स्वरूप परमात्मा ।	प्रकृति-पुरुष ।	एक अद्वैत आत्मा जैसा-का-तैसा ।

† चार वेदके मन्त्र और सिद्धान्त—

वेद	मन्त्र	सिद्धान्त ।
ऋग्वेद—	निरालम्ब ब्रह्मेति श्रुतिः ।	निराकार निर्लेप अगम-अगोचर ।
अथर्वणवेद—	सर्वेवाहंपुरुषेति श्रुतिः ।	दृश्य जगत् ही सत्य ।
यजुर्वेद—	सगुण ब्रह्मेति श्रुतिः ।	सगुण परमात्मा ।
सामवेद—	तत्त्वमसीति श्रुतिः ।	सम्पूर्ण ब्रह्म अखण्ड अद्वैत ।

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०५ ॥ ❀ ॥

ये भ्रम भूत सकल जग खाया । जिन–जिन पूजा ते जहँड़ाया ॥१॥
अण्ड न पिण्ड न प्राण न देही । कोटि-कोटि जिव कौतुक देही ॥२॥

टीका गुरुमुखः—'ये भ्रम भूत सकल जग खाया । जिन–जिन पूजा ते जहँड़ाया ॥' भ्रम-भूत कहिये ब्रह्म-भूत, ताने सकल जग खाया औ जिन–जिन पूजा, अनुमान किया, मानन्दी किया, तेही जहँड़ाया ॥१॥ अरे ! न अण्ड, न पिण्ड, न प्राण, न देही । मिथ्या धोखा कछु है नहीं । तो कोटि-कोटि = कोटिन जीवोंको दुःख देते हैं, मानके आपु ही अनुमानरूपी होय जाते हैं जीव । ये अर्थ ॥२॥

बकरी–मुरगी कीन्हेउ छेवा । आगल जन्म उन्ह औसर लेवा ॥३॥
कहहिं कबीर सुनो नर लोई ! भुतवाके पुजले भुतवा होई ॥४॥१०५॥

'बकरी मुरगी कीन्हेउ छेवा ।' अरे ! नाना प्रकारकी बानी सुनी कि यज्ञ आदिक कर्म करनेसे स्वर्ग आदिक प्राप्त होता है, सो मिथ्या धोखा । ताके भरोसे देवी–देवता स्थापना करके बकरी–मुरगी मारने लगे । सो सब अगले जन्ममें वक्त पायकर बदला लेयेंगे, तब कछु देवताका मकदूर (शक्ति) नहीं कि बदला न लेने देवेंगे । क्योंकि देवता कल्पित, औ जीव अकल्पित । अरे ! रामचन्द्र सरीखे स्वयं देवता, जिन्होंने बालीको मारा । सो अवसर पायके कृष्ण अवतारमें उन्होंने व्याधाका अवतार लेके कृष्णको मारा ॥३॥ इसवास्ते गुरु कहते हैं कि हे नर लोई ! सुनो ! भूतके पूजे आपु ही भूत होनेको होता है औ ब्रह्मके माने आपु ही ब्रह्म होनेको होता है । न कहूँ ब्रह्म है, न कहूँ देवता है । सब मिथ्या धोखा । जो कछु होता है सो ये जीव ही होता है । जो कछु कल्पना है, सो बन्धनमें आपु ही परता है । ये अर्थ ॥ ४ ॥ १०५ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०६ ॥ ❀ ॥

भँवर उड़े बग बैठे आई । रैन गई दिवसो चलि जाई ॥१॥
हल–हल काँपे बाला जीव । ना जानों का करिहैं पीव ? ॥२॥

टीका गुरुमुखः—'भँवर उड़े बग बैठे आई ।' भँवर कहिये आशिक जीव, बग कहिये गुरुवा लोग; सो गुरुवा लोग जब जीवनके पास आयके बैठे, तब नाना प्रकारकी बानी दृढ़ावने लगे, औ जीव सब बानीके सङ्ग उड़ने लगे । सो नाना

प्रकारकी बानी अनुमान सिद्ध हो गया। सो ताही अनुमानमें रात-दिन चला जाता है ॥१॥ 'हल—हल काँपे बाला जीव।' यह जीव अज्ञानी हल—हल काँपे बालकवत्। जैसे बालकको कोई डरावता है अनेक प्रकारका भय देके, तब बालक डरता है। तैसे ये गुरुवा लोग जीवको डरावते हैं औ जीव डरते हैं। ये अर्थ। 'ना जानों का करिहैं पीव?' ये जीव हल—हल काँपते हैं कि ना जानों ईश्वर क्या करेंगे ? मेरी क्या गति होयगी? ॥ २ ॥

काँचे बासन टिके न पानी। उड़ि गये हंस काया कुम्हिलानी ॥३॥
काग उड़ावत भुजा पिरानी। कहहिंकबीर यहकथा सिरानी॥४॥१०६

'काँचे बासन टिके न पानी।' जैसे काँचे बासनमें पानी टिक सकता नहीं, रह सकता नहीं। इस प्रकारसे ये देहमें जीव सदा टिक सकता नहीं। सो ये दिन—रात कल्पना करते—करते, डरते—डरते हंस उड़ गये औ काया कुम्हिलाय गई ॥३॥ देखो—'काग उड़ावत भुजा पिरानी।' काग कहिये गुरुवा लोगोंको, भुजा कहिये जीव; सो गुरुवा लोगोंके उड़ावते—उड़ावते जीव पिराय गया, नाश भया धोखेमें पचिके। 'कहहिं कबीर यह कथा सिरानी।' अरे! तू जो मानन्दी किया था औ जिनका भय माना था, सो सब कहाँ हैं? वो तो देहका व्यवहार; जब देह छूटी तब सब रह गया। औ न गुरुवा लोग ही काममें आये, न ब्रह्म ही भया, न कोई देवता ही काम आये। सब मिथ्या कल्पना मिथ्याके सङ्ग गई। ये अर्थ ॥ ४ ॥ १०६ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०७ ॥ ❀ ॥

खसम बिनु तेलीको बैल भयो! ॥ १ ॥
बैठत नाहिं साधुकी सङ्गत। नाधे जन्म गयो ॥ २ ॥

टीका गुरुमुखः—'खसम बिनु तेलीको बैल भयो।' जो कोई खसम गुरुवा लोगोंने बताया, ताको विरह संसारमें भया; परन्तु देखनेमें तो काहूके नहीं आया। सो जैसे तेलीका बैल घूमता है और आँखिसे तो कछु दिखता नहीं। जबलग तेलीने हकाला, तबलग घूमता रहा औ जब छोड़ा तब उसी जगह-का-जगह ही है। न कहूँ गया, न कहूँ आया। इस प्रकारसे गुरुवा लोगोंने जबलग बहकाया, चलाया, तबलग बहकता चला गया। औ फिर चोला छूटा, तब न कछु भया,

न कहूँ गया। गर्भवाससे निकरा था, सो फिर गर्भवासहीमें समाया। अथवा वेदान्त विचार करके गुरुवा लोगोंके फन्देसे छूटा, तो फिर देखो ! न कहूँ गया, न कहूँ आया। ब्रह्म कहायके जगत्-का-जगत्में रहा। ये अर्थ ॥१॥ 'बैठत नाहिं साधुकी सङ्गत। नाधे जन्म गयो ॥' अब जो साधु पारखी हैं, तिनकी सङ्गतमें बैठता नहीं। पारख कहाँसे आवे ? जो गुरुवा लोगोंने धोखेमें नाध दिया—ज्ञान, भक्ति औ योग, ताहीमें नाधा रहता है। जैसा तेलीका बैल घानीमें नाधा रहता है; तद्वत् ॥ २ ॥

बहि-बहि मरहु पचहु निज स्वारथ। यमको दण्ड सह्यो ॥३॥
धन-दारा सुत राज काज हित। माथे भार गह्यो ॥४॥

'बहि-बहि मरहु पचहु निज स्वारथ।' नाना उपाधि मन्त्र, तन्त्र, पूजा, व्रत इत्यादि करते-करते मरते हैं, अपने स्वार्थके हेतु गुरुवा लोगोंके दण्ड सहते हैं, जैसा बोले तैसा करते हैं ॥३॥ जामें धन-धान्य, पुत्र-दारा औ राज्य प्राप्त होय औ अनेक कारज—जो कछु चित्तमें आवे, सो सब सिद्ध होय। ये हेतु माथे-पर नाना प्रकारके भार धरते हैं पूजा--उपासना आदि। ये जीव प्रथम कोई देवताकी उपासना करता है, औ कहता है कि हम दरिद्री। हमको कुछ द्रव्य मिले तो अच्छा है। सो कछु दिनमें अपनी भावना सिद्ध हुई, द्रव्य मिला, तब कहता है कि हे गुरु ! हमको अच्छी स्त्री मिले। तब कुछ दिनमें स्त्री भी मिली, तब कहने लगा कि हे प्रभु ! एक पुत्र होय। वो भी हुआ, तब कहता है कि राज मिले तो अच्छा है। सो भी मिला, तब कहता है कि सब मेरे दुश्मन मरे तो अच्छा है, औ मैं जो चितूँ सो सब होय। वो भी होने लगा, तब कहने लगा कि मैं सिद्ध, मैं धनवान्, मैं राजा, मैं सुखी। मेरे माफिक और कोई नहीं। ऐसा कहिके मदान्ध हुआ ॥ ४ ॥

खसमहि छाँड़ि विषय रङ्ग राते। पापके बीज बोयो ॥५॥
झूठी मुक्ति नर आस जीवनकी। उन्ह प्रेतको जूँठ खयो ॥६॥

'खसमहि छाँड़ि विषय रङ्ग राते। पापके बीज बोयो ॥' सबका खसम जीव, सो नाना प्रकारके विषय-रङ्गमें राते औ मदान्ध होयके चोला छोड़ा, तब खाविन्दी सब जाती रही। पाप कहिये विषय, ताको बीज बोयो। विषय-रङ्गमें अपने पदको नहीं प्राप्त भया, सो फिर गर्भवासमें गया। पाप कहिये गर्भवास, पापको बीज =

विषय । ये अर्थ ॥५॥ गुरुवा लोगोंने जो मुक्तिकी आशा लगाई जीवनको, सो मिथ्या । अरे ! उन गुरुवा लोगोंने 'प्रेतको जूँठ खयो ।' अरे ! आगे जो होयके बानी कथके ब्रह्मादि मर गये, तिनकी जूँठी बानी ये सब ग्रहण किये ॥ ६ ॥

लख चौरासी जीव जन्तुमें। सायर जात बह्यो ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! उन्ह श्वानकी पूँछ गह्यो ॥८॥१०७॥

सोई सायर चौरासी लक्ष्य जीव-जन्तुमें बह चला । सायर कहिये अनुमान, अनुमान कहिये ब्रह्म ॥७॥ सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! कहाँ है ब्रह्म? सुनो हे सन्तो ! 'उन्ह श्वानकी पूँछ गह्यो ।' श्वान कहिये ॐकार; सो उन ॐकारकी पूँछ गही । औ श्वान कहिये वेद; सो जीवन सब वेदकी बतकही पूछने लगे, वेदहीकी पूँछ गहके धोखेमें परे । ये अर्थ ॥ ८ ॥ १०७ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०८ ॥ ❀ ॥

अबहम भैलि बहुरि जल मीना। पूर्वल जन्म तपका मद कीन्हा ॥१॥
तहिया मैं अछलेउँ मन बैरागी। तज लेउँ मैं लोग कुटुम रामलागी ॥२॥

टीका गुरुजीवः—'अब हम भैलि बहुरि जल मीना ।' अब हम बहुरके योगी भये, तो पूर्व जन्मके भी हम योगभ्रष्ट थे । जल कहिये श्वासा, मीन कहिये जीव; सो जीव बोलता है कि पूर्वजन्ममें हम योगाभ्यासी थे। सो अभ्यास करते-करते सिद्धि नहीं हुई, बीचहीमें चोला छूट गया, ताते अब उत्तम मनुष्य-जन्ममें आयके फिर श्वासाके मीन भये औ उलटके ब्रह्माण्डमें चढ़े, कृतकृत्य भये। ये अर्थ ॥१॥ 'तहिया मैं अछलेउँ मन बैरागी । तज लेउँ मैं लोग कुटुम राम लागी ॥' तहिया = पूर्व जन्ममें मैं अपने मनसे वैरागी था । राम-प्राप्तिके हेतु लोग-कुटुम्ब सब त्याग किया था; परन्तु समाधि-स्थिति न भई औ रामकी प्राप्ति नहीं भई ॥२॥

तजलेउँ मैं काशी मति भई भोरी। प्राणनाथ ! कहु का गति मोरी ?॥३॥
हमहिं कुसेवक कि तुमहिं अयाना ? दुइमा दोष काहि? भगवाना ! ॥४॥

मति हमारी भोरी हो गई, तामें काशी = काया छूटी । अब फिर ये देह प्राप्त भई । सो हे प्राणनाथ ! हे गुरुनाथ ! क्या,गति मोरी ? अब मेरी क्या गति होवेगी ? ॥३॥ 'हमहिं कुसेवक कि तुमहिं अयाना ? दुईमा दोष काहि ? भग-

वाना ! ॥' हे भगवान् ! क्या हमहीं कुसेवक हैं ? जो कछु सेवा न बनि आई। कि तुम ही अज्ञानी हो ! कि कछु समझाते न बना ! ताते हम फिर गर्भवासमें आये औ इस जगत्‌में देह पाये। हे भगवान् ! हे गुरुनाथ ! दोनोंमें किसका दोष होयगा ? ॥ ४ ॥

हम चलि अइलि तुम्हारे शरणा। कितहुँ न देखों हरिजीके चरणा॥५॥
हमचलि अइलि तुम्हारे पासा। दास कबीर भल कैल निरासा॥६॥१०८

तब हम तुम्हारी शरण आये; परन्तु जो हरिका तुमने नाम बताया था, सो हरिजीके चरण कहूँ देखे भी नहीं। ताते फिर हम देहमें आये ॥५॥ भला ! अब हम देहमें आयके तुम्हारे पास आये प्रारब्धयोगसे, औ बड़े हमारे भाग्य ! जो आप हमको मिले। सो अबके वक्त दासको परमात्माने भला निराश किया, 'सम्पूर्ण मेरा स्वरूप, मैं आत्मा अद्वैत अखण्ड' ये निश्चय करवाया। ये अर्थ ॥६॥१०८॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ १०९ ॥ ❀ ॥

लोग बोले दुरि गये कबीर ! ये मति कोइ-कोइ जानेगा धीर ! ॥१॥

टीका मायामुखः—कबीर कहिये जाकी सत्तासे काया चलती है। जड़ काया जाकी सत्ता पाय चैतन्य-सी मालूम परे, सो कबीर, कायाबीर चैतन्य। सो ता चैतन्यको अज्ञानी लोग बोलते हैं कि दूर गये। कोई जीव स्वर्गको गये औ कोई जीव नरकको गये औ कोई जीव नाना योनिको गये—ऐसी त्रिपुटी–त्रिभाग चैतन्यके विषय करते हैं सो अज्ञानी। अरे ! चैतन्य क्या कहीं खण्ड है ? जो एक स्वर्गको जायगा औ एक नरकको जायगा औ एक नाना योनिको भरमेगा। चैतन्य तो अखण्ड निरन्तर, अन्तर कहीं नहीं, एकरस। तो आना--जाना मिथ्या। जैसे समुद्रकी लहर, बुद्‌बुदा औ तरङ्ग क्या समुद्रसे न्यारे रहते हैं ? क्या वो जल नहीं ? तद्वत् जीव सब आत्माके बीच स्वाभाविक उठते हैं औ स्वाभाविक रहते हैं और स्वाभाविक लय होते हैं, तो जीव ही आत्मा। तब उत्पत्ति, स्थिति औ लय—ये तीनों मिथ्या। एक आत्मा सत्य। 'ये मति कोइ-कोइ जानेगा धीर !' ज्ञानी जानेगा। ये अर्थ ॥ १ ॥

दशरथ सुत तहुँ लोकहि जाना। राम नामका मर्म है आना ॥२॥
जेहि जिव जानि परा जस लेखा। रजुका कहे उरग सम पेखा ॥३॥

'दशरथ सुत तिहुँ लोकहि जाना । राम नामका मर्म है आना ॥' दशरथके पुत्रको तीनोंलोकने जाना कि राम ! परन्तु रामनामका मर्म और ही है । अरे ! जो सबका अधिष्ठान सबमें रमता है, सो राम । औ असंख्यन जा अधिष्ठानमें दशरथ-पुत्र खड़े भये औ फिर लय भये, सो आत्मा राम । ये अर्थ ॥२॥ जेहि जीवको भ्रमसे जैसा जान परा, सो तैसा ही सिद्धान्त कायम करके माना । अँधेरामें रज्जुको भ्रमसे सर्प समान देखा, उसे सर्प ही कहने–मानने औ डरने लगा । तद्वत् बानी–कल्पनाके द्वैत-प्रपञ्चमें जीव भूला । ये अर्थ ॥ ३ ॥

यद्यपि फल उत्तम गुण जाना । हरि छोड़ि मन मुक्ति उन माना ॥४॥
हरिअधार जस मीनहि नीरा । औरजतनकछु कहैं कबीरा ॥५॥१०९॥

'यद्यपि फल उत्तम गुण जाना ।' अरे ! ऐसा आत्मा न जानके फल—अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि जो उत्तम गुण = वेद, ताके प्रमाणसे जो जाना–सो सब मिथ्या कल्पना । अरे ! प्रत्यक्ष आत्म-अनुभव छोड़के परोक्ष मुक्ति अनुमान करता है, ये सब मनका भ्रम नास्ति, औ आत्म-अनुभव अस्ति । ये अर्थ ॥४॥ 'हरि अधार जस मीनहि नीरा ।' हरि = ईश्वर सब जगत्का आधार ! जैसा मीनको जल आधार; तद्वत् द्वैतवादमें वेदने कहा । परन्तु अद्वैत विचारमें समर्थ अनुभविक लोगोंने और ही यतन कुछ कहा कि त्रिगुण विषय वेदने कहा सो सब जीवने माना कि एक कारण ईश्वर, औ कारज अनेक जीव—सो दोनों मिथ्या कल्पना, औ एक आत्मा सत्य । निर्द्वन्द, नित्य, सत्य, निर्योग—ऐसा जो जाने सो आत्मवान् । जगत्–ईश्वर कैसा ? जैसा समुद्र औ अनेक नदी, नाला, कूप, तालाब; औ दोनोंमें पानी एक । सो पानी सत्य औ नदी, नाला, कूप, तड़ाग = तालाब और समुद्र–ये उपाधि मिथ्या । ऐसा समुद्र माफिक बड़ी उपाधि ईश्वरकी, औ कूप--तालाब माफिक छोटी उपाधि जीवकी । औ दोनोंमें पानी एक, ऐसा आत्मा एक । नाम–रूप उपाधि मिथ्या; आत्मा सत्य । न जीव, न ईश्वर । ये अर्थ ॥५॥ १०९॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ११० ॥ ❀ ॥

आपन कर्म न मेटो जाई ! ॥१॥
कर्मका लिखा मिटे धौं कैसे ? जो युग कोटि सिराई ॥२॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! जासे अपना कर्म नहीं मेटा जाता, सो दूसरेकी

कर्म-रेखा कैसे मिटावेगा ? ॥१॥ जिससे अपना ही कर्म नहीं मेटा गया, उससे कोटि युग बीते तो भी दूसरेका कर्म नहीं मिटनेका । ये अर्थ ॥ २ ॥

गुरु वशिष्ठ मिलि लगन सुधायो । सूर्य-मन्त्र एक दीन्हा ॥३॥
जो सीता रघुनाथ बिवाही । पल एक सञ्चन कीन्हा ॥४॥

'गुरु वशिष्ठ मिलि लगन सुधायो । सूर्य-मन्त्र एक दीन्हा ॥' वशिष्ठजी ऐसा बुद्धिवन्त ज्ञानी औ योगमें भी श्रेष्ठ सिद्ध, तिन्होंने अच्छी लग्न शोधके रामचन्द्रको सूर्य-उपासना दई । औ रामचन्द्र भी ईश्वर ही कहलाते थे; परन्तु उनसे अपना कर्म नहीं मेटा गया । कहो ! अब उनके नाम-स्मरण करेसे औ उनकी भक्ति करेसे दूसरेका कर्म कैसे नाश होयगा ? ॥३॥ अब दुनियाँ सब कहती है कि भाई ! शुभ मुहूर्त, शुभ लग्न विचारके कोई काम करना ! तो क्या वशिष्ठने कुमुहूर्त विचारा था ? जो सीताका रघुनाथसे विवाह हुआ, सो सीताको एक पलभर भी सुख हुआ नहीं । भला ! जो आप ही भगवान् थे औ लग्न-मुहूर्त भी सचा हता, तो वे क्यों नाना दुःख भोगे ? तो लग्न-मुहूर्त मिथ्या धोखा । ये अर्थ ॥ ४ ॥

तीन लोकके कर्त्ता कहिये ! बालि बधो बरियाई ॥५॥
एक समय ऐसी बनि आई । उनहूँ औसर पाई ॥६॥

अरे ! तीनलोकके कर्त्ता कहाते थे, औ बालिको जबरदस्तीसे मारा ॥५॥ परन्तु एक समय ऐसी बनि आई कि बालि तो ब्याध हुआ औ रामचन्द्र कृष्ण हुए, तब उसने भी औसर पायके कृष्णको मारा ॥ ६ ॥

नारद मुनिको बदन छिपायो । कीन्हों कपिको स्वरूपा ॥७॥
शिशुपाल की भुजा उपारी । आपु भये हरि ठूठा ॥८॥

नारदके, विष्णुसे उनका रूप माँगनेपर विष्णुने नारदमुनिका बदन छिपा दिया और अपने सर्वाङ्गका पोशाकरूप देकर नारदमुनिका मुख बन्दरका कर दिया । पुनः अवसर पायके उसीके बदलामें राम-अवतारमें रामका सीतासे वियोग हुआ और बन्दरोंकी सहायता रामको लेनी पड़ी—इत्यादि कथा पुराणोंमें वर्णन है । (चाचर--१की चौपाई--६की टीकामें इसका भाव-कथा इसी ग्रंथमें विस्तारसे लिखा है; चाहे वहाँपर देख लीजिये) ॥७॥ शिशुपालकी भुजा श्रीकृष्णने उखाड़ी,

तो मृत्यु समयके बाद कृष्णके भी हाथ कटे औ जगन्नाथकी मूर्तिमें आप ठूठे भये ॥८॥

पार्वतीको बाँझ न कहिये । ईश्वर न कहिये भिखारी ॥९॥
कहहिं कबीर कर्त्ता की बातें । कमकी बात निनारी ॥१०॥११०॥

अरे ! पार्वतीको क्या बाँझन कहना ? औ महादेवको क्या भिखारी कहना ! ब्रह्माका शिर पारवतीके विवाहके समय महादेवने दक्ष-प्रजापतिके होममें उड़ाय दिया । सो ब्रह्म-हत्या महादेवके पीछे लगी, तब बहुत दुखी भये महादेव। भला! जो आप ही मालिक थे महादेव, तो ब्रह्महत्या क्यों न दूर किये ! तो हत्याके मारे शिव बहुत बेजार भये, गीली हाथीकी छाल गलेमें पहिरे औ बाघका चमड़ा ओढ़े औ नरकी खोपड़ीमें भीख माँगके खाने लगे औ चिता-भस्म लगायके श्मशानमें रहने लगे औ नरमुण्ड पहिरे । ऐसी गति उनकी भई । अब जीव सब उनके नाम औ उनके मन्त्रके भरोसे जीवहिंसा करते हैं, शिव-शक्ति-उपासक बकरा औ पशु मारते हैं औ कहते हैं कि हम उपासक हैं । तो इनके देवतोंका तो जीवहिंसाका दुःख छूटा नहीं, बदला देना पड़ा, औ इन भक्तनका कैसे छूटेगा ? ॥९॥ गुरु कहते हैं कि कर्त्ताकी बातें देखो-ये मनुष्यकी बातें । अपने विषय-भोगके वास्ते औ अपने जीभ-स्वादके वास्ते मन्त्र औ शास्त्र बनाया औ उसमें नाना प्रकारके दृष्टान्त मिलाया औ महा अकर्मकी बातें जगमें चलाया । परन्तु नाना योनिकी प्राप्ति होके सब जीवनका बदला देना होवेगा, कछु छूटनेका नहीं। ये अर्थ॥१०॥११०

॥ ❋ ॥ शब्द ॥ १११ ॥ ❋ ॥

है कोई गुरु ज्ञानी ! जगत उलटि वेद बूझै ! ॥१॥
पानीमें पावक बरे । अन्धहि आँखि न सूझै ॥२॥

टीका मायामुखः—'है कोई गुरु ज्ञानी ! जगत उलटि वेद बूझै ॥' महाज्ञानी अनुभवी जो कोई जगत्में हैं सो श्वासा उलटके स्वरूपको बूझे । राजयोग विधिसे, अथवा हठयोग विधिसे, अथवा ज्ञानयोग विधिसे, अथवा सांख्ययोग विधिसे बूझे कि एक आतमा । ये चार विधि बिना कछु आत्मस्थिति होती नहीं औ जीव मुक्त होता नहीं, बन्धनमें रहता है । ये अर्थ ॥१॥ गुरुमुख—'पानीमें पावक बरे । अन्धहि आँखि न सूझै ॥' पानी कहिये बानीको; बानीमें नाना तौरसे विरह-अग्नि बार दिया गुरुवा लोगोंने । औ ये जीव अन्धे अज्ञान हैं, जिनको कछु सूझ नहीं परता; मारे विरहके धाय-धाय धोखेमें परते हैं। ये अर्थ ॥ २ ॥

गाई तो नाहर खायो । हरिन खायो चीता ॥३॥
काग लङ्गर फाँदिके । बटेर बाज जीता ॥४॥

'गाई तो नाहर खायो । हरिन खायो चीता ॥' गाई कहिये बानीको, नाहर कहिये मनको, हरिन कहिये परमात्मा, परमात्मा कहिये जो सब मिलि एक; चीता कहिये चैतन्य, सो जब बानी सुना कि कोई अपना कर्त्ता है, तब मन उस बानीमें लीन हुआ । औ कहूँ श्रवण-मनन करके अथवा कहूँ योग करके तत्त्व-में-तत्त्व, देह-में-देह, अवस्था-में-अवस्था लय करके एक गोलाकार किया, ताको परमात्मा कहिये ! ताने जीव चैतन्यको खाया ॥३॥ 'काग लङ्गर फाँदिके । बटेर बाज जीता ॥' काग कहिये गुरुवा लोगोंको; सो गुरुवा लोगोंने जीवको नाना प्रकारसे फन्दामें फँसाया औ बटेर = बानी, ताने जीव बाजको जीता । जीव बानीके वश हुआ । ये अर्थ ॥ ४ ॥

मूस तो मञ्जार खायो । स्यार खायो श्वाना ॥५॥
आदि कोऊ देश जाने । तासु बेस बाना ॥६॥

'मूस तो मञ्जार खायो ।' मूस = जीव, मञ्जार = माया; सो मायाको जीवने खाय लिया औ ब्रह्म हुआ । 'स्यार खायो श्वाना ।' स्यार कहिये व्यासादि पण्डित, ताको श्वान = वेदने खाय लिया, भरमाय दिया । ये अर्थ ॥५॥ माया-मुखः—'आदि कोऊ देश जाने । तासु बेस बाना ॥' आदि कोऊ देश = ब्रह्म, ताको जो जाने सो ब्राह्मण; ऐसा मायाका उपदेश भया ॥ ६ ॥

एकहि दादुर खायो । पाँचहिं भुवङ्गा ॥७॥
कहहिं कबीर पुकारिके । हैं दोऊ एकै सङ्गा ॥८॥१११॥

गुरुमुखः—सो 'एकहि दादुर खायो । पाँचहिं भुवङ्गा ॥' एकहि दादुर कहिये ब्रह्म, ब्रह्म कहिये ॐकार; सो ॐकारने पाँच भुवङ्ग = पाँच अभिमानको खाया ॥७॥ औ दोनों एक सङ्ग भया, जीव-ब्रह्म एक भया । सो गुरु कहते हैं कि विचार करके देखो—कहाँ है ? अरे ! मिथ्या धोखा अनुमानमें सब जीव पड़े; बिना पारख । ये अर्थ ॥ ८ ॥ १११ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ११२ ॥ ❀ ॥

झगरा एक बढ़ो राजा राम ! जो निरुवारे सो निर्बान ! ॥१॥

ब्रह्म बड़ा कि ? जहाँसे आया ? वेद बड़ा कि? जिन्ह उपजाया ? ॥२॥

टीका गुरुमुख:—'झगरा एक बढ़ो राजा राम।' गुरु कहते हैं कि प्रथम चरणमें जब ये कच्चे तत्त्वनकी देह प्राप्त भई औ नारीके संयुक्त करके अनेक (सन्तानरूप) जीव उत्पन्न भये, तब त्रिविधि तापमें बहुत तप्त भये, दुःखित भये। त्रिविधि ताप कहिये—दैहिक, दैविक, भौतिक; (आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक) ये त्रिविधि ताप विवरण :—

कवित्त:—अन्तःकरण अध्यात्म जहाँ, विष्णु आधिदेव तहाँ। आधिभूत निर्विकल्प, ताहिको बताइये ॥ मन अध्यात्म जहाँ, चन्द्र आधिदेव तहाँ। सङ्कल्प विकल्प, आधिभूतहू रताइये ॥ चित्त अध्यात्म जहाँ, नारायण आधिदेव। अनुसन्धान आधिभूत, जहाँ-तहाँ जाइये ॥ बुद्धि अध्यात्म जहाँ, ब्रह्मा आधिदेव तहाँ। निश्चयता आधिभूत, जड़ता लखाइये ॥१॥ हङ्कार अध्यात्म जहाँ, शङ्कर आधिदेव तहाँ। अहंकृति आधिभूत, ताहिको बताइये ॥ कान अध्यात्म जहाँ, दिशा आधिदेव तहाँ। आधिभूत शब्दको, सुनन लखि पाइये ॥ नासिका अध्यात्म जहाँ, अश्विनि आधिदेव तहाँ। गन्ध औ सुगन्ध सोई, आधिभूत गाइये ॥ जिह्वा अध्यात्म जहाँ, बरुण कहिये आधिदेव। रस औ सुरस लेन, आधिभूत लखाइये ॥२॥ नेत्र अध्यात्म जहाँ, सूर्य आधिदेव तहाँ। रूपको देखाय सोइ, आधिभूत पाइये ॥ त्वचा अध्यात्म जहाँ, वायू कहिये आधिदेव। स्पर्श आधिभूत तहाँ, परतक्ष लखाइये ॥ हस्त है अध्यात्म जहाँ, इन्द्र कहिये आधिदेव। लेन-देन आधिभूत, बहुत मन भाइये ॥ पाँव है अध्यात्म जहाँ, उपेन्द्र कहिये आधिदेव। आधिभूत चलबो है, जहाँ-तहाँ जाइये ॥३॥ गुदा है अध्यात्म जहाँ, यम कहिये आधिदेव। मैलको बिसर्ग आधि-, भूतहू रताइये ॥ लिङ्ग अध्यात्म जहाँ, आधिदेव प्रजापति। मैथुनको करब येही, आधिभूत ल्याइये ॥ वाक् है अध्यात्म जहाँ, अग्नि आधिदेव तहाँ। बोलब सोई आधिभूत, जक्तमें बताइये ॥ ऐसे त्रिविधि ताप माँहि, जीव सब हैरान भये। सतगुरु कृपाल होय, ताहिको छोड़ाइये ॥ ४ ॥

दैहिक कहिये जो देहमेंसे उत्पन्न होता है ज्वरादि रोग। औ दैविक कहिये अचानक शिरपर पत्थर पड़े, कि घरमें बैठे हैं सो घर ऊपरसे गिर पड़ा, कि झाड़के तरे खड़े हैं सो झाड़ टूटके शिरपर गिरा। अचानक बेकारण दुःख भया सो दैविक। औ बाघने मारा, सर्पने काटा, चोरने मारा, राजदण्ड भया;

ऐसे दूसरे जीवके तरफसे जो दुःख होय, ताको आधिभौतिक कहिये। इस प्रकारसे नाना प्रकारका दुःख जीवनको हुआ, तब जीव सब व्याकुल भये औ झगरेमें परे। तब सबन मिलि मनसूबा किया कि अपने सुख-दुःखका दाता कोई ईश्वर है। जाका ऐश्वर्य जगत्‌में विदित है सो ईश्वर ! हम रैय्यत कछु लाचार औ बहुत दुःखी, तेरी मायाके वश हैं। तुम राजा हमारे मालिक, तूँ जो चाहे सो करे ! तूँ सर्व ऐश्वर्यका मालिक है, ताते हम तेरे दास। ऐसा कहिके नाना प्रकारसे ईश्वरका सिद्धान्त करने लगे। किसीने शक्तिको ईश्वर माना, औ किसीने महादेवको ईश्वर माना, औ किसीने विष्णुको ईश्वर माना, औ किसीने सूर्यको ईश्वर माना, औ किसीने गणेशको ईश्वर माना, औ किसीने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड-व्यापी है ताको ईश्वर माना। इस प्रकारसे नाना प्रकारके सिद्धान्त औ उपासनाका झगरा बढ़ा औ एक-को-एक दोष देने लगे। सो झगरेमें जीव परे औ नाना बन्धनमें परे, सोई झगरा बढ़ा। राजा कहिये ईश्वर, औ राम कहिये आत्मा। जब निरुवारा किया कि ब्रह्माण्डमें जो व्यापक है सो भी चैतन्य, औ पिण्डाण्डमें जो व्यापक है सो भी चैतन्य। तो चैतन्य तो एक, औ नाम-रूप न्यारे-न्यारे। सो उपाधि मिथ्या, औ चैतन्य सत्य। जैसा समुद्र औ कूप-तालाव, तैसा जीव औ ईश्वर; परन्तु पानी दुहुनमें एक। नदी, नाला, कूप, तालाव, समुद्र—ये सब नाम-रूप उपाधि मिथ्या। इस प्रकारसे आत्मा सत्य औ नाम-रूप उपाधि मिथ्या; ऐसा जो निरुवारा किया, सो निर्वाण आत्मा बना। झगरा कहिये जगत्-जीव त्वंपदार्थ; एकराजा = ईश्वर, राम = एकता, आत्मा निर्वाण। ये अर्थ ॥२॥ 'ब्रह्म बड़ा कि ? जहाँसे आया ?' अरे ! ब्रह्म बड़ा ? कि ऐसी भावना जासे उठी, सो जगा बड़ा ? कि ब्रह्म बड़ा ? अरे ! आनन्द-आनन्द सब कहते हैं; परन्तु जहाँसे आनन्द उपजा, सो ठौर कौन ? ताको नहीं परखते औ आनन्दमें लीन होय रहे हैं। अरे ! पृथिवी तत्त्वकी दो कला—गन्ध छोड़ना औ गन्ध आकर्षण करना; औ दो इन्द्री पृथिवीकी—नाक औ गुदा। सो गुदासे गन्ध छोड़ देते हैं औ नाककी कलासे गन्ध खैंच लेते हैं। परन्तु 'गन्ध' ऐसा जानना, ये स्वभाव तेरा है। जलकी इन्द्री दो—लिङ्ग औ जिह्वा। ताकी दो कला—रस उपजावना औ रस खैंच लेना। सो रसको जाननेवाला चैतन्य बिना कौन है ? अग्निकी इन्द्री दो—आँख औ पाँव। ताकी कला दो-रूप देखना औ पाँवमें तेज रखना। परन्तु तेजका जानने-

वाला तू ही । वायुकी इन्द्री दो—हाथ औ त्वचा । ताकी कला दो—स्पर्श करना औ स्पर्शको आकर्षण करना । परन्तु स्पर्शको जाननेवाला तू ही । आकाश-की दो इन्द्री—वाक् औ कान । ताकी दो कला—बोलना औ शब्द आकर्षण करना । परन्तु इनका जाननेवाला तू ही । तेरे बिना ये पाँचों जड़ । इनमें क्या सत्ता है जो सबनके रस-स्वभावको जाने ? अरे ! पाँच तत्त्व भी जड़ औ इनके विषय भी जड़ । इनमें कछु सत्ता नहीं । तेरे बिना इनके गुण-दोष जाननेवाला कौन है ? भला ! पाँच तत्त्वनकी दश इन्द्री औ दश कला । इनका जाननेवाला जीव है ? अब देवता कहाँ है ? तो चतुर्दश देवता मिथ्या तेरी कल्पना। अब ऐसी कोई कल्पना करेगा कि इन्द्रिय भी हैं औ तत्त्व भी हैं; परन्तु अन्धा, बहिरा, पङ्गुला क्यों होता है जो देवता नहीं तो ? ये शङ्का । तो एक आँखी अन्धा औ एक कान बहिरा औ आधा अङ्ग शून्य औ एक पाँव पङ्गुला होता है, तो आधा देवता जाता रहता है क्या ? सो आधा देवता जाता है औ आधा देवता रहता है, ये बात नहीं सम्भवती । तो तत्त्वकी आधी कला शून्य हो जाती है । भला ! अन्तःकरण आकाशका स्वभाव । जो ब्रह्मको बड़ा आनन्द निर्विकल्प मानिये, तो आकाशकी कला अन्तःकरणका स्वभाव जीव सहित अनुभवमें आता है; परन्तु वो निर्विकल्पमें जीव सामिल न रहे तो निर्विकल्प कछु माल नहीं; जड़ शून्य मिथ्या धोखा । जो ब्रह्म सहविकल्प मानिये, तो चित्तका स्वभाव वायुकी कला जीव सहित एकत्त्व मालूम होती है । उसमें जीव सामिल न रहे, तो सहविकल्प कछु माल नहीं । तो जैसा-का-तैसा, न निर्विकल्प न सहविकल्प—ऐसा मानिये तो बुद्धिका स्वरूप । बुद्धि पृथिवीकी कला जड़, जीव सहित अनुभवमें आती है । अगर जीव न होय तो वो भी कछु माल नहीं । जो ईश्वर दूसरा ब्रह्माण्डमें औ स्वर्गादिकमें मानिये, तो सङ्कल्प-विकल्प मनका स्वभाव । मन पानीकी कला, जीव संयुक्त 'दूसरा परमात्मा' ऐसा मालूम होता है और जीव सङ्कल्प-विकल्पमें सामिल न रहे, तो दूसरा परमात्मा मिथ्याभूत । भला 'प्रत्यक्ष आँखसे देखना सोई परमात्मा' ऐसा मानिये, तो अग्निकी कला, जाग्रत् अवस्था, हङ्कारका स्वभाव जीव संयुक्त मालूम होता है । अगर जीव देह-अभिमानमें सामिल न होय, तो प्रत्यक्ष जेता देखनेमें आता है सो सब जड़ औ नास्ति । जो कभी जीव जाग्रत्में सामिल न होय तो प्रत्यक्ष कछु माल नहीं, मिथ्याभूत । तो ब्रह्मका सिद्धान्त अब कैसा मानिये ? ब्रह्म मिथ्या, जीवका अनुमान । जीव बिना कछु सिद्ध होता नहीं ।

तो जीव सत्य औ ब्रह्म आदि अनुमान मिथ्या । भला ! तो जीव बड़ा ठहरा । औ वेद–श्रुति कहती है कि ब्रह्म बड़ा, सबका अधिष्ठान; औ जीव न कछु अज्ञान-वश । ये शङ्का । तो गुरु कहते हैं कि 'वेद बड़ा कि ? जिन्ह उपजाया ?' अरे ! वेद तो कछु आकाशसे गिर नहीं पड़े, और निर्जीवसे कहीं वेद औ बानी पैदा होती हैं ? तो तूँ विचार करके देख कि वेद औ नाना बानी कहाँसे पैदा भईं ? औ किनने बनाईं ? सो तुम जानो कि बानी बनाना, ये कछु निर्जीवका धर्म नहीं । तो जीवहीसे बानी बनी औ जीव ही बानी बाँचता है, औ जीव ही बानीका विचार करता है औ ब्रह्मको मानता है अपरोक्ष वा परोक्ष बानीके आधार-से । सो बानी जीवकी कल्पना । तो जीव सत्य, औ बानी-कल्पना असत्य नास्ति । भला ! बानी तो जीवकी कल्पना; परन्तु सब बड़े-बड़े समर्थ सनकादिकनने माना । जो आप न मानना, तो दोष तो नहीं होनेका ? । ये शङ्का ॥ २ ॥

ई मन बड़ा कि ? जेहि मन माना ? राम बड़ा कि ? रामहि जाना ? ॥३॥
भमिभ्रमिकबिरा ! फिरेउदास । तीर्थबड़ा कि तीर्थका दास ?॥४॥११२॥

'ई मन बड़ा कि ! जेहि मन माना ?' ये मनुष्य सबसे बड़ा—जिसने सबको माना ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर आदि । जो जीव न माने तो मानन्दी ब्रह्म, आत्मा, ईश्वरादि कछु माल नहीं । तो मानन्दी मिथ्या कल्पना, औ माननेवाला सच्चा । ये अर्थ । भला ! 'राम सर्व कर्त्ता-हर्त्ता, सर्वाधिष्ठान' ऐसा सबका प्रमाण है बड़े-बड़े अनुभविक लोगोंका । इसको कैसे न मानना ? । ये शङ्का । तो राम सच्चि-दानन्द बड़ा ? कि जाने 'सच्चिदानन्द' ऐसा जाना, सो जीव बड़ा ? अरे ! जो सच्चिदानन्दका जाननेवाला जीव न होय, तो सच्चिदानन्द औ राम कछु वस्तु नहीं । ये अर्थ ॥३॥ 'भ्रमि–भ्रमि कबिरा ! फिरे उदास । तीर्थ बड़ा कि ? तीर्थका दास ?' अरे ! भ्रमि–भ्रमि जीव उदास होयके गङ्गादि तीर्थनकी स्थापना करता फिरता है औ आप दास बनता है; परन्तु तीर्थका दास जीव न होय तो तीर्थ कछु माल नहीं । जिस नदीको सब जीव मिलके स्थापना करें औ जायँ, सोई महातीर्थ । औ गङ्गादिको कोई नहीं माने औ कोई न जाय, तो जैसे सब नदी, तैसी गङ्गा । ये अर्थ ॥ ४ ॥ ११२ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ११३ ॥ ❀ ॥

झूठेहि जनि पतियाउ हो ! सुनु सन्त सुजाना ! ॥१॥

तेरे घटहीमें ठगपूर है। मति खोवहु अपाना ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—'झूठेहि जनि पतियाउ हो ! सुनु सन्त सुजाना ! ॥' हे सुजान ! हे सन्त ! झूठा भास-कल्पना, ताको मत् पतियावो ! जो कछु बानीका भास है औ लक्ष्यका भास है ब्रह्म, ताको मत् प्रतीत करो ! वो झूठा धोखा जगको कारण। हे जीव ! तुम सुनो ! सुज्ञानको प्राप्त होके पारखमें शान्त होवो ! सुज्ञान कहिये शुद्ध ज्ञान, जाके जाननेमें कछु कसर न ठहरे, सो शुद्ध ज्ञान। औ सब तत्त्वमसि आदि कसर परखके पारखमें शान्त भया, फिर कभी उसमें कल्पना औ अनुमान उद्‌गार न होय, सो सन्त। ये अर्थ ॥१॥ सो गुरु जीवसे कहते हैं कि 'तेरे घटहीमें ठगपूर है।' जाको ब्रह्म औ आत्मा औ ईश्वर, ऐसा वेद गावता है, सो त्रिविध धोखा। ता धोखेमें तुम अपनेको मत् खोओ ! तुम सुजान = शुद्ध चैतन्य हो, ताते शुद्ध पारखको प्राप्त होके शान्त होओ। ये अर्थ ॥ २ ॥

झूठेकी मण्डान है। धरती असमाना ॥३॥
दशहुँ दिशा वाकी फन्द है। जीव घेरे आना ॥४॥

'झूठेकी मण्डान है। धरती असमाना ॥' धरती कहिये अर्ध, तरे, औ असमान कहिये ऊर्ध्व, ऊपर। सो कोई कहते हैं योगी कि ब्रह्म तरे = सबमें भरा है। औ कोई कहते हैं कर्मिक, उपासक, नैयायिक कि परमात्मा ऊपर सबसे न्यारा है। औ कोई वेदान्ती कहते हैं कि सम्पूर्ण जगत् आत्मारूप है। अर्ध-ऊर्ध्व भेद शून्य नहीं। जैसा पृथिवीका विकार घट-कुम्भादिक पृथिवी ही है औ आकाशका रूप घट, मठ, पटाकाशादि सब आकाश ही है। तद्वत् जगत् औ ब्रह्माण्ड सम्पूर्ण ब्रह्म ही है। नाम-रूप उपाधि मिथ्या भ्रम। इस प्रकारसे ज्ञानी-विज्ञानिनका सिद्धान्त है, सो भी जीवका धोखा। तू अच्छा परखके देख ! भला ! जो जीव न होय, तो ये सिद्धान्त कौन करे ? सो तू देख कि जो-जो जीवको भास हुआ, सो-सो सब जीवने निश्चय किया औ उसीकी अधिकाई वर्णन की, अपनेको भूला बिना पारख। सो पारखको तू प्राप्त हो औ भास-अध्यासादि बन्धन जानके तोर डार ! पारख तेरा रूप है। पारखके ऊपर कछु नहीं ॥३॥ 'दशहुँ दिशा वाकी फन्द है। जीव घेरे आना ॥' औ दशों दिशा कहिये चार वेद, छौ शास्त्र; सो सम्पूर्ण धोखेका फन्द है, जा धोखेसे आप अपनेको भूला औ कहा कि मैं आत्मा दशों दिशा चराचरमें पूर्ण हौं। इस प्रकारसे जीव भ्रमचक्रमें

पड़के गाफिल हुआ। जो गाफिली आदिमें खड़ी हुई, सोई गाफिली अन्तमें स्थिति ठहरी। ये अर्थ ॥ ४ ॥

योग जप तप संयमा। तीरथ व्रत दाना ॥५॥
नौधा वेद कितेब हैं। झूठेका बाना ॥६॥

कैसे भ्रमचक्रमें परा, सो सुनो—प्रथम तो कोई कर्त्ता दूसरा है, ऐसी कल्पना की नैयायिक-मत। फिर उस कर्त्ताकी प्राप्तिकी इच्छा की, ताते नाना कर्मनकी कल्पना बढ़ी। कहीं कहा कि योग किये बिना ईश्वरकी प्राप्ति नहीं। ताते नाना हठयोग, राजयोग, पातञ्जल योगमत कल्पित किया औ उसपर आरूढ़ हुआ। और किसीने उपासना कल्पित की, ईश्वरका नाम-ध्यान आराधने लगा, नाना प्रकारके यज्ञादि करने लगा, अश्वमेध, नरमेध, गोमेध आदिक यज्ञ करने लगे; औ कोई नाना प्रकारके मन्त्रनका जाप करने लगे, औ कोई तपस्या करने लगे, पञ्चाग्नि साधने लगे; औ दूध आहार, फल आहार, तृण आहार, चान्द्रायणादि व्रत आचरण करने लगे, औ कोई संयम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहारादिक कर्म आचरण करने लगे, औ कोई गंगादिक तीर्थ आचरण करने लगे औ व्रत चान्द्रायणादि औ दान गोदानादि ॥५॥ औ नौधाभक्ति—येतिक कल्पना औ वेद-कितेब आदि बानी, ये सब झूठेका बाना कल्पनाके हेतु (कारणसे) उठाय लिया। ये सब धोखेका बाना। ये जीव तो स्वतः आप ही है, तो इसको योग, जप, तप आदिक कर्म काहेको चाहिये ? तो भ्रमवश मिथ्या धोखेके हेत। ये अर्थ ॥६॥

काहूके बचनहिं फुरे। काहू करामाती ॥७॥
मान बड़ाई ले रहे। हिन्दू तुरुक जाती ॥८॥

'काहूके बचनहिं फुरे। काहू करामाती ॥' जो ऐसा कोई कहेगा कि योग, क्रियादि करेसे काहूको वचन-सिद्धि, औ काहूको करामात = मन्त्र-सिद्धि होती है। सो मानना कैसा नहीं ? तो बहुत दिन मनको एकाग्रताई किया उन्मुनी आदि ध्यान करके, ताते वचन-सिद्धि औ करामात हुई ॥७॥ ताते जगत्में मान-बड़ाई हुई। परन्तु जब चोला छूटा, तब सबहीं नाश हो गई। कछु पारख-स्थिति नहीं प्राप्त भई, तो सब मिथ्या धोखा। ये अर्थ ॥ ८ ॥

बात ब्योंते अस्मानकी। मुद्दति नियरानी ॥९॥

बहुत खुदी दिल राखते। बूड़े बिनु पानी ॥१०॥

अरे! 'बात ब्योंते अस्मानकी। मुद्दति नियरानी ॥' बातें तो बहुत-बहुत अस्मानकी करते हैं कि हम सिद्ध, हम करामाती, हम कर्मिष्ठ, हम धनपात्र, जो चाहें सो करैं। परन्तु इनके ऐश्वर्यकी मुद्दत नजदीक आई, मौत आई। जब मरेंगे तब सबही छूट जायगा। आखिर चौरासीको प्राप्त होवेंगे ॥९॥ 'बहुत खुदी दिल राखते। बूड़े बिनु पानी ॥' खुदी कहिये वासना, आशा; बहुत प्रकारकी वासना करके आशा करते थे, सो बिनु पानी धोखेमें बूड़े। पानी कहिये बानी; सो नाना प्रकारकी बानी औ सिद्धान्त किया, परन्तु आखिर 'सब मिथ्या' कहके अनिर्वाच्च धोखेमें बूड़े औ अनेक योनि गर्भवासमें आया; बिना पारख। ये अर्थ ॥१०॥

कहहिं कबीर कासों कहौं? सकलो जग अन्धा! ॥११॥
साँचेसे भागा फिरै। झूठेका बन्दा ॥१२॥११३॥

गुरु कहते हैं कि ये सब संसार बिना पारख अन्धा है। इनको कछु सूझ पड़ता नहीं। अरे! कहो—कहीं भी तुमको जीवसे और कोई नजर आता है? जो नजर नहीं आता, तो खाविन्द ब्रह्म कासों कहो? ॥११॥ अरे! सच्चा जो जीव है, तासे भागते फिरते हो औ झूठा-धोखा जो वेदने औ गुरुवा लोगोंने बाँधा है, सो उसके वश होयके झूठ-धोखेका बन्धुवा हो रहे हो। बिना पारख बोलते हैं कि हम रामके बन्दे, हम खुदाके बन्दे। ऐसा आसक्त हो रहे हैं। ये अर्थ ॥ १२ ॥ ११३ ॥

॥ ❁ ॥ शब्द ॥ ११४ ॥ ❁ ॥

सार शब्दसे बाँचि हो! मानहु इतबारा हो! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—'सार शब्दसे बाँचि हो! मानहु इतबारा हो! ॥' गुरु कहते हैं कि हे जीव! सारशब्दसे बाँचि हो! सारशब्दका विचार करेसे भ्रम-धोखेकी फाँससे बचोगे। भ्रम-धोखा कहिये तत्त्वमसि, जा धोखेके प्रतापसे जीव जगदाकार आत्मा बन रहे हैं। सो त्वंपद कहिये काल, तत्पद कहिये सन्धि, असिपद कहिये झाँई; ये त्रिविधि जाल—अज्ञान, ज्ञान औ विज्ञान। सो तीनों जाल जाते निरुवारा होय औ पारखकी प्राप्ति होय, ताको 'सारशब्द' कहिये। सो सारशब्दसे जीवका निरुवारा होता है, स्थिति होती है। ये अर्थ ॥ १ ॥

आदि पुरुष एक वृक्ष है। निरञ्जन डारा हो ! ॥२॥
त्रिदेवा शाखा भये। पत्र संसारा हो ! ॥३॥

अब गुरु आरम्भ बताते हैं—आदिमें जो पुरुष था, सोई आदिपुरुष। पक्के तत्त्व—धीरज आदि तत्त्वकी देह, सोई वृक्ष; औ एक कहिये जीव। सो जीवने अपने पक्के रूपको देखा औ बहुत खुश हुआ, ताते पक्की देहमेंसे आनन्द उठा। जाको वेदने 'सर्वोत्कृष्ट आनन्द, सच्चिदानन्द, असिपदार्थ निरञ्जन' ऐसा गाया, सो पक्की देहसे फूटा। ताको डार कहिये ॥२॥ औ देव त्रय (त्रिदेव) ता डारसे पैदा भये, ताते शाखा भये। वृक्ष पक्का, तासे आनन्द उठा; सो आनन्दसे जीव भूला औ आप आनन्दरूपी हो गया। तब पक्की देहकी विस्मृति भई औ आनन्दमेंसे स्फुरण हुआ। तब सब तत्त्व--प्रकृति पलट गई औ कच्ची देह हो गई। तब स्मृति आई औ अपनी देह देखी तो जैसी थी, वैसी अवयव सहित देखी, तत्त्व–प्रकृति सहित देखो। तब इच्छा पैदा भई। सो ता इच्छाका रूप बना, सोई नारी। ता नारीसे पुत्र तीन—ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर पैदा भये। फिर उनसे नाना बानी, नाना कल्पना सहित यह जगत् पैदा भया। इस प्रकारसे पेड़ पक्का औ आनन्द डार औ त्रिदेवा शाखा औ पत्र संसार। ये अर्थ ॥ अब परिणाम अर्थ सुनोः— कि आदिपुरुष कहिये मनुष्य; सो मनुष्यसे अनुमान खड़ा भया—ब्रह्म निरञ्जन। अरे! मनुष्य बिना 'निरञ्जन ब्रह्म' ऐसा कल्पनेवाला कौन है? सो देखो! मनुष्यहीने ब्रह्म कल्पा औ तासे ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी उत्पत्ति बताई औ ब्रह्मा, विष्णु, महेशसे जगत्की उत्पत्ति, स्थिति, लय बताई। सो तुम विचार करो कि न कोऊ ब्रह्म है, न कोई ईश्वर है। सब मनुष्यकी कल्पना। आपहीने कल्पि-कल्पि सब खानि औ बानी बनाई ॥ ३ ॥

ब्रह्मा वेद सही कियो। शिव योग पसारा हो ! ॥४॥
विष्णु माया उत्पति कियो। ई उरले ब्यौहारा हो ! ॥५॥

अब जिनने वेद सही किया, सोई मानुषका नाम ब्रह्मा; औ जिनने योग पसारा, सोई मानुषका नाम शिव ॥४॥ औ जिनने नाना प्रकारकी उपासना–भक्ति उत्पत्ति की, सोई मानुषका नाम विष्णु। सो ये सब उरला व्यवहार है। उरला व्यवहार कहिये ऐली तरफका व्यवहार, कछु पक्की देहसे नहीं। ये अर्थ ॥५॥

तीन लोक दशहूँ दिशा । यम रोकिन द्वारा हो ! ॥६॥
कीर भये सब जीयरा ! लिये विषका चारा हो ! ॥७॥

तीनलोक कहिये—त्रिकुटी ब्रह्माका लोक, कण्ठ विष्णुका लोक, औ हृदय शिवका लोक; ये तीन लोक । दश दिशा = दश इन्द्री, यम कहिये साधन; सो साधन करने लगे । जो त्रिकुटी, श्रीहट, औ गोल्हाट; ये तीन लोकमें पवन रोकी औ दशों द्वारसे काया कसी, याको नाम यम ॥६॥ 'कीर भये सब जीयरा । लिये विषका चारा हो ! ॥' कीर कहिये तोतेको; जो जीव सब तोते बने औ 'नलिका-यन्त्र न्याय' फन्दे । स्वर्ग आदिक विषय-प्राप्ति, औ धन—धान्यादि, पुत्र—पौत्रादि विषय, औ अणिमादि सिद्धि, मुक्ति आदि विषयकी लालच लगाई। सो लालचके मारे जीव सब बन्धनमें परे । जैसे चारेके लालचसे आयके तोता नलिकापर बैठता है औ मजबूत पकड़ा कि पाँव ऊपर औ शिर तरे भया औ फँसा । तद्वत् जीव सब फल-आशा देखके बहु बानिनमें फँसे । ये अर्थ ॥ ७ ॥

ज्योति स्वरूपी हाकिमा । जिन्ह अमल पसारा हो ! ॥८॥
कर्मकी बन्शी लायके । पकरो जग सारा हो ! ॥९॥

ज्योति-स्वरूपी कहिये माया, माया-स्वरूपी = गुरुवा, सोई हाकिम बने संसारमें हुकुम दृढ़ावने लगे; औ नाना प्रकारके सब अमल पसारा, वेदादिक बानी सब कल्पना पसारी ॥८॥ औ नाना प्रकारके कर्मनकी फाँसी लगायके सब जग बन्ध किया ॥ ९ ॥

अमल मिटावो तासुका । पठवों भव पारा हो ! ॥१०॥
कहहिं कबीर तोहिं निर्भय करों । परखो टकसारा हो ! ॥११॥११४॥

ताते गुरु कहते हैं कि वेद औ बानी आदि जेता गुरुवा लोगोंका अमल है, सो सब जीवको बन्धन है । सो ताको परखके मेटो ! मैं तुम्हारेको भवपार करता हौं । भव कहिये आत्मा महाप्रलय कालके समुद्र सरीखा । जैसे-का-तैसा असि-पदार्थ । ताके पार कहिये पारख-भूमिका; जापर ठहरनेसे तीनों परखनेमें आते हैं— जगत्भाव, ब्रह्मभाव, आत्मभाव । सो पारखपर तेरेको पठावता हौं, प्राप्त कराता हौं । ये अर्थ ॥१०॥ 'कहहिं कबीर तोहिं निर्भय करों । परखो टकसारा हो !॥' गुरु कहते हैं कि देखो ! सब मिथ्या—धोखेको परखो ! तेरेको पारखरूप निर्भय

करों। 'परखो टकसारा।' टकसारा कहिये जहाँ सब बानी औ अनिर्वचनीय औ जैसे-का-तैसा, सबकी कसर परखनेमें आवे। जहाँ सबकी पारख होय, सो टकसार बीजक। बीजकका विचार अक्षर-अक्षरका करे, तब पारख-भूमिकाको जीव प्राप्त होता है, रहित होता है। ऐसा गुरु बोलते हैं ॥ ११ ॥ ११४ ॥

॥ ❀ ॥ शब्द ॥ ११५ ॥ ❀ ॥

सन्तो ! ऐसी भूल जग माहीं। जाते जीव मिथ्यामें जाहीं ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! जैसी भूल जगत्में परी, ताको प्रभाव सुनो—प्रथमारम्भमें जीव पक्के रूपमें था। पक्के तत्त्व, पक्की भूमिका। तब अपने रूपको देखा औ बहुत प्रसन्न हुआ। ता प्रसन्नताईमें आनन्द उठा। सो हंसको आनन्दमें अपनी देहकी विस्मृत्ति हुई औ परम आनन्दमें मग्न होयके आनन्दी आनन्दरूप हो गया। ता आनन्दको सबने ब्रह्म अधिष्ठान कहा। भला ! ताही आनन्दमें हंसा मिलत ही तत्त्व-प्रकृति सब पलटी औ स्फूर्ति हुई, तब पक्केका कच्चा हुआ। परन्तु हंसको कछु खबर नहीं—जो मैं पहिले पक्का था औ अब कच्चा हुआ। ऐसी फहम न रही। जैसा आकार था, तैसा आकार हुआ। तब कच्चे तत्त्वनके स्वभावसे इच्छा अनेक प्रकारकी हुई, ताते अनेक प्रकारके रूप धारण करके आप ही खड़ा हो गया। जाको वेदने कहा—'एकोहं बहुस्याम्'। भला ! जब पक्केका कच्चा हुआ औ आपको तो खबर नहीं; फिर किसने जाना कि पक्केका कच्चा हुआ ? ये शङ्का। तो पारखने जाना। भला ! पारख क्या निरुपाधि ! कि सहउपाधि ! उपाधि बिना जाना नहीं जाता। ये शङ्का। तो पारख निरुपाधि भूमिका सही; परन्तु कछु जड़ नहीं औ 'जानना' ऐसी उपाधि भी नहीं। परन्तु जो कोई जीव उसपर आया—ताको सम्पूर्ण कल्पना, आदि-अन्त गाफिली, अनुमान परखाय देना, यह उस भूमिकाका स्वभाव ही है। ताते जो कोई जीव पारखपर आया, ताने सब जाना औ सब बताया। जाते सब परखनेमें आवे, सो पारख। सो जगत्में जब नाना प्रकारका दुःख पाया जीवने, तब जीव कहता औ चाहता है कि मेरेको सुख होना, औ सुख नहीं होता, दुःख ही होता है। जीव चाहता है कि मेरेको धन हो, धान्य हो, पुत्र हो, अच्छी स्त्री हो, देह सुखी रहे औ कदहीं मरण न हो। परन्तु ये सब उलटा होता है। जो जीव चाहता है सो होता नहीं, ताते दुःखित हुआ औ घबराया कि "आपन

लाचार। अपनेसे कछु हो सकता नहीं। अपना कर्त्ता कोई और दूसरा है। जिनने अपनेको पैदा किया, वह चाहे सो करे।" ता कर्त्ताके हेत नाना प्रकारकी कल्पना बढ़ी औ छौ शास्त्र पैदा भये। सो उनका मत न्यारा-न्यारा पीछे वर्णन किया है। और अब चार्वाक्का मत निराकरण होता है, सो सुनोः—

कोई आचार्य बोलते हैं कि बिन्द ब्रह्म। बिन्दसे काया उत्पन्न होती है औ बिन्दके आधारसे काया चलती है। ताते 'वीर्य ब्रह्मदिव्यजानात्'। तब दूसरा वाक् बोलता है कि वीर्य तो देहसे पैदा होता है। देह बिना वीर्यका अधिष्ठान क्या है? अरे! आदिमें भी नहीं औ अन्तमें भी नहीं। जब देह तरुण भया, तब देहका रस जमा भया; औ देह वृद्ध भया, तब वीर्य सूख गया। ताते बीचमें पैदा भया औ बीचमें गया, वो कछु मालिक नहीं। सबका मालिक देह है। देखो—देहसे ज्ञान होता है औ देहसे बानी बनती है औ देहसे देह पैदा होती है, औ देहसे ब्रह्म, ईश्वर, जीव—ये तीन प्रकारकी कल्पना पैदा होती है। तो ब्रह्म, ईश्वर औ जीव—ये मिथ्या; औ देह सत्य। तीर्थ, व्रत, पूजा, योग, कर्म सब देहसे पैदा होते हैं। औ देह देखनेमें आती है औ कछु देखनेमें नहीं आता। ताते देह सत्य और सब मिथ्या धोखा। देहके गये फिर कछु देह होती नहीं। जैसे वृक्षसे पत्ता झड़ परा, फिर वृक्षको नहीं लगता। तद्वत् देहके गयेते फिर देह नहीं। सब सिद्धान्त मिथ्या। तो भला! सब सिद्धान्त मिथ्या; परन्तु जब चैतन्य देह छोड़ देता है, तब यह देह तो बनी रहती है, फिर नाना प्रकारकी चतुराई औ बानी क्यों नहीं बोलता? जो देह सत्य है तो नाश क्यों होती है? भला! तू कहेगा कि जीव क्या वस्तु है? औ देह छोड़के गया, सो किसने देखा? जो किसीने देखा नहीं तो जलाया-गाड़ा क्यों? और सब कुटुम्ब बाहर क्यों डार आये? तो जीव तुमने देखा था; परन्तु अज्ञानदशासे 'मैं देह' ऐसा मानते हो। तो ये देहके अध्याससे और देह पाओगे। जो जानके 'नहीं जानता' ऐसा बोले, ताको अज्ञान कहिये। तब तीसरा वाक् बोलता है कि काहेका जीव? औ कौन देह पाता है? अरे! यह तो पाँच तत्त्वकी मोट है। जहाँ पाँच तत्त्व इकट्ठे भये, तहाँ 'जीव' नाम पाया, औ पाँच तत्त्व छूटे, न्यारे-न्यारे भये, फिर कहाँ जीव है? औ काहेका जीव है? कहीं पाँच तत्त्वसे न्यारा जीव देखनेमें भी नहीं आया औ मालूम भी नहीं होता है। ताते सबके मालिक पाँच तत्त्व। देह

पाँच तत्त्वनकी। पाँच तत्त्व मिले, तामें नाना रूप मालूम भये। औ पाँच तत्त्व न्यारे-न्यारे भये, फिर न देह है, न जीव है। तो पाँच तत्त्व अनादि हैं। संयोग पायके बहुत रूप पैदा होते हैं औ वियोग पायके नाश होते हैं। न कोई आता है, न कोई जाता है, सब मिथ्या। बानी-बोधसे संशय होता है। उसके पीछे भरमना नहीं। शब्दका काम इतना है—जो कहना-सुनना। औ शब्दसे कछु नहीं; सब मिथ्या। भला! ये तत्त्व तो अनादि हुए; परन्तु तत्त्व क्या जड़ हैं? कि चैतन्य हैं? जो कहोगे कि तत्त्व चैतन्य हैं, तो मौत न होना। औ जब मरता है तब तत्त्व तो पाँचों नजर आते हैं, परन्तु चैतन्य नहीं दीखता। तब कहते हैं कि मर गया। जो कहोगे कि पाँच तत्त्व कौन? सो सुनो—मांस पृथिवी तत्त्व, औ पानी जो देहमें रहता है सो जल तत्त्व, पित्त अग्नि तत्त्व, जासे मुरदा फूलता है सो वायु तत्त्व, औ शून्य आकाश तत्त्व। ये पाँच तत्त्व हैं, परन्तु चैतन्य वहाँ नहीं। ताते पाँच तत्त्व जड़, कछु चैतन्य नहीं। चैतन्य कोई और है। जो पाँच तत्त्व चैतन्य होते, तो झाड़-पहाड़ चलते-फिरते औ दुःख-सुख मानते। ताते पाँचों तत्त्व जड़। तो इनमें क्या सत्ता है? जो संयोग करना, औ नाना विचित्र अनेक तरहके रूप जड़, सो कैसे पैदा हो गये? जड़में येतिक चतुराई काहेकी? ताते चैतन्य कोई और। जो पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृति, दश इन्द्री, विषय-पञ्चक, अन्तःकरण-पञ्चक—ये सबको जानता है, ताको चैतन्य कहिये। जो देह सहित तत्त्वको जानता है, सो कछु देह औ तत्त्व नहीं। जैसा घर औ घरके सरजामको जाननेवाला कछु घर औ सरजाम नहीं; तद्वत्। ये अर्थ। तब चौथा चार्वाक् बोलता है कि अरे! ये सब मिथ्या कल्पना। अरे! तत्त्व औ चैतन्य दोनोंका अधिष्ठान तो किसीने जाना ही नहीं। तो तत्त्व औ चैतन्य दोनोंका अधिष्ठान शून्य है। देखो! जब नींद लगती है, तब तत्त्व औ चैतन्य कहाँ है? सब शून्यमें समा गये, औ फिर शून्यसे ही प्रकट होते हैं। ताते सबका अधिष्ठान शून्य है। शून्य बिना कछु और नहीं। नेति-नेति करके श्रुति रह गई, सो भी शून्य। और श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार करके रहि गया, सो भी शून्य। चोला छूटा औ बाकी रहा, सो भी शून्य। औ योग धारणा करके लय हुआ, सो भी शून्य। नित्यानित्य विवेक करके रहि गया, सो भी शून्य। बोलते-बोलते चुप हो गया, सो भी शून्य। रहित भया, सो भी शून्य जानिये। 'शून्यते

अधिक और न मानिये ।' चौपाईः—शून्यै आवै शून्यै जाई । शून्य शून्यमें रहा समाई ॥१॥ ताते सर्व शून्यै जान । शून्य बिना नहिं दूसर मान ॥ २ ॥

इस प्रकारसे जीव मिथ्यामें जाई । अरे ! शून्य-शून्य कहता है सो कौन है ? शून्यका जाननेवाला कुछ शून्य नहीं । देखो—जब सुषुप्ति होती है औ शून्य हो जाता है, तब हाँक मारे जवाब देता है । जो चैतन्य शून्य हो जाता, तो जवाब न देता । ताते शून्य मिथ्या जड़, औ जनैया जीव सच्चा । परन्तु ये जीवको शून्य ही बन्धन है । जबलग शून्यको परखके न्यारा न होगा, तबलग आवागमनसे रहित नहीं होनेका । ये अर्थ ॥ १ ॥

पहिले भूले ब्रह्म अखण्डित । झाँईं आपुहि मानी ॥२॥
झाँईंमें भूलत इच्छा कीन्ही । इच्छाते अभिमानी ॥३॥

जो हंसने अपने रूपको देखा औ खुश हुआ, सोई भूला औ झाँईं खड़ी हुई, आनन्द खड़ा हुआ । ता आनन्दमें गरगाफ हुआ हंस । फिर वहाँसे स्फूर्ति हुई औ कच्चा रूप हो गया ॥२॥ ता झाँईंके प्रतापसे कच्चा रूपमें हंस आया, तब इच्छा खड़ी भई । ता इच्छासे जगत् सब निर्माण भया । जैसी-जैसी इच्छा उठी, तैसी-तैसी खानि पैदा हुई । ताते आप जगत्-अभिमानी हुआ ॥ ३ ॥

अभिमानी कर्त्ता ह्वै बैठे । नाना ग्रन्थ चलाया ॥४॥
वोहि भूलमें सब जग भूला । भूलका मर्म न पाया ॥५॥

औ नाना प्रकारकी कल्पना कर-करके बहुत बानी ग्रन्थ बनाया, वेद-शास्त्र बनाया ॥४॥ वोहि भूल = झाँईं, तामें सब जगत् भूला । सो कोई जीव कहाया, कोई ब्रह्म कहाया औ कोई आत्मा कहाया; परन्तु भूलका मर्म काहू नहीं पाया । जो बिन्द कहते हैं, सो भी भूल; औ कोई देह कहते हैं, सो भी भूल; औ कोई तत्त्व कहते हैं, सो भी भूल; औ कोई शून्य कहते हैं, सो भी भूल; औ कोई ब्रह्म कहते हैं सो भी भूल; औ आत्मा कहते हैं, सो भी भूल ॥ ५ ॥

लख चौरासी भूलते कहिये । भूलते जग बिटमाया ॥६॥
जो है सनातन सोई भूला । अब सो भूलहि खाया ॥७॥

सोई भूलसे ये चौरासी खड़ी भई । बिडम्बना सब जगत्की भूलहीसे भई ॥६॥ अरे ! जो सनातन जीव था सोई भूला । अब सोई भूल सबको खाती है । ऐसी भूल कैसे मिटेगी ? ॥ ७ ॥

भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी ! पारख देहिं लखाई ॥८॥
कहहिं कबीर भूलकी औषध ! पारख सबकी भाई ! ॥९॥११५॥

'भूल मिटै गुरु मिलैं पारखी !' जो पारखी गुरु मिलें, तो भूल सब मिट जाय । जासे सब भूल मिटे, ताहीको पारख कहिये । सो पारखी गुरु मिलें, तो पारख-भूमिका बताय देवें । तब जीव भी पारखरूप औ गुरु भी पारखरूप । जगत्-ब्रह्म औ कल्पना-अनुमान कछु रहा नहीं ॥८॥ ताते सब भूलकी औषध एक पारख है । जो भूमिका लेके गुरु सब परखावते हैं, सोई भूमिका लेके शिष्य सब परखता है । तब दो भाव जाके शुद्ध पारख स्वरूप रहता है । ये अर्थ ॥९॥११५॥

॥ ❋ ॥ इति श्री बीजक बुझारथ त्रिजा टीका सहित शब्द द्वितीय प्रकरणम्
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ २ ॥ ❋ ॥

॥ ❋ ॥ वक्तब्य ॥ ❋ ॥

दया गुरुकीः—बीजकके प्रथमारम्भमें गुरु रमैनी बोले । रमैनीका अर्थ गुरु कहते हैं, सो सुनो—ऐनी कहिये जीव, जाकी ऐन सब वेद औ नाना प्रकारकी बानी बनी । तामें नाना प्रकारके सिद्धान्त, अनुमान, अध्यासादि खड़े भये। ता ऐनमें ऐनी रम गया। सोई 'रमैनी' ऐसा शब्द कहिके गुरुने परखाया। ऐन कहिये जीवकी कल्पना, अनुमान, अध्यास, चार वेद, छौ शास्त्र, तत्त्वमसि आदि; तामें जीव ऐनी बन्ध हुआ । ताको गुरुने परखाया । प्रथम पञ्च वस्तु—अन्तर, ज्योति, शब्द, एक, नारी । अन्तर = मन, जो कछु मानन्दी हुआ, देहका वजन सोई मन । मन कहिये, नाम कहिये, ब्रह्म कहिये । जो चालीस प्रकृतिकी गठरी बँधी औ अनुभव भासा, सोई ब्रह्म । ये अर्थ । दूसरी वस्तु ज्योति । ज्योति कहिये माया, माया कहिये-जो चालीस प्रकृति इकट्ठी भई औ परम उत्कृष्ट आनन्द भया, तासे जो स्फूर्ति भई सो माया, औ मनका आकार आया सो माया। माया कहिये, काया कहिये, रूप कहिये । तीसरी वस्तु शब्द, जो मन-माया संयुक्त ॐकार आदि चौंतीस अक्षर उठे सो शब्द । चौथी वस्तु नारी, जो वो अक्षर लेके और नाना प्रकारकी बानी बनी, जासे कल्पना, अध्यास सब सिद्ध भये । नारी कहिये, बानी कहिये, स्त्री कहिये । जो मन-माया करके इच्छा उठी विषय-भोगके हेत, तासे निर्माण भई सो स्त्री । पँचई वस्तु 'एक' कहिये जीवको, जो ये

चार पदार्थका जाननेवाला औ जासे चारों पदार्थ स्फुरे औ भासे, सोई जीव ऐनी; औ चारों वस्तु उसकी ऐन। तामें आपु रम गया सो रमैनी। ये अर्थ। अन्तर औ ज्योति अनन्यभाव। जो अन्तर = नाम औ ज्योति = रूप, येही समष्टि कहिये। औ शब्द–नारी एकभाव। जो शब्द कहिये नाम, नारी कहिये रूप। या शब्द कहिये कोई दूसरा ब्रह्म, औ नारी कहिये जो देखनेमें आया जगत्। शब्द कहिये जो देखनेमें न आवे, श्रवणगोचर होय, सोई ब्रह्म। औ नारी कहिये जो देखनेमें आवे, नेत्रगोचर होय, सोई जगत्। तैसा अन्तर कहिये जासे जीवका पद अन्तर गया। अन्तर कहिये मन, औ अन्तर कहिये ब्रह्म, जो देखनेमें न आवे। औ ज्योति कहिये माया, ज्योति कहिये काया, जो देखनेमें आवे। अन्तर कहिये जो देखनेमें न आवे औ जामें जीव भूले। औ माया = ज्योति कहिये जो देखनेमें आवे औ जामें जीव आसक्त होय। सो ये चार वस्तु जीवको बन्धन हुई। याहीमें जीव भूला, ताते आवागमनमें नाना दुःख पाता है। ताते गुरु चारों मुखसे चारों वस्तु परखाते हैं। सो प्रथम रमैनीमें अन्तर–ज्योति परखाये, औ शब्द–नारी रही सो शब्दमें परखाये। अब आगे पञ्चम वस्तुको परखावेंगे। शब्द कहिये, अब्द कहिये, आवाज कहिये, शून्य कहिये। सो शून्यसे जो आवाज उठा सो शब्द। शब्द कहिये, शून्य कहिये, आकाश कहिये, ब्रह्म कहिये। अब्द कहिये, कल्पना कहिये, बानी कहिये, माया कहिये। ये छौ वस्तुमें जीव बन्ध है, ताते गुरु परखायके छुड़ाते हैं। सोई शब्द—'सन्तो! भक्ति सतोगुर आनी ॥' सन्तो! कहिये जीवको; सो जीवसे गुरु कहते हैं कि भक्ति सतोगुर आनी। भक्ति कहिये, कल्पना कहिये, बानी कहिये—सो ब्रह्माने आनी। कहाँसे आनी? आकाशमें शून्य होके, मनको उन्मुन करके ब्रह्म-अनुभव सिद्ध किया, तहाँसे सम्पूर्ण कल्पना आनी। सोई सब जीवने मानी औ धोखेमें पड़े। ये अर्थ। तब अन्तर-ज्योतिका जाल रमैनीमें परखाया, औ शब्द–नारीका जाल शब्दमें परखाया। अब आगे अक्षर-जाल परखानेके वास्ते ज्ञानचौंतीसा बोलते हैं ॥

सोरठाः—सुख निधान सुखरूप! साहेब सत्त कबीर जो ॥
झाँई सन्धिको रूप। परखावत निज परखते ॥ १ ॥

॥ * ॥ इति रमैनी तथा शब्दका वक्तव्य श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ * ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

❀ बीजक मूल सद्ग्रन्थः ❀

॥❀॥ ज्ञानचौंतीसा तृतीय प्रकरणम् प्रारम्भः ॥३॥❀॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी—॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते ज्ञानचौंतीसा प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❀ ॥ ज्ञानचौंतीसा ॥ ❀ ॥

ॐकार आदि जो जानै । लिखकै मेटै ताहि सो मानै ॥
ॐकार कहैं सब कोई । जिन्ह यह लखा सो बिरला होई ॥ १ ॥

टीका गुरुमुखः—जो ॐकारको जाननेवाला, सोई ॐकारकी आदि । तो जाननेवाला अस्ति, औ जाननेमें आया सो नास्ति । जो ॐकारको जाननेवाला सो हंस अस्ति, औ जो जाननेमें आया 'ॐकार ब्रह्म' सो नास्ति । जो ॐकारको लिखै औ फिर मेट डारै, ताहींको 'साँच जीव' ऐसा माने । ये अर्थ । ॐकार कहिये पिण्डाण्ड औ ॐकार कहिये ब्रह्माण्ड । केहि तरहसे ? सो सुनो—मस्तक सोई बिन्दू निर्विकार, नाभि सोई विकार अर्धमात्रा, हृदय सोई मकार कुण्डली, कण्ठ सोई उकार दण्डक, त्रिकुटी सोई अकार तारक । इस प्रकारसे पञ्च मात्रायुक्त ॐकार जीवनने अनुमान किया पिण्डाण्डमें । ये सम्पूर्ण नाशवान् मिथ्या, औ जीव सत्य । ये स्थूल मात्रा हुई । अब सूक्ष्म मात्रा पिण्डकी सुनो—प्रथम जब शून्य स्वभाव रहता है, तब शब्द बिन्दूरूप, स्थान ब्रह्माण्ड-ताको निर्विकल्प निरामय ब्रह्म बोलते हैं । फिर वहाँसे स्फूर्ति होती है सोई सहविकल्प, अर्धमात्रा तुरिया; ताको अव्यक्त सबल ब्रह्म कहते हैं । तब शब्द नाभि स्थानमें विकाररूप रहता है, तब चित्त-चतुष्टय उदय होता है । सो चित्तसे अनुसन्धान उठता है औ

बुद्धि निश्चय करती है, तब बुद्धि-बोधब्य स्वरूप महत्तत्त्व कहलाता है। वाहीको कोई कूटस्थ कहता है। तब शब्द कुण्डली शून्य-स्वरूप मकार होके हृदयमें आता है, तब मन उद्वेगसे सङ्कल्प होता है। शब्द कण्ठस्थानमें उकाररूप रहता है, दण्डक होता है। तहाँ पाँच कला निर्माण होती हैं—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। याका सूक्ष्म देह बनता है औ नाना सङ्कल्प-विकल्प होता है। औ फिर त्रिकुटीपर आयके अकाररूपी शब्द होता है। ऐसी पञ्चमात्रा मिलके स्थूल ॐकार बनता है, फिर अहङ्कार लेके फूटता है। सो बैखरीमें आकर चौंतीस कला धरता है। ॐकार सोई ब्रह्म औ चौंतीस अक्षर सोई माया। ॐकार कारण, औ चौंतीस अक्षर कार्य, जीव कर्त्ता। ये अर्थ। अब अक्षरोंकी उत्पत्ति * सुनोः—

कण्ठ अक्षर छै—क, ख, ग, घ, ङ, ह।
तालु अक्षर सात—च, छ, ज, झ, ञ, य, श।
मूर्द्धा अक्षर सात—ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष।
दन्त अक्षर सात—त, थ, द, ध, न, ल, स।
ओष्ठ अक्षर पाँच—प, फ, ब, भ, म।
दन्त-ओष्ठ अक्षर एक—व।

---

* टिप्पणीः—व्याकरणके अनुसार निम्न स्थानोंसे निम्न स्वर-वर्णोंकी उत्पत्ति मानी गयी हैः—

॥*॥ अक्षरोंके उच्चारण स्थान—॥*॥

कण्ठ्य वर्ण—'अ-आ', क, ख, ग, घ, ह, और विसर्ग।
कण्ठ और नासिका वर्ण—ङ।
तालव्य वर्ण—'इ-ई', च, छ, ज, झ, ञ, य, श।
मूर्द्धा वर्ण—'ऋ-ॠ', ट, ठ, ड, ढ, ण, र, ष।
दन्त वर्ण—'लृ', त, थ, द, ध, ल, स।
दन्त और नासिका वर्ण—न।
ओष्ठ वर्ण—'उ-ऊ', प, फ, ब, भ।
ओष्ठ और नासिका वर्ण—म।
दन्तोष्ठ्य वर्ण—व।
कण्ठ और तालव्य वर्ण—'ए-ऐ'।
कण्ठोष्ठ्य वर्ण—'ओ-औ'।
अनुस्वार (ं) नासिकासे बोला जाता है।
[ङ, ञ, ण, न, म; ये पाँचों नासिकासे बोले जाते हैं।]

कण्ठ-मूर्द्धा अक्षर एक—क्ष। (यह संयुक्त व्यञ्जन क्+ष=क्ष; ऐसे दो अक्षर मिलके होता है।)

इस प्रकारसे एक ॐकारसे चौंतीस भये। तामें पाँच मात्रा मिलीं। याते एक-एकके बारह-बारह अक्षर भये। इस प्रकारसे चार सौ आठ अक्षर भये। तामें पञ्च मात्रा मिलीं; सोई जगत्-जाल ॐकार ब्रह्मरूपी खड़ा भया। अकार सम्बन्धी ६८, उकार सम्बन्धी ६८, मकार सम्बन्धी १३६, इकार सम्बन्धी ६८, बिन्दु सम्बन्धी ६८; ऐसे चारसौ आठ अक्षर मात्राएँ भईं। फिर ठौर-ठौरकी मात्रा मिलायके नाना बानी बनी औ जो-जो कल्पना भीतर थी, सो सब लिखी गई। तामें तीन लिङ्ग बने—स्त्रीलिङ्ग, पुरुषलिङ्ग औ नपुंसकलिङ्ग। अकार-बिन्दु युक्त लिङ्ग पुरुष-लिङ्ग; उकार-मकार युक्त लिङ्ग नपुंसकलिङ्ग; इकार युक्त लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग। ऐसे तीन लिङ्ग बनायके फिर नाना अर्थ औ मन्त्र बने। सबमें पञ्च मात्रा मिलीं औ कामना बढ़ी जगत्की। अकार, रजोगुण, पीतरङ्ग; उकार, सतोगुण, श्वेतरङ्ग; मकार, तमोगुण, रक्तवर्ण; इकार, शुद्धसतोगुण, सुनील रङ्ग; बिन्दू श्यामवर्ण, निर्गुण ब्रह्म, आकाशवत्। ये अर्थ। अब ब्रह्माण्डका स्वरूप सुनो—पृथिवी सोई अकार, जल सोई उकार, अग्नि सोई मकार, वायु सोई इकार औ आकाश सोई यङ्कार। अकार—तारक सोई ब्रह्मा, उकार—दण्डक सोई विष्णु, मकार—कुण्डली सोई शिव, इकार—अर्धचन्द्र सोई ईश्वर; औ यंकार—बिन्दु सोई ब्रह्म। ऐसा समष्टि-व्यष्टि सम्पूर्ण 'प्रणवरूप एक आत्मा। ॐकार ब्रह्म परमात्मा, ऐसा कहिके सब कोई याहीमें अरुझे। परन्तु 'जिन्ह यह लखा सो बिरला होई।' कि जिनने यह ॐकारको लखके त्यागा औ पारखी पारखपर स्थिर हुआ, सो बिरला कोई। तो ॐकार मिथ्या औ पारखी सच्चा। ये अर्थ॥ ॐ॥ १॥

कका कँवल किर्णमें पावै। शशि ब्रिगसित सम्पुट नहिं आवै॥
तहाँ कुसुम रङ्ग जो पावै। औगह गहिके गगन रहावै॥१॥

टीका मायामुखः—'क' कहिये केवल ब्रह्म, और 'क' कहिये जीव। जो 'क' से उत्पत्ति होय सो 'का'। सो माया उपदेश करती है जगत्में कि हे जीव! तू ब्रह्मका अंश है। तेरा अधिष्ठानभूत ब्रह्म। कैसा? सो तू सुनके निश्चय कर। 'क शब्द कर्दमो भवति। स सच्चिदानन्दः। का शब्द तदंशः जीवः इत्यर्थः।" 'क' शब्द कीचड़ औ 'का' शब्द गोला; तो कीचड़ कहिये सत्-चित् मिला

आनन्द। ताका अंश जीव गुण-उपाधियुक्त। ता जीवको माया उपदेश करती है कि कँवल-किरणमें सच्चिदानन्दकी प्राप्ति होयगी। कँवल कहिये नाभिकमल दशदल। तो जब उन्मुनी अमनस्कयोग करके सुरति-निरति इकट्ठी होय, तब कमल खुले। ता कमलकी किरणमें जब लक्ष्य लगे तो सहज-ही-सहज सत्-चित् एक होयके आनन्दकी प्राप्ति होय। तब जीवकी स्थिति होय औ जीव ब्रह्म होय। परन्तु जब चन्द्रनाड़ी चले, तब नित्य पद्मासन उत्तराभिमुख करके सोहं श्वासामें सुरत लगावे, मनकी एकाग्रता करे, सवा पहरका नियम करे, तो कमलका सम्पुट खुले। औ ता कमलका रङ्ग सुनील, तहाँ परम आनन्द कुसुम रङ्ग। ता रङ्गको जो पावे तो वो आनन्द अवगाहा कि गहनेमें न आवे। बुद्धिसे गहनेमें नहीं आवे औ चित्तसे गहनेमें नहीं आवे, अहङ्कारसे गहनेमें नहीं आवे औ मनसे गहनेमें नहीं आवे औ दशों इन्द्रीसे गहनेमें नहीं आवे, ताको अवगाह कहिये! ऐसा अवगाह ब्रह्म-अनुभव, ताको लक्ष्यसे गहिके 'गगन रहावै' कहिये ता आनन्दमें लय होके ब्रह्माण्डमें रहना। ये अर्थ ॥ १ ॥

खखा चाहै खोरि मनावै। खसमहि छाड़ि दहूँ दिश धावै॥
खसमहि छाड़ि छिमा हो रहिये! होय न खीन अक्षय पद लहिये॥२॥

टीका मायामुखः—'ख' कहिये आकाश, आकाश कहिये ब्रह्माण्ड, औ 'खा' कहिये वायु, वायु कहिये श्वासा। सो योगी लोगोंका उपदेश ऐसा है कि जो कोई ब्रह्माण्डमें श्वासा चढ़ाना चाहे, सो 'खोरि मनावे।' 'खोरी' कहिये इन्द्री; सो इन्द्रिनको मनावे, कहीं चलने न देवे। ये मन इन्द्रिनके सङ्ग खसम छोड़के दशों दिशा धावता है। खसम कहिये ब्रह्म, सो ताको छोड़के मन इन्द्रीके सङ्ग दशोंदिशा विषय-वासनामें धावता है; ताते जीवको चौरासी लक्ष्य योनि भोगनी होती है। तो चौरासीका भोग औ आवागमनका कारण इन्द्रीकी विषय-वासना। सो पहिले इन्द्रीको संयम करना—अल्प आहार करके अङ्ग जड़ होने देना नहीं और जब मिले, तब रूखा-सूखा, भाजी-पाला, लोना-अलोना पायके सन्तोषसे रहना। काहू बातकी तृष्णा न रखना औ जिह्वाके स्वादमें लम्पट न होना। औ दूसरे बहुत विहार न करना, आसन दृढ़ रखना, कहीं राग-रङ्ग देखने न जाना औ स्त्रीको नेत्रभर न देखना औ नाना प्रकारके तमाशे-चरित्र, संसारके विहार देखना नहीं। देखना रूप विषय, सो छोड़के आसन दृढ़ करना। तीसरे निद्रा

भी बहुत न करना औ कानसे बहुत बानी शास्त्र–पुराण आदिक सुनना भी नहीं और जगत्‌की नाना बानी भी न सुनना। बहुत नरम बिछौनेपर सोवना भी नहीं और बहुत स्त्रियनसे अङ्ग मिलावना भी नहीं और किसीसे मिलनेकी चाह भी न रखना। और बहुत गन्ध-सुगन्धमें भी लम्पट न होना औ किसीको देने-लेनेकी भी चाह न रखना। औ एकान्तमें स्वच्छ स्थान देखके अभ्यास करना! ऐसा खोरी मनावै, संयम करे और श्वासामें सुरति लगावे 'मक्र-तार न्याय।' फिर श्वासा आकाशमें लय करके जीव ब्रह्म होय रहे, समाधिस्थ होय रहे। ये अर्थ। भला! इन्द्रियनका स्वभाव कैसे छूटै? तो जब नेत्रको रूप विषय होय, तब नेत्रनसे मुद्रा देखे—सन्मुखी, खेचरी, अगोचरी, अलक्षादि। अथवा श्रवण विषय कानको होय तो अनहद नाद सुने। स्पर्श विषय होय तो चौरासी आसन करे। नाकको गन्ध विषय होय तो रेचक, पूरक, कुम्भक करे। रस विषय जीभको होय तो लम्बिका करके ऊर्ध्व द्वारे अमृत पान करे। इस प्रकारसे इन्द्री जीतै, सो योगी जीवन्मुक्त, 'आपै खसम आपै ब्रह्म।' परन्तु सब इन्द्रिनको जीतके और सम्पूर्ण विषय छोड़के छिमा होय रहे = समाधिस्थ होय रहे। कबहीं इन्द्रिनके वश होयके क्षीण न होय, तब योगी अमर होय, अक्षय पदको प्राप्त होय। ये अर्थ ॥ २ ॥

गगा गुरुके बचनहि मान! दूसर शब्द करो नहिं कान॥
तहाँ बिहङ्गम कबहुँ न जाई। औगह गहिके गगन रहाई ॥३॥

टीका मायामुखः—"ग शब्देन ज्ञान महाचैतन्य तत्पदवाच्य ईश्वरः। गा शब्देन तदंशः त्वंपदवाच्य जीवः। गुरु शब्देन अचल असिपद वाच्योभयो रेकवाक्यत्वादित्यर्थः। यथा घटाकाश मठाकाश महदाकाशः तथा तत्त्वमसि सिद्धान्त लक्षौ गृहीत्वा, वाच्यांशं त्यक्त्वा सोयं देवदत्तः इत्यर्थः।" अब ब्रह्मज्ञानका उपदेश माया जीवको करती है कि 'गगा गुरुके बचनहि मान।' 'ग' शब्दका अर्थ ज्ञान, महाचैतन्य ईश्वर तत्पद वाच्य; और 'गा' शब्दका अर्थ अज्ञान-विशिष्ट चैतन्य जीव त्वं पदार्थ; औ 'गुरु' कहिये अचल तत्-त्वंकी एकता असि पदार्थ। गुरुका वचन कहिये तत्त्वमसि महावाक्य; सो ये जीवने पहिले साधन चतुष्टय सम्पन्न होना, योग समाधि करना। फिर गुरुके पास जायके तत्त्वमसि-सिद्धान्त सुनना और उसका वाच्यांश छोड़ देना और लक्ष्यांश ग्रहण करना कि तत्पद सोई त्वंपद और त्वंपद सोई असिपद है। जैसा कोई देवदत्त नाम महाभाग्यवान्

काशीमें रहता था। सो जो कोई उसके पास जाता था औ जो कछु याचना करता था, सो देवदत्त देता था। सो उसकी कीर्ति चौतरफ फैली थी। फिर कुछ दिन उपरान्त ऐसा काल आया कि उसका ऐश्वर्य और उसकी सम्पत्ति सब जाती रही। फिर वह देवदत्त संन्यासी होके घर-घर भिक्षा माँगने लगा और कोई दूसरे देशमें दूसरे कालमें आया। सो उससे लोग पूछने लगे कि तू कौन है ? तब वह बोलता है कि मैं देवदत्त। तो सब लोग उसकी मस्खरी करने लगे। तामें कोईने उसके रूपको देखा और वो काल, वो देश छोड़ा औ तबकी सम्पत्ति छोड़ी औ अबकी विपत्ति छोड़ी। देहपर जब लक्ष्य किया, तब वही देवदत्त निश्चय हुआ। इस प्रकार ईशकी ईशता छोड़े और जीवनकी किञ्चिज्ज्ञता छोड़े, और स्वरूप लक्ष्य करे तो वही है। जैसे सोनेका विकार सब सोना, माटीका विकार सब माटी, ऐसा ब्रह्मका विकार सर्व जगत् ब्रह्म। नाम-रूप उपाधि मिथ्या, औ सम्पूर्ण ब्रह्म ये सत्य—ऐसा निश्चय करे। दूसरे द्वैत शब्द कान न करे, माने न। फिर योग भी न करे। औ 'तहाँ बिहङ्गम कबहूँ न जाय।' ब्रह्माण्डमें बिहङ्गम = मन कबहूँ न जाय; क्योंकि क्या ब्रह्माण्ड औ क्या पिण्डाण्ड ? एक आत्मा स्वजाति-विजाति-स्वगत भेद रहित। ताको योग-वियोग, मिलना-बिछुड़ना कछु सम्भवता नहीं। योग, समाधि, क्रिया; ये सब मनके धर्म मिथ्या। आत्मा एक निरन्तर अखण्ड अनिर्वाच्य; वाच्य कछु है नहीं। एक-दो, जगत्-ब्रह्म कछु कहते बने नहीं। ऐसा अवगाह ज्ञान-अनुभव, ताको गहिके रहि जावे, स्थिर हो जाय। ये अर्थ। ये मायाका उपदेश ऐसा हुआ कि गुरु ब्रह्मा, ताका वचन वेद; सो वेदका सिद्धान्त मानना औ वेद-बाह्य जो मत होय, सो नहीं मानना औ तामें मन कभी न लगावना। वेदके प्रमाणसे जो अवगाह ज्ञान ब्रह्मज्ञान है, तामें रहे। ता ऊपर औ कछु कल्पना न करे! और कल्पना कोई करे, सो वितण्डा मिथ्या। ये अर्थ॥३॥

घटा घट बिनसै घट होई। घटहीमें घट राखु समोई॥
जो घट घटै घटहि फिरि आवै। घटहीमें फिर घटहि समावै॥४॥

टीका मायामुखः—'घ' कहिये घनवत् चैतन्य, जो कहीं सन्धि नहीं। जैसा आकाश असन्धि भरा है, कहूँ सन्धि नहीं। घट, मठ, पटमें बाहर-भीतर जैसा एक आकाश भरा है, तैसा चैतन्य पिण्ड-ब्रह्माण्डमें भरा है; ताते घनवत् ये अर्थ चैतन्यका भया। अब 'घा' = तदंश जीव प्रतिबिम्ब। ताको गुरुवा लोग उपदेश करते

हैं कि 'घघा' = हे ब्रह्मांश जीव ! तू तो चैतन्य है आकाशवत्; परन्तु घट-उपाधिसे अपनेको जीव मानता है औ कहता है कि मैं सुखी, मैं दुःखी, मैं मरता हौं, मैं जीता हौं। तो ये मिथ्या भ्रान्ति छोड़ दे। तू तो चैतन्य शुद्ध, अखण्ड एकरस। तेरा नाश कभी नहीं। जैसा घट विनशता है औ फिर घट उत्पन्न होता है, तो क्या घटके सङ्ग कहूँ आकाश विनशता है ? औ घट उत्पन्न भया, तो कहूँ आकाश उत्पन्न होता है ? तैसा आत्मा न उपजे, न नाश होय। माया-उपाधिसे घट उपजते हैं औ नाश होते हैं। तो 'घटहीमें घट राखु समोई।' कि घटकी वासना औ घटका अभिमान तू छोड़ दे। घटके अध्याससे घट होता है। सो अध्यास तू मत् रखे। घटका अध्यास घटहीमें समाय दे, लय करदे, औ तू अपनेको आत्मा आकाशवत् जान। 'जो घट घटे घटहि फिर आवे'—अर्थ कि जो घट नाश होता है, सो घट ही फिर पैदा होता है। आत्मा न मरता है, न पैदा होता है। 'घटहीमें फिर घटहि समावै।' कि जैसा घट मृत्तिकाका बनता है। फिर बनते ही उसमें आकाश व्यापता है। औ जब घट फूटा तो आकाश अपनी जगह पर जैसे-का तैसा है। तैसा तू आत्मा जैसे-का-तैसा सदा एकरस। देह अध्यास छोड़ दे। ये अर्थ ॥ ४ ॥

ङङा निरखत निशिदिन जाई। निरखत नैन रहे रतनाई ॥
निमिष एक जो निरखै पावै। ताहि निमिषमें नैन छिपावै ॥५॥

टीका जीवमुखः—'ङ' कहिये शास्त्र–मुद्रा देखना; 'ङा' कहिये देखनेवाला जीव। सो जीव बोलता है गुरुवा लोगोंसे कि हे गुरु ! शास्त्र औ मुद्रा देखते–देखते रात–दिन चले जाते हैं औ आँखी भी रतनाय रही है, लाल हो रही है; परन्तु कल्पना कछु छूटती नहीं औ ब्रह्म-दशा कछु आती नहीं। मायामुखः—तो गुरुवा बोलते हैं कि हमारी कछु चूक नहीं। 'निमिष एक जो निरखै पावै। ताहि निमिषमें नैन छिपावै ॥' मुद्राकी धारणा लगाता है तो जब प्रकाश होनेका वक्त आता है, तब नैन छिपाय लेता है, पलक लगाय लेता है तो मुद्रा कैसे प्रकाश होय ? औ शास्त्र देखता है तो श्रवण-मननमें आलस्य करता है। तब ब्रह्म-दशा औ निर्विकल्प-दशा, स्थिति कैसे होय ? ज्ञानअभ्यास वा योगअभ्यास वैराग्ययुक्त करै, तो सहज ही परमात्माकी प्राप्ति होय। ये अर्थ ॥ ५ ॥

चचा चित्र रचो बड़ भारी। चित्र छोड़ि तैं चेतु चित्रकारी ! ॥

जिन्ह यह चित्र बिचित्र ह्वै खेला। चित्र छोड़ि तैं चेतु चितेला !॥६॥

टीका गुरुमुखः—'च' कहिये जीव, औ 'चा' कहिये जीवकी कल्पना, नाना बानी, औ 'चा' कहिये स्त्री। सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तेरी कल्पनाने जो 'चित्र' रचा है, सोई तेरेको भारी बन्धन हुआ। जो नाना शास्त्र, पुराण, वेदने बताया, सोई तू निश्चय करने लगा। ताहीसे नाना जाल औ नाना चक्र औ नाना योनि तेरेको भोगने प्राप्त भई। परन्तु स्वतन्त्र पारख तेरेको प्राप्त न भई, ताहीते तू बहुत दुःख पाता है। औ तेरी इच्छासे नारी पैदा भई, सो तेरे परखनेमें नहीं आई। सो उसने तेरेको नाना विषयमें फँसाया औ अपना मोह लगायके तेरा ज्ञान हर लिया। औ तेरेको अपने वश करके भारी चित्र जगत्जाल रचा। सो तू अब तो भी कल्पना औ स्त्रीको परखके छोड़। हे चित्रकारी ! सम्पूर्ण ब्रह्म-जगत् आदि चित्र तूने बनाया औ तू ये चित्ररूपी कैसे हो गया ? चित्रमें कैसे बन्ध गया ? 'जिन्ह यह चित्र-विचित्र ह्वै खेला' सो तू ही। तेरे बिना कछु एकहू हुआ नहीं; परन्तु तेरा बन्धन तेरा करतूत ही है। सो सम्पूर्ण करतूत चित्र छोड़के तैं चेतु चितेला ! हे चितेला ! भास--अध्यासादि सम्पूर्ण चित्र तूने बनाया औ सबका जनैया तू ही सबको न्यारा-न्यारा जानता है औ ताहीमें फिर तू समा जाता है। कहीं ब्रह्म बना, कहीं देह बना, कहीं दास बना; सो सम्पूर्ण धोखा छोड़के तू स्थिर हो ! सब परखके बन्धन छोड़ औ पारखरूप हो रहो ! ये अर्थ ॥७॥

छछा आहि छत्रपति पासा। छकिकिन रहहु मेटि सब आसा ॥
मैं तोहीं छिन-छिन समुझावा। खसम छाड़ि कस आपु बँधावा ?॥७॥

टीका गुरुमुखः—'छ' कहिये छर, क्षर, पाँच तत्त्व छठवाँ मन, देह। 'छा' कहिये पाँच तत्त्व औ छठवे मनसे जो उत्पन्न होय सो 'क्षा'। देहसे अनुमान, अध्यास, कल्पना, भास, ब्रह्म, आत्मा आदि जो पैदा हुआ सोई 'छा'। ये अर्थ। देहसे कल्पना उठी कि कोई एक ब्रह्म है, सोई अनुमान किया। फिर 'वोही मैं' ऐसा कहा सो अध्यास। भास-भासिक एक भया, सोई ब्रह्म औ सोई आत्मा। तो 'छा' का अर्थ ब्रह्म हुआ। अब छ नास्ति औ छा महानास्ति। सो गुरु जीवको समुझाते हैं कि छ = देह औ छा = ब्रह्म। छत्रपति = जीवके पास दो बन्धन हैं-- छछा = देह औ ब्रह्म। कल्पना सोई त्वंपद, अनुमान सोई तत्पद, अध्यास सोई असिपद; ये सम्पूर्ण देहसे जीवको भास भया, सोई जीवको बन्धन हुआ। अब

'छकिकिन रहहु मेटि सब आशा।' सम्पूर्ण ब्रह्म-जगत् आदि आशा परखके मेटि डारो औ पारखमें छकि रहो = स्थिर हो रहो, जाते तुम्हारा आवागमन छूटे। 'मैं तोहीं छिन–छिन समुझावा।' क्षण--क्षण मैं तेरेको ये ही परखाया; सो तू आप ही सब बिसारिके और घबरायके दूसरा खसम बनायके कैसे बन्धनमें परा? सो तू अब तो भी परखके सब अध्यास छोड़ औ स्थिर हो! ये अर्थ ॥ ७ ॥

जजा ई तन जियत न जारो! जोबन जारि युक्ति तन पारो ॥
जो कछु युक्ति जानि तन जरै। ई घट ज्योति उजियारी करै॥८॥

टीका गुरुमुखः—'ज' कहिये माया औ 'जा' कहिये त्रिगुण; सो गुरु कहते हैं कि ये माया ब्रह्मादिक गुरुवा लोग, तिनकी बानी सुनके तुम त्रिगुण फन्दमें परे औ कहीं योग करने लगे, पञ्च क्रिया करके पवन रोधन करके देहको कष्ट देने लगे। औ कहीं तपस्या करके देह जराने लगे, पञ्चाग्नि, जलशयन, अन्न-त्याग, वस्त्र-त्याग करने लगे, दूबअहारी, फल--मूल-आहारी बने। औ कहीं वैराग्य करके घर छोड़ जङ्गलमें भागने लगे। इस प्रकारसे जीते-जी तनको क्यों जराते हो? औ जीवको क्यों दुःख देते हो! मुयेपर सभी जर जायगा। ताते सब परखके स्थिर रहो! ये मायाकी बानी सुनके नाहक जीते जीव जारो मत्। यामें कछु फायदा नहीं। मिथ्या धोखेके वश मत् होओ! ये मायाका धर्म ऐसा है कि जीते भी दुःख देना औ मरे भी चौरासी भुगाना। भला! जो तुम ब्रह्म प्राप्तिके वास्ते तन जराते होगे—तो वेद-वचन ऐसा है कि ब्रह्म तो कछु जगसे न्यारा नहीं। सम्पूर्ण चराचररूप ब्रह्म ही है—मृत्तिका-कुम्भ न्याय, सुवर्ण-भूषण न्याय। जो तुम तन जरावते हो, तो याका फायदा कौन? अगर स्वर्ग आदि प्राप्ति-के वास्ते तन जरावते होगे; तो स्वर्गके लोग नाहक गर्भवासमें आते हैं, ऐसा वेद बोलता है। तो फिर नाहक भ्रमके भरोसे जीते तन क्यों जरावते हो? अरे! ब्रह्म भी भ्रम औ योग, तपस्या, वैराग्य भी भ्रम मिथ्याभूत। परखके छोड़ो औ पारख होय रहो। ये अर्थ। मायामुखः—'जोबन जारि युक्ति तन पारो।' अब मायाका उपदेश ऐसा है कि जोबन = जवानी औ सम्पूर्ण इन्द्रिनको जराना औ नाना साधना करना शम–दमादि, औ आगे जैसा 'खखा' के अर्थमें युक्ति बोली, तैसी युक्तिसे तन छिजावना औ सत्गुरुके पाससे योगकी युक्ति समझना। फिर वो योगसाधना करके जो कोई तन जरावेगा, तो यही घटमें ज्योति उजियारी

करेगा, ज्ञान-प्रकाश होयगा, योगसिद्धि होयगी। जैसे पवन स्थिर होती है, तब दियेकी ज्योति स्थिर होयके जरती है। वैसा ही इन्द्रीरूपी पवन जब स्थिर होय, तब 'ई घट ज्योति उजियारी करे।' जीवन्मुक्त-दशाको प्राप्त होय। ये अर्थ ॥८॥

झझा अरुझि-सरुझि कित जान ? अरुझनि हींडत जाय परान॥
कोटि सुमेरु ढूँढ़ि फिरि आवै। जो गढ़ गढ़ै गढ़ैया सो पावै ॥९॥

टीका गुरुमुखः—'झ' कहिये संसार-प्रपञ्च, औ 'झा' कहिये नाना बानी, नाना मत, जो संसारमें उत्पन्न भये। सो गुरु कहते हैं कि नाना प्रकारकी बानीमें औ नाना प्रकारके मतनमें औ नाना प्रकारके विचित्र जगत्में, घर, दारा, पुत्रादिकमें हे जीव ! तू अरुझिके कहाँ जायगा ? येही अरुझेसे चार खानिमें पड़ा रहेगा। ताते तू समुझके सुरझ कि या फन्देको अच्छी तरहसे परखके छोड़ दे। अरे ! बानीजाल औ स्त्रीजालमें अरुझेसे नाना योनिमें हींड़ते-फिरते ही प्राण जाता है; परन्तु न तुझे पारख मिलता है औ न तेरा भ्रम छूटता है। 'जो गढ़ गढ़ै गढ़ैया सो पावै।' अरे ! चाहे तू कोटि सुमेरु बानीके प्रमाणसे ढूँढ़ि फिर आवै, परन्तु जो कछु अनुमान करके अध्यासरूपी गढ़ गढ़ा है गढ़ैया जीवने, ताको सोई प्राप्त होयगा। जहाँ आशा तहाँ बासा होय। अब कोई स्वर्ग आदिक औ कोई ब्रह्मादिक आशा करते हैं, तो प्राप्ति होय ? कि नहीं ?। ये शङ्का। तो ब्रह्म औ स्वर्गादि कुछ वस्तु होय तो प्राप्त होय, औ जो वस्तु ही नहीं है सो प्राप्त कहाँसे होय ? अरे ! षषा-श्रृङ्गका धनुष और बाँझपुत्रका मिलाप और गन्धर्वनगरका महल रहनेको कहाँ मिले ? तद्वत् ब्रह्म औ स्वर्गादिक-भोग मिथ्या कल्पना कहाँसे प्राप्त होय ? तो जो कोई सर्वसाक्षिणी तुरिया अवस्थाके अध्यासमें चोला छोड़े, सो उत्तम मानुषदेहको प्राप्त होय ज्ञानी होयगा, औ तुरियातीत अवस्थामें चोला छोड़े तो जड़ अजगरादि योनियोंको प्राप्त होयगा। सुषुप्ति अवस्थामें चोला छोड़े तो कृमि-कीटकी योनिमें जायगा औ स्वप्न अवस्थामें चोला छोड़े तो पक्षी-योनि-को प्राप्त होयगा। जागृति अवस्था विषय-मोहमें चोला छोड़े तो पशुयोनिको प्राप्त होयगा। बिनु पारख चौरासी छूटे नहीं। जो गढ़को गढ़ै, सोई गढ़ैयाको प्राप्त होय। ये अर्थ ॥ ९ ॥

ञञा निग्रह सनेहू। करु निरुवार सन्देहू ॥

नहिं देखे नहिं भाजिया। परम सयान पयेहू ॥
जहाँ न देखि तहाँ आपु भजाऊ। जहाँ नहीं तहाँ तन मन लाऊ ॥
जहाँ नहीं तहाँ सब कछु जानी। जहाँ है तहाँ ले पहिचानी! ॥१०॥

टीका गुरुमुखः—'ञ' कहिये अनुमान नपुंसक ब्रह्म, 'ञा' कहिये बानी; सो बानीका सनेह सब जगत्में विशेष भया, ताते ये जीवमें सन्देह बढ़ा ब्रह्म-ईश्वर आदि। सो सन्देहका त निरुवारा कर, नहीं तो सन्देह तेरेको बन्धन है। अरे! जो विचारमें नहीं नजर आता, तहाँ भागे नहीं। सब परखके पारखपर स्थिर रहे, कहीं आसक्त न रहे, परम सयाना उसीको कहिये, पारखी कहिये! औ 'जहाँ न देखी तहाँ आपु भजाऊ।' कि जहाँ विचारसे भी कछु नहीं दिखाता ब्रह्म, औ आँखिनसे भी कछु स्वर्ग आदिक नहीं दिखाते, तहाँ नाहक अनुमान करके जीव भागते चले जाते हैं अपने अनुमानसे भेंड़िनकी नाईं। औ जहाँ कछु है नहीं, पत्थर है या पानी है, तहाँ जीव सब तन-मन लगाते हैं। फिर जहाँ मन-बुद्धि कछु चलती नहीं, तहाँ सब कछु जानते हैं। कहते हैं कि वही ब्रह्म, जहाँ कछु नहीं; ताहीके पेटमें यह जगत् सब है, वो सबका अधिष्ठान है। परन्तु जो तू न होय, तो ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा—ये क्या माल हैं? कछु नहीं। याते तेरेहीसे सब कछु हैं। तू अपनेको पहिचान ले। ये अर्थ ॥ १० ॥

टटा बिकट बाट मन माहीं। खोलि कपाट महलमों जाहीं ॥
रही लटापटि जुटि तेहि माहीं। होहि अटल तब कतहुँ न जाहीं ॥११॥

टीका मायामुखः—'टटा' कहिये ब्रह्मरन्ध्रका रास्ता, सो बड़ा बिकट है। परन्तु कपाट ब्रह्मरन्ध्रका खोलके ब्रह्माण्ड-महलमें जाना, हठयोग-मार्गसे या राजयोग-मार्गसे। जैसे पीछे शब्दनमें हठयोग-मार्ग या राजयोग-मार्ग बोले हैं, तेही तरहसे ब्रह्माण्ड-बास करना! फिर 'रही लटापटि जुटि तेहि माहीं।' पाँचों तत्त्व एक-में-एक लटापट होयके ब्रह्माण्डमें जुटि रहै, आकाशमें लय भये, तब मन उन्मुन हो गया, तब अचल समाधि भई। जीवन्मुक्त हुआ। ये अर्थ ॥ ११ ॥

ठठा ठौर दूर ठग नियरे। नितके निठुर कीन्ह मन घेरे ॥
जे ठग ठगे सब लोग सयाना। सो ठग चीन्हि ठौर पहिचाना ॥१२॥

टीका गुरुमुखः—'ठग' कहिये गुरुवा लोग; इनका सङ्ग करेसे हे जीव! तेरा

ठौर दूर हो जाता है, गाफिलीसे पारख-पद बहुत दूर। अरे! जो गुरुवा लोगोंके भरोसे औ वेदके भरोसे रहते हो, सो वेदने औ गुरुवा लोगोंने तेरा 'ठट्ठा' मचाया है कि कहीं तुझे गुलाम बनाते हैं औ कहीं राजा बनाते हैं, कहीं सबका अधिष्ठान बनाते हैं औ कहीं पापी बनाते हैं। कहीं स्वर्ग बताते हैं औ कहीं नरक बताते हैं औ कहीं भक्ति बताते हैं औ कहीं योग बताते हैं औ कहीं ज्ञान करके सब उड़ाते हैं, फिर जगत्-ब्रह्म कहते हैं। तो हे जीव! ऐसे ठट्ठासे तेरा ठौर दूर रहा, स्थिति दूर रही। औ 'नितके निठुर कीन्ह मन घेरे।' औ नित वेदबानी दृढ़ाय-दृढ़ाय तेरे मनको घेर लिया। अब कहीं निकलनेको जगह मिलती नहीं। तू घेरघार चौरासीमें रहता है। चौरासी कहिये देह। 'जे ठग ठगे सब लोग सयाना।' अरे! ये ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि ठग कैसे हैं? जो बड़े-बड़े सयाने लोगोंको इन्होंने ठगा है। सो तू इन ठगनको पहिचान, इनकी बानीको परखके छोड़ औ अपने ठौरको पहिचान! जो ठौरसे तत्त्वमस्यादि सब ठौर परखनेमें आवे, सोई तेरा ठौर। ये अर्थ। विरह अर्थः—गुरु कहते हैं कि हे जीव! तेरे पीछे दो ठग लगे हैं। सो तू दोनों ठगोंको चीन्ह औ अपना ठौर सत्सङ्गमें पहिचान! एक ठग सूक्ष्म माया गुरुवा औ बानी, औ दूसरा ठग स्त्री; जाके सङ्ग कियेसे तेरा ठौर दूर हुआ औ चौरासी विषय नगीच हुआ। नित इस स्त्रीने तेरेको निठुर कर दिया, जो अपने हितका औ पदका तू स्मरण भी नहीं करता। अरे! स्त्रीका कटाक्ष-बाण तेरे मनको लगा, सो तेरा मन जेर हो गया औ इस स्त्रीने नाना हाव-भाव बतायके तेरे मनको घेर लिया। सो तूने सुखका हंसपद छोड़के दुःखकी चौरासी शिरपर उठा लिया, सो पाप। अरे! इस स्त्रीने बड़े-बड़े सयाने ब्रह्मादि, नारदादि, पराशरादि सबको ठगा। सो स्त्रीके वश तू होय रहा है, अब तेरी चौरासी कैसे छूटेगी? सो स्त्रीको केवल बन्धनरूपी चीन्ह औ अपने ठौरको पहिचान! जो ये स्त्री औ कल्पना दोनों न होतीं तो ये जीव स्वतः ही मुक्त था। ये अर्थ ॥१२॥

डडा डर उपजे डर होई। डरहीमें डर राखु समोई॥
जो डर डरै डरहि फिरि आवै। डरहीमें फिर डरहि समावै ॥१३॥

टीका गुरुमुखः—'डडा' कहिये जीवको। सो गुरु कहते हैं कि हे जीव! जो डर तेरे पाससे पैदा होता है, सोई तेरा काल है। और दूसरा तेरा काल कोई नहीं। जो कछु कल्पना-अनुमान तेरी देहसे उठता है, सोई तेरेको बन्धन है।

सोई तू पकड़ लेता है, ताते फिर-फिर तेरेको देह प्राप्त होती है। 'डर' कहिये देह; सो देहसे जो कछु पैदा होय, सो सब डर तेरेको देह-प्राप्त होनेका कारण है। ब्रह्म—आत्मा आदि सम्पूर्ण कल्पना खड़ी भई, सो सम्पूर्ण तेरेको देह होनेका कारण है। सो 'डरहीमें डर राखु समोई।' देहकी कल्पना समस्त देहमें जराय दे! परखके तू न्यारा हो! 'जो डर डरै डरहि फिरि आवै।' अगर तू परखके सब डर नहीं छोड़ेगा, तो ये देह छूटेगा, फिर डर = देह तेरेको प्राप्त होगी। 'डरहीमें फिर डरहि समावै।' वो देहमें फिर डर = धोखा समायेगा। सोई बार-बार देह धरता है, फिर वो देहमें नाना डर उत्पन्न होते हैं, ताते ब्रह्म बनता है। अगर ईश्वरका आसरा करता है, ताहीते बार-बार देह धरना पड़ता है। सो तू मिथ्या धोखा परखके छोड़ो। ये अर्थ। विरह अर्थः—'डडा' कहिये इच्छाकर्त्ता, इच्छाकर्त्ता कहिये जीव। तो हे जीव! तेरी इच्छासे डर उत्पन्न भया, स्त्री उत्पन्न भई। ता स्त्रीके सङ्ग तू भूला। ताते स्त्रीकी इच्छा मत् करे। देहकी इच्छा देहमें समाय रख! जो तू स्त्रीका अध्यास रखेगा, तो फिर चोला छूटेगा तो स्त्रीके गर्भमें आवेगा और वो चोलेमें फिर स्त्रीकी वासना समावेगी। फिर वाहीमें तू बँधा रहेगा। तेरे आवागमनका कारण स्त्री औ कल्पना। दोनों छोड़के पारख-स्थिति पावे तो आवागमनसे रहित होय। ये अर्थ ॥१३॥

सवैयाः—डरहि ते योग औ, यज्ञहू करत नर। डरहि ते दान--पुण्य, ध्यान को धरतु है॥ डरहि ते राज छाड़ि, भूप बनखण्ड गये। डरहि ते तपस्या करि, डरहिमें मरतु है॥ डरहि ते भक्ति औ, ज्ञान को अभ्यास करे। डरहि ते अन्न छाड़ि, दूब को चरतु है॥ डरहि व्यापक तिहुँ, लोकको बन्धन भयो। पूरण परख बिंदु, डर न सरतु है ॥१॥

ढढा हींडत ही कित जान ? हींडत ढूँढ़त जाय प्रान ॥
कोटि सुमेर ढूँढ़ि फिरि आवै। जेहि ढूँढ़ा सो कतहुँ न पावै ॥१४॥

टीका गुरुमुखः—'ढ' कहिये भ्रमिक औ 'ढा' कहिये भ्रम। सो गुरु कहते हैं कि हे जीव! तू भ्रममें कहाँ-कहाँ मारा—मारा फिरता है? अरे! हींड़ते-ढूँढ़ते तेरा प्राण जायगा। चाहे तू कोटि सुमेरु ढूँढ़ता फिर, तो भी फिर इसी चोलेमें आवेगा। परन्तु जेहि गोसैयाँको तू ढूँढ़ता है, सो कहीं मिलनेका नहीं। अरे! जो वस्तु है नहीं, सो कहाँसे मिलेगी? ये अर्थ ॥ १४ ॥

णणा दुई बसाये गाऊँ। रेणा ढूँढ़े तेरी नाऊँ ।।
मूये एक जाय तजि धना। मरे इत्यादिक केतेको गना ।।१५।।

टीका गुरुमुखः—'ण' कहिये पिण्ड औ 'णा' कहिये ब्रह्माण्ड । सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तूने पिण्ड-ब्रह्माण्ड, स्वर्ग-नर्क दुई गाँव बसाये । सो पिण्डमें जीवका अनुमान किया औ ब्रह्माण्डमें ब्रह्मका अनुमान किया । फिर 'रेणा ढूँढ़े तेरी नाऊँ।' तेरी कल्पनाको तू ही ढूँढ़ने लगा। सो कल्पना तो कछु वस्तु नहीं, प्राप्त कहाँसे होय ? ब्रह्माण्डमें तू ही ब्रह्म होता है औ पिण्डाण्डमें तू ही जीव होता है । स्वर्गवासी तू ही होता है, और तू ही नरकवासी होता है । 'मुये एक जाय तजि धना । मरे इत्यादिक केतेको गना ।।' ताते तेरेसे दूसरा कोई नहीं। नाहक कल्पनाका धन काहेको जोड़ता है ? अरे ! पहिले जो बड़े--बड़े भये, सो सबन मिलि नाना कल्पना कर--करके नाना प्रकारकी बानी शास्त्र--पुराणादि रखके मर-मर गये । अब जो कोई पैदा होते हैं, सो सब वही बानी पढ़ि-पढ़ि ये भी नाना कल्पना बना-बनाके मरते हैं, बिना पारख केतेको गना ?। ये अर्थ ।।१५।।

तता अति त्रियो नहिं जाई । तन त्रिभुवनमें राखु छिपाई ।।
जो तन त्रिभुवन माहिं छिपावै। तत्त्वहि मिलि तत्त्व सो पावै ।।१६।।

टीका मायामुखः—'त' कहिये तत्पद ईश्वर, 'ता' कहिये त्वंपद जीव, 'अति' कहिये असिपद दूनोंकी एकता; ये त्रिपदको समझ लेना और कहीं तीर्थ, व्रत, उपासनामें नहीं जाना । तन यही त्रिभुवन, यामें श्वासको छिपाना कि योग-साधना करके पवन ब्रह्माण्डमें लय करना ! जागृति अवस्था सहित पृथिवी जलमें लय करना औ स्वप्न अवस्था सहित जल अग्निमें लय करना औ सुषुप्ति अवस्था सहित अग्नि वायुमें लय करना औ तुरिया अवस्था सहित वायु आकाशमें लय करना ! याको लययोग-सन्धान कहिये ।

सवैयाः—प्रथमै मन लाय एकाग्र करे । फिर अँखिया लगायके ध्यान धरे ।। जहाँ ऊठत नाद अनाहद रे ! सगरे ब्रह्माण्डमें शब्द भरे ।। रकार अकार उठे झनकार । अनेक प्रकार सो शब्द चरे ।। सगरे जब नाद बिलाय गये। दश नाद रहे सगरे तबरे ।।१।। सोइ भिन्न-हि-भिन्न विचार करे । नहिं टारि टरे मन धीर धरे ।। दश नाद बिलाय सुभाविक रे ! फिर नाद रहे घण्टा इक रे।। धरतीके नादको आप गहै । फिर आप के नादको अग्नि दहै ।। औ अग्निके नाद समीर

लये। सोइ जाय रहै आकाश मये ॥२॥ सोई घण्टा नाद प्रकाशिक रे। सब पिण्ड-ब्रह्माण्डके बासिक रे॥ तिहुँ लोकको ईश्वर भासिक रे। तहाँ जीव मिले अविनाशिक रे॥ तहाँ उठत तरङ्ग अनन्दित रे! मन जाय भयो लय तेहि भितरे॥ पूर्णानन्द रूप वेदोदित रे! सोई लय योग सदोदित रे॥ ३॥

इस प्रकारसे 'जो तन त्रिभुवन माँहि छिपावै।' अर्थ कि जो कोई इस तनमें लययोग-सन्धान करके मनको लय करै, सोई तत्त्वनमें मिलके ब्रह्मको पावै। अन्तमें ब्रह्मरूप हो जाय। ये अर्थ॥ १६॥

थथा अति अथाह थाहो नहिं जाई। 'ई' थिर 'ऊ' थिर नाहिं रहाई॥
थोरे-थोरे थिर होउ भाई! बिनु थम्भे जस मन्दिर थँभाई॥१७॥

टीका मायामुखः—'थ' कहिये ब्रह्म और 'था' कहिये वेद; सो वेद बोलता है कि ब्रह्म 'अति अथाह, बेअन्त, थाहो नहिं जाई।' उसका अन्त किसीको नहीं मिलता। जो कोई थाह लेने जाता है, सो तद्वत् हो जाता है। तातै हे मुमुक्षु लोगो! 'थोरे--थोरे स्थिर होओ!' श्रवन–मनन करते-करते हलु-हलु उन्मुनी होओ! जैसे बिना आधार मन्दिर थम्भता है, तद्वत्। ये अर्थ॥ १७॥

ददा देखहु बिनशनहारा। जस देखहु तस करहु विचारा॥
दशहूँ द्वारे तारी लावै। तब दयालके दर्शन पावै॥१८॥

टीका गुरुमुखः—'द' का अर्थ दयाल और 'दा' का अर्थ दाता; तो जो दया करके पारख जीवको दे, सोई 'ददा' गुरु। सो गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! 'देखहु विनशनहारा ये देह।' तो जो कछु ये देहके अनुमानसे बना है औ देहकी क्रियासे बना है—सिद्धान्त वा बानी, सो भी विनशनहारा। जब स्थूल ही नाश होयगा, तब सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य कहाँ रहेगा? तो जैसा देखो, तैसा विचार करो सब पक्ष छोड़के, तब पारख प्राप्त होयगा। परन्तु माया क्या दृढ़ावती है? सो सुनो! मायामुखः—'दशहूँ द्वारे तारी लावे, तब दयालके दर्शन पावै!' प्रथम सिद्धासन करना—बायें पाँवकी एड़ी गुदामें लगाना, बायें पाँवके मूलपर दाहिना पाँव रखना, दाहिने पाँवकी एड़ीसे लिङ्गको दबाना, दाढ़ी कण्ठको लगाना, दोनों अंगूठोंसे कान मजबूत मूदना औ दोनों तर्जनी अंगुरीसे आँखें बन्द करना औ दोनों बीचकी अंगुरीसे नाक बन्द करना। इस प्रकारसे सन्मुखी मुद्रा तारकयोग करना, तब दयालका दर्शन मिलता है॥

छप्पयः—प्रथमें है अन्धकार, ताहि तमगुण करि जानो। दूसर अरुण प्रकाश, रक्त रजगुण पहिचानो ॥ बिजली-सी जो चमक, सोई है माया रानी। दिखे रङ्ग कर्पूर वही, सतगुणकी खानी ॥ शुद्ध सतोगुण भान चन्द्र मण्डल, तारागण लय करे। फिर रहे सुनीलानन्द, लक्ष–लक्षि मिलिके सर्वस भरे ॥ १ ॥

'दशहूँ द्वारे तारी लावे।' तत्र इस प्रकारसे दयालके दर्शन पावे। ये अर्थ ॥१८॥

धधा अर्ध माँहिं अँधियारी। अर्ध छोड़ि ऊर्ध मन तारी ॥
अर्ध छोड़ि ऊर्ध मन लावै। आपा मेटिके प्रेम बढ़ावै ॥१९॥

टीका मायामुखः—'ध' कहिये ब्रह्म औ 'धा' कहिये माया; सो 'अर्ध' कहिये पिण्ड, तामें महाअविद्याकी अँधियारी है। सो हे जीव ! तू अर्ध छोड़ ऊर्ध मन तारी लगावो ! अर्ध कहिये नाभि औ ऊर्ध कहिये त्रिकुटीः सो त्रिकुटी छोड़ तारकयोग मत् करे। ऊर्ध्व ब्रह्माण्डमें तारी लगावो अमनस्कयोग करके। 'अर्ध छोड़ि ऊर्ध मन लावै। आपा मेटिके प्रेम बढ़ावै।' ब्रह्माण्डसे जो स्फुरण होता है, सो सोहंरूप होके नाभिमें रहता है। तामें सुरत मिलाना। जो श्वासा नाभिसे उठता है, सो तीन धार होके चलता है–इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना। सो इङ्गला-पिङ्गलाका मुख नीचे अर्धको, औ सुषुम्नाका मुँह ऊपर ऊर्ध्वको। सो त्रिबन्ध बाँधके सुषुम्ना लाना। फिर श्वासोच्छ्वासमें सुरत लगाना। 'सोहं' करके श्वास उठाना, 'हंसो' करके श्वास बैठाना। इस प्रकारसे अर्ध कहिये इङ्गला–पिङ्गला, ताको छोड़के ऊर्ध = सुषुम्ना, तामें मन लगावै। औ आपा मेटे, देहकी विस्मृति करके नाममें मन बढ़ावै। तब मन उन्मुनी सिद्ध होय, तब ब्रह्म प्राप्त होय औ सकल सिद्धि प्राप्त होय, वाचा सिद्धि, मनसा सिद्धि प्राप्त होय। ये अर्थ ॥१९॥

चौथे वो ना महँ जाई। रामका गद्धा होय खर खाई ॥२०॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि कोई इस प्रकारसे लययोग करते हैं औ कोई तारकयोग करते हैं औ कोई अमनस्कयोग करते हैं। चौथे शून्यमें जाके लय होते हैं, फिर रामके गदहा बनते हैं, योगी बनते हैं। रामके गदहा कहिये 'रमेति रामः।' सबमें रमे, आपी राम कहाये, तब जगत्का बोझा सब उठाये। अधिष्ठानरूपी हुये, तब सब भोक्ता बने। अथवा कोई राम वियोगी होके गदहे माफिक खाक लगायके जहाँ-तहाँ अन्न छोड़के घास, पत्ती, कन्द-मूल खाने लगे। ये अर्थ ॥ २० ॥

पपा पाप करें सब कोई । पापके करे धर्म नहिं होई ॥
पपा कहै सुनहु रे भाई ! हमरे से इन किछुवो न पाई ॥२१॥

टीका मायामुखः—'पपा' कहिये परपञ्ची जीव; सो पण्डित लोगोंका बोलना ऐसा है कि संसारमें पाप सब कोई आचरण करते हैं, अपना-अपना धर्म सब कोई छोड़ा। कोई ब्राह्मणको पैसा नहीं देते औ कोई ब्राह्मणको भोजन नहीं देते, कोई कपड़ा देते नहीं। तो चारों वर्णने अपना धर्म छोड़ा औ पाप करने लगे। जो ब्राह्मण होके त्रिकाल सन्ध्या औ पञ्च महायज्ञ, गायत्री पुरश्चरण, औ ब्राह्मणको अन्न देना औ यजन--याजनादि कर्म यथाविधि करना, शूद्रका अन्न नहीं खाना औ त्रिकाल स्नान करना, शूद्रादिकका स्पर्श नहीं करना, सिलोंचना वृत्ति (उञ्छवृत्ति) करना या झाड़के तरे झरे, गिरे--परे पत्र, फल--फूलको भक्षण करना, या ब्राह्मणके घरसे भिक्षा लाना कोरा अन्न औ उदर-पोषण करना ! या कछु निकट प्रयोजन लगे तो क्षत्रियके यहाँ जायकर द्रव्य लाना औ अपना प्रयोजन करना ! औ नित्य-नैमित्तिक कर्म यथाविधि करना ! कर्म-लोप कभी न होना। ऐसा धर्म छोड़के अनाचार करते हैं, सो सब पाप करते हैं। औ क्षत्रियने भी धर्म छोड़ा--जो गऊदान, अश्वदान, गजदान, पृथिवीदान, कन्यादान आदिक कर्म नहीं करते औ राजसूय यज्ञ, अश्वमेध, सोमयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, शास्त्र-यज्ञादि यज्ञ भी कोई नहीं करते औ ब्राह्मण भूखे मरते हैं उनको द्रव्य भी नहीं देते। औ प्रजा-पालन करना, परिचर्या कर्म न करना। जो इतना न हो सके तो क्षत्रिय बनको जाय तपस्या करे। तो देखो ! क्षत्रिय-धर्म छोड़के सब पाप करते हैं। जो अपना धर्म छोड़े औ आन धर्म आचरण करते हैं, सो सब पाप। अब वैश्यका धर्म--ब्राह्मणकी सेवा औ राजाकी आज्ञा औ विष्णुकी भक्ति कायिक-वाचिक-मानसिक रखना औ कृषि, गऊ-रक्षा, वाणिज्य कर्म करके उदर-पोषण करना। ये धर्म छोड़के वैश्य आन धर्म आचरण करे तो सब पाप। औ शूद्रका धर्म कि तीनों वर्णकी सेवा करना, परिचर्या कर्म करना, राम-राम स्मरण करना, और कछु न करना। ये छोड़ और कर्म जो करे सो सब पाप। इसवास्ते सब पाप आचरण करते हैं। पापके अधिष्ठाता चारों वर्ण भये। तो भला ! ब्राह्मणको दान तो भी देना; सो भी नहीं देते। ताते सब नर्कको जायेंगे। ये अर्थ। जीवमुखः—'पपा कहै सुनहु रे भाई !' जीव कहता है कि सुनो रे भाई ! जैसा धर्म पण्डित लोग

बोलते हैं, सोई धर्म सत्य है। परन्तु अपनेसे इन गुरु लोगोंको कुछ पैसा-कौड़ी प्राप्त नहीं भई, यथार्थ धर्म आचरण नहीं हुआ। न जानें अपनी कौन गति होवेगी ?। ये अर्थ ॥२१॥

फफा फल लागे बड़ दूरी। चाखे सतगुरु ! देइ न तूरी॥
फफा कहै सुनहु रे भाई ! स्वर्ग-पतालकी खबरि न पाई ॥२२॥

टीका मायामुखः—'फफा' कहिये पुष्पित बाच, रोचक बानी। सो माया पुष्पित बानी जीवको उपदेश करती है कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि फल सम्पूर्ण मन्त्र- उपदेशनमें हैं, परन्तु कोई सतगुरु हाथसे तोरिके नहीं देते। गुरु जैसी क्रिया बतावें औ शास्त्र जैसी क्रिया बतावे, तैसी विधि चले तो फल प्राप्त होय। गुरुमुखः—'फफा कहै सुनहु रे भाई ! स्वर्ग-पतालकी खबरि न पाई।' गुरु कहते हैं कि जैसी गुरुवा लोगोंने बानी बताई, तैसी तुम लोगोंने मान लई। परन्तु हे भाई ! हे जीव ! अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि फल क्या स्वर्गमें हैं ? कि पातालमें हैं ? ये खबर न तुम्हारे गुरुवा लोगोंने पाई, न तुमने पाई। तो नाहक वेदबानीके भरोसे धोखेमें परे; बिना पारख। ये अर्थ ॥ २२ ॥

बबा बर-बर करे सब कोई। बर-बर करे काज नहिं होई॥
बबा बात कहैं अर्थाई। फलका मर्म न जानहु भाई ! ॥२३॥

टीका गुरुमुखः—'ब' कहिये बानी और 'बा' कहिये पण्डित; सो सब ब्रह्मादि पण्डित बर-बर करते-करते मरि-मरि गये, और अब जो कोई पण्डित हैं सो सब बरबर = बकवाद करते हैं। परन्तु बकवाद किये काम नहीं होनेका।

सवैयाः—कोई द्वैत औ कोई अद्वैत कहै, कोई विशिष्टाद्वैत सिद्धान्त कर माना है॥ कोई कर्त्ता औ कोई कर्म काल कहै, कोई पातञ्जलि योग निश्चय करि जाना है॥ कोई सांख्यवादी नित्यानित्यका विवेक करै, कोई वेदान्ती ब्रह्म सकलो कहि साना है॥ पूरण प्रकाश जबलौं पारखकी प्राप्ति नहीं, तौलौं बकवाद सकल भ्रम ही में ताना है॥ १ ॥

ताते बकवाद सब करते हैं, परन्तु कछु फायदा नहीं। बाबा गुरुवा लोग जो बातें करते हैं कि अस्ति ब्रह्म, सो ताको अर्थायके देखो कि ब्रह्म क्या है ? तो कहते हैं कि 'तू और मैं' ये छोड़ जगत् सब ब्रह्मरूप ही है। तो पहले जगत् नाम धरा था, अब एक अनुमान करके ब्रह्म नाम धरा, तो क्या हुआ ? कौन फल

इनके विचारका ? और कहते हैं कि पाप-पुण्य मानेसे होता है औ बन्ध-मोक्ष मानेसे होता है, न माने तो कछु नहीं। आत्मा जैसा-का-तैसा। तो भला ! अग्निको पानी करके मानें, तो हाथ जरे कि नहीं ? औ पानीको अग्नि करके मानें, तो अङ्ग जरे कि नहीं ? औ पानीको पानी करके न मानें, पृथिवी करके मानें तो बूड़े कि नहीं ? जो सूर्यको अन्धकार करके मानें, तोअन्धकार होय कि नहीं ? औ अन्धेरेको सूर्य करके मानें, तो प्रकाश होय कि नहीं ? याते जोहोय सोई सही। मानेसे कछु नहीं होता। ये सब मिथ्या धोखा। ये अर्थ ॥

कवित्तः—कोई जन्मअन्ध ताको, नैनसुख नाम भयो। इतने में फूल्यो पर, नेत्र नहिं आयो है ॥ कोई जन्मरोगी ताको, देहसुखी नाम धर्यो। नामहि को महातम, कछु सुख नहिं पायो है ॥ काननको बहिरा ताको, बहु श्रोता कहैं लोग। बानीको रस ताको, स्वप्नेहु नहिं भायो है ॥ मूकाको वक्ता कहि, नाम धरा पुराणन में। ऐसो ही गुरुवन ने, जगत ब्रह्म गायो है ॥ १ ॥

गुरुवा लोगनकी बातका अर्थ देखो तो कछु फल नहीं। ये अर्थ ॥ २३ ॥

भभा भभरि रहा भरपूरि। भभरे ते है नियरे दूरी ॥
भभा कहै सुनहु रे भाई ! भभरे आवै भभरे जाई ! ॥२४॥

टीका गुरुमुखः—'भभा' कहिये भ्रम; सो भ्रम ही ब्रह्म होयके भरपूर हो रहा। प्रथम वेदकी कल्पना कि कोई ब्रह्म है। सो बात जब जीवने सुनी, तब ब्रह्मको खोजने लगा। जहाँलग जीवकी अकिल चली, तहाँलग खोजा। फिर जब अकिल थकी, तब कहा कि आपु ही ब्रह्म। घबरायके कहा कि मैं ही ब्रह्म सर्वत्र परिपूर्ण हूँ। यही बातका सिद्धान्त घबरायके सब करने लगे। फिर कोई नगीच ठहराने लगे औ कोई कहने लगे कि दूर है। ऐसा भ्रमके अनेक सिद्धान्त करने लगे औ भ्रमहीमें 'सम्पूर्ण हम ही भरे हैं' ऐसा कहते हैं। जो नगीच कहना, ये भी भ्रम औ दूर कहना, ये भो भ्रम। सम्पूर्ण आप-ही-आप कहना, ये भी भ्रम। भ्रमहीसे सब बात करते हैं। हे भाई जीव ! तुम सुनो ! भ्रमहीमें सब आते हैं औ भ्रमहीमें सब जाते हैं। भ्रम है सोई जन्म-मरणका कारण है। परखके ताको निरुवारा करो। ये अर्थ ॥ २४ ॥

ममाके सेये मर्म नहिं पाई। हमरे से इन मूल गमाई ॥
माया मोह रहा जग पूरी। माया मोहहि लखहु बिचारी ॥२५॥

टीका गुरुमुखः—'म' कहिये अन्धकार, अन्धकार कहिये जहाँ कुछ सूझै नहीं औ जीव भ्रमि जाय, सोई मकार माया। अथवा मकार शब्द मोहन बीज है, जाके मोहसे जीव मोहित हो जाय औ आगे कछु सूझैं नहीं, सोई मकार। 'मा' कहिये माया, औ मा कहिये काया, काया कहिये जामें जीव आसक्त होय! सो जीव सब देहमें आसक्त होके मकारका सेवन करने लगे। मकार दश; तामें मुख्य पाँच औ पाँच गौण। पञ्च मकार मिलके मायाका स्वरूप। मन्त्र, मुद्रा, मद्य, मांस, मैथुन—ये पञ्च मकार गौण। स्त्री, पुत्र, धन, बानी औ घर—ये पञ्च मुख्य मकार। अब माया दश प्रकारकी—स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य, कर्म, उपासना, ज्ञान, भक्ति, विज्ञान; ये दश प्रकारकी माया। औ याहीको सेवन सब करने लगे, याहीमें आसक्त भये; ताते मर्म न पाया, पारख नहीं पाया। ये अर्थ। 'हमरेसे इन मूल गमाई।' याको अर्थ ऐसा है कि ये बीस द्रव्यका अभिमान माना—दश मायाकृत, दश मकारकृत; ताते ये जीवने अपना मूल हंसदेह, ताको गँवाया औ मायाके मोहमें परा। सो ये मायाका मोह जगमें पूरि रहा है। सो तुम विचारके परखो औ उसकी आसक्ति छोड़ो! तब पारख-स्थिति प्राप्त होयगी। ये अर्थ ॥ २५ ॥

यया जगत रहा भरपूरी। जगतहुँ ते है जाना दूरी ॥
यया कहै सुनहु रे भाई! हमहीं ते इन जै जै पाई ॥२६॥

टीका मायामुखः—'य' कहिये ब्रह्म औ 'या' कहिये माया; सो गुरुवा लोग बोलते हैं कि जो जगत् है, तामें ब्रह्म भरपूरि रहा है–'कनक–कुण्डल न्याय, घट-मृतिका न्याय'; परन्तु जगत्से अलिप्त है। जैसा घट, मठ, पटमें आकाश भरा है औ घट, मठ, पटसे दूर है, अलिप्त है; तद्वत्। ये अर्थ। परन्तु इन जीवनने हमहीसे जय! जय! पाई। ऐसा गुरुवा लोग बोलते हैं कि जीवनने ब्रह्म-स्थिति हमहीसे पाई। ये अर्थ ॥ २६ ॥

ररा रारि रहा अरुझाई। रामके कहै दुःख दारिद्र जाई ॥
ररा कहै सुनहु रे भाई! सतगुरु पूँछिके सेवहु आई ॥२७॥

टीका गुरुमुखः—'र' कहिये ज्ञान, 'रा' कहिये ज्ञानी; सो गुरु बोलते हैं कि ज्ञानी लोग सब ब्रह्मकी रारमें अरुझाय रहे हैं और अज्ञानी बोलते हैं कि

'रामके कहै दुःख-दारिद्र जाई।' परन्तु ज्ञानी लोग बोलते हैं कि राम कहै दुःख-दारिद्र जायगा सही; परन्तु सतगुरुको पूछिके सेवन करो कि राम क्या है? जब सतगुरु आत्मारामको बतावेंगे, तब दुःख-दरिद्र सब जायगा। दुःख = आवागमन और दरिद्र = जीव; सो जीवपना उड़ जायगा औ जब आत्मापन आयगा, तब दुःख सब जायगा। इस प्रकारसे गुरुवा लोग बोलते हैं। ये अर्थ ॥ २७ ॥

लला तुतुरे बात जनाई। तुतुरे आय तुतुरे परचाई ॥
आप तुतुरे औरकी कहई। एकै खेत दूनों निर्बहई ॥२८॥

टीका गुरुमुखः—'लला !' ऐसी प्रीति सम्बोधन है औ 'तुतुरे' कहिये भ्रमिक; सो गुरु बोलते हैं कि हे जीव ! जो गुरुवा लोगोंने बात जनाई है, बानी तुम्हारेको उपदेश किया है, सो सब मिथ्या भ्रम है। अरे ! गुरुवा आपही भ्रमिक हैं। भ्रमिक कहिये ब्रह्म, जामेंसे सम्पूर्ण जगतादि भ्रम खड़ा हुआ और फिर उसीमें हैं। सोई तुतुरे ब्रह्मज्ञानिनने आयके ब्रह्म ज्ञानकी बानी अर्थाय संसारमें परचाय दी। अरे ! वे आप ही तुतुरे बने हैं, भ्रमिक बने हैं, ब्रह्म अधिष्ठान बने हैं। सोई ब्रह्मज्ञान औरनको कहते हैं औ ब्रह्म बनाते हैं ! फिर एक ही अधिष्ठानमें दूनों गुरु-शिष्य निर्वाह करते हैं, जैसा 'जल-तरङ्ग न्याय'। तो ब्रह्म ज्ञानी आप ही भ्रमिक है और दूसरेका भ्रम क्या छुड़ावेगा ? गुरु-शिष्य दोनों भ्रमहीमें रहे। ये अर्थ ॥ २८ ॥

ववा वह-वह कहैं सब कोई। वह-वह कहैं काज नहिं होई ॥
वह तो कहै सुनै जो कोई ! स्वर्ग-पताल न देखै जोई ॥२९॥

टीका मायामुखः—'व' कहिये बानी औ 'वा' कहिये वेद औ 'वह' कहिये ब्रह्म परमात्मा। वह शब्द परोक्ष, दूसरा वेदबानी। सो गुरुवा लोग बोलते हैं कि वेदबानीके प्रमाणसे परोक्ष परमात्मा वा स्वर्गादिकमें परमात्मा सब कोई कहते हैं सो मूर्ख। परोक्ष कहेसे कार्य नहीं होनेका। अरे ! वह वेद तो सत्य कहता है; परन्तु कोई सुनता नहीं। कैसे कि स्वर्ग कहिये ब्रह्माण्ड औ पाताल कहिये पिण्डाण्ड। सो वह ईश्वर ब्रह्माण्डमें और यह जीव पिण्डाण्डमें। सो दोनोंका वाच्यांश छोड़ देना और लक्ष्यांश ग्रहण करना, सो सम्पूर्ण ब्रह्म एक ही है। इस प्रकारकी वेदकी आज्ञा है; परन्तु करे नहीं कोई तो परोक्ष बातसे मुक्ति नहीं। जब

वाच्यांश छोड़ै औ शुद्ध लक्ष्यांश ग्रहण करे, तब अपरोक्ष अनुभव होय और जीव-ब्रह्मकी एकता होय । ये अर्थ ॥ २९ ॥

शशा सर नहिं देखै कोई । सर शीतलता एकै होई ॥
शशा कहै सुनहु रे भाई ! शून्य समान चला जग जाई ॥३०॥

टीका मायामुखः—'श' कहिये, शून्य कहिये, आनन्द कहिये, ब्रह्म कहिये; औ 'शा' कहिये, आकार कहिये, जगत् कहिये, जीव कहिये । तो नाम-रूप उपाधि मिथ्या, औ वस्तुतः सत्य । आकार बिनु शून्य नहीं औ शून्य बिनु आकार नहीं। उभय सम्बन्ध है । दोनोंका अधिष्ठान आत्मा; 'जल-बुद्बुदा न्याय' । बुद्बुदा सोई आकार, बीचमें पोल सोई शून्य, वस्तु पानी सोई सत्य । नाम-रूप मिथ्या। जगत् बिनु आनन्द नहीं, आनन्द बिनु जगत् नहीं । उभय सम्बन्ध है । दोनोंका अधिष्ठान आत्मा; घटाकाश न्याय' । घट सोई जगत् औ घटाकाश सोई आनन्द, महदाकाश सोई सत्य । नाम-रूप उपाधि मिथ्या । जीव बिनु ब्रह्म नहीं, ब्रह्म बिनु जीव नहीं । उभय सम्बन्ध है । दोनोंका अधिष्ठान आत्मा; 'घट-मृत्तिका न्याय' । ब्रह्म मृत्तिका, जीव घट । नाम-रूप उपाधि मिथ्या, पृथ्वी सत्य । तद्वत् जगत् सब आत्मा । शशाका ये अर्थ । तो गुरुवा लोगोंका उपदेश ऐसा है कि 'सर नहिं देखे कोई । सर शीतलता एकै होई ॥' तो देखो ! जड़ देहका अभिमान करके जीव सब भ्रमि गये । नाना कर्म-उपासना करते हैं औ ब्रह्म कोई नहीं देखता कि जगत् औ ब्रह्म एक है, सर-शीतलता एक है । तद्वत् सर = पानी, शीतलता = ठण्ढाई । ये अर्थ । गुरुमुखः—'शशा कहै सुनहु रे भाई ! शून्य समान चला जग जाई ॥' हे भाई जीव ! तुम सुनो ! ये गुरुवा लोग जगत्-ब्रह्म कहते हैं । तो सबने 'जगत्' नाम धरा था, औ गुरुवा लोगोंने 'ब्रह्म' नाम धरा, तो क्या इनकी अधिकाई ? जैसा कोई दिवाना हो गया, तब अपना शिर अपने हाथसे फोड़ लिया । सो बड़ा घाव पड़ा और उसमें अनेक कीड़े पड़े । लोगोंने उसका 'रोगी' नाम धरा और आप भी रोगी कहै । तामें कोई एक और उसे अच्छा करनेको आया । सो ताने उसका नाम दिवाना रक्खा, तो इसमें क्या उसका रोग गया? क्या दिवानापन गया ? तद्वत् ये गुरुवा लोगोंका मिथ्या उपदेश सुनिके 'शून्य समान चला जग जाई ।' सकल जग गर्भवासमें औ भगमें समाया चला जाता है । ताते तू परखके छोड़ । ये अर्थ ॥ ३० ॥

षषा खरा करे सब कोई । खर-खर करे काज नहिं होई ॥
षषा कहै सुनहु रे भाई ! राम नाम ले जाहु पराई ॥३१॥

टीका गुरुमुखः—'ष' = ब्रह्म औ 'षा' = जगत्; सो जगत् सब 'ब्रह्म खरा और सब झूठा' ऐसा कहते हैं औ गुरुवा लोगोंके पास खरा करते हैं । परन्तु 'खरा ब्रह्म और खोटा जगत्' ऐसा कहे कछु काम नहीं होनेका । क्योंकि ब्रह्म तो जगत्-हीका नाम है । इसमें क्या कार्य होवेगा ? 'षषा कहै सुनहु रे भाई !' अब गुरुवा लोगोंके दो सिद्धान्त हैं, सो सुनो रे भाई ! एक सिद्धान्त ऐसा है कि जगत् सब ब्रह्मरूप है । औ दूसरा सिद्धान्त ऐसा है कि रामनाम लेके जगत्से भाग जावो जङ्गलमें, औ रामनामकी रटना लगावो तो रामरूप हो जाओगे । तो 'रमेति रामः ।' राम हुआ तो भी चौरासीमें रमा औ ब्रह्म हुआ तो भी चौरासीरूप हुआ ॥३१॥

ससा सरा रचो बरियाई । सर बेधे सब लोग तवाई ॥
ससाके घर सुन-गुण होई । इतनी बात न जाने कोई ॥३२॥

टीका गुरुमुखः—'स' कहिये ब्रह्म और 'सा' कहिये ब्रह्मवेत्ता, 'सरा' कहिये बानी । सो गुरु कहते हैं कि देखो हे सन्तो ! ये गुरुवा लोग जो बड़े-बड़े ब्रह्म-वेत्ता वसिष्ठ आदि पैदा भये, उन्होंने भी ब्रह्मज्ञान बहुत कथा । तामें कहा कि द्वैत उपासना-कर्म कछु आत्मामें सम्भवता नहीं । फिर नाना प्रकारके कर्म-उपासनाकी बानी जबरदस्ती रचना की और सबको दृढ़ाया कि उपासना औ कर्म करे बिना जीवकी मुक्ति नहीं । तामें सब जीव अरुझे और ओ कर्म-उपासनाकी बानी सब संसारमें बेधी, ताते संसारमें तवाई आई । वासनामें अरुझके आवागमनमें परे । भला ! उनका तो भी अद्वैत सिद्धान्त कैसे मानना ? जो उनको अद्वैत अनुभव यथार्थ हुआ था, तो ये कर्म, उपासना द्वैत काहेको कहा ? जो इस बातकी पारख करो तो ऐसा मालूम होता है कि उनको भी दुगदुगी रही कि अद्वैत है कि द्वैत है। ताते द्वैत--अद्वैत दोनों सिद्धान्त वर्णन किया । सोई दुगदुगी सबमें बेधी है, ताते जगत्पर तवाई आई । अरे ! गुरुवा लोगोंके घरमें सुन-गुण है, मिथ्या धोखा है । आखिर विचार करके देखो तो न कछु ब्रह्म ही है, न कछु कर्म-उपासना ही है। सब मिथ्या जीवका धोखा । 'इतनी बात न जाने कोई ।' इतनी बात किसीके परखनेमें न आई, ताते बँधे बैलकी नाईं धोखेमें परे । सो तू परखके छोड़ देओ ! ये अर्थ ॥ ३२ ॥

हहा हाय ! हाय ! में सब जग जाई। हर्षसोग सब माहिं समाई ॥
हँकरि हँकरि सब बड़-बड़ गयऊ। हा ! हा ! मम न काहू पयऊ? ॥ ३३ ॥

टीका गुरुमुख:—'ह' शब्दका अर्थ हङ्कार, औ 'हा' कहिये हङ्कारजनित जो कछु कार्य हो; ताहीके हाय-हायमें सब जग जाई। प्रथम स्थूलका अभिमान; तज्जनित स्थूल विषय—स्त्री, पुत्र, घर, धन, परिवार, राग-रङ्ग, अच्छे-अच्छे षट्-रस भोजन, देखनेको अच्छे-अच्छे रूप, सूँघनेको अच्छी-अच्छी सुगन्ध, स्पर्श करनेको अच्छी--अच्छी स्त्रियाँ। येती वस्तुकी प्राप्तिके वास्ते सब 'हाय! कब मिलेगी ? हाय ! कब मिलेगी ?' ऐसा कहि--कहिके सब संसार मरता है। फिर येतिक वस्तु जो मिले तो बड़ा सुख होता है, हर्ष होता है। औ न मिले, जाता रहे तो बड़ा शोक, दुःख होता है। फिर सोचहीमें मरते हैं औ नाना योनिमें जाते हैं। ताते आगे ही परखके छोड़ तो तेरेको बड़ा सुख होवेगा। दूसरा सूक्ष्मका अभिमान; तज्जनित सूक्ष्म विषय—स्वर्गादिक-प्राप्ति, देवादिक-प्राप्ति, लोक-परलोकादिक-प्राप्ति, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र सिद्धिकी प्राप्ति, राज्य-प्राप्ति, इन्द्रासन-प्राप्ति, विद्यादिक-प्राप्ति। ये मिले तो परम हर्ष, सुख होता है, और फिर वियोग होय अथवा न मिले तो बड़ा शोक, दुःख होता है। ताहीमें हाय ! हाय ! करते-करते मरते हैं, फिर नाना योनिमें जाते हैं। ताते सम्पूर्ण परखके छोड़, तब तेरी स्थिति होवेगी, आवागमनसे रहित होवेगा। तीसरा कारणका हङ्कार, तज्जनित कारण विषय—योग-प्राप्ति, समाधि-प्राप्ति, सिद्धि-प्राप्ति, वाचा-सिद्धि, काया-सिद्धि, मनसा-सिद्धि, प्राणायाम, प्रत्याहार, भूत--भविष्य-वर्त्तमान-सिद्धि, परकाया-प्रवेश होना, गुप्त होना, प्रकट होना, आसन उड़ाना, जहाँ इच्छा करना तहाँ जाना, ताम्बेपर मूतना—सोना होना, एकसे अनेक हो जाना, अनेकसे एक होना, दश-मुद्रा, उन्मुनी, हठयोग आदिक सम्पूर्ण प्राप्ति होय तो बड़ी खुशी; औ नाश हो जाय या प्राप्त न होय तो महादुःख। फिर वही साधना करके हाय! हाय! करते-करते मरते हैं, फिर गर्भवासको आते हैं। ताते तू परखके छोड़ तो पारख-स्थिति होयगी। अब चौथा महाकारण अभिमान; तज्जनित विषय—नित्यानित्य विवेक, औ इहामुत्र फल भोग विराग, शमादि षटक—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा औ समाधान, मुमुक्षुदशा, ज्ञानकी प्राप्तिमें सर्वसाक्षी ब्रह्म, मैं ज्ञानी, मैं मुक्त, औ सब बन्ध। ऐसी दशा जब प्राप्त होय तब बड़ा सुख, न प्राप्त भई तो महादुःख।

फिर हाय ! हाय ! करते-करते मरते हैं औ गर्भवासको आते हैं। अगर ज्ञानको प्राप्त हो तो ब्रह्म बनके सबमें व्यापते हैं, फिर नाना सुख-दुःख भोगते हैं। ताते तू सब परखके छोड़। पाँचवाँ हङ्कार कैवल्य, तज्जनित विषय—मैं अद्वैत, मैं आत्मा, मैं अधिष्ठान, जगत् स्थावर-जङ्गम आदि सब मेरा स्वरूप, जड़-चैतन्य सब मैं ही। घट-मृत्तिका न्याय, जल-गारा न्याय, सुवर्ण-भूषण न्याय, बसन-पुतरी न्याय मैं आत्मा। औ जो अनुभव प्राप्त होय तो बड़ा सुख, और वही आत्मा जगत्‌रूप भया तो बड़ा दुःख। फिर उसीके हाय ! हाय ! में सब जग जाई औ 'हर्ष-शोग सब माहिं समाई।' ताते तू परखके देख कि हँकरि-हँकरि सब बड़े-बड़े ज्ञानी ब्रह्मादि–सनकादिक गये; परन्तु हा ! हा ! का मर्म कोईको प्राप्त भया नहीं। ये पाँचों हङ्कारका मर्म कोईने भी परखा नहीं कि ये ही पाँचों हङ्कार जीवको बन्धन हैं। याहीसे जीव नाना दुःखमें परा औ बिडम्बना भई। जो हङ्कार भास हुआ, सोई हङ्काररूपी जीव भया। फिर उसीकी बानी कथने लगा और उसीका पक्ष मजबूत हुआ। सो तू परखके देख औ पाँचों हङ्कार छोड़ ! इनमें तदाकार मत् हो। ये मिथ्या भ्रम है। पारखमें स्थिर हो ! जाते ये सम्पूर्ण भ्रम परखनेमें आया, सोई पारख तेरी स्थिति। ये अर्थ ॥ ३३ ॥

क्षक्षा छिनमें परलय सब मिटि जाई। छेव परे तब को समुझाई?॥
छेव परे काहु अन्त न पाया। कहहिं कबीर अगमन गोहराया ॥ ३४॥

टीका गुरुमुखः—'क्ष' कहिये क्षर, क्षर कहिये देह, 'क्षा' कहिये देहका करतूत। तो गुरु कहते हैं कि जेतिक देह औ देहसे सम्पूर्ण बानी, अनुमान सिद्धान्त बने हैं सो सब क्षणमें नाश हो जायेंगे। कि देह नाशवन्त तो फिर देहसे जो कुछ बने हैं सो कहाँ रहेंगे ? सभी नाश क्षणमें होवेंगे। उनके अध्याससे तेरेको चौरासी भोगनी होवेगी। फिर 'छेव परे तव को समुझाई ?।' अरे ! ये मानुष-जन्म छूट जायगा, फिर तेरेको कौन समुझावेगा ? अरे ! ये मानुषतन छोड़के फिर काहू अन्त न पाया। ताते गुरु कहते हैं कि मैंने तेरेको आगे ही गोहरायके कह दिया कि जो तूने मानुषदेह पाया है, अब वह मानुषजन्म अकारथ मत् खोओ ! सबको परखके पारखरूप हो जाओ ! नहीं तो फिर चौरासीमें जा पड़ोगे, फिर कछु तेरेको पारख मिलनेकी नहीं। औ जबलग पारख नहीं मिलती, तब-लग कछु कसर मालूम होती नहीं। औ जबलग सब कसर मालूम नहीं भई, तब-

लग भूल छूटती नहीं। औ जबलग भूल छूटती नहीं, तबलग आवागमनसे रहित होता नहीं। भूल कहिये ब्रह्म, भूल कहिये आत्मा, भूल कहिये ईश्वर, भूल कहिये कर्त्ता, भूल कहिये जगत्। ऐसी सम्पूर्ण भूल जाते परखनेमें आवे, सोई पारख गुरुपद। ताकी प्राप्तिके हेतु गुरुकी शरणमें जाना, साधु-सेवा करना औ पारखमें स्थिर होना, तब आवागमनसे रहित होय। ताते आगे तेरेको मैंने गोहराया कि गाफिलीमें मानुषतन मत् छोड़। ये अर्थ ॥३४॥

चौंतीस अक्षरका जाल, तामें जीवनको सब बन्धन हुआ। सो गुरुने चौंतीसा ज्ञान कहिके सब परखाया। अब आगे ब्राह्मणकी मति वेद-प्रमाणसे बताते हैं, सो सब विचारवान् सुनो! आगे मत औ कर्म सब बतायके औ फिर उनकी कसर सब बतायके गुरुपदकी स्थिति करेंगे।

दोहाः—स्थिरपद परख प्रकाश गुरु, सुख स्वरूप कबीर ॥
पूरण चेरो चरण को, शरण आयेकी भीर ॥१॥
त्राहि! त्राहि! साहेब शरण, हौं कछु जानत नाहिं ॥
बीजक की टीका करी, आप पैठि जिय माहिं ॥२॥

॥ ॐ ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा-टीका सहित ज्ञानचौंतीसा तृतीय प्रकरणम्
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ३ ॥ ॐ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

बीजक मूल सद्ग्रन्थः

॥ ❀ ॥ विप्रमतीसी चतुर्थ प्रकरणम् प्रारम्भः ॥ ४ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दया गुरु की--॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते विप्रमतीसी प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित।]

॥ ❀ ॥ विप्रमतीसी ॥ ❀ ॥

सुनहु सबन मिलि विंप्र-मतीसी । हरि बिनु बूड़ी नाव भरीसी ॥१॥
ब्राह्मण होयके ब्रह्म न जाने । घरमा यज्ञ प्रतिग्रह आनें ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु बोलते हैं कि वेदने जो ब्राह्मणोंकी मति कही है, सो सुनो औ इनका आचरण देखो ! हरि कहिये ज्ञान; सो ज्ञान बिना इनका ब्राह्मणपन डूबा । वेदवचन ऐसा है कि—"ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः । ब्रह्मविद् ब्राह्मणो भवति ॥' ब्राह्मण काहेसे कहिये ? क्या जीवको ब्राह्मण कहना ? तो जीव सबका एक-सा । जो देहको ब्राह्मण कहिये ? तो देह सबका एक-सा पञ्च-भौतिक । औ कर्म-मार्गसे भी देहको ब्राह्मण कहा जाय ? तो पिता मरता है, ताके देहको पुत्र आदिक जराय देते हैं । तो ब्रह्म-हत्या होना, सो कछु होती नहीं । तो देह ब्राह्मण नहीं । जो पण्डित ब्राह्मण कहा जाय ? तो और-और जातिमें भी बड़े-बड़े बुद्धिमान् होते हैं कि जिनकी बात बड़ी-बड़ी सभामें भी मञ्जूर होती है । 'यस्य बुद्धिः पण्डा सः पण्डितः ।' ये शास्त्रकारोंने कहा कि जाकी बुद्धि बड़ी पुष्ट, सो पण्डित । ताते पण्डित भी ब्राह्मण नहीं । अब कर्मिष्ठ ब्राह्मण कहा जाय ? तो क्षत्रियको भी तीन कर्मोंका अधिकार है । सो क्षत्रिय भी बड़े-बड़े कर्मी औ दानी होते हैं; पृथिवी-दान, गज-दान, कन्या-दान, गो-दान, हिरण्य-दानादिक कर्म

करते हैं। तस्मात् कर्मिष्ठ भी ब्राह्मण नहीं। अब ब्राह्मण श्वेतवर्ण, क्षत्रिय रक्त-वर्ण, वैश्य पीतवर्ण, शूद्र कृष्णवर्ण; जो ऐसा कहा जाय ? तो चारों वर्ण सबहींके दिखाते हैं। तस्मात् वर्ण भी ब्राह्मण नहीं। अब कोई ऐसा कहे कि ब्राह्मण मुखसे पैदा होते हैं, क्षत्रिय भुजासे पैदा भये, वैश्य जङ्घासे पैदा भये औ शूद्र पाँवसे पैदा भये। तो सबहीं भगसे पैदा होते हैं। न कोई मुखसे पैदा होता है, न कोई भुजासे, न कोई जङ्घासे, न कोई पाँवसे पैदा होता है। सब स्त्रीके भगसे पैदा होते हैं। ताते ये भी कछु प्रमाण नहीं। तस्मात् ये भी ब्राह्मण नहीं। कोई कहते हैं कि आयुष्य ब्राह्मण। तो ब्राह्मण सौ वर्ष जीते हैं औ क्षत्रिय पचास वर्ष, वैश्य पचीस वर्ष औ शूद्र बारह वर्ष जीते हैं। तो ये भी कछु प्रमाण नहीं। तस्मात् आयुष्य कछु ब्राह्मण नहीं। अब कोई कहेगा कि जाति ब्राह्मण। तो आन-आन जातिमें भी ब्राह्मण बड़े-बड़े भये हैं; सो सुनो—वसिष्ठ गणिकापुत्र, व्यासकी धीमरकी कन्यासे उत्पत्ति, क्षत्रियपुत्र विश्वामित्र, हरिणपुत्र शृंगीऋषि, घड़ेसे उत्पन्न अगस्त्य, कमलसे उत्पन्न ब्रह्मा, पासीका पुत्र बाल्मीकिऋषि, गौतनसे गौतमऋषि, नारद दासीपुत्र, अनुचरऋषि हस्तिनीका पुत्र, द्रोणसे द्रोणाचार्य, शूद्रिनसे भारद्वाजऋषि, मातङ्गऋषि मातङ्गीपुत्र, माँडुकऋषि मेंडकीके गर्भसे उत्पन्न। ऐसे-ऐसे अनेक जातिमें भी बड़े-बड़े श्रेष्ठ ब्राह्मण भये हैं, जिनको वेदने भी माना है। तस्मात् जाति भी ब्राह्मण नहीं। तो ब्राह्मण किसे बोलता है वेद ? कि—'ब्रह्मविद् ब्राह्मणो भवति।' जो समष्टि-व्यष्टि एक करके अनुभव ब्रह्म जाने, सो ब्राह्मण। सुवर्ण-भूषण न्याय, घट-मृत्तिका न्याय। तो ब्रह्मज्ञान जाको अपरोक्ष होय, ताको ब्राह्मण कहिये* ! ये वेद-वचन ॥१॥ सो 'ब्राह्मण होयके ब्रह्म न जाने।'

---

* टिप्पणी—"वज्रसूची उपनिषद्‌में लिखा है:—"

ॐ वज्रसूचीं प्रवक्ष्यामि शास्त्रमज्ञानभेदनम् ॥
दूषणंज्ञानहीनानां भूषणं ज्ञानचक्षुषाम् ॥ १ ॥

भावार्थः—'वज्रसूची' नामक उपनिषद् ग्रन्थको कहता हूँ—जो अज्ञानको हरण करनेवाला ज्ञानहीनोंके लिए दूषण और विवेकरूपी नेत्रोंसे देखनेमें आनेवालोंके लिए भूषणके समान ज्ञान है ॥ १ ॥

ब्रह्मक्षत्रियवैश्यशूद्रा इति चत्वारो वर्णास्तेषां वर्णानां ब्राह्मण एव प्रधान इति वेदवचनात् निरूपितम् ॥ "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां७ शूद्रो अजायतेति यजुर्वेदे ॥" स्मृतिभिरप्युक्तम्।

तत्र बोद्धव्यं चोद्यमस्ति को वा ब्राह्मणो नाम, किं जीवः, किं देहः, किं जातिः, किं वर्णः, कः पंडितः, को धर्मः, किं ज्ञानं, किं धार्मिक्यं, किं कर्म चेति दशम विकल्पाः ॥ तत्र प्रथमो जीवो ब्राह्मण इति चेत्तन्न । सर्वस्यापि जनस्य जीवस्यैक-रूपत्वाच्च । तस्माज्जीवो ब्राह्मणो न भवत्येव ॥ २ ॥

भावार्थः—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र; इन चारों वर्णोंमें ब्राह्मण प्रधान अर्थात् श्रेष्ठ माने गये हैं। ऐसा वेदमें निरूपण किया गया है कि ब्राह्मण मुखसे, क्षत्रिय बाहुसे, वैश्य जङ्घासे, और शूद्र पाँवसे उत्पन्न हुये हैं; ऐसा स्मृति अर्थात् धर्मशास्त्र और यजुर्वेदमें कहा है। तहाँ बोधरूप ब्राह्मण आदि हैं, इस कथनसे ब्राह्मण मुखसे, क्षत्रिय बाहुसे, वैश्य जङ्घासे और शूद्र पाँवसे उत्पन्न होते कहीं देखनेमें नहीं आते। किन्तु सब चारों वर्णोंकी उत्पत्ति भगसे ही होती है। इसलिए यह कथन समीचीन नहीं। और जो कहा है—क्या नामको ब्राह्मण कहा जावे ? सो नाम तो चारों वर्णोंके सब सदृश ही मिलते हैं; इसलिए "नाम" ब्राह्मण नहीं है। और जीवको, तथा देहको, तथा जातिको, अथवा वर्णको, वा पण्डितको, वा धर्मको, वा ज्ञानको, अथवा धार्मिक्यको, वा कर्मको ब्राह्मण कहा जावे, तो उस विषयमें आगे लिखते हैं ॥ प्रथम जीवको ब्राह्मण कहा जावे, तो चारों वर्णोंके सब जीव समान रीतिसे एक सदृश स्वजातीय हैं। इसलिए "जीव" ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥ २ ॥

अन्यच्च देहोब्राह्मणमिति चेत्तर्हि सर्वस्यापि जनस्य ब्राह्मणादिचाण्डालपर्य-न्तानां मनुष्याणां पाञ्चभौतिकत्वेन देहस्यैकरूपत्वात् जरामरणधर्मदर्शनात् । तस्मा-द्देहोब्राह्मणो न भवत्येव ॥ ३ ॥

भावार्थः—अथवा यदि देहको ब्राह्मण माना जावे, तो सर्व मनुष्य चाण्डालसे लेकर ब्राह्मणतक सबका देह पाँच तत्त्व, तीन गुणादिसे सर्व शरीर बना है। जन्म-मरण सर्वका होता है। इसलिए "देह" भी ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

पुनर्देहोब्राह्मणमिति चेत्तर्हि पितृमातृ शरीरदाहनात् पुत्राणां ब्रह्महत्यादि दोषसम्बन्धः स्यादित्यपि हेतोः तस्माद्देहो ब्राह्मणो न भवत्येव ॥ ४ ॥

भावार्थः—अथवा फिर भी देहको ही ब्राह्मण माना जावे, तो माता-पिताके शरीरान्त होनेपर पुत्र उनके शरीरको जला देता है। तब उसको ब्रह्म-हत्यादि दोष लगना चाहिये; सो ऐसा तो नहीं होता है। ब्रह्म-हत्यादि दोष नहीं लगता; इसलिए "देह' ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥ ४ ॥

पुनर्ज्जातिरिति चेत्तर्हि अन्यजातेः समुद्भवा बहवो महर्षयः सन्ति । ऋष्य-शृङ्गो मृग्याम्, कौशिकः कुशास्तरणे, जाम्बूको जम्बूकात्, गौतमः गोतनौ, वाल्मीको वल्मीकात्, व्यासः कैवर्तकन्यकायाम्, वसिष्ठ उर्वश्याम्, विश्वामित्रः क्षत्रियायाम्, अगस्त्यः कलशाज्जातः, माण्डुकः मण्डूकी गर्भोत्पन्नः, मातङ्गो

मतङ्गपुत्रः, पराशरश्चण्डालीगर्भोत्पन्नः, अनुचरो हस्तिनीगर्भोत्पन्नः, भारद्वाजः शूद्रिणीगर्भोत्पन्नः, द्रोणाचार्य्यः द्रोणोद्भवः, नारदो दासीपुत्रः, ब्रह्माकमलोद्भव इति श्रूयते पुराणे। एतेषां जात्या विनापि अग्रेसम्यक् ज्ञानविशेषाद् ब्राह्मण्य-मत्युत्तमंश्रूयते। तस्माज्ञातिः ब्राह्मण्यहेतुर्न भवति ॥ ५ ॥

सवैयाः—भे चतुरानन पङ्कजसे; ऋषिराजको दासिके पुत्र कहीजे ॥
बारमुखी से बशिष्ठ भये; कढ़िहारिनके सुत ब्यास भनीजे ॥
भे मृगिनी सुत शृङ्गिऋषी; अरु क्षत्रिसे विश्वामित्र सुनीजे ॥
कुम्भसे कुम्भज धेनुसे गौतम; द्रोणसे द्रोणाचार्य जु लीजे ॥
भिलनी पुत्र मुनीश भये; भरद्वाजको शूद्रिनसे गुन लीजे ॥
भे ऋषि अनुचर हस्तिनिसे; मतङ्गिसे मातङ्ग निश्चय कीजे ॥
भे ऋषि माण्डुक दादुरिसे; पुनि श्रुति पुराणनमें लखि लीजे ॥
ये सब आनसे आन भये; कहैं पूरण ब्राह्मण मिथ्या भनीजे ॥ १ ॥

भावार्थः—और पुनः जातिको ब्राह्मण माना जावे, तो अन्य नीच-नीच जातिसे उत्पन्न होकर बहुतसे ऋषि-महर्षि लोग ब्रह्मज्ञानको प्राप्त करके ब्राह्मण कहलाये हैं। जैसे—शृङ्गीऋषि मृगिणी (हरिणी) से; कौशिक कुशासे; जाम्बुकऋषि जम्बुकीसे; गौतम-ऋषि गौतनसे;वाल्मीकि ऋषि पासीके पुत्र;व्यासजी धीमरकी कन्यासे; वसिष्ठ गणिकाके पुत्र; विश्वामित्र क्षत्रियपुत्र; अगस्त्यकी घड़ेसे उत्पत्ति; माण्डुकऋषि मेंड़कीके गर्भसे; मातङ्गऋषि मातङ्गीसे; पराशर चण्डालीके गर्भसे; अनुचर हस्तिनीके गर्भसे; भारद्वाज; शूद्रिणीके गर्भसे; द्रोणाचार्य द्रोणसे; नारदमुनि दासीके पुत्र; ब्रह्माकी उत्पत्ति कमलसे; ऐसे-ऐसे अनेक जातिमें बड़े-बड़े श्रेष्ठ ब्राह्मण हुए हैं। ऐसा वेद-पुराणोंमें भी कथन किये हैं कि—"ब्रह्मविद् ब्राह्मणो भवति" इस प्रकार ब्राह्मण श्रेष्ठ गिने गये हैं। इसलिए 'जाति' भी ब्राह्मण नहीं हो सकती ॥ ५ ॥

अन्यच्च वर्णो ब्राह्मणमिति चेत्तर्हि ब्राह्मणः श्वेतवर्णः क्षत्रियो रक्तवर्णः वैश्यः पीतवर्णः शूद्रः कृष्णवर्ण इति नियमाभावात्। इति वचनात् सर्वेषामेव ब्राह्मणादीनां वर्णसंकरदर्शनात्। तस्माद्वर्णोऽपि नास्ति ॥ ६ ॥

भावार्थः—अथवा ब्राह्मण श्वेतवर्ण, क्षत्रिय रक्तवर्ण, वैश्य पीतवर्ण और शूद्र काला-वर्ण; इस प्रकार कहा जावे, तो चारों वर्णोंका रङ्ग एकसमान सब जातियोंमें गोरे, लाल, पीले और काले होते हैं। इसलिए 'वर्ण' भी ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥६॥

अन्यच्च-पांडित्यमिति चेत्तर्हि क्षत्रियवैश्य शूद्रादयोऽपि पदपदार्थवाक्य-प्रमाणविज्ञा बहवः सन्ति। तस्माद्ब्राह्मणः पाण्डित्यमपि न ॥ ७ ॥

भावार्थः—अगर पण्डितको ब्राह्मण कहा जावे, तो क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि जातियोंमें भी बड़े-बड़े बुद्धिमान् पण्डित होते हैं और हुए हैं। जिनकी बात बड़ी-बड़ी सभाओंमें भी मञ्जूर हुई और होती है।

"यथा—सत्यासत्यविवेकिनी बुद्धिः पण्डा, पण्डा सञ्जाता अस्यासौ पण्डितः ।" —अर्थात् सत्य और असत्य विवेचन करनेवाली बुद्धिका नाम पण्डा है और वह बुद्धि जिसमें उत्पन्न होय, उसको 'पण्डित' कहते हैं। इस प्रकार "पण्डित" भी ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥ ७ ॥

अन्यच्च—धर्ममिति चेत्तर्हि क्षत्रियवैश्यशूद्रादयोऽपि निष्ठापूर्तिधर्मकारिणो बहवः सन्ति । तस्माद्धर्मोऽपि न हेतुः ॥ ८ ॥

भावार्थः—अथवा ऐसा कहा जावे कि, जो "धर्म" करता है, वही ब्राह्मण है; सो यह भी समीचीन नहीं। क्योंकि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि जातियोंमें भी बड़े-बड़े धर्मनिष्ठ पुरुष देखनेमें आते हैं। इसलिए "धर्म" भी ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥ ८ ॥

तर्हि ज्ञानं ब्राह्मण इति चेत्तन्न । क्षत्रियादयोऽपि परमार्थदर्शिनोऽभिज्ञा बहवः सन्ति । तस्मान्न ज्ञानं ब्राह्मण इति ॥ ९ ॥

भावार्थः—पुनः ज्ञान ब्राह्मण है, ऐसा कहा जावे, तो सो भी नहीं है। क्योंकि क्षत्रियादि अन्य वर्णोंमें भी परमार्थदर्शी ज्ञानी लोग बहुतसे हैं। इस कारण "ज्ञान" भी ब्राह्मण नहीं है ॥ ९ ॥

तर्हि कर्म ब्राह्मण इति चेत्तन्न । सर्वेषां प्राणिनां प्रारब्धसंचितागामिकर्म-साधर्म्यदर्शनात्कर्माभिप्रेरिताः सन्तो जनाः क्रियाः कुर्वन्तीति । तस्मान्न कर्म ब्राह्मण इति ॥ १० ॥

भावार्थः—वैसे ही कर्म ब्राह्मण है, ऐसा कहा जावे, तो सो भी नहीं है। क्योंकि सम्पूर्ण प्राणियोंके प्रारब्ध, सञ्चित, और आगामी कर्मफल-भोग एक-सा ही दीखते हैं। पूर्व कर्मसंस्कारसे प्रेरित हो बहुतसे लोग शुभाशुभ क्रिया करते हैं। अतः "कर्म" भी ब्राह्मण नहीं है ॥ १० ॥

पुनः धार्मिक्यमिति चेत्तर्हि क्षत्रियवैश्यशूद्रादयोऽपि कन्यादानगोदान-गजदानहिरण्यदानमहिषदानाश्वदानदातारस्तस्माद्धार्मिक्यमपि न ॥ ११ ॥

भावार्थः—पुनः "धार्मिक्य" अर्थात् धर्म करनेवालोंको ब्राह्मण कहा जावे, तो देखिये ! क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादियोंमें भी बड़े-बड़े दानी; अर्थात् कन्यादान, गऊदान, हाथीदान, सोनादान, भैंसदान, घोड़ादान इत्यादि ऐसे-ऐसे दान करनेवाले होते हैं और हैं। इससे "धार्मिक्य" ब्राह्मण कदापि नहीं हो सकता ॥ ११ ॥

पुनः कर्मेति चेत्तर्हि ब्राह्मणः शतवर्षाणि जीवति क्षत्रियस्तदर्द्धं वैश्यस्तदर्द्धं शूद्रस्तदर्द्धमिति नियमाभावात् । तस्माद् ब्राह्मणः कर्मापि न हेतुः ॥ १२ ॥

भावार्थः—और जो ऐसा कहा जावे कि, पुनः "कर्म" ही ब्राह्मण है, और ब्राह्मणकी अवस्था १०० वर्ष, क्षत्रिय ५० साल, वैश्य २५ वर्ष और शूद्रकी १२ ॥ वर्षकी आयु है; तो यह भी समीचीन नहीं। क्योंकि चारों वर्णोंकी एक-सी बराबर अवस्था होती है। इससे "कर्म" ब्राह्मण नहीं हो सकता ॥ १२ ॥ *

जो ये सब ब्राह्मण कहलाते हैं; परन्तु ब्रह्म नहीं जानते, ब्रह्ममें भेद करते हैं, कुल-अभिमान करते हैं। ताते वेदके वचनकी भी मानन्दी इनको नहीं औ गुरुका विचार भी नहीं। तो ये ब्राह्मण ऊँटके पाद ठहरे—न जमीनके, न आसमानके। अब ब्रह्म-विचारको छोड़ा औ यज्ञ-प्रतिग्रहमें परे, उसके पीछे लगे। जो कहीं यज्ञ होय तो हमको दक्षिणा मिले, जाते हमारा कुटुम्ब-पोषण होय। तो ब्रह्म-विचार

---

* किन्तु करतलामलकमिव स्थितिः प्रत्यक्षेण ब्राह्मणः कृतार्थः तथा काम-रागादिदोषरहितः शमदमादिसंपन्नो सन्तोषादियुक्तो भावमात्सर्यतृष्णाशामोहादि-रहितो दम्भाहंकारादिभिरसंस्पृष्टचेता वर्तत एवमुक्तलक्षणो यः स एव ब्राह्मण इति श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासानामभिप्रायः। अन्यथा हि ब्राह्मणत्वसिद्धिर्नास्त्येव ॥१३॥ इति वज्रसूचिकोपनिषत् ॥

भावार्थः—ऊपर कहे हुए लक्षणोंसे ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। किन्तु जिन्होंने हाथमें रक्खे हुए आँवलेके समान भूत, भविष्य, वर्त्तमानकी स्थिति अच्छी तरह जानी है, वही प्रत्यक्षमें ब्राह्मण है। जो काम, राग-द्वेषादि सर्व दोषोंसे रहित हो, शम-दमादि सम्पन्न, सन्तोषादि सद्गुणयुक्त होकर, क्रोध, डाह, आशा, तृष्णा, मोहादिसे रहित होता है; एवं दम्भ, अहंकारादि सर्व विकारोंको परित्याग करके उनसे असङ्ग होकर सचेत हो जो वर्त्तता है, ऐसे मुक्त-लक्षण जिसमें हैं, सो वही ब्राह्मण है; ऐसा कहा जायगा। यही श्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहासादिका मुख्य अभिप्राय है। अन्यथा निश्चयसे ब्राह्मणत्व-सिद्धि नहीं हो सकती है ॥ १३ ॥

॥ * ॥ इति वज्रसूचिकोपनिषत् समाप्त ॥ * ॥

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारद्द्विजउच्यते ॥
वेदाभ्यासी भवेद्विप्रो ब्रह्मजानाति ब्राह्मणः ॥ १४ ॥

भावार्थः—जिस कालमें बालक उत्पन्न होता है, उस समय शूद्र रूपमें ही जन्म लेता है। जब उपवीत कर्मको करते हैं, तब 'द्विज' कहलाता है; और जब वेद अध्ययन करता है, तब 'विप्र' कहा जाता है; और यथार्थमें जो ब्रह्मको जाने, वही 'ब्राह्मण' है ॥ १४ ॥

और मनुजीने मनुस्मृतिमें कहा है। यथाः—

"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम् ॥
क्षत्रियाज्जातमेवं तु विद्याद्वैश्यात्तथैव च ॥ ६५ ॥"

॥ मनुस्मृति; अध्याय-१० । श्लोक-६५ ॥

भावार्थः—शूद्र ब्राह्मणताको प्राप्त होता है और ब्राह्मण शूद्रताको प्राप्त होता है। शूद्रके गुण, स्वभाव, कर्म करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—ये तीनों शूद्र हो जाते हैं; और ब्राह्मण, क्षत्रिय,, वैश्यके गुण, स्वभाव, कर्म करके शूद्र भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य हो जाता है। इसलिए ब्राह्मण कोई वस्तु नहीं। जो ब्रह्मको जाने, सोई ब्राह्मण है ॥६५॥

छोड़े औ नाना प्रकारके मोहविषयमें पड़े, ताते तृष्णा इनकी बढ़ी। अब इनको ब्राह्मण कैसे मानिये ? ब्राह्मण तो कछु वस्तु नहीं। परन्तु वेदके प्रमाणसे जो ब्राह्मण मानिये, तो वेदका प्रमाण कछु ऐसा नहीं कि घरमें, यज्ञमें, प्रतिग्रहमें आसक्त होना। साधन-चतुष्टय सम्पन्न होके ब्रह्म जाने, सो ब्राह्मण। ये वेदवचन॥२॥

जेहि सिरजा तेहि ना पहिचाने। कर्म-धर्म मति बैठि बखाने॥३॥
ग्रहण अमावस और दुईजा। शान्ति पाँति प्रयोजन पूजा॥४॥

अरे ! जाने सम्पूर्ण वेद-शास्त्रादि चार खानि, चार बानी पैदा की, सो मानुषरूप। ताको नहीं पहिचानता औ कल्पनाकी बानी जो गाफिलीसे बनी है, ताको लेकर नाना प्रकारके कर्म औ नाना प्रकारके धर्म मिथ्याभूत, ताको बखान करता है। औ सब जीवनको नाहक बाँधता है औ आप भी बन्धा है॥३॥ बन्धेने नाना बन्धन बनाये कि ग्रहण, अमावस, दुईजको दान करे, औ नाना प्रकारके ब्राह्मणको भोजन देय औ नाना प्रकारके ब्राह्मणको द्रव्य देय, तो महापुण्य होय, स्वर्ग आदिक प्राप्त होय। इस प्रकारके बन्धन जीवनपर परे, ताते जीवका स्वतः पद बूड़ा। गृह-शान्ति औ नाना प्रकारके प्रयोजन करना, श्राद्ध-पक्ष, विवाह, जनेऊ आदि, तिहवार, नाना हव्य-कव्य करना। जो न हो सके तो महापाप, नर्कको जावै। औ पूजा देव-ब्राह्मणकी यथाविधि करे तो महापुण्य होय, स्वर्गको जावै। जब ऐसे-ऐसे बन्धन जीवनपर पड़े तो जीव मुक्त कैसे होय ? बिनु पारख ये बन्धन कैसे छूटै ? ॥ ४ ॥

प्रेत कनक मुख अन्तर बासा। आहुति सत्य होमकी आशा॥५॥
कुल उत्तम जग माँहि कहावै। फिर-फिर मध्यम कर्म करावै॥६॥

और भी इन यम लोगोंके बन्धन सुनो ! ये कैसी आशामें बन्धे हैं ? जो कोई भला आदमी दौलतवन्त मरे तो हमको शैय्यादान, द्रव्य मिले। येही मुँहसे भी बोले और येही अन्तरमें भी बसे कि कहीं आहूति होय, कहीं होम होय, तहाँ जीवहिंसा करवाना औ द्रव्य लेना॥५॥ अरे ! उत्तमकुल तो जगत्में कहलाते हैं औ फिर-फिर मध्यम कर्म करवाते हैं; सो सुनो—॥ ६ ॥

सुत-दारा मिलि जूँठो खाई। हरिभक्तोंके छूति लगाई॥७॥
कर्म अशौच उच्छिष्टा खाई। मतिभ्रष्टा यमलोक सिधाई॥८॥

शक्तिकी उपासना करके वाममार्ग चलाते हैं। भैरवीचक्र करते हैं, तहाँ चारों वर्ण बैठके मीन, मांस, मद्य, अन्न सब एकका-जूठा-एक खाते हैं स्त्री–पुत्र सब मिलके। अरे ! उत्तम कहिये ज्ञान, सो तो परखते नहीं औ मद्य--मांसादि एकका-जूठा-एक खाते हैं। ये तो श्वानका, राक्षसका कर्म करते हैं, तो इनको उत्तम कैसे कहना ! जोविचारवान् सो उत्तम। अरे ! अपना कर्म तो ऐसा नीच; औ शुद्ध हरिभक्त = ज्ञानीभक्त, जो सन्तनका महाप्रसाद लेते हैं, तिनको छूति लगाते हैं ॥७॥ अरे ! आप तो अशौच कर्म करते हैं, मद्य--मांसादि खाते हैं, एकका-एक जूठा खाते हैं औ ऊपर बड़ा आचार, स्नान-सन्ध्यादि दिखाते हैं। औ हरिभक्त = शुद्ध ज्ञानीभक्त, जो सन्तनका महाप्रसाद लेते हैं, तिनको देखके नाम धरते हैं, दुःख पाते हैं। ताते ये ब्राह्मण मतिभ्रष्ट दुष्ट यमलोकको जाते हैं, नाना प्रकारकी नरकयोनि भोगते हैं ॥ ८ ॥

नहाय खोरि उत्तम होय आये। विष्णु भक्त देखत दुःख पाये ॥९॥
स्वारथ लागि रहे बेकाजा। नाम लेत पावक जिमि डाजा ॥१०॥

नहा-धोकर उत्तम हो करके आते समय यदि कहीं मार्गमें विष्णुभक्तरूप वैष्णवको देख पाये तो 'आज बड़ा अपशकुन हो गया' कहकर दुःखी होते हैं ॥९॥ और अपने स्वार्थके वास्ते जगत्की खुशामद करते हैं। औ यथार्थ इनका कर्म कोई बतावैं तो अग्निके माफिक जलते हैं। ऐसे विषयी बावरे नर्क भोगते हैं ॥१०॥

राम-कृष्णकी छोड़िनि आसा। पढ़ि-गुनि भये कृतमके दासा ॥११॥
कर्म पढ़ै औ कर्मको धावै। जेहि पूछा तेहि कर्म दृढ़ावै ॥१२॥

अरे ! भला ! वेदने राम-कृष्णादिक नामका स्मरण बताया, सो भी शुद्ध सात्विकदशा धारण करके करते नहीं। तो राम-कृष्णकी भी आशा छोड़िन औ पढ़ि-गुनिके कर्मनके दास बने ॥११॥ आप भी कर्म पढ़ते हैं औ संसारको भी कर्म दृढ़ाते हैं। कहते हैं कि कर्म वर्णाश्रमके करना ! कोई कर्म-लोप होओ मत् ! कर्महीमें मुक्ति है, औ कर्म-भ्रष्ट भया तो नर्कको जाते हैं। इस प्रकारसे 'जेहि पूछै, तेही कर्म दृढ़ावते हैं' ॥ १२ ॥

निष्कर्मीकी निन्दा कीजै। कर्म करे ताही चित दीजै ॥१३॥
भक्ति भगवन्तकी हृदया लावै। हिरणाकुशको पन्थ चलावै ॥१४॥

और निष्कर्मीकी निन्दा करते हैं औ कहते हैं कि जो कर्मिष्ठ ब्राह्मण है, ताकी सेवा–पूजा करना औ निष्कर्मीको छूओ तो सचैल (पहने हुए सब वस्त्रयुक्त) स्नान करना ! इस प्रकारसे ज्ञानलोप करके जीव सब कर्मोंके गदहे बने । सोई कर्मके वश नाना योनिमें दुःख भोगते हैं ॥१३॥ औ उपासकजनकी बातें सुनो! कि भक्ति भगवान्‌की हृदयमें लाते हैं, कहते हैं कि हम वैष्णव । औ हरणाकुशका पन्थ चलाते हैं । जो ऊपर तो स्वाँग वैष्णवका औ अन्तरमें राक्षस शाक्त बने हैं । जो मद्य, मीन, मांस भक्षण करै सोई राक्षस । तो इस प्रकारसे दयाका बाना रखते हैं औ निर्दयी होके राक्षसी पन्थ चलाते हैं ॥ १४ ॥

देखहु सुमति केर परकाशा । बिनु अभ्यन्तर भये कृतमके दासा ॥१५॥
जाके पूजे पाप न ऊड़े । नाम स्मरणी भवमा बूड़े ॥१६॥

देखो हे सन्तो ! इन ब्राह्मणनकी सुमतिका प्रकाश भया । अरे ! बिना विचार कर्मनके गुलाम हो रहे हैं ॥१५॥ अरे ! इनके पूजे कैसे पाप उड़ेगा ? कहीं स्याहीके धोये स्याही जाती है ? जो इनका नाम लेवेगा और जो इन ब्राह्मणोंकी आशा करेगा, सो निश्चय भवमें डूबेगा ॥ १६ ॥

पाप-पुण्यके हाथहि पासा । मारि जगतका कीन्ह बिनाशा ॥१७॥
ई बहनी कुल बहनि कहावै । 'ई' गृह जारे 'ऊ' गृह मारे ॥१८॥

ये ब्राह्मण जो हैं, सोई भवके रूप हैं औ यही यम हैं औ यही काल हैं । पाप–पुण्यकी फाँसी इनके हाथमें है, जाते 'मारि जगत्‌का कीन्ह बिनाशा' ॥१७॥ औ ई ब्राह्मण कुल = सब संसारके तारक गुरु कहलाते हैं औ संसारको नाना प्रकारकी कल्पना लगायके गर्भाग्निमें जराते हैं । औ 'ऊ गृह' कहिये जो जीवका ज्ञान-घर है, ताको मारिके लोप करते हैं ॥ १८ ॥

बैठे ते घर साहु कहावै । भीतर भेद मनमुखहि लगावै ॥१९॥
ऐसी विधि सुर विप्र भनीजे । नाम लेत पीचासन दीजे ॥२०॥

ऐसे जो ठग जीवके दुःखदाई, तेई बैठे इन जीवनके घर साहु कहाते हैं, गुरु कहावते हैं । औ भीतर घरमें बैठके नाना प्रकारके भ्रम जीवको दृढ़ावते हैं । वही बात बाहर कहो तो मनमें बुरा मानते हैं ॥१९॥ ऐसी बुद्धि संसारमें दृढ़ावते हैं कि ब्राह्मणको देवताके माफिक जानना औ उनका नाम-स्मरण करना ।

ब्राह्मणको आवते देखना तो उनके पाँव पड़ना औ पीढ़ा बैठनेको देना ॥ २० ॥

बूड़ि गये नहिं आपु सँभारा । ऊँच-नीच कहु काहि जो हारा? ॥२१॥
ऊँच-नीच है मध्यकी बानी । एकै पवन एक है पानी ॥२२॥

ऐसी-ऐसी बातें दृढ़ायके अभिमानमें बूड़ि गये, अपनेको सम्भारा नहीं । ऊँच-नीच कहि-कहिके मान-बड़ाईमें अपन पौ हारा ॥२१॥ औ वेद-वचनका प्रमाण तो ऐसा है कि ऊँच-नीच, वर्णाश्रम, उपासना, कर्म—ये सब मध्यकी बानी है, बीचकी बानी है अज्ञान दशाकी । ये कछु प्रमाण नहीं । अनुभवजन्य वेदके अन्तकी जो बात है, सो वेदान्त-प्रमाण एक आत्मा स्वजातीय-विजातीय-स्वगत भेद रहित सर्वाधिष्ठान सर्वरूप । वही पवन, वही पानी ॥ २२ ॥

एकै मटिया एक कुम्हारा । एक सबनका सिरजनहारा ॥२३॥
एक चाक सब चित्र बनाई । नाद-बिन्दके मध्य समाई ॥२४॥

वही मिट्टी, वही कुम्हार, वही सबनका सिरजनहार ॥२३॥ एक भ्रान्तिके चक्रपर सम्पूर्ण जगत्चित्र बनाया औ आप पटरूपी रहा । नाद-बिन्दुमें आपु ही समाया । जीव भी आप ही कहलाया ॥ २४ ॥

व्यापिक एक सकलकी ज्योति । नाम धरे का कहिये भौती ? ॥२५॥
राक्षस करनी देव कहावै । बाद करे गोपाल न भावै ॥२६॥

'व्यापिक एक सकलकी ज्योती ।' एक आत्मा स्वयं प्रकाशी सम्पूर्ण भरा है । जैसा एक सुवर्ण, ताके न्यारे-न्यारे नाम परे । इस प्रकारसे नामधरे क्या कहिये ? बहुत नाम धरे क्या जगत् कहिये ? सम्पूर्ण आत्मा है । वेदने तो इस प्रकार जाने, ताको ब्राह्मण कहा; परन्तु ये भी भ्रम है । क्योंकि ये सब मनुष्य देहका अनुमान । अरे ! जाको 'एक आत्मा' ऐसा भासा, सो कछु एक आत्मा भी नहीं औ अनेक जगत् भी नहीं । वो हंस दोनोंसे न्यारा; परन्तु विना पारख एक-अनेकमें अरुझा है । सो तू परखके देख ! ॥२५॥ राक्षसकी करनी जीवहिंसा, बलिदानादि करते-कराते हैं तो भी ये ब्राह्मण लोग ब्रह्मदेव वा भूदेव कहलाते हैं । वैष्णवोंसे वाद-विवाद झगड़ा करते हैं । विष्णुभक्ति और अहिंसा-धर्म इनको अच्छा नहीं लगता । ऐसे कर्मभ्रष्ट और धर्म-भ्रष्ट बने हैं ॥ २६ ॥

हंस देह तजि न्यारा होई । ताकर जाति कहै धौं कोई ? ॥२७॥

श्याह सफेद कि? राता पियरा। अबरण बरण कि?ताता सियरा?॥२८॥

ओ हंस देह छोड़के न्यारा होता है, तब कहो—उसकी जाती क्या है ? क्या ब्रह्म कहिये ? क्या आत्मा कहिये ? ये तो सब देहका अनुमान देह छूटे मिट जायगा। फिर उस हंसको क्या कहना ? ॥२७॥ श्वेत कहिये ? कि श्याम कहिये ? लाल कहिये ? कि पीला कहिये ? अवर्ण कहिये ? कि वर्ण कहिये ? गरम कहिये ? कि ठण्ढा कहिये ? ॥ २८ ॥

हिन्दू–तुरुक कि बूढ़ो बारा ? नारि–पुरुषका करहु बिचारा ? ॥२९॥
कहिये काहि कहा नहिं माना ! दास कबीर सोई पै जाना ! ॥३०॥

हिन्दू कहिये ? कि तुरुक कहिये ? बूढ़ा कहिये ? कि बालक कहिये ? नारी कहिये ? कि पुरुष कहिये ? ये विचार करो ! नाहक धोखेमें क्यों परे हो ? जो येती बातका द्रष्टा, सो येते सङ्कल्प भी नहीं; सबसे न्यारा। वो तो शुद्ध ज्ञानमात्र है। जब पारख पाय सबते न्यारा होता है, तब पारखरूप होके पारख-भूमिकापर रहता है ॥२९॥ पर हे सन्तो ! कहिये काहि ? सब अनुमान–कल्पनामें अरुझे। मैंने तो बहुत कहा; परन्तु काहूके समझमें आई नहीं। ये जीव वेद–ब्राह्मणके गुलाम बने। जो वेद कहै औ ब्राह्मण कहै, सोई इनको प्रमाण। स्वतन्त्र होयके ये कछु परखते नहीं। अब कहना तो भी किसको ?। ये अर्थ ॥ ३० ॥

साखीः–बहा है बहि जात है। कर गहै चहुँ ओर ॥
जो कहा नहिं माने तो। दे धक्का दुइ और ॥१॥३१॥

ये जीव विषय-भोग औरबानी–कल्पनामें बहा है और उसी तरफ बारम्बार बहता चला जाता है। पञ्च विषय और चारों वेदोंको चहुँओर = चारों दिशाओंमें हाथ फैलाके मजबूतीसे पकड़ता है। जो कि गुरुके कहे कल्याणकारी उपदेशको भी तो नहीं मानता है, ऐसा मूढ़ अविवेकी बना है। 'जो कहा नहीं माने' तो भी पारखी गुरु दया करके धक्कारूप पारख बोधका आधार देकर खानि–बानीरूप दो जालोंका भेद और भी बतला देते हैं। कोई विचारवान् होगा, तो विचार करके गुरु-पारखबोधको लेकर अपने जीवको बन्धनसे छुड़ा लेगा। ये अर्थ ॥१॥३१॥

ये विप्रमतीसी वेद-प्रमाण गुरुने कही कि ब्रह्मज्ञानीको ब्राह्मण कहिये। काहेके वास्ते ब्रह्मज्ञान सर्वत्र खण्डन किया ? सो यहाँ कहनेका क्या काम ? तो

ये जीव सब नाना कर्म–उपासनाके फन्देमें परे औ नाना तरहका अभिमान ब्राह्मणोंने माना, ताको खण्डन करनेके वास्ते उनके वेदके मतसे उनमें कसर बताई कि ये अपना मत छोड़के अनाचार करते हैं। तो ये ब्रह्ममत चीन्हके अनाचार छोड़ें, कर्म–उपासना-पक्ष छोड़ें औ ब्रह्म बनें। फिर ब्रह्मका भी पक्ष छुड़ायके गुरुने हंसको पारख-पदपर स्थिर किया। ये अर्थ ॥ ३१ ॥

सोरठाः–हे गुरु दीनदयाल ! कहर भयो बड़ जीव पर ॥
परखायो सब जाल। कहरा निर्णय कहो मोहि ॥ १ ॥

॥ ❋ ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा–टीका सहित विप्रमतीसी चतुर्थ प्रकरणम
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ४ ॥ ❋ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

❀ बीजक मूल सद्ग्रन्थः ❀

॥ ❀ ॥ कहरा पञ्चम प्रकरणम् प्रारम्भः ॥ ५ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी—॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते कहरा प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❀ ॥ कहरा ॥ १ ॥ ❀ ॥

सहज ध्यान रहु ! सहज ध्यान रहु ! गुरुके बचन समाई हो ! ॥१॥
मेली सृष्टि चरा चित राखहु ! रहहु दृष्टि लौलाई हो ! ॥२॥

टीका मायामुखः—सहज ध्यान कहिये सहज-समाधि; सो मायाका उपदेश ऐसा है कि हठयोग, तारकयोग सब छोड़के सहज-समाधि अमनस्कयोग करना। गुरुका वचन कहिये सोहं; सो सोहं शब्द घट-घटका प्रकाशी है, तामें सुरति समाय देना ॥१॥ प्रातः समय उठना, पद्मासन या वज्रासन या सिद्धासन, तीनोंमें कोई एक आसन लगाना औ सब सृष्टिका विषय-व्यवहार विष-प्रमाण जानके छोड़ना। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, घर, स्त्री, पुत्र, धन आदिक जो विषय, सो सब त्यागके आठोंपहर श्वासामें चित्त रक्खो। चलते-फिरते, सोते-बैठते सदा श्वास शब्दमें लौ = लक्ष्य लगाके रहना ! लक्ष्यको बाहर निकारना नहीं। जो समय पायके बाहर निकला, तो फिर बाहरकी विस्मृति करके लक्ष्य भीतर करना ॥२॥

जस दुःख देखि रहहु यह औसर। अस सुख होई हैं पाये हो ॥३॥
जो खुटकार बेगि नहिं लागे। हृदय निवारहु कोहू हो ॥४॥

प्रथमारम्भमें जब साधन करेगा, तब दुःख मालूम होवेगा। परन्तु जैसा दुःख देखके इस वक्तमें सहन करके त सहज-समाधिमें रहेगा, तैसा आगे सुख प्राप्त

होवेगा । परन्तु जब परमात्मा औ जीवकी एकता होवेगी, सहविकल्प-समाधि तुर्या अवस्था प्राप्त होगी, तब सम्पूर्ण ऋद्धि-सिद्धि सहित सुख तेरेको होवेगा ॥३॥ औ ये स्वरूप-प्राप्तिका मनमें बड़ा खुटका रखना—जो कब मेरी निर्विकल्प-दशा होवेगी ? औ मेरी स्थिति कब होवेगी ? ऐसा खुटका जो जीवको जल्दी न लगे, तो हृदयकी मोहग्रन्थी छूटनेकी नहीं । जबलग हृदयकी मोहग्रन्थी छूटती नहीं, तबलग कछु वैराग्य होता नहीं । औ जबलग वैराग्य नहीं, तबलग कछु योगसिद्धि ज्ञानसिद्धि होती नहीं । 'खुटकार' कहिये पश्चात्ताप; सो पश्चात्ताप होय बिना हृदयकी मोहग्रन्थी छूटे नहीं, औ मोहग्रन्थी छूटे बिना वैराग्य नहीं । जबलग वैराग्य नहीं, तबलग ज्ञानसिद्धि न योगसिद्धि ॥ ४ ॥

मुक्तिकी डोरि गाढ़ि जनि खैंचहु । तब बझि हैं बड़ रोहू हो ॥५॥
मनुवहि कहहु रहहु मन मारे । खिजुवा खीजि न बोले हो ॥६॥

तातें वैराग्य पश्चात्ताप सहित मुक्तिकी डोरी गाड़े । श्वासोच्छ्वासमें 'सोहं-सोहं' याही शब्दमें सुरति-डोरी लगी रहे, उससे अलग होने पावे नहीं । 'तब बझि हैं बड़ रोहू हो !' जब शब्द-सुरति एक होवेगी, तब बड़ रोहू = मन उन्मुन हो जायगा ॥१॥ 'मनुवहि कहहु रहहु मन मारे ।' सदा अपने मनको प्रबोध करते रहना ! 'सोहं' करके सङ्कल्प उठाना, 'हंसो' करके विकल्प करते जाना । इस प्रकारसे मनमें ही कहके मनको मारना । बाहर जाने नहीं पावे । वो 'खिजुवा खीजि न बोले हो ।' जो कोई संसारमें उपहास करे या निन्दा करे, उससे खीजिके नहीं बोलना ॥ ६ ॥

मानू मीत मितैयो न छोड़े । कमऊ गाँठि न खोले हो ॥७॥
भोगउ भोग भुक्ति जनि भूलहु । योग युक्ति तन साधहु हो ॥८॥

'मानू मीत मितैयो न छोड़े ।' औ जो शब्दरूपी परमात्माको माना है, ताकी मिताई न छोड़ै । आठोंपहर नाम-धुनि लगी रहे । चाहै तन, मन, धन सब जाय, पर हरिनाम-माला छूटै नहीं । औ कमऊ कहिये मन; सो मन-पवनकी गाँठी डार देना, जामें छूटने न पावे ॥७॥ 'भोगउ भोग भुक्ति जनि भूलहु । योग युक्ति तन साधहु हो ॥' भोगउ कहिये जीवको; सो योगीलोग जीवको उपदेश करते हैं कि प्रपञ्चके भोग-भुक्तिमें मत् भूलो ! नरकवास होयगा । चौरासीमें जाओगे । तातें योग-युक्ति करके तनको साधो ! ब्रह्म-प्राप्ति होवेगी ॥ ८ ॥

जो यह भाँति करहु मतवलिया । ता मतको चित बाँधहु हो ॥९॥
नहिं तो ठाकुर है अति दारुण । करिहै चाल कुचाली हो ॥१०॥

जो यही भाँति सदा उन्मुनीमें मग्न हुआ चाहो, तो ता मत = योग-मतको चित्तमें बाँधो ॥९॥ 'नहिं तो ठाकुर है अति दारुण । करिहै चाल कुचाली हो ॥' योगी लोगोंके मतके प्रमाणसे जो आठोंपहर साधना न करेगा, तो ठाकुर = मन अति दारुण है, सो चाल-कुचाली करेगा, अर्थके विषयनमें चलाय देवेगा ॥१०॥

बाँधि मारि डण्ड सब लेहीं । छूटहिं तब मतवाली हो ॥११॥
जबहीं सावत आनि पहूँचे । पीठ साँटि भल टुटि हैं हो ॥१२॥

इन्द्रिनके विषयमें वासना बाँधके तुम्हारेको मार लेवेगा । समाधि सिद्ध होने देनेका नहीं । नाना योनिमें डारके नाना दुःख तुम्हारेको देवेगा, तब सब तुम्हारी विषय-मतवाली छूट जायगी । नहीं तो ये मनको वैराग्य, योग-अभ्यास करके जीतो ! बन्ध-मुक्तिका कारण मन ही है ॥११॥ अरे ! अन्त समयमें जब यमके दूत आवेंगे औ तुम्हारा प्राण खैंचेंगे, तब तुम्हारे पीठपर कोड़े मारेंगे । औ नाना प्रकारकी तुमको यम-यातना होवेगी ॥१२॥

ठाढ़े लोग कुटुम सब देखैं । कहे काहुके न छुटि हैं हो ॥१३॥
एक तो निहुरि पाँव परि बिनवै । बिनति किये नहिं माने हो ॥१४॥

तब लोग-कुटुम्ब सब ठाढ़े देखेंगे । कोई तुम्हारेको छुड़ाय नहीं सकने का । और किसीके कहे तुम छूट भी नहीं सकने का ॥१३॥ जब यमदूत आयके फाँसी डारके जीवको पकड़ते हैं औ मुश्क बाँधके यमलोकको ले जाते हैं, तब जीव बहुत करुणा करता है औ पाँव पड़ता है, नाना प्रकारकी विनती करता है । कहता है कि मेरेको देहमेंसे मत् निकारो ! मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हौं । मेरी मेहरीसे बोल लेने देवो ! मेरे पुत्रको देखने देवो ! मेरे भाई-बन्धु, माँ-बापसे मिल लेने देवो ! मेरा पैसा-टका, रुपया, सम्पति सब तपास लेने देवो ! इत्यादि । परन्तु यमदूत नहीं मानते, बाँधके ले जाते हैं ॥ १४ ॥

अनचीन्हे रहेउ न कियेहु चिन्हारी । सो कैसे पहिचनबेउ हो ? ॥१५॥
लीन्ह बुलाय बात नहिं पूछै । केवट गर्भ तन बोले हो ॥१६॥

अरे ! जबलग इन्द्रीमें ज्ञानप्रकाश है औ उमर क्षीण नहीं भई, तरुण अवस्था है, तबलग योग करके मनको जीतके परमात्माको चीन्ह लेना, तो आवागमनसे रहित होय, यमकी यातनासे बचे, अन्तमें ब्रह्मरूप हो जाय । औ तरुण अवस्थामें योग किया नहीं, परमात्माको चीन्हा नहीं, तो जब अन्तमें चोला छूटेगा, तब कैसे पहिचानेगा ? ॥१५॥ 'लीन्ह बुलाय बात नहिं पूछै। केवट गर्भ तन बोले हो ॥' केवट जो योगी हैं, तिनकी शरणमें आये नहीं, तनके अभिमान औ मायामें भूला । ताते इन जीवनको यमने बाँधके बुलाय लिया औ कछु बात नहीं पूछी, नाना प्रकारका दुःख दिया । ये अर्थ ॥ १६ ॥

जाकर गाँठि समर कछु नाहीं । सो निर्धनिया ह्वै डोले हो ॥१७॥
जिनसमयुक्ति अगमनकै राखिन । धरिन मच्छ भरि डेहरि हो ॥१८॥
जेकर हाथ-पाँव कछु नाहीं । धरन लाग तेहि सो हरि हो ॥१९॥

गुरुमुख:—अब गुरु कहते हैं कि जाके पास कछु विचार-धन नहीं, सो जीव निर्धनिया, निगुरे, अज्ञानी होके फिरते हैं । समर कहिये धन, सो विचाररूपी धन जाके पास नहीं, सो निर्धनिया कहिये विचारहीन होके गुरुवा लोगोंके फन्दमें मारा-मारा फिरता है ॥१७॥ जिन गुरुवा लोगनने आगे ही जीवनको धरनेके वास्ते नाना युक्ति औ बानी कर-करके धरी है, सोई बानी अब गुरुवा लोग लेके सब जीवनको पकड़े, बन्धन दिये । कहे कि कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड, योगकाण्ड, फिर ज्ञानकाण्ड; ये ब्रह्मादिक बड़े-बड़े आचारिनका प्रमाण है औ वेदका प्रमाण है । सो ये चारों काण्डका सब जीव यथाविधि आचरण करैं तो जीवकी मुक्ति होती है । अगर कोई जीव आचरण न करेगा, ये चार काण्डसे बाहर परेगा, सो ईश्वरका द्रोही, वेदका द्रोही । उसको यम ले जाके नाना प्रकारके दुःख देवेंगे औ फिर नरकमें डालेंगे ।' ऐसा डर बतायके 'धरिन मच्छ भरि डेहरि हो ।' मच्छ कहिये जीव, डेहरि कहिये संसार । सो संसार भरेके जीवको गुरुवा लोगोंने मुक्तिका लोभ औ नरकका डर बतायके सबको बन्धन दिया ॥१८॥ अब जीव जाके हाथ-पाँव कछु नहीं, सो हरि = सो परमात्माको कर्म, उपासना, योग, ज्ञान करके धरने लगे । तो ये आश्चर्य ! कि जाके अवयव सहित कछु नहीं, सो परमात्मा काहेका ? सम्पूर्ण जीवकी कल्पना । अपनी कल्पनाके जालमें जीव आपु ही बन्ध हुआ ॥ १९ ॥

पेलना अछत पेलि चलु बौरे ! तीर-तीर का टोवहु हो ? ॥२०॥
उथले रहहु परहु जनि गहिरे । मति हाथहुकी खोवहु हो ॥२१॥

पेलना कहिये देह; सो गुरु कहते हैं कि जबलग ये देह है, तबलग सब कल्पना औ अनुमान ब्रह्म आदि जेते हैं, सो सबको परखके पेल दे, छोड़ दे औ पारख गुरुपदपर चल ! हे बौरे = दिवाने ! तीर-तीर क्या टोवता है ? अरे ! ये गुरुवा लोगोंके तीर = नजदीक क्या ढूँढ़ता है ? इनके पास सम्पूर्ण भ्रम है औ कछु नहीं । अरे ! कहाँ यम ? और कहाँ परमात्मा है ? ये सब मनका धोखा । तू परखके देख ! ॥२०॥ औ उथले ही रहो ! विचार करके स्थूलमें ही रहो ! गहिरे = सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्यमें मत् परो ! अरे ! हाथकी मानुषदेह मत् खोवो ! नाहक मूक, जड़, उन्मत्त, पिशाच मत् होवो ! योग-तपस्या मत् करो ! काहेके वास्ते शून्यमें समायके जड़ होते हो ? औ अपनी मानुषदेह काहेको खोते हो ? सत्सङ्गमें विचार करके सब भ्रम परखके छोड़ देवो औ पारखरूप हो रहो ! सब तत्त्वमस्यादि पद नीचे छोड़के सर्वोपर हो रहो ! ॥२१॥

तरकै घाम ऊपरकै भुँभुरी । छाँह कतहुँ नहिं पायहु हो ॥२२॥
ऐसेनि जानि पसीझेहु सीझेहु । कसन छतुरिया छायहु हो ॥२३॥

हे जीव ! तरे = संसारमें गुरुवा लोगनका विरह-घाम बहुत बढ़ा, ताते जीव त्रिविध तापमें जरने लगे । सो गुरुवा लोगोंकी वानीके प्रमाणसे भुँभुरी = जीवनने ऊपर स्वर्गादिक आशा औ ब्रह्माण्डमें जानेकी आशा औ ब्रह्ममें मिलनेकी आशा लगाई । सो कोई योग औ कोई कर्म करने लगा; परन्तु आसरा कहीं भी न मिला । यह जीव त्रिविधि तापमें जरता ही रहा । त्रिविधि ताप कहिये—एक ताप स्त्री, पुत्र, धन; दूसरा ताप देहके रोग—ज्वरादिक; तीसरा ताप काम, क्रोध, लोभ, मोह, हङ्कार—ये तीन ताप तरके । अब ऊपरके ताप सुनो—विरह, वैराग्य, तपस्या । ये छै विधि तापमें जीव सब जरते हैं, कहीं छाँह पाते नहीं ॥२२॥ तो हे जीव ! तुम्हारेको स्वतः पारख कछु भया नहीं, ताते जैसा गुरुवा लोगोंने औ वेद-पुराणोंने बताया, ऐसा ही निश्चय जानके पसीझेहु = मोहित भयऊ औ त्रिविध तापमें सीझेहु = जरेऊ । 'कसन छतुरिया छायहु हो ।' तो कसन कहिये बन्धन, छतुरिया कहिये देह; सो तू छै विधि तापमें जरके आखिर गर्भवासमें

आयके चोला पाँच तत्त्वका धारण किया । तो ये चोलेमें क्या गुरु-पारख बिना तेरे ताप चुकते हैं ? गर्भमें भी तीन ताप होते हैं—एक तो मल-मूत्र नर्कमेंसे बजबजाता रहता है, सो भी जीवको महादुःख होता है । दूसरा हाथ-पाँव बन्धे हुए गर्भमें रहता है, तहाँ जठराग्निका बड़ा तड़ाका लगता है । जैसे लोहेकी भट्ठीपर जीवको बैठाया और तरेसे भाथी फूँका तो ऊपर तलमलाता है, तैसा गर्भमें जीव दुःख पाता है । तीसरा पैदा होता है तब पवन लगता है, तो जैसे तीर लगते हैं वैसा दुःख होता है । ये त्रिविधि तापमें गर्भमें जीव जरता है औ बाहर आया तो फिर वही ताप बने हैं ॥ २३ ॥

जो कछु खेड़ कियहु सो कियहु । बहुरि खेड़ कस होई हो ? ॥२४॥
सासु-ननँद दोउ देत उलाटन । रहहु लाज मुख गोई हो ॥२५॥

अरे ! जो कर्म तू आगे अनेक जन्ममें करता आया है, सोई कर्म अब इस जन्ममें भी करता है । अब आगे तेरे कर्म क्या होवेंगे ? फिर तू गर्भवासको जायगा औ तापमें जरेगा । खेड़ कहिये कर्म ॥२४॥ सासु कहिये संशय औ ननद कहिये नेह; सो विषयनका औ स्त्रीका नेह, औ बानीका संशय—ये दोऊ तुझे उलटाय-पलटाय छै विधि तापमें जराते हैं औ तू भी इनको छोड़ता नहीं । जो कहीं विचार सुना तो भी उस वक्त तो लजाता है; कहता है कि स्त्री, पुत्र, धन—ये सम्पूर्ण जीवको बन्धन हैं, येही बन्धनसे जीव दुःख नर्क भोगता है । ऐसा विचार जबलग सुनता है, तबलग अपने कर्मनसे लजाता है । फिर विचारसे उठता है औ स्त्री, पुत्र, धनका मुँह देखता है तो फिर मोहित होता है औ विचारकी तरफसे मुँह छिपाके फिर प्रपञ्च-विषयमें आँखी मूँदकर पड़ा रहता है । कहता है कि हम ग्रेही । हमको विचार काहेको चाहिये ? विचार बड़ा कठिन है; इत्यादि । ऐसा मूढ़ दुःखहुको सुखकर मानता है औ मुख छिपायके रहता है । येही रीतिसे बानीमें जो जीव बन्धे हैं, तेहू सुनते हैं कि योग, कर्म, उपासना सम्पूर्ण जीवको बन्धन हैं । परन्तु छोड़ा नहीं जाता । विचारकी तरफसे मुँह छिपाते हैं औ कर्म, उपासना, योग करते हैं । तो देखो ! ये लोगनको बन्धनका मोह भारी पड़ा है । अब मुक्ति कैसे होय ? औ आवागमनसे रहित कैसे होय ? ॥ २५ ॥

गुरु भौ ढील गोनी भइ लचपच । कहा न मानेहु मोरा हो ॥२६॥

ताजी तुर्की कबहुँ न साधेहु । चढ़ेहु काठके घोरा हो ।।२७।।

अब गुरु = ब्रह्मादिक, शिवादिक सब ढीले पड़ गये कि स्वरूपका सिद्धान्त करते-करते थके, तब कहा कि परमात्मा निर्गुण-निराकार, अनिर्वाच्य, निःअक्षर। तो जहाँसे 'निराकार, निर्गुण, निःअक्षर' ऐसा जाको भासता है सो क्या है ? ये पारख न आई । तब थकके बोले कि मैं ही ब्रह्म, मैं ही निराकार, मैं ही निः-अक्षर, मैं आत्मा, मैं अधिष्ठान, औ जगत् सब मेरा स्वरूप आत्मा ही है । थकके ऐसा सिद्धान्त करके उनकी गोनी लचपच हो गई । मर गये । देखो ! उनके सिद्धान्तसे तो वे जगत्रूप हो रहे । अब हे जीव ! तुम्हारी कौन दशा होवेगी ? 'कहा न मानेहु मोरा हो ।' अरे ! आगे भी हमारे समयमें जो कोई बड़े-बड़े भये, तिनको भी हमने बहुत समझाया; परन्तु बानी औ स्त्रीका मोह उनसे भी नहीं छूटा । उन्होंने भी विचारकी तरफसे मुँह छिपाया, हमारा कहा नहीं माना। और अब उनकी बानीका औ स्त्रीका मोह तुमसे भी नहीं छूटता । विचारकी तरफसे मुँह छिपाते हो औ मेरा कहा नहीं मानते । अरे ! तो तुम्हारी कौन दशा होवेगी।।२६।। ताजी कहिये माया, माया कहिये काया; सो तूने कायाको स्त्रीकी तरफसे कभी साधा नहीं । अरे ! तुम स्त्रीके बीचमें आसक्त हो गये । मांस-चामका कीड़ा जैसे चाममें आसक्त रहता है, जो मांस--चाम छूटे तो प्राण देता है; तैसा तुम मांस--चामके कीड़े बने । तुर्की कहिये मनको, मन कहिये, नाम कहिये, ब्रह्म कहिये, शब्द कहिये, भ्रम कहिये। सो जो-जो नाम औ जो-जो शब्द औ जो-जो सिद्धान्त औ जो-जो भ्रम तुम्हारे मनमें उठा, ताहीमें तुम आसक्त भये, बन्ध भये । साधे नहीं, विचारके छूटे नहीं । ताजी-तुर्की दोनों एक घोड़ा, औ मन--माया दोनों एक देही । मन नाम औ माया रूप । तो स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण औ कैवल्य—ये सम्पूर्ण रूप माया, औ नाम मन । याको साधे नहीं, परखके छोड़ा नहीं औ 'काठके घोड़ा चढ़ेउ ।' काठका घोड़ा कहिये कि जो अपने चलायेसे चले, उसमें स्वतन्त्र चलनशक्ति न होय, सो काठका घोड़ा । तो काठका घोड़ा कहिये योग, काठका घोड़ा भक्ति, काठका घोड़ा कर्म, काठका घोड़ा उपासना; येते जीवके चलाये बिना चलते नहीं । सो ऐसे जड़ घोड़नपर तू चढ़ा तो पारख कैसे होयगी । अरे ! जबलग तू चलायेगा, तबलग ये चलेंगे औ जब तुम्हारा चोला छूटेगा, तब ये सबहीं रह जायेंगे । तुझे ये कैसे पार करेंगे ? ।। २७ ।।

ताल झाँझ भल बाजत आवै । कहरा सब कोइ नाचे हो ॥२८॥
जेहि रङ्ग दुलहा ब्याहन आये । दुलहिनि तेहि रङ्ग राचे हो ॥२९॥

तो देखो—हे सन्तो ! काठके घोड़ेपर चढ़के सब कोई नाचते हैं, कीर्तन करते हैं, झाँझ-मँजीरा बजाते हैं । अरे ! सब कोई कहर = विरहमें नाच रहे हैं ॥२८॥ औ जा रङ्गसे दुलहा = गुरुवा लोग विवाहने आते हैं, ताही रङ्गसे दुलहिनी = जीव राचते हैं, धोखेमें पड़ते हैं ॥ २९ ॥

नौका अछत खेवै नहिं जाने । कैसेकै लगबेहु तीरा हो ? ॥३०॥
कहहिं कबीर रामरस माते । जोलहा दास कबीरा हो ! ॥३१॥१॥

औ नौका कहिये देह; सो जबलग मानुषदेह साबुत है, तबलग 'खेवै नहीं जानेहु', परखे नहीं जानेहु । 'कैसेकै लगबेहु तीरा हो ?' कैसे आवागमनसे बचोगे ? ॥३०॥ गुरु कहते हैं कि 'रामरस माते । जोलहा दास कबीरा हो ।' दास कबीरा कहिये जीव, जोलहा कहिये गुरुवा लोग; सो दोनों कर्म, योग, उपासना, भक्ति, ज्ञान करके रामरसमें माते, मिथ्या धोखेमें भूले । राम कहिये जो सबमें रमा है । ताके रस अनेक विषय, अनेक कल्पना, अनेक अनुमान; तामें राते जीव सब । मालिक दूसरा बनायके उसके आप दास बने औ उसीके प्रेममें माते । ये अर्थ ॥ ३१ ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ कहरा ॥ २ ॥ ❀ ॥

मत सुनु मानिक मत सुनु मानिक ! हृदया बन्द निवारहु हो ॥१॥

टीका गुरुमुख:—मानिक कहिये जो मानी हुई वस्तु है । मानी हुई वस्तु ब्रह्म औ मानी हुई वस्तु आत्मा, मानी हुई वस्तु अनेक देवता औ मानी हुई वस्तु कर्म, उपासना, भक्ति, ज्ञान, योग । जो मानन्दी सोई बन्धन । सो तू बन्धनकी बात मत् सुन । 'हृदया बन्द निवारहु हो !' नाना बानी, नाना कल्पना औ नाना अनुमान जो गुरुवा लोगोंने दृढ़ाये हैं, औ तूने जो-जो हृदयमें बन्धन माना है—स्त्री, पुत्र, धन, विषय आदिक, सो सब परखके निवारण करो ! नहीं तो बन्धनमें बन्धे गर्भयोनिमें जाओगे ॥ १ ॥

अटपट कुम्हरा करै कुम्हरैया । चमरा गाँव न बाँचे हो ॥२॥
नित उठि कोरिया पेट भरतु है । छिपिया आँगन नाँचे हो ॥३॥

अटपट कुम्हरा कहिये मन, सो नाना प्रकारकी कल्पना करता है औ नाना वासनामें बन्ध होता है। नाना कर्म करता है, तैसे चोले जीवको प्राप्त होते हैं। जैसी इच्छा कुम्हारकी होय औ जैसा चित्त लगायके क्रिया करे, तैसी हँड़िया बने। तद्वत् मन जैसी कल्पना करै औ कल्पनामें आसक्त होके जैसी क्रिया करै, तैसी देह जीवको प्राप्त होय। परन्तु 'चमरा गाँव न बाँचे हो।' अरे ! कुम्हार नाना प्रकारकी हँड़िया बनाता है; परन्तु वह बनाता ही जाता है, यह फूटती ही जाती है। तद्वत् मन नाना चोले उत्पन्न करता है; परन्तु 'चमरा गाँव न बाँचे हो।' चमरा गाँव कहिये जो चर्म, मांस, हाड़, नाड़ी, मल-मूत्रका गाँव देह; सो अनेक प्रकारकी देह जीवको होती है राजदेही, दरिद्रदेही; औ सब नाश हो जाती है। ताते सम्पूर्ण मिथ्याभूत जानके आसक्ति छोड़ ॥२॥ 'नित उठि कोरिया पेट भरतु है। छिपिया आँगन नाँचे हो ॥' कोरिया कहिये गुरुवा लोग, जिन्होंने नाना प्रकारके कपड़े बिने, नाना बानीग्रन्थ बनाये। सो गुरुवा लोग रोज बाजार भरते हैं, नाना बानी, नाना ऋषिनका सिद्धान्त बताते हैं, नाना ग्रन्थ बानी बाँचते हैं, सो सुनि-सुनि 'छिपिया आँगन नाचे हो।' छिपिया कहिये जो कोरीके पाससे कपड़ा ले करके और जीवनको बेंचे, सो छिपिया। छिपिया कहिये भक्त; सो जा बानी औ जा सिद्धान्तकी जाकी भक्ति है, सोई बात गुरुवा लोगनसे पूछी। सोई बात गुरुवा लोगोंने उपदेश दिया। सो उपदेश पायके भक्ति सहित गुरुवा लोगोंके सामने नाचने लगे ॥ ३ ॥

नित उठि नौवा नाव चढ़तु है। बेरहि बेरा बोरे हो ॥४॥
राउरकी कछु खबरि न जानहु। कैसेकै झगरा निबेरहु हो ? ॥५॥

अब नित उठि जीवनको गुरुवा लोगकी दुकानपर उपदेश होने लगा। नौवा कहिये संसारी जीव, ताको भक्त लोग नित 'नाम' नौकापर चढ़ाते हैं औ वारम्बार तत्त्वमसि कहिके डुबाते हैं, जग चौरासीमें जीवको डुबाते हैं। कोरिया—ब्रह्मादिक, व्यासादिक, वाल्मीकि आदिक; छिपिया—सनकादिक, शुकादिक, नारदादिक; औ नौवा सब संसार। कि शास्त्राचारी, वेदाचारी सोई कोरिया, औ वैदिक, शास्त्रिक, पौराणिक—ये छिपिया; नौवा सब संसार। तो ये सब मिलिके जीवको भ्रममें डुबाते हैं ॥४॥ राउर कहिये आप जीव; सो अपनी तो खबर है नहीं, तो ये झगरा कैसे निबेरोगे ? अरे ! सबही झगरा तुम्हारी गाफिलीसे खड़ा

हुआ है। जो परखके अपनेको चीन्हो, तो गाफिली भी उड़ जाय औ झगरा भी टूट जाय ॥ ५ ॥

एक गाँवमें पाँच तरुनि बसे। जेहिमा जेठ जेठानी हो ॥६॥
आपन–आपन झगरा प्रकासिनि। पियासों प्रीति नसाइनि हो ॥७॥

एक गाँव = देह, पाँच तरुणी = पाँच तत्त्व, औ पाँच तरुणी—क्रिया-शक्ति, द्रव्यशक्ति, ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति, आनन्दशक्ति; औ जेठ-जेठानी = बानी ॥६॥ सो इन आपन-आपन झगरा प्रकाशा। औ इनका पिया जीव; सो जीवसे प्रीति नशायके अपने–अपने विषयनमें लगीं। दूसरा बन्धन बनाया। ये अर्थ ॥ ७ ॥

'भैंसिन माँहिं रहत नित बकुला। तिकुला ताकि न लीन्हा हो !' मायामुखः—याको अर्थ आगे कहेंगे ॥ अब गुरुमुखका विरह अर्थ सुनोः—गुरु कहते हैं कि जैसे सर्प मणिका आशिक रहता है, क्षणभर मणिको भूलता नहीं। जो मणिको लेने व्याध आते हैं सो लोहेका पींजरा चारों तरफ छूरी लगायके ले आवते हैं औ कहीं झाड़ देखके उसके ऊपर बैठते हैं। फिर सर्प जब रातको चरने निकरता है, तब मणि रख देता है, ताके उजियारेमें चरता है। सो व्याध उस मणिके ऊपर पींजरा धर देता है। फिर सर्प दौड़ता है मणि लेनेके वास्ते। सो मणि मिलती नहीं, तब छूरिनपर मूँड़ दै-दै मारता है। फिर शिरच्छेद होके सर्प मरता है। जो वह सर्प पहले ही मणिका मोह छोड़ता, तो काहेको शिरच्छेद होता। तैसा तूने स्त्री माणिक माना है, सो ता स्त्रीके विषयमें मरा जाता है। एक स्त्री, दूसरी बानी—ये दो बन्धन जीवको न होय तो जीव सदा मुक्त है। सो तू स्त्रीके वचन औ शृङ्गार मत् सुन। तेरे हृदयमें पैठके बन्धन होवेगा। तुझे जकड़ डारेंगे। सो तू स्त्रीकी बात औ गुरुवा लोगोंकी बात मत सुन। परखके बन्धनका निरुवारा कर डार ॥ १ ॥

अटपट कुम्हरा = मन, सो सदा विषयनका सङ्कल्प उठाता रहता है औ विषयनमें आसक्त रहता है। केतेउ विषय-भोग रात-दिन करो; परन्तु मनकी तृप्ति नहीं होती। फिर चमरा गाँव = इन्द्री सब नाश हो जाती हैं औ विषय-वासना तो दूनी होती है। फिर वही वासनामें जीवका चोला छूटता है, फिर विषयनका कीड़ा होता है ॥२॥ 'नित उठि कोरिया पेट भरतु है।' कोरिया कहिये स्त्री,

जाने संसार-पट बिन डारा, सब जीवनको चौरासीमें गूँथा । सो स्त्री नित उठिके नाना शृङ्गार करती है औ नाना मोहरूपी बानी बोलके जीवनको मोहती है औ भगमुखसे खाती है, सब जीवनका रेत आकर्षण करके अपना पेट भरती है । ये स्त्री नित–नित पुरुषनका पुरुषार्थ हरती है; परन्तु कभी तृप्त नहीं होती । ये जीव सब स्त्रियनके सङ्गमें कामी भये । सो जैसा स्त्रियाँ पुरुषनको नचाती हैं, तैसे-तैसे नाचते हैं, कामातुर होके पाँव पड़ते हैं । उठो कहो तो उठते हैं, बैठो कहो तो बैठते हैं, सोवो कहो तो सोते हैं । ऐसा जो-जो कहती है, सोई-सोई करते हैं ॥३॥

नौवा = जीव रोज मनरूपी नौकापर चढ़ता है । सो विषय-बयार उड़ायके स्त्रीके पास ले जाता है । तब स्त्री नौका सहित जीवको पकड़के भगचक्रमें डुबाय देती है । जब शृंगार वा स्त्रीकी बात जीवने सुनी कि मनका सङ्कल्प उठा औ विषयनका ध्यान बैठा । तब ऐसा मनमें आने लगा कि स्त्रियनके पास बैठना, उनको देखना, उनसे बातें करना । फिर विषय-बयार उड़ायके स्त्रीके पास ले चला । जब स्त्रियनके पास एकान्त–लोकान्त बैठने लगा औ उनके मुँहकी बातें सुनने लगा, तब काम उठने लगा । जैसे गाढ़ी अग्निको पवन लगे; तद्वत् । जब कोई विवेकी बरजने लगे तो क्रोध आने लगा । औ फिर नाना प्रकारसे लोग हँसने लगे, नसीहत करने लगे, तब मोह भया । मोहसे अकिलमें भ्रम हुआ औ भ्रमसे ज्ञान–बुद्धि सब नाश हुई । फिर चौरासीका कीड़ा जीव हुआ ॥४॥ 'राउरकी कछु खबरि न जानहु ।' राउर कहिये स्त्री; सो इनकी खबर तो जानी नहीं कि सकल भाँतिसे बन्धनरूप है । अब आवागमनका झगरा कैसे छूटेगा ? ॥ ५ ॥

'एक गाँव = एक देहमें पाँच तरुणि बसे ।' पाँच तरुणी कहिये पाँच इन्द्री । कान इन्द्री स्त्रीके शब्द सुननेमें खुशी है । आँखि इन्द्री स्त्रीका रूप देखनेमें खुशी है । नाक इन्द्री स्त्रीकी सुगन्धी सूँघना चाहती है । जीभ इन्द्री स्त्रीका अधर-रस लेना चाहती है । त्वचा इन्द्री स्त्रीका स्पर्श चाहती है । सबमें जेठ-जेठानी लिङ्ग इन्द्री; सो तो स्त्रीके विषयमें बन्ध करना चाहती है, भग-रस लेना चाहती है ॥६॥ सो अपने-अपने विषयके हेत देहमें रार मचाई हैं । इनका पिया जो जीव, ताके कल्याणकी प्रीति तो काहूको नहीं । औ जीवको नाश करनेके हेत विषयनसे प्रीति लगाई । ये अर्थ ॥ ७ ॥

भैंसिन माँहिं रहत नित बकुला । तिकुला ताकि न लीन्हा हो ॥८॥

गाइन माँहिं बसेउ नहिं कबहूँ । कैसक पद पहिचनबेउ हो ? ॥९॥

मायामुखः—अब मायाने गुरुका वैराग्य अर्थ सुनिके जीवनको मिलित उपदेश करती है। सो हे सन्तो! तुम परखो! भैंसी कहिये इन्द्री, बकुला कहिये मन। सो माया बोलती है कि ये संसारका मन तो इन्द्री-विषयमें नित रहता है। तिकुला कहिये टीका; सो तारकयोग सन्धान करके चाँचरी मुद्रामें मन लीन भया नहीं, परमपदकी प्राप्ति कैसे होयगी ? चाँचरी मुद्रा कहिये त्रिकुटीके ऊपर टिके, ऊपर नजर लगावै, दृष्टिसे आकाशमें देखे, तब मोतिनकी झर लगे औ परम शुभ्र ज्योति परमात्मा, ताके दर्शन पावे। तामें मन लय करे ॥८॥ औ गाइन माँहि बसेउ नहिं कबहूँ।' गाई कहिये नाड़ी; सो इङ्गला-पिङ्गला एक करके सुषुमना नाड़ीमें उन्मुनि ध्यान करके कबहूँ बसे नहीं, तो ये जीव ब्रह्मपदको कैसे प्राप्त होंगे ? कैसे पहचानेंगे ? ॥ ९ ॥

पन्थी पन्थ बूझ नहिं लीन्हा। मूढ़हिं मूढ़ गँवारा हो ॥१०॥
घाट छोड़ि कस औघट रेंगहु ? कैसेकै लगबेहु तीरा हो? ॥११॥

पन्थी कहिये जीवको; सो जीवने योगी लोगोंकी शरणमें जायके ब्रह्माण्डका मार्ग बूझ नहीं लिया, ताते ये सम्पूर्ण जीव मूढ़हीं-मूढ़ गँवार हैं। इनको ब्रह्म-अनुभव कैसे होयगा ? औ ये कैसे कालसे बचेंगे ? जबलग हठयोग, राजयोगका मार्ग जीवको नहीं प्राप्त होयगा, तबलग जीवकी मुक्ति नहीं ॥१०॥ 'घाट छोड़ि कस औघट रेंगहु ?' घाट कहिये रास्ता, औघट कहिये कुरास्ता। सो रास्ता पाँच प्रकारके—पपीलमार्ग = कर्ममार्ग, विहङ्गममार्ग = तारकयोग, कपीमार्ग = हठ-योग, मीनमार्ग = अमनस्क, उन्मुनीयोग, शेषमार्ग = ज्ञान, सांख्ययोग—ये पाँच मार्ग छोड़के और सब औघट। सो ऐसे मार्ग जो जीवको मालूम नहीं औ औघट = इन्द्रीके सङ्ग जो रहेगा, सो कैसे भवसागरसे पार होवेगा ? इस प्रकारसे गुरुवा लोगोंने जीवको दृढ़ाया। ये अर्थ ॥ ११ ॥

जतइतके धन हेरिन ललचिन। कोदइतके मन दौरा हो ! ॥१२॥
दुइ चकरी जनि दरर पसारहु। तब पैहो ठीक ठौरा हो ! ॥१३॥

गुरुमुखः—गुरु कहते हैं—जतइत कहिये ब्रह्मादि गुरुवा लोग। उनके योग, ध्यान, भक्ति, ज्ञानरूपी जो धन है, सो बानी हेरिन = खोजिन, पढ़के

ललचाइन अर्थ, धर्म, कामके वास्ते। सो कोदइत कहिये जीव; याहूको मन दौरा। काहेते कि ? गुरुवा लोगनकी बानीमें योग, भक्ति, ज्ञानका महात्म्य बहुत सुना, ताही ते ॥१२॥ सो हे भाई ! 'दुइ चकरी जनि दरर पसारहु।' एक चकरी = संसारके नाना विषयभोग; यामें 'जनि दरर पसारहु !' दरर कहिये वासना, तृष्णा, चाहना; सो संसारके विषय-भोगनमें मत् पसारो ! ये बन्धनरूप हैं। औ दूसरी चकरी = बानी; ताके विषय-भोग स्वर्गादिक, योगादिक, ब्रह्मादिक, ऋद्धि-सिद्धि आदिक चकरी जीवको बन्धनरूप हैं। ताते इनमें भी वासना तृष्णा, चाहना मत् पसारो ! मत् करो ! ये सब जीवको बन्धन हैं। ताते इनको भी परखके छोड़ो ! 'तब पइहो ठीक ठौरा' = पारख-ठौरको प्राप्त होओगे। ये अर्थ ॥१३॥

प्रेम बाण एक सतगुरु दीन्हो। गाढ़ो तीर कमाना हो ॥१४॥
दासकबीर कीन्ह यह कहरा ! महरा माँहि समाना हो ! ॥१५॥२॥

प्रेमबाण जो सतगुरु ब्रह्मादिक गुरुवा लोगोंने दृढ़ाया है संसारमें, सोई गाढ़ो = दृढ़ अनुमान, तीर = लक्ष्य, कमान = देहसे उठा। ता बानी-अनुमानमें दृढ़ लक्ष्य लगा ॥१४॥ सो जीव उस अनुमानका दास बना औ इस प्रकारसे कहर किया। संसारमें नाना उपासना, नाना कर्म, नाना तपस्या, नाना मत, नाना योग, नाना प्रकारकी भक्ति, नाना सिद्धान्त दृढ़ायके संसारको परम दुःखमें डारा। आखिर आप भी बहुत विचार, साधना, वैराग्य करके 'महरा माँहि समाना हो।' महरा कहिये ब्रह्म, सो ब्रह्ममें समाया औ जगत्रूप हो रहा। तो नाहक नाना बानी दृढ़ायके जगको दुःख दिया। आखिर आप भी जगत्रूप हो रहा। ये अर्थ ॥ १५ ॥ २ ॥

॥ ❁ ॥ कहरा ॥ ३ ॥ ❁ ॥

राम नाम का सेवहु बीरा ? दूरि नाहिं दूरि आशा हो ! ॥१॥
और देव का सेवहु ? बौरे ! ई सब झूठी आशा हो ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे भाई ! रामनामका सेवन सब तुम करते हो, तो रामनाम क्या वस्तु है ? अरे ! हे जीव ! तेरेसे ज्यादा कछु वस्तु नहीं। न कछु तेरे बिना नजदीक है, न दूर है। तो सब राम, ब्रह्म आदि तेरी

आशामात्र हैं औ विचार करके देखो तो कछु तेरेसे न्यारी वस्तु नजर नहीं आती। ये पाँच तत्त्व तेरेसे न्यारे हैं सो जड़ हैं। इनकी क्या गिनती ? क्योंकि तेरे बिना इनसे कछु करतूत हो सकती नहीं। इसवास्ते तेरेसे ज्यादा कोई नहीं। तो पाँच तत्त्व औ पाँच तत्त्वको जाननेवाला जीव—एतिक जमा; औ सब मिथ्या धोखा ॥१॥ तो हे जीव ! तू नाहक गुरुवा लोगोंकी बानी सुनि-सुनिके दिवाना हुआ औ दूसरा देव अपना कर्त्ता है—ऐसा अनुमान करके सेवन करने लगा। पर ये सब झूठी आशा ॥२॥

ऊपर ऊजर कहा भौ बौरे ? भीतर अजहूँ कारो हो ॥३॥
तनके वृद्ध कहा भौ बौरे ? मनुवा अजहूँ बारो हो ॥४॥

अरे ! तेरे बिना दूसरा कछु नहीं; परन्तु तेरे भीतर नाना बानी, नाना कल्पना, नाना अनुमान भरे हैं, ताते तू भीतर कारा है। ऊपर ऊजर भया तो क्या भया ? ॥३॥ अरे दिवाने ! तन बूढ़ा हुआ, पर मन बूढ़ा नहीं हुआ। आशा-तृष्णा जवान होती जाती हैं॥ ४ ॥

मुखके दाँत गये कहा भौ बौरे ? भीतर दाँत लोहेके हो ॥५॥
फिर-फिर चना चबाय विषयके। काम क्रोध मद लोभके हो ॥६॥

अरे ! मुखके दाँत गिर परे, पर भीतर वासनारूपी दाँत लोहेके बने हैं ॥५॥ ताते बारम्बार गर्भमें पचते हो औ विषयरूपी चना चबाते हो। वही आशा, वही वासना, वही तृष्णा तेरेको संसारमें ले आती है ॥ ६ ॥

तनकी सकल संज्ञा घटि गयऊ। मनहिं दिलासा दूना हो ॥७॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! सकल सयाना पहुना हो ॥८॥३॥

अरे ! तनकी सकल शक्ति घट गई; परन्तु 'मनहिं दिलासा दूना हो।' ऐसा-ऐसा मैल तेरे पास भीतर भरा है। सो ये सकल भ्रम परखके छोड़ औ शुद्ध पारखरूप हो, तब आवागमनसे बचे। नहीं तो जबलग ये आशा-तृष्णा औ बहुत विषयके पीछे लगा है औ दूसरा ब्रह्म वा आत्मा होनेकी चाह बनी है, तबलग सकल सयानीमें बैठा है ॥७॥ गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! सुनो ! जो सकल सयानी याके पास भई औ एक पद पारख नहीं, तो सब सयानी कछु काम आ सकती ही नहीं। देह नाशे सब नाश पावती है। ये अर्थ ॥ ८ ॥ ३ ॥

॥ ❀ ॥ कहरा ॥ ४ ॥ ❀ ॥

ओढ़न मोरा राम नाम । मैं रामहिका बनजारा हो ! ॥१॥
राम नामका करहु बनिजिया । हरि मोरा हटवाई हो ॥२॥
सहस्र नामका करों पसारा । दिन-दिन होत सवाई हो ॥३॥

टीका जीवमुखः—जीव-बानी ऐसी है कि ओढ़न कहिये आसरा । सो रामनाम मेरा आसरा है और सब मिथ्या । मैं रामनामका व्यापारी हूँ ॥१॥ हरि कहिये ज्ञानीसे मैंने हटवाई पसारी है । उनकी कृपासे मैं पाता हूँ, व्यापार करता हूँ ॥२॥ रामनामका भेद सब संसारमें सुनाता हूँ । सहस्रनामका पसारा, भक्ति करता हूँ, जामें प्रेम दिन-दिन सवाई होता है औ देखा-देखी सब संसारकी भक्ति भी बढ़ती है । ये अर्थ ॥ ३ ॥

जाके देव वेद पछ राखा । ताके होत हटवाई हो ॥४॥
कानि तराजू सेर तीनि पउवा । तुकिनी ढोल बजाई हो ॥५॥

गुरुमुखः— गुरु कहते हैं कि देखो इनकी भक्ति ! कि जाका देवने, वेदने पक्ष राखा, ता रामनामकी सब विक्री होती है । पैसेके हेत करके कोई पुराण बाँचते हैं, कोई कथा कहते हैं, कोई पुरश्चरण करते हैं, कोई गुरुवाई करते हैं । इस प्रकारसे रामनामकी विक्री होती है ॥४॥ कौन प्रकारसे गुरुवा लोग रामनाम बेचते हैं ? सो सुनो—कान है सोई तराजू, औ मन येही तीन पौवा सेर । तीन पाव कहिये रजोगुण, तमोगुण, सतोगुण । ये तीन पाव मिले तहाँ मन । सो 'तुकिनी ढोल बजाई हो ।' ढोल, नगारा, मृदङ्ग, ताल आदि नाना बाजा बजाने लगे । औ शिष्य व्यापारके गाहक तन, मन, धन कीमत लेके आये औ व्यापारी गुरुवा लोगोंके आगे हाथ जोड़के खड़े भये औ कहने लगे कि हे प्रभु ! रामनाम हमको देओ ! तब गुरुवा लोगोंने पीढ़ेपर बैठाया औ मूँड़पर कपड़ा ढाँकके कानमें फूँका—"ॐ रामाय नमः ।" औ कहा कि खूब मन लगायके तौलो । ये अर्थ ॥५॥

सेर पसेरी पूरा कै ले । पासङ्ग कतहुँ न जाई हो ॥६॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! जोर चला जहँड़ाई हो ॥७॥४॥

सेर = मन औ पसेरी = तत्त्व; सो तत्त्वनमें मन लय करके रामनाम स्मरण करना ! श्वासाको कुम्भक करके रामनाम स्मरण करना ! जो 'पासङ्ग कतहूँ न

जाय!' मन कहीं नीचे–ऊँचे चलायमान न होय ॥६॥ परन्तु कहाँ है ? हे जीव! जो तुम्हारेको गुरुवा लोगोंने रामनाम सुनाया, सो कहाँ है ? अरे! रामनाम तो जीवकी कल्पना। ता कल्पनाको देवनने औ वेदनने सिद्ध किया। कैसा ? कि राम कहिये जो सबमें रमा। रमा कहिये आत्मा, आत्मा कहिये जगत्। तो एकता करके आखिर बेकारमें रमा। हे सन्तो! देखो! जबरदस्ती जहँड़ाय चला जीव, भ्रमचक्रमें परा। ये अर्थ ॥ ७ ॥ ४ ॥

॥ ❁ ॥ कहरा ॥ ५ ॥ ❁ ॥

राम नाम भजु ! राम नाम भजु ! चेति देखु मन माहीं हो ! ॥१॥
लक्ष करोरि जोरि धन गाड़े। चलत डोलावत बाँही हो ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—जीवको बन्धन दो—एक रामनाम आदि सकल बानी। यामें जीव बन्ध हुआ है। सो गुरु कहते हैं कि रामनाम आदि सम्पूर्ण कल्पनाको परखके भाग ! छोड़के मुक्त हो ॥१॥ औ दूसरी मोटी माया—लक्ष करोरी द्रव्य जोरिके जिमीमें गाड़ा औ उसका अभिमान करके बाँह डुलावते फिरते हैं। ये भी जीवको महा बन्धन है। सो परखके छोड़ना ॥ २ ॥

दादा–बाबा औ परपाजा। जिन्हके यह भुँइ भाँड़े हो ॥३॥
आँधर भये हियहुकी फूटी। तिन्ह काहे सब छाँड़े हो ? ॥४॥

जो दादा, बाबा, परपाजा भये, जिन्होंने नाना द्रव्य, जागीर, रुपया जमा किया औ जिमीमें भी बहुत गाड़ा औ दिया–लिया भी बहुत। आखिर मर गये। सब जहाँ-के-तहाँ परा रहा ॥३॥ वो सब छोड़के चले गये। औ तुम्हारी ऊपरकी भी आँखीं गईं औ भीतरहूकी फूटीं, जो तुमको मालूम नहीं होता कि हम भी छोड़के जायेंगे। ये नाशवन्त द्रव्य है। याकी आसक्तताईसे नाना सर्पादिक दुष्ट योनि भोगेंगे ॥ ४ ॥

ई संसार असारको धन्धा। अन्तकाल कोइ नाहीं हो ! ॥५॥
उपजत-बिनशत बार न लागे। ज्यों बादरकी छाँहीं हो ! ॥६॥

अरे ! ये संसार सब असारका धन्धा है। अन्तकालमें कोई साथी नहीं ॥५॥ औ उपजते–विनशते कछु बार नहीं। जैसे बादरकी छाहीं क्षणमें आई औ क्षणमें गई ॥ ६ ॥

नाता-गोता कुल कुटुम्ब सब । इन्ह कर कौन बड़ाई हो ? ॥७॥
कहहिं कबीर एक राम भजे बिनु । बूड़ी सब चतुराई हो ! ॥८॥५॥

तद्वत् धन, दारा, पुत्रादि नाता-गोता, कुल-कुटुम्ब; इनकी कौन बड़ाई ? अरे ! बादरकी पुतरिनकी क्या बड़ाई करना ? क्षणमें हैं औ क्षणमें नहीं । औ इनके सङ्गमें नाहक बन्धन होता है ॥७॥ तो बन्धन जानके ये भी छोड़ा औ एक रामनाम-समाधि भी लगी रही, तो भी जीवको बन्धन है । ताते गुरु कहते हैं कि सम्पूर्ण त्याग हुआ औ बड़ा निर्णय किया; परन्तु आत्म-अनुभव औ एक राम— येता धोखा जो छूटा नहीं, धोखेसे भागा नहीं तो सम्पूर्ण चतुराई बूड़ी ॥८॥५॥

॥ ॥ कहरा ॥ ६ ॥ ॥

राम नाम बिनु राम नाम बिनु । मिथ्या जन्म गमायो हो ! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—'एक रामनाम जाने बिना, भौ बूड़ि मुवा संसार ।' कि रामनाम एक जीवका अनुमान मिथ्या कल्पना—ऐसा जाने बिना मिथ्या धोखेमें जन्म गमाये हो । हे जीव ! तुम्हारे बिना रामनाम कौन कल्पेगा ? ये अर्थ ॥१॥

सेमर सेइ सुवा ज्यों जहँड़े । ऊन परे पछिताई हो ॥२॥
जैसे मदपी गाँठि अर्थ दै । घरहुकी अकिल गमाई हो ॥३॥

अरे ! जैसा सेमरका फूल अच्छा देखकर सुवेने सेवन किया फलकी आशा-से; औ जब फल फूटा, तब उसमेंसे रुई उड़ी । तब सुवनाको महापश्चात्ताप हुआ । तद्वत् अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—इन फलकी आशा करके रामनामका सेवन किया बड़ा भक्तिका महात्म्य देखके; परन्तु जब रामकी आखिरी देखी तो जगत् ही राम हुआ । तब जीवको भ्रान्ति हुई औ बड़े पश्चात्तापमें पड़ा ॥२॥ जैसे मद्यपी अपनी गाँठीका पैसा देके घरकी भी अकिल गँवाता है, तैसा गुरुवा लोगोंको तन, मन, धन देके रामकी भक्ति करने लगा । जगत्-आतमा बना श्रुति--शास्त्रके प्रमाणसे, तो घरकी अकिल जो साक्षीदशा थी, सो भी गँवाई ॥ ३ ॥

स्वादे वोद्र भरे धौं कैसे ? ओसै प्यास न जाई हो ! ॥४॥
दर्ब हीन जैसे पुरुषारथ । मन ही माँहि तवाई हो ॥५॥

अरे ! स्वादसे कहूँ पेट भरता है ? ब्रह्म तो जगत्का स्वाद है । जीवके स्वादमें जीव तदाकार हुआ तो आवागमनसे कैसे रहित होयगा ? ओसके चाटे कैसे प्यास

जायगी ? तो योग समाधि औ कर्म, इनके किये जगत्‌का दुःख छूटनेका नहीं । ये अर्थ ॥४॥ जैसे द्रव्यहीन मनुष्य पुरुषार्थ बहुत बताते हैं औ जब काम परा, तब घबरायके मनहीमें तवाई = हार खाते । तद्वत् बिना पारख ये जीव पुरुषार्थ तो बहुत बताता है कि मैं ब्रह्म, मैं साक्षी, मैं सिद्ध, मैं आत्मा । परन्तु जब पूछो कि ब्रह्म, साक्षी, सिद्ध, आत्मा कहाँ है ? तब 'सब जगत् ही' कहिके मनमें तवाई खायके रहि जाता है । ये अर्थ ॥ ५ ॥

गाँठी रतन मर्म नहिं जाने । पारख लीन्हा छोरी हो ॥६॥
कहहिं कबीर यह औसर बीते । रतन न मिले बहोरी हो ! ॥७॥६॥

रतन कहिये जीव, सो ताको नाना प्रकारकी गाँठी पर गई—कर्मकी, धर्मकी, विषयकी, ज्ञानकी औ विज्ञानकी । सो इन पञ्च गाँठिनसे कछु छूटने नहीं पाता । ज्यों-ज्यों कल्पना-अनुमान करता है, त्यों-त्यों अधिक-अधिक अरुझता जाता है औ बहुत दुःख पाता है । सो ऐसे दुःखिया जीवको पारखने सम्पूर्ण गाँठी छुड़ाके अपना स्वपद कर लिया । जब पारख प्राप्त भया, तब सब पाँचों गाँठी परखके छोड़ा औ पारखरूप हुआ, आवागमनसे रहित हुआ, ब्रह्म-जगत्‌से न्यारा हुआ, स्थिर हुआ ॥६॥ तो गुरु कहते हैं कि भाई ! पारख पानेका अवसर अबहीं है। जो ये अवसर = मानुष-जन्म चूक जायगा, बीत जायगा, तो फिर ये जीव पारख-से नहीं मिलनेका । ये अर्थ ॥ ७ ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ कहरा ॥ ७ ॥ ❀ ॥

रहहु सँभारे राम विचारे । कहता हौं जे पुकारे हो ! ॥१॥
मँड़ मुँड़ाय फूलिके बैठे । मुद्रा पहिर मञ्जूसा हो ॥२॥
तेहि ऊपर कछु छार लपेटे । भितर-भितर घर मूसा हो ॥३॥

टीका गुरुमुखः—गुरु बोलते हैं कि हे भाई योगी लोगो ! मैं पुकारके कहता हौं कि जो तुम राम विचारे हो समाधिरूप, ताको सम्हाले रहो ! जब देह छूटेगी, तब समाधि कहाँ रहेगी ? ये अर्थ ॥१॥ अरे ! मूँड़ मुड़ायके मुद्रा पहिरके मञ्जूसामें = गुफामें कुम्भक करके फूलके बैठे कि हम ब्रह्मरूप हो गये ॥२॥ भीतर कहिये सूक्ष्मरूप, फिर भीतर कहिये कारण, घर कहिये महाकारण, सो लूटके लय करके कैवल्य हो बैठे । ये अर्थ । ऊपर-ऊपर राख लपेटी, पर

भीतर-भीतर बीज रह गया कि मैं ब्रह्म, मैं आत्मा । तो जब ब्रह्म-आत्मा बना, तब जगत्का अधिष्ठान बना । तो जग चौरासीका बीज बना । ये अर्थ ॥ ३ ॥

गाँव बसतु है गर्भ भारती । बाम काम हङ्कारा हो ॥४॥
मोहन जहाँ-तहाँ लै जइहैं । नहिं पत रहल तुम्हारा हो ॥५॥

गाँव कहिये संसार; सो संसारमें गर्भभारती = ब्रह्मज्ञानी, योगी बसते हैं । बाम कहिये ब्रह्मज्ञान । सो ब्रह्मज्ञानका काम करते हैं, विधि-निषेध कछु रखते नहीं । सम्पूर्ण सुकर्म-कुकर्म, भक्ष-अभक्ष करते हैं औ हङ्कार करते हैं कि हम ब्रह्म सच्चिदानन्द । हमको कछु विधि--निषेध नहीं । जो खुशीमें आवे सो करना ! सम्पूर्ण हमारा खेल है । हमसे कछु न्यारा नहीं । हम किसीसे न्यारे नहीं। इस प्रकारका हङ्कार ब्रह्मज्ञानी करते हैं ॥४॥ परन्तु मोहन कहिये बानी औ मोहन कहिये स्त्री, सो जहाँ--तहाँ चौरासीमें तुम्हें फँसायके गर्भवासमें ले जायगी। फिर तुम्हारा हङ्कार भूल जायगा औ नाना प्रकारकी योनिमें बहुत लात--मुक्का खावोगे । फिर तेरी पत नहीं रहनेकी । तासे अभी चेतके बानी औ स्त्री, दोनोंका फन्द छोड़ो ! ये अर्थ ॥ ५ ॥

माँझ मँझरिया बसै सो जानै । जन होइहैं सो थीरा हो ॥६॥
निर्भय भये तहाँ गुरुकि नगरिया । सुख सोवै दास कबीरा हो !॥७॥७॥

मायामुखः—माँझ कहिये भीतर, मँझरिया कहिये नाभिस्थान; सो जाका लक्ष्य त्रिकुटी, श्रीहट, गोल्हाट स्थान छोड़के अहुटपीठ स्थानके भीतर सदा राजयोग-सन्धानसे बसे, कदहीं उत्थापन होने न पावे, सोई सच्चिदानन्द स्वरूपको जाने । सोई योगीजन स्थिर होयगा, आवागमनसे रहित होयगा । ये अर्थ ॥६॥

गुरुमुखः—'निर्भय भये तहाँ गुरु कि नगरिया । सुख सोवै दास कबीरा हो ।' दास कबीरा = भक्त; सो योगी लोगोंकी भक्ति करके उन्मुनि समाधिमें निर्भय हुआ । तहाँ गुरुकी नगरिया, जहाँ चाँद-सूर्य भासते नहीं औ अग्नि भी भासती नहीं । इङ्गला, पिङ्गला, सुषुमना जहाँ नहीं, तहाँ गुरुकी नगरिया परमधाम, भ्रमर गुफामें 'सुख सोवे दास कबीरा ।' दास कबीरा = जीवने परम सुख गाफिलीसे माना । ये अर्थ ॥ ७ ॥ ७ ॥

॥ ❁ ॥ कहरा ॥ ८ ॥ ❁ ॥

च्येम-कुशल औ सही-सलामत । कहहु कौनको दीन्हा हो ? ॥१॥

आवत-जात दोऊ विधि लूटे। सर्व तङ्ग हरि लीन्हा हो ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हिन्दूका क्षेम-कुशल औ तुरुकका सही-सलामत—सो गुरुवा लोगोंने औ वेद-कुराननने कहा; परन्तु कौनका क्षेम-कुशल भया ? ये वेद औ गुरुवा लोगोंके कहे औ कुरानके कहेसे किसीका न भया। औ इस स्त्रीके तरफसे किस—किसका कुशल भया ? येही तो चौरासीका मूल है। इसके तरफसे किसका भला होयगा ? किसीका भी नहीं। ये अर्थ ॥१॥ ताते तीनोंको परखके छोड़ो। 'आवत—जात दोऊ विधि लूटे।' आवत कहिये जो गुरुवा लोग पैदा भये हैं, औ जात कहिये जो गुरुवा लोग नाना बानी बनायके मर—मर गये हैं, सो दोनों विधि जीव लूटा गया। जो मर गये, उन्होंने भी नाना कल्पना, कर्म, उपासना, ज्ञान, योगादिक दृढ़ायके जीवकी हंसदशा औ साँचत्त्व हर लीन्हा और अब जो गुरुवा लोग हैं सो भी उनके प्रमाणसे सम्पूर्ण जीवनका साँचत्त्व हरके मिथ्या कर्म—उपासना, लोक--परलोक दृढ़ावते हैं। और स्त्री भी आवत--जात दोऊ विधि लूटती है। जब लड़का पैदा भया, तबहींसे माताने मोह लगाया। नाता-गोता, हित-बन्धूका मोह दृढ़ावने लगी औ जीवकी साँचताई हरने लगी। सोई जीवने दृढ़ किया। आगे शनै-शनै जब बढ़ा, तब लिख डारा और जनेऊ कर दिया, तब नाना प्रकारके प्रपञ्च, उद्दीम, कर्म, मोह, लोभ औ तृष्णा बढ़ी औ कर्म विशेष दृढ़ाये। फिर नाना उद्योग जीव करने लगा। फिर विवाह किया, तब नाना विषय जागे औ जीव विषयासक्त हुआ। तब आदिमायाका रूप जो माता, ताका मोह घटा औ अन्तमायाका रूप कालिका मेहरी, ताका मोह बढ़ा। तब स्त्रीका गुलाम भया औ नाना जञ्जाल करने लगा। कष्ट कर--करके दाम कमाने लगा, सो सब विषयके फन्देमें उड़ावते हैं; परन्तु तृप्ति नहीं होती। अतृप्तिमें ही देह छूटती है। आखिर कमाते--कमाते औ विषय करते--करते बूढ़े होते हैं। फिर इन्द्री तो सब शिथिल हो जाती हैं; परन्तु चाह बनी रहती है औ चोला छूटा तो फिर गर्भवासको जीव प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे ये स्त्रीने औ बानीने 'आवत--जात दोऊ विधि लूटा' औ जीवका सर्वतङ्ग = साँचताई हरि लीन्हा। ये अर्थ ॥ २ ॥

सुर नर मुनि जति पीर औलिया। मीरा पैदा कीन्हा हो ॥३॥
कहाँलों गनों अनन्त कोटिलों। सकल पयाना कीन्हा हो ॥४॥

हे सन्तो ! देखो ! ये कल्पनाने औ बानीने औ गुरुवा लोगोंने क्या आश्चर्य किया ? जो काहूको देव बनाया, काहूको नर बनाया, काहूको मुनि बनाया, काहूको यति बनाया, काहूको पीर बनाया, काहूको औलिया बनाया, काहूको पीरजादा औ काहूको भट्टाचार्य बनाया ॥३॥ परन्तु कहाँलों गनौं ? अनन्त कोटि महात्मा कल्पनासे पैदा भये औ कल्पनामें मर-मर गये। उनकी बानी यहाँ ही पड़ी है—जो कोई जीव पैदा होते हैं तिनको फँसानेके वास्ते। पर काहूकी बानी छोड़के स्थिति भई नहीं। और इस स्त्रीसे सुर, नर, मुनि, यति, पीर, औलिया गुरुवा लोग सब पैदा भये औ स्त्रीके गर्भमें गये, सब अनन्त कोटिलों बिना पारख। ये अर्थ ॥ ४ ॥

पानी-पवन अकाश जायँगे। चन्द्र जायँगे सूरा हो ॥५॥
ये भि जायँगे वो भि जायँगे। परत न काहु के पूरा हो ॥६॥

पानी = ब्राह्मण, पवन = योगी, आकाश = जङ्गम, चन्द्र = सेवड़ा, सूर्य = संन्यासी ॥५॥ ये भी = भक्त, और वो भी = दरवेश सम्पूर्ण गर्भवासमें जायेंगे। बिना पारख जीवकी स्थिति नहीं। बिना पारख काहूका पूरा नहीं परता। याते सब परखके पारखरूप होना। ये अर्थ ॥ ६ ॥

कुशल कहत-कहत जग बिनसे। कुशल कालकी फाँसी हो ! ॥७॥
कहैं कबीर सारी दुनियाँ बिनसे। रहे राम अविनाशी हो ! ॥८॥८॥

कोई कहते हैं कि शादी भई, लड़के भये, दौलत भई, तो जीवका कुशल भया। परन्तु गुरु कहते हैं कि जेतिक वृद्धि ज्यादा होती है, तेता विषय औ मोह, तृष्णा जीवको ज्यादा होती हैं औ जीव आसक्त होयके बन्धमें परता है, ताते चौरासी भोगता है। तो ये कुशल नहीं, कालकी फाँसी है। और कोई कहते हैं कि स्त्री, पुत्र, धन सब छोड़के गुरुवा लोगनकी शरणमें जाना औ नाना योग-वैराग्य करके मुक्ति-गतिको प्राप्त होना। तो ये मुक्ति भी कालकी फाँसी है। अरे ! मुक्त होके जीव कहाँ जायेंगे ? बिना पारख सब कुशल कालकी फाँसी ॥७॥ मायामुखः—अब गुरुवा लोगनका उपदेश ऐसा है कि सारी दुनिया विनाश हो जायगी औ एक राम अविनाशी रहेगा ॥८॥ तो सारी दुनिया विनाश होयके कहाँ जायगी ? औ राम अविनाशी कहाँ रहेगा ? ये सब मिथ्या धोखा। ये अर्थ ॥ ८ ॥ ८ ॥

॥ ❁ ॥ कहरा ॥ ९ ॥ ❁ ॥

ऐसनि देह निरालप बौरे! मुवल छुवे नहिं कोई हो! ॥१॥
डण्डवाकी डोरिया तोरि लराइनि। जो कोटिन धन होई हो! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु बोलते हैं जीवको कि हे दिवाने बावरे! ये ऐसी मानुषकी देह सत्सङ्ग करने योग्य, सो तू हकनाहक विषयनमें खोता है। मनुष्यकी उमर थोरी या अल्प आयु। याको पायके सकल फाँस परखके छोड़ देना। नहीं तो जो कुटुम्ब, परिवार, पुत्र, स्त्री; जिनके पीछे तू अपना जन्म खोता है, सो मुयेपर कोई तेरेको छूनेका भी नहीं ॥१॥ जो तेरे पास कोटिन धन होयगा, तब भी डण्डवा = कमरका करधना सहित तोड़के फेंक देवेंगे। तेरे सङ्ग कौड़ी भी नहीं जानेकी। ये अर्थ ॥ २ ॥

ऊर्धनि श्वासा उपजि तरासा। हँकराइनि परिवारा हो ॥३॥
जो कोइ आवै बेगि चलावै। पल एक रहन न पाई हो ॥४॥

हे सन्तो! जब चोला छूटनेका समय आता है, तब ऊर्ध्व श्वास जीवको चलने लगा औ नाड़ी छूटने लगी। सो जीव घबराया। "अरे! मेरी स्त्रीको बुलाओ! मेरे पुत्रको मेरे सामने लाओ! मेरे भाई-बन्धुको बुलाओ! भाई-बन्धो! मेरी मेहरीको सम्भालो! इनकी लाज तुम्हारेको हैं, मेरे बेटा-बेटी तुम्हारे जिम्मे हैं, मेरा धन-दौलत सब सम्भाल लो! मेरा नाम मत् डुबाना, दौलत खोना मत्, मैं मरता हौं, अब मेरी मेहरीका लाड़ और हठ कौन पुरावेंगे? अब मेरी मेहरी मेरी नजर नहीं आनेकी।" ऐसा शोक करते-करते नाड़ी आकर्षण हुई। सो हाथकी नाड़ी कण्ठमें औ पाँवकी नाड़ी पेडूमें आई, तब कण्ठ रुका तो आँखका इशारा करने लगा। फिर आँखकी नाड़ी जब आकर्षण होने लगी, तब तारे टूटने लगे। चाँद, सूर्य, अग्नि, बिजली-सी चमक होने लगी आँखके सामने, और ब्रह्माण्डमें नाना प्रकारके नाद उठे। तब जीव घबराया। तब नाना प्रकारका अध्यास उठा, तैसी अवस्था भई। उपरान्त सब नाड़ी हृदयस्थानमें आईं। सोई नाड़ीकी ग्रन्थि खुली औ सुषुप्ति अवस्था भई। फिर चोला छूटा। सुषुम्ना नाड़ी जीवको ले उड़ी। सो जहाँ आशा, तहाँ बासा पाया ॥३॥ अब जो कोई आते हैं सो कहते हैं कि जल्दी श्मशानमें ले चलो! सो क्षणभर भी रहने नहीं पाया। जल्दी ले जायके जराय दिया। ये अर्थ ॥ ४ ॥

चन्दन चीर चतुर सब लेपैं। गरे गजमुक्ताके हारा हो ॥५॥
चौंसठ गीध मुये तन लूटै। जम्बुकन वोद्र बिदारा हो ॥६॥

जो बड़ी चतुराई करते थे औ अङ्गमें चन्दन चरचते थे और नाना प्रकारकी सुगन्ध लगावते थे और ऊँचे-ऊँचे कपड़े पहिरते थे; गलेमें गजमोतिनके हार पहिरते थे ॥५॥ सो तन जब जङ्गलमें जायके छूटा, तब न कुटुम्ब काम आया, न दाम काम आया। चील-गिद्ध तनको खाने लगे औ जम्बुकनने पेटको फार डारा। या अग्निमें जराय दिया, या माटीमें गाड़ दिया या गिद्ध-चील खाय गये। देह, धन, कुटुम्ब—ये कछु काममें पड़े नहीं ॥ ६ ॥

कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो! ज्ञान हीन मति हीना हो ॥७॥
एक-एक दिना याहि गति सबकी। कहा राव कहा दीना हो ॥८॥९॥

याते गुरु कहते हैं कि हे सन्तो! जो ज्ञानहीन, मतिहीन जीव हैं, तिनकी या गति भई। कछु अपनी स्थिति न भई ॥७॥ औ जो हैं तिनकी एक-एक दिन याहि गति सबकी होयगी। क्या राजा? औ क्या दरिद्री? आखिर सबकी एक दिन ये ही गति होयगी। ताते सम्पूर्ण नाशवान् पदार्थ हैं। तामें चित्त नहीं देना। सब परखके पारखरूप हो रहना! ये अर्थ ॥ ८ ॥ ९ ॥

॥ ❀ ॥ कहरा ॥ १० ॥ ❀ ॥

हौं सबहिनमें हौं ना हौं, मोहि-। बिलग बिलग बिलगाइल हो! ॥१॥
ओढ़न मोरा एक पिछौरा। लोग बोलैं एकताई हो ॥२॥

टीका ब्रह्ममुखः—अरे! ये आश्चर्य! जो मैं ब्रह्म सब चराचरमें बाहर-भीतर भरा हौं। परन्तु ना हौं = 'अहं' शब्दसे सर्वत्र मेरी प्रतीति है; परन्तु मैं अहङ्कारसे न्यारा। 'मोहि बिलग-बिलग बिलगाइल हो!' मेरेको नेति-नेति श्रुति बोलती है। मैं तो पाँच तत्त्व नहीं, दश इन्द्री नहीं, अन्तःकरण पञ्चक नहीं, अवस्था चार नहीं, वायु पञ्चक नहीं, विषय पञ्चक नहीं, प्रकृति पचीस नहीं, देह चतुष्टय नहीं, निर्गुण-सगुण नहीं, द्वैताद्वैत नहीं। 'ओढ़न मोरा एक पिछौरा। लोग बोलैं एकताई हो ॥' अरे! मेरी माया बड़ी दुर्धर्ष, जाने मेरेको ढाँक लिया। सोई माया एक पिछौरा। ताते एकताईमें अनेक रूप भास भये। जैसा

घट बना, तैसा आकाश भास भया; तद्वत् । कि जैसा एक चन्द्र अनेक घटमें भासा, तैसा मैं एक आत्मा निरन्तर आकाशवत् । ये अर्थ ॥ २ ॥

एक निरन्तर अन्तर नाहीं । ज्यों शशि-घट जल झाँईं हो ॥३॥
एक समान कोइ समुझत नाहीं । जाते जरा-मरण भ्रम जाई हो ॥४॥

मैं एक स्वजातीय-विजातीय-स्वगत भेद रहित निरन्तर; जो कहूँ अन्तर नहीं । घनरूप असन्धि । जैसा एक चन्द्र, औ झाँईं अनेक घटमें प्रतिबिम्ब नजर आता है । तैसा मैं एक आत्मा अनेक देहमें नजर आता हौं । जहाँ जल चञ्चल, तहाँ प्रतिबिम्ब भी चञ्चल नजर आता है औ जहाँ जल स्थिर, तहाँ प्रतिबिम्ब भी स्थिर नजर आता है । परन्तु जल-घटकी उपाधि कछु चन्द्रको नहीं ॥३॥ अरे ! एक आत्मा सब घटमें समाया, सो भ्रमवश कोई समुझता नहीं; जाते जरा-मरण सम्पूर्ण भ्रम छूट जाय ॥ ४ ॥

रैन-दिवस ये तहवाँ नाहीं । नारि-पुरुष समताई हो ॥५॥
हौं मैं बालक बूढ़ो नाहीं । ना मोरे चिलकाई हो ! ॥६॥

अरे ! एक आत्मामें (रैन-दिवस ये तहवाँ नहीं है) प्रकृति-पुरुष औ ज्ञान-अज्ञान कछु सम्भवे नहीं । जैसा जलके विकार—फेन, तरङ्ग, बुद्बुदा सम्पूर्ण जल ही हैं औ माटीका विकार सब मिट्टी; तैसा ब्रह्मका विकार प्रकृति-पुरुष आदि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्म ही है । ये अर्थ ॥५॥ न मैं बालक, न मैं तरुण, न मैं बूढ़ा । औ सम्पूर्ण त्रिविधि स्वरूप मैं ही हौं ॥ ६ ॥

त्रिविधि रहौं सभनिमा वरतों । नाम मोर रमुराई हो ॥७॥
पठये न जाऊँ आने नहिं आवों । सहज रहौं दुनियाई हो ॥८॥

मैं त्रिविधि सच्चिदानन्द एकरस होयके सबनमा बरतता हौं । जो तीन कालमें भासै सोई सत्, औ जाको भासै सोई चित्त । दोनोंकी एकता अधिष्ठान, सोई आनन्द । इस प्रकारसे सबनमें वर्त्तता हौं । औ 'नाम मोर रमुराई हो' = सर्वव्यापी आत्मा राम । ये अर्थ ॥७॥ मैं किसीके निकारे निकरता नहीं औ किसीके आने आता भी नहीं । सहज ही आकाशवत् दुनियामें रहता हौं—अखण्ड, एकरस । ये अर्थ ॥ ८ ॥

जोलहा तान-बान नहिं जाने । फाटि बिने दश ठाँई हो ॥९॥

गुरु परताप! जिन्हें जस भाष्यो। जन बिरले सो पाई हो ॥१०॥

जोलहा = ब्रह्मादिक, सनकादिक, व्यासादिक; या जोलहा = मन, सो ताना-बाना नहीं जानता कि एक तत्त्व ही है। तैसा एक आत्मा सब जगत् है; परन्तु मनने नहीं जाना, ताते नाना कल्पना कर-करके 'फाटि बिने दश ठाँई।' चार वेद, छैः शास्त्र—ये दश टुकड़े करके संसारमें दृढ़ाता है। ये सब मनकी कल्पना मिथ्या भ्रान्ति। आत्मा सत्य। ये अर्थ ॥९॥ मायामुखः—गुरु प्रताप जिन्हें ये महावाक्यका विचार जैसा वेदान्तके प्रमाणसे भास हुआ, सो जो कोई साधन चतुष्टय सम्पन्न जीव होते हैं सो अनुभव कर पाते हैं। ये अर्थ ॥ १० ॥

अनन्त कोटि मन हीरा बेधो। फिटकी मोल न पाई हो ॥११॥
सुर नर मुनि जाके खोज परे हैं। कछु-कछु कबिरन पाई हो ॥१२॥१०॥

गुरुमुखः—अरे! अनन्त कोटि ऋषि औ अनन्त कोटि वेदनका सिद्धान्त, ताको मानके हीरा = जीव बेधा, सो ऐसा उतर गया जीव यह कि फिटकीका मोल भी न पाया। जैसा पत्थर शालिग्राम आदिकका महात्म्य है, वह महात्म्य भी इस जीवका नहीं हुआ। ये अर्थ ॥११॥ मायामुखः—सुर, नर, मुनि जा अनुभवके खोजमें परे हैं, सो कछु-कछु कबिरन = मुमुक्षु जीवने पाया। 'ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।' ये अर्थ ॥ १२ ॥ १० ॥

॥ ❀ ॥ कहरा ॥ ११ ॥ ❀ ॥

ननदी गे तैं विषम सोहागिनि। तैं नीन्द ले संसारा गे! ॥१॥
आवत देखि मैं एक सङ्ग सूती। तैं औ खसम हमारा गे! ॥२॥

टीका जीवमुखः—ननदी कहिये जाका प्रेम परमात्मामें दृढ़ होय, सो योगीजनके पास जायके जीव प्रशंसा करने लगे कि हे योगीजन! तुम बड़े विषम वैराग्य-तितिक्षायुक्त पिया परमात्माके प्यारे हो! सो अपने खाविन्दके सङ्ग ही संसारमें सोते हो। संसार सब परम दुःखी हैं। तुम परमात्माके सङ्ग बड़ा सुख भोगते हो, समाधिस्थ रहते हो ॥१॥ 'आवत देखि मैं एक सङ्ग सूती।' हे योगेश्वर महाराज! जब-जब हम आपके दर्शनको आये, तब-तब परमात्मा हमारे खसम, उनमें आपको मिले ही देखा, कबहूँ न्यारा नहीं देखा, सदा समाधिस्थ देखा। ये अर्थ ॥ २ ॥

मोरे बापके दुइ मेहररुवा । मैं अरु मोर जेठानी गे ॥३॥
जब हम रहलि रसिकके जगमें । तबहिं बात जग जानी गे ॥४॥

अब जीव पहिले योगेश्वरकी प्रशंसा करके फिर अपनी प्रशंसा करता है कि मोरे बाप = परमात्मा, ताकी 'हम दुई मेहररुवा ।' मैं अरु मोरे गुरु—हम दोऊ परमात्माके भक्त । ये अर्थ । भला ! ये तो सही—जो जीवने परमात्माको पिता कहा और अपने अंशभाव लिया, औ खसम कहा तो भक्तिभाव लिया । पर जेठानी गुरुको कहा, सो कौन भावसे ? ये शङ्का । तो अपने खाविन्दका बड़ा भाई, ताकी स्त्री जेठानी । तो ब्रह्मा बड़ा भाई औ विष्णु छोटा भाई । सो हमारे गुरु ब्रह्माके भक्त वेदान्ती । ब्रह्मा कहिये जेठा । औ हम विष्णुके भक्त । ताते हमारे खाविन्द विष्णु । हम विष्णुकी स्त्री औ हमारा गुरु ब्रह्माका भक्त, ब्रह्माकी स्त्री; ताते जेठानी । परन्तु वह ब्रह्माके आज्ञा-प्रमाण ब्रह्महीमें लीन औ हम विष्णुके आज्ञा-प्रमाण ब्रह्महीमें लीन । तो दोनों पारब्रह्मकी कला । दुइ = मैं और मेरे गुरु । ये अर्थ ॥३॥ 'जब हम रहलि रसिकके जगमें ।' ये ही योगेश्वर! रसिक कहिये जो कि सब रसका लेनेवाला, सोई परमात्मा । ताहीसे सब जग उत्पन्न भया । सो जब हम जगत्में थे, संसारमें, तब बात जगत्ने जानी कि भाई! ये भगवत्-भक्त बड़े हैं । सो अब तो तुम्हारी कृपासे परमात्मामें लीन हैं । जगत् नहीं भासता । सदा परमात्मा भासता है ॥ ४ ॥

माइ मोरि मुवलि पिताके सङ्ग । सरा रचि मुवलसङ्घाती गे ॥५॥
आपुहि मुवलि और ले मुवली । लोग कुटुम सङ्ग साथी गे ॥६॥

अब हमारी माया मर गई । हम निर्मोह हो गये । जो हमारी अहंवृत्ति थी, सो ब्रह्ममें लीन हो गई । योगी लोगनके सङ्ग सरा रची = यम, नियम, संयम, प्राणायाम, प्रत्याहार, अनेक प्रकारके आसन, अनेक प्रकारके मुद्रा; इनका सरा = चिता रचा औ ब्रह्माग्नि उद्गार करके ब्रह्मके सङ्ग विषयवृत्ति जरके भस्म हो गई ॥५॥ आप ही माया मरी औ जेते मायाके सङ्ग-साथी थे—काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिक सबको लेके वृत्ति योगाग्निमें भस्म भई । सङ्ग-साथी = चौदह देवता, पञ्च विषय; औ लोग-कुटुम्ब = अन्तःकरण पञ्चक, औ चार शक्ति, चार अभिमान, चार अवस्था, दश इन्द्री आदि सब लोग-कुटुम्ब सङ्ग-साथिन सहित योगाग्निमें वृत्ति जरके भस्म भई । ये अर्थ ॥६॥ अब पूर्ण सच्चिदानन्द अनुभव

भरा है, दूसरा कछु नहीं। इस प्रकारसे गुरुवा लोगोंके पास जीवनने अपना अनुभव कहा, तब योगी लोग परस्पर बहुत खुश भये। ये अर्थ। परन्तु अब गुरु क्या कहते हैं? सो सुनोः—

जौं लौं श्वास रहै घट भीतर । तौं लौं कुशल परी हैं गे ॥७॥
कहहिं कबीर जब श्वास निकरिगौ। मन्दिर अनल जरी हैं गे॥८॥११॥

गुरुमुखः—जबलग श्वास घट भीतर है, तबलग इनके योगका कुशल है ॥७॥ पर जब श्वास घट छोड़के निकर जायगा, तब देह तो अग्निमें जल जायगी औ इनकी योग-समाधि कहाँ रहेगी? अरे! देह बिना योगकी स्थिति कहाँ है? औ ऋद्धि-सिद्धि कहाँ रहेगी? सब नाश हो जायगी। फिर जीवकी कौन दशा होयगी? तो इनकी योग-समाधि सब नास्ति। ये अर्थ ॥ ८ ॥ ११ ॥

॥ ❀ ॥ कहरा ॥ १२ ॥ ❀ ॥

ई माया रघुनाथ कि बौरी! खेलन चली अहेरा हो! ॥१॥
चतुर चिकनियाँ चुनि-चुनि मारे। कोइ न राखेउ न्यारा हो ॥२॥

टीका गुरुमुखः—ई माया = कल्पना, ई माया = बानी, ई माया = भक्ति, ज्ञान औ योग; ई माया = गुरुवा लोग, ई माया = स्त्री, ई माया = काया; रघु कहिये इन्द्री तिनका नाथ मन सो रघुनाथ। ता मनका स्वरूप माया-काया बौरी, सो खेलन चली अहेरा = सो अहेर खेलने चली, शिकार खेलने चली जीवनपर। ये अर्थ ॥१॥ सो चतुर चिकनियाँ = ज्ञानी-योगी सबनको कल्पनाने, बानीने, गुरुवा लोगोंने, स्त्रीने चुनि-चुनि मारे। कोई बचने नहीं पाया ई मायासे। ये अर्थ ॥ २ ॥

मौनी बीर दिगम्बर मारे। ध्यान धरन्ते योगी हो ॥३॥
जङ्गलमेंके जङ्गम मारे। माया किनहुँ न भोगी हो ॥४॥

कोई कहेगा कि देहकी विस्मृति की, फिर माया क्या करती है? तो बड़े-बड़े देहकी विस्मृति करनेवालोंको छला मायाने; सो सुनो—बड़े-बड़े मौनी = शिवादि, नारदादि, औ बड़े-बड़े बीर = अर्जुनादि, रामचन्द्रादि औ दिगम्बर = शुकादि, दत्तात्रेय आदि, ध्यानी-योगी गोरखसे ॥३॥ जङ्गलमें तपस्या करनेवाले विश्वामित्र, कर्दमसे; परन्तु मायाके वश होके जहँड़ाये। तिनको पारखकी प्राप्ति

मायाने होने न दी। औ मायाका भोग भी करने नहीं पाये। ये अर्थ ॥ ४ ॥

वेद पढ़न्ते वेदुवा मारे। पूजा करन्ते स्वामी हो ! ॥५॥
अर्थ विचारत पण्डित मारे। बाँधेउ सकल लगामी हो ॥६॥

ब्रह्मा ऐसे वेदुवा मारे औ बड़े--बड़े पूजा करनेवाले स्वामी मारे गये ॥५॥ औ बड़े-बड़े अर्थ विचारनेवाले पण्डित मारे गये। सबको संशयकी लगाम बाँधी। ये अर्थ ॥ ६ ॥

शृङ्गी ऋषि बन भीतर मारे। शिर ब्रह्मा का फोरी हो ॥७॥
नाथ मछन्दर चले पीठि दै। सिङ्घल हूँमें बोरी हो ॥८॥

शृङ्गीऋषि ऐसे देहकी विस्मृति करनेवाले, जो अरण्यमें रहते थे, कबहूँ मानुषजातिका दर्शन भी जिनको नहीं एक पिता छोड़के, तिनको माया बाँधिके दशरथके यज्ञमें ले आई। कल्पित साठ हजार वर्ष विश्वामित्रने लोहेके जैसे चनेके आधारपर तपस्या किया, तिनको कुत्तेके माफिक इन्द्रलोकको ले गई। औ दक्ष-प्रजापतिके यहाँ जब शिवका विवाह भया, तब ब्रह्माका शिर फोरवाया मायाने ॥७॥ मछन्दरनाथ योगी मायाको पीठ दे करके योग साधनेको चले थे। उनको भी स्त्री मायाने विषयजालमें पकड़कर सिंहलद्वीपमें ले जाकर विषय-भोगोंमें बोर दिया। तो देखो ! ये अनादि सिद्ध योगी क्या कायाकी विस्मृति न कर सके थे ? पर इनको भी मायाने भरमाया। अरे ! देखो—मायाकी कैसी फाँसी है ? एक भग, दूसरा बोलब, तीसरा देखब, चौथे चलब, पाँचवाँ आलिङ्गन देब। अब झीनी मायाकी फाँसी—एक भक्ति, दूसरा योग, तीसरा ज्ञान, चौथी उपासना, पाँचवाँ कर्म। मायाके रूप दो—एक गुरुवा, दूसरी स्त्री। तब ये दश विधि फाँससे जीव कैसे बचे ? भला ! कोई देहमें वृत्ति लय किया चाहै, तो झाँईरूप होके मारे। ये अर्थ ॥ ८ ॥

साकटके घर करता-धरता। हरि भक्ताँके चेरी हो ! ॥९॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो ! ज्यों आवै त्यों फेरी हो ! ॥१०॥१२॥

कोई साकट = शाक्त आदि प्रपञ्चीके यहाँ हर्त्ता-कर्त्ता औ हरिभक्त = ज्ञानी-योगीके यहाँ चेरी = लौंड़ी होके माया जीवको फँसावती है ॥९॥ ताते गुरु कहते हैं कि सदा पारखपर आरूढ़ रहना और कवनेउ भाव माया स्त्री आवे,

तो ताको परखके पाछे फिराना ! कबहूँ गाफिल न होना । ये अर्थ ॥१०॥१२॥

ककार = 'केवल ब्रह्म' ऐसी जीवमें कल्पना उठी, सो कहरामें जीव परा । सो कहरको हरनेके वास्ते गुरु कहरा बोले । कहरको हरे सो कहरा । ये अर्थ । अब आगे योगीजनका भ्रम बतावेंगे ।

॥ ❋ ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा-टीका सहित कहरा पञ्चम प्रकरणम् श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ५ ॥ ❋ ॥

॥ ❋ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❋ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

❋ बीजक मूल सद्ग्रन्थः ❋

॥❋॥ वसन्त षष्ठ प्रकरणम् प्रारम्भः ॥६॥❋॥

॥ ❋ ॥ दया गुरुकी—॥ ❋ ॥

॥ ❋ ॥ अथ लिख्यते वसन्त प्रथम अनुसार ॥ ❋ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❋ ॥ वसन्त ॥ १ ॥ ❋ ॥

जाके बारह मास बसन्त होय । ताके परमारथ बूझै बिरला कोय ॥१॥

टीका गुरुमुखः—वसन्त कहिये पुरानी छाल, पुराने पत्र वृक्षनके झड़ जाँय औ नवीन छाल, नवीन पत्र वृक्षनको प्राप्त होंय औ वृक्ष प्रफुल्लित होय औ वृक्षमें नवीनता पैदा होय, सो वसन्त-ऋतु । ऐसी वसन्त-ऋतु वृक्षनकी वर्षमें एकबार होती है औ जीवनकी वसन्त-ऋतु बारह मास होती है । बारह मास पुराने चोले छोड़ते हैं औ बारह मास नवीन चोले उत्पन्न होते हैं । औ बारहों

मास पुराने व्यवहार झरते हैं औ बारहों मास नवीन व्यवहार होते हैं। औ बारहों मास युवा अवस्था आयके काम-कमल प्रफुल्लित होते हैं। तो तरुण अवस्था सोई वसन्त। ये अर्थ। अब जीवका प्रपञ्चरूपी वसन्त तो हुआ। किसीने प्रपञ्च छोड़के परमार्थ अनुमान किया, सो वसन्त बूझो ॥ १ ॥

बरसै अगिन अखण्ड धार। हरियर भौ बन अठारह भार ॥२॥
पनिया आदर धरिन लोय! पौन गहे कस मलिन धोय ॥३॥

एक अनुमान खड़ा किया कि कोई एक ब्रह्म है। सो अखण्ड धार विरह बरसने लगा औ जीव परम तापमें तपा। औ 'हरियर भौ बन अठारह भार।' चार वर्ण, चार आश्रम, छौ दर्शन, चार सम्प्रदाय; ये अठारह भाववाले सबको हरिकी यारी भई, भगवत्-प्राप्तिकी इच्छा भई। ये अर्थ। ताही हरिके चरित्र अठारह पुराण भये ॥२॥ कोई एक गुसैंयाँ है—ऐसी बानी सबनने अन्तःकरणमें धारण किया। पनिया कहिये बानी। ये अर्थ। 'पौन गहे कसमलिन धोय।' कसमलिन = नाना विषय-वासना छोड़के पवन गहने लगे, योग-धारणा करने लगे, तब वसन्तऋतु आई ॥ ३ ॥

बिनु तरिवर फूले आकाश। शिव-विरञ्चि तहाँ लेई बास ॥४॥
सनकादिक भूले भँवर बोय। लख चौरासी जोइनि जोय ॥५॥

रेचक, पूरक, कुम्भक करके त्रिविधि पवन चलने लगा—शीतल, मन्द, सुगन्ध। शीतल = चन्द्र, मन्द = सूर्य, सुगन्ध = सुषुम्ना। तब उन्मुनी नाड़ीमें ध्यान लगा औ बिना तरुवर आकाशमें नाना रङ्गके फूल मालूम होने लगे। जा फुलवारीमें शिव-विरञ्चिका मन अटका ॥४॥ औ जा फूलनकी बासमें सनकादिक भूले। जैसे कमलकी बासमें भौंरा मस्त हुआ और वहीं रहा। तैसा सनकादिक उस सहस्रदलमें लुब्ध होके वहीं रहे, देहकी विस्मृति किये। तहाँ ये जीव भी ध्यान लगायके लुब्ध हुये। सन्मुखी मुद्रा सब इन्द्री मूँदके लगाई।

कवित्तः—फूले गुलाब टेसू, आमहू के मौर फूले। चम्पा चमेली बेली, नानाकार छाई है॥ कामराज झूलत सोई, होत लहर घटमें। कोकिला कलोल शब्द, बिबिधि बिधि सुनाई है॥ उठन लागे छवो राग, नानाकार रङ्ग जाग। किंगरी सितार बीन, श्रवणन में आई है॥ पूरण बसन्त आय, कन्तहू के दरश पाय। बारह मास याही भाय, योगिन जो गाई है॥ १ ॥

ये परमार्थ जीवनको दृढ़ाया, जामें बड़े-बड़े परमार्थी जीव फँसे। सो दोनों वसन्त जीवको भरमानेवाले, गाफिल करनेवाले जीवका धोखा—ये बूझके कोई बिरला न्यारा होयगा। अब माया क्या कहती है ? सो सुनो ! ॥ ५ ॥

जो तोहिं सतगुरु सत्त लखाव ! ताते न छूटे चरण भाव ! ॥६॥
अमर लोक फल लावै चाव। कहैं कबीर बूझै सो पाव ! ॥७॥१॥

मायामुखः—जो तेरेको सतगुरु=योगीजनने लखाया योगमुद्रा, सोई परमात्माका रूप सत्य है। ताके चरणारविन्दसे भाव न छूटै ॥६॥ जासे अमर-लोक फल तेरेको प्राप्त होय। अरे ! अमरलोकमें ब्रह्मरसके फल हैं। सुर, नर, मुनि जाकी चाह करते हैं, सो कोई योगीजन, सिद्धजन उनकी कृपासे बूझता है सोई पावता है ब्रह्मस्थिति। इस प्रकार गुरुवा लोग दृढ़ावते हैं और जीव दृढ़ होते हैं, ताते यथार्थ पारख इनको नहीं मिलती। ये अर्थ ॥ ७ ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ २ ॥ ❀ ॥

रसना पढ़ि लेहु श्री बसन्त ! बहुरि जाय परबेहु यमके फन्द ॥१॥

टीका मायामुखः—श्री वसन्त कहिये सच्चिदानन्द आत्मा; ताका अनुभव योगशास्त्रसे पढ़िके साध लेव, नहीं तो यमके फन्दामें फिर जायके परोगे। अरे ! सब इन्द्रिनको साधो, नहीं तो नर्कमें जावोगे ॥१॥ इस प्रकारसे भय बतायके श्री वसन्त=योग दृढ़ कर दिया। तब जीव योगी लोगोंकी शरणमें गये, तब योगी लोगोंने शाम्भवी मुद्राका उपदेश दिया।

मेरु डण्ड पर डङ्क दीन्ह। अष्ट कँवल परचारि लीन्ह ॥२॥
ब्रह्म अगिन कियो परकाश। अर्ध-ऊर्ध तहाँ बहै बतास ॥३॥

मेरुडण्ड कहिये नासिकाग्र, तहाँ बद्ध पद्मासनयुक्त दृष्टि लगाई। पहिले एकान्त जगहमें उत्तराभिमुख सवा हाथका आसन लगाया। ता ऊपर बैठके पहिले बायें पाँवपर सीधा पाँव और सीधे पाँवपर बायाँ पाँव रखना, पीछेसे हाथ लायके सीधे हाथसे सीधे पाँवका अंगूठा पकड़ना औ बायें हाथसे बायें पाँवका अंगूठा पकड़ना ! डाढ़ी कण्ठमें लगाना ! दृष्टि नाकपर लगाना ! लक्ष्य नाभिमें लगाना श्वासाके सङ्ग। या योगको अमनस्कयोग कहिये ! सो करते-करते अष्टकमल परचार द्वादशकमलमें लीन हुआ। ये अर्थ ॥२॥ 'ब्रह्म अगिन कियो परकाश।'

प्रथम श्रीहट क्रिया करके ब्रह्म-अग्नि प्रकाश किया । ता पाछे धारणा लगाया । सो अर्धसे ऊर्ध्व करके मनके सहित नाड़िनमेंसे पवन बहने लगा ॥ ३ ॥

नौ नारी परिमल सो गाँव । सखी पाँच तहाँ देखन धाव ॥४॥
अनहद बाजा रहल पूरि । तहाँ पुरुष बहत्तर खेलैं धूरि ॥५॥

नौ नाड़ी आयके सुषुम्नाके घरमें मिलीं । परिमलगाँव कहिये सुषुम्ना । औ सखी पाँच कहिये—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान; ये सम्पूर्ण नाभि-स्थानमें मिलके ब्रह्माण्डमें परब्रह्म-पुरुषको देखने चले ॥४॥ तब 'अनहद बाजा रहल पूरि ।' औ बहत्तर कोठासे वायु सब इकट्ठी होके ब्रह्माण्डमें चली, तब नाना प्रकारके अनहद नाद उठने लगा औ जीव ब्रह्मानन्दमें मग्न हुआ, तो आवागमनसे रहित हुआ ॥ ५ ॥

माया देखि कस रह्यो है भूलि ? जस बनस्पति रहि है फूलि ! ॥६॥
कहैं कबीर यह हरिके दास ! फगुवा माँगै बैकुण्ठ बास ! ॥७॥२॥

ऐसा योगसुख छोड़के संसारके जीव माया देखके कैसे भूल रहे हैं ? जैसे वनस्पति फूल रही है । मायाका उपदेश—अरे ! तुम विषय, घर, स्त्रीके स्वादमें भूले हो; परन्तु ये सब वनस्पतिके माफिक झर जायेंगे । फिर तुम बहुत दुःख पावोगे । तो तुम भोग छोड़के योग करो, तबहीं तुम्हारा कुशल होवेगा । नहीं तो मनुष्यजन्म पायके नरकमें जावोगे । अरे ! देखो—ये विषयभोगनमें कुशल होता तो गोपीचन्द, भरथरी सम्पूर्ण राज, स्त्री, विषय छोड़-छोड़ योग क्यों लेते ? ताते तुम माया देखके भूलो मत् औ वनस्पतिके ऐसे फूलो मत् । योग साधो ! ये अर्थ ॥६॥ जीवमुख—तब जीव सब संसारके त्राससे भगवान्‌की स्तुति करने लगे कि हे दासनके दास ! भक्तवत्सल भगवान् ! हम तेरी शरणमें आये । अब हमको शरणमें आनेका फल देना ! वैकुण्ठ बास = परमधामका बास देना । जहाँ चन्द्र नहीं, सूर्य नहीं, अग्नि नहीं औ जहाँ जायके जीव फिर संसारमें नहीं आता, सो वैकुण्ठ-बास देना । ये अर्थ ॥ ७ ॥ २ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ३ ॥ ❀ ॥

मैं आयों मेस्तर मिलन तोहिं ! ऋतु बसन्त पहिरावहु मोहिं ! ॥१॥

टीका जीवमुखः—जीव बोलता है योगी लोगोंकी शरणमें जाके, कि हे

मेस्तर ! हे गुरु ! मैं तेरे चरणारविन्दमें मिलनेके वास्ते आया । सो ऋतुवसन्त पहिराव मेरेको । ऐसी कृपा करो कि तुम्हारे चरणारविन्दका प्रेम लगे । औ योगमार्ग मेरेको उपदेश करो ! ऋतु-वसन्त कहिये योगमार्ग । ये अर्थ ॥ १ ॥

लम्बी पुरिया पाई छीन । सूत पुराना खूँटा तीन ॥२॥
सर लागै तेहि तिनसै साठ । कसनि बहत्तर लागु गाँठ ॥३॥

गुरुमुखः—लम्बी पुरिया कहिये लम्बी वासना—सात स्वर्ग, अपवर्ग आदिककी । सो वासना-बन्ध होके ये जीवकी पाई छीन भई । पाई कहिये पाँजनी, पाँजनी कहिये आवागमन, तामें जीव क्षीण हुआ । स्वर्ग आदिककी वासना करके नाना यज्ञादिक कर्म-आचरणादिक भक्ति करते हैं, फिर स्वर्गको जाते हैं औ पुण्य क्षीण हुआ तब संसारमें आते हैं । फिर नाना कर्म करके जाते-आते हैं । इस पाईमें जीव छीन = ज्ञानहीन होते हैं । और जीवके बीचमें एक लम्बी कल्पना बढ़ी कि हम ब्रह्ममें मिलें, तब गुरुवा लोगोंकी शरणमें गया । तब गुरुवा लोगोंने ब्रह्मसमाधि उपदेश किया कि बद्धपद्मासन लगायके श्वासामें सुरति पूर्वोक्त लगाना ! श्वासोच्छ्वास 'सोहं-हंसो' यह जाप करना ! तब शिष्य सब मिलके पाई करने लगे, पाँजनी करने लगे । पाँजनी = श्वासोच्छ्वास करते-करते पवन क्षीण भई, स्तब्ध भई । तब सूत पुराना = जीव, सो तीन खूटेमें अरुझा । रजोगुण त्रिकुटी-स्थान छोड़ा औ सतोगुण, तमोगुण, शुद्धसतोगुण—ये तीन खूटेमें अरुझा, लपटा । कण्ठसे नाभितक पाँजनी होने लगी । ये अर्थ । औ सूत पुराना कहिये जीव, सो तीन खूटेमें बन्धा—भक्ति, ज्ञान औ योग; तत्, त्वं, असि । सतोगुणके खूटेमें भक्त अरुझा, तमोगुणके खूटेमें योगी अरुझा, शुद्ध सतोगुणके खूटेमें ज्ञानी अरुझा । विज्ञानी तत्त्वमसिके खूटेमें अरुझा ॥२॥ 'सर लागै तेहि तिनसै साठ ।' तेही तीन खूटा—अहुटपीठ, गोल्हाट, श्रीहट; येही तीनसै खूटेका तीन सौ साठ शर लागे = तीन सौ साठ हाड़ लगे, ताते तीन खूटा खड़ा भया औ बहत्तर कसनी लगी । सो बहत्तर हजार नाड़ीमें सब हाड़ कसे गये औ बहत्तर गाँठी लगीं । तामें सब नाड़िनका मुख मुख्य एक गाँठी नाभिमें लगी ॥ ३ ॥

खुरखुर-खुरखुर चालै नारि । बैठि जोलाहिन पल्थी मारि ॥४॥
ऊपर नचनियाँ करत कोड़ । करिगहमा दुइ चलत गोड़ ॥५॥

तहाँसे इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना तीन नाड़ी भई। सो खुरखुर-खुरखुर तीनों नाड़ी चलने लगीं। तब 'बैठि जोलाहिन पल्थी मारि।' जोलाहिन कहिये सुषुम्ना; सो श्रीहट औ गोल्हाट दोनों खूँटा छोड़के अहुटपीठमें सुषुम्ना नाड़ी बैठ गई ॥४॥ तब ऊपर नचनियाँ करत कोड़।' ऊपर ब्रह्माण्डमें नचनियाँ = आँखि चढ़ी औ करिगह = नाभि, तामें 'सोहं' ये दोनों गोड़ चलने लगे ॥ ५ ॥

पाँच पचीसों दशहूँ द्वार। सखी पाँच तहाँ रची धमार ॥६॥
रङ्गि बिरङ्गी पहिरे चीर! हरिके चरण धै गावै कबीर! ॥७॥३॥

तब पाँच तत्त्व औ पचीस प्रकृति दशों द्वारसे पवन एकट्ठा हुआ। तब 'सखी पाँच तहाँ रची धमार।' पाँच सखी कहिये पाँच इन्द्री; सो कानमेंसे अनहद शब्द उठा, औ नाकमेंसे त्रिवेणी धारा बहीं, त्वचामेंसे आनन्द उठा, जिह्वामेंसे रस उठा, आँखमेंसे नाना रङ्ग–रूप उठा, औ सम्पूर्ण लय होके मन उन्मुन हुआ ॥६॥ सो नाना प्रकारके भेष जीव बनाने लगे, रङ्गी–विरङ्गी चीर पहिरने लगे। 'रङ्गी' नाम जीवका, सो विरङ्गी भये। कहूँ योगी भये, कहूँ जङ्गम भये, कहूँ संन्यासी भये, कहूँ सेवड़ा भये, कहूँ दरवेश भये, कहूँ ब्राह्मण भये। औ कोई भगवे वस्त्र पहिरने लगे, कोई काले कपड़े पहिरने लगे, कोई कन्था–गुदरी पहिरने लगे, कोई हरे कपड़े पहिरने लगे, कोई कम्मल–सोहले पहिरने लगे। औ हरि कहिये गुरुवा लोग, सो तिनके चरण धरके 'कहैं कबीर'। कबीर कहिये जीवको, सो गुरुवा लोगोंके चरण धरके नाना भेष धारण करके भक्ति, ज्ञान, योग, कर्म, उपासना एक-को-एक कहने लगे। ये अर्थ ॥७॥३॥

विरह अर्थः—अब जीव जा प्रकारसे झीनी मायामें अरुझे, सो परखाया गुरुने। अब मोटी मायाको परखाते हैं, सो सुनोः—

'मैं आयों मेस्तर मिलन तोहिं।' ये जीव कामके वश होके उन्मत्त भये, तब स्त्रीकी चाह की। फिर स्त्रीके नगीच जायके क्या कहते हैं कि हे मेस्तर! हे प्रिये! मैं तेरेसे मिलनेके वास्ते, भोग करनेके वास्ते आया। अब ऋतुवसन्त कहिये जवानीऋतु, सो मेरेको प्रीतिसे सब विलासी वचन औ तेरा विलास पहरावनी दे, जाते मेरा मन प्रसन्न होय ॥१॥ तब लम्बी पुरिया = विषय-वासना बढ़ी औ नाना प्रकार कामकी लहरी रम्भन, चुम्बन, आसनादि करने लगे। नारी-विषयमें जीव तल्लीन भये, चौरासीके तानामें अरुझे, ताते पाई करने लगे।

आवागमनमें परे औ क्षीण भये । अपना ऐश्वर्य, तेज, पराक्रम औ सत्ता सम्पूर्ण क्षीण हुए । अरे ! देखो—येही जीव, जाने इच्छामात्रसे सम्पूर्ण सृष्टि रचना की, ताको खाने-पीनेकी, कपड़ेकी विपत्ति होती है । ऐसा ये स्त्रीके सङ्गमें क्षीण हुआ औ पाई करने लगा, मैथुन करने लगा, आवागमनमें परा । ये अर्थ । 'सूत पुराना खूँटा तीन ।' सो देखो ! ये जीव पुरान पुरुष, सो तीन खूटेमें बन्धा, पशुवत् स्त्री, पुत्र, धन—ये तीन खूटेमें अरुझा । ताहीते बार-बार देह धरता है औ बार-बार स्त्रीके फन्देमें रहता है, चाहे कोई योनिमें जाय । अरे ! जा स्त्रीके फन्देमें तू परा है औ महानर्क गर्भवासका दुःख सहता है, सो स्त्री तो कौन अति उत्तम है ? तू बूझ ॥२॥ 'सर लागै तेहि तीनसै साठ ।' तीन सौ साठ हाड़ोंकी झोपड़ी औ बहत्तर हजार बन्दसे कसी गई । जो बहत्तर गाँठी परी, सोई बहत्तर कोठे ॥३॥

औ बन्द = नाड़ी, ताके भीतर खुरखुर-खुरखुर पवन चलता है । औ हाड़नपर रक्त-मांससे लीपी है । ता ऊपर चामसे मढ़ी है । ऊपर घाससे रोवाँ भुरभुर करते हैं । भीतर लार, मूत, गू, पित्त, कफ भरे हैं । अरे ! नारी है ? कि डाकिनी ! कि जीवका चिजुका ! कि पारधी ! कि फाँसी ! कि खुशीका कैदखाना ! तू कौन अति उत्तम वस्तु देखके रीझा ! सो विचारके देख भाई ! ॥४॥ अरे ! पलथी मारके बैठती है, ऊपर आँखिनकी सैन चलावती है, तरे ठमक पाँव डारती है, मनसे सङ्कल्प-विकल्प करती है, भीतर एक पुरुषको वश की है, दूसरेपर नजर रखती है । एकसे बातें करती है, दूसरेपर चित्त चलावती है । एककी नारी कहावती है, दूसरा अच्छा नजरमें आया तो उसे धावती है । मैथुन-द्रव्य दोऊ चाहती है ॥५॥ परन्तु पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृति सहित ये नारी-बलाय जीवनको फाँसने खड़ी भई । अरे ! कामभक्षिणी, ज्ञानभक्षिणी, ध्यानभक्षिणी या नारीका नाम है । तू हुशियार रहना ! नहीं तो दो मुखकी बाघिन तेरेको खा लेगी । ऊपरके मुँहसे रिझायके तरेके मुखसे खा लेगी । अरे ! दशहूँ द्वारमें नर्क भरा है; परन्तु विषयिन बावरेको अमृत ऐसा मालूम पड़ता है । तामें एक महाधार बड़ा बाँका है, तहाँ मूत्र बार-बार बहता है । औ ता धारमें जो गया सो फिर लौटा नहीं । बड़े-बड़े वा धारमें गर्द भये । बाँचे सोई सूर । और जहाँ पाँचों इन्द्री धमार रची है । जा धमारमें ज्ञानिनका ज्ञान औ ध्यानिनका ध्यान औ योगिनका योग भूल जाता है ।

कवित्तः—नेत्रनके कटाक्ष सो तो, तीर ऐसे लागत आये । बेसरकी मोड़ जैसी, नागिनि-सि धाई है ॥ काननके झोंक सो तो, डारत धोख जीवको । त्वचा की शोभा तड़ित, आँखिन पर छाई है ॥ जीभनकी बातें, करन चाहत जीव घातें । देखी सुर नर मुनि माते, सो जीवनको भाई है ॥ भाँति भाँति वस्त्र धारे, काहु टरत नाहिं टारे । सकल जीव जाहि मारे, पूर्ण घटा उरमाई है ॥१॥६॥

'हरिके चरण धै गावै कबीर ।' हरि कहिये स्त्रीको, जाने सबनका मन हर लिया । जीव कामवश होके ताहीके चरणनमें परे औ नाना प्रकारके श्रृङ्गार, वही स्त्रीकी बड़ाई गाने लगे । परन्तु ये श्रृङ्गार सम्पूर्ण जीवनको बन्धन है । यथार्थ परखके छोड़ो ! ये अभिप्राय ॥ ६ ॥ ३ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ४ ॥ ❀ ॥

बुढ़िया हँसि बोलि मैं नितहिं बार ! मोसे तरुनि कहो कौनि नारि? ॥१॥

टीका मायामुखः— बुढ़िया कहिये मायाको; सो माया दो प्रकार की— झीनी औ मोटी । झीनी माया गुरुवा औ वेद, औ मोटी माया स्त्री । ताका हास-वचन गुरु बताते हैं । यह तृष्णा देखो–'नित ही बार ।' जो अनेकन देह जीवने धारण किया औ अनेक बुढ़ायके छूट गई; परन्तु जब--जब चोला पैदा हुआ, तब-तब तृष्णा नित ही बार । देह बुढ़ाय जाती है। तृष्णा नहीं बुढ़ाती। ताते तृष्णा कहती है कि 'मोसे तरुनि कहु कौनि नारि ?' जो सम्पूर्ण स्त्रियाँ जवानसे बूढ़ी होती हैं, कहती हैं कि मैं नहीं बुढ़ाती । ये अर्थ । अरे भाई ! गुरुवा लोग तृष्णाके मारे जीवनको बाँधते हैं कि जामें हमारी प्रतिष्ठा होय औ हमारा नाम बढ़े, पन्थ चले, चेला-चाटी बहुत होयँ, द्रव्य बहुत मिले । ताके हेत मारे-मारे फिरते हैं औ नाना बानी, विद्या, मन्त्र, तन्त्र दृढ़ावते हैं । देह बुढ़ाय गई, पर तृष्णा तरुण ललकारी मारती है । तैसे स्त्री तो बुढ़ाय जाती है औ इन्द्री भी थक जाती हैं, पर तृष्णा विषयकी ललकारी मारती है । ये अर्थ ॥१॥

दाँत गये मोरे पान खात । केश गये मोरे गङ्गा नहात ॥२॥
नैन गये मोरे कजरा देत । बैंस गये पर पुरुष लेत ॥३॥

'दाँत गये मोरे पान खात ।' अब गुरुवा लोग बोलते हैं कि हम नित्य ब्रह्म हैं औ जगत् सब अनित्य है । हम पुराण पुरुष, औ हमसे तरुण ज्ञानी जगको

तारनेवाले और कौन भक्त हैं ? ये अर्थ । अरे ! पान कहिये वेद; सो वेद पढ़ते-पढ़ते हमारे दाँत गये = सङ्कल्प सब छूट गये । और 'केश' कहिये पाप; सो गङ्गादिक तीर्थ नहाते-नहाते सब पाप गये ॥२॥ औ नयन गये मोरे मुद्रा करते-करते औ बैंस = जवानीमें साधन-समाधि साधी । सो परपुरुष कहिये जो पराके पार है, तामें लीन होके निर्विकल्प दशामें बैंस गई । ये अर्थ ॥ ३ ॥

जान पुरुषवा मोर अहार । अनजानेका करौं सिङ्गार ॥४॥
कहहिं कबीर बुढ़िया आनन्द गाय ! पूत-भतारहिं बैठी खाय ॥५॥४॥

जिन्ह सत्पुरुष परब्रह्मको अपरोक्ष करके जाना, सो पुरुष मेरा स्वरूप है औ अनजाने जो जीव हैं, तिनको ब्रह्म-अनुभव अपरोक्ष जनानेको नाना प्रकारके भेष शृङ्गार करते हैं । ये अर्थ ॥४॥ गुरुमुखः—कहहिं कबीर बुढ़िया = गुरुवा लोग सच्चिदानन्दको गाते हैं औ नाना भेष धारण करते हैं, पूत-भ्रतारको बैठे खाते हैं । भ्रतार कहिये ब्रह्म, पूत कहिये जीव । जो जीव था सो ब्रह्म हुआ, और ब्रह्म था सो जीव हुआ । तब पूत-भ्रतार कहिये जीवको; सो गुरुवा लोग जीवको बैठे खाते हैं, भरमाते हैं । ये अर्थ ॥ ५ ॥ ४ ॥

विरह अर्थः—ये माया स्त्री, जाने ब्रह्मा-विष्णु आदि सबको पैदा किया, ऐसी बुढ़िया; सो बोलती है कि मैं नितहि बार । जिस स्त्रीसे पूछो, सो कहती है कि मोसे तरुणी और कोई नारी नहीं ॥१॥ 'दाँत गये मोरे पान खात ।' पान कहिये जवानी, दाँत कहिये इन्द्री । सो इन्द्री शान्त हो गई जवानी खाते-खाते। औ केश कहिये काम; सो काम गये ब्रह्माण्डमें—गङ्गा नहात = शृङ्गार करत ॥२॥ अरे ! आँखसे देखनेकी शक्ति तो मेरे काजल लगाते रहनेसे ही चली गई और जवानीमें इन्द्रियोंकी शक्ति तो परपुरुषोंसे सङ्ग करते-करते चली गई, नहीं तो मैं आजलों भी तरुणी ही हूँ ॥३॥ अरे ! जो हमारे शृङ्गार-रसको जानेगा सो तो हमारे आहारमें आया, वश भया; परन्तु हमारे कामकी तृप्ति भई नहीं, ताते अजानपुरुष = अज्ञानी जीव, तिनके वास्ते शृङ्गार करते हैं अपने कामकी तृप्ति करनेके वास्ते । जान पुरुषवा कहिये ब्रह्मादिक मुनि, तिनका तो आहार किया और अब संसारके जीवनकी मति हरनेके वास्ते स्त्रीरूप होके पैदा भई ॥४॥ सो गुरु कहते हैं कि माया विषयानन्द शृङ्गार गाती है औ पूत-भ्रतार जीवको खाती है, भरमाती है । ये अर्थ ॥ ५ ॥ ४ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ५ ॥ ❀ ॥

तुम बुझ-बुझ पण्डित ! कौनि नारि ? काहु न ब्याहलि है कुमारि !॥१॥
सब देवन मिलि हरि हि दीन्ह । चारिउ युग हरि सङ्ग लीन्ह ॥२॥

टीका गुरुमुखः—हे पण्डित ! बुद्धिमान ! तुम बूझो कि यह कौन नारी है ? जाने काहूको ब्याहा नहीं; ताते अनेक पुरुषनको भोंदिखाया, पर अभी कुमारी है । ये अर्थ ॥१॥ सब देवन मिलके विष्णु ही दीन्ह । तहाँ लक्ष्मी होके बैठी । चारिउ युग विष्णुने सङ्ग लिया ॥ २ ॥

प्रथम पदुमिनी रूप आहि । है साँपिनि जग खेदि खाय ॥३॥

सो प्रथम पद्मिनीरूप नाम लक्ष्मी होके विष्णुको छली । फिर नागिनी = स्त्रीरूप होके सब जगत्को चौरासीमें खेदी औ जगको खाने लगी । चार रूप धारण किया मायाने—पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी, शङ्खिनी । औ दो रूप मिलित हैं—नागिनी औ डङ्किनी । जामें पद्मिनी औ चित्रिणी दो रूप मिलित लक्षण होय, सोई नागिनी । औ हस्तिनी औ शङ्खिनी, दोनोंके रूप मिलित लक्षण जामें होय, सोई डङ्किनी । इस प्रकारसे छै रूप मायाने धारण किया । तो ताका विस्तार कोकशास्त्रमें बहुत कहनेवालेने कहा है । यहाँ कछु विस्तार किया नहीं कि उसमें कुछ हासिल नहीं । नाहक टीका क्यों बढ़ाना ? ॥ ३ ॥

'ई' बर जोवत 'ऊ' बर नाहिं । अति रे तेज त्रिय रैनि ताहि ॥४॥
कहहिं कबीर ये जग पियारि ! अपने बलकवहिं रहल मारि ॥५॥५॥

स्त्री छै प्रकारकी । इनके पुरुष छै—पद्मिनीका पुरुष शशा, चित्रिणीका पुरुष मृगा, हस्तिनीका पुरुष बैल, शङ्खिनीका पुरुष गदहा, नागिनीका पुरुष तुरङ्ग, डङ्किनीका पुरुष भैंसा । इस प्रकारसे छै स्त्री औ छै पुरुष । सो अपने-अपने पुरुषोंको ढूँढ़ती हैं स्त्री । जा स्त्रीका पुरुष ताको मिला तो काम पूरा भया। अगर वियोग मिला तो 'अतिरे तेज त्रिय रैनि ताहि ।' काम त्रियाको अति उग्र होता है । फिर वो स्त्रीका मन खाविन्दपर लगता नहीं । 'ई बर जोवत ऊ बर नाहिं।' ई अपना पुरुष ढूँढ़ती है, वो तो इसका पुरुष नहीं । तब महातेज होके त्रिया व्यभिचार करती है, काममें उन्मत्त हो जाती है । जबलग उसका पुरुष न मिले, तबलग उसका काम नहीं शान्त होता ॥४॥ सो गुरु कहते हैं कि देखो । 'ये जग

पियारी !' नारी, जो अपने बालक सब पुरुष, तिनको मार रही है। अरे! इस जीवने दो रूप धारण किया—एक नारी, एक पुरुष। औ दोऊ विधि मायामें अरुझा। माया कहिये काया। सो हे सन्तो! बुद्धिमान ! तुम परखके मत् अरुझो। ये अभिप्राय ॥ ५ ॥

विरह अर्थः—'तुम बुझ-बुझ पण्डित ! कौनि नारि ?' हे बुद्धिमान ! तुम बूझो–ये कौन बानी है ? जाने काहूको ब्याहा नहीं। जैसी पैदा हुई, तैसी कुँवारी संसारमें बनी है। अरे ! इस बानीने बहुतेक जीवनकी लगन धोखेसे लगाई, पर वैसी ही बनी है वेदबानी, कल्पित बानी। ये अर्थ ॥१॥ सब ब्रह्मादिकन, देवतनने विष्णुको दिया वेद, सो चारों युगपर्यन्त विष्णुने वेदका विचार किया ॥२॥ प्रथम–भक्तिरूपी बानी पद्मिनी, दूसरी योगरूपी, तीसरी ज्ञानरूपी—ये तीनों देवनने संसारमें दृढ़ाई। भक्तिरूपी विष्णुने दृढ़ाई, योगरूपी महादेवने दृढ़ाई, ज्ञानरूपी ब्रह्माने दृढ़ाई। इस प्रकारसे ये बानी सर्पिणी होके सब जगत्को भ्रममें खेदने लगी औ भरमाने लगी ॥३॥ ता बानीका आसरा करके संसारके जीव सब 'कोई एक पुरुष है' ऐसा अनुमान करते हैं। पर ऊ बर नाहीं = ओ पुरुष कछु नहीं औ अति तेज विरह तो ये जीवको हुआ। ताते दूसरा पुरुष अनुमान किये औ उसके विरहमें जरने लगे। महाभ्रम अँधियारी छाई जीवनपर ॥४॥ ऐसे भक्त लोग संसारमें बड़े प्यारे श्रेष्ठ कहलाये। इनकी शिष्य-शाखा संसारमें होने लगी। सो ये आप ही भ्रममें परे औ शिष्य–शाखाको भी भरमाये। ये अर्थ ॥ ५ ॥ ५ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ६ ॥ ❀ ॥

माई मोर मनुसा अति रे सुजान ! धन्धा कुटि-कुटि करत बिहान ॥१॥

टीका मायामुखः—मनसा कहिये मन या मनसा कहिये जो कुछ माननेमें आवे; सो जो इष्टदेव या ब्रह्म जिसके माननेमें आया, सोई तिसका खाविन्द भया। आप उसका भक्त नारीरूप बनके प्रशंसा करने लगा। ये अर्थ। 'धन्धा कुटि–कुटि करत बिहान।' जैसा कोई धान कूटि-कूटिके शुद्ध चावल निकाल लेता है, तैसा भगवान् अपने भक्तनको द्ररिद्रताई औ नाना क्लेशनके मूसलसे कूटि-कूटि शुद्ध ज्ञानरूप, आपरूप कर लेता है। क्योंकि अनेक जन्म नित्य-नैमित्तिक कर्म करके ईश्वरको अर्पण करता है जीव। सो उस जीवका ईश्वर ऋणी रहता

है। सो उस जीवका ऋण उतारनेके वास्ते गुरुरूप होके अवतार लेता है औ जीवको ज्ञान बताता है। औ कूटि-कूटि योग-साधनामें जीवका अज्ञान-भूसा उड़ायके शुद्ध ज्ञानरूपी करता है। ताते बड़े सुजान ! ये प्रशंसा ॥ १ ॥

बड़ी भोर उठि आँगन बाढु। बड़ो खाँच ले गोबर काढु ॥२॥
बासी भात मनुसे लिहल खाय। बड़ो घैल लिये पानीको जाय ॥३॥

बड़े खाँच कहिये ब्रह्मरन्ध्र भ्रमरगुफाको लेके समाधि करी औ गोबर कहिये विषय—सो सब काढ़ि डारा, तब बड़ा ज्ञान उठा सच्चिदानन्द अनुभव। ताते आँगन बाढु = सम्पूर्ण कर्म झारके उड़ाय दिया। शम-दम सम्पन्न हुए। ये अर्थ ॥२॥ 'बासी भात मनुसे लिहल खाय।' बासी भात कहिये जगत्। सो जगत् सब खायके, लय करके आपही ब्रह्म हुए। ये अभिप्राय। 'बड़ो घैल लिये पानीको जाय।' बड़ो घैल कहिये ब्रह्माण्ड। सो सब ब्रह्माण्ड अपने पेटमें लिये। ऐसे ईश्वर जीवका ऋण फेरनेके वास्ते गुरुरूप होके चौरासीहीन जीवनको कृतार्थ किया औ दुष्टनको नाश करके फिर क्षीरसागरमें जायके निवास किया। पानीको जाय। ये अर्थ ॥ ३ ॥

अपने सैयाँकी मैं बाँधूँगी पाट। ले बेचूँगी हाटो-हाट ॥४॥
कहहिं कबीर ये हरिके काज! जोइयाके ढिग रहि कौनि लाज ॥५॥६॥

जीवमुखः—जीव बोलता है कि अपना सैयाँ = ईश्वर; ताको अपनी प्रेम-भक्तिके जोरसे बाँधूँगी औ उसकी कीर्ति, नाम सब बाजारमें, हाटमें, गुरु लोग, साधु लोगोंकी सङ्गतिमें बेचूँगी या कोई शिष्य गाहक होयगा, उसे देऊँगी। ये अर्थ ॥४॥ गुरुमुखः—कहहिं कबीर ये हरिके काज। जोइयाके ढिग रहि कौनि लाज ! ॥' गुरु कहते हैं कि हे सन्तो ! देखो—ये गुरुवा लोगोंकी बातें कि जो अपना खाविन्द बनाया, ताको प्रेमसे अनुमान बाँधा औ फिर हाटोहाट कथा-कीर्तन, पोथी-पुराण बेंचते फिरते हैं। अब इनकी भक्तिकी कौन लाज रही ? ये अर्थ ॥ ५ ॥ ६ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ७ ॥ ❀ ॥

घरहिमें बाबुल बाढ़लि रारि ! उठि-उठि लागलि चपल नारि ! ॥१॥
एक बड़ी जाके पाँच हाथ। पाँचोंके पचीस साथ ॥२॥

टीका गुरुमुखः—हे बाबू जीव ! तुम्हारे घटहीमें रार बढ़ी, जो हमेशा उठ-उठके चपल माया तेरे पीछे लगी है। माया कहिये, बानी कहिये, कल्पना कहिये, गुरुवा कहिये, आशा कहिये, तृष्णा कहिये, लोभ कहिये, मोह कहिये, काया कहिये—येतिक प्रकारकी माया, और याके रूप अनेक हैं। सो महा परम चपल तेरे पीछे लगती है ॥१॥ इनमें मुख्य सबसे बड़ी एक काया, जाके पाँच हाथ = पाँच तत्त्व और 'पाँचोंके पचीस साथ *।' आकाश पञ्चक—अन्तःकरण, चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार। औ वायुपञ्चक—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। अग्निपञ्चक—आँखि, कान, नाक, जीभ, त्वचा। जलपञ्चक-शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। पृथ्वीपञ्चक—हाथ, पाँव, मुख, गुदा, लिङ्ग। ये पाँचोंके पचीस साथ ॥ २ ॥

पचीस बतावैं और-और। और बतावैं कइएक ठौर ॥३॥
अन्तर मध्ये अन्त लेइ। झकझोरि-झोरा जीवहि देइ ॥४॥

अब इनके पचीस विषय—अन्तःकरणका विषय निर्विकल्प, मनका विषय सङ्कल्प-विकल्प, चित्तका विषय अनुसन्धान, बुद्धिका विषय निश्चय, अहङ्कारका विषय करतूत; प्राणका विषय चलब, अपानका विषय छोड़ब, समानका विषय बैठब, उदानका विषय उठब, व्यानका विषय पौढ़ब, कानका विषय शब्द सुनब, आँखिका विषय देखब, नाकका विषय सूँघब, जीभका विषय चखब, त्वचाका विषय स्पर्श करब; ये अग्निपञ्चक। अब जलपञ्चक—शब्दका विषय राग, सुर, अर्थ; स्पर्शका विषय मृदुत्त्व, शीतलत्त्व, उष्णत्त्व; रूपका विषय सुन्दरत्त्व, रसका विषय स्वाद; गन्धका विषय सुवास, सुप्रसन्नत्त्व; और पृथ्वीपञ्चक—हाथका विषय लेन-देन करब, पाँवका विषय चलब-फिरब, मुखका विषय बोलब, गुदाका विषय मलत्याग करब, लिङ्गका विषय मूत्रत्याग (मैथुन) करब। ये 'पचीस बतावैं और-

* पाँच हाथ और पचीस साथके रूपमें पाँच तत्त्व, पचीस प्रकृतियाँ

हाथों के नाम	पचीस साथ				
आकाश पञ्चक—	अन्तःकरण	चित्त	अहङ्कार	मन	बुद्धि
वायु पञ्चक—	व्यान	समान	प्राण	उदान	अपान
अग्नि पञ्चक—	कान	त्वचा	नेत्र	जीभ	नासिका
जल पञ्चक—	शब्द	स्पर्श	रूप	रस	गन्ध
पृथ्वी पञ्चक—	मुख	हाथ	पाँव	लिङ्ग	गुदा

और ।' ये ही पचीस विषयमें जीव बन्ध गया । ताते ये विषय और कईएक ठौर कहिये चौरासी लक्ष योनि जीवको बताते हैं ॥३॥ ये विषय कैसे हैं ? कि अन्तर-में गड़ जाते हैं, फिर अन्तमें जीवको अपनेमें मिलायके चौरासीमें डारते हैं । औ 'झकझोरि-झोरा जीवहि देइ ।' ये विषय आवागमनका झोरा = धोखा जीवको देते हैं । ये अर्थ ॥ ४ ॥

आपन-आपन चाहैं भोग । कहु कैसे कुशल परी है योग ? ॥५॥
विवेक-विचार न करे कोय । सब खलक तमाशा देखे लोय ॥६॥

ये सब पचीस कला 'आपन-आपन चाहैं भोग ।' तब कैसे करके जीव कल्याणपदके योग्य होयगा ? ॥५॥ इन बन्धनका विवेक-विचार कोई करता नहीं कि सत्य क्या है ? औ झूठा क्या है ? सब खलक बानी-विषयनका तमाशा देखता है, अरुझ रहा है । ये अर्थ ॥ ६ ॥

मुख फारि हँसे राव-रङ्क । ताते धरे न पावै एकौ अङ्क ॥७॥
नियरे न खोजै बतावै दूरि । चहुँदिश बागुलि रहली पूरि ॥८॥

मुख फारिके सब ईश्वरादिक (ज्ञानी) जीव एक-का-एक उपहास करते हैं, ताते एकौ जीव स्थिति धरने न पाया । एकौ अङ्क जीवका निर्णय न भया ॥७॥ नियरे = सत्सङ्गमें जीव खोजते नहीं । औ दूरि = योग-उपासनावाले बताते हैं, सोई बानी चहुँदिश पूर हो रही है ॥ ८ ॥

लच्छ अहेरी एक जीव ! ताते पुकारै पीव ! पीव ! ॥९॥
अबकी बार जो होय चुकाव । कहहिं कबीर ताकी पूरी दाव ॥१०॥७॥

लक्ष अहेरी = गुरुवा लोग फाँदनेवाले; याने लाख तरहके फाँसे बनाये एक जीवको फाँसनेके वास्ते । ताते जीव सब पीव ! पीव ! पुकार रहे हैं । ये अर्थ ॥९॥ अबकी बार जो सब फन्दनको परख लेय औ चुकाव = छुटकाव हो जाय, पारखस्थिति हो जाय, तो गुरु कहते हैं कि ताहि नरको पूरी दाव । ये अर्थ ॥१०॥७

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ८ ॥ ❀ ॥

कर पल्लव केवल खेले नारि ! पण्डित होय सो लेइ बिचारि ॥१॥
कपरा न पहिरे रहै उघारि । निर्जिवसे धनि अति रे पियारि ॥२॥

टीका गुरुमुखः—केवल नारी कहिये केवल आत्मा परमहंस; सो मूकदशा

धारण करके करपल्लव खेलते हैं। कछु बात कहनी भई तो अङ्गुरीके इशारासे बताते हैं कि जो कोई चतुर पण्डित होवेंगे सो विचार लेवेंगे ॥१॥ कपड़ा पहिरते नहीं, नङ्गे फिरते हैं; औ निर्जीव नाथ निरञ्जन, तामें अति प्रिय मिल गये। पतिव्रता जैसे अपना खाविन्द मरा तो प्रीतिके मारे अपनी भी देह छोड़ती है। तद्वत् ये जीवनने सुना कि अपना खाविन्द बेरूप है; तो अपनी भी देहकी विस्मृति करना—ऐसा निश्चय करके बाल, उन्मत्त, पिशाचवत् मूक होके घूमने लगे जड़ होनेके लिये। ये अर्थ ॥ २ ॥

उलटी-पलटी बाजु तार। काहू मारै काहु उबार ॥३॥
कहैं कबीर दासनके दास ! काहू सुख दै काहु निरास ! ॥४॥८॥

गुरु कहते हैं कि उलटि, पलटि ये केवल मायाने अनेक अवतार धारण किये और अपना हुकुम सब जीवनपर चलाया। जाने हुकुम नहीं माना रावण-दुर्योधन आदि, तिनको मारा; और जाने हुकुम माना पाण्डव-विभीषण आदिक, तिनको बचाया ॥३॥ मायामुखः—ताते गुरुवा लोग बोलते हैं कि भगवान् दासनका दासत्त्व करते हैं औ अपने भक्तनको सुख देते हैं औ अभक्तनको निराश करते हैं, अर्थात् मारिके विनाश करते हैं। ये अभिप्राय ॥ ४ ॥ ८ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ९ ॥ ❀ ॥

ऐसो दुर्लभ जात शरीर ! राम नाम भजु लागू तीर ! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—ऐसो दुर्लभ मानुषशरीर नाहकमें जाता है। सो हे जीव! तुम सम्पूर्ण धोखेको परखो औ राम कहिये सगुण औ नाम कहिये निर्गुण, सो दोनों मिथ्या धोखा यथार्थ परखके छोड़ो औ पारखिनके सङ्गमें लगो ! जाते पारखस्थिति प्राप्त होय। ये अर्थ ॥ १ ॥

गये बेनु बलि गये कंश। दुर्योधनको बूड़ो वंश ॥२॥
पृथु गये पृथिवीके राव। त्रिविक्रम गये रहे न काव ॥३॥

अरे ! बड़े-बड़े सामर्थ्यवान् भये, सो सब मरि गये, मानुषजन्म धोखेमें खोये। राजा बेनु, राजा बली औ राजा कंस, राजा दुर्योधनका वंश बूड़ा, पर काहू जीवने विचार किया नहीं। परपञ्चमें उन्मत्त होके मरे ॥२॥ राजा पृथु सरीखे, जिन्ह सम्पूर्ण भूमि वश किया; परन्तु जीवकी स्थिति नहीं की। औ

त्रिविक्रम अवतार हुआ, बलीको छला, सम्पूर्ण पृथिवी तीन पैर किया और बलिहरण करके इन्द्रको राज दिया। पर अपनी स्थिति न किया तो पुरुषार्थ सब मिथ्या। तो ऐसे-ऐसे बड़े-बड़े मर गये। काहूकी स्थिति भई नहीं। ये अर्थ ॥३॥

छौ चकवे मण्डलीके झारि। अजहूँ हो नर! देखु बिचारि ॥४॥
हनुमन्त कश्यप जनक बालि। ई सब छेंकल यमके द्वारि ॥५॥

अरे! छौ चक्रवर्ती बड़े समर्थ भये, पर सब सामर्थ्य धूलमें मिली एक पारख बिना। हे नर! तू अब तो भी विचार करके देख कि तेरा स्वरूप क्या है? ॥४॥ अरे! हनुमान, कश्यप, जनक, बालि; ये सब गर्भवासमें छेके गये एक पारख बिना। तू देख! सबकी बानी औ वेदबानी विदित है। जो प्रथम भास हुआ हंसको, सोई भासमें सब जीव अरुझे। स्थिति काहूकी भी भई नहीं। ये अर्थ ॥ ५ ॥

गोपीचन्द भल कीन्ह योग। जस रावण मार्‍यो करत भोग ॥६॥
ऐसी जात देखि नर! सबहिं जान। कहहिं कबीर भजु रामनाम ॥७॥९॥

गोपीचन्दने राज छोड़के योगसाधन बड़ा किया औ ब्रह्ममें मिला। सो ब्रह्मको वेदान्तशास्त्र बोलता है कि सम्पूर्ण जगत् ब्रह्मरूपी है। तब ये योग–वैराग्य किया तो भी ब्रह्म, और नहीं किया तो भी ब्रह्म। तो हकनाहक राज छोड़ा। भला! जो राज न छोड़ता औ योग न करता तो जगत्‌रूप ब्रह्म था कि नहीं? औ रावण लङ्काको भोग करता था। सो कल्पना उठी कि रामके हाथसे मरना औ मोक्ष होना। ताते भोग करते-करते मारा गया। औ राम होके जगमें मरा, नाना प्रकारके सुख-दुःख भोगने लगा, धोखेमें मारा गया ॥६॥ याहीसे गुरु कहते हैं कि हे नर! ये सबहींको बिना पारख गर्भवासमें जाते देखा। सो तू निर्गुण–सगुण दोनों डार दे औ पारखपर ठहर। ये अर्थ ॥ ७ ॥ ९ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ १० ॥ ❀ ॥

सबहीं मदमाते कोई न जाग। सङ्गहि चोर घर मूसन लाग! ॥१॥

टीका गुरुमुखः—मद कहिये जामें जीव मस्त हो जाय औ कछु सूझे नहीं। जासे मस्त होय, तामें आसक्ति बनी रहै औ गाफिली होय, सोई मद। ये अर्थ। सब संसार आठ मदमें माता, गाफिल हुआ। कोई जागा नहीं, चेता नहीं। औ

चोर = मन जीवके सङ्ग लगा है, सो जीवका घर—साँच, विचार, धीरता, दया, शील आदि सम्पूर्ण लूटता है। ये अर्थ ॥ १ ॥

योगी माते योग ध्यान। पण्डित माते पढ़ि पुरान ॥२॥
तपसी माते तपके भेव। संन्यासी माते करि हँमेव ॥३॥

अब कौन-कौन मदमें कौन-कौन किस तरहसे माते ? सो सुनोः—पहिले योगमद—उन्मुनी आदि ध्यान करते-करते औ कल्पक्रिया, आसन, समाधि करते-करते सिद्ध हुए। महादेव, गोरख आदि सम्पूर्ण योग ध्यानमें माते, गाफिल हुए। कछु पारखपदकी प्राप्ति हुई नहीं। इनकी बानी प्रत्यक्ष है। देखो—जो पिण्डाण्डनमेंसे जीव ब्रह्माण्डमें योगधारणा करके ले जाना औ ब्रह्ममें मिल रहना। तो ब्रह्माण्ड फूट जायगा औ आनन्द विनाश हो जायगा। जब चोला छूटा, तब चोलेका कर्त्तव्य योग-समाधि सब नाश हो जायगी। फिर ये हंस गर्भवासमें समायगा। ताते ये भी मिथ्या गाफिली। ये अर्थ। विद्यामद—जो ब्यास, शुक आदि पुराण पढ़के माते कि हम ईश्वरकी कीर्ति गाये। परन्तु इनके पुराण औ कीर्ति जब चोला छूटेगा, तब सब भूल जायगी। आखिर जीव नाना कल्पनाके वश होके चौरासीमें जायगा पारख बिना ॥२॥ तपस्वी विश्वामित्र आदि तपस्याके मदमें माते, गाफिल होके अन्नपान, वस्त्र छोड़े औ जङ्गलमें रहने लगे। जैसे वनके खग, मृग, गज, हरिन, रीछ आदिक; तद्वत् फल, फूल, मूल, पत्र, तृण, पवन अहार करने लगे, तो चोला छूटे जङ्गलके पशु होवेंगे। औ ब्रह्माण्डमें बासा रखते हैं सो नभवासी पक्षी होवेंगे, औ पौराणिक सियार होवेंगे। औ संन्यासी ज्ञानमदमें माते कि हम ब्रह्म, औ जगत् सब इन्द्रजालवत्। तो ये ब्रह्म होके जगत्में रहे। अन्तमें इनकी स्थिति कहाँ है ? नाहक भ्रममें पड़े औ 'जगत्—आत्मा' पारख बिना कहिके जगत्में आये। नाना योनि ब्रह्म होके भोगते हैं। ये आठ मदमें सब संसार माते औ गाफिल होके बन्धनमें परे। ये अर्थ ॥ ३ ॥

मोलना माते पढ़ि मुसाफ। काजी माते दै निसाफ ॥४॥
संसारी माते मायाके धार। राजा माते करि हङ्कार ॥५॥

मोलना लोग मुसाफ़ पढ़िके माते। पर जब इनका चोला छूटेगा, तब मुसाफ़ भूल जायगा औ मुर्गेकी योनिमें जाके बाँग पुकारा करेंगे। और काजी

नाना सरीयतकी बानी पढ़ि-पढ़ि माते, पर अन्तमें सब भूल जायगी। बिना पारख जीवकी स्थिति कहाँ होवेगी ? ताते गाफिल बकरेकी योनिमें जायेंगे। ये अर्थ ॥४॥ और संसारी पुत्र, स्त्री, धन, जाति-पाँति, कुल-गोत आदि विषयमें माते; परन्तु देह छूटनेपर सब रह जायगा औ श्वान-सूकर आदि योनिको प्राप्त होवेंगे। औ राजा राजमदमें माते। तो जब देह नाश होयगी, तब राज-पदवी छूट जायगी औ हाथीकी अथवा अनेक पापयोनिमें जायेंगे ॥ ५ ॥

माते शुकदेव उद्धव अक्रूर। हनुमन्त माते ले लंगूर ॥६॥
शिव माते हरि चरण सेव। कलि माते नामा जैदेव ॥७॥

अरे ! सबहीं गाफिल हुए। कोई पारखस्थितिको पाया नहीं। देखो ! सबनकी बानी प्रत्यक्ष है। शुकदेव, उद्धव अक्रूर आदि जो ज्ञानी भये, सो सबनका मत प्रथम भास तलक है। आगे कोई पार पाया नहीं। सब गाफिलीमें रहे, ताते आवागमनमें परे। ये अर्थ। हनुमान अपने दुमके बलसे औ भक्तिके बलसे गाफिल हुए। आखिर वो भी जगत्‌जालमें रहे, बिना पारख। ये अर्थ ॥६॥ शिव माते भक्तिविषयमें; परन्तु मिथ्या धोखा उनके परखनेमें न आया तो अन्तमें स्थिति कहाँ होयगी ? आखिर जगत्‌जालमें आये, बिना पारख। औ कलियुगमें नामा औ जयदेव भये, सो सब भक्तिमें दिवाने भये। परन्तु कल्पना उनके भी परखनेमें न आई, ताते फिर-फिर योनि-सङ्कट भोगते हैं। ये अर्थ ॥ ७ ॥

सत्य-सत्य कहै सुमृति-वेद। जस रावण मारेउ घरके भेद ॥८॥
चञ्चल मनके अधम काम। कहहिं कबीर भजु राम नाम ! ॥९॥१०॥

अरे ! सब नाना प्रकारके धोखा स्मृति-वेद सत्य-सत्य कहिके जीवको दृढ़ाता है औ वेदके भरोसे सब जीव भ्रममें परे हैं। कोई निज पारख स्वतन्त्र निर्पक्ष होके करते नहीं। औ कोई अधिक शङ्का करना चाहता है तो वेद औ गुरुवा लोग उसे रोकते हैं। कहते हैं कि वेदबाह्य शङ्का मत् करो ! इस प्रकारसे गुरुवा लोगनके भेदसे जीव मारे जाते हैं। जैसे घरके भाई विभीषणके भेदसे रावण मारा गया; तैसा जीवकी कल्पनासे जीव मारा गया। ये अर्थ ॥८॥ हे सन्तो ! ये सब चञ्चल मनके अधम काम हैं, सब धोखा। सो तू सगुण राम औ निर्गुण नाम, दोनों परखके छोड़ औ पारखपर स्थिर हो। ये अर्थ ॥ ९ ॥ १० ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ ११ ॥ ❀ ॥

शिव ! काशी कैसी भई तुम्हारि ? अजहूँ हो शिव ! लेहु बिचारि ॥१॥

टीका गुरुमुखः—शिव कहिये, आनन्द कहिये, ब्रह्म कहिये, परमहंस कहिये । जो साधन चतुष्टय सम्पन्न होके, फिर वेदान्त श्रवण-मनन करके देहकी विस्मृति किये औ बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़वत् दशाको प्राप्त भये, षट्-ऊर्मि रहित भये सो शिव, सो परमहंस । औ परमहंस कहिये आत्मवित्-ब्रह्मवित् । तिनसे गुरु कहते हैं कि हे शिव ! तुम सच्चिदानन्द स्वरूप ! तुम्हारेमें असत्, जड़, दुःख—ये देह कैसे पैदा भई ? काशी कहिये काया । सो काया बिना तुम अवर्ण । स्फुर्ण होके तुम्हारेमें काया कैसे निर्माण भई ? औ फिर तुम सच्चिदानन्द बने तो असत्-जड़-दुःख कहाँ गया ? हे शिव ! तुम अजहूँ विचार करो ! जो पहिले असत् सत्से उत्पन्न भया औ चैतन्यसे जड़ उत्पन्न भया औ आनन्दसे दुःख उत्पन्न भया । औ अब चैतन्यमें जड़ समाया, सत्में असत् समाया, आनन्दमें दुःख समाया । 'अजहूँ हो शिव ! लेहु विचारि ।' ये अर्थ ॥ १ ॥

चोवा चन्दन अगर पान । घर–घर सुमृति होय पुरान ॥२॥
बहु बिधि भवने लागू भोग । ऐसो नग्र कोलाहल करत लोग ॥३॥

देखो ! अब तुम्हारी सेवा संसार सब करते हैं । कोई चोवा, कोई चन्दन, कोई अर्गजा तुम्हारे अङ्गमें लगाते हैं । नाना प्रकारके पक्के पानके बीड़े पवाते हैं औ घर–घर पण्डित श्रुति, स्मृति, पुराणनमें तुम्हारा महात्म्य बड़ा करते हैं ॥२॥ और अपने-अपने घरमें लोग ले जायके नाना प्रकारके पकवान, व्यञ्जन बनवायके आपको भोग लगवाते हैं । ऐसे नगर = संसारमें लोग कोलाहल करते हैं कि परमहंस परमात्मा ! इनसे कोई अधिक नहीं । ये अर्थ ॥ ३ ॥

बहु बिधि परजा लोग तोर ! तेहि कारण चित ढीठ मोर ! ॥४॥
हमरे बलकवाके इहै ज्ञान । तोहराको समुझावै आन ? ॥५॥

औ आपके प्रजा लोग शिष्य-शाखा बहुविधि विशेषता आपकी वर्णन करते हैं, तेही कारण चित्त हमारा भी दृढ़ भया कि परमहंस लोग आप ही परमात्मा ! ताते मैं पूछता हौं कि तुम निर्विकार होके फिर तुम्हारेमें जगत्, देहविकार कैसे पैदा भया ? सब विकारका अधिष्ठान होके फिर निर्विकार कैसे कहलाते हो ? ॥४॥

अरे ! 'हमरे बलकवाके इहै ज्ञान ।' कि हमारा जीव लोगोंका यही ज्ञान है। औ आप तो सर्वाधिष्ठान सर्वरूप। तो भला ! सम्पूर्ण तो तुम आप ही हो अखण्ड एकरस ! तो 'तोहरा को समुझावै आन ?' तुम कहोगे कि कोई नहीं। तो वेद औ मुनि किसको उपदेश करते हैं ?। ये अर्थ ॥ ५ ॥

जो जेहि मनसे रहल आय। जिवका मरण कहु कहाँ समाय ? ॥६॥
ताकर जो कछु होय अकाज। ताहि दोष नहिं साहेब लाज ! ॥७॥

जो जाके मनमें आया, सो तैसा बोलता है। ऐसी अनेक बानी हैं। तो जीवका मरण कहो—कहाँ समाता है ! जब जीव देह छोड़ता है, तब कहाँ समाता है ! ॥६॥ जो कहोगे कि ब्रह्मसे उत्पन्न होता है औ ब्रह्ममें समाता है। तो ब्रह्ममें उत्पत्ति-प्रलय लगा तो जीवका अकाज भया—जो बड़ी मेहनत किया औ ब्रह्ममें समाया, तो ब्रह्ममें भी उत्पत्ति-प्रलय लगा। तो उत्पत्ति-प्रलय जीवका कैसे छूटै ? अब जीवका तो अकाज हुआ गुरुवा लोगोंकी बानी सुनके। तो उसको कछु दोष नहीं। सम्पूर्ण गुरुवा लोगोंका दोष। औ बड़ी शरमकी बात है, जो सब गुरुवा लोगोंके भरोसे हैं। सो गुरुवा लोग आप ही धोखेमें परे हैं। कोई पारख नहीं करते, विचार नहीं करते। ये अर्थ ॥ ७ ॥

हर हर्षित सो कहल भेव ! जहाँ हम तहाँ दुसरा न केव ! ॥८॥
दिना चारि मन धरहू धीर ! जस देखैं तस कहैं कबीर ! ॥९॥११॥

ब्रह्ममुखः—अब गुरुवा ब्रह्मज्ञानी बोलते हैं अपना अनुभव कि जहाँ हम विचार किया तो जहाँ 'हम ब्रह्म' हैं, तहाँ दूसरा कोई नहीं। अखण्ड, अद्वैत, एकरस, एक आत्मा। तहाँ न उपजना, न विनशना, न लाज, न शरम, न कर्म, न क्रिया, न पाप, न पुण्य। मैं एक ब्रह्म। ये अर्थ ॥८॥ गुरुमुखः—तब गुरु बोलते हैं कि 'दिना चारि मन धरहू धीर।' अरे ! जबलग ये देह, तबलग 'मैं आत्मा, मैं ब्रह्म' ऐसा कहिके धीर पकड़ो ! पर जब देह छूटेगी, तब तुम्हारा धीरज औ ब्रह्म औ आत्मा कहाँ रहेगा ! सब नाश हो जायगा। जो कछु देहसे भास हुआ है सो सब देहके सङ्ग नाश हो जायगा। जब देह छूट जायगी, तब फिर गर्भवासको प्राप्त होगा जीव। अरे ! ये जीव जैसा देखते हैं, तैसा ही अपना स्वरूप कहते हैं। इस जीवने स्थूल देखा तब कहा कि येही मेरा रूप, औ जब सूक्ष्म देखा तब कहा कि येही मेरा रूप। जब कारण भासा, तब कहा कि येही

मेरा रूप। जब महाकारण भासा, तब कहा कि येही मेरा रूप। जब केवल आत्मा भासा, तब कहा कि येही मेरा रूप। परन्तु आप सबका भासिक, ये न जाना। औ अपना स्वरूप पारख—ताकी प्राप्ति न भई, ताते भ्रममें परा औ दुःख-सुख भोगता है। ये अर्थ ॥ ९ ॥ ११ ॥

॥ ❀ ॥ वसन्त ॥ १२ ॥ ❀ ॥

हमरे कहलक नहिं पतियार। आप बूड़े नर सलिल धार ॥१॥

टीका गुरुमुखः—ये संसारको कल्पनाके हेत अनेक प्रकारसे समुझाया; परन्तु गुरु कहते हैं कि हमारे कहनेकी प्रतीति इस नरको विना पारख नहीं आती, ताते आपही कल्पना कर-करके नाना वेद आदिक बानी बनाये और आपही नर वह बानीके धारमें डूबे ॥ १ ॥

अन्धा कहै अन्धा पतियाय। जस बिश्वाके लगन धराय ॥२॥
सो तो कहिये ऐसो अबूझ! खसम ठाढ़ ढिग नाहीं सूझ! ॥३॥

'अन्धा कहै अन्धा पतियाय।' प्रथम अन्धा ब्रह्मा—सो वह नाना वेदबानी बोला। औ दूसरे अन्धे सनकादि अट्ठासी हजार ऋषि—तिनने माना औ प्रतीति किया। आगे उनको कछु समझ न परा, ताते अन्ध। औ अन्धे संसारके गुरुवा लोग, जो नाना प्रकारके उपदेश करते हैं। औ जीव सब मानते हैं औ गुरुवा लोगोंकी बानीको सब कोई पतियाते हैं। जैसे विश्वा (वेश्या) की लगन धरी जाती है। नित नये खसम आते हैं औ नित जाते हैं। तैसे जीवको गुरुवा लोगनकी बानीने लगन लगाई, अनेक खसम बनाये। राम, कृष्ण, नरसिंह, बराह, शिव, शक्ति, सूर्य, गणपति, विष्णु, भैरव और अनेक देवता जीवके खसम हुए। जैसे वेश्याके बहुत खसम। ये अर्थ ॥२॥ सो जीव तो ऐसा अबूझ है कि 'खसम ठाढ़ ढिग नाहीं सूझ!' गुरुवा लोग नजदीक बैठके दूसरा खसम खड़ा करते हैं औ इसकी आँखिसे सूझ तो परता नहीं औ मान तो लेता है। ऐसा अबूझ ॥ ३ ॥

आपन-आपन चाहैं मान। झूठ प्रपञ्च साँच करि जान ॥४॥
झूठा कबहुँ न करिहैं काज। हौं बरजों तोहि सुनु निलाज! ॥५॥

आपन-आपन इष्ट सबने माना औ चाह बढ़ी। सो झूठ-प्रपञ्चको साँच काज करके जीवने माना ॥४॥ तो गुरु कहते हैं कि झूठा-धोखा तेरा काज कभी

नहीं करनेका । ताते मैं बरजता हौं कि नाहक धोखेमें क्यों बँधा जाता है ? हे निर्लज्ज ! बेशरम ! तू बहुत दिनसे धोखेमें पड़के खराब हुआ । तो अब तो भी सुन ! ॥ ५ ॥

छाड़हु पाखण्ड मानो बात ! नहिं तो परबेहु यमके हाथ ! ॥६॥
कहहिंकबीर नर किया न खोज । भटकि मुवा जस बनके रोझ ॥७॥१२॥

अरे ! आचार, पूजा, इष्ट-उपासना, जाति–पाँति सब पाखण्ड छोड़ औ बात मान ! विचार करके पारखपदको प्राप्त हो ! नहीं तो गुरुवा लोगनकी बातनमें बन्ध रहेगा, तो फिर गर्भवासमें जायगा और मायाके हाथ परेगा । फिर बहुत दुःख तेरेको होवेगा ॥६॥ अरे ! ब्रह्म औ आत्मा जो-जो सिद्धान्त तुमने माना है सो सब कहाँ हैं ? हे जीव ! सम्पूर्ण तेरा भास है; परन्तु तुमने खोज किया नहीं । सो बिना पारख तू इस भाससे छूटने नहीं पाता औ हकनाहक वेदबानीमें भटकके मरता है, जैसे वनका रोझ । बन = बानी, बन = संसार; रोझ = पण्डित औ रोझ = विषयी जीव, सो भव-बन्धनमें मस्त होके संसारमें बारम्बार देह धरके भटक-भटकके मरते हैं पारख बिना । ये अर्थ ॥ ७ ॥ १२ ॥

जेहि कारण बारम्बार वसन्त होता था, सो कारण कसर गुरुने बताई । वसन्त कहिये उत्पत्ति–प्रलय । सो उत्पत्ति–प्रलयका कारण ब्रह्म, बानी औ स्त्री । सो ज्ञान, भक्ति, योग, विषय; तिनकी कसर बताई । अब आगे मायाका खेल, जामें जीव परम मोहित भये, सो फाँसी चाचरमें गुरु समुझाते हैं ॥

॥ * ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा–टीका सहित वसन्त षष्ठ प्रकरणम्
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥ * ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्‌गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

❀ बीजक मूल सद्ग्रन्थः ❀

॥❀॥ चाचर सप्तम प्रकरणम् प्रारम्भः ॥७॥❀॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी—॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते चाचर प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्‌गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❀ ॥ चाचर ॥ १ ॥ ❀ ॥

खेलति माया मोहनी । जिन्ह जेर कियो संसार ॥१॥
रचेउ रङ्गते चूनरी । कोइ सुन्दरि पहिरे आय ॥२॥
शोभा अद्‌भुत रूप वाकी । महिमा वरणि न जाय ॥३॥

टीका गुरुमुखः—मायाके रूप अनेक; तामें मुख्य रूप दो—एक गुरुवा लोग और दूसरी स्त्री । सो अनेक रुपसे माया मोहनी खेलती है, जिसने सब संसारको जेर किया ॥१॥ औ अपने विषयरङ्गसे दो देह रची जीवनको अरुझाने-के वास्ते, कि कोई सुन्दरी = विचारमान् जीव होय सो आयके पहिरे = अङ्गीकार करे । ये अर्थ ॥२॥ ऐसी अद्‌भुत शोभा उस मायाके रूपकी बनी कि काहूकी गति चलती नहीं । सब देखते ही भूले औ कामवश हुए । फिर उसकी तारीफ सब जीव करने लगे, तो कोकशास्त्र बनाये औ नाना श्रृङ्गारशास्त्र बनाये औ नाटक, अलङ्कार बनाये । तहाँ मायाका रूप वर्णन किया ॥ ३ ॥

चन्द्र वदनि मृग लोचनी माया । बुन्दका दियो उघार ॥४॥
जती-सती सब मोहिया । गजगति ऐसी जाकी चाल ॥५॥

सो माया कैसी ? कि जाका मुख चन्द्रके माफिक, औ अधरमें मधुर रस औ मृगके ऐसे जाके नेत्र । सो मस्तकमें बुन्दका लगायके उघार दिया ॥४॥ सो सम्पूर्ण

शोभा देखके यति–सती सब मोहि डारा । औ 'गजगति ऐसी जाकी चाल' ॥५॥

नारदको मुख माँड़िके । लीन्हों बसन छोड़ाय ॥६॥
गर्भ गहेली गर्भ ते । उलटि चली मुसकाय ॥७॥

अरे ! देखो—ये जीवने अपने विषयके वास्ते क्या रूप पैदा किया ! जामें बन्ध भया । एक दिन श्रीनगरमें नारद गये । सो वहाँ राजकन्याका स्वयम्बर होता था । सो राजकन्याको देखके नारद मोहित भये । तब विष्णुके पास जायके नारदने अर्ज किया कि हे भगवान् ! हम तेरी निरन्तर भक्ति करते हैं और तू हमारा मालिक है । ताते हमारी विनती मानो औ हमारेको अपना रूप देओ ! तब विष्णुने कहा कि हे ऋषि ! तुम केहि कारण रूप माँगते हो ? ऋषि कहते हैं कि महाराज ! अब मेरी इच्छा ऐसी है कि गृहस्थाश्रम करना । तब विष्णुने अपने वस्त्रोंका रूप नारदको दिया, पर मुँह बन्दरका बनाया । तब नारद स्वयम्बरमें आयके खड़े भये औ रूप देखके हर्षित भये । तहाँ विष्णुने आयके राजकन्यासे विवाह किया । तब नारदका मुख काला भया । सब योग, तपस्याका तेज जाता रहा औ खिसियाने भये । तब विष्णुको श्राप दिया कि मेरी स्त्रीको तूने हर लिया, तेरी स्त्री राक्षस हर ले जायगा । तब तहाँ शिवदूत खड़े थे, सो नारदकी दशा देखके हँसे कि देखो ! नारद ज्ञानी औ महासात्त्विकी औ जितेन्द्रिय ! सो इनकी क्या गति भई ! मायाको देखके भूले औ खिसियाने होके विष्णुको श्राप दिया, परन्तु अपना मुख नहीं देखते, जो बन्दरका मुख बनायके खड़े भये हैं । शिवके दूतनकी बातें सुनके नारद कोपायमान भये औ शिवदूतनको श्राप दिया कि अरे ! दुष्ट हो ! तुम मेरी हँसी करते हो, तो राक्षस होके उत्पन्न होओ ! तब अपना मुँह पानीमें देखा—सो बन्दरका । फिर नारद बहुत खिसियाने भये । तब विष्णुने अपनी माया खैंच लिया औ विष्णु बैकुण्ठको गये । वहाँ नारदके मुँहमें कलङ्क लगायके माया गुप्त भई मुस्कायके । ये अर्थ ॥६॥ अरे ! माया बड़ी गर्भ गहेली संसारको जेर करके उलटके जीवमें समाय गई औ सबको बन्धन दिया । ये अर्थ ॥ ७ ॥

शिवसन ब्रह्मा दौरिके । दूनों पकरे धाय ॥८॥
फगुआ लीन्ह छुड़ायके । बहुरि दियो छिटकाय ॥९॥

अरे ! प्रथम आरम्भमें इस स्त्रीने रूप धारण किया, सो ब्रह्मा–शिव दोनों-

को दौरके पकड़ा ॥८॥ औ काम, बुद्धि सब हर लिया औ संसारमें फैला दिया ॥९॥

अनहद धुनि बाजा बजै। श्रवण सुनत भौ चाव ॥१०॥
खेलनहारा खेलि है। जैसी वाकी दाव ॥११॥

यह मायाको सब कोई अनिर्वचनीय, अनहद कहते हैं। सो श्रवण माया-का शृङ्गार भया, तब जीवको चाह बढ़ी ॥१०॥ औ खेलनेवाले गुरुवा लोग ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब खेल रहे हैं। जैसे वह माया दाव बताती है, तैसे सर्व खेलते हैं ॥ ११ ॥

ज्ञान ढाल आगे दियो। टारे टरै न पाँव ॥१२॥
खेलनहारा खेलि है। बहुरि न वाकी दाव ॥१३॥

अरे! इस मायाने बड़े-बड़े ज्ञानिनको भरमाया। इस जीवने ज्ञानढाल लेके मायाको आड़ किया; परन्तु वह रुकी नहीं। अरे! किसीके टारे मायाका पाँव टरा नहीं ॥१२॥ सब मायाके सङ्ग खेलनेवाले हार गये, पर किसीका दाँव मायापर लगा नहीं ॥ १३ ॥

सुर नर मुनि औ देवता! गोरख दत्त औ ब्यास! ॥१४॥
सनक-सनन्दन हारिया। औरकी केतिक बात? ॥१५॥

सुर, नर, मुनि, देवता, गोरख, दत्तात्रेय, व्यास ॥१४॥ सनक-सनन्दनादि सब हार गये। अब 'औरकी केतिक बात?' ॥ १५ ॥

छिलकत थोथे प्रेमसों। मारे पिचकारी गात ॥१६॥
कै लीन्हों बसि आपने। फिर-फिर चितवत जात ॥१७॥

अरे! माया खाली प्रेमसे छिलक रही है औ कामकी पिचकारी सब नरके अन्तःकरणमें मारी ॥१६॥ औ बड़े-बड़े ब्रह्मादिकनको अपने वश कर लिया। अब 'फिर-फिर चितवत जात' ॥ १७ ॥

ज्ञान डाँग ले रोपिया। त्रिगुण दियो है साथ ॥१८॥
शिवसन ब्रह्मा लेन कहो है। औरकी केतिक बात ॥१९॥

अरे! या मायाने ज्ञानबानी लेके अपना विषय रोपा औ त्रिगुण—काम, क्रोध, मोह सब जीवनके साथ दिया ॥१८॥ शिवसन ब्रह्मा लेने कहते हैं, तो और जीवकी केतिक बात? ॥ १९ ॥

एक ओर सुर नर मुनि ठाढ़े । एक अकेली आप ॥२०॥
दृष्टि परे उन काहु न छाड़े । कै लीन्हों एकै धाप ॥२१॥

एक ओर सुर, नर, मुनि खड़े भये और एक तरफ आप अकेली माया ॥२०॥ जो-जो उसकी दृष्टिमें आया, सो सबका एकै कौर कर लिया ॥ २१ ॥

जेते थे तेते लिये । घूँघट माहिं समाय ॥२२॥
कज्जल वाकी रेख है । अदग गया नहिं कोय ॥२३॥

अरे ! जेते बड़े-बड़े थे, तेते सब अपने गर्भमें समाय लिये ॥२२॥ अरे भाई ! ये माया काजरकी रेख है । यासे कोई अदाग गया नहीं । बड़े-बड़ेनको दाग लगाया । ये अर्थ ॥ २३ ॥

इन्द्र–कृष्ण द्वारे खड़े । लोचन ललचि लजाय ॥२४॥
कहहिं कबीर ते ऊबरे । जाहि न मोह समाय ॥२५॥१॥

इन्द्र, कृष्ण आदिक सब मायाके द्वारमें खड़े हैं । नेत्र जिनके ललचाय रहे हैं ॥२४॥ गुरु कहते हैं कि 'तेई ऊबरे ।' जाने सम्पूर्ण मायाकी फाँसी परख लिया है औ स्त्रीका मोह जामें नहीं समाया । जाको स्त्रीका निरन्तर तिरस्कार हो, सोई बचे । ये अर्थ ॥ २५ ॥

विरह अर्थ—माया मोहनी कहिये गुरुवा लोग, सो सब संसारमें खेलते हैं । नाना प्रकारकी बानी लेके सब संसारको जेर किया औ नाना प्रकारकी कल्पना दृढ़ाई ॥१॥ प्रथमारम्भमें जब सब त्रिविधि तापमें दुःखित भये औ अकुलायके नाना भेष धारण किये कि कोई हमारा कर्त्ता है, सो कैसहू हमको मिलै । फिर वह भेषनने नाना प्रकारकी बानी वैराग्यरूपी औ विरहरूपी कथन की । जामें जीव सब सुन–सुनके भेष पहिरे औ शिष्य होय ॥२॥ ऐसा वर्णन किया कि भगवान्‌की शोभा अद्भुत है । जहाँ वेद 'नेति-नेति' कहते हैं, जाके एक-एक रोममें कोटि–कोटि सूर्य उदय होते हैं, वाकी महिमा वेदहुसे बरणी न जाय । ३॥ 'चन्द्रवदनि मृगलोचनी माया ।' कहिये गुरुवा लोग, चन्द्र कहिये चिदाकाश । अपनी आँखि–कान मूँदके सन्मुखी मुद्रा लगाई, तब चन्द्रबिम्ब प्रकाश भया । ताका नाम चिदाकाश धरा गुरुवा लोगोंने अपने वदनसे । ताते गुरु कहते हैं कि चन्द्रवदनी माया । औ मृगलोचनी कहिये जो गुरुवा लोग आप ही कहते हैं कि

जगत् मृगजलवत् । औ फिर जगत्को लोचते हैं, उपदेश करते फिरते हैं; ताते मृगलोचनी । ये अर्थ ॥ फिर संसारमें नाना प्रकारका उपदेश किया औ बुन्दका उघार दिया । बुन्दका = आत्मा । सो आखिरको वेदान्तमें कहि दिया कि सब आत्मा है और दूसरा कछु नहीं ॥४॥ ता आत्मसिद्धान्तमें बद्रीनारायण, भीष्म पितामह, हनुमन्त आदि सब यति मोहे औ हरिश्चन्द्र आदि, मयूरध्वज आदि सती सब मोहित भये । गजगति कहिये उन्मत्तदशा । सो दशा लेके गुरुवा लोग संसारमें रमते हैं । ये अर्थ ॥५॥ नारदादि भक्तनके मुखमें मारके, बसन छुड़ायके लङ्गोट पहिराये ॥६॥ अरे ! बड़े-बड़े गुरुवा लोग जो भये, सो सब महागर्भके माँहि रहे औ नाना धोखा पकड़के उलटके गर्भवासमें बन्धे हुए चले गये ॥७॥

शिव, ब्रह्मा—ये पहिले पुरुष भये । सो दोनों कल्पनामें दौरके परे ॥८॥ फिर इनहीनसे सब ऋषि–मुनि मिलके उपदेश लिया औ संसारमें फिर वही कल्पना नाना ग्रन्थ बनायके छिटकाय दिया ॥९॥ औ अनहद नादका उपदेश दिया । सो जीवने सुना औ प्रीति बढ़ी ॥१०॥ सो खेलन कहिये जीवको, सो हारा, अनहद नादमें लय हुआ । ये अर्थ । जैसी-जैसी युक्ति गुरुवा लोग बताने लगे, तैसा-तैसा जीव सब करने लगे ॥११॥ कर्म, उपासना, योग, ज्ञान—ये सम्पूर्ण कल्पना लेके रोपन्त किया औ एक-से-एक झगरने लगे । कोई किसीके टारे टरते नहीं ॥१२॥ कहते हैं कि योग–ध्यान करेसे कृतार्थ होवेगा, नहीं तो बहुरि न वाको दाव मिलेगा ॥१३॥ सुर, नर, मुनि औ देवता, गोरख, दत्तात्रेय, व्यास इत्यादि सब कल्पनाके वश होके धोखेमें परे ॥१४॥ सनक–सनन्दन आदि सब वेदवानीके भरोसे खोजते–खोजते हारे, आखिर सर्व आत्मा कहिके रहे । तो और जीवकी केतिक अकिल है ? जो उनसे पार जायेंगे ॥१५॥ खाली बातका प्रेम करके संसारमें जीव सब नाचते हैं और एक-को-एक प्रेमकी पिचकारी मारते हैं ॥१६॥ ऐसा कर-करके संसारको कल्पनाने वश कर लिया और फिर रहे–रहाये जीवनको वश करती है ॥१७॥ 'ज्ञान डाँग ले रोपिया ।' कर्मबानी, उपासना-बानी–दोनों छोड़के ज्ञानबानी वेदान्त लेके जीवनको रोपिया औ त्रिगुण = तत्त्वमसिका जीवको उपदेश किया ॥१८॥ शिव आदिक संन्यासी औ ब्रह्मा आदिक ब्राह्मण सबने लेनेकी श्रद्धा किया औ लेके यही तत्त्वमसि सिद्धान्तपर सब ठहरे । तब और जीवनकी केतिक बात है ? ॥१९॥ अब एक ओर सुर, नर,

मुनि खड़े भये। सुर कहिये सात्त्विकी जीव भगवत्उपासक, औ नर कहिये राजसी जीव कर्मी राजउपासक, द्रव्यउपासक, स्त्रीउपासक, पुत्रउपासक, औ मुनि कहिये योगी; सो सब हारके असिपद आत्मारूपी हुए। एक अकेली आप = आत्मा। ये अर्थ ॥२०॥ ये गुरुवा लोगोंकी बानी जाकी दृष्टिमें परी, तिनको 'एक ब्रह्म' कहिके खाय लिया ॥२१॥ जेते ज्ञानी थे, तिनको वेदवानीने वश करके तत्त्वमसि घूँघुटमें समाय लिया ॥२२॥ अरे! वेदका आखिरी सिद्धान्त महागाफिली जड़वत् दशाका है। जो कोई वेदबानीका आसरा लिया, सो कोई भी अदाग = शुद्ध स्वरूपको प्राप्त हो न रहे। सब गाफिलीमें पड़कर चौरासीमें गये ॥ २३ ॥

इन्द्र, कृष्ण आदि सम्पूर्ण द्वारेमें खड़े हैं, तुरिया अवस्थामें खड़े रहिके आशा कैवल्यकी करते हैं औ सब बन्ध हो रहे हैं ॥२४॥ गुरु कहते हैं कि ये धोखेसे वही बचे, जिसको माया बानीका मोह नहीं समाया। ये अर्थ ॥२५॥१॥

॥ ❀ ॥ चाचर ॥ २ ॥ ❀ ॥

जारो जगका नेहरा!, मन बौरा हो! ॥१॥
जामें सोग सन्ताप!, समुझि मन बौरा हो! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब आदि सम्पूर्ण जगत्का नेह जो मानके करता है, सो सम्पूर्ण जगत्का नेह तेरे फँसनेका जारा है। सो ताहीमें मेरा धन, मेरा पुत्र, मेरी स्त्री, मेरी जाति, मेरी पाँति; ऐसा मानके तू अपनेको भूला औ दिवाना हुआ। सो जारा तोर डार ॥१॥ अरे! जामें अनेक शोक-सन्ताप हैं, सो समझके छोड़। ये अर्थ ॥ २ ॥

तन धनसे क्या गर्भसी?, मन बौरा हो! ॥३॥
भस्म कीन्ह जाके साज, समुझि मन बौरा हो ॥४॥

अरे! तन-धनका क्या गर्व करता है? ॥३॥ ये सम्पूर्ण भस्म हो जायगा। इन तन-धनको मानके नाहक क्यों दिवाना हो रहा है? सो सम्पूर्ण नाशवन्त हैं। अब तो भी समझके इनका अध्यास छोड़! ॥ ४ ॥

बिना नेंवका देवघरा, मन बौरा हो ॥५॥
बिनु कहगिलकी ईंट, समुझि मन बौरा हो ॥६॥

अरे ! ई तन बिना नेंवका देवघरा है ॥५॥ औ बिना कीचड़की ईंट, बिनशेगी । तो तुम समझो ! ये हाड़-चामकी देह क्षणभङ्गुर है । ये देह नाहक मानके तुम दिवाने भये ॥ ६ ॥

काल बूतकी हस्तिनी, मन बौरा हो ॥७॥
चित्र रचो जगदीश !, समुझि मन बौरा हो ॥८॥

कालबूतकी हस्तिनी कहिये स्त्री ॥७॥ सो चित्र जगदीश पुरुषने रचा अपनी इच्छासे । सो तू समझ ॥ ८ ॥

काम अन्ध गज बशि परे, मन बौरा हो ॥९॥
अंकुश सहियो शीस, समुझि मन बौरा हो ॥१०॥

और आप ही वो स्त्रीको देखके कामअन्ध गजके सरीखा वशि परा ॥९॥ ताते नाना अङ्कुशरूपी दुःख सहन किया ॥ १० ॥

मर्कट मूठी स्वादकी, मन बौरा हो ॥११॥
लीन्हों भुजा पसारि, समुझि मन बौरा हो ॥१२॥

परन्तु जैसा मर्कट मूठी पकड़ता है, फिर लालचके मारे छोड़ नहीं सकता; तैसा ये जीवने स्त्रीविषयके लालचसे मूठी मोहकी पकड़ी ॥११॥ अरे ! स्त्री, पुत्र, धन आदिक माया भुजा पसारके इनने पकड़ा, पर ताहीते नाना योनिमें भ्रमता है औ अनेक दुःख भोगता है । औ ये दशा हो रही है जो कछु नहीं हो सकता । बड़ा लाचार भया । सो हे दिवाने ! तू समझ ! नाहक मानके तू दिवाना क्या हो रहा है । ये अर्थ ॥ १२ ॥

छूटन की संशय परी, मन बौरा हो ! ॥१३॥
घर-घर नाचेउ द्वार, समुझि मन बौरा हो ! ॥१४॥

अरे ! हे दिवाने ! तूने स्त्री आदि प्रपञ्च पकड़ा है औ अब छूटनेकी संशय पड़ी ॥१३॥ जो तू छोड़े तो तेरा पकड़नेवाला कोई नहीं । तूने ही पकड़ा है, ताहीसे घर-घर = नाना योनिमें नाचता फिरता है ॥ १४ ॥

ऊँच-नीच समझेउ नहीं, मन बौरा हो ॥१५॥
घर-घर खायेउ डाँग, समुझि मन बौरा हो ॥१६॥

हे दिवाने! अब तू ऊँच--नीच वर्ण विचार करता है; परन्तु ऊँच-नीच एक नहीं समझा ॥१५॥ चींटीसे हस्तीतलग सब योनिनमें ऊँच-नीचमें भरमा औ मानके बौरा हुआ। सो घर-घर डाँग खाता फिरा पशु आदि योनिमें। ये अर्थ ॥१६॥

ज्यों सुवना नलिनी गह्यो, मन बौरा हो ॥१७॥
ऐसो भरम विचार, समुझि मन बौरा हो ॥१८॥

जैसा सुवना = तोता आप ही नलिनी पकड़के फन्द जाता है ॥१७॥ तैसे नाना प्रकारकी बानी औ कल्पना औ विषयमें तू फँदा है। ये खूब समझके देख ॥१८॥

पढ़े-गुने क्या कीजिये ?, मन बौरा हो ॥१९॥
अन्त बिलैया खाय! समुझि मन बौरा हो ॥२०॥

अरे! बहुत वेद--शास्त्र पढ़ा और उसका गुनाव न किया, तो क्या मुक्ति होती है? ॥१९॥ आखिर तो कल्पना औ स्त्री खाती है ॥ २० ॥

सूने घरका पाहुना, मन बौरा हो ॥२१॥
ज्यों आवै त्यों जाय, समुझि मन बौरा हो ॥२२॥

जैसा सूने घर पाहुना जाता है तो वहाँ कोई आदर करनेवाला नहीं। जैसा जाता है वैसा ही फिर पूर्व स्थलको आता है। तद्वत् ये जीव शून्यमें जाते हैं, ब्रह्माण्डमें जाते हैं ॥२१॥ तो जैसे जाते हैं वैसे उलटके गर्भवासमें चले आते हैं। तुम समझके देखो औ छोड़ो! नाहक मानके दिवाने मत् होवो!॥ २२ ॥

नहानेको तीरथ घना, मन बौरा हो ॥२३॥
पुजबेको बहु देव!, समुझि मन बौरा हो ॥२४॥

अरे! तूने ही कल्पना कर-करके नहानेको घना तीर्थ बनाये ॥२३॥ औ पूजनेको बहुत देव बनाये। सो नाहक जीव सब धोखेमें परे। अब जैसे जाते हैं तैसे ही बाहर निकरते हैं। ये अर्थ ॥ २४ ॥

बिनु पानी नर बूड़हीं, मन बौरा हो ॥२५॥
तुम टेकेउ राम जहाज, समुझि मन बौरा हो ॥२६॥

अरे! बिना पानी संसार सब डूबता है एक अनुमानका भवसागर बनायके। अरे! भवसागर कछु पानी नहीं, एक अनुमान है ॥२५॥ औ रामनाम जहाज

जो तुमने टेका है सो कछु जहाज नहीं । सो भी कल्पना । "मिथ्या सागर मिथ्या नाव, मिथ्या पूजा मिथ्या देव ॥ मिथ्या तीर्थ मिथ्या भाव, कर्णधार मिथ्या समुदाव" ॥ १ ॥ २६ ॥

कहहिं कबीर जग भर्मिया !, मन बौरा हो ! ॥२७॥
तुम छाड़हु हरिकी सेव !, समुझि मन बौरा हो ! ॥२८॥२॥

तो ये जग मिथ्या धोखा मानके भरमा औ दिवाना हुआ ॥२७॥ सो तुम परखके हरिकी सेवा छोड़ो ! हरि कहिये, गुरुवा कहिये, माया कहिये, बानी कहिये, काया कहिये, कल्पना कहिये । येती बात मानके बौराय रहे हो । सो परखके छोड़ो औ पारखपर स्थिर होओ । ये अर्थ ॥ २८ ॥ २ ॥

॥ ❋ ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा-टीका सहित चाचर सप्तम प्रकरणम
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ७ ॥ ❋ ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

बीजक मूल सद्ग्रन्थः

॥ ❀ ॥ बेलि अष्टम प्रकरणम् प्रारम्भः ॥ ८ ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ दया गुरु की--॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते बेलि प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित।]

॥ ❀ ॥ बेलि ॥ १ ॥ ❀ ॥

हंसा ! सरवर शरीरमें !, हो रमैया राम ! ॥१॥
जागत चोर घर मूसहि !, हो रमैया राम ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—हे हंसा ! हे जीव ! तेरा सरवर शरीरमें है। हे रमैया ! तू सबमें रमा है, ताते तेरे बिना कोई देह खाली नहीं औ देह छोड़के तेरी स्थिति हो सकती नहीं। सो उपाधि तेरे पीछे लगती है ॥१॥ अरे ! तू जागृतिरूप चैतन्य होके चोर तेरा घर लूटते हैं। चोर कहिये काम, क्रोध, लोभ, मोह, पञ्च-विषय, स्त्री, पुत्र औ गुरुवा लोग; ये सम्पूर्ण चोर तेरा घर जानमिनी हरते हैं, गाफिल करते हैं। तू तो इन चोरनमें रमि गया। ताते हे राम ! तेरी स्थिति कैसे होवेगी ? तू चोरनमें सोय रहा है ॥ २ ॥

जो जागल सो भागल, हो रमैया राम ॥३॥
सोवत गैल बिगोय, हो रमैया राम ॥४॥

औ जो कोई जागा, चोरनको परख लिया, सो सभी चोरनमेंसे भागा औ पारख-भूमिकापर आय बैठा, जहाँ किसी चोरका दाव लगे नहीं ॥३॥ औ जो इन चोरनके मोहसे इनमें गाफिल भया, सो चाहे ज्ञानी होय, चाहे वैरागी होय,

सब लूट गया औ चौरासी योनिमें गर्भवासमें कैद भया । सो देखो इन चोरोंके लक्षण कि मोहित करके ज्ञान, बुद्धि, विवेक, विचार, साँच, धैर्य, प्रताप सम्पूर्ण हर लेते हैं । फिर चौरासी लक्ष योनि—यही अँधेरी कोठरी, तामें जीवको कैद करते हैं । उपरान्त फिर कैदखानेसे अवधि पायके जीव छूटता है, बाहर आता है तो फिर भी सब मोहित करके, जो कछु कमाई किया, सो लूटके फिर कैद करते हैं । ताते सोया बिगोया ये अर्थ ॥ ४ ॥

आजु बसेरा नियरे, हो रमैया राम ॥५॥
काल बसेरा बड़ि दूर, हो रमैया राम ॥६॥

आजु मानुषतनमें हो तो तुम सत्सङ्गमें विचार करके देखो ! तुम्हारा पद नजदीक है ॥५॥ औ काल दूर हो जायगा । फिर दूसरी योनिमें जाओगे, तब तुम्हारा पद बड़ी दूर हो जावेगा । हे रमैया ! तू सबमें क्या रमि रहा है ? सब जग दुःखरूप है । ताको परखके छोड़ ॥ ६ ॥

जइहो बिराने देश, हो रमैया राम ॥७॥
नैन भरोगे दूर, हो रमैया राम ॥८॥

हे रमैया ! तू अपनी मनुष्ययोनि छोड़के जब दूसरी योनिमें जायगा, तब वहाँ बहुत कष्ट गर्भवासका होयगा ॥७॥ जठराग्निका तड़ाका लगेगा औ अङ्ग-अङ्गमें जब जरेगा, तब रोय-रोय तेरे नैन भरेंगे । तब वहाँ कोई दुःख छुड़ानेको नहीं आनेका ॥ ८ ॥

त्रास मथन दधि मथन कियो, हो रमैया राम ॥९॥
भवन मथेउ भरपूरि, हो रमैया राम ॥१०॥

तो हे सन्तो ! देखो—ये जीवने गर्भवास छूटनेके वास्ते बहुत त्रास करके सब वेद-शास्त्र मथन किया औ संसारमें सब कर्त्ताको खोजने लगे ॥९॥ आखिर कर्त्ताका तो ठिकाना भी न लगा औ उमर तो आखिर भई ॥ १० ॥

फिरिके हंसा पाहुन भयो, हो रमैया राम ॥११॥
बेधिन पद निर्बान, हो रमैया राम ॥१२॥

तब चोला छूटा औ हंसा पाहुन भये, फिर गर्भवासको गये । हे रमैया राम ! ऐसी अनेक जन्म तेरी गति भई ॥११॥ अरे ! हे रमैया ! निर्वाण पदमें

तुम बेधे, शून्यमें बेधे, ताते गर्भवासकी प्राप्ति भई । ये अर्थ ॥ १२ ॥

तुम हंसा ! मन मानिक, हो रमैया राम ॥१३॥
हटलो न मानेहु भोर, हो रमैया राम ॥१४॥

तुम तो हंस औ निर्वाण ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर—ये सब तुम्हारे मनके माने हुए धोखे । तिनके भरोसे तुम रहि गये औ नाना योनि भोगे ॥१३॥ हमने बहुत तुम्हारेको हटका; परन्तु हटका न माना । ताते हे रमैया ! तुम सब संसारमें रमे ॥ १४ ॥

जस रे कियेहु तस पायेउ, हो रमैया राम ॥१५॥
हमरे दोष का देहु ?, हो रमैया राम ॥१६॥

तो जैसा तुमने किया, तैसा तुमने पाया । अरे ! तुम गाफिली न करते तो ऐसी दशा दुःखरूपी न पाते ॥१५॥ औ हमने बहुत कहा, पर तेरेको सूझा नहीं । अब हमारेको क्या दोष देता है ? तेरेको अनेक प्रकारसे मैंने परखाया, पर तुमने परखा नहीं ! जो तू ही न परखै तो पारखका क्या दोष ? ॥ १६ ॥

अगम काटि गम कियेहु, हो रमैया राम ॥१७॥
सहज कियेहु विश्वास, हो रमैया राम ॥१८॥

अरे ! तू तो नाना कल्पनामें दृढ़ हुआ औ आखिरको 'परमात्मा अगम है' ऐसा कहा । फिर अगम भी काटिके गम किया ॥१७॥ तू ब्रह्म बना औ सहज ही विश्वास किया कि जो वेदने ब्रह्म कहा था सो हमहीं हैं । ऐसा विश्वास किया; परन्तु धोखा तेरेको न सूझा ॥ १८ ॥

राम-नाम धन बनिज कियो, हो रमैया राम ॥१९॥
लादेउ बस्तु अमोल, हो रमैया राम ॥२०॥

रामनाम धन समझके गुरुवा लोगोंके सङ्ग बणिज किया, शरणमें जायके सत्सङ्ग किया औ नाना बानीमें रमि गया औ सब बानिनका विश्वास किया ॥१९॥ औ बानीके प्रमाणसे रामनाम अमोल वस्तु जानके भजन-भक्ति करने लगा ॥ २० ॥

पाँच लदनुवाँ लादि चले, हो रमैया राम ॥२१॥

नौ बहियाँ दश गोनि, हो रमैया राम ॥२२॥

पाँच लदनुवा = अन्तःकरण पाँचों, सो लादि चले कि—भाई ! राम सबका मालिक सर्वज्ञ दूसरा है। ये सङ्कल्प मनने माना। अब रामकी नाना मूर्त्ति बनाना औ रामकी नाना पूजा करना औ रामकी कथा सुनना औ रामका कीर्तन, स्मरण करना, रामका भेष—माला, कण्ठी, तिलक लगाना औ रामके हेत नाना पुराण सुनना, नाना चरित्र करना, राम छोड़ औ कछु नहीं—ऐसा माना; ये हङ्कारने लादा करतूत। 'रमेति रामः।' जो सबमें रमा है चैतन्य—सूत्र-मणि-न्याय, सोई राम;ये लादा चित्तने। राम निर्विकल्प सच्चिदानन्द अखण्ड एकरस, ये लादा अन्तःकरणने। सम्पूर्ण राम जैसे-का-तैसा—जल-तरङ्ग न्याय, सुवर्ण-भूषण न्याय, मृत्तिका-विकार न्याय; ये निश्चय किया बुद्धिने। इस प्रकार पाँच लदनुवाँ लादि चले ॥२१॥ 'नौ बहियाँ दश गोनि।' नौ बहियाँ = नौ व्याकरण, दश गोनी = चार वेद छौ शास्त्र; ये सम्पूर्ण बानी अन्तःकरण पञ्चक लादि ले चले। हे रमैया ! तुम सबमें रमे। ये अर्थ ॥ २२ ॥

पाँच लदनुवाँ खागि परे, हो रमैया राम ॥२३॥
खाखर डारिनि फोरि, हो रमैया राम ॥२४॥

पाँचों अन्तःकरण जब खागि परे, थकि गये, तब श्वासा आखिर भई ॥२३॥ औ चोला छूट गया। खाखर = मुरदा रहि गया, सो सब लोगन मिलिके मशानमें जराय दिया औ हड़िया फोर डारी ॥ २४ ॥

शिर धुनि हंसा उड़ि चले, हो रमैया राम ॥२५॥
सरवर मीत जो हारि, हो रमैया राम ॥२६॥

'शिर धुनिके हंसा उड़ि चले।' देहके विषयमें शिर मार-मार आखिर चोला छोड़के सुषुम्ना नाड़ीके सङ्ग हंसा उड़ि गर्भवासको चले ॥२५॥ जा देह—गेह सो मिताई किया था, सो विषयनमें मनुष्यतन हारा औ चौरासीमें रमा ॥२६॥

आगि जो लागी सरवरमें, हो रमैया राम ॥२७॥
सरवर जरि भौ धूरि, हो रमैया राम ॥२८॥

तब आग लगी सरवरमें = देहमें ॥२७॥ सो देह जरके धूर हो गई। न कोई सङ्ग भया, न कोई काम आया ॥ २८ ॥

कहहिं कबीर सुनो सन्तो !, हो रमैया राम ! ॥२९॥
परखि लेहु खरा खोट !, हो रमैया राम ! ॥३०॥१॥

अब ब्रह्म-आत्मा कर्त्ता तो भी दूसरा कहाँ है ! हे सन्तो ! ॥२९॥ सब खरा औ खोटा परख लेहु ! जो देह-गेह आदि, कर्त्ता, ब्रह्म-आत्मा, तत्त्व-प्रकृति, अनुमान, कल्पना, भास, प्रत्यक्ष—ये सब मिथ्या, औ भासिक जीव सत्य। सो जासे भास-भासिक सब परखनेमें आवै सो पारखपद। ताहीपर स्थिर होओ! ये अर्थ ॥ ३० ॥ १ ॥

॥ ❀ ॥ बेलि ॥ २ ॥ ❀ ॥

भल सुमृति जहँड़ायेउ !, हो रमैया राम ! ॥१॥
धोखे कियेउ विश्वास !, हो रमैया राम ! ॥२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे सुमृति ! हे पण्डित ! हे ज्ञानी ! तुमने भला खराब किया रमैयारामको। औ 'रमैयाराम' ऐसा सम्बोधन जीवको है। सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तुम वेदबानीमें खूब जहँड़ाये, खराब हुए ॥१॥ औ धोखेका विश्वास किया कि मैं ब्रह्म, मैं आत्मा। अथवा दूजा कर्त्ता, ऐसा विश्वास किया ॥ २ ॥

सो तो है बन्सी कसी, हो रमैया राम ॥३॥
सो रे कियेहु विश्वास, हो रमैया राम ॥४॥

औ नाना कर्म, उपासना, ज्ञान करने लगे, सो तो गुरुवा लोगोंने बन्शी लगाई है। जैसा मच्छ पकड़नेके वास्ते धीमर बन्शी लगाते हैं; तद्वत् गुरुवा लोगोंने नाना बानी जीवको पकड़नेके वास्ते लगाई। तामें ब्रह्म-प्राप्ति, स्वर्ग प्राप्ति, सिद्धि-प्राप्ति—ये आशा = लालच लगाई ॥३॥ सो लालच देखके तुम विश्वास किया औ ब्रह्म बना, सबमें रमा, आपही राम कहलाया। ये अर्थ ॥ ४ ॥

ई तो है वेद-शास्त्र, हो रमैया राम ॥५॥
गुरु दीहल मोहि थापि, हो रमैया राम ॥६॥

जीवमुखः—ई तो है वेद-शास्त्रका प्रमाण औ गुरु ब्रह्मादिकका उपदेश, कि जो सर्वव्यापी सबमें रमा है घटाकाश न्याय, सो ब्रह्म ॥५॥ ताके रूप एक

सगुण—जो क्षीरसागर-निवासी; जाकी अनन्त कला, अनन्त अवतार । औ एक निर्गुण, जो जीवमात्रमें चींटीसे ब्रह्मा पर्यन्त भरा है । और एक सम्पूर्ण आत्मा अधिष्ठानरूप । सो भक्ति, ज्ञान, योग—ये तीन मार्गसे तीनों रूपकी प्राप्ति होती है । येही निश्चय 'गुरु दीहल मोहि थापि' ।। ६ ।।

गोबर कोट उठायेउ, हो रमैया राम ।।७।।
परिहरि जैबेहु खेत, हो रमैया राम ।।८।।

गुरुमुखः—ये हो रमैया राम ! गो कहिये इन्द्री, बर कहिये श्रेष्ठ । सो इन्द्रिनका विषय श्रेष्ठ; ताको कोट बनायेहु । ताको नाम ब्रह्म कहेहु । अरे ! निर्विकल्प अन्तःकरणका विषय, सविकल्प चित्तका विषय, ज्यों-का-त्यों बुद्धिका विषय, द्वैत कर्त्ता मनका विषय, प्रत्यक्ष देह तत्त्व अहङ्कारका विषय । शब्द सिद्ध करेगा तो आकाशका विषय, स्पर्श—आनन्दादि सिद्ध करेगा तो वायुका विषय, रूप—प्रकाशादि सिद्ध करेगा तो अग्निका विषय, रस—प्रेम आदि सिद्ध करेगा तो जलका विषय, गन्ध-सर्वदेशी सिद्ध करेगा तो पृथिवीका विषय । अगर ये सबही सिद्ध करेगा तो गोबर कोट = घूरा ठहरा । यामें कछु अस्तित्त्व नहीं ।।७।। ये देह छूटेगा तब येते सिद्धान्त सब छोड़के औ खेत = गर्भवासमें जायगा । ये अर्थ ।।८।।

मन बुद्धि जहवाँ ना पहुँचे, हो रमैया राम ।। ९ ।।
तहाँ खोज कैसे होय ?, हो रमैया राम ।।१०।।

ये हो रमैया ! जहाँ मन—बुद्धि कछु पहुँचती नहीं, तहाँ तुम ब्रह्म-खोज करते हो ।।९।। तो तहाँ खोज कैसे होगा ? ।। १० ।।

यह सुनिके मन धीरज धरहु, हो रमैया राम ।।११।।
मन बढ़ि रहल लजाय, हो रमैया राम ।।१२।।

इतना निर्णय सुनके विचार करके धीरज धरो ! ।। ११ ।। अरे ! न कहूँ ब्रह्म, न कहूँ ईश्वर । सब तुम्हारे मनकी कल्पना । सो जैसा तुम्हारा मन बढ़ा, तैसे-तैसे तुम मानते चले । जहाँ मन थका, तहाँ स्वरूप ब्रह्म निश्चय किया औ सर्व जगत्का कारणरूप बने । सो कारण, औ देह चतुष्टय आदि जगत् सब कार्य, औ हंस कर्त्ता; ये तीनों जब उड़े, तब पारखपदकी प्राप्ति होय । जबलग कार्य—कारण—कर्त्ता त्रिपुटी है, तबलग पारखपदकी प्राप्ति नहीं । अब वेदान्त-

शास्त्रवाला बोलता है कि त्रिपुटी नाश होय, तब ब्रह्मप्राप्ति होय। सो इनकी भी त्रिपुटी देखो औ गुरु जो त्रिपुटी छुड़ाते हैं, सो त्रिपुटी भी देखो! वेदान्तकी त्रिपुटी—ध्याता, ध्यान, ध्येय; ये जीवकी त्रिपुटी। अब ध्याता कहिये स्थूल, औ ध्यान कहिये सूक्ष्म, ध्येय कहिये कारण। तो अद्वैत एकत्त्वभावमें ये त्रिपुटी उड़ी औ जीव-ईश्वरकी एकता भई, तब तुरिया अवस्था महाकारणरूप हुआ। तो तहाँ ईश्वरकी त्रिपुटी उड़ाना—ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय। ज्ञाता कहिये ईश्वर, ज्ञान कहिये मूलप्रकृति तुरिया, ज्ञेय कहिये अव्याकृत कारण। औ हिरण्यगर्भ सूक्ष्म, औ विराट स्थूल—ये सम्पूर्ण ज्ञेय। इस प्रकारसे छै पुटी छोड़ै, तब एक ब्रह्म, एक आत्मा अखण्डदशाको प्राप्त होय। तो भला! ये त्रिपुटी छोड़ी औ एकता ब्रह्म-भावको प्राप्त हुआ; तो सब जगत् औ ईश्वरका कारण हुआ। ब्रह्म ईश्वर-जगत्का अधिष्ठान। ब्रह्म बिना जगत्-ईश्वर दोनों नहीं, औ दोनोंमें ब्रह्म ही व्यापा। ब्रह्म जड़-चैतन्यका अधिष्ठान औ ब्रह्म ज्ञान-अज्ञानका अधिष्ठान। ये छै कार्य। यामें कारण ब्रह्म भरा है। ये वेदवचन बृहदारण्य शारीरकका प्रमाण। तब सबका कारण ब्रह्म, औ ईश्वर आदि जगत् सब कार्य। इनका कर्त्ता हंस। ये तीनों त्रिपुटी नाशे, तब पारखपदकी प्राप्ति होय। तो वेदान्तकी अधिकाई क्या? जो वेदान्तकी छै पुटी उड़ी तब ब्रह्म हुआ। तो एक पुटी उड़ी। कार्य उड़ा। कारण-कर्त्ता दो उनके परखनेमें न आये; ताते बारम्बार देह धरेंगे॥ १२॥

फिर पाछे जनि हेरहु, हो रमैया राम ॥१३॥
कालबूत सब आहि, हो रमैया राम ॥१४॥

तू त्रिपुटी परखके छोड़ औ फिर पाछे मत् देखहु हो ॥१३॥ हे रमैयाराम! ये त्रिपुटी सब कालबूत = धोखेकी टाटी नाशवान्। ये अर्थ॥ १४॥

कहहिं कबीर सुनो सन्तो!, हो रमैया राम ॥१५॥
मन बुद्धि ढिग फैलायउ, हो रमैया राम ॥१६॥२॥

गुरु कहते हैं कि ये त्रिपुटी, छै पुटी सब मनकी बाढ़ है। सोई संसारमें फैली है। हे सन्तो! तुम चीन्हो औ परखके छोड़ो! स्वच्छ पारखमें ठहरो औ कछु मानो मत्। ये अर्थ॥ १६॥ २॥

॥ * ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा-टीका सहित बेलि अष्टम प्रकरणम्
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥ * ॥

॥ ❁ ॥ श्रीसद्‌गुरवे नमः ॥ ❁ ॥

पारख स्वरूप सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

बीजक मूल सद्‌ग्रन्थः

॥❁॥ बिरहुली नवम प्रकरणम् प्रारम्भः ॥९॥❁॥

॥ ❁ ॥ दया गुरुकी— ॥ ❁ ॥

॥ ❁ ॥ अथ लिख्यते बिरहुली प्रथम अनुसार ॥ ❁ ॥

पारख स्वरूप सद्‌गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❁ ॥ बिरहुली ॥ १ ॥ ❁ ॥

आदि-अन्त नहिं होते बिरहुली ॥१॥
नहिं जर पल्लव डार बिरहुली ॥२॥

टीका मायामुखः—गुरुवा लोग कहते हैं–हे बिरहुली ! आत्माका आदि-अन्त कछु नहीं ॥१॥ औ जर, पल्लव, डार कछु नहीं । जर कहिये निर्गुण, औ डार कहिये सगुण, औ पल्लव कहिये वेदबानी । सो आदि-अन्त रहित अखण्ड एकरस आत्मा । न सगुण, न निर्गुण । न आत्मामें वेद, न बानी, न ज्ञान, न अज्ञान । तो जैसे-का-तैसा । 'नेति-नेति श्रुतिः' ॥ २ ॥

निशि-बासर नहिं होते बिरहुली ॥ ३ ॥
पौन-पानि नहिं मूल बिरहुली ॥ ४ ॥

तो न दिन, न राति ॥३॥ न पवन, न पानी, न आकाश आदि तत्त्व । तो आत्मा निराबेब, निराकार, निरञ्जन । ये अर्थ ॥ ४ ॥

ब्रह्मादिक सनकादिक बिरहुली ॥ ५ ॥
कथि गये योग अपार बिरहुली ॥ ६ ॥

टीका गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—सनकादिक, ब्रह्मादिक ॥५॥ ये ही

अपार योग कथि गये, येही सिद्धान्त कथि गये, ताते संसारमें विरह बढ़ा औ कहते हैं कि सब विरहकी जड़ एक धोखा गाफिली; जाके मारे जीव सब अधीर भये ॥ ५ ॥ ६ ॥

मास असारे शीतल बिरहुली ॥ ७ ॥
बोइनि सातों बीज बिरहुली ॥ ८ ॥

मास कहिये बानी, असारे कहिये मिथ्या, असार कहिये विष, असार कहिये आशा। सो आशारूपी बानी जो गुरुवा लोगोंने उपदेश किया, सो मिथ्या बानीका विष जीवनपर चढ़ा औ जीव गाफिल भये, शान्त भये, शीतल भये। ये अर्थ ॥७॥ अब सात प्रकारकी आशा रोपन्त किया, सोई आवागमनका बीज। सो अब ता बीजमें डार-पल्लव कौन-कौन निकले ? सो सुनो—ॐ, श्रीं, रं, सों, ऐं, ह्रीं, क्लीं—ये सात बीज बोये, सो सात अंकुर निकरे—कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, उत्पत्ति, स्थिति, लय ॥ ८ ॥

नित गोड़ै नित सींचै बिरहुली ॥ ९ ॥
नित नव पल्लव डार बिरहुली ॥ १० ॥

सो सातों अंकुरोंको चित्तरूपी कुदारसे नित गोड़ने लगे औ बुद्धिरूपी जलसे सींचने लगे। अहङ्कारका आलबाल (वृक्षका थाला) बाँधा, मनरूपी खाद डारा, अन्तःकरणरूपी भूमिकामें बीज बोया ॥९॥ सो सात अंकुर निकरे औ नित नव पल्लव, डार फूटने लगे। डार कहिये अनेक प्रकारके कर्म औ अनेक प्रकारकी उपासना औ अनेक प्रकारके योग औ अनेक प्रकारके ज्ञान औ अनेक प्रकारकी उत्पत्ति औ स्थिति औ लय; ये ही डार। औ अनेक प्रकारकी सातोंकी बानी, सोई पल्लव। ये सात बीज जो श्रीकबीरसाहेब बोले हैं, सो इनका फूट करके जो अर्थ बोलना चाहता हौं तो सारी पृथिवीकी बानी औ सब ऋषि-मुनि, वेद-शास्त्रनका सिद्धान्त आना चाहता है। तो टीका बहुत बढ़ती है, कछु सुमार नहीं रहता। ताते नाम-संज्ञा जनाया। अब दूसरा अर्थ कहता हौं—गुरुवा लोग 'बोइनि सातों बीज *।' अब प्रथम कर्मका बीज 'ॐ'; तामें कर्म अंकुर निकरा। ताको भयका आलबाल (थाला) बाँधा, लोभ जलसे सींचा। सो तामें सात डार फूटीं—यजन, याजन,

*

* सप्त बीज-मन्त्रोंके अङ्कुरादि सप्त भाग दिग्दर्शन कोष्ठकः—

बीज	अंकुर	आलबाल	जल	डार	पल्लव	फूल	फल
ॐ	कर्म	भय	लोभ	यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, मैथुन।	कर्मकाण्डकी वाणी	वासना	पाप और पुण्य
श्रं	उपासना	मर्य्यादा	भाव	शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य, शक्ति, राम, कृष्ण।	सप्त कोटि महामन्त्र	लोकादिक	जारण, मारण, उच्चाटन, आकर्षण, वशीकरण, स्तम्भन, मोहन।
रं	योग	क्रिया	साधना	हठ, लय, कुण्डली, लम्बिका, तारक, अमनस्क, सांख्य।	पातञ्जल शास्त्र	समाधि	अणिमादिक सिद्धि।
सों	ज्ञान	भक्ति	प्रेम	शुभइच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभाविनी, तुर्या।	ज्ञानकाण्डकी वाणी	परोक्ष ज्ञान	अपरोक्ष ज्ञान।
ऐं	उत्पत्ति	विषय	वासना	शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वासना और इच्छासे उत्पत्ति।	उत्पत्ति	नारी	पुरुष।
ह्रीं	स्थिति	माया	मोह	अन्न, जल, तृण, पत्र, फूल, फल और पृथिवी।	बहुत प्रकारके आहार	नाना व्यञ्जनादि	शरीर-पोषण।
क्लीं	प्रलय	कठोरता	क्रोध	पृथिवी, पानी, अग्नि, पवन, लात, हाथ, दाँत।	द्रव्य, अस्त्र-शस्त्रादि	भय	मृत्यु।

अध्ययन, अध्यापन, दान, प्रतिग्रह, मैथुन । औ सातों कर्मकी नाना बानी बनी, सोई पल्लव आया । वासना फूल फूला औ पाप-पुण्य दो फल आये । दूसरा उपासनाका बीज 'श्रीं'; तामें उपासना अङ्कुर निकरा । ताको मर्य्यादा आलबाल बाँधा, भाव-जलसे सींचा । तामें सात शाखा फूटीं—शिव, विष्णु, गणपति, सूर्य, शक्ति, राम, कृष्ण । औ सप्त कोटि महामन्त्र, ये पल्लव आये । लोकादिक फूल फूले औ जारण, मारण, उच्चाटन, आकर्षण, वशीकरण, स्तम्भन, मोहन—ये फल लगे । तीसरा योगका बीज 'रं'; तासे योग अंकुर निकरा । ताको क्रियारूपी आलबाल बाँधा, साधना-जलसे सींचा । तामें सात शाखा फूटीं—हठयोग, लययोग, कुण्डलीयोग, लम्बिकायोग, तारकयोग, अमनस्कयोग, औ सांख्ययोग । पातञ्जली शास्त्र पल्लव आया औ समाधि फूल फूला । अणिमादिक सिद्धि फल आये । चौथा ज्ञानका बीज 'सों'; तासे ज्ञान अङ्कुर निकरा । ताको भक्तिका आलबाल बनाया । औ प्रेमरूपी जलसे सींचा । तामें सात शाखा फूटीं—शुभइच्छा, सुविचारणा, तनुमानसा, सत्त्वापत्ति, असंशक्ति, पदार्थाभाविनी औ तुर्या । औ सातोंकी बहुत बानी बनी, सोई पल्लव आया । परोक्ष ज्ञान सोई फूल फूला औ अपरोक्ष ज्ञान सोई फल लगे । पाँचवाँ—उत्पत्तिका बीज 'ऐं; तासे उत्पत्ति अंकुर निकरा । विषयरूपी आलबाल बनाया औ वासनाजलसे सींचा । सात प्रकारकी उत्पत्ति, सोई डार फूटीं । शब्दसे मेघके कीड़े औ मेघा-मेण्डकी आदिकी उत्पत्ति, स्पर्शसे मैथुनी योनिकी उत्पत्ति, रूपसे अण्डज-पक्षी आदि योनिकी उत्पत्ति, जेते दृष्टिभावसे रति करे—सो रूपकी उत्पत्ति, रससे जलचर औ फल--वृक्षनके कीटनकी उत्पत्ति, गन्धसे उष्मजयोनिकी उत्पत्ति, और वेदप्रमाणसे गुरुवा लोगोंकी मानन्दी ऐसी है कि—वासनासे भूतयोनि औ देवयोनिकी उत्पत्ति, औ इच्छासे सिद्धयोनिकी उत्पत्ति मानी है । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, वासना औ इच्छा-ये सात उत्पत्ति बीजके अङ्कुर, औ इनकी उत्पत्ति सोई पल्लव । नारी फूल, औ पुरुष फल । छठवाँ स्थितिका बीज—'ह्रीं'; तासे स्थिति अङ्कुर निकरा । तामें मायारूपी आलबाल बनाया, मोह-जलसे सींचा । तब सात डार फूटीं—अन्न, जल, तृण, पत्र, फूल, फल औ पृथिवी । मनुष्यकी स्थिति अन्न, जलचरकी स्थिति जल, तृणचरकी स्थिति तृण, पत्रचरकी स्थिति पत्र, पुष्पचरकी स्थिति पुष्प, फलचरकी स्थिति फल, औ मैलेसे, पृथिवीसे जो पैदा भये, तिनकी स्थिति

मैल—पृथिवी । इनका बहुत विस्तार भयउ सोई पल्लव । अनेक खानेके पदार्थ बने सोई फूल, औ सदाकाल शरीर-पोषण, सोई स्थिति फल । सातवाँ प्रलयका बीज 'क्लीं'; तासे प्रलय अङ्कुर निकरा । तामें कठोरताका आलबाल बनाया, क्रोध जलसे सींचा । तब सात डार फूटीं—पृथिवी, पानी, अग्नि, पवन, लात, हाथ, दाँत । नाश करनेके अनेक द्रव्य सोई पल्लव । भय फूल औ मृत्यु फल । ये अर्थ ॥ १० ॥

छिछिलि बिरहुली छिछिलि बिरहुली ॥ ११ ॥
छिछिलि रहल तिहुँलोक बिरहुली ॥ १२ ॥

सो शाखा—पल्लव बानी बढ़ी ॥११॥ औ तीन लोकमें छाय गई ॥१२॥

फूल एक भल फुलल बिरहुली ॥ १३ ॥
फूलि रहल संसार बिरहुली ॥ १४ ॥

ता बानीका फूल जो फूला ॥१३॥ तामें संसार सब फूल रहा है ॥१४॥

सो फुल लोढ़ैं सन्त जना बिरहुली ॥ १५ ॥
बन्दिके राउर जाय बिरहुली ॥ १६ ॥

फूल कहिये तुर्या औ फूल कहिये समाधि । सो फूल सन्तजन अङ्गीकार करते हैं ॥१५॥ औ बन्दी = गुरुवा लोग, तिनकी शरणमें राउर = जीव जाते हैं ॥ १६ ॥

सो फल बन्दे भक्त जना बिरहुली ॥ १७ ॥
डँसिगौ बैतल साँप बिरहुली ॥ १८ ॥

जो फूलका बन्दन भक्तजन करते हैं ॥१७॥ सो 'डँसिगौ बैतल साँप' = गुरुवा लोगोंका उपदेश । ये अर्थ ॥ १८ ॥

विषहर मन्त्र न मानै बिरहुली ॥ १९ ॥
गारुड़ बोले अपार बिरहुली ॥ २० ॥

औ नाना प्रकारके विषय, सो जीवपर विष चढ़ा और जीव विषहर-मन्त्र नहीं मानता, तो विष कैसे उतरे ? जाके मारे गाफिल हो रहे हैं । विषहर-मन्त्र

कहिये जासे सब विष हर जाय, नाश हो जाय, सो पारख ये नहीं मानता ॥१९॥ औ गारुड़ = पारखी अनेक तरहसे परखाते हैं और अपार शब्द बहुत बोलते हैं, पर अभीलग समझ न परी। ये अर्थ ॥ २० ॥

विषकी क्यारी तुम बोयेहु बिरहुली ॥ २१ ॥
अब लोढ़त का पछितावहु बिरहुली ॥ २२ ॥

'विषयकी क्यारी तुम बोयेहु बिरहुली !' तुम्हारे अन्तःकरणमें विष = ब्रह्म-अध्यास, जगत्-अध्यास, नाना विषय-अध्यास; येही चौरासीका बीज तुमने अन्तःकरणमें बोया। सो तुमको चौरासी देह प्राप्त भई ॥ २१ ॥ सो तुम अब भोगनेको क्या पछताते हो ? ॥ २२ ॥

जन्म-जन्म यम अन्तरे बिरहुली ॥ २३ ॥
फल एक कनयर डार बिरहुली ॥ २४ ॥

अरे ! इसी प्रकारसे जन्म-जन्म गुरुवा लोगोंने औ स्त्रियनने जन्म-जन्म धोखा दिया॥२३॥ 'फल एक कनयर डार बिरहुली।' फल एक = वासना, धोखा कानमें फूँका, ताहीते विरह लगा औ जन्म-जन्म धोखा पड़ा। ये अर्थ ॥२४॥

कहैं कबीर सच पाव बिरहुली ॥ २५ ॥
जो फल चाखहु मोर बिरहुली ॥ २६ ॥ १ ॥

मायामुखः—मायाका उपदेश ऐसा है कि वेदवाक्य औ गुरु-प्रतीति करेगा तो अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादिक फल प्राप्त होंगे। ऐसी आशा लगाई। ये अर्थ ॥ २५-२६ ॥ १ ॥

जो विरह भया था, सो 'बिरहुली' शब्द कहके गुरुने निवृत्त किया। अब जीव सब भ्रम औ आवागमनमें झूलते हैं, सो गुरु परखायके छुड़ाते हैं, सो सुनोः—

सोरठाः—हे गुरु दीनदयाल !, विरह ब्यालते जिव दुःखित ॥
मेटेउ फन्दा काल, अब हिण्डोल निर्णय करहु ॥ १ ॥

॥ * ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा-टीका सहित बिरहुली नवम प्रकरणम्
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥ * ॥

॥ ❀ ॥ श्रीसद्गुरवे नमः ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

❀ बीजक मूल सद्ग्रन्थः ❀

॥❀॥ हिण्डोला दशम प्रकरणम् प्रारम्भः ॥१०॥❀॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी—॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते हिण्डोला प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❀ ॥ हिण्डोला ॥ १ ॥ ❀ ॥

भरम हिण्डोला झूले सब जग आय ! ॥१॥

पाप-पुण्यके खम्भा दोऊ । मेरु माया माँहिं ॥२॥

टीका गुरुमुखः—भ्रमरूपी हिण्डोला सब जग झूलते हैं। भ्रम कहिये ब्रह्म, तामें जीव झूलते हैं। ब्रह्मसे पुरुष, पुरुषसे प्रकृति, प्रकृतिसे महातत्त्व, महातत्त्वसे अहङ्कार, अहङ्कारसे त्रिगुण, त्रिगुणसे संसार। सत्त्वगुणसे देवता, रजोगुणसे दश इन्द्री, औ तमोगुणसे विषय पञ्चक। सो विषय तमोगुणमें लय किये। तमोगुण इन्द्रियोंमें लय हुआ। इन्द्रियाँ रजोगुणमें लय हुईं। रजोगुण देवतनमें लय हुआ। देवतनको सत्त्वगुणमें लय किया। सत्त्वगुण जगत् सहित अहङ्कारमें लय हुआ। अहङ्कारको महातत्त्वमें लय किया। महातत्त्वको प्रकृति खाय गई। प्रकृति पुरुषमें जाय समाई। पुरुष ब्रह्ममें लय हुआ। फिर पूर्ववत् ब्रह्मसे पुरुष, पुरुषसे माया, मायासे त्रिगुण आदि जगत् सब बने। औ ब्रह्म कछु वस्तु नहीं, जहाँ जीवकी स्थिति होय। ताते आवागमनमें परा। ब्रह्म कहिये भ्रम। सो गुरु कहते हैं कि बारम्बार भ्रम-हिण्डोलेमें जीव झूलते हैं। सब जगत् ब्रह्मसे जगत्, जगत्से ब्रह्म होते हैं। ये अर्थ ॥१॥ 'पाप-पुण्यके खम्भा दोऊ।' पाप

कहिये जगत् जीव, पुण्य कहिये ईश्वर—ये दोनों खम्भा, और ऊपरकी डाँड़ी सो माया तुर्या ॥ २ ॥

लोभ भँवरा विषय मरुवा । काम कीला ठानि ॥३॥
शुभ-अशुभ बनाये डाँड़ी । गहे दूनों पानि ॥४॥

ब्रह्म-प्राप्तिका लोभ सोई भँवरा, मुमुक्षु सोई भँवरा; औ समाधि-विषय सोई सुगन्ध-मरुवा; तामें योगी भँवरा लुब्ध हो रहे हैं । औ चाह सोई किल्ला । सिद्धिका किल्ला ठोंका ॥३॥ 'शुभ-अशुभ बनाये डाँड़ी ।' शुभ कहिये ज्ञानइच्छा, औ अशुभ कहिये भोगइच्छा । सोई सव्य-अपसव्य दोनों डाण्डीकी रस्सी ॥४॥

कर्म पटरिया बैठिके । को-को न झूले आनि ? ॥५॥
झूलत गण गन्धर्व मुनिवर ! झूलत सुरपति इन्द्र ! ॥६॥

औ नाना कर्म सोई पटरिया । योगकर्म, ज्ञानकर्म, उपासनाकर्म, विषय-कर्म, वर्णाश्रमकर्म; ये पटरियापर सब आरूढ़ हो बैठे । सो सब कोई आवा-गमनमें झूले । आवागमनका झूला महा कठिन है । जो शुभ कर्म किया तो शुभ लोकको प्राप्त भया । फिर 'क्षीणेपुण्ये मृत्युलोके वसन्ति' ऐसा स्मृतिका प्रमाण है । औ अकर्म किया तो नरक आदि लोकको गया; फिर मृत्युलोकको आया ॥५॥ भूतकी उपासना किया, महादेवकी उपासना किया, तो गणोंकी देह प्राप्त भई । भूतयोनि धारण करके महादेवके पास रहा । फिर हजार वर्ष या दश हजार वर्ष भूतयोनिमें रहा, फिर गर्भवासमें आया । (ऐसा शास्त्रमें लिखा है, सो कल्पना है) । कीर्तन-भक्ति किये तो गन्धर्वयोनि धारण करके देवतनके पास जबलग मर्यादा, तबलग रहे; फिर क्षीणेपुण्ये गर्भवासमें आते हैं । ऐसे ही मुनिवर महा तपस्या करते-करते मरे औ तपोलोकको गये अथवा देव इन्द्र भये, तो भी क्षीणेपुण्ये मृत्युलोकमें आते हैं (ऐसा लिखा है) । अब औरकी केतिक तपस्या ? ॥ ६ ॥

झूलत नारद शारदा ! झूलत ब्यास फणिन्द्र ! ॥७॥
झूलत बिरञ्चि महेश शुक मुनि ! झूलत सूरज चन्द्र ! ॥८॥

जो नारद, शारदादि, व्यास, शेषादि पुनः पुनः प्रलय होते हैं औ गर्भ-वासमें आते हैं, ऐसा वेद बोलता है । तो उनकी बानीके भरोसे जो ब्रह्म बन बैठते

हैं, तिनकी स्थिति कैसे होवेगी ? ये तो बिना पारख बारम्बार गर्भवासमें आवेंगे। ये अर्थ ॥७॥ 'झूलत बिरञ्चि महेश शुक मुनि ।' अनेक बार अनेक ब्रह्मा भये औ अनेक महादेव भये औ अनेक शुकाचार्य भये । ऐसा वेद बोलता है कि जब-जब प्रलय होता है, तब-तब सूर्य-चन्द्रादि सब नाश होते हैं औ उत्पत्ति समय सब उत्पन्न होते हैं । ताते आवागमनमें त्रिदेव आदि सूर्य--चन्द्र सब झूलते हैं। ये अर्थ ॥ ८ ॥

आप निर्गुण-सगुण होय । झूलिया गोविन्द ! ॥९॥
छौ चारि चौदह सात एकइस । तीनिउ लोक बनाय ॥१०॥

अरे ! जो आप निर्गुण ब्रह्म सगुण अवतार धारणकर बारम्बार झूले । ये अर्थ ॥९॥ 'छौ चारि चौदह सात एकइस ।' छौ कणभक्ष—जैमिनी, कणाद, गौतम, शेष, कपिल औ व्यास; चारि = सनक, सनन्दन, सनातन, सनतकुमार; चौहद = मनु; सात = स्वर्ग, सात-ऋषि; एकइस ब्रह्माण्ड, एकइस गणपति; तीन लोक, तीन देव; ये सम्पूर्ण प्रलयमें नाश होते हैं औ उत्पत्ति समय उपजते हैं, ऐसा वेद गावता है । तो आवागमनमें सब झूलते हैं ॥ १० ॥

खानि-बानी खोजि देखहु ! अस्थिर कोई न रहाय ॥११॥
खण्ड-ब्रह्माण्ड खोजि देखहु ! छूटत कितहूँ नाहिं ॥१२॥
साधु सङ्गति खोजि देखहु । जिव निस्तरि कित जाहिं ॥१३॥

चार खानि औ चार बानी, याहीमें तुम खोजि देखो—सब झूलते हैं, पर स्थिर कोई भये नहीं ॥११॥ अरे ! नौखण्ड पृथिवी औ ब्रह्माण्ड सब जीवनको बन्धन हैं । छुटकारा कहीं नहीं । ये अर्थ ॥१२॥ हे साधु ! हे जीव ! तुम सत्सङ्गमें खोजि देखो ! जो जीव निस्तरिके कहाँ जायगा ? । ये अर्थ ॥ १३ ॥

शशि-सूर रैनि-शारदी । तहाँ तत्त्व परलय नाहिं ॥१४॥
काल-अकाल परलय नहीं । तहाँ सन्त बिरले जाहिं ॥१५॥
तहाँके बिछुरे बहु कल्प बीते । भूमि परे भुलाय ॥१६॥

मायामुखः—नहीं तहाँ चन्द्र, नहीं तहाँ सूर्य, औ नहीं तहाँ सुषुम्ना । न तहाँ पाँच तत्त्व, न तहाँ त्रिगुण ॥१४॥ न तहाँ काल, न अकाल, न प्रलय—सोई ब्रह्म । 'तहाँ सन्त बिरले जाहिं ।' योगी-ज्ञानी तहाँ कोई जाय । ये अर्थ।

॥१५॥ ये जीव तहाँ = ब्रह्मसे बिछुरे बहुत कल्प बीते औ स्थूल देह धारण करके भूमिमें मायाके वश भूलि परे। सो फिर ब्रह्मको प्राप्त होय तो ये जीवका निस्तार होय। ये मायाका अभिप्राय ॥ १६ ॥

साधु सङ्गति खोजि देखहु। बहुरि न उलटि समाय ॥१७॥
ये झुलबेकी भय नहीं। जो होय सन्त सुजान ! ॥१८॥
कहहिं कबीर सत सुकृत मिलै तो। बहुरि न झूले आन ॥१९॥१॥

गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे साधु ! तुम सत्सङ्गतमें, टकसारमें खोजि देखो—कि ये ब्रह्म जगत्का कारण। जो ब्रह्मसे जगत्, औ जगत्से ब्रह्म बारम्बार होता है। ब्रह्ममें मिला सोई जगत्का अधिकारी है। ताते परखके देखो ! जामें 'बहुरि न ब्रह्ममें उलटि समाय' ॥१७॥ अनेक जन्मसे जो झूले, जगत्से ब्रह्म औ ब्रह्मसे जगत् अनेक दाईं भये, सो कछु भये नहीं। परन्तु जो कोई सुज्ञानी विचारमान् होय, सब तत्त्वमसि आदि परखके पारखपर शान्त होय तो ये झूलनेको भय नहीं ॥१८॥ गुरु कहते हैं कि सच्चा पारखको जो जीव जाय मिले तो 'बहुरि न झूले आन।' फिर आवागमनमें नहीं झूलनेका। ये अर्थ ॥ १९ ॥

विरह अर्थः—'भरम हिण्डोला झूले सब जग आय।' गुरु कहते हैं कि जामें प्रथम भ्रम खड़ा हुआ, सोई हंस संसारमें जीव कहायके झूला। ये अर्थ ॥१॥ 'पाप-पुण्यके खम्भा दोऊ।' पाप कहिये परस्त्री औ पुण्य कहिये अपनी विवाहिता स्त्री; ये ही दोनों खम्भा। अब ये दोनों प्रकारकी नारी, ताका रूप औ शृङ्गार, सोई माया खम्भाके ऊपरकी डाँड़ी ॥२॥ औ विषय सोई मरुवादिक फूल। तामें विषय-वासना सोई सुगन्ध। विषयलोभी सोई भँवरा होके विषय-वासनामें लुब्ध भये, औ काम सोई किल्ला मारा ॥३॥ तामें शुभ = घरकी स्त्रीसे लुब्ध होना औ अशुभ = परस्त्रीसे गमन करना, ये दोनों डोरी सङ्कल्प-विकल्पात्मक कर्मी-अकर्मी दोनोंने गही ॥४॥ औ कर्म = मैथुनादिक, सोई पटरिया, तापर बैठके 'को-को न झूले आन ?' तो विषय झूलेमें सब, जो कोई लुब्ध हुए, सो झूले। ये अर्थ ॥५॥ गण, गन्धर्व, मुनिवर, देव इन्द्र ॥६॥ नारद, शारदा, व्यास, फणीन्द्र ॥७॥ ब्रह्मा, महेश, शुक्राचार्य, शुकदेव, सूर्य, चन्द्र ॥८॥ विष्णु ॥९॥ छौ शास्त्री, चार वेदी, चौदह मनु, सप्तऋषि, एकईस गणपति, तीन लोक आदि ॥१०॥ जेते खानि-बानी हैं, सो सब खोजि देखो—कोई स्थिर नहीं

॥११॥ गुरुने जेते पीछे बताये, सो सब स्त्रीभोग औ विषयनमें आसक्त भये, ताते परम बेहाल हैं औ आवागमनमें झूलते हैं। गर्भवासमें जाते हैं, फिर बाहर निकरते हैं। भीतरसे बाहर, बाहरसे भीतर जाते-आते हैं ॥१२॥ सो सत्सङ्गमें पारखपदको खोजि देखो—जाते जीव बहुरि गर्भवासमें न उलटि समाय ॥१३ से १७॥ तो 'ये झूलबेकी भय नहीं।' परन्तु जो पारख पायके शान्त भये, ऐसा जो सुज्ञान होय ॥१८॥ यथार्थ सत्य पारख मिले सुकृति = जीवको, 'तो बहुरि न झूले आन।' जो जीवको पारख प्राप्त होय तो फिर भगविषयमें आसक्त न होय। तो फिर आवागमन काहेका ? सब मिथ्याभूत। ये अर्थ ॥१९॥१॥

॥ ❀ ॥ हिण्डोला ॥ २ ॥ ❀ ॥

बहु विधि चित्र बनायके। हरि रचिन क्रीड़ा रास ! ॥१॥
जाहि न इच्छा झूलबेकी। ऐसी बुद्धि केहि पास ? ॥२॥

टीका गुरुमुखः—तीर्थ, मूर्त्ति, देव, देवहरा, कथा, पुराण, पोथी, ग्रन्थ, मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र औ नाना भेष—योगी, संन्यासी, जङ्गम, वैरागी। काहू खाक लपेटी, कोऊ भगवे वस्त्र पहिरे, कोई कान फाड़े, कोई बाल–उन्मत्त--पिशाच हुए। ऐसे बहुविधि चित्र बनायके हरि कहिये गुरुवा, माया; सो ताने क्रीड़ारास खेल रचा। अब हरि कहिये माया, माया कहिये स्त्री; सो ताने नाना प्रकारके शृङ्गार किया।

कवित्तः—नाकमें बेसर रचि, अङ्गहूँ केसर जामें। भौंहकी कमान बिच, अञ्जन रेख लाई है ॥ कचमें फुलेल टीका, बेंदीकाहू जामें मेल। मोतिनके झेल सारी, जरतारी भाई है ॥ शोभत विशाल भाल, ताहूपर रेख लाल। कर्ण भूषण कण्ठमाल, डोलत छबि छाई है ॥ चम्पकली, पञ्चकली, दुलरि तिलरि मोहन-माल। रत्नमाल मुक्तमाल, भूषित अधिकाई है ॥ कंकन किंकिनि, मुद्रिका, चमक चूरी। पाँवोंके नूपुर दे, कामको जगाई है ॥ १ ॥

इस प्रकारसे बहुविधि चित्र स्त्री मायाने बनाया औ आप क्रीड़ा करनेके वास्ते रासमण्डल, विषयमण्डल संसार रचा। ये अर्थ ॥१॥ अब स्त्री माया औ गुरुवा माया—इन दोनोंकी रासक्रीड़ा, भक्ति-विषयमें न झूलना, ऐसी बुद्धि केहि पास ? झूलनेके आशाबन्द सब कोई हैं। ये अर्थ ॥ २ ॥

झूलत-झूलत बहु कल्प बीते। मन नहिं छाड़ै आश ॥३॥
रच्यो रहस हिण्डोरवा। निशि चारिउ युग चौमास ॥४॥

अनेक बार जगत् जाके ब्रह्म हुआ औ ब्रह्म जाके जगत् हुआ, पर अबहीं किसीकी आशा छूटती नहीं। इस गुरुवा-मायाके रहसमें अनेक दाँव जीव राजा हुए औ अनेक दाँव दरिद्र हुए औ अनेक दाँव भागवन्त हुए। औ स्त्री मायाके रहसमें अनेक दाँव गदहा भये, अनेक दाँव कुत्ता आदि विषय-योनिनको प्राप्त भये, पर मन अभी आशा छोड़ता नहीं ॥३॥ 'रच्यो रहस हिण्डोरवा।' ये रहस-रूपी डिण्डोला मायाने रचा। निशि कहिये गाफिली, भूल; सो चारिउ युग भूलहीमें उपजते हैं औ भूलहीमें जाते हैं। चौमास = चार वेद, सोई अन्धियारीमें बानी बरसते हैं, जामें जीव सब भीजते जाते हैं औ झूलते जाते हैं। ये अर्थ। औ चारयुग कहिये आठ प्रकारके मैथुन, येही महागाफिली अन्धियारी। भग, मुख, दोनों कुच—ये ही चारमासमें सब झूल रहे हैं ॥ ४ ॥

कबहुँक ऊँचे कबहुँक नीचे। स्वर्ग भूत ले जाय ॥५॥
अति भरमित भरम हिंण्डोरवा। नेकु नहीं ठहराय ॥६॥

'अति भरमित भरम हिण्डोरवा'; जामें सम्पूर्ण जीव झूलते हैं। ये गुरुवा माया औ स्त्री माया; दोनोंके रासवश हुए और कबहूँ ऊँचे घर, ऊँची योनिमें पैदा भये, कबहूँ नीचे घर, नीच योनिमें पैदा भये औ नाना दुःख भोगे। कबहूँ स्वर्गादि योनिनमें गये, कबहूँ पातालमें अधोयोनिनमें परे ॥५॥ ऐसा अति भ्रमित बानी गुरुवाई और स्त्रीका भ्रमहिण्डोला है, जामें जीव सब झूल रहे हैं, जिनकी अणुमात्र स्थिति नहीं। ये अर्थ ॥ ६ ॥

डरपत हौं यह झूलबेको। राखु यादव राय! ॥७॥
कहैं कबीर गोपाल बिनती! शरण हरि तुम आय! ॥८॥२॥

जीवमुखः—ये जगत्के महादुःख औ गर्भयातनाका दुःख औ नाना बानीका त्रास देखके जीव तप्त होके बोलते हैं—'डरपत हौं यह झूलबेको।' जीव त्रिविध तापमें तप्त होके दूसरा कर्त्ता निश्चय किया औ बोलने लगा कि हे यादवराय! भगवन्त! हमारी विनती सुनो! हम दीन-लाचार तुम्हारी शरण आये ॥८॥ ये प्रपञ्च झूलेसे हम बहुत डरते हैं। हमारेको रक्ष! रक्ष! हम तुम्हारी शरण हैं। हमारेको आवागमनसे बचाओ! बचाओ! ये अर्थ ॥ ७ ॥ २ ॥

॥ ❀ ॥ हिण्डोला ॥ ३ ॥ ❀ ॥

लोभ मोहके खम्भा दोऊ । मनसे रच्यो है हिण्डोर ! ॥१॥
झूलहिं जीव जहान जहाँ लगि । कितहुँ न देखों थिति ठौर ॥२॥

टीका गुरुमुखः—लोभ = स्वर्गादिक वासना औ मोह = स्त्री, पुत्र, घर, धन आदिक विषय—ये दोनों खम्भा, औ मनकी कल्पना-बानी, निवृत्ति औ प्रवृत्ति—ये दो रस्सी । ताका अपने मनमें हिण्डोला रचा जीवने । तामें आप ही झूलने लगा । ये अर्थ ॥१॥ 'झूलहिं जीव जहान जहाँ लगि ।' अब जेते जहानके जीव हैं सो सब भरम कर्ममें झूलते हैं । कहीं स्थिति–ठौर दीखती नहीं । जो बड़े-बड़े महात्मा सब पैदा भये, तिन सबकी बानी औ वेदबानी हाजिर है । तुम विचार करके देखो—पारख ठौर कहीं प्राप्त भई नहीं, कि और कोई वेदादिक बानीमें पारखस्थिति दिखाती नहीं । ये अर्थ ॥ २ ॥

चतुर झूलहिं चतुराइया । झूलहिं राजा शेष ॥३॥
चान्द सूर्य दोउ झूलहीं । उनहुँ न आज्ञा भेष ॥४॥

चतुर = ब्रह्मादि ज्ञानी चतुराई = ज्ञानमें झूलते हैं, कहते हैं कि हम ब्रह्म, हमारे ऊपर कोई नहीं । 'झूलहिं राजा शेष ।' योग-समाधिमें शेष झूलते हैं, कहते हैं कि हम मुक्त, हम सिद्ध ॥३॥ 'चान्द सूर्य दोउ झूलहीं ।' चान्द कहिये कर्मयोगी, सूर्य कहिये कर्मसंन्यासी; ये दोनों वेदआज्ञा-प्रमाण भेष धारण करके नाना कल्पनामें झूलते हैं ॥ ४ ॥

लख चौरासी जीव झूलहीं । रवि सुत धरिया ध्यान ॥५॥
कोटि कल्प युग बीतिया । अजहुँ न माने हारि ॥६॥

चौरासी कहिये देह । सो देहअभिमानयुक्त सब जीव होके स्त्रीदेहपर लक्ष्य लगाये । रविसुत कहिये यम, यम कहिये स्त्री । सो जीवको स्त्रीका ध्यान लगा ॥५॥ सौ कोटि कल्प हो गये, कोटि कल्प युग बीत गये, आज पर्यन्त जीव झूलते जाते हैं । कोई हार नहीं मानता । स्त्रियनके पाँव सोई खम्भा । विषय-झूलेपर बैठके भगमें जाते हैं; बाहर निकरते हैं, फिर गर्भमें जाते हैं । ये अर्थ ॥६॥

धरति अकाश दोउ झूलहीं । झूलहिं पौना नीर ॥७॥

देह धरे हरि झूलहीं । ठाढ़े देखहिं हंस कबीर ॥८॥३॥

जब स्त्रीका निदिध्यासन लगा, तब कामअग्नि प्रचण्ड हुई औ धनञ्जय वायुने रेत हिलाय दिया । तब धरती = देह, औ आकाश = काम—ये दोनोंमें युक्त होके जीव विषयझूलेपर बैठे औ भगद्वारेमें झूलते हैं ॥७॥ इसी प्रकारसे हरि = माया देह धारण करके जीव सब आवागमनमें, स्वर्ग-नरकमें, ब्रह्म-जगत्‌में, स्त्री-पुरुषमें झूलते हैं । औ हंस कबीर कहिये पारखी जीव, सो सदा पारखपर आरूढ़ होके सबका तमाशा देखते हैं औ जापर कृपा करते हैं, ताहूको परखाय देते हैं । ये अभिप्राय । तो याको तात्पर्य अर्थ ऐसा है कि जो कोई पारखपर आरूढ़ भये, सो पारखरूप होके आवागमन, जगत्--ब्रह्म, स्वर्ग-नरक, पिण्ड-ब्रह्माण्ड—ये चार प्रकारके झूलेसे सोई बचे; औ ज्ञानी, भक्त, योगी सब झूलेमें झूलते हैं । ये अर्थ । धरती कहिये स्थूल, नीर कहिये सूक्ष्म, सूर कहिये कारण, पवन कहिये महाकारण, आकाश कहिये कैवल्य—ये पाँच देह वेदके प्रमाणसे जीवनने मानी, सोई झूला रचा * । . सूक्ष्म-स्थूल दोनों खम्भा औ कैवल्य सोई डाँड़ी, महाकारण सोई रस्सी, औ कारण सोई पटरिया, झूलनेवाला जीव।

* तेरह प्रकारके हिण्डोलेका कोष्ठक—

संख्या	खम्भा	डाँड़ी	रस्सी	पटरिया	झूलनेवाला
(१)	स्थूल-सूक्ष्म	कैवल्य	महाकारण	कारण	जीव
(२)	माँ-बाप	द्रव्य-सम्पत्ति	पुत्र-कुटुम्ब	स्त्री	जीव
(३)	जीव-शिव	पारब्रह्म	ईश्वर	माया	जीव
(४)	स्थूल-विराट्	आतमा	तुर्या (मूलमाया)	अविद्या कारण	जीव
(५)	ब्रह्मा-विष्णु	ब्रह्म	माया	अज्ञान	जीव
(६)	इङ्गला-पिङ्गला	निर्विकल्प	सोहं	सुषुम्ना	जीव
(७)	हङ्कार-मन	अन्तःकरण	चित्त	बुद्धि	जीव
(८)	निर्गुण-सगुण	वेद	श्रुति	स्मृति	जीव
(९)	कर्म-उपासना	ज्ञान	योग	भक्ति	जीव
(१०)	अकार-उकार	बिन्दु	अर्द्धमात्रा	मकार	जीव
(११)	शुभ-अशुभ आशा	देवता	सप्त कोटि महा-मन्त्र	यन्त्र-तन्त्र क्रिया	जीव
(१२)	धरती-जल	आकाश	बायु	अग्नि	जीव
(१३)	जागृति-स्वप्न	उन्मुनी	तुर्या	सुषुप्ति	जीव

अथवा २. माँ–बाप दोऊ खम्भा औ द्रव्य–सम्पत्ति डाँड़ी, पुत्र–कुटुम्ब आदि डोरी औ स्त्री पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ३. जीव–शिव दोऊ खम्भा औ पारब्रह्म डाँड़ी, ईश्वर डोरी, माया पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ४. स्थूल–विराट् दोऊ खम्भा औ आत्मा डाँड़ी, तुर्या मूलमाया डोरी, अविद्या कारण पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ५. ब्रह्मा–विष्णु दोनों खम्भा, ब्रह्म डाँड़ी औ माया डोरी, अज्ञान पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ६. इड़्गला–पिङ्गला दोनों खम्भा, सोहं डोरी औ निर्विकल्प डाँड़ी, सुषुम्ना पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ७. हङ्कार–मन दोनों खम्भा, अन्तःकरण डाँड़ी, चित्त डोरी, बुद्धि पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ८. निर्गुण–सगुण दोनों खम्भा, वेद डाँड़ी, श्रुति डोरी, स्मृति पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ९. कर्म-उपासना दोनों खम्भा, ज्ञान डाँड़ी, योग डोरी, भक्ति पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा १०. अकार--उकार दोनों खम्भा, बिन्दु डाँड़ी, अर्धमात्रा डोरी, मकार पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा ११. शुभ--अशुभ आशा सोई खम्भा, देवता डाँड़ी, सप्तकोटि महामन्त्र डोरी औ यन्त्र-तन्त्र क्रिया पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा १२. धरती--जल दोनों खम्भा, आकाश डाँड़ी, वायु डोरी, अग्नि पटरिया, झूलनेवाला जीव। अथवा १३. जागृति--स्वप्न दोनों खम्भा, उन्मुनी डाँड़ी,, तुर्या डोरी, सुषुप्ति पटरिया, झूलनेवाला जीव। ये अर्थ। इस प्रकारका हिण्डोला गुरुने बताया, जामें सब जीव झूलते हैं। सो हे सन्तो! ये झूला छोड़ो! ये अभिप्राय। तो गुरुने झूला तो परखाया; परन्तु बिना भूमिका कछु झूला खड़ा होता नहीं। ये शङ्का। तो छठई तेरी देह, सोई झूलेकी भूमिका। सो तू झूला छोड़ औ भूमिकापर ठहर! ये अभिप्राय। तो ये पाँच-पाँच पचीस प्रकृति सम्पूर्ण झूले बनीं औ जीव सब अनेक प्रकारसे झूलने लगे; औ जो उतर परा झूलेसे, सो भूमिकापर ठहरा। परन्तु ये झूला तो कछु नाश हुआ नहीं औ नाश करेसे नाश होता भी नहीं। जो झूला सब जीव मात्रको प्रिय लगा, सो कोई डोरीमें ही लगे हैं, कोई डाँड़ीमें ही लगे हैं, कोई खम्भनमें ही लगे हैं, कोई पटरियामें ही लगे हैं, कोई बैठे हैं। ऐसा झूला सबको प्रिय है। भला! जो झूलेसे उतर परा जीव औ झूला तो उसके सामने बना है। तो फिर कभी झूलेपर जीव चढ़े, तो क्या करना? क्योंकि झूला भी वही मकानपर हैऔ

जीव भी वही मकानपर है । दोनोंकी भूमिका एक । ये शङ्का । अरे ! जाने झूलेका हवाल सब समुझा औ दुःखरूपी जानके छोड़ा, सो फिर काहेको चढ़ेगा ? जैसे सर्प-बिच्छूको जो जानता है, सो कछु छूता नहीं । ये दृष्टान्त । भला ! झूलाके पूर्वारम्भमें ये जीव कैसा था ? औ कौन तरह ? कौन भूमिकापर था ? औ स्वतन्त्र था ? कि इसपर कोई दूसरा मालिक था ? औ झूला किससे खड़ा हुआ ? कि स्वतन्त्र है ? औ जीव झूलेपर कबसे चढ़ा ? कि निरन्तर झूलेहीपर है ? औ झूलेका कारण कौन है ? या कोई नहीं ? याका भेद हे गुरु दीनदयाल ! बतलाइये ! ऐसी शङ्का सन्तनको भई । तब गुरु साखी कहिके सम्पूर्ण शङ्का निराकरण करते हैं । सो सुनके जो मनन करेगा, ताको अपरोक्ष पारख-स्थिति प्राप्त होयगी । ये निश्चय ॥ ८ ॥३ ॥

॥ * ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा-टीका सहित हिण्डोला दशम प्रकरणम्
श्रीसद्गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ १० ॥ * ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजीके वचनामृतमय मुख्य सत्योपदेशरूपः—

❀ बीजक मूल सद्ग्रन्थः ❀

॥❀॥ साखी एकादश प्रकरणम् प्रारम्भः ॥११॥❀॥

॥ ❀ ॥ दया गुरुकी— ॥ ❀ ॥

॥ ❀ ॥ अथ लिख्यते साखी प्रथम अनुसार ॥ ❀ ॥

पारख स्वरूप सद्गुरु श्रीपूरणसाहेबजी विरचित बीजक-टीका—

[त्रिजा बुझार्थ सहित ।]

॥ ❀ ॥ साखी ॥ ❀ ॥

साखीः—जहिया जन्म मुक्ता हता । तहिया हता न कोय ॥
छठी तुम्हारी हौं जगा । तू कहाँ चला बिगोय ? ॥१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जब पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश आदि, त्रिगुण, अवस्था, प्रकृति, औ स्त्री आदि चार खानि, औ दूसरी मानुष-जाति भी कोई न हती, तब ये जीव आप मुक्त था । कौन प्रकारसे ?। ये शङ्का । तो दूसरा विजातीय बन्धन तो कछु था ही नहीं, तो मुक्त सहज ही था । ये अभिप्राय । जो बन्धन मूलमें न था, सो बीचमें कैसे पैदा भया ? औ पाँच तत्त्व न थे, तब यह जीव कहाँ था ? । ये शङ्का । तो जब पृथिवी न हती, तब साँच भूमिका हती। औ जल न हता, तब विचाररूपी जल था । औ अग्नि न हती, तब शीलका प्रकाश था, औ वायु न हती, तब दयाका पसार था, औ आकाश न हता, तब धीरजका आकाश था । ये जीवके पाँचों अनादि तत्त्व । याहीको ब्रह्माण्ड औ याही तत्त्वनकी देह हंसाकी हती । पक्के तत्त्वनके आधारसे पक्की देह हंसाकी हती । तामें हंस एक औ रूप एक । दूसरा भाव कछु न हता । जीव आपही स्वतः सिद्ध । याको कर्त्ता कोई दूसरा नहीं । ये निश्चय । हे सन्तो ! सोई तुम्हारी छठी देह । ताको छोड़के तुम पञ्च देहनके हिण्डोलामें बैठे । ये अभिप्राय ।

तो कौन प्रकारसे पञ्च देह पैदा भई ? औ कौन प्रकार छठी देह छूटी ? औ कौन प्रकार जीव हिण्डोलेमें परा ? ये शङ्का । तो छठी देहमें जब हंस था, तब बहुत चैनमें सुखी था । सो एक समय हंसने अपनी देह औ अपना ब्रह्माण्ड देखके परम हर्षायमान हुआ । तब इन्द्रीगोलक औ इन्द्रियनके विषय थे कि नहीं ? ये शङ्का । तो न कच्चे इन्द्रीगोलक, न कच्चे इन्द्रिनके ब्यौहार थे । तो कैसे थे ? औ कैसे देखा ? सो सुनो—विचाररूपी नेत्र औ शीलका प्रकाश औ सत्य सोई भास । सो विचाररूपी नेत्रसे देखा । ये अभिप्राय । अब छठई देह* प्रथम वर्णन करता हौं; सो सुनोः—साँचकी प्रकृति—निर्णय नाड़ी, निर्बिन्दु, निर्मल मांस, प्रकाश त्वचा, स्थिर हाड़, क्षमा रोम । विचारकी प्रकृति—अस्ति-नास्ति पद बिलगान सोई पसीना, शुद्ध सोई बिन्दु, हेतु सोई रक्त, अमल सोई राल, निर्मल सोई मूत्र । शीलकी प्रकृति—अक्षुधा, अतृषा, निर्मैथुन, निरालस, अनिद्रा । दयाकी प्रकृति—अलोल, अचल, अपसर, असङ्कोच, अधावन । अब धीरजकी प्रकृति—अकाम, अक्रोध, निर्लोभ, निर्मोह, निर्भय । ये पाँचकी पचीस प्रकृति । अब दश इन्द्री सुनो—शीलकी इन्द्री नेत्र-पाँव । धीरजकी इन्द्री कान-वाक् ।

*—कची देहकी तत्त्व-प्रकृतियोंका कोष्ठक वसन्त-१२, पृष्ठ-४६८ में दे दिया गया है। वहाँसे देख लीजियेगा । यहाँ पक्की देहकी तत्त्व-प्रकृतियाँ कोष्ठकके अन्तर्गत दिखाई गई हैं, जो प्रथम त्रिजाके अनुसार दरशाकर पीछेसे पञ्चग्रन्थी एवं अन्यत्र कहे अनुसार भी कोष्ठकके भीतर दिखा दी गई हैं ॥

तत्त्व	प्रकृतियाँ	इन्द्रियाँ
१. सत्य	निर्णय, निर्बिन्दु निर्मल, प्रकाश, स्थिर, क्षमा । [निर्णय, निर्बिन्द, प्रकाश, स्थिर, क्षमा]	गुदा-नाक
२. विचार	अस्ति-नास्ति पद बिलगान, शुद्ध, हेतु, अमल, निर्मल । [अस्ति-नास्ति पद बिलगान, यथार्थ साँच, व्यवहार शुद्धता ग्रहण, परख यथा टकसार, बोधहेतु वेदादि वाणी ग्रहण]	लिङ्ग-जिह्वा
३. शील	अक्षुधा, अतृषा, निर्मैथुन, निरालस, अनिद्रा । [क्षुधा-निवारण, प्रिय वचन, शान्त बुद्धि, पारख प्रत्यक्ष, सब सुख प्रकट] ।	नेत्र-पाँव
४. दया	अलोल, अचल, अपसर, असङ्कोच, अधावन । [अद्रोही, सम, मित्र जीव, अभय, नैन अद्भुत] ।	त्वचा-हाथ
५. धीरज	अकाम, अक्रोध, निर्लोभ, निर्मोह, अभय । [मिथ्या त्यागन, सतमत ग्रहण, निःसन्देह, साधु-सेवन, हन्ता-निरसन] ।	कान-वाक्
६. त्रिगुण	विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति ।	

साँचकी इन्द्री गुदा—नाक। दयाकी इन्द्री त्वचा-हाथ। विचारकी इन्द्री लिङ्ग औ जीभ। ये दश इन्द्रियाँ। अब तीन गुण सुनो—विवेक, वैराग्य औ बोधभाव (गुरुभक्ति) इस प्रकारकी तेरी छठई देह। सो ताही देहको हंसने देखा औ खुश हुआ। सोई हौं जागा, आनन्द जागा, जो सर्वोत्कृष्ट आनन्द। तहाँ हंसकी तत्त्व-प्रकृति आनन्दमें लय हो गई और देहकी विस्मृति सुषुप्तिवत् भई। सो हंसदेह छूटी औ कैवल्यदेह हंसको प्राप्त भई। तहाँ अभाव-भूमिका, विज्ञान-जल, ब्रह्माग्नि अग्नि, निरान्त-वात, निजाकाश आकाश, तत्त्वमस्यादि त्रिगुण औ प्रकृतितीत प्रकृति। तहाँ हंस कछु काल रहे, फिर चैतन्य स्फूर्ति हुई। सो कैवल्यदेह हंसकी छूटी, जाको सब आत्मा अधिष्ठान ब्रह्म बोलते हैं। फिर हंसको महाकारण-देह प्राप्त भई। तहाँ सुलीन-भूमिका, जानीब-जल, प्रकाश-अग्नि (बड़वाग्नि), चिन्मय-वात, चिदाकाश आकाश, तुर्याअवस्था, साक्षी-बोध-ज्ञान—ये त्रिगुण सकल सम्पत्ति सहित प्राप्त भये। फिर तहाँते प्रत्यगात्मा-अभिमानसे प्राज्ञअभिमान उत्पन्न भया, तब सुषुप्ति अवस्था भई। तब हंसको कारणदेह प्राप्त भई। तहाँ सौलेष्टता-भूमिका, आवर्णजल, मन्दाग्नि-अग्नि, स्थिर-पवन, महदाकाश आकाश, जड़-जाड़-मूढ़—ये त्रिगुण। तहाँ हंस कछु काल रहे। फिर प्राज्ञ अभिमानसे तैजस उपजा, तब हंसको लिङ्गदेह प्राप्त भई। तहाँ स्वप्न-अवस्था, गतागत-भूमिका, चञ्चल-जल, कामाग्नि-अग्नि, गुल्फवायु, मठाकाश आकाश, रेचक-पूरक-कुम्भक—ये त्रिगुण। इस प्रकारकी लिङ्ग देह। तहाँते तैजस अभिमानसे विश्वअभिमान पैदा हुआ। सो स्थूल देह हंसको प्राप्त भई। तहाँ जाग्रत्-अवस्था; क्षिप्राभूमिका, कामजल, जठराग्नि अग्नि, श्वासवायु, शून्य-घटाकाश, रज-तम-सत्त्व—ये त्रिगुण, दश इन्द्रियाँआदि विकार, गोलक, विषय सब पैदा भये औ हंसको स्मृति आई। हङ्कार खड़ा हुआ, तब पाँच पञ्चक पैदा भये—अन्तःकरण, चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार। आकाश पञ्चक—अर्धशून्य, ऊर्ध्वशून्य, मध्यशून्य, सर्वशून्य, महाशून्य। वायु पञ्चक-प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान। अग्नि पञ्चक—कान, नाक, आँखि, जीभ, त्वचा। जल पञ्चक—शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध। पृथिवी पञ्चक—हाथ, पाँव, मुख, गुदा, लिङ्ग। एवं पञ्च पञ्चक निर्माण भये औ पचीस प्रकृति निर्माण भई। हंसकी पक्की देह जायके कच्ची देह हुई औ पक्का ब्रह्माण्ड जायके कच्चा ब्रह्माण्ड हुआ। धीरजते आकाश, दयाते वायु, शीलते तेज, विचारते जल,

सत्यते पृथिवी, गुणनसे गुण औ प्रकृतिकी प्रकृति । इस प्रकारसे तेरी छठई देहसे हौं भाव आनन्द जागा, ताते पक्केका कच्चा हुआ । तब हङ्कार आया औ इच्छा किया । ताते नारी आदि चौरासी योनि पैदा भई औ सबमें आप समाया । फिर कल्पित दूसरा कर्त्ता खड़ा किया औ कल्पि-कल्पि नाना बानी, वेद, शास्त्र, पुराण, स्मृति, छन्द, प्रबन्ध, मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र बनाया । अब इनके पीछे तू कहाँ चला बिगोय ? हे गुरु ! बिगोनेका अधिष्ठान मेरी छठी देह । सो सब भास-अध्यास छोड़के जो मैं छठी भूमिकापर ठहरा तो फिर येही दशाको प्राप्त होऊँगा । क्योंकि जब कछु न हता औ जीव स्वतन्त्र मुक्त था, तो उसे क्या खुशी थी कि मेरी पक्की देह जाय औ कच्ची देह होय ? औ ऐसी दरिद्र दशा होय ? ये कछु उसको इच्छा न होके ये दशा प्राप्त भई, तो अब वो देहको प्राप्त भया । औ फिर ऐसी दशा न होवेगी, याको प्रमाण क्या ? ये सम्पूर्ण कचा मसाला पञ्चदेह सहित छठी देहमें था । अगर न होता तो कहाँसे निकरता ? ये शङ्का । तो छठी देह तो हौं भाव औ सब बिकारका मूल ठहरा । अब तेरी छठई देह कहाँ है ? औ पञ्च देह कहाँ है ? तू यथार्थ परखके देख ! तो हे गुरु ! अब तो मेरेको पक्की देह आदि चारों देह कच्ची स्थूल देहमें मालूम होती हैं । तो हंस ! तुम विचार करो कि प्रथमारम्भमें स्थूल देह आदि पाँचों देह एक पक्की देहमें थीं औ अब पक्की आदि पञ्च देह स्थूलमें हैं । तो सोई पक्की कच्ची हो गई । अब पक्की क्या कहीं न्यारी बैठी है ? नाहक मिथ्या कल्पना काहेको करता है ? ये पाँच देह तेरेको परखाके छुड़ानेके वास्ते मात्र छठी देह सिद्ध किया । सो तू छवों देह परखके पारख-भूमिकापर ठहर । पारखीको न पक्कीसे काम, न कच्चीसे काम । जो छवों भूमिका परखै सो पारखी । ताका स्वरूप पारख । तो पारखी पारखरूप एक । पारख जीवकी भूमिका और सब नास्ति धोखा । पारखीमें कच्ची-पक्की कछु सम्भवती नहीं । जब कच्ची नाशी, तब पक्की भी गई । जबलग पक्की, तबलग कच्ची । जबलग कच्ची तबलग पक्कीकी रहनि लेना । और पक्की-कच्चीसे कछु काम नहीं । यथार्थ पारखपर स्थिर होना । ये अर्थ ॥ १ ॥ *

---

* टिप्पणी:--साखी १ का महाभाष्य--

साखीः—जहिया जन्म मुक्ता हता । तहिया हता न कोय ॥
छठी तुम्हारी हौं जगा । तूँ कहाँ चला बिगोय ? ॥ १ ॥

महाभाष्य; गुरुमुखः—सद्‌गुरु कहते हैं—हे नरजीव ! जहिया = जिस समय पहले वा जब-जब; जन्म = मनुष्य-जन्ममें तुम, हता = था; तब भी मुक्ता = मुक्त होनेकी स्वतन्त्र कर्मभूमिकामें ही था। अब इस मनुष्य-जन्ममें भी वैसे ही मुक्त होने वा न होनेके लिए तुम स्वतन्त्र हो। तहिया = उस समय वा तब-तब तीन खानियोंकी पराधीनता, परतन्त्रता वा परवशतारूप बन्धन एवं कोय = कोई कुछ भी जबरन तुम्हें पकड़कर बन्धनमें बाँधे रखनेवाला बन्धनदाता, हता न = कोई नहीं था। अब भी वैसा कोई नहीं है। परन्तु तुम अकेला मुक्त-स्वरूपमें स्थिर तब भी नहीं था, अब भी नहीं है। क्योंकि तुम देहधारी होनेसे; छठी = पाँच तत्त्व और छठवाँ मनादि सङ्घात संयुक्त ही सर्वदासे था और अब भी है। अथवा पञ्चकोशरूप पञ्च देह एवं छठवीं हंसदेहरूप कर्मभूमिका मनुष्यदेहमें तुम पहले भी था, अब भी है। इसलिए पूर्व संस्काररूप खानि-वाणीके गुप्त अध्यास, आसक्तिके कारणसे तुम्हारी = तुम्हारे मनमें, हौं = अहङ्कार; विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्म, निरञ्जन और तामस नामक षट् अभिमान; जगा = भीतरसे जगकर बाहर उत्पन्न हुए। इस कारण अहङ्कार, अध्यासवश पुनः भव-बन्धनमें आवागमनकी ओर ही प्रथम भी चला गया था। अब भी वे ही सब विकार, अहङ्कार जगा रहे हो। अतः वैसी भ्रम-भूलमें पड़े हे जीव ! अपनी मुक्ति-स्थितिको; बिगोय = बिगाड़कर वा विनाश करके अब कहाँ भव-बन्धनकी ओर पुनः चला जा रहा है। अब भी चेतो ! सब अहङ्कार, अध्यासको परित्याग करके छठी = इसी नरदेहरूप हंसदेहमें सर्व सद्‌गुणोंको धारण करके पारखस्वरूपमें स्थिर होकर जीवन्मुक्त हो जाओ !

अथवा हे जीव ! पहले जिस समय मुक्त होनेके मनुष्य-जन्ममें तुम था, उस समय भी सत्पुरुषार्थ, सत्सङ्ग, विवेक-वैराग्यादि करनेके लिए स्वतन्त्र था। पशुवत् रुकावट, असमर्थ, परतन्त्र होनेका विशेष कारण कोई कुछ भी नहीं था। परन्तु देहधारी होनेसे पूर्व जन्मके अध्यासका बीज सब तुम्हारे मनमें जमा था। इसीसे छठी = मनुष्यदेहके छठवें मनमें पञ्च तत्त्वोंके पञ्च विषय-भोगोंका अहङ्कार तुम्हारी ही गाफिलीसे भीतर-बाहर जगा, उत्पन्न वा जाग्रत् होकर विस्तार हुआ, तब विषयासक्त होकर व्यर्थ भोगोंमें जीवन बिता करके चौरासी योनियोंमें चला गया था। अब फिर भी शुभ संस्कारसे मुक्त होनेके इस मनुष्य-जन्ममें तुम आ पहुँचे हो। अब भी इस कर्मभूमिकामें भोगभूमिकाके समान तुम्हें कोई भी परतन्त्रता नहीं है। महान् पुरुषार्थ करनेपर सर्व अध्यासको मिटाकर अभी जीवन्मुक्त भी हो सकते हो। परन्तु पूर्ववत अब भी अपने मनमें पञ्च विषयोंका एवं शरीर आदिका अहङ्कार, मोह-ममता, आसक्ति तुम जगा रहे हो, उसीको बढ़ाते ले जा रहे हो। फिर अब भी हंसपदको विनाश करके तुम कहाँ चौरासीकी ओर चले जा रहे हो ? चेत करो ! सोचो-समझो ! वर्त्तमानकी नरदेहमें सर्व अध्यास, अहङ्कारकोपरित्याग करके सद्‌गुणधारी निरहङ्कारी हो अपना जीवनकल्याण करो ! ॥

इस साखीमें सद्‌गुरु—'पहले कभी जीव मुक्त था' ऐसा तो नहीं बता रहे हैं। क्योंकि जीव पहले कभी मुक्त था, ऐसा कहनेका अभिप्राय होता, तब "जहिया जीव

मुक्ता हता" ऐसा साफ कहते। फिर मुक्त जीव कभी भव-बन्धनमें किसी कारणसे नहीं आता है। उसे उपदेश भी दिया नहीं जाता। परन्तु साखीमें "जहिया जन्म मुक्ता हता" कहा है। इससे मुक्त होनेका जन्म मनुष्यजन्मके सिवाय और कोई नहीं ठहरता है। यदि पशु आदि सब जन्मसे जीव मुक्त होता, तब फिर जन्म, मरण, गर्भवासमें जीव क्यों ? और कैसे पड़ता ? यदि मुक्तिसे भी बन्धनमें आता है, ऐसा कहोगे, तब तो अब भी मुक्त होनेवाले फिर भव-बन्धनमें चले आवेंगे। फिर बोध, वैराग्यादि मुक्तिके साधनकी विशेषता ही क्या ठहरेगी ? अतएव विवेक-विचार और सद्गुरुके सत्य निर्णयसे—'सब जीव अनादिकालसे प्रवाहरूप देह-बन्धनमें पड़ते चले आ रहे हैं। मनुष्यजन्म कर्मभूमिका है एवं पशु, अण्डज, उष्मज—ये तीनों खानियाँ भोगभूमिका हैं। कर्मभूमिकामें पहुँचनेपर सर्व अध्यासको मिटानेवाले पारख-स्वरूपमें स्थित सन्त जीवन्मुक्त भी हो सकते हैं। परन्तु विषयानन्द, ब्रह्मानन्दादिमें भूलनेका एवं अहङ्कारादि विकारोंको बढ़ानेका स्थान भी तो मनुष्यजन्म ही है। यहीं आकर नये कर्म-संस्कारोंको जीव बनाते, पुनः चौरासी योनियोंमें चले जाते हैं। फिर कर्म बनानेके लिए मनुष्यजन्ममें आते हैं। अनादिकालसे इसी प्रकार जीवके अनन्त जन्म बीत चुके हैं। वही पूर्वका दृष्टान्त देकर वर्त्तमानमें कर्म सुधार करके अहं-अध्याससे रहित हो निर्बन्ध मुक्त होनेके लिए सद्गुरु इस साखीमें चेतावनी देकर समझा रहे हैं।' ऐसा समझना चाहिये !॥

अथवा त्रिजाका अभिप्राय भी दिग्दर्शन कराते हैं। अब ध्यानपूर्वक सुनियेः—

"चैतन्य जीवके सत्य शुद्ध स्वरूपमें जड़ पाँच तत्त्व, त्रिगुण, तीन अवस्था, पचीस प्रकृति, चारों खानिकी देह, देहके स्वजाति-विजाति आदि भेद अब भी नहीं हैं, तब भी नहीं थे। जीवका शुद्ध स्वरूप तो अब भी इन सबसे मुक्त=अलग है। स्वरूपसे तो जीव सदा मोक्ष, सबसे न्यारा ही है; किन्तु अध्यासके सम्बन्धसे ही देहादि भव-बन्धनमें पड़ा है। जीवके मूल स्वरूपमें बन्धन तो अब भी नहीं है। चेतनस्वरूपके भीतर पाँच तत्त्व भी नहीं हैं। परन्तु अनादि पाँच तत्त्वोंका ब्रह्माण्ड एवं अध्याससे रचित कार्यरूप पिण्ड शरीरके सम्बन्धका प्रवाह सदासे चला ही आ रहा है। हंसदेहरूप मनुष्यदेहमें सर्व सद्गुणधारी जीवके मनमें पृथ्वीवत् कठोरता नहीं रहती, तब सत्य भूमिकारूप नम्रता, कोमलता रहती है। जलवत् चञ्चलतासे जहाँ-तहाँ नहीं बहता है, तब विचारपूर्वक चलता है। अग्निवत् क्रोधसे जलाकर विनाश नहीं करता है, तब शीलसे प्रकाश करके सबकी रक्षा करता है। वायुवत् चञ्चलता, निर्दयताका विस्तार नहीं रहता है, तब दयाका फैलाव रहता है और आकाशवत् शून्य, पोल, गाफिली भी नहीं रहती है, तब धीरजका आकाश=अन्तःकरणमें धैर्य-धारणा होती है। ये पाँचों अनादि तत्त्वोंके सद्गुण, रहनि विवेकी जीव अपनेमें धारण कर लेते हैं। इसीका ब्रह्माण्ड=शुद्ध निर्णयकी वाणी बाहर भी वर्णन करते हैं। ऐसे शुद्ध सार सद्गुणरूप तत्त्वोंकी हंसदेह होती है। वही मनुष्यदेहमें हंसरूप विचारवान् जीव धारण करते हैं। सत्य, विचार, शील, दया और धैर्य; ये पञ्च तत्त्वोंसे सारभागमें

रहनि लेनेसे इन्हें पक्के तत्त्व कहते हैं। सद्गुणोंकी भूमिकाको नरदेहमें हंसकी पक्की देह कही जाती है। हंसजीव निज स्वरूपमें एक है। उसके मनुष्यदेहका रूप भी एक समयमें एक ही रहता है। दूसरा भाव हो नहीं सकता है। जीवका स्वरूप अपने-आप स्वतःसिद्ध अजर, अमर, अखण्ड नित्य-सत्य है। इसका कर्त्ता दूसरा हो नहीं सकता है। ये निश्चय।

हे सन्तो! वे हो सद्गुणरूप तुम्हारी छठी हंसदेह इसी मनुष्यदेहमें ही है। उसमें स्थिर हो रहना छोड़कर तुम लोग पञ्च देहोंके हिण्डोलेमें भ्रम-भूलसे जाकर क्यों बैठकर भूल रहे हो? मिथ्या मानन्दीको क्यों ग्रहण कर लिये हो? अब भी परखकर न्यारे होओ! ये अभिप्राय। छठी देहरूप मनुष्य-शरीरमें सद्गुण संयुक्त हंसरूप जीव प्रथम भी जब थे, तब बहुत सुखी रहते थे। नरदेहमें अपने सद्गुण और नम्र-कोमल वाणीका विस्तार, प्रचार होकर ब्रह्माण्ड = बाहर संसारमें अन्य मनुष्योंपर भी प्रभाव पड़ा हुआ, उससे विशेष मान-महिमा होती हुई; वैसी अपनी देह और अपना ब्रह्माण्ड देखकर वे विशेष हर्षित हो अभिमान संयुक्त हुए। अन्य अज्ञानी विषयी मनुष्योंके समान वे प्रथम कच्चे रूपमें इन्द्रियोंका व्यवहार नहीं करते थे। विचारकी दृष्टिसे ही देखते थे, शीलके प्रकाशको ही फैलाते थे। सत्य जीवकी सत्तासे ही सब कुछ भासते वा देखते थे। ये अभिप्राय।

अब छठी देहके गुण-लक्षणका वर्णन प्रथम करता हूँ; सो सुनो :—

हंसदेहमें शुद्ध गुणरूप पाँच तत्त्वोंकी पचीस प्रकृतियाँ:—सत्यकी पाँच प्रकृतिः-निर्णय, निर्बिन्द, प्रकाश, स्थिर और क्षमा। निर्णय करना नाड़ी है। वासना रहित निर्बिन्दु है। निर्मलता मांस है। प्रकाशकी त्वचा है। स्थिरताका हाड़ है। क्षमाका रोम है। विचारकी पाँच प्रकृतिः—अस्ति-नास्ति पद निर्णय, यथार्थ साँच, शुद्ध व्यवहार, यथार्थ परख टकसार, बोध हेतु वेदादि वाणी ग्रहण। अस्थि-नास्ति पद बिलगाना ही पसीना है। शुद्ध ही बिन्दु है। बोधका हेतु ही रक्त है। अमल (निर्मल) ही राल है। निर्मलता ही मूत्र है। शीलकी पाँच प्रकृतिः—शुधा निवारण, प्रियवचन, शान्त बुद्धि, पारख प्रत्यक्ष, सर्वसुख प्रकट। अक्षुधा = भूखरूप आशा रहित। अतृषा = प्यासरूप तृष्णा रहित। निर्मैथुन = अष्ट मैथुनोंसे रहित। निरालस = आलस्य रहित। अनिद्रा = अज्ञानकी गाफिलीसे रहित रहते हैं। दयाकी पाँच प्रकृतिः—अद्रोही, सम, मित्र जीव, अभय, अद्रूत नयन। अलोल = चञ्चलतासे रहित। अचल = स्थिर। अपसर = इच्छाके फैलावसे रहित। असङ्कोच = खिंचाव, हिचक, कमीसे रहित। अधावन = भ्रम-कल्पनादिमें न दौड़नेवाले होते हैं। धैर्यकी पाँच प्रकृतिः--मिथ्या त्याग, सतमत ग्रहण, निःसन्देह, साधु सेवन, हन्ता निरसन। अकाम = कामनासे रहित। अक्रोध = क्रोधसे रहित। निर्लोभ = लोभसे रहित। निर्मोह = मोह-ममतासे रहित। निर्भय = सर्व भयसे रहित होते हैं। ये पाँच शुद्ध तत्त्वकी पचीस प्रकृति हुई। [पञ्चग्रन्थी-गुरुबोधमें, दोहा-१२१ से १३२ तक; और तत्त्वयुक्त निजबोध विवेकमें, पृष्ठ-२३६ से २४१ तक इनका विस्तार भाव वर्णन किया है। चाहे वहाँसे भी देख लीजिये!] त्रिजामें लिखा

है—अब हंसदेहकी दश इन्द्रियाँ कौन हैं ? सो सुनोः—

शीलकी दो इन्द्रियाँ—नेत्र और पाँव। धीरजकी दो इन्द्रियाँ—कान और वाक्। सत्यकी दो इन्द्रियाँ—गुदा और नाक। दयाकी दो इन्द्रियाँ—त्वचा और हाथ। विचारकी दो इन्द्रियाँ—लिङ्ग और जीभ। ये दशों इन्द्रियाँ मनुष्य देहधारी हंसजीवमें होनेका वर्णन किया है। इससे स्वयं सिद्ध हुआ कि नरदेह ही हंसदेह है। मनुष्यसे पृथक् और कोई हंसदेह कहीं होनेकी मिथ्या कल्पना नहीं की गई है; ऐसा समझना चाहिए। अब तीन गुण सुनोः—

रजोगुणकी शुद्ध कला—विवेक; निराशरूप तमोगुणकी शुद्ध कला—वैराग्य; और सत्त्वगुणकी शुद्ध कला—गुरुभक्ति वा बोध-भाव; ऐसे त्रिगुण कहे हैं। ये ही सर्व सद्‌गुण संयुक्त तेरी छठी हंसदेह है। वैसे अपने गुण-लक्षणोंको हंसरूप कोई साधु मनुष्यने अपनेमें उक्त गुण-लक्षणोंकी विशेषता देखकर अति प्रसन्न हुआ, तब "मैं खूब गुणवान् हूँ, मेरे समान और कोई नहीं" ऐसा सूक्ष्म हौं जागा। आनन्दरूप अहङ्कार जगाया, उसीको सर्वोत्कृष्ट परमानन्द मान लिया। उसी अहङ्कारसे सद्‌गुण-रूप तत्त्व-प्रकृतिमें हेरफेर हो गया। अपने चैतन्य-स्वरूपको भूलकर सुषुप्तिवत् गाफिल हुआ, तब विवेक-विचार करके सार-ग्रहण करनेकी हंसदेहका गुण-लक्षण छूट गया। सर्वत्र परिपूर्ण कैवल्य ब्रह्म मैं हूँ, ऐसा गोलमाल करके कैवल्य देहमें मान लिया। महाकारण, कारण, सूक्ष्म और स्थूल देहके अभिमानको भी विभिन्न रूपमें जीवने मान लिया।

इन पाँचों देहोंकी विभिन्न रूपसे मिथ्या मानन्दी करके भ्रम-भूलमें पड़ गया। एक-से-एक उतरता नहीं आया। विवेक-विचारको परित्याग कर देनेपर भ्रमसे कोई कर्ममें भूले, कोई उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञानमें जाकर भूले-भटके, अटक गये। पञ्च तत्त्वों-के कार्यरूप देहमें स्थूल देहकी पचीस प्रकृतियाँ तो ज्ञानी, अज्ञानी, विज्ञानी एवं हंस पारखी, सभीमें एकसमान ही रहती हैं। स्थूल देहकी तत्त्व-प्रकृतिके साथमें ही तो जीवको भूल-भ्रम, बन्धन हो रहा है। इस कारण हंसकी पक्की देह=सद्‌गुण रहनि-रहस्य पलटकर, कच्ची देह=असत्य, अविचार, अशील, निर्दया, अधीरता, लोभ, काम, क्रोध, मोह, भयादि संयुक्त विकारग्रस्त हुए। पक्की=मजबूत, पुख्ता, दृढ़ता, सार बोध-विचारको परित्याग करके, कच्ची=कमजोर, दुर्बल, नकली अबोध-अज्ञानग्रस्त हो गये। वैसे ही पक्का ब्रह्माण्ड=निर्णयकी वाणी, हितकारी कार्य छोड़कर कच्चा ब्रह्माण्ड=अनुमान-कल्पना, भ्रम-भूल संयुक्त गोलमालकी वाणी अहितकारी चाल-चलनवाले हो गये। धैर्य छोड़कर आकाशवत् शून्य गाफिल हुए; दया छोड़कर वायुवत् प्रचण्ड चञ्चल, निर्दयी बने; शील छोड़कर अग्निवत् दाहक, क्रोधी, विनाशक हुए; विचार छोड़कर जलवत् सब चीजको बहा ले जानेवाले हुए; और सत्य छोड़कर पृथ्वीवत् कठोर बने। त्रिगुण और पचीस प्रकृतिकी भी शुद्धता परित्याग करके सम्पूर्ण मलिनता धारण कर लिये। परन्तु धीरज आदि सद्‌गुणसे वास्तवमें आकाशादि पाँचों तत्त्वोंकी उत्पत्ति नहीं हुई है औ कभी वैसा होता भी नहीं है। इसका भावार्थ तो मनुष्य-

देहमें क्रमशः सद्‌गुणोंका परिवर्तन होकर दुर्गुण भर गये, यही दरशानेका है। तेरी छठई देहसे=सद्‌गुणको धारण करनेवाले मनसे अनेक प्रकारके अहङ्कारका भाव एवं उसीमें आनन्दित होनेके बन्धनका अंकुर उदय हुआ। इस कारण पक्के कहलानेवाले ज्ञानीलोग भी अन्तमें अहंकारी बनकर कच्चे अज्ञानी ही हो गये। वैसा पक्काका कच्चा हुआ, तब फिर देहादिके अहंकार संयुक्त विषय-भोगादिकी इच्छा करके कितनेक लोग स्त्री-भोगादिमें भी जाकर फँस गये। उसी अध्यासवश अन्तमें चौरासी योनियोंमें स्त्री-देहादि धारण करके भटक रहे हैं, और कितनेक भ्रमिक लोग भ्रम-कल्पनासे ईश्वरादि दूसरा कर्त्ता मान रहे हैं। कल्पना कर-करके ही वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादि सम्पूर्ण वाणी, अनेक मत-पन्थोंकी साधनाएँ प्राचीनकालके मनुष्योंने संसारमें विस्तार कर रक्खी हैं। अब इनमें अन्धाधुन्ध कहाँ बिगड़ते चले जा रहे हो? बाह्य पाँचों तत्त्वों-का विस्तार और देहादिका सम्बन्ध तो सर्वदासे ही था। तभी तो सब जीव भव-बन्धनमें पड़े हैं। परन्तु मनुष्यजन्ममें जीव कर्म करनेमें स्वतन्त्र, मुक्त हो सकनेकी भूमिकामें पहले भी था और अब भी है। प्रथम साखीके त्रिजाके अन्तमें साफ खुलासा करके निम्न प्रकारसे लिखा है:—

"ये सम्पूर्ण कच्चा मसाला पञ्च देह सहित छठी देह (मनुष्य देह) में था। अगर उसमें न होता, तो कहाँसे निकलता? छठी देह=मनुष्य-देह तो हौं भाव (आनन्द और सूक्ष्म अध्यासका कारण) रूप सर्व विकारोंका मूल ठहरी। सो अब तेरी छठवीं देह कहाँ है? और पञ्च देह कहाँ है? तू यथार्थ परखके देख! शिष्य कहता है—हे गुरु! अब तो मुझको पक्की देह आदि पाँचों देह कच्ची स्थूल देहमें ही मालूम होती हैं। गुरु कहते हैं—हे हंस! अब तुम विचार करो—प्रथम स्थूल देह आदि पाँचों देह एक पक्की हंसदेहमें थीं और अभी स्थूल देहमें ही पक्की आदि पञ्च देह हैं। इससे पक्का ही कच्चा हो गया। अब पक्का क्या कहीं न्यारा बैठा है? नाहक मिथ्या कल्पना क्यों करना? (हंसदेह और कहीं न्यारी है, ऐसी मिथ्या कल्पना क्यों करते हो?) पाँचों देहोंका बन्धन या पञ्चकोशरूप हिण्डोला परखाकर छुड़ानेके लिए छट्ठी पक्की हंसदेह हमने सिद्ध की है। सो अब तू छहों देहको परखकर पारख भूमिकापर ठहर! पारखी-को न पक्कीसे काम और न कच्चीसे काम। जो पाँच देहरूप पञ्चकोशोंके हिण्डोलेके सहित छहों भूमिकाको परखे सो पारखी। उनका सत्य स्वरूप पारख ही है। पारखी और पारख एक स्वरूप। पारख जीवकी निज भूमिका, और सब नास्ति धोखा है। पारख स्वरूपमें कच्ची-पक्की कुछ नहीं सम्भवती। जब कच्ची नाशी, तब पक्की भी गई। देह रहेतक पारखियोंको सत्य, विचार, शील, दया, धैर्य, विवेक, गुरुभक्ति और वैराग्य; इन पक्के सद्‌गुणोंकी रहनि लेना; यथार्थ पारख स्वरूपमें सदोदित लक्ष्य रखकर स्थिर हो रहना चाहिए!" ये भावार्थ॥

यहाँतक त्रिजाका ही विवेचन करके महाभाष्य लिखा गया [निष्पक्ष सत्यज्ञान दर्शन चतुर्थ संस्करण पृष्ठ-१६० से १६४ तक इसबारेमें लिखा है। चाहे देख लीजिये!] नरदेह वा मनुष्यदेहको छोड़कर छठी देह और कहीं अलग नहीं है। सत्य, विचारादि❋

साखीः—शब्द हमारा तू शब्दका । सुनि मति जाहु सरक ॥
जो चाहो निज तत्त्वको । तो शब्दहि लेहु परख !॥२॥

टीका मायामुखः—शब्द कहिये, आवाज कहिये, निराकार कहिये, निःअक्षर कहिये, ब्रह्म कहिये । सो ब्रह्मसे जगत्की उत्पत्ति भई । 'शब्द ब्रह्मेति श्रुतिः ।' हे जीव ! तू शब्दका । माया जीवको उपदेश करती है कि तू ब्रह्मका अंश । कौन तरहसे ? सो सुनो ! परन्तु सुनके धोखेमें सरक मत् जाना । मैं तुम्हें परखानेके वास्ते कहता हौं; जो तुम्हारेको पारखपद मिले । ऐसा गुरु कहते हैं । गुरुमुखः—'जो चाहो निज तत्त्वको । तो शब्दहि लेहु परख ॥' शब्दका आकार सोहं, आवाजका आकार ॐ, निराकारका आकार अनहद, अनहद कहिये ररा, निःअक्षरका आकार आकाशवत् समाधि; अथवा श्वाँस सो निःअक्षर । सो निःअक्षरते अक्षर, कूटस्थ आदि सब जीव पैदा भये—ऐसा सब सामर्थनका औ वेदका प्रमाण है । औ श्वासासे सों, ॐ, रं-ये तीन अक्षर पैदा भये; ये योगिन-का प्रमाण । तब आदि शब्द निःअक्षर । ताते तीन शब्द अक्षररूपी पैदा भये, तो येहू निःअक्षर । जैसा मट्टीका विकार मट्टी, जलका विकार जल; तद्वत् । ये निश्चय जीवनको कैसे हुआ ? सो सुनो—प्रथमारम्भमें जीव पक्केसे कच्चा भया, तब नाना प्रकारके सुख-दुःख, जन्म-मरण आदि भय प्राप्त भये । तब अनुमान जीवमें खड़ा भया कि हमारा कर्त्ता कोई दूसरा है । तब 'अस्ति ब्रह्मेति' ऐसी बानी बोला । ताहीसे वेद पैदा भये औ कर्त्ता का खोज बाहर करने लगे । तब कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड—ये दोनों काण्ड वेद बना; परन्तु संशय कछु छूटी नहीं । तब घटमें सुरत लगायके खोज करता भया तो श्वासमें सोहं शब्द मालूम हुआ । नाभिसे श्वास सकार लेके उठा औ त्रिकुटीके ऊर्धकुम्भ पास आया, तब 'हं' शब्द हुआ । सो 'सोहं-सोहं' में सुरति लगी, तब 'सोहं' 'हंसो' लोम-

---

* शुद्ध गुण, वे ही पक्के तत्त्व कहे गये हैं । पशु आदि प्राणी उन्हें धारण कर नहीं सकते । मनुष्य ही उन सद्‌गुणोंको धारण करनेवाले विवेकी हंस हो सकते हैं । सबसे न्यारे रहकर मनुष्य ही यथार्थ परख सकते हैं । सद्‌गुण रहनि-रहस्यको देह रहेतक धारण किया जाता है । विदेहमुक्त होनेपर पक्के शुद्ध गुण-लक्षण भी अन्तमें कच्ची देहके साथ छूट जाते हैं । केवल ज्ञानगुण स्वरूप मात्र जीवके शुद्ध स्वरूपमें सदा बना रहता है । अतः मुक्ति-स्थितिके लिए सम्पूर्ण अभिमानसे रहित होकर सर्व सद्‌गुणकी रहनि देह रहेतक धारण किये रहना चाहिए ! । ये भावार्थ ॥ १ ॥

विलोम चार अक्षर ध्यानमें आये औ लक्ष्य स्थिर हुआ। तब श्वासा त्रिकुटीसे कण्ठमें आया औ तैजस अभिमान खड़ा हुआ। ताते स्वप्न अवस्था भई। तब नाना प्रकारके पशु-पक्षी खानि पैदा भई। हिरण्यगर्भका अनुभव लेके श्वास हृदयमें आया। सो वहाँसे प्राज्ञ अभिमान खड़ा हुआ औ तैजस लय हो गया, तब स्थावर खानि नाना प्रकारके अंकुरादि पैदा भये औ गाफिली भई औ गाढ़ी निद्रा लगी। (यह सब गुरुवा लोगोंकी मानन्दी दरशायी है) अव्याकृतका अनुभव लेके आगे नाभिस्थानमें श्वास लय भया औ प्रत्यगात्मा अभिमान सहित चिन्मय वृत्ति होके तुर्या अवस्था भई। तब अष्ट सिद्धि, नौ निद्धि आदि षड्गुण ऐश्वर्य उत्पन्न भया। औ मूलमायाका अनुभव लेके निरञ्जन अभिमान पैदा भया, तब निर्विकल्प समाधि भई, औ तुर्यातीत अवस्था, भावातीत भाव, कलातीत कलाके अनुभव सहित भ्रमरगुफामें श्वास लय भया। सो पूर्णानन्द स्वरूपको अनुभव हुआ। तब समाधि खुली। ब्रह्म निश्चय हुआ। तब 'सोहं ब्रह्मास्मि' वाक्य सिद्ध हुआ। इस प्रकारसे सोहं शब्द बनाया। फिर पाँच जगहकी पाँच मात्रा लेके ॐकार शब्द बनाया। तब श्रवण द्वारेसे ब्रह्माण्डमें लक्ष्य लगाया तो 'रा रा' शब्द मालूम भया। तहाँसे लययोग बनाया। इस प्रकारसे तीन शब्द 'सोहं, ॐ, ररंकार' निर्माण भये, तब योगकाण्ड वेदमें बना। फिर तीनों शब्दका अर्थ विचारने लगा, सोई ज्ञानकाण्ड। इस प्रकारसे सम्पूर्ण चारों वेद पैदा भये। सोहंका अर्थ कि सो कोई ब्रह्म है सो मैं ही। वोहंका अर्थ कि वो कोई ब्रह्म है सो मैं ही। ररंका अर्थ कि सब प्रकाश औ तेज मैं ही। इस प्रकारसे 'एक अद्वैत चैतन्य ब्रह्म—ऐसा जो शब्द है सोई हमारा स्वरूप'। ऐसी मानन्दी जीवको हुई, सो संसारमें ईश्वर औ गुरु कहलाये औ दूसरे जीवनको उपदेश किया कि तू ईश्वरका अंश है औ शब्द तेरा मालिक है। तो शब्द हमारा उपदेश, औ तू शब्दका चेला—ऐसा उपदेश जगत्में गुरुवा लोग करते हैं। सो तू सुनके सरके मत्, भ्रमे मत्! ऐसा गुरु जीवको समझाते हैं कि हे जीव! सोहं, ॐ, ररं औ चार वेद, छौ शास्त्र सम्पूर्ण जीवकी कल्पना, औ जेतिक मानन्दी द्वैत-अद्वैत, निर्विकल्प-सविकल्प, सो सब जीवका अनुमान, अध्यास, भास बन्धन है। कछु निजस्वरूप नहीं। जो तू निजस्वरूप चाहता है, तो भास-अध्यास कछु माने मत्। शब्द तो तेरेसे होता है औ तुरत ही नाश होता है। सो बन्धनमें तू मत् परे। शब्दको

परख ले। जासे शब्द परखनेमें आवे, सोई तेरा निज स्वरूप। ये अर्थ ॥२॥

साखी:—शब्द हमारा आदिका। शब्दै पैठा जीव! ॥
फूल रहनकी टोकरी। घोरे खाया घीव ॥ ३ ॥

टीका गुरुमुख:—'शब्द हमारा आदिका' यह मायाका उपदेश भया, तब जीव शब्दमें पैठे। किसीने सोहं शब्दमें सुरत लगाई। किसीने अनहद शब्दमें सुरत लगाई, किसीने वेदमें सुरत लगाई। इस प्रकारसे शब्दमें जीव पैठे औ शब्दरूपी होके मगन भये। सो शब्दकी रहनिमें फूलके ब्रह्म बने, कोई दास बने, कोई ईश बने, कोई साधक कर्मी बने। इस प्रकारसे 'घोरे खाया घीव।' घोरा कहिये, माठा कहिये, ब्रह्म कहिये, शब्द कहिये, बानी कहिये, कल्पना कहिये, भास कहिये, अनुमान कहिये; ताने जीवको खाय लिया, अपनेमें समाय लिया। दूध कहिये जीवरूप, छाँछ कहिये कल्पना, घीव कहिये जीव। ये अर्थ।

कवित्त:—कोई ब्रह्म बने कोई ईश बने, कोई दास कहाय गुलाम घने॥ कोई देहको आपन रूप बने, बिबिचार विशेषन कौन गने? ॥ कोई विषय-मोहमें रहत सने, जिन सत्त विचार सदाहि मने॥ ताते पूरण पारख दूरि रह्यो, भ्रमि जीव अनेकन धार बह्यो॥ नाना मत कल्पिके लत्त गह्यो, तब धोख अनेकन माँहिं बह्यो॥ १ ॥

भला! शब्द तो जीवका अनुमान ठहरा औ शब्दसे माना सो अनुमान ठहरा। तो शब्द मानना, ये ही जीवको बन्धन ठहरा औ शब्द अन्तःकरणसे उठाना, ये जीवकी कल्पना ठहरी। तो शब्द उठाना भी नहीं औ मानना भी नहीं, तो क्या गुमसुम हो रहना? ये शङ्का। तो गुरु कहते हैं कि गुमसुम होना औ शब्द उठाना औ मानना, ये सब जीवका अनुमान मिथ्या धोखा। अरे! जाहीते सम्पूर्ण शब्द, अनुमान, भास, प्रत्यक्ष—ये चारों धोखा परखनेमें आवे, सो पारखपर स्थिर होना औ सबको परखते रहना। शब्द धोखेमें क्यों परना! ये अभिप्राय। तो जो शब्दकी मानन्दी न हुई तो वेदबानी औ गुरुवाई-सिखाई सब मिथ्या। ये शङ्का। भला! गुरुवाई मिथ्या भई, तब सिखाई सहज ही मिथ्या भई। परन्तु जासे सब गुरुवाई-सिखाई परखनेमें आई, सो पारख गुरु तो सत्य है। कौन तरहसे? सो सुनो—जाते सब गुरुवाई, सिखाई, वेदबानी मिथ्या मालूम भई, सो पारख कभी मिथ्या मालूम होती नहीं। क्योंकि पारख

बिना मिथ्या वस्तु औ सत्य वस्तु काहेसे मालूम होवेगी ? तो जाते सब सत्य-मिथ्या परखनेमें आवे सो पारख अस्ति, औ सब नास्ति । तो जब गुरु अस्ति, तब शिष्य सहज ही अस्ति । ये अर्थ । याको एकदेशी दृष्टान्त कहता हौं कि जैसा एक डगालीपर बैठके सब डगाली काटी, औ जिसपर बैठा सो डगाली कछु काटी नहीं । अगर वो डगाली काटी तो आप ही नाश हुआ । ये अर्थ । तद्वत् गुरुसे सब मिथ्या फाँसी कट गई औ गुरु कछु मिथ्या कल्पनासे कट सकते नहीं । अगर कोई कहेगा अपनी गाफिलीसे, तो नाश हुआ, धोखेमें परा । ये अर्थ । भला ! शब्द धोखा औ पारख गुरु सत्य; परन्तु आपने भी शब्द ही बोला । याको मानिये कि न मानिये ? । ये शंका ॥ ३ ॥

साखीः-शब्द बिना सुरति आँधरी । कहो कहाँको जाय ? ॥
द्वार न पावै शब्दका । फिर-फिर भटका खाय ॥४॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! शब्द बिना जीवकी सुरति अन्धी है । कहो ! जो मैं शब्द न बोलता तो सुरति कहाँको जाती ? औ सुरति शब्द द्वारे चलती है, ताते मैंने भी शब्द कहा; परन्तु सब शब्दनको परखानेके वास्ते । कछु गहनी बन्धनके वास्ते नहीं । जैसे काँटासे काँटा निकारना या वज्रसे वज्र काटना, तद्वत् । ये अर्थ । शब्दके द्वारे चार—'तत्, त्वं, असि औ सार ।' तो जौलों चार द्वारेका भेद न पावेगा, तौलों धोखेमें परा रहेगा औ फिर-फिर चौरासीमें भटका खायगा । ये अभिप्राय । द्वारेका अर्थ कि महलका द्वारा । बिना महल कछु द्वारा नहीं । परन्तु महलमें पैठनेके वास्ते द्वारा । कछु द्वारेमें बैठनेके वास्ते द्वारा नहीं । तो 'द्वारा' कहिये चारों मुख—जीवमुख, मायामुख, ब्रह्ममुख, गुरुमुख । ये चार द्वारा औ चार पद जाने, तब भ्रम मिटे । ये अर्थ ॥ ४ ॥

साखीः-शब्द-शब्द बहु अन्तरे । सार शब्द मथि लीजे ! ॥
कहहिं कबीर जहाँ सारशब्द नहिं । धृग जीवन सो जीजै ॥५॥

टीका गुरुमुखः—जेते-जेते महापुरुष भये, सो सबने अपने-अपने अनुमान करके शब्द बोले । सोई सुनके जीवनपर बड़ा परदा परा औ जीव भूले । ताते 'सारशब्द' मथि लीजे । सारशब्द कहिये जासे सब शब्दनका निर्णय होय औ सब शब्दनकी कसर जा शब्दसे मालूम होय, औ जा शब्दमें कछु कसर पक्ष-अपक्ष,

अनुमान-कल्पना, दृश्य-अदृश्य भावना न होय, औ जा शब्दसे जीव पारखपदको प्राप्त होय। सो सारशब्द सब शब्दनमेंसे मथिके काढ़ि लेना तो पारखपद प्राप्त होय। नहीं तो जहाँ सारशब्दकी प्राप्ति नहीं, ता जीवका जीवना धृग्! पशुवत् चौरासीका जीव। ये अर्थ ॥ ५ ॥

साखीः—शब्दै मारा गिर परा। शब्दै छोड़ा राज ॥
जिन्ह-जिन्ह शब्द विवेकिया। तिनका सरिगौ काज ॥६॥

टीका गुरुमुखः—याको अभिप्राय ऐसा है—जो नाना प्रकारके शब्द गुरुवा लोगोंने मारा, सो जीव मनुष्यपदोंसे गिर परा धोखेमें। शृङ्गारादिक शब्द सुनके विषयनमें गिर परा जीव। शब्दनके मारे भरथरी, गोपीचन्द, हरिश्चन्द्र आदिक बड़े-बड़े राजाओंने राज छोड़ा औ वैराग्य लेके वन-वन फिरने लगे। परन्तु उन जीवनको पारखपद मिला नहीं, याते भ्रमि-भ्रमिके चौरासीमें रहे। मनुष्य चार खानिका राजा, सो शब्द सुनि-सुनिके अपनेको भी चारों खानिमें गिनने लगा। दूसरा मालिक मानके अपना राज छोड़ा औ कल्पनाका दास बना। मगर मनुष्यपद सबसे ऊँचा, सो शब्दके मारे गिर पड़ा। ब्रह्म बना औ चौरासीमें व्यापा। कोई चौरासीरूपी हो रहा, कोई गुमसुम हुआ, कोई जीवहिंसा करने लगा। मद्य, मांस, मीन, रति-क्रीड़ामें विभ्रम होके राक्षस शाक्त कहाये। ये अभिप्राय। 'जिन-जिन शब्द विवेक किया, तिन-तिन जीवनका काज सरि गया।' वे पारखपदको प्राप्त हुए, आवागमनसे रहित भये। ये अभिप्राय। तो जो शब्दकी आशमें फँदा सो बन्धमान होके गर्भवास पाया, औ जाने शब्दको परखके छोड़ा सो पारखभूमिकाको प्राप्त होके रहित भया। ये अर्थ ॥ ६ ॥

साखीः—शब्द हमारा आदिका। पल-पल करहू याद ॥
अन्त फलेगी माँहली। ऊपरकी सब बाद ॥ ७ ॥

टीका मायामुखः—मायाका उपदेश ऐसा है कि 'ॐ' शब्द हमारा आदिका। याको पल-पल याद करो। 'ॐ ब्रह्मास्मि' ऐसा कहिके दानी दान देवै औ भिक्षुक दान लेवै। 'ॐ ब्रह्मास्मि' ऐसा कहिके यज्ञ करै-करावै। 'ॐ ब्रह्मास्मि' ऐसा कहिके अध्ययन करै-करावै। ये षट्कर्म 'ॐ' कहिके जो कोई करेगा, ताको देह अन्त होने उपरान्त स्वर्ग आदिक फल मिलेंगे औ 'ॐ' कहे

बिना जो कर्म करेगा, सो कर्म निष्फल हो जायगा । अगर सब जगत् प्रणवरूपी जानिके पल-पल याद करेगा, तो ऊपरकी देह नाश होय उपरान्त परमपदकी प्राप्ति होवेगी । अगर अपरोक्ष 'ॐकार' स्वरूपको चीन्हके ऊपरके पञ्चतत्त्वात्मक विधि सब मिथ्या जानै तो जीवन्मुक्त होय । ये अर्थ ॥ ७ ॥

साखीः–जिन्ह-जिन्ह सम्मल ना कियो । अस पुर पाटन पाय ॥
झालि परे दिन आथये । सम्मल कियो न जाय ॥८॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि ऐसा कायापुर औ सत्सङ्ग पाटन पायके जियत जमा पारख दृढ़ न किया तो ये गुरुवा लोगोंके उपदेशनके मारे अन्धा हो जायगा । शून्यमें समायके वृत्ति शून्य हो जायगी, गाफिल हो जायगी औ अध्यासवश होके मर जायगा । फिर सम्मल दृढ़ जमा पारख, सो किया जानेका नहीं । ये अर्थ ॥ ८ ॥

साखीः–यहाँई सम्मल करिले ! आगे विषयी बाट ॥
स्वर्ग बिसाहन सब चले। जहाँ बनियाँ ना हाट ॥ ९ ॥

टीका गुरुमुखः—ताते गुरु कहते हैं कि सम्मल कहिये जमाको, सो यहाँ सत्सङ्गमें पक्की करले ! औ आगे जेते मार्ग वेद, शास्त्र, गुरुवा बताते हैं सो सब विषयी बाट हैं—जगत्‌विषय, ब्रह्मविषय औ स्वर्ग आदि विषय । जेहि सुने जीव सब 'स्वर्ग बिसाहन चले' गुरुवा लोगनके पास; पर वहाँ न जीव बनिया है, न संसार हाट है। स्वर्गपर कछु नहीं । तो सब धोखा । ये अर्थ ॥ ९ ॥

साखीः–जो जानहु जिव आपना । करहु जीवको सार ! ॥
जियरा ऐसा पाहुना । मिले न दूजी बार ॥१०॥

टीका गुरुमुखः—हे जीव ! तुम अपना पद जानो, तो सब जीव असार देह हो रहे हैं, इनका सार पारख करो और स्थिर करो ! क्योंकि जीव तुम्हारेको नरदेह कैसे मिली है ? जैसे पाहुना । फिर दूसरी बार तुम्हें मिलनेकी नहीं । नरतन छोड़के चौरासीमें जाय पड़ोगे । ये अर्थ ॥ १० ॥

साखीः–जो जानहु जग जीवना । जो जानहु सो जीव ! ॥
पानि पचावहु आपना । तो पानी माँगि न पीव ॥११॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जो तुम जमा जानो सो

आपहीको जानो ! तुमसे परे कोई नहीं । न ब्रह्म, न आत्मा, न परमात्मा, न देह, न सत्य, न झूँठ, न शब्द, न निःशब्द । ये सब तुम्हारेसे होते हैं और तुरत ही नाश होते हैं । ताते जो कुछ जानो सो ये जीव हैं । औ 'पानी पचावहु आपना ।' पानी कहिये बानी । सब वेद, शास्त्र, वेदान्त-सिद्धान्त तुम्हारी कल्पनासे भये । सो कल्पनाको पचाओ ! सब परखके देहमें जराओ औ तुम पारखपर दृढ़ होओ ! जब देह नाशमान्, तब देहके भास-अध्यास, आनन्दादि सब नाशमान् । एक जीव सत्य जमा, और सब खर्च । ताते और बानी औ उपदेश गुरुवा लोगनसे मत् माँगो । तेरेपर दूसरा पीव कोई नहीं । ये अर्थ ॥११॥

साखीः-पानि पियावत क्या फिरो ? घर-घर सायर बारि ॥
तृषावन्त जो होयगा । पीवेगा झक मारि ॥१२॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! घर-घर उपदेश करते क्या फिरते हो ? घर-घर तो नाना प्रकारकी कल्पना कलोल कर रही है औ नाना प्रकारकी सायर = बानी भर रही है । ताते जीवनको कछु होश नहीं । ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सब बेहोश हैं । इनके पीछे हे सन्तो ! तुम कहाँलों बेजार होवोगे ? औ उपाधिमें पड़ोगे ? ताते संसारकी आशा छोड़के निरुपाधि हो रहो । जाको अपनी स्थितिकी चाहना होवेगी, सो आप ही झकमारके तुम्हारी शरणमें आयके विचार करके स्थिर होवेगा, पारखपदको प्राप्त होवेगा । ये अर्थ ॥ १२ ॥

साखीः-हंसा मोति बिकानिया । कञ्चन थार भराय ॥
जो जाको मर्म न जाने । सो ताको काह कराय ? ॥१३॥

टीका गुरुमुखः—हंसनका चारा मोती । सो अपने चारेके वास्ते हंसा बिक गये । जीव विषयमें बिक गये । धन-धान्य, पुत्र-पौत्र, ऋद्धि-सिद्धि, अणिमादि विषयके वास्ते औ स्त्रीविषयके वास्ते एक-के-एक गुलाम हो रहे हैं । कोई देवतनके गुलाम, कोई मन्त्र-यन्त्रनके गुलाम, कोई राजनके गुलाम, कोई मनुष्यनके गुलाम, कोई स्त्रियनके गुलाम, कोई देहके गुलाम बने ।

चौबोलाः—कोई देवके गुलाम, कोई मन्त्रके गुलाम । कोई यन्त्रके गुलाम, कोई तन्त्रके गुलाम हैं ॥ राजके गुलाम, कोई काजके गुलाम । कोई नाजके गुलाम, महाराजके गुलाम हैं ॥ रानीके गुलाम, महारानीके गुलाम । वेदबानीके

गुलाम, दिलजानी के गुलाम हैं ॥ योगके गुलाम, कोई भोगके गुलाम । महा-रोगके गुलाम, पूर्ण पर्ब आठों याम हैं ॥ १ ॥

मोती कहिये मुक्ति, सो चार प्रकारकी वेदने वर्णन किया है—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य, सायुज्य । सालोक्य कहिये जो स्वर्गमें निवास पावै औ देव-योनिमें विलास करे । सामीप्य कहिये जो मालिकके नजदीक रहे, हजूरी दास । सारूप्य कहिये 'कीट-भृङ्ग न्याय'; जैसा मालिकका स्वरूप, तैसा अपना स्वरूप होय । सायुज्य कहिये मालिकका औ अपना स्वरूप एक हो जाय—'जल-तरङ्ग न्याय' । ये चार मुक्ति वेदने बताईं, ताके वास्ते जीवनको अनुराग भया औ कञ्चनकी थारी भर-भरके गुरुवा लोगनके पास तन, मन, धन सहित बिकाय गये । परन्तु जो गुरुवाई करते हैं, उनहूँको मालिकका मर्म मालूम नहीं । सो ये जीवोंकी मुक्ति क्या करेंगे ? गुरुवा लोग भी मुक्तिके भरोसे बैठे हैं, ताते अन्ध हैं । मालिक तो जीव ही है, और दूसरा मालिक कोई नहीं । तब चार प्रकारकी मुक्ति मिथ्या धोखा । परन्तु जो आप ही मर्म नहीं जानता, सो दूसरेको क्या करेगा ? ये अभिप्राय । कोई ज्ञानी महान् कहावते हैं, सो तो अपने अध्यासमें 'अहं ब्रह्मास्मि' ब्रह्मैवाहमस्मि' 'मैं आत्मा पूर्ण जैसा-का-तैसा' ऐसा कहायके बन्ध भये । ताते आगे इनका लक्ष्य चलता नहीं । सो गुरु तो कहाये; परन्तु गुरुपदका मर्म कछु जाना नहीं तो दूसरेको क्या बतावेंगे ? न कछु । भरमावेंगे । ये अभिप्राय । औ महान् योगी जो हैं सो भी अपने-अपने भासमें बन्ध भये । जो कछु भास भयो अभ्यासते, ताहीको ब्रह्म माना औ नाना सिद्धि–ऋद्धिमें भूले । ताते गुरुपदका मर्म इनहूँ नहीं जाना । सो दूसरेको क्या करेंगे ? नाहक भटकायेंगे । ये अभि-प्राय । तीसरी गुरुवाई उपासककी; सो तो मिथ्या अनुमानमें लुब्ध हुए, नाना प्रकारकी कल्पनामें बँधे । रुद्रयामल, ब्रह्मयामल, विष्णुयामल आदि यन्त्र, मन्त्र, तन्त्रनमें आसक्त रहते हैं । ये गुरुपदका मर्म क्या जानें ? जो अपने ही परखनेमें न आया, सो शिष्यको क्या परखावेगा ? औ चौथे कर्मी प्रत्यक्ष कर्मके बन्धनमें पड़े । ये गुरुपदका मर्म क्या जानें ? प्रत्यक्ष कहिये जो आँखिसों जान परे, तामें बँधे देहअभिमानी । जो ऐसे-ही-ऐसे बन्धनमें आप ही परे हैं, सो दूसरेको क्या मुक्त करेंगे ? धोखा मिथ्या । ताते गुरु आगे हंसको उपदेश करते हैं प्रशंसा कर-करके, सो सुनोः—॥ १३ ॥

साखीः-हंसा तू सुवर्ण वर्ण ! क्या वर्णों मैं तोहिं ? ॥
तरिवर पाय पहेलि हो ! तबै सराहों तोहिं ॥१४॥

टीकाः गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे हंसा ! तू सुवर्ण ! कि सब वर्णनका निर्णयकर्त्ता। सुवर्ण कहिये शुद्ध ज्ञानवर्ण औ वर्ण कहिये ज्ञान। ता वर्णनका निर्णयकर्त्ता सो हंस तू ही है। औ कुवर्ण कहिये चक्षुगोचर, श्रवणगोचर, त्वचा-गोचर, घ्राणगोचर, जीभगोचर, चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार, अन्तःकरण-गोचर—ये सब कुवर्ण; औ इनका जाननेवाला सुवर्ण। सो ता सुवर्णका निर्णयकर्त्ता वर्ण तू है सुवर्ण। ताते समस्त वर्णका वर्णन करनेवाला तू हंसवर्ण। और तेरा वर्णन करनेवाला कोई नहीं। जो कछु जमा है सो तू ही है। ये अभिप्राय। तरिवर कहिये मनुष्यदेह, औ तरिवर कहिये शब्द, औ तरिवर कहिये वृक्ष, तरिवर कहिये जो नाना बानीका वृक्ष। जहाँ मनपक्षी विश्राम पावै, सो तरिवर। ये अर्थ। तो ऐसा मनुष्यतन पायके सकल बानी पहेली हो = बूझि हो ! देह आदिक बानी-बन्धन बूझके पारखपदको प्राप्त होईहो, 'तबै सराहों तोहि।' अरे ! मनुष्य-तन पायके जीवकी स्थिति भई तो तारीफ है; नहीं तो जैसा पशु, तैसा नर। ये अर्थ। ताते फिर हंसको गुरु उपदेश करते हैं, सो सुनोः—॥ १४ ॥

साखीः-हंसा तू तो सबल था। हलुकी अपनी चाल ॥
रङ्ग कुरङ्गे रङ्गिया। तैं किया और लगवार ॥१५॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे हंसा ! तू सबल सर्वशक्तिमान् था। जो तेरी सत्ता-मात्रसे सम्पूर्ण जगत् चार खानि चौरासी लक्ष योनि पैदा भई नाना विचित्र। सोई देखके तू अपनेको भूला औ देहको मानके विषयनमें आसक्त भया। ये ही अपनी चाल हलकी, जो अपनी कल्पनासे देह, गृह, पुत्र आदि सृष्टि पैदा की औ ताहीके वश भया। सम्पूर्ण बल-सत्ता जायके निर्बल आसक्त भया, ताते अनेक दुःखकी प्राप्ति भई। जैसा राजा अपने मन्त्रिनके वश भया, ताते मन्त्री प्रबल भये औ राजाकी आज्ञा नहीं मानते, सब रैयत बहकाय दिये। तब राजाका हुकुम सब अदूल किया। तब राजा बेकाम हुआ औ आप ही सब रैयतकी खुशामद करने लगा दीनवत्। तद्वत् ये जीव अपने कर्त्तव्यके वश होके निर्बल लाचार हुआ, इन्द्रिनकी आज्ञामें रहने लगा। येही हलकी चालसे

नाना दुःख प्राप्त भये। तब दूसरा कर्त्ता कोई है, ऐसी कल्पना खड़ी भई औ नाना कर्म-उपासना खड़ी भयीं औ ज्ञान-विज्ञान खड़े भये। सोई रङ्ग-कुरङ्गमें तू रङ्ग औ दूसरा लगवार कोई है, ऐसा अनुमान करके माना। सोई बन्धनमें परा। सो हे हंसा! अपनी चालसे दुःख पावता है, ताते इन्द्रिनके वश हो रहा है औ नाना अनुमान-कल्पनाके वश हो रहा है। सो हलकी चाल छोड़ दे औ अपनेको समझ। नहीं तो जैसी गति होती है, तैसा गुरु बयान करते हैं ॥१५॥

साखी:-हंसा सरवर तजि चले। देही परिगौ सून ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। तेहि दर तेही थून ॥१६॥

टीका गुरुमुखः—हंसा कहिये जीव औ सरवर कहिये जीवकी मानन्दी। ब्रह्म-ईश्वरादि नाना कल्पना, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत—ऐसी नाना मतकी मानन्दी, सोई हंसका मानसरोवर। स्त्रीविषयादि नाना विषय, सोई मानसरोवर। जो हंसके सुखका धाम, सोई मानसरोवर। ये अर्थ। जबलग देह साबुत है, तबलग नाना सुख, नाना समाधि, नाना भोग, नाना कर्मोंका विलास हंस करता है। फिर जब देह छूटती है, तब सम्पूर्ण विषय-विलास छूट जाता है। न समाधि रहती है, न कर्म, न ज्ञान, न योग, न विषय रहते हैं। सब नाश होते हैं, पर उनका अध्यास हंसके भीतर बीजरूपी रहता है औ देह शून्य हो जाती है। तब सुषुप्ति अवस्था जीवको होती है। सो मानन्दी-सरवर छोड़के, मानन्दीका बीज लेके हंस सुषुम्ना नाड़ीके सङ्ग चले औ देह शून्य पड़ गई। लोग कहने लगे कि मर गया। सो जीव कहाँ है? सब वाचासे पुकारते हो? कि कोई विचार भी करके देखते हो? अरे! 'तेही दर तेहि थून।' अपने स्वरूपकी बोध-प्राप्ति बिना फिर जठर-योनिमें गया। जैसा कर्मका दर बनाया, तैसा थून होके अध्यास हो गड़ि रहा। दर कहिये, दरार कहिये, भग कहिये। ताते जहाँसे सब पैदा हुये, फिर वोही भगमें आसक्त हो रहे। ताते जब देह त्याग भई औ हंस जगत् तजि चले, सुषुप्तिरूप होके सुषुम्ना-पवनमें मिले। सो सुषुम्ना जाय मैथुन समय पुरुषकी सुषुम्नामें मिली। पुरुषकी सुषुम्ना जड़ रेतमें मिली। ताते सुषुम्नाने हंसको रेतमें मिलाय दिया, तब हंस रेतरूपी होके तेही दर = भग-दरमें चले। थून कहिये, थूनी कहिये, लिङ्ग कहिये, मैथुन कहिये। सो मैथुन समय लिङ्गद्वारेसे भगद्वारे होके गर्भवासको प्राप्त हुए। तो चाहे कर्म करे, चाहे

योग करे, चाहे उपासना करे, चाहे ज्ञान अनुभव होय, चाहे जगत्की विस्मृति करके सदा समाधिस्थ रहै; परन्तु गर्भवास छूटता नहीं पारखकी प्राप्ति होय बिना। तो कर्मअध्यास, उपासना-अध्यास, योगअध्यास, ज्ञानअध्यास, समाधि-अध्यास; ये ही गर्भवासमें जानेके बीज हैं। ये अभिप्राय। ताते सम्पूर्ण बीज पारखसे त्याग होते हैं, औ बिना पारख हंस—बकु एकरङ्ग ब्रह्म हो रहे हैं। ताते गुरु परखाते हैं॥ १६॥

साखीः—हंस बकु देखा एक रङ्ग। चरें हरियरे ताल॥
हंस क्षीरते जानिये। बकुहि धरेंगे काल॥१७॥

टीका गुरुमुखः—हंस कहिये जो नीर–क्षीरका निर्णय करे। तो क्षीर कहिये जीव और नीर कहिये देह। देह कहिये पाँच तत्त्व, तीन गुण मिलके समुदाय; तामें जीव मिल रहा है। ताका निरुवारा करके जीवको देहअध्याससे निकारके अपने पदपर स्थिर करे, ताको हंस कहिये, पारखी कहिये। औ जो सम्पूर्ण चराचर, ज्ञानी-अज्ञानी, साधु-असाधु, विवेकी-अविवेकी, गदहा-सन्त एक-रङ्ग देखते हैं, कहते हैं कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' अखण्ड अद्वैत एक आत्मा—ऐसा सिद्धान्त करके कहते हैं सो बकुले बेपारखी। ये अर्थ। तो हरियरे ताल कहिये संसार। केही प्रकारसे ? सो सुनो—हरि कहिये जो सर्वका हरण करे औ आप रहे, सोई मूलमाया। येर कहिये प्रेरणा। सो मायाकी प्रेरणा; सोई जगत्। तामें 'हंस-बुक देखा एकरङ्ग' कि हंसा भी श्वेत औ बकुला भी श्वेत। तद्वत् विज्ञानी—ब्रह्मज्ञानी—इनका बोलना औ भेष, औ निर्णयकर्त्ता पारखी—इनका बोलना औ भेष अज्ञानीको एक ही रङ्ग मालूम होते हैं। औ दोनों जगत्में विच-रते हैं; परन्तु 'हंस क्षीरते जानिये!' जो दूध औ पानी मिला है, ताको न्यारा करे, दूधको ग्रहण औ पानीको त्याग करे, सोई हंस जानिये! तैसा जीव नाना भास, नाना अध्यास, नाना कल्पना, नाना अनुमानमें मिल रहा है, ताको न्यारा-न्यारा करे औ जीवको ग्रहण करे, देह आदि सम्पूर्ण भ्रम त्याग करे, ताको पारखी हंस कहिये! सोई पारखमें स्थिर है, औ दूसरेको भी सकल भ्रमसे छुड़ा-येगा। औ जो बेपारखी बकुले हैं, तिनको काल खाय जायगा। काल कहिये अनुमान, काल कहिये कल्पना, काल = भास औ काल = अध्यास, काल = ज्ञान-विज्ञान विलास; सो बिना पारख जीवको खाय-खाय उगिलता है। ऐसा

कालका रूप; तामें जो जीव मिल रहे हैं सो भी काल, जो सब जीवनको धोखेमें डालके बाँधते हैं। ये अर्थ। तो पारखमें भी त्याग-ग्रहण रहता है ? ये शङ्का। अरे ! त्याग-ग्रहण तो हंसमें है, कछु स्वच्छ पारखमें नहीं। क्योंकि त्याग-ग्रहण कछु उपाधि बिना होता नहीं, औ पारख-भूमिका तो निरुपाधि है। तहाँ त्याग-ग्रहण कैसे सम्भवे ? । ये अभिप्राय। तो हंसको औ ब्रह्मको केता अन्तर है ? जो हंस तो अपनेको आप यथार्थ जानके पारखस्थितिको प्राप्त भया, ताते आवागमनसे रहित है। औ ब्रह्म तो अपनेको आप न जानके—"मैं अद्वैत, सम्पूर्ण जगत् मेरा स्वरूप" ऐसा मानके अपने बासमें स्थित है, आनन्दमें रहता है। पारख-भूमिका प्राप्त भयी नहीं, ताते गाफिल है तो आवागमनमें है। ब्रह्मसे जगत् औ जगत्से ब्रह्म होता है। कछु पारखसे जगत् औ जगत्से पारख होता नहीं। येता अन्तर है। तो ब्रह्म मिथ्या धोखा कि जासे जगत् मिथ्या धोखा पैदा होता है। जाका भूषण खोटा, तो सुवर्ण क्या सच्चा है ? तो पारख भी सत्य और हंस भी सत्य। जगत् मिथ्या, औ ब्रह्म भी मिथ्या। हंसको औ पारखको केता अन्तर है ? । ये शङ्का। हंसको औ पारखको कछु अन्तर नहीं। देह खड़ी है ताते हंस नाम है, औ देह गिरी, तो वही पारख। ये अर्थ। हंस-उपदेशकी साखी सम्पूर्ण ॥ १७ ॥

साखीः—काहे हरिनी दूबरी ? यही हरियरे ताल ॥
लक्ष अहेरी एक मृग। केतिक टारों भाल ? ॥१८॥

टीका गुरुमुखः—हे सन्तो ! ये जीव जगत्में दूबरा = कङ्गाल हो रहा है, सो काहेते ? कि आप भूलिके ब्रह्मानन्द बना, याहीते। हरिनी कहिये जीवको। क्योंकि दूसरा हर अनुमान किया औ कहा कि हरि पुरुष ! मैं हरिकी स्त्री। ऐसा कहिके भक्ति करने लगा, ताते हरिकी स्त्री हरिनी । ये अर्थ। सो हरिकी प्राप्तिके वास्ते दूबरा = कङ्गाल हो रहा है। तापर लाखों शिकारी = गुरुवा लोग बाण चलाते हैं।

कवित्तः—कोई कहै तप करो, कोई कहै जप करो। कोई नाना कर्म करो, कहते समुझायके ॥ कोई कहै मूर्त्तिधरि, पूजा बहु कीजिये। कोई कहै प्रेम माँझ, रहिये बैलायके ॥ कोई योगध्यान कोई, नित्यानित्य कहै सांख्य। कोई षट्चक्र वेधि, श्वासा तरकायके ॥ कोई नाना मतभेद, कहते बतलाये वेद ! कोई कहै

पूर्ण ब्रह्म, आपै आप गायके ॥ १ ॥

ऐसे लाखों तरहके लक्ष्यसे गुरुवा लोग जीवनको मारते हैं, ताते सब जीव बेहाल हैं। मैं केतिक भाल टारों। ये अर्थ। जैसा घायल हरिण, ताको लाखों शिकारी तीर मारते हैं। उस हरिणका बचाव कहीं नहीं। ताते हरिणको अनेक तीर लगे हैं। तो केतिक तीर निकारना? जो निकारा चाहो तो हरिण बहुत व्याकुल होता है। तो केतिक भाल निकारना? जो न निकारना तो हरिणका अकाज होता है, हरिण उसीमें मरता है। ये शङ्का। तो चुम्बक = पारख; ताका स्पर्श जब होयगा, तब सम्पूर्ण भाल = गाँसी निकर जायगी औ जीव सुखी होगा। ये अर्थ ॥ १८ ॥

साखीः—तीन लोक भौ पीञ्जरा। पाप पुण्य भौ जाल॥
सकल जीव सावज भये। एक अहेरी काल॥१९॥

टीका गुरुमुखः—हे सन्तो! ये तीन लोक तो ये जीवनको रोकनेके वास्ते पीञ्जरा बना औ सम्पूर्ण जीवनको पीञ्जरेमें डारके मायाने अपने हाथमें लिया। तीन लोक कहिये त्रिकुटी, श्रीहट, गोल्हाट—ये तीन लोक औ तीन अवस्था, तीन पन, तीन गुण, तीन स्थान; यामें सकल जीव परे। औ चौथी तुर्या मूलमाया चतुर्थिका, ताके हाथमें पीञ्जरा। सो तुर्या अपनी इच्छासे पीञ्जरेमें जीवनको खिलाती है औ अन्तमें तुर्यातीत काल, ताके मुखमें डार देती है। और पाँच तत्त्व यही भवसागर, नाना कल्पना बानी सोई सागर, औ अनेक प्रकारके पाप-पुण्यका गाथा, सोई जाल। तामें सकल जीव सावज मीन-मच्छरूपी होके फँसे। औ सब जीवनका अहेरी काल एक ब्रह्म, जाने सबनको फँसाया। ये अभिप्राय ॥ १९ ॥

साखीः—लोभे जन्म गँमाइया। पापै खाया पून॥
साधी सो आधी कहैं। तापर मेरा खून॥२०॥

टीका गुरुमुखः—जो-जो लोभ ब्रह्मादि गुरुवा लोगोंने औ श्रुति-स्मृतिने बताया फल आशा—अर्थ, धर्म, काम, मोक्षादि; तामें जीव आसक्त भये औ नाना कर्म-धर्म क्रिया आचरने लगे. ताते लोभहीमें जन्म गँवाया। तो सर्व पापका मूल लोभ। ता लोभने सम्पूर्ण पुण्य खाय लिया। पुण्य कहिये ज्ञान; सो लोभ-में ज्ञानका नाश हुआ। ये अभिप्राय। साधी कहिये जीवको, तासों आधी कहिये

अर्धमात्रा । सो गुरुवा लोगनने जीवनको उपासना कही औ नाना प्रकारके मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, कल्पनामें बाँधा, सो मिथ्या भ्रम । औ अर्धमात्रा कहिये तुर्या; सो ज्ञानिनने जीवको तुर्या अवस्था कही कि—तीनों अवस्था अज्ञानजनित, ताको विवेक करके त्याग करना औ जो तीनों अवस्थाकी जाननेवाली तुर्याअवस्था ज्ञानस्वरूप, ताको अनुभव लेके निर्विकल्प ब्रह्म होना ! भाव-अभाव छोड़ना सब औ आपी होके रहना ! ऐसी साधीसे आधी कहते हैं । सो मिथ्या भ्रम छोड़ तो मेरा शब्द ताहूके ऊपर पारख बताता है । तू पारखपदको प्राप्त हो औ मिथ्या भ्रम छोड़ ! परखके काहूमें आसक्ति मत् करे, येही मेरा खून । खून कहिये, निशानी कहिये, पता कहिये, याद कहिये, इशारा कहिये । ये अर्थ । पारखपद सर्वोपरि । ये अभिप्राय ॥ २० ॥ *

---

* टिप्पणी:—साखी २० का महाभाष्यः—

साखी:—लोभे जन्म गँमाइया । पापै खाया पून ॥
साधी सो आधी कहैं । तापर मेरा खून ॥ २० ॥

महाभाष्य; गुरुमुख:—चार फल, चार मुक्ति, सात स्वर्गादि अनेक सुख-प्राप्तिका लोभ; एवं अष्ट सिद्धि, नौ निद्धि, षट्गुण-ऐश्वर्य, मान-महिमा आदि प्राप्तिका लोभ-लालच देकर गुरुवा लोगोंने वेद, शास्त्र, पुराणादिकी रोचक वाणी सुनाकर सबको खूब आकर्षित, लुब्ध कर लिया । तब ऐसी-ऐसी भ्रम-कल्पनाके लोभ-लालचमें पड़े हुए जीवोंने उनकी प्राप्तिके लिए पञ्च मार्गोंकी अनेक साधनाओंमें लगकर बिना विचार अपने नर-जन्मके अमूल्य समयको व्यर्थ गँमाइया = खोकर बरबाद कर दिया । झूठे लोभ-ही-लोभमें सारी आयु बीत गई । इस कारण सर्व पापके मूल बापरूप लोभने सम्पूर्ण पून = पुण्य, शुभ विचार, सत्सङ्ग, सत्यज्ञानको भी खाया = भ्रमा-भुलाकर विनाश कर दिया । परन्तु अभीतक किसीकी मिथ्या मानन्दी, लोभ-लालच नहीं छूट रहा है । साधी = सम्पूर्ण शुद्ध सत्स्वरूप जीवको निजस्वरूपका पारखबोध न होनेसे, वे सब भ्रम-भूलमें पड़कर अपना कार्य साधना वा सिद्ध करना चाहते हैं । दौड़-दौड़कर गुरुवा लोगोंके पासमें गये । सो उनसे भ्रमिक ज्ञानी गुरुवा लोग—'आधी = अर्द्धमात्रा तुर्यावस्थाको प्राप्त होनेपर ब्रह्ममें मिलकर तुम्हारा सब कार्य सिद्ध हो जायगा । अतः अज्ञान जनित तीनों अवस्थाको विवेकसे त्यागकर ज्ञान जन्य चतुर्थ अवस्था अर्द्धमात्रामें पहुँचो ! तब निर्विकल्प ब्रह्ममें मिल जाओगे—ऐसी अधूरी बात कहे और भी कहते हैं । वैसी आधी वा अधूरी, अधबीचके भ्रम-धोखेमें वे अपने भी भूले हैं औरोंको भी भ्रमा-भुला रहे हैं । तापर = उन ज्ञानी लोगोंके कथन, मिथ्या मानन्दीके ऊपर मेरा स्वयंका अपरोक्ष अनुभव पारखबोध देनेवाला यथार्थ कथनरूप सारशब्दकी खून = निशानी, पहिचानी, चिन्ह, यादगिरीरूप इशारा करके पूरा पता बतलाता है—"हे जीव ! तुम्हारा *

साखीः–आधी साखी शिर खड़ी । जो निरुवारी जाय ॥
क्या पण्डितकी पोथिया? जो राति-दिवस मिलिगाय॥२१॥

टीका गुरुमुखः—आधी साखी कहिये अर्धमात्रा, अर्धमात्रा कहिये माया; सो तीनों देह, तीनों मात्रा, तीनों लोकके शिरपर खड़ी है। सोई जीवको धोखेमें डाल देती है। तो जो सन्धी जीवसे निरुवारी जाय औ अन्वय करके सब ब्रह्म बनता है सो न बनै, तो जीवकी यथार्थ स्थिति होय। परन्तु पारख बिना तत्त्वमसिका अध्यास कछु छूटनेका नहीं औ जीव कछु अपनी भूमिकाको प्राप्त होनेका नहीं। तो 'क्या पण्डितकी पोथिया ? जो राति–दिवस मिलि गाय ?' पारख कछु पण्डितकी पोथी = वेद नहीं, जो रात-दिन कण्ठ करके गाने लगे। पारखपद सबसे न्यारा। सो कछु कागदमें लिखा नहीं जाता औ कर्त्तव्यसे नहीं आता। केवल पारखिनके सङ्गतसे ही पारखपदकी प्राप्ति होती है। ये अर्थ। सो पारखकी प्राप्ति होय तो अर्धमात्रादि मायाजाल जीवका सब छूटै। ये अभिप्राय ॥ २१ ॥

---

* चैतन्य-स्वरूप ही सत्य है। निज शुद्ध स्वरूप पारखपदमें सब भ्रम-भूलको त्यागकर स्थिर होओ! सम्पूर्ण लोभ-लालचको छोड़ो! पाप और पुण्य, इन दोनों जालोंसे न्यारे हो जाओ! सम्पूर्ण अखण्ड शुद्ध स्वरूप तुम ही हो।" आधी, अधूरी, अर्द्धमात्रा, ॐकारादि वाणी-कल्पनाकी मिथ्या मानन्दीसे तुम्हारा कुछ हित-कल्याण, लाभ नहीं होगा। अतः यथार्थ परखकर अर्द्धमात्रारूप ॐकारका भ्रम परित्याग करो! सर्वोपरि पारखपदमें मेरे कथनके इशारेसे पहुँचकर स्थिर हो रहो।

अथवा स्त्री–पुत्र, धन–घर, भोग-विलास विषयानन्दादिके लोभ-मोहादिमें पड़े जीवोंने अपने मनुष्य-जन्मकी सारी आयु व्यर्थ ही खो दी, जगत्-प्रपञ्चके कर्मोंमें अधिकतर पाप-ही-पाप करके विकारको ही खाया = खूब ग्रहण किया। सत्सङ्ग–विचारादि पारमार्थिक पुण्य कर्मोंमें कभी नहीं लगा। साधी = अपने कार्य साधनेवाले विषयी पुरुष, सो वे लोग तो—'आधी = संसारका आधार गृहलक्ष्मीरूप स्त्री ही सब कुछ कार्य पूर्ण करनेवाली है, स्त्रीके बिना हमारे घर–गृहस्थीका काम नहीं चलता है, विषयानन्दके सिवाय इमें और कुछ नहीं चाहिए'–इत्यादि अज्ञानताकी अधूरी बातें कहते हैं। उसपर भी जिज्ञासुजनोंको मेरे यथार्थ अनुभव सत्यज्ञानका कथन, विषय-बन्धनसे छुड़ाकर मुक्त करानेवाला है। "हे जीव! तुम विषयादि लोभमें पड़कर अपने नरजन्मको बेकार मत् खोओ! पापरूप विषयोंको ग्रहण मत् करो! सत्सङ्गमें लगकर विवेक–वैराग्यादि सद्गुणरूप पुण्यको सञ्चय करो!" विषयी लोगोंके अधूरे झूठे कथनको मत् मानो! एकदिन शरीरान्तमें ये सब यहीं छूट जायेंगे। अध्यासी जीवको अकेले चौरासी योनियोंमें जाकर दुःख भोगते रहना पड़ेगा। अतः अभी समय रहते ही सचेत हो जाओ! बोध-वैराग्यकी धारणासे अपना उद्धार करलो! इत्यादि॥२०॥

साखीः—पाँच तत्त्वका पूतरा ! युक्ति रची मैं कीव ॥
मैं तोहि पूछौं पण्डिता ! शब्द बड़ा की जीव ? ॥२२॥

टीका मायामुखः—पाँच तत्त्वका पूतरा युक्तिसे रचिके मैंने पैदा किया। ब्रह्मादि सम्पूर्ण जीव पूतले मैंने पैदा किये। इस प्रकार वेदमें मायाने कहा, सोई सब पण्डित लोग भी कहते हैं। गुरुमुखः—ताते गुरु पूछते हैं कि हे पण्डित! तुमने वेदका शब्द माना औ कहने लगे कि ब्रह्म बड़ा कि ईश्वर बड़ा, जाने सब संसार पैदा किया। परन्तु अपने हृदयमें विचार करके देखो—'शब्द बड़ा कि जीव ?' अरे ! जो जीव न होता तो वेद आदिक नाना शब्द कौन पैदा करता ? औ ब्रह्म-ईश्वरादि अध्यारोप कौन करता ? ताते जीव ही सबसे बड़ा, जाने सबहीको थापा। तो शब्दब्रह्म आदि उपाधि सब मिथ्या, जीवकी करतूत, औ जीव सबका करनेवाला आदि। ये अभिप्राय ॥ २२ ॥

साखीः—पाँच तत्त्वका पूतरा। मानुष धरिया नाँव ॥
एक कलाके बीछुरे। बिकल होत सब ठाँव ॥२३॥

टीका गुरुमुखः—पाँच तत्त्वका पूतरा, वाको जीवने मानके अपना नाम मानुष धरा औ नाना कल्पना विषयमें भूला, ताते ठाम-ठाम चौरासी लक्ष योनिन-में विकल होता फिरता है। तो भला ! पाँच तत्त्वका पूतरा तो सही। याको माननेवाला जीव भी सही, जाने याका नाम मानुष धरा। परन्तु ठाम-ठाम चौरासीमें व्याकुल होनेका क्या काम ? कछु खुशी तो न थी ? ये शङ्का। खुशी तो न थी; परन्तु 'एक कलाके बीछुरे। बिकल होत सब ठाँव ॥' सब सामग्री तो इनके पास थी, पर एक पारखस्थिति न थी। तो एक पारखके बिछुरे सब ठाँव व्याकुल भया, दुःख पाया। ये अभिप्राय ॥ २३ ॥

साखीः—रङ्गहिते रङ्ग ऊपजे। सब रङ्ग देखा एक ॥
कौन रङ्ग है जीवका ? ताका करहु विवेक ॥२४॥

टीका गुरुमुखः—हाथीसे हाथी, घोड़ेसे घोड़ा, पशुसे पशु, पक्षीसे पक्षी, मानुषसे मानुष; इस प्रकार 'रङ्गहीते रङ्ग ऊपजै' औ सब रङ्ग विचार करके देखो तो एक पाँच तत्त्वके ही हैं। पाँच तत्त्व भी नहीं; परन्तु 'कौन रङ्ग है जीवका ?' ताका विवेक करो ! क्योंकि बिना विवेक कछु जीव पदार्थ समझनेका नहीं। ये

अभिप्राय। जो पदार्थ जा द्वारे देखनेको होता है सो वही द्वारे देखना। जैसा शब्द पदार्थ श्रवण द्वारे देखना! आन द्वारे दिखानेका नहीं। रूप पदार्थ नेत्र द्वारे देखना! आन द्वारे दिखानेका नहीं। रस पदार्थ जिह्वा द्वारे देखना! आन द्वारे दिखानेका नहीं। स्पर्श पदार्थ त्वचा द्वारे देखनेको होता है, आन द्वारे दिखाता नहीं। गन्ध पदार्थ नाक द्वारे देखनेको होता है, आन द्वारे कछु दिखाता नहीं। तैसा जीव पदार्थ विवेकद्वारा दिखाता है, आन द्वारे कछु दिखाता नहीं। ये अभिप्राय। ताते गुरु कहते हैं—॥ २४ ॥

साखीः—जाग्रत रूपी जीव है! शब्द सोहागा सेत॥
जर्द बुन्द जल कूकुही। कहहिं कबीर कोइ देख!॥२५॥

टीका गुरुमुखः—जागृतिरूपी कहिये चैतन्यरूपी। जो तत्त्व-प्रकृति, देह आदि, अवस्था आदि, दुःख-सुखका जाननेवाला—सोई जीव; सोई जान। ये अर्थ। औ शब्द कहिये जो प्रथमारम्भमें जब पक्केका कच्चा देह भया, तब 'अहं अयं देहः' ऐसा माना सोई शब्द। तब दूसरी इच्छा औ देहमेंसे उठी कि मेरे सरीखा दूसरा कोई होता तो अच्छा था। सोई इच्छाका स्वरूप खड़ा भया स्त्रीरूप माया। सोई जीवको दाग विषय-वासनाका लगा। जैसा सोनेको सोहागा लगता है, तद्वत्। ये अर्थ। जैसे सोहागेके डारेसे सोना पिघलता है, तैसा वो नारीरूपको देखके पुरुषरूप पिघला। दोनोंका संयोग हुआ, तब स्त्रीका बिन्दु पीला औ पुरुषका श्वेत—ये दोनों गर्भवासमें मिले। ताते आगे देहकी रचना भई। तैसी अब भी होती है। औ दूसरा कर्त्ता कोई नहीं। ऐसा विचार करके देखो। औ प्रथमारम्भमें आनन्दरूप हंस भया था, तब कछु स्फूर्ति न हती। निर्विकल्परूप था। तहाँसे अपनी स्फूर्ति उठी कि 'एकोहं'; ताहीको शब्द कहिये, ज्ञान कहिये। ताहीको महाकारण कहिये। ता ज्ञानसे अपनेको माना औ दूसरा इच्छा-विषय खड़ा भया, ताहीको सोहागा कहिये, अज्ञान कहिये, कारण कहिये। ता कारणसे इच्छा रूप नारी और अनेक जगत् चौरासी लक्ष चित्र खड़ा भया सूक्ष्मरूप; ताहीको कल्पना कहिये, श्वेत कहिये, सूक्ष्म कहिये। याका दृष्टान्तः–कि जैसा एक जीव स्वप्नमें सूक्ष्म देह धारण करता है औ जेतिक कल्पना उठती है तेते रूप आप ही धारण करता है, अपना तमाशा आप ही देखता है। परन्तु उस जीवको कछु मालूम नहीं कि सब रचना, तमाशा मैं ही बनाया औ मैं स्वप्न देखता हौं। तद्वत् श्वेत

कहिये सूक्ष्म देह; सो इच्छामात्रमें अनेक योनि, अनेक रूप उत्पन्न भये। फिर स्त्रीभाव पुरुषने माना औ पुरुषभाव स्त्रीने माना औ परस्पर विषय बढ़ा। ताते सूक्ष्म देह निजकै माना। तब सूक्ष्महीसे स्थूल पैदा भया। तब सूक्ष्म भीतर भया और ऊपर स्थूल दृढ़ भया। कैसा ? कि श्वेत सूक्ष्म जल रङ्ग। ताते मैथुन भया, सोई जर्द बुन्द पृथिवी। ताका स्वरूप जमा सोई स्थूल। जल-कुकुही कहिये जलका बुद्बुदा देह। इस प्रकार एक जीवसे सब विस्तार पैदा भया। सोई जीव सबका जाननेवाला जाग्रत्रूपी—ऐसा देखो ! । ये अर्थ ॥ २५ ॥

साखीः—पाँचतत्त्व ले या तन कीन्हा। सो तन ले काहि ले दीन्हा? ॥
कर्महिंके वश जीव कहत हैं। कर्महिको जिव दीन्हा ॥२६॥

टीका गुरुमुखः—हे हंसा ! तूने पक्के पाँच तत्त्व लेके एक कच्चा स्थूल कीन्हा। सो तन तूने विषय-कर्मनमें दीन्हा। तो वेद-शास्त्र सब कहते हैं कि कर्महीके वश जीव हैं औ कर्म ही जीवको बन्धन है। 'त्रैलोक्यं कर्म बन्धनात्। इति स्मृतिः।' फिर ये नाना प्रकारके कर्मकाण्डका बन्धन वेदने जीवनको क्यों दिया ? औ ये संसारने भी कर्ममें जीव क्यों दिया ? जैसा कोई जहर जनायके जहर देवै, औ जहर जानके जहर खावै। तद्वत् 'कर्महीके वश जीवको वेद कहते हैं औ कर्महीको जीव दीन्हा।' ताते कर्म उठायके माया योगका उपदेश करती है ॥ २६ ॥

साखीः—पाँच तत्त्वके भीतरे। गुप्त बस्तु अस्थान ॥
बिरला मर्म कोइ पाइ है। गुरुके शब्द प्रमान ॥२७॥

टीका मायामुखः—अरे ! बाहिर कर्म-उपासना सम्पूर्ण निरर्थक मिथ्या है। यामें कछु फायदा नहीं। तो पाँच तत्त्वके भीतरे गुप्त वस्तु परमात्मा ! ताको स्थान है भ्रमरगुफा शिखा मध्ये। सो मर्म कोई बिरला पावेगा—गुरु-वेद, ताके शब्द-प्रमाण। वेदका शब्द कहिये 'सोहं ब्रह्मास्मि।' ताको प्रमाण गुरुमुखसे सुनके मनन-निदिध्यासन करेगा, तब साक्षात्कार होवेगा। अथवा ॐकारके प्रमाणसे परमात्माका प्रमाण मर्म बिरला कोई पावेगा। ये अर्थ ॥२७॥

साखीः—असुन्न तखत अड़ि आसना। पिण्ड झरोखे नूर ॥
जाके दिलमें हौं बसा। सैना लिये हजूर ! ॥२८॥

टीका ब्रह्ममुखः—तो प्रणव शब्दके प्रमाणसे जो किसीने अनुभवका मर्म पाया था, सो ब्रह्मज्ञानी बोलते हैं कि मेरा 'असुन्न तखत।' असुन्न तखत कहिये चैतन्य तखत, जो शून्यका भी साक्षी। सबका जाननेवाला सर्वसाक्षी तखत। औ 'अड़ि आसना' कहिये सिद्धासन। सिद्धासन कहिये जापर सम्पूर्ण सिद्ध ब्रह्मवेत्ता स्थित भये, सोई अधिष्ठान आत्मा। ताका नूर पिण्ड झरोखे दीखता है। सोई देखके आत्म-निश्चय करना। पिण्ड झरोखा कहिये आँखि। सो आँखिमें लाल, सफेद, काला, पीला, हरा; तामें बिन्दुके मध्य मेरा नूर = प्रकाश देखो—नजर आता है। सोई सर्वाधिष्ठान सर्वसाक्षी परमात्मा। अरे! मैं सर्वाधिष्ठान हजूर ब्रह्म। सम्पूर्ण ज्ञान, भक्ति, योग आदि सर्वशक्ति मेरी सैना, सो लेके जाके दिलमें बसता हौं, सो जीव मेरेको नहीं जानता। याहीको माया कहिये। जो आपको आप जानै सो ब्रह्म, औ न जानै सो जीव मायावश। ये अर्थ ॥ २८ ॥

साखीः–हृदया भीतर आरसी। मुख देखा नहिं जाय ॥
मुख तो तबहीं देखिहो! जब दिलकी दुबिधा जाय ॥२९॥

टीका मायामुखः—अरे! सबके हृदयमें आरसी है। आरसी कहिये ज्ञान, सो सबके हृदयस्थ है। परन्तु अज्ञानने ढाँक लिया है, ताते मुख = अपना स्वरूप देखा नहीं जाता। जैसा दर्पणको मैल ढाँक लेता है, फिर उसमें कछु मुँह नजर नहीं आता। तद्वत् अज्ञानने ज्ञानको ढाँक लिया है, ताते चैतन्य-स्वरूप मालूम नहीं देता। मुख = चैतन्य आत्माको तबहीं देखोगे, जब दिलकी दुविधा = द्वैत-भेद छूट जायेगा। जब द्वैतउपाधि छूटै, तब अद्वैत ब्रह्म मालूम होय। ये मायाका अभिप्राय ॥ २९ ॥

साखीः–गाँव ऊँचे पहाड़ पर। औ मोटाकी बाँह ॥
कबीर अस ठाकुर सेइये! उबरिये जाकी छाँह! ॥३०॥

टीका मायामुखः—ऊँचा पहाड़ कहिये महामेरु चौरासी लक्ष योजन ऊँचा, तापर गाँव कहिये इन्द्रपुर, वरुणपुर, कुबेरपुर, यमपुर, मध्य भाग वैकुण्ठपुर, शिवपुर, ब्रह्मपुर—ऐसे ये गाँव। सो मोटाकी बाँह गहेसे संसारसे उबरोगे। मोटा कहिये बड़ा, बड़ा कहिये वेद, बड़ा कहिये शास्त्र, बड़ा कहिये देवऋषि, ब्रह्मऋषि, राजऋषि, शास्त्राचारी; इनकी बाँह = आश्रित होके इनके वचन-प्रमाणसे संसारमें विचरना, सो उत्तम लोककी प्राप्ति परम सुख होता है। नहीं तो यमपुरमें जीव जाता

है। वहाँ महादुःखकी प्राप्ति होती है। तो हे जीव ! ब्रह्मा, विष्णु, महेश ऐसा ठाकुर सेवना, कि जाकी कृपासे यमलोकका त्रास छूटै औ उत्तम लोककी प्राप्ति होय। ये अर्थ ॥ ३० ॥

साखीः—जेहि मारग गये पण्डिता ! तेई गई बहीर ! ॥
ऊँची घाटी रामकी। तेहि चढ़ि रहै कबीर ! ॥३१॥

टीका गुरुमुखः—कर्ममार्ग, उपासनामार्गसे जो व्यासादि, वसिष्ठादि पण्डित चले औ स्वर्गादिक लोकको गये, ताही मार्गसे संसार सब चलने लगा औ स्वर्गादिक लोकवासना खड़ी भई। सो वासना आवागमनका कारण औ जीवका बन्धन, ऐसा जानके पातञ्जल योगी लोग वासना त्याग करनेके वास्ते योगकर्म करने लगे। 'ऊँची घाटी रामकी।' रामकी ऊँची घाटी कहिये भ्रमरगुफा, ताके ऊपर चढ़के योगी लोग आनन्दमें मिल रहै। ऐसा मायाका अभिप्राय गुरुने सन्तनको समुझाया। आगे येही योगसिद्धान्तनमें कसर दिखाते हैं ॥३१॥

साखीः—ये कबीर तैं उतरि रहु ! तेरो सम्मल परोहन साथ ॥
सम्मल घटे न पशु थके। जीव बिराने हाथ ॥३२॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! योगअध्यास, कर्मअध्यास—दोनों जीवको बन्धन हैं। ताते दोनों बन्धन परखके पारखपर उतर रहो ! सम्मल कहिये लोभ औ परोहन कहिये मन। तो न लोभ छूटता है, न मन थकता है। तो जबलग लोभ नहीं घटनेका, तबलग वासना औ मन तेरे साथ हैं। भास–अध्यासादि जेतो मानन्दी होवे, सो मन तेरे आवागमनका मूल है। सो अध्यासवश होके जीव बिराने हाथ = चौरासीमें पड़ता है। ये अर्थ ॥ ३२ ॥

साखीः—कबीरका घर शिखर पर। जहाँ सिलहली गैल ॥
पाँव न टिकै पपीलका। तहाँ खलकन लादै बैल ॥३३॥

टीका मायामुखः—पतञ्जलि बोलते हैं कि जीवका घर शिखर = ब्रह्माण्ड-पर है, जहाँ परम बारीक मक्रतारवत् रास्ता है। अरे ! जहाँ चींटीका पाँव तो टिकता ही नहीं, तहाँ संसारने बैल भर-भर कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड लादा है, तो ये कहाँ ले जायेंगे ? तो जबलग ब्रह्माण्डमें जीव जायके ब्रह्ममें नहीं मिलता, तबलग सब संसार पुस्तक पढ़े, चाहे पूजा नाना विधि करे; परन्तु सब नरकमें

पड़ते हैं। ये पतञ्जलि मायाका अभिप्राय ॥ ३३ ॥

साखीः-बिन देखे वह देशकी । बात कहै सो कूर ! ॥
आपुहि खारी खात है । बेंचत फिरै कपूर ! ॥३४॥

टीका मायामुखः—वह देश = परमात्मा ब्रह्माण्डका देश, जहाँ बिना सूर्य उजियारा औ बिना चन्द्र शीतलता, बिना करताल पखावज आदि नाना बाजा बजते हैं औ बिना बादर अमृतकी वर्षा होती है औ हंसको परम आनन्दकी प्राप्ति होती है। वह देश योगसमाधि, मुद्रा करके जबलग देखा नहीं, तबलग वेद, शास्त्र, पुराणादि नाना बानी पढ़ते हैं औ ब्रह्म निरूपण करते हैं, सो सब कूर = मूढ़, बिना अनुभविक हैं। अरे! आप तो खारी खाते हैं, इन्द्रियनका रस लेते हैं औ इन्द्रियनके भोगोंमें आसक्त हैं, औ संसारमें ब्रह्मरस वर्णन करते हैं। सच्चिदानन्द सुखका रस वर्णन करके इन्द्री-पोषणके वास्ते द्रव्य जमा करते हैं। इन्द्रियनका सुख सोई खारी, सो आप खाते हैं औ ब्रह्मसुख सोई कपूर संसारमें बेंचते फिरते हैं, मिथ्याभूत। तो आपहीको प्राप्त नहीं, सो दूसरेको क्या देवेंगे? ये अभिप्राय ॥ ३४ ॥

साखीः-शब्द-शब्द सब कोइ कहैं। वो तो शब्द विदेह ॥
जिभ्या पर आवै नहीं। निरखि-परखि करि लेह ॥३५॥

टीका मायामुखः—अरे! वेद, शास्त्र, पुराण सब शब्द-ही-शब्द कहते हैं; परन्तु अनुभव बिना शब्दसे कार्य होनेका नहीं। अरे! वो शब्दब्रह्म तो विदेह = देहातीत है, कछु जीभपर आता नहीं। उसे लक्ष्यसे समझ ले! अनुभवसे ले! ये अभिप्राय ॥ ३५ ॥

साखीः-पर्वत ऊपर हर बहै। घोड़ा चढ़ि बसे गाँव ॥
बिना फूल भौंरा रस चाहे। कहु बिरवाको नाँव? ॥३६॥

टीका गुरुमुखः—पर्वत कहिये ब्रह्माण्डपर, हर = परमात्मा रहता है, ऐसा वेद-शास्त्रादि मायाने उपदेश किया। अगर पर्वत कहिये स्वर्ग; तापर परमात्माका लोक है, ऐसा मायाने उपदेश किया। सो बानी सुनते ही जीव सब बहे, भ्रमचक्रमें परे। ये अभिप्राय। अब सब जीवने सङ्कल्परूपी घोड़ा, तापर चढ़िके गाँवको जानेकी तैयारी किया, ब्रह्माण्डमें वा स्वर्ग आदिकमें जानेकी तैयारी

किया कि उस गाँवमें हम बसेंगे। किस तरहसे ? कि योग करके, तप करके, उपासना करके, नाना प्रकारके दान–पुण्य आदिक कर्म करके लोकादिकमें बास पावेंगे, ऐसा कहिके संसारके मनुष्य सब धोखेमें बहि गये औ चौरासीमें परे। क्योंकि 'बिना फूल भौंरा रस चाहै।' अरे ! फूल होवेगा तो भौंरेको रस मिलेगा। जो फूल तो है नहीं औ भौंरा तो रस चाहता है, तो कहाँसे पावेगा ? जाके वृक्षहीका ठिकाना नहीं, तो तिसका फूल कहाँ मिले ? औ रस कैसे पावै ? तो मिथ्या भ्रान्ति। वृक्ष कहिये ब्रह्म, तो ताका नाम भर है, रूपका ठिकाना ही नहीं। औ फूल कहिये लोकालोक। तो जाके रूपका ठिकाना नहीं, ताका लोक कहाँ पाइये ? औ रस कहिये अनुभव; सो ताका अनुभव सनकादि, शुकादि महान् जीव लेना चाहते हैं, तो कहाँ पावेंगे ? परन्तु 'ब्रह्म' ऐसी एक कल्पना प्रथमारम्भमें खड़ी भई। सोई सब सनकादि आदि जीव मानि-मानि मग्न भये कि मैं ब्रह्म, मैं आत्मा। ऐसा कहिके अपनेमें आप गफिलायके चौरासीमें बहि गये। ये अभिप्राय ॥ ३६ ॥

साखीः–चन्दन बास निवारहू ! तुझ कारण वन काटिया ॥
जियत जीव जनि मारहू ! मुये सबै निपातिया ॥३७॥

टीका गुरुमुखः—चन्दन कहिये जीवको। सो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! सम्पूर्ण वासना दूर कर ! ब्रह्मवासना, लोकवासना, ऋद्धि-सिद्धि-वासना, जगत्-वासना, स्त्री-पुत्र-धनादि विषयवासना, केवल मुक्ति-मात्र ज्ञानवासना; ये तेरेको सब बन्धन हैं। ताते तू परखके सब वासना निरुवार डार ! तेरे वास्ते सम्पूर्ण वेद–शास्त्रादि बानीका वन काटा। जो वनमें तू भूला था, सो वन काटके मैदान किया, (कि जामें) विचारमार्ग तेरेको मिले औ पारखस्थिति तेरेको यथार्थ प्राप्त होय। ये अर्थ। 'जियत जीव जनि मारहू। मुये सबै निपातिया ॥' अरे जीव ! नाना प्रकारकी तपस्या औ योग औ वैराग्य करके जीते जीव क्यों दुःख पावता है ? तेरा अभिप्राय कि जीते जीव इन्द्रियनको मारना औ जीते जीव देहको जरावना तो मुक्ति होती है। जो इन्द्री औ देहके निपात कियेसे मुक्ति होय, तो मरेपर सब देह औ इन्द्री निपात होती हैं औ सभी जीव समाधिवत् हो जाते हैं, तो सम्पूर्ण जीव मुक्त हो जायँ। फिर जीते जीवको नाना योग, तपस्या करके क्यों मारते हो ? तो हे सन्तो ! ऐसे नास्तिक ज्ञानसे भी कहीं मुक्ति

होती है ? नाहक बानीके धोखेमें क्यों परे हो ? जबलग यथार्थ पारख नहीं होनेकी, तबलग जीव रहित नहीं होनेका। ये अभिप्राय ॥ ३७ ॥

साखीः-चन्दन सर्प लपेटिया। चन्दन काह कराय ? ॥
रोम-रोम विष भीनिया। अमृत कहाँ समाय ? ॥३८॥

टीका गुरुमुखः—चन्दन कहिये जीवको औ सर्प कहिये मायाको; सो मायाने जीवको लपेट लिया। अब जीवने क्या करना ? रोम-रोममें मायाका विषय-विष बेध रहा है, अब अमृत = विचार कहाँ समाय ? सर्प कहिये, माया कहिये, काया कहिये, स्त्री कहिये, गुरुवा कहिये। जाने जीवनको लपेटा, बाँध डारा सो माया। ये पाँच नाम लेके माया, तामें जीव आसक्त भया। अब विचार क्या करेगा ? अब विष कहिये, विषय कहिये, कल्पना कहिये, बानी कहिये, आनन्द कहिये; ये पाँच प्रकारके विष जीवके रोम-रोममें बेध गये। अब अमृत = जीव पारखमें कहाँ समाय सकता है ? तो धोखेमें गफिलाय गया। ये अभिप्राय। या साखीमें जीवकी प्रशंसा करके गुरु बताते हैं कि जो जीवको मायासर्प डस गया, ताते नाना विषय-विष चढ़ा, ब्रह्मविषय, जगत्‌विषय, स्त्रीविषय, बानी-विषय—ऐसा विष चढ़ा। ता विषयमें जीव गफिलाय गया। अब जो ये विष उतरे तो जीव पारखस्थितिको प्राप्त होय। तो विष उतारनेको कौन सुख साधना ? ये शङ्का। सत्सङ्गद्वारे विचार-अमृत सुख साधना। ये अभिप्राय। आगे जीव कैसे भूला ? सो दृष्टान्त सहित गुरु बताते हैं—॥ ३८ ॥

साखीः-ज्यों मोदाद समसान शिल। सबै रूप समसान ॥
कहहिं कबीर वह सावजकी गति। तबकी देखि भुकान ! ॥३९॥

टीका गुरुमुखः—मोदाद कहिये प्रमाण, समसानशिल एक पत्थर होता है। ताको प्रमाण ऐसा है कि जो कोई रङ्ग उस पत्थरपर धरो, सो रङ्ग उस पत्थरके मुताबिक मालूम होता है। उस पत्थरका रङ्ग हरा है। ताको दृष्टान्त देके ब्रह्मस्थितिकी कसर बताते हैं। जो समसानशिलका प्रमाण है, तैसा अन्तः-करणका प्रमाण है कि जो जीव अन्तःकरणमें मिलता है सो अन्तःकरण निर्वि-कल्परूप हो जाता है औ कहता है कि ब्रह्म साक्षात्कार मेरेको हुआ। सो ब्रह्म कैसा है ? कि समसानशिलावत्। जो कोई उसे परसे, सो सब जगत् ब्रह्मरूप

मालूम होता है। परन्तु जबलग अन्तःकरणमें जीव समरस होके रहता है, तबलग द्वैत मालूम होता नहीं औ जब अन्तःकरणका वियोग हुआ, तब द्वैत बना ही है, जीवरूपका जीवरूप बना है। ऐसे ही जबलग समसानशिलापर वस्तु धरो, तबलग समसानशिला माफिक मालूम होती है औ जब समसानशिलापरसे वस्तु निकार लेवो, तब जिसका रङ्ग उसको बना ही है। तो विजातीय रङ्ग अन्तःकरण आदि सम्पूर्ण नाशमान्, ऐसा न जानके जीव सब भ्रममें पड़े। ये अभिप्राय। काया छूटै उपरान्त द्वैत-अद्वैत स्थिति सब कहाँ है ? हे जीव ! ये सम्पूर्ण तेरी समरसताईसे देहमें प्रतिभास होते हैं। देह नाशै सब नाश होते हैं। परन्तु 'वह सावजकी गति। तबकी देखि भुकान ॥' अरे ! वह सावज कहिये आदिपुरुष, जाने सब सृष्टिको पैदा किया। सो वही सावज ये जीव है; परन्तु तबकी = प्रथमारम्भकी गति विचित्र, अद्भुत देखके भूँकने लगा। जैसा कुत्ता काँचके मन्दिरमें पड़ा, सो अनेक भास मालूम भये ! तब भूँकते-भूँकते प्राण छूटा औ फिर श्वानयोनिमें गया। तद्वत् ये जीवको आनन्द तो समसानशिलावत् भया औ देह तो सब शिला, स्फटिकशिला अथवा काँचके महलवत् भया। तामें जीवको अनेक भास भये। ताहीते चार वेद, छै शास्त्र, अठारह पुराण सब भूँकि-भूँकि मर गये औ जैसा अध्यास, तैसा वास प्राप्त भया। ये अर्थ ॥ ३९ ॥

साखीः-गही टेक छोड़ै नहीं। जीभ चोंच जरि जाय ॥
ऐसो तप्त अङ्गार है। ताहि चकोर चबाय ॥४०॥

टीका मायामुखः—मायाका उपदेश ऐसा है कि जो टेक गहना सो छोड़ना नहीं। जैसे चकोरकी टेक है कि कभी मैं चन्द्रको पाऊँ तो हृदयमें रख लेऊँ। तो जो कोई चकोरके आगे तप्त खैरका अङ्गार डार देवे तो चन्द्रके भरोसे निगल जाता है; परन्तु अपनी टेक नहीं छोड़ता। ऐसी परमात्माकी भक्तिकी टेक रखना ! कभी प्राण जाय तब भी छोड़ना नहीं। ये अभिप्राय। परन्तु वो चकोरका मुख तो जरता होगा ? ये शङ्का ॥४०॥

साखीः-चकोर भरोसे चन्द्रके। निगलै तप्त अङ्गार ॥
कहें कबीर डाहे नहीं। ऐसी वस्तु लगार ! ॥४१॥

टीका मायामुखः—ये मायाका उपदेश ऐसा है कि चकोरका दृढ़ विश्वास

चन्द्रपर है, ताते डाहै नहीं। चन्द्रके भरोसे निगल जाता है, ताते अङ्गार शीतल हो जाता है। इस प्रकारसे लगार वस्तु बड़ी है। लगार कहिये, पक्ष कहिये, भक्ति कहिये, प्रीति कहिये। सो जगत्में ईश्वरकी भक्तिमें पक्षपूर्वक प्रीति रखना, ताते प्रपञ्चअग्नि सब शीतल मालूम होवेगी औ त्रिविधि ताप सब शीतल मालूम होवेंगे। परन्तु सदा प्रेममें मग्न गलतान हो रहना। ये अभिप्राय ॥४१॥

साखीः-झिलि-मिलि झगरा झूलते। बाकी छूटि न काहु ? ॥
गोरख अटके कालपुर। कौन कहावै साहु ? ॥४२॥

टीका गुरुमुखः—झिलमिल झगरा कहिये तारकयोग, तामें संसार सब झूलने लगा। कोई सन्मुखी, कोई खेचरी, कोई भूचरी, कोई चाचरी, कोई शाम्भवी, कोई उन्मीलनी, कोई अगोचरी, कोई आत्मभावनी, कोई पूर्णबोधिनी, कोई सर्वसाक्षिणी आदि मुद्रा करने लगे, जीवसे ब्रह्म, ब्रह्मसे जीव होने लगे। झिलमिल कहिये ज्योतिस्वरूप परमात्मा। ताका झगरा वेद। ता वेदके प्रमाणसे संसारमें ब्रह्मादि ऋषि सब झूलने लगे। कोई बाकी छूटा नहीं। ये अभिप्राय। अरे ! गोरखनाथ सरीखे ज्ञानी-योगी, जिनको इकईस ब्रह्माण्डका गम था, सो भी कालपुरमें अटके। कालपुर कहिये जगत्; सोई जगत्में अटके। कछु पारख-पदकी प्राप्ति भई नहीं। ताते चोर = जो योगी भ्रमरगुफामें कालके डरके मारे छिपे; परन्तु काल कछु उनके परखनेमें आया नहीं। वो तो भ्रमरगुफामें गये; परन्तु काल उनके सङ्ग ही रहा। अरे ! जाको उनने ब्रह्म, आत्मा, निर्विकल्प—ऐसा माना, सोई उनका काल। ब्रह्म बनके जगत्रूप आप ही बने रहे। हे सन्तो ! कालका कछु रूप नहीं। भास, अध्यास, कल्पना, मानन्दी—सोई जीवका काल। सो गोरख सरीखे बड़े-बड़े कालपुरमें अटके। अब बिना पारख 'कौन कहावै साहू ?' तो पारख बिना सब चोर। क्योंकि तत्त्वनका अध्यास, तत्त्वनका भास, तत्त्वनका अनुमान, तत्त्वनकी वासना, तत्त्वनकी देह, तत्त्वनकी समाधि; ताको 'मेरी' या 'मैं' ऐसा मानै सो चोर। ये अर्थ ॥ ४२ ॥

साखीः-गोरख रसिया योगके। मुये न जारी देह ॥
माँस गली माटी मिली। कोरो माँजी देह ॥४३॥

टीका गुरुमुखः—गोरख सरीखे योगके रसिया, जिन सम्पूर्ण हठयोग, राजयोगका रस लिया, श्रीहट, कुण्डली, लम्बिका, तारक, अमनस्क, सांख्य

आदि योग करके सिद्ध हुये औ चौरासी कल्प करके देह वज्र किये। मांस सब गलिके माटीमें मिलि गया औ हाड़, नाड़ी, गुदा सब गलके एक हो जम गये औ हीरा ऐसी देह चमकने लगी (ऐसा गुरुवा लोगोंने माना है)। ऐसी साधना किया कि न देह कभी जरै, न गलै। ऐसा योगका रस लिये औ सिद्ध भये; परन्तु पारख बिना वो भी नाश भये, धोखेमें परे। ये अर्थ ॥ ४३ ॥

साखीः—बनते भागि बेहड़े परा। करहा अपनी बान ॥
बेदन करहा कासो कहै? को करहा को जान? ॥४४॥

टीका गुरुमुखः—वन कहिये, बानी कहिये, संसार कहिये। करहा कहिये, खरहा कहिये, ससा कहिये, जीव कहिये। बेहड़ा कहिये, खाँच कहिये, ब्रह्मरन्ध्र कहिये, भ्रमरगुफा कहिये, भेष कहिये। सो संसारी जीव संसारमें महादुःख जानके भेषमें आये, वैरागी—गुसाँई भये, तब वहाँ नाना बन्धन, नाना व्यवहारमें बन्ध भये। वहाँ गृहस्थनकी टहल करके पेट भरता था, यहाँ भेषकी टहल करके पेट भरने लगा। वहाँ पेट भरने निमित्त नाना उद्यम, मनकी फिकिर; यहाँ भीख मिलनेकी फिकिर। वहाँ घरकी फिकिर, यहाँ मठकी फिकिर। वहाँ बेटी-बेटाका मोह, यहाँ चेली-चेलाका मोह। वहाँ जगत्-विषयकी उपाधि, यहाँ भेषविषयकी उपाधि। तो जैसा ससा वनमें था तो मोकला था। वन-सावजनके डरके मारे भागा, सो बेहड़े = खाँचमें परा। अब खाँचमेंसे तो कहूँ निकर सकता नहीं। तो बन्धमें कैद हुआ औ वहाँ बहुत दुःख मालूम होने लगा तो वो ससा अपना दुःख कासों कहै? औ उसके दुःखको कौन जानता है? अगर बाहरके ससनसे उसने अपना दुःख कहा, तो दुःख कछु छूटता नहीं और अहमकताई, अज्ञानता ठहरती है। ताते ससा अपने मनहीमें सुसुकि-सुसुकि मरता है। तद्वत् संसारी जीव काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सावजनके डरके मारे भेषमें आये औ जात-वर्ण सब छोड़े औ भेष—सोई बड़ी खाँच, तामें परे। पर काम, क्रोध, लोभ, मोहादि सावज कछु छूटे नहीं, ताते दूना दुःख प्राप्त भया। पर अपनी वेदना अब कासों कहै? औ कहेसे दुःख तो छूटता नहीं औ अहमकताई पल्लोमें आती है। लोकमें हँसी होती है। ताते शरमाशरमी पचि-पचि मरते हैं औ सच्चा निर्णय चित्तमें नहीं धरते। अब उनको जो दुःख होता है सो किसीसे कहते तो हैं नहीं, औ उनकी तपस्याका दुःख कौन जाने? अरे!

भेष सब तीर्थाटन करते हैं औ पञ्चाग्नि तापते हैं। शीत समय जलशयन करते हैं। कोई धूम्रपान करते हैं, कोई अन्न त्याग करके दूधआहारी, फलआहारी, कन्द-आहारी, दूबआहारी, पत्रआहारी; ऐसा-ऐसा कर्म करते हैं बानीके खाँचमें परके। सो उनका दुःख कौन जाने ? वही जाने। जो दूसरेसे कहै तो अपने कर्त्तव्यकी हँसी, अप्रतिष्ठा होती है। ताते कोई-कोई बानीके वनते भागे औ योगखाँचमें परे औ बन्ध भये। सिद्धि पैदा करके जगत्में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई, पर भीतरकी भ्रान्ति, दुगदुगी कछु छूटी नहीं। सो वो अपनी भ्रान्ति दूसरेसे कहते नहीं कि अपनी प्रतिष्ठा हलकी हो जायगी। औ उनकी भ्रान्ति कौन जाने ? पारख बिना। भला ! वनमें जो सब सावजनसे बचके रहते तो खाँचमें गिरनेका क्या काम है ? औ खाँचमें गिरे तो क्या सब सावजनसे बचते हैं ? खाँचमें जानेको सावजनको क्या मुश्किल है ? खाँच तो सावजनका घर ही है। भला जङ्गलमें तो भी भागने-की जगह थी औ बेहड़ेमें तो सहज ही धर खाया—काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक सावजने। ये अभिप्राय। औ करहा कहिये हाथीको, सो केहरी = सिंह आदिकके भयसे जायके कन्दरामें पड़ा। सो वहाँ ही पकड़के सिंहने खा गया। तद्वत् विष-यनके डरके मारे योगीलोग भ्रमरगुफामें छिपे तो वहाँ ही महाआनन्द सिद्धिरूप-सिंह खाय गया। अब ये योगी अपना भेद कासों कहें इनको कछु सूझता नहीं। औ इनको कौन जानता है ? जो मिथ्या भ्रममें पड़े हैं ?। ये अर्थ ॥४४॥

साखीः—बहुत दिवस ते हींड़िया। शून्य समाधि लगाय ॥
करहा पड़ा गाड़में। दूरि परा पछिताय ॥४५॥

टीका गुरुमुखः—बहुत दिनसे चौरासीमें फिरे। फिर चौरासीका दुःख मालूम भया, तब योगी लोगोंकी शरणमें जायके ब्रह्म-प्राप्तिके वास्ते समाधि लगाई औ शून्यरूपी हो रहे। अपने मनमें तो ऐसा जाना कि हम ब्रह्मरूपमें मिल रहे, आवागमनसे रहित भये। परन्तु जब चोला छूटेगा, तब बहुत मनमें पछतायेंगे (दुःख पायेंगे)। क्योंकि ब्रह्माण्ड फूट जायगा, समाधि उड़ जायगी औ ब्रह्म-अनुभव कछु रहनेका नहीं। तो फिर चौरासीमें जायेंगे, फिर (दुःख पायेंगे वा) पछतायेंगे। जैसा हाथी खाँचमें गिरा, फिर बाहर तो निकर सकता नहीं औ वनकी याद करके पछताता (दुःख पाता) है कि जो वनमेंसे और कहीं भागता तो भला होता। अब कहाँ गाड़में आय परा। तद्वत् अध्यासवश जीव गर्भवासमें

जाता है। और गर्भवासमें देह साबूत होती है, तब गर्भका दुःख मालूम होता है। जठराग्निका तड़ाका लगता है औ रक्त, मांस, मूत्रमें गजबजाता है। दुर्गन्ध विशाल उठती है। तब पिछले जन्मकी (स्वप्नरूप) याद होती है कि मैं कहाँ था ? औ कहाँ आयके फँसा ? जो वहींसे कहूँ भाग जाता तो अच्छा था। ऐसा दूर परा पछताता (दुःख पाता) है। परन्तु क्या करे ? बेवश ! कहूँ निकरने तो सकता नहीं। ये अर्थ ॥ ४५ ॥

साखीः–कबीर भरम न भाजिया। बहुविधि धरिया भेष ! ॥
साँई के परचावते। अन्तर रहि गइ रेष ! ॥४६॥

टीका गुरुमुखः—कबीर कहिये कायाबीर, कायाबीर कहिये जीव। सो हे जीव ! तूने नाना तरहके भेष धारण किया औ नाना क्रिया औ नाना योग औ नाना उपासना औ वेदान्त आदिक बहुत विचार किया; परन्तु भ्रम न भागा। अरे ! तू भ्रमरूपी हो रहा है। साँई कोई ब्रह्म है, ऐसा एक भ्रम हुआ। सो उसका परचाव नाम परिचय किया। कहीं सहविकल्प, कहीं निर्विकल्प, कहीं जैसा–का–तैसा, कहीं दूसरा सङ्कल्प, कहीं अहं देह औ करतूत—ऐसा साँई = ब्रह्मका परिचय किया, सोई अन्तरमें सब भ्रमका बीज रह गया। सो केवल ब्रह्म अध्यास-मात्र। अध्यास जब मिटै, तब यथार्थ पारखकी प्राप्ति होय। येअर्थ ॥४६॥

साखीः–बिनु डाँड़े जग डाँड़िया। सोरठ परिया डाँड़ ॥
बाटनि हारे लोभिया। गुरते मीठी खाँड़ ॥४७॥

टीका गुरुमुखः—बिनु डाँड़े जग डाँड़िया कहिये जो किसीने जबरदस्ती जगत्को डाँड़ तो किया नहीं, औ जगत्को डाँड़ तो हो गया है। तो कैसे हुआ ? सो सुनो—'सोरठ परिया डाँड़।' सोरठ अंग्रेजीमें जुवेको कहते हैं। जो किसी मालके ऊपर बाटनी करके चिट्ठी डारते हैं। फिर जाके नामकी चिट्ठी निकरै सो सोरठ = जुवा जीतै, औ जाके नामकी चिट्ठी न निकरै, सो बाँटनी भी हारा औ सोरठ भी गई। तद्वत् इस जगत्में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—ये चार पदार्थपर सोरठ परी कि भाई ! जाको चार पदार्थ चाहिये, ताने यथाशक्ति कर्म, योग, उपासना करना औ नरजन्म बाँटनीमें लगाना। फिर जाका कर्म उदय होवेगा, ताको ज्ञानते अद्वैत मोक्ष मिलेगा। ऐसा मनसूबा वेदने बताया, तब

संसारमें लोभ बढ़ा औ सबने सोरठ डारी। सो लोभके मारे सब जीव सोरठ हार गये, नरजन्म हार गये, तब 'चौरासी भोगना' ये डाँड़ परा। सो किसीने इनको डाँड़ा नहीं। अपनी खुशीसे लोभमें आयके डाँड़ देना परा। ये अभिप्राय। बाटनी = नरजन्म, लोभिया = जीवने हारा। क्योंकि 'गुरते मीठी खाँड़।' गुर कहिये जीवको, औ खाँड़ कहिये ब्रह्मको। सो जीवसे ब्रह्म बड़ा है, ऐसा अनुमान जगत्में खड़ा भया। क्योंकि जीव मैला अविद्यावेष्टित औ मायाके वश, औ ब्रह्म शुद्ध सर्वाधिष्ठान मायाधीश। ऐसा अनुमान जगत्में खड़ा भया, तब जीवको लोभ लगा औ लोभिया बनके बाटनी = नरजन्म हार गया। या गुर कहिये जगत्सुख, सो अनित्य नाशमान् जानके, औ खाँड़ कहिये ब्रह्मसुख नित्य अविनाशी—ऐसा जानके लोभिया बाटनी हार गये। ये अर्थ ॥ ४७ ॥

साखीः—मलयागिर की बासमें। वृक्ष रहा सब गोय॥
कहबे को चन्दन भया। मलयागिर ना होय ॥४८॥

टीका गुरुमुखः—मलयागिर कहिये हंसको। ता हंसका बास कहिये ब्रह्म। सो ब्रह्ममें संसार सब गोय रहा = मिल रहा। तो कहनेमात्र ब्रह्म बना जीव; परन्तु कछु हंस न बना। बास छोड़ जो गिरिको वृक्ष पहुँचे तो सुबासके मारे गलि जाय औ मलयागिरि ही हो जाय। परन्तु बासहीमें वृक्ष गोय रहता है, ताते मलयागिरि नहीं होता। वृक्ष-का-वृक्ष ही रहता है। तद्वत् ये जीव हंसपदको नहीं पहुँचता। ब्रह्मानन्द निर्विकल्प—ताहीमें रह जाता है, ताते कहबेमात्र ब्रह्म बनता है। जो सत्य-विचारादि भूमिकापर ठहरे तो ब्रह्म-जगत् धोखा गलि जाय औ यथार्थ हंस ही जीव हो जाय। मलयागिर = जीव, वृक्ष = देह। सो अनेक देह जीवकी बास = चैतन्यता, तामें मिल रही है, ताते देह भी चैतन्य सरीखी मालूम होती है। परन्तु देह कछु चैतन्य होती नहीं। ताते देह भिन्न औ चैतन्य भिन्न, ऐसा परखके जानके पारखपर रहना। ये अभिप्राय ॥ ४८ ॥

साखीः—मलयागिर की बासमें। बेधा ढाँक पलास॥
बेना कबहुँ न बेधिया। जुग-जुग रहिया पास ॥४९॥

टीका गुरुमुखः—मलयागिर कहिये हंसपदकी भूमिका; सो जो निरभिमानी जीव पक्ष छोड़के सत्सङ्ग किया, सो जीव ब्रह्मको बेधके पार हुआ, पक्के तत्त्वको

प्राप्त भया, हंस हुआ । औ पक्षअभिमानी जीव, सो युग-युग सत्सङ्गके पास रहै, तो भी ब्रह्मपदको बेध नहीं सकते बेपारखी । अरे ! कच्ची देहमें ही पक्के तत्त्व हैं । परन्तु ब्रह्म अभिमानी, आत्मअभिमानी, देहअभिमानी, कर्मअभिमानी, बानीके अभिमानी, देवताके अभिमानी—ये अपना-अपना पक्ष करके वाद करते हैं औ पोल बाँसके माफिक रहते हैं । ये ब्रह्मपदको बेधके पक्के तत्त्वनको नहीं पावते । औ निरपक्ष, निरभिमानी जीव ढाक–पलासके माफिक गरीब, कङ्गाल, कुलहीन, वर्णहीन, आश्रमहीन—ते सब विचार करके हंस होते हैं, पक्की भूमिकाको पायके सबको परखके ब्रह्मपद बेधके न्यारे होते हैं । ये अर्थ ॥ ४९ ॥

साखीः—चलते-चलते पशु थका । नग्र रहा नौ कोस ॥
बीचहि में डेरा पेरा । कहहु कौनको दोस ? ॥५०॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जब मायाने तीर्थ, व्रत, क्षेत्रादिकका महात्म्य बताया, तब जीव सब वानप्रस्थ तीर्थवासी होके चले । तो चलते-चलते, तीर्थ करते-करते पाँव थक गये, तब बाकी तीर्थनकी औ स्वर्गादिकनकी वासना रही औ वृद्ध भये, पाँव थके । तब एक जगह कहूँ तीर्थ-धाममें परे औ चोला भी छूट गया । तब वासनारूपी नौ तत्त्वका चोला जीवको बना ही रहा, सोई 'नौ कोश' कहिये । चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कार, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध–ये नौ कोशकी देह जीवको प्राप्त भई, तब चौरासीमें देहधारी होके पछताने (दुःख पाने) लगा । औ स्वर्ग भी दूर रहा औ गुसैयाँ भी दूर रहा । ऐसी वासनासे बीच = गर्भवासहीमें डेरा पड़ा चौरासी योनिनमें । अब कहो ! यामें किसको दोष देवोगे ? वहाँ तुम्हारे सङ्ग कोई नहीं । अरे ! तेरी कल्पनाको तू ही खोजने लगा औ नाना वेद–शास्त्र सब बनाया । आखिर जहाँलों लक्ष्य चला, तहाँलों शब्द कहा । औ जहाँलों शब्द चला, तहाँलों लक्ष्य चला । जब लक्ष्य थका, तब शब्द भी रह गया । फिर नेति–नेति कहिके बीचहीमें डेरा परा । पारखस्थिति-को प्राप्त न भया तो फिर गर्भवासमें आया । काहेते ? कि पारख नौ कोशके पार है । नौ कोश कहिये अन्नमय, शब्दमय, प्राणमय, आनन्दमय, मनोमय, प्रकाशमय, ज्ञानमय, आकाशमय, विज्ञानमय—ये नौ कोश ❋ । १. अन्नसे उत्पन्न होय औ अन्नमें आसक्त होय सो अन्नमय । २. शब्दसे उत्पन्न होय औ

❋

* टिप्पणीः—संक्षिप्त नौ कोशोंका दिग्दर्शन—

१. अन्नमय	२. शब्दमय	३. प्राणमय	४. आनन्दमय	५. मनोमय	६. प्रकाशमय	७. ज्ञानमय	८. आकाशमय	९. विज्ञानमय
स्थूल देही	विराट् देही	सूक्ष्म देही	हिरण्यगर्भ देही	कारण देही	अव्याकृत देही	महाकारण देही	मूलप्रकृति देही	कैवल्य ब्रह्म
स्थूल देह	विराट् देह	सूक्ष्म देह	हिरण्यगर्भ देह	कारण देह	अव्याकृत देह	महाकारण देह	मूल प्रकृति	कैवल्य देह
जाग्रत्	सायं सन्धि	स्वप्न अवस्था	निशा अवस्था	सुषुप्ति अवस्था	प्रातःसन्धि	तुर्या अवस्था	मध्याह्न अवस्था	तुर्यातीत अवस्था
			(स्वप्नसुषुप्तिसंधि)		अवस्था		(तुर्या की सन्धि)	
क्षिप्रा भूमिका	बुद्धि भूमिका	गतागत भूमिका	मन भूमिका	सौलिष्टता भू०	चित्त भूमिका	सुलीन भूमिका	अहं भूमिका	अन्तःकरण
पपील मार्ग	नर मार्ग	विहंगम मार्ग	जल मार्ग	कपि मार्ग	सूर्य मार्ग	मीन मार्ग	वायु मार्ग	नभ मार्ग
पृथ्वी तत्त्व	तत्त्व महद्	सूक्ष्म जल तत्त्व	आनन्द तत्त्व	अग्नि तत्त्व	अणिमादि अष्ट	वायु तत्त्व	शून्य तत्त्व	आकाश तत्त्व
					सिद्धिनका रूप			
रजोगुण	गुण ब्रह्मा	सत्त्व गुण	विष्णु गुण	तमोगुण	शिव गुण	शुद्ध सत्त्वगुण	ईश्वर गुण	आत्म गुण
खेचरी मुद्रा	सन्मुखी मुद्रा	भूचरी मुद्रा	चाचरी मुद्रा	उन्मीलिनी मुद्रा	शाँभवी मुद्रा	अगोचरी मुद्रा	आत्म भाविनी	पूर्णबोधिनी
त्रिकुटी स्थान	कण्ठ स्थान	श्रीहट स्थान	गोल्हाट स्थान	हृदय स्थान	अहुटपीठ स्थान	नाभि स्थान	पुण्यगिरी स्थान	भ्रमरगुफा०
	(सतलोक स्थान)		(विष्णु लोक)		(शिवलोक)		(निराश्रय लोक)	
जठराग्नि	महदाग्नि	कामाग्नि	योगाग्नि	मन्दाग्नि	ज्ञानाग्नि	बड़वाग्नि	ब्रह्माग्नि	निजाग्नि
घटाकाश	घट-जल—	मठाकाश	अभ्राकाश	महदाकाश	चिदचिद् विशि-	चिदाकाश	आनन्दाकाश	निजाकाश
	प्रतिबिम्बाकाश				ष्टाकाश			
अपान वायु	किङ्किरादि महद्०	उदान वायु	रेचक वायु	प्राण वायु	पूरक वायु	समान वायु	कुम्भक वायु	स्फूर्ति वायु
काम जल	महा जल	चञ्चल जल	आनन्द जल	आवरण जल	जानीब जल	सहविकल्प	विज्ञान जल	कलातीत कला
						समाधि		
प्रध्वंशाभाव	महाप्रध्वंशाभाव	प्राज्ञभाव	विशिष्टाद्वैत	अनन्य भाव	अहंभाव	अत्यन्ताभाव	निजाभाव	भावातीतभाव
			भाव				(भ्रमर गुफा)	

शब्दमें आसक्त होय सो शब्दमय । ३. प्राणसे उत्पन्न होय औ प्राणमें आसक्त होय सो प्राणमय । ४. आनन्दसे उत्पन्न होय औ आनन्दमें आसक्त होय सो आनन्दमय । ५.मनसे उत्पन्न होय औ मनमें आसक्त होय सो मनोमय । ६. तेजसे, प्रकाशसे उत्पन्न होय औ प्रकाशमें आसक्त होय सो प्रकाशमय। ७.ज्ञानसे उत्पन्न होय औ ज्ञानमें आसक्त होय सो ज्ञानमय । ८. आकाशसे उत्पन्न होय औ आकाशमें मिल रहै सो आकाशमय । ९. विज्ञानसे उत्पन्न होय औ विज्ञानमें मिल रहै सो विज्ञानमय । ये नौ कोशते पार पारखपद; सो खोजते-खोजते नौ कोशमें रह गये, ताते नग्र कहिये चोला, सो छूटे उपरान्त फिर गर्भवास पाये । अब कहो! किसे दोष देवोगे ! अरे ! जिसे दोष देना चाहोगे सो तो सब तुम्हारी कल्पना । सो नौ कोश यथार्थ परखनेमें आवै औ छूटै, तब पारखपदकी प्राप्ति होय । ये अभिप्राय । अन्नमय-प्राणमयकी सन्धि शब्दमय कोश, प्राणमय-मनोमयकी सन्धि आनन्दमय कोश, मनोमय-ज्ञानमयकी सन्धि प्रकाशमय कोश, ज्ञानमय-विज्ञानमयकी सन्धि आकाशमय कोश । अन्नमयकी देही स्थूल, शब्दमयकी देही विराट्, प्राणमयकी देही सूक्ष्म, आनन्दमयकी देही हिरण्यगर्भ, मनोमयकी देही कारण, प्रकाशमयकी देही अव्याकृत, ज्ञानमयकी देही महाकारण, आकाशमयकी देही मूलप्रकृति, विज्ञानमयकी देही कैवल्य ब्रह्म । ये अभिप्राय । १. अन्नमय कोश— स्थूल देह, अवस्था जागृति,क्षिप्रा भूमिका, पपील मार्ग, तत्त्व पृथिवी, रजोगुण, मुद्रा खेचरी, त्रिकुटी स्थान, जठराग्नि, घटाकाश, अपानवायु, काम जल, प्रध्वंशा भाव । २. शब्दमय कोश—विराट् देह, अवस्था सायंसन्धि, तत्त्व महद् पृथिवी, गुण ब्रह्मा, मुद्रा सन्मुखी, कण्ठ स्थान, बुद्धि भूमिका, नरमार्ग, महदाग्नि, घटजल, प्रतिबिम्बाकाश, किङ्किरादि महद्वायु, सतलोक स्थान, महा प्रध्वंशा भाव, महाजल । देह छोड़के बाहर योगी लोग दूसरी देह धारण करते हैं सो शब्दमय कोश । ३. प्राणमय कोश—सूक्ष्म देह, श्रीहट स्थान, स्वप्न अवस्था, सूक्ष्म जल तत्त्व, सत्त्वगुण, मुद्रा भूचरी, कामाग्नि, मठाकाश, उदान वायु, गतागत भूमिका, प्राज्ञ भाव, विहङ्गम मार्ग, लिङ्ग देह । ४. आनन्दमय कोश— हिरण्यगर्भ देह, गोल्हाट स्थान, विष्णु लोक, मन भूमिका, निशा अवस्था, स्वप्न-सुषुप्ति सन्धि, योगाग्नि, रेचक वायु, जल मार्ग, विशिष्टाद्वैत भाव, चाचरी मुद्रा, विष्णु गुण, अभ्राकाश । ५. मनोमय कोश—कारण देह, हृदय

स्थान, सुषुप्ति अवस्था, सौलेष्टता भूमिका, मन्दाग्नि, महदाकाश, अनन्य भाव, कपि मार्ग, मुद्रा उन्मीलिनी, अग्नि तत्त्व, तमोगुण, प्राण वायु। ६. प्रकाशमय कोश—अव्याकृत देह, अहुठपीठ स्थान, शिवलोक, शिवगुण, चित्त भूमिका, प्रातः सन्धि अवस्था, ज्ञानाग्नि, अहंभाव, पूरक वायु, सूर्य मार्ग, शाम्भवी मुद्रा, चिदचिद् विशिष्टाकाश, अणिमादि अष्ट सिद्धिनका रूप। ७. ज्ञानमय कोश—महाकारण देह, नाभि स्थान, शुद्ध सत्त्वगुण, तुर्या अवस्था, सुलीन भूमिका, अत्यन्ताभाव, बड़वाग्नि, समान वायु, मीन मार्ग, अगोचरी मुद्रा, चिदाकाश, सहविकल्प समाधि। ८. आकाशमय कोश—मूल प्रकृति देह, पुण्यगिरी स्थान, निराश्रय लोक, ईश्वर गुण, अहं भूमिका, मध्याह्न अवस्था, ब्रह्माग्नि, कुम्भक वायु, वायु मार्ग, आत्मभाविनी मुद्रा, आनन्दाकाश, निजाभाव, भ्रमरगुफा, तुर्याकी सन्धि। ९. विज्ञानमय कोश—कैवल्य देह, भ्रमरगुफा स्थान, तुर्यातीत अवस्था, अन्तःकरण भूमिका, सर्वाधिष्ठान, कलातीत कला, भावातीत भाव, पूर्णबोधिनी मुद्रा, निजाग्नि, निजाकाश, स्फूर्ति वायु, जैसे-का तैसा आत्म गुण, निर्गुण ब्रह्म। इस प्रकार नौ कोश सूक्ष्म भावसे वर्णन भये। काहेते कि कहते हैं—जहाँ नौ कोश, पञ्च कोश आचार्योंने वर्णन किया है, तहाँ बहुत विस्तार किया है। वह विस्तार सब यहाँ लावना तो नाहक टीका बहुत बढ़ेगी। ताते सूचनार्थ लाया कि चलते-चलते = खोजते-खोजते, विचार करते-करते, देखते-देखते लक्ष्य औ पगु थक गया; परन्तु या नौ कोश लाँघके कोई पार पाया नहीं। ताते चोला छूटा औ गर्भवासके बीचहीमें डेरा परा। अब दोष किसे देवोगे? अपनी गाफिलीमें आप ही पड़ा औ अपनी भूलने अपनेको खाया। ताते नौ कोशके पार पारखपद। सो पारखपदकी प्राप्ति होय औ नौ कोश मिथ्या भास सब छूटै, तब जीव रहित होय। ये अर्थ ॥ ५० ॥

साखीः—झालि परे दिन आथये। अन्तर पर गइ साँझ ॥
बहुत रसिकके लागते। बिश्वा रहि गइ बाँझ ॥५१॥

टीका गुरुमुखः—बुढ़ापा आया प्रपञ्च करते-करते औ विषयरस लेते-लेते औ वेद, शास्त्र, पुराण नाना बानी पढ़ते-पढ़ते। औ कर्म, उपासना, तपस्या, योग, वैराग्य करते-करते थके। आखिर गुरुपद पारखकी प्राप्ति भई नहीं। एक दिन मौत आन पहुँची। सो आँखिनपर झाली परी, अँधेरी परी, औ दिन

कहिये ज्ञान, सो गाफिलीमें डूब गया । अन्तरकी इन्द्री—चित्त, मन, बुद्धि, अहङ्कारादि; इनमें अँधेरा परा । अब बुद्धि कहीं निश्चय कर सकती नहीं औ चित्त कहीं चल सकता नहीं । मनमें कछु दृढ़त्त्व आता नहीं । अहङ्कारका उपाय थका । अब कछु पारखकी प्राप्ति होने माफिक अवस्था रही नहीं । काहेते कि ? बहुत रसिक = गुरुवा लोग; इनकी सङ्गत्में लगेते विश्वा कहिये विश्वासी जीव बाँझ रह गये । कछु फल प्राप्त न भया । औ एक दिन मर गये, तब चौरासीको प्राप्त भये । ये अर्थ ॥ ५१ ॥

साखीः—मन कहै कब जाइये ? चित्त कहै कब जाव ? ॥
छौ मासके हींड़ते । आध कोस पर गाँव ! ॥५२॥

टीका गुरुमुखः—जब गुरुवा लोगोंकी बातें सुन-सुन जीवको अनुराग हुआ, तब मनमें नाना सङ्कल्प उठने लगे कि किस वक्त स्वर्गादिककी प्राप्ति होय औ कब ब्रह्माण्डका सुख मिले । ताते मन कहै कब जाइये ? अब चित्त अनुसन्धान बाँधने लगा, छौ शास्त्रकी बानी देखने लगा । तब शोधने लगा कि अर्धमात्रा सोई आधा कोश; तामें जीवकी स्थिति है । ज्ञान भया तो कैवल्यकी प्राप्ति होती है । ये अर्थ ॥ ५२ ॥

साखीः—गृह तजिके भये उदासी । बन खण्ड तपको जाय ॥
चोली थाकी मारिया । बेरई चुनि-चुनि खाय ॥५३॥

टीका गुरुमुखः—जब अर्धमात्रामें जीवकी स्थिति है—ऐसा मालूम हुआ, तब घर छोड़के उदासी भये । गृहस्थाश्रमसे उदास भये औ त्याग करके वनमें तपस्या करने लगे, तब भूखके मारे प्राण विकल होने लगा औ हाथ-पाँवकी शक्ति घट गई । चोला थका, तब जङ्गलकी 'बेरई चुनि-चुनि खाने लगे', कन्द, मूल, फल, फूल, पत्र चुनि-चुनि खाने लगे । ये अर्थ । अब माया उपदेश करती है जीवको कि महा तपस्या करके चोलेको जराना-॥ ५३ ॥

साखीः—राम नाम जिन चीन्हिया । झीना पिञ्जर तासु ॥
नैन न आवै नीन्दरी । अङ्ग न जामें माँसु ॥५४॥

टीका मायामुखः—अरे ! जाने राम-नाम चीन्हा, ताकी गति ऐसी होना कि शरीर तो दुर्बल होना औ मारे विरहके आँखमें नींद न आवना । सदा

सर्वकाल लौ परमात्मामें लगी रहै। जैसे तरुण स्त्री है औ ताका पिया परदेश गया है। सो कामकी ज्वाला शरीरमें उठती है औ आठों पहर पियाकी याद आती है। तापर सङ्गकी सखी सब शृङ्गारकी बानी सुनाती हैं, नाना प्रकारकी क्रीड़ारस वर्णन करती हैं। सो सुनि-सुनिके विशेष विरह बढ़ता है औ आँखिनमें आँसू चलती है। मुँहपर पीरी छाय रही है। सेजपर नींद नहीं आती। भोजन, भूषण, वस्त्रादि कुछ सोहाते नहीं। तद्वत् जाका प्रेम परमात्मामें लगा है, ताको परमात्मा मिलनेके कामकी ज्वाला बारम्बार अन्तःकरणसे उठाना औ जगत्के विषय अग्निके माफिक मालूम होना। सदा संसार औ विषय-भोगका तिरस्कार मनमें लाते रहना औ विरह, वैराग्य, प्रेमलक्षणा बानी सुनते रहना औ वही बानी मनन करके प्रेमलक्षणाका निदिध्यासन करना। प्रेमलक्षणाका वर्ण मुँहपर छाय रही, पीरी श्वास आती है। श्री त्यागी, उजीरी, अमीरी बेफिकिरी फिकिर नामकी। प्रेम-लक्षणाका लक्षण वर्णनः—

कवित्तः—छिन-छिन भरे नैना नीर, मनुवा धरे नहीं धीर। कबधौं मिलै प्रीतम पीर, शुष्क शरीर डोलत है॥ छिनमें हँसे छिनमें रोय, छिनमें रहे मौनी होय। छिनमें उमगि के नाचै गावै, छिन ही में पछतावै॥ मद्य पी छके जैसे मतवारे, न कबहुँ देह सँभारे। ऐसी प्रेमकी है रीत, ताको मिलै प्रीतम प्रीत॥१॥५४॥

साखीः—जो जन भीजै राम रस। बिगसित कबहुँ न रूख॥
अनुभव भाव न दरसै। ते नर सुख ना दूःख॥५५॥

टीका मायामुखः—रामरस कहिये प्रेमरस। सो जो जन प्रेमरसमें भीज रहे हैं सो सदा उदास रहते हैं। प्रफुल्लित कबहूँ होते नहीं। अनुभव = उनकी भावनाका रूप उनको सदा दर्शता है, ताते उनको जगत्का कछु सुख-दुःख मालूम होता नहीं। जैसे मद्यपी मद्यपान करके मस्त बेफहम हो जाता है, फिर उसपर चाहे जो कोई फूल डारो, चाहे विष्ठा डारो, चाहे निन्दा करो, चाहे पाँवन परो, वह कछु समझता नहीं। तद्वत् प्रेममें गरगाफ भये। ये अर्थ॥५५॥

साखीः—काटे आम न मौरसी। फाटे जुटै न कान॥
गोरख पारस परसे बिना। कौनेको नुकसान?॥५६॥

टीका गुरुमुखः—जैसा आमका वृक्ष काटेपर मौरता नहीं; तैसा ब्रह्म-अनुमानका वृक्ष परखके काट डारा, फिर कभी जुटता नहीं। औ जैसा कान फाटा, फिर कभी जुटता नहीं; तैसा जीव, ब्रह्मअध्यास परखके न्यारा हुआ, फिर कभी ब्रह्मअध्यास या जगत्में मिल सकता नहीं। ताते जगत्—ब्रह्म दोऊ धोखा परखके पारखरूप हो रहना! नहीं तो हे गोरख योगी! पारख कहिये जीव औ लोहा कहिये देह। तो जो देह जीवका स्पर्श न करे तो देहका नुकसान है। जीवका क्या नुकसान है? तैसा ये जीव पारखका स्पर्श न करे तो पारखका कछु नुकसान नहीं। जीवहीका नुकसान है। ताते हे गोरखनाथ! हठयोग, राज-योगादि अध्यासका पक्ष छोड़के सब धोखा परख ले! नहीं तो धोखेमें बन्ध होके नाहक मानुषतन खोवेगा औ फिर आवागमनमें परेगा। तो फिर किसका नुकसान होयगा? देख! हमने तो जीवदया जानके बहुत कहा। फिर तुम्हारी मर्जी। ये अभिप्राय ॥५६॥

साखीः—पारस रूपी जीव है! लोह रूप संसार॥
पारस ते पारस भया। परख भया टकसार ॥५७॥

टीका गुरुमुखः—पारस = चैतन्यरूप जीव है। पारस कहिये ज्ञान; सो ज्ञानरूपी जीव है, औ लोहा = जड़ पाँच तत्त्व अचेतरूपी संसार। ये ही जमा। इसपर और कोई मालिक नहीं। ये अभिप्राय। तो ये अनेक जीव बिना मालिक पैदा कहाँसे भये? ये शङ्का। 'पारससे पारस भया।' अरे! ये जीव चैतन्य अचेत जड़ तत्त्वनमें मिला औ अपनी हंसदेह भूला, ताते आप ही अचेत—अजान होके इच्छा किया औ दूसरा नारीस्वरूपको स्त्री बनाया औ ता नारीके वश भया। फिर तैजस अभिमानयुत कल्पि-कल्पि नाना रूप बनाया औ एक ही जीव सबमें समाया। जैसे स्वप्नमें अनेक रूप बनाया औ सबमें आप समाया; तैसा 'पारस ते पारस भया।' परन्तु अब एकसे अनेक हो गया, ताते सामर्थ सब नाश भया। तैजस अभिमानको विश्व अभिमानने ढाँका, ताते जीव लाचार भया। अब इससे कछु हो सकता नहीं। ताते आवागमन जीवको सिद्ध भया। ये अभि-प्राय। तो आवागमनसे रहित कैसे होय? ये शङ्का। 'परख भया टकसार।' टकसार कहिये, बीजक कहिये; जासे साँचा-झूठा, भास—अध्यास, अनुमान, आरम्भ परिणाम सबकी कसर परखनेमें आवे, ताको टकसार कहिये। जाते पारस पारख

भया। बिना पारख और खराब हुआ, बहुत दुःख पाया। फिर जब गुरुके टकसार = सत्सङ्गमें आया, तब सब कसर-धोखा बन्धन परखके पारख-भूमिका-पर ठहरा औ पारखरूपी जीव बना, तब आवागमनसे रहित हुआ। ये अर्थ ॥५७॥*

---

* टिप्पणीः—साखी ५७ का महाभाष्य—

साखीः—पारस रूपी जीव है! लोह रूप संसार ॥
पारस ते पारस भया। परख भया टकसार ॥५७॥

महाभाष्य; गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हे सन्तो! [दृष्टान्त तो ऊपरकी साखी-में कह चुके हैं। यहाँ सिद्धान्तमें—पारस = चैतन्य जीवका शुद्ध स्वरूप पारख है। पूर्व अध्याससे वर्त्तमानमें रूपी = मनुष्यरूपमें देहधारी जीव प्रत्यक्ष है। इसमें भी जनैया-मनैया, ज्ञाता-ध्याता, द्रष्टा-साक्षी, ज्ञानाकार चैतन्य जीवका निज स्वरूप पारख ही है। जड़ देहसे भिन्न जीव अविनाशी है। लोहरूप = जड़ अचेतन अज्ञान पञ्च तत्त्वस्वरूप सारा संसार कार्य-कारण संयुक्त अनादि है। इस प्रकार चारों खानियोंके बद्ध अनन्त देहधारी चैतन्य जीव और पाँचों जड़ तत्त्वरूप सारा संसार; ऐसे जड़-चैतन्य दोनों अनादि, स्वरूपसे नित्य पदार्थ हैं। इनका कर्त्ता-धर्त्ता ब्रह्म-ईश्वरादि मालिक कोई नहीं है। जड़ तत्त्वोंसे ब्रह्माण्डमें सारे कार्य पदार्थ बनते-बिगड़ते रहते हैं। दूसरी ओर जड़ाध्यास, वासनावश जीवोंकी सत्तासे चार खानियोंमें सम्पूर्ण देहोंके उत्पत्ति-पालनादि हो रहे हैं। इस प्रकार लोहरूप जड़ संसारमें पारसरूप चैतन्य जीवके जड़ाध्यासकी सत्ता-सम्बन्धसे पारस ते = निमित्त कारणरूप जीव और साधारण कारणरूप माता-पिताके रज-वीर्यादिके सम्बन्धसे ही स्थूल देह धारण करके पारस = अध्यासी जीव स्पर्श, संयोगसे तीन खानिकी योनियोंमें उत्पन्न हुए और हो रहे हैं। जीवोंकी सत्तासे ही सम्पूर्ण देहोंकी उत्पत्ति हो रही है। इनको उत्पन्न-पालन करने-वाला कोई ईश्वरादि नहीं है। अध्यासवश सब जीव अनादिकालसे आवागमनमें पड़ते चले आ रहे हैं। अब जो जिज्ञासु मनुष्य टकसार = मेरे सत्योपदेशरूप बीजकका श्रवण-मनन-निदिध्यासन करके पारखी सन्तोंके सत्सङ्गद्वारा विवेक-विचारसे यथार्थ परीक्षा करेंगे, जड़-चैतन्यके स्वरूपका निर्णय करके यथार्थ भेद जानेंगे, जगत्कर्त्ताके मिथ्या अनुमान-कल्पना, भ्रम-भूल, भास-अध्यासको एवं सम्पूर्ण विषयासक्ति विकारों को भी परित्याग करेंगे, उनको सद्गुरुदेवकी कृपासे यथार्थ पारखस्वरूपका बोध प्राप्त हुआ वा होगा। जैसे सरकारी टकसालमें ढले हुए सिक्के ही असली प्रामाणिक होते हैं, अन्य बनावटी नकली सिक्के दूषित होते हैं। तद्वत् बीजकरूप टकसारमें निर्णित पारखसिद्धान्त चैतन्य-स्वरूपका बोध निर्दोष असली माननीय है। उसी बीजक-प्रमाणसे पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गरूप टकसारमें परखकर जिसे अपरोक्ष पारखबोध प्राप्त हो जाता है, सम्पूर्ण खानि-वाणीके अध्याससे छूटकर वह मनुष्य जीवन्मुक्त होता है। अतः जिज्ञासुजनोंको पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गद्वारा टकसाररूप *

साखीः-प्रेम पाटका चोलना । पहिर कबीरू नाच ! ॥
पानिप दीन्हों तासुको । जो तन-मन बोलै साँच ॥५८॥

टीका मायामुखः—प्रेमपाट कहिये प्रेमलक्षणाकी बानी, चोलना कहिये देह, कबीरू कहिये कायाबीर जीव । सो माया जीवको उपदेश करती है कि प्रेमलक्षणा चोलना बनाना और प्रेमलक्षणा-बानीका नित अभ्यास करना ! प्रेम लक्षणा-बानीको गाना औ प्रेमलक्षणा-बानी पढ़ना, वही सुनना, वही गुनना, जामें चोला सब प्रेम-रूपी हो जाय । फिर हे जीव ! वही चोला पहिरके प्रेममें मगन होके नाचना तो भगवान् सदा उसके सङ्ग रहेंगे औ अन्तमें भगवान् उसको अपने रूपमें मिला लेवेंगे । 'पानिप दीन्हों तासुको । जो तन मन बोलै साँच ॥' अरे ! ये प्रेमलक्षणा-बानी दशविधा भक्ति भगवान्ने उसे दी, जो तन-मनसे 'एक भगवान् पुरुष साँच औ सकल जीव नारी मिथ्या' ऐसा भाव जहाँ आया, निश्चय हुआ, तहाँ कृपा करके अपनी प्रेमलक्षणा दी गोपिकादिकनको । ये अर्थ ॥ ५८ ॥

साखीः-दर्पण केरी गुफामें । स्वनहा पैठा धाय ॥
देखि प्रतीमा आपनी । भूँकि-भूँकि मरि जाय ॥५९॥

टीका गुरुमुखः—दर्पणकी गुफा कहिये प्रेमलक्षणा-बानी, औ स्वनहा कहिये मन । सो सब भक्तनका मन प्रेमलक्षणा-बानीका दृढ़ापन सुनिके प्रेमलक्षणा-में पैठा, तब प्रेमकी मूरत अपनी खड़ी भई । तब उसको देख-देखके अधिक प्रेम

---

* बीजकका सत्य सिद्धान्त, निजस्वरूपके ज्ञानरूप पारखबोध प्राप्त करके निर्बन्ध मुक्त हो जाना चाहिये !

अथवा पारसरूपी=चैतन्य पारखस्वरूप ही जीव है। पञ्च तत्त्व एवं पञ्च तत्त्वात्मक कार्यरूप स्थूल-सूक्ष्म देह, ये लोहरूप=जड़ स्वरूप हैं। अथवा पारखबोध देनेवाले सद्गुरु शुद्ध पारखस्वरूप हैं। अज्ञान-अबोधग्रस्त बद्ध जीव लोहरूप संसारमें फँसे पड़े हैं। अब जो जिज्ञासु नरजीव पारखी सद्गुरुके शरण-सत्सङ्गमें नम्रतापूर्वक भक्ति-भावसे आकर लग जाते हैं, उनको पारसते=बोधवान् पारखी सद्गुरुदेवकी कृपासे पारस=पारखस्वरूपका बोध प्राप्त हो जाता है। टकसार=पारखी सद्गुरुके सत्सङ्गमें ही 'बीजक' सद्ग्रन्थका सत्यन्याय-निर्णय श्रवण-मनन करते-करते सर्व संशयकी निवृत्ति, सर्व सिद्धान्तोंके कसर-खोटकी पहचान करके परीक्षा-दृष्टिसे मोटी झीनी मायाजालोंसे छूट जाते हैं, हंसपदमें ठहरकर जीवन्मुक्त भी हो जाते हैं। इस प्रकार पारखी सद्गुरुकी दयासे जिज्ञासुजन भी पारखी होकर सब भव-बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं। अतः सद्गुरुदेवसे पारखबोध प्राप्तकर अपना जीवन-कल्याण करो ॥५७॥

बढ़ाने लगे और उस धोखेके पीछे पुकार-पुकारके मरे, कुछ पारखस्थितिको प्राप्त भये नहीं। तो देह छूटै प्रेम, प्रतिमादि सम्पदा नाश भई औ चौरासीके चक्रमें परे। ये अर्थ ॥ ५९ ॥

साखीः—ज्यों दर्पण प्रतिबिम्ब देखिये ! आपु दुहुँनमा सोय ॥
यह तत्त ते वह तत्त है। याही से वह होय ॥६०॥

टीका गुरुमुखः—जैसा दर्पणमें मुँह देखना तो दूसरा मुख नजर आता है। पर जो ये मुँह न होय तो दूसरा मुख कहाँसे नजर आवे ? तो ये देखनेवाला सत्य, औ देखा सो मिथ्या। अन्तःकरण पञ्चक सो दर्पण, देखनेवाला जीव; प्रतिबिम्ब = ब्रह्म, आत्मा, ईश्वर, कर्त्ता औ पञ्च तत्त्वादि जगत्। अथवा दर्पण = देह औ देखनेवाला जीव, प्रतिबिम्ब = सम्पूर्ण योगसिद्धान्त। अथवा दर्पण = बानी और देखनेवाला जीव, प्रतिबिम्ब = नाना अर्थ, भास, अध्यासादि। तो येही जीवसे ब्रह्म-जगत्, आत्मादि सम्पूर्ण मिथ्या कल्पना खड़ी भई। ये अभिप्राय॥६०॥

साखीः—जोबन सायर मूझते। रसिया लाल कराय ॥
अब कबीर पाँजी परे। पन्थी आवहिं जाय ॥६१॥

टीका गुरुमुखः—वन कहिये बानी, सायर कहिये समुद्र, मूझते कहिये खोजते, रसिया कहिये ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि नाना ऋषि; तिन अति प्रीति करके खोजा। जो बानीका समुद्र वेद; तामेंसे पाँच रास्ता निकारे—कर्ममार्ग, उपासनामार्ग, योगमार्ग, प्रेममार्ग, ज्ञानमार्ग। तामें जीव परे और एक-एक पन्थका पक्ष पकड़के पन्थी बने, ताते आने-जाने लगे। पिण्डसे ब्रह्माण्ड; ब्रह्माण्डसे पिण्ड; जगत्से ब्रह्म, ब्रह्मसे जगत्; स्वर्गसे नरक, नरकसे स्वर्ग; देवलोकसे मृत्युलोक, मृत्युलोकसे देवलोक; गर्भवाससे बाहर औ बाहरसे गर्भवासमें आने-जाने लगे। ये अर्थ। कबीर कहिये जीव औ पाँजी कहिये मार्ग, लाल रसिया त्रिदेवादि महामुनि; तिन जगत्में नाना मार्ग कराये। सोई मार्गमें जीव परे, सो आते-जाते हैं। ये अर्थ ॥

विरह अर्थः—'जोबन सायर मूझते।' जोबन सायर कहिये जवानीका समुद्र, जवानीका समुद्र स्त्री, ताने ब्रह्मा-विष्णु आदि रसिया लोगोंको मोहित किया औ भगचक्रमें सबको समेटके डारा। वही रसिया लालनने सबको विषय कराया, महाऋषिनको अपनी कन्या पैदा करके दई। सोई शादी-विवाह करके

अब जीव सब विषयमार्गमें पड़े हैं। सो भगपन्थी भगमेंसे आते हैं औ भगहीमें जाते हैं। ये अर्थ ॥ ६१ ॥

साखीः-दोहरा तो नौ तन भया। पदहिं न चीन्हैं कोय ॥
जिन्ह यह शब्द विवेकिया ! छत्र धनी है सोय ! ॥६२॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! ये स्त्री-पुरुष दोहरा = दो तन तो नये पैदा भये; परन्तु जा हंसके पाससे ये दोनों स्त्री-पुरुषके तन पैदा भये, सो हंसपदको कोई चीन्हता नहीं। औ दोहरा वेदबानी। ये नौ तन नौ प्रकारके पैदा भये—नौ कोशात्मक। ताते अपने पदको कोई चीन्हता नहीं। सब भूलमें परे। कोई ब्रह्म, कोई आत्मा, कोई दास कहलाते हैं, पर जहाँसे ये बानी-वेद खड़े भये औ ब्रह्म-आत्मा सिद्धान्तको जाने माना, सो जीवको कोई चीन्हते नहीं तो कैसे छत्रधनी जाना जाय ? ये शङ्का। भाई ! जिनने सम्पूर्ण वेदादिक शब्दका विवेक किया, औ सब सिद्धान्त माना है, सोई छत्रधनी जीव। ये अर्थ। औ जासे स्त्री-पुरुषादि दो तन निर्माण भये, सोई हंस सबका मालिक। जो शब्दका विवेकी, सोई शब्दका मालिक। ये अर्थ ॥ ६२ ॥

साखीः-कबीर जात पुकारिया। चढ़ि चन्दनकी डार ॥
बाट लगाये ना लगे। पुनि का लेत हमार ? ॥६३॥

टीका गुरुमुखः—गुरु मायाका अभिप्राय कहते हैं कि चन्दन कहिये जीव, चन्दनकी डार कहिये ब्रह्म। सो ब्रह्मज्ञानपर चढ़के कबीर = गुरुवा लोग पुकारते हैं—जात कहिये ब्रह्मका सिद्धान्त। सोई जीव सब भ्रमचक्रमें पड़े। केतिक जगत्-ब्रह्म बने, तो इनकी स्थिति कैसे होय ? औ स्थितिके बाट मैं लगाता हौं तो ये जीव कोई लगते नहीं। फिर हमारा क्या लेवेंगे ? आपी ये खराब होवेंगे। ये अर्थ ॥ ६३ ॥

साखीः-सब ते साँचा भला ! जो साँचा दिल होय ॥
साँच बिना सुख नाहिं ना। कोटि करे जो कोय ॥६४॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि सब ब्रह्म-जगत, ईश्वरादि सिद्धान्तनसे 'जीव' ये साँचा सिद्धान्त, औ सब झूठा; परन्तु जब साँच पारख जीवको प्राप्त होय तब। नहीं तो एक पारख बिना कोटि सिद्धान्त, कोटि तपस्या, कोटि योग

कोई करे; परन्तु जीवको सुख नहीं । एक पारख बिना सकल सिद्धान्त दुःखरूपी। ये अभिप्राय ॥ ६४ ॥

साखीः-साँचा सौदा कीजिये ! अपने मनमें जानि ॥
साँचे हीरा पाइये ! झूठे मूलहु हानि ॥६५॥

टीका गुरुमुखः—ताते हे सन्तो ! साँचा विचार करके साँची स्थिति ग्रहण करना । अपने मनमें जानके सत्य-विचारका सौदा करना ! ताते साँचा हीरा, साँचा पद मिलता है । अगर अपने मनमें विचार न किया तो गाफिलीमें गुरुवा लोगनका उपदेश ग्रहण किया । ताते मूल = जीव, ताकी भी हानि होती है, नहीं तो धोखा मानन्दी हो जाती है, औ जीवका स्वतः भाव भी नाश होता है। ताते सत्सङ्गमें जायके साँचा सौदा = सारशब्दका विचार करना औ जैसा सार-शब्द कहता है, तैसा अपने भी मानुषदेहमें जानना । यथार्थ पारखकी प्राप्ति बिना जीवकी हानि होती है । ये अभिप्राय ॥ ६५ ॥

साखीः-सुकृत बचन माने नहीं । आपु न करे विचार ॥
कहहिं कबीर पुकारिके । सपनेहु गया संसार ॥६६॥

टीका गुरुमुखः—सुकृत कहिये सन्त; सो जगत् सन्तनका वचन तो मानता नहीं, सदा सर्वकाल राग-दम्भमें गाफिल हो रहा है औ आप भी विचार करता नहीं । ताते गुरु कहते हैं कि वेदवानीके भरोसे मिथ्या खाविन्दको पुकार-पुकारके स्वप्नवत् संसार गया । कुछ फ़हम रही नहीं । मानुषजन्म स्वप्न-सा जाता रहा। औ सुकृत कहिये निर्णय वचन । ये अर्थ ॥ ६६ ॥

साखी-आगि जो लागि समुद्रमें । धुवाँ न परगट होय ॥
की जाने जो जरि मुवा । की जाकी लाई होय ॥६७॥

टीका गुरुमुखः—समुद्र कहिये संसार, जगत; तामें विरहअग्नि, ब्रह्मअग्नि लगी । सो धुँआँ तो कहूँ प्रकट होता नहीं औ जीव सब जर रहे हैं, तो इनके दुःखको कौन जाने ? सोई इनका अनुभव जाने कि जो विरहअग्निमें जरके मर गया, अथवा ब्रह्मअग्निमें जरके निरान्त-शान्त हो गया, सो जाने । नहीं तो जिन विरह लगाया औ ब्रह्मअग्नि चेताया, सो गुरुवा लोग जाने । औ बाहर कोई नहीं जानता । ये अभिप्राय । चिन्ताज्वाला संसारमें लगी है, सो संसारमें

सब जरा जाता है। चिन्ताका दुःख सो जानै, जो-जो चिन्ताक्रान्त हैं; या जाने चिन्ता लगाई सो जाने। ये अर्थ ॥ ६७ ॥

साखीः—लाई लावनहार की। जाकी लाई पर जरे ॥
बलिहारी लावनहार की! छप्पर बाँचे घर जरे ! ॥६८॥

टीका जीवमुखः—ये ब्रह्मअग्नि किनने लगाई ? कि जो आप पहिले ही जरके ब्रह्मरूप हो गये, तिनने लगाई सनकादि–व्यासादिकनने। कि जाके ब्रह्मअग्नि लगायेसे हमारे दोनों पर जर गये। कर्म–उपासनाके औ सगुण–निर्गुणके दोनों पक्ष रहे नहीं। हमको ज्ञानकाण्डसे सम्पूर्ण ब्रह्म अनुभव हुआ। ताते 'बलिहारी उन लावनहारकी।' जो हम पाँच तत्त्व औ छठवाँ मन, इनके ऊपर निर्विकल्प स्वरूप होके आवागमनसे बचे। ये अर्थ। इस जीवने ब्रह्मज्ञानिन-की प्रशंसा की, जो आपको ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति भई। इस वास्ते गुरु जीवमुख साखीका निराकरण करते हैं ॥ ६८ ॥

साखीः—बुन्द जो परा समुद्रमें। सो जानत सब कोय ॥
समुद्र समाना बुन्दमें। सो जानै बिरला कोय ! ॥६९॥

टीका गुरुमुखः—बुन्द कहिये ब्रह्मको, ब्रह्म कहिये धोखेको। सो कोई एक ब्रह्म है, ऐसा धोखा प्रथमारम्भमें जगत्में परा। सो उस धोखेको अपने अनुमानसे मालिक करके सब कोईने जाना। जगत् कहिये समुद्र, सो उस धोखे-में समाया अपने अनुमानसे औ वेदज्ञानीके प्रमाणसे, ताको कोई बिरला पारखी जानता है। सो पारखी सबसे न्यारा पारख-भूमिकापर रहता है। ये अर्थ। अथवा समुद्र = ब्रह्म औ बुन्द = जीव। सो जीव ब्रह्ममें परा औ अपने अनुमानसे ब्रह्मको अधिष्ठान बनाया, सो सब वेद–वेदान्तने जाना। परन्तु वही ब्रह्म जगत्में समाया औ नाना सुख-दुःख भोगता है, सो काहू बिरले पारखीने जाना। ये अर्थ ॥ ६९ ॥

साखीः—जहर जिमी दे रोपिया। अमी सींचे सौ बार ॥
कबीर खलक ना तजे। जामें जौन विचार ! ॥७०॥

टीका गुरुमुखः—जहर जिमी कहिये ब्रह्म-अधिष्ठान, सो गुरुवा लोगोंने उपदेश देके जीवको रोपा औ 'खलक सब मेरा स्वरूप' ऐसा निश्चय करके कबीर =

जीवने पकड़ लिया औ उस जिमीमें गरगाफ हुआ। सो सौ बार कोई जीवको अमीरूपी पारखसे सींचे, पर ये खलकने, जाने जौन विचार पकड़ा है, सो छोड़ता नहीं। कसर भी मालूम होती है; परन्तु धोखा कछु त्यागा जाता नहीं। मोह दृढ़ हुआ। ये अर्थ। अमी कहिये अमृतको, अमृत कहिये जो आप अमर होय, नाशे न कधी, औ जाको प्राप्त होय, ताका भी जरा-मरण मेंट दे। तो अमृत नाम पारखका है, जो तीनकालमें नाश नहीं होता औ जा जीवको प्राप्त होय, ताको जरा--मरण रहित करता है। ये अभिप्राय ॥ ७० ॥

साखीः-धौकी डाही लाकड़ी। वो भी करे पुकार ॥
अब जो जाय लोहार घर। डाहै दूजी बार ॥७१॥

टीका गुरुमुखः—धौ कहिये जठराग्नि, ताकी डाही लाकड़ी कहिये जीव, सो गर्भवासका त्रास करके पुकार करता है; परन्तु ये गुरुवा लोग लोहार, तिनके पास जायगा तो वो इसे बन्धनमें डार देवेंगे। फिर ये जीव और भी गर्भवासमें जायके जठराग्निमें दूजी बार जरेगा। ये अर्थ ॥ ७१ ॥

साखीः-बिरह की ओदी लाकड़ी। सपचै औ धँधुवाय ॥
दुःखते तबहीं बाँचि हो। जब सकलो जरिजाय ॥७२॥

टीका गुरुमुखः—विरहके भीजे जो जीव हैं सो राम वियोगी हैं, सो सपच-सपचके, ठहर-ठहरके धुँधुवाय उठते हैं। रह-रहके विरहकी ज्वाला उठती है। सो व्याकुल होके रोते हैं। इनका दुःख कैसे छूटै ? जब ब्रह्म-जगतादि विरह जलके नाश हो जाय ज्ञानके प्रतापसे, औ पारखपदकी प्राप्ति होय, तब दुःखसे बचे। ये अर्थ ॥ ७२ ॥

साखीः-बिरह बाण जेहि लागिया। औषध लगे न ताहि ॥
सुसुकि-सुसुकि मरि-मरि जिवै। उठे कराहि-कराहि ॥७३॥

टीका गुरुमुखः—विरहकी बानी जा मनुष्यको लगी, सो उस विरहमें दिवाना मस्त हुआ। फिर उसे विचारकी बानी कधी लगती नहीं औ पारखपद कधी उस जीवको प्राप्त होता नहीं, ताते सुसुकि-सुसुकि मरि-मरिके जीता है। स्वासा ठण्ढी चलती है। मुँहपर पीरी छाई रहती है। आँखि लाल, आँसूसे भरी औ देह पतरी रहती है। औ बारम्बार लगवारकी याद करके कराहि-कराहि उठता है। ये अर्थ ॥ ७३ ॥

साखीः-साँचा शब्द कबीरका। हृदया देखु विचार !॥
चित्तहु दै समुझै नहीं। मोहिं कहत भैल जुग चार॥७४॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! जो ब्रह्माका शब्द वेद, ताको तूने साँचा करके माना। सो हृदयमें विचार करके देख कि सम्पूर्ण भ्रमका रूप है मिथ्या धोखा। परन्तु तू चित्त देके समुझता नहीं, ताहीते तेरेको धोखा मालूम होता नहीं। सो तू धोखेहीमें पड़ा रहता है और नाना योनिका दुःख तेरेको भोगना प्राप्त होता है। सो दुःख औ धोखा तेरा छूटा नहीं। इसीवास्ते मेरेको कहते-कहते चारयुग भये, पर तेरेको अभीतलग सूझ परा नहीं। गुरु कहते हैं कि सतयुगमें 'सतसुकृत' नाम धरायके तेरे बन्धन छूटनेके वास्ते बहुत शब्द कहा। औ सतयुग गत होता है, तब त्रेतायुग आता है। फिर 'मुनीन्द्र' नाम धरायके तेरे धोखा छूटनेके वास्ते बहुत शब्द कहा। फिर त्रेतायुग गत भया,द्वापरयुग आया,तब तेरे वास्ते 'करुणामय' नाम धराया औ बहुत शब्द कहा। फिर द्वापर गत भया, कलियुग आया, तब 'कबीर' नाम धराया औ तेरेको पारखस्थिति प्राप्त होनेके वास्ते बहुत शब्द कहा। परन्तु अभीतलग भी तून चित्त देके समझा नहीं तो तेरी क्या गति होगी ?। ये अभिप्राय। अब गुरुको जगत्का बन्धन छुड़ाना औ जीवको पारखस्थितिकी प्राप्ति कराना, येती उपाधि काहेको चाहिये ? ऐसी कोई शङ्का करेगा। ताका उत्तर—कि गुरु तो स्वच्छ पारखरूप हैं। उनको कछु उपाधि नहीं। चौपाईः-"दया सुभाविक परख प्रकाशी। अभय अशङ्क सदा सुखरासी॥" ऐसे गुरु हैं। उनका ये स्वाभाविक गुण है कि जीवपर दया करके अपने पदको प्राप्त करना। ये अर्थ॥ ७४ ॥ ❋

❋ टिप्पणीः---साखी ७४ का महाभाष्य----

साखीः—साँचा शब्द कबीरका। हृदया देखु विचार !।
चित्तहु दै समुझे नहीं। मोहि कहत भैल जुग चार॥ ७४ ।

महाभाष्य; गुरुमुखः—पण्डित गुरुवा लोग-जो ऐसा बतलाते हैं कि कबीर=एक कोई परमेश्वर अविनाशी सत्य है, शब्दब्रह्म और ब्रह्माके शब्दरूप चारों वेद साँचा= सत्य हैं, वेद-वेदान्तके ही श्रवण-मननसे ब्रह्म साक्षात्कार होता है, इसलिए वेद-वेदान्तको विचार करके हृदयमें देखो ! चित्त देकर तुम लोग नहीं समझते हो तो तुम्हें ब्रह्मज्ञान कैसे होगा ? मोहिं=मुझ ब्रह्माको वेद कहते-कहते ऐसे बहुत-से चार युग हो चुके हैं, अब भी तुम लोग मेरी बातको नहीं समझते हो तब चौरासी-चक्र, ❋

* यम-यातनासे कभी नहीं बचोगे, अब भी ब्रह्मज्ञानको समझ लो ! तब तुम्हारा बचाव होगा—इत्यादि कथन सुनाकर अबोध लोगोंको भ्रमा-भुला रहे हैं।

अथवा हे मनुष्यो ! इस प्रकारसे वेदको ब्रह्माका साँचा शब्द, तथा वेद-प्रमाणसे ॐकार शब्दको ब्रह्म—ऐसे वेद और ब्रह्म, इन दोनोंको सत्य समझकर जो तुम लोग मान रहे हो, सो तो तुम्हारी भ्रम-भूल, मिथ्या धोखा ही है। इसे अपने हृदयमें निष्पक्ष होकर विचार करके परखकर देखो ! जिन वेदादिके शब्दोंमें सत्य चैतन्य जीवके स्वरूपका पारखबोध नहीं है, वे शब्द सत्य नहीं हो सकते हैं। ब्रह्म-ईश्वरादि सब वाणीकी कल्पनाएँ असत्य हैं। अभीतक कहीं ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि कोई जीवित नहीं बैठे हैं। समयानुसार उनका देहान्त हो चुका। कल्पनासे माने हुए चारों युगोंतक कोई प्राणी जीवित नहीं रह सकता। फिर ब्रह्मा या और कोई अबतक कैसे जीवित रह सकेंगे ? इसलिए ऐसी भ्रम-कल्पनाको परखकर परित्याग करो ! अविनाशी चैतन्य जीव जड़ाध्यासी होकर अनादिकालसे अबतक भव-बन्धनमें पड़ा है। मनुष्य हो करके भी सत्य-न्याय-निर्णयसे जड़-चेतनका विवेक-विचार नहीं करते हैं एवं बन्धनसे छुटकारा होनेकी ओर सत्यमें चित्त, बुद्धि, मनादिको देकर वा लक्ष्य लगाकर यथार्थ बातको नहीं समझते हैं। इस कारण जड़ाध्यासी होकर, शरीरको ही मैं, और शरीर सम्बन्धीको ही मोहिं = मेरा-मेरा कहते-कहते बद्ध हो, युग चार = मनुष्य, पशु, अण्डज और उष्मज—इन चारों खानियोंमें अध्यासवश स्त्री—पुरुषकी दो तरहकी देह धारण करते-करते अनेकों जन्म व्यतीत हो चुके। अब भी वैसी झूठी मैं-ममताको कोई नहीं त्याग रहे हैं। वैसे ही खानि-वाणीमें लिप्त होकर 'मैं ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा हूँ' कहते हैं, अथवा 'मैं ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र हूँ एवं कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी हूँ' कहते हैं। ऐसे चार-चार भागकी मिथ्या मानन्दी कर-करके बहुरूपिये हो रहे हैं। इस प्रकार खानी-वाणी सम्बन्धी चारों ओरके भव-बन्धनोंमें सब जीव बँधे पड़े हैं। कोई बिरले ही पारखी सन्त पारखबोधद्वारा भव-बन्धनसे छूटकर न्यारे मुक्त हुए और होते हैं।

अथवा सद्‌गुरु कहते हैं:—कबीर = कायाबीर पारखबोध-प्रकाशी मुझ कबीरका शब्द = सारशब्द, साँचा = बिलकुल सत्य, स्वानुभवसे निर्णय किया हुआ, सत्य चैतन्य जीवके पारख स्वरूपका परिचय देनेवाला, खानि-वाणीके महाबन्धनसे जीवको छुड़ानेवाला, ऐसा मेरा इस बीजकका सत्योपदेश है। हे जिज्ञासु मनुष्यो ! मेरी गुरुमुखवाणी, सारशब्दको अपने हृदयमें विवेक-विचार करके परीक्षादृष्टिसे देखो, तब तुम्हें भी निज सत्यस्वरूपका अपरोक्ष बोध होगा। काल, सन्धि, झाँईकी भ्रम-भूल, धोखा मिट जायेगा। खानि-वाणीके सब कसर-खोट परखनेमें आ जायेंगे, तब निजपदमें स्थिर होनेवाले निर्बन्ध मुक्त हो जायेंगे। परन्तु मेरे सत्य शब्दसे निर्णित पारखबोधको जो अपने चित्त, बुद्धि, मन देकर वा लगाकर ठीकसे नहीं समझते, विचार नहीं करते, उनको निजस्वरूपका ज्ञान नहीं होता है।

मनुष्य-जीवनमें बारह वर्षका एक युग माना है। अन्य कल्पित युगतक किसी मानवका जीते रहना सिद्ध नहीं होता है। इस कारण बारह वर्षकी अवस्थासे *

साखीः—जो तू साँचा बाणिया। साँची हाट लगाव॥
अन्दर झारू देइके। कूरा दूरि बहाव ॥७५॥

टीका गुरुमुखः—हे जीव ! जो तुम साँचे व्यापार करनेवाले हो तो साँचा बजार सत्सङ्गरूपी लगावो औ भीतर विचारकी झारू = झाड़ू देके कल्पना, अनुमान,

---

* श्रीकबीरसाहेबजी सत्यबोध देने लगे। तबसे 'बारह चौके अठचालीस (४८) होनेसे' सद्गुरुदेवके शरीर सम्बन्धमें साठ वर्षकी अवस्थामें ऐसा कहे कि 'मुझे सत्यन्याय-निर्णयका उपदेश कहते हुए चार युग=अठचालीस वर्ष हो गये, तब भी अविचारी लोग चित्त देकर नहीं समझते हैं।' विचारवान् जीव तो जबसे सद्गुरु पारखबोध देने लगे, तबसे ही समझते, मानते, उनके अनुयायी होते, अपना जीवन-कल्याण करते चले आ रहे हैं। उनके बारेमें तो नहीं कहे हैं। अपने हृदयमें विचार करके देखो, ऐसा जिज्ञासु जनोंको कहे हैं। मिथ्या पक्षपाती लोग चित्त देकर विचार नहीं करते हैं, इसलिए उनको पारखबोध समझमें नहीं आता है, ऐसा बतला रहे हैं सो ठीक है। अब भी ऐसा ही होता है। सतसुकृत आदि चारों नाम एक ही श्रीकबीरसाहेबके कहे हैं। कल्पित चार युगोंमें वे प्रकट हुए, ऐसा निर्णयसे नहीं ठहरता है। क्योंकि विदेह-मुक्त होनेपर सर्व अध्यासके सम्बन्धसे रहित शुद्ध चैतन्य जीव पुनः कभी किसी कारणसे किसीके लिए देह धारण नहीं करता है, यह स्वयंसिद्ध बात है। अतः श्रीकबीरसाहेबके पहले कोई पारखबोध-प्रकाशी सतसुकृत आदि नहीं हुए। मिथ्या कल्पना करनेसे कुछ लाभ नहीं होता है। इसलिए यदि चार युग कबीरसाहेबमें ही घटाना है, तब प्रथमके पचीस वर्षतक सत्ययुगमें, द्वितीय बारह वर्ष वा और पचीस वर्षतक त्रेतायुगमें, तृतीय बारह वर्ष वा और पचीस वर्षतक द्वापरयुगमें तदुपरान्त और चतुर्थ बारह वर्ष वा और पचीस वर्षतक कलियुगके समयमें आ जाता है। इस प्रकार उनकी साठ वर्षकी अवस्था अथवा सौ वर्षके समयमें ही मानवीय चारों युग व्यतीत हो जाते हैं। वैसे तो आपकी पूर्ण आयु एकसौ बीस वर्षकी मानी गई है। साठ वर्षके पश्चात् आप यह कहते हैं—मुझे सत्य निर्णयका उपदेश कहते-कहते चारयुग हो गये; तथापि अविचारी लोग मेरे कथनमें चित्त देकर विचार नहीं करते। इसीसे निज सत्यस्वरूपको वे नहीं समझते हैं, वाणी-कल्पनाके भ्रम-धोखेमें भूले पड़े हैं और बहुत-से लोग विषयजालोंमें फँसे हुए हैं। कोई-कोई जिज्ञासु नरजीव ही मेरे सत्य शब्दको हृदयमें विचार करके देखते हैं, उन्हींको निजस्वरूपका पारखबोध प्राप्त होता है। वे ही सर्व भव-बन्धनोंसे छूट जाते हैं। अतः हे मनुष्यो ! पारखबोधको हृदयङ्गम करके इसी नरजीवनमें निर्बन्ध-मुक्त हो जाओ !॥ ७४ ॥

[पञ्चग्रन्थी टीकाकी भूमिका पृष्ठ १२ से १४ तक और मानुषविचारकी मूल चौ० ७०१ से ७०२ तककी टीका-व्याख्या पृष्ठ ५६० से ५६२ तक चार युग और चार नामका भाव वहाँपर स्पष्ट करके लिखा है। चाहे देख लीजिये !]॥

भास, अध्यास आदि कचरा-कूरा दूर संसारमें बहाय देओ ! डार देओ ! ये अर्थ । बाणिया कहिये जाको बानीको बान होय । बानि कहिये, व्यसन कहिये, आदत कहिये, लत कहिये, विषय कहिये । ये अभिप्राय । तो हे जीव ! तेरेको बानीका विषय है । तो तू साँचा, औ वेद--शास्त्रादि मिथ्या धोखेकी बानी क्यों बोलता है ? साँच पारखकी बानी बोल औ कर्म, उपासना, योग, ज्ञान, विज्ञानादिक कचरा दूर बहाय देओ औ तू पारखपर स्थिर हो रहो ! ये अर्थ ॥७५॥

साखीः-कोठी तो है काठकी । ढिग-ढिग दीन्ही आग ॥
पण्डित जरि झोली भये । साकट उबरे भाग ॥७६॥

टीका गुरुमुखः—काठकी कोठी कहिये नाशवान्; सोई ब्रह्माण्ड औ सोई पिण्डाण्ड । तामें ठौर-ठौर अहङ्कारकी औ बानीकी आग लगी । सो पण्डित बड़े-बड़े सब जरके भस्म हो गये औ साकट = शाक्त मूरख भी जरके भस्म हो गये । जो कोई भागके सत्सङ्ग टकसारमें आये, सो पारख पायके उबरे, बचे । ये अर्थ ॥७६॥

साखीः-सावन केरा सेहरा । बुन्द परा असमान ॥
सारी दुनियाँ वैष्णव भई । गुरु नहिं लागा कान ॥७७॥

टीका गुरुमुखः—सावन कहिये वेद, ताको सेहरा बानी, वेदमन्त्र । सो असमान कहिये अन्तःकरण, तहाँसे मन्त्रबुन्द चुआ औ चेलेके कानमें परा । इस प्रकार सारी दुनिया वैष्णव भई, गुरुवा लोगनके चेले भये । पर ये कछु गुरु नहीं । गुरु तो पारखीको कहिये । ये तो कनफूके जीवनको भ्रमानेवाले गुरुवा काल हैं । ये अर्थ ॥ ७७ ॥

साखीः-ढिग बूड़ा उतरा नहीं । याहि अँदेसा मोहिं ॥
सलिल मोहकी धारमें । क्या नीन्दरि आई तोहिं ?॥७८॥

टीका गुरुमुखः—ढिग कहिये नजदीक । सो गुरु कहते हैं कि मेरे सामने, नजदीक संसार सब भ्रममें बूड़े । मैंने बहुत समुझाया, पर उतरे नहीं । यही बातका मेरेको बड़ा अँदेशा होता है कि पारखपद नजदीक होयके ये मेरे तरफ फिरके देखता नहीं औ मेरी बानी बूझता नहीं । ताते मैं इसे फिर बोलता हौं कि 'भाई ! सलिल मोहकी धारमें तेरेको क्या नींद आई है ?' अरे हुशियार होवो, नहीं तो तेरेको मोहकी धार संसारमें बहाय ले जायगी । ये अर्थ ॥७८॥

साखी:-साखी कहै गहै नहीं। चाल चली नहिं जाय ! ॥
सलिल धार नदिया बहै। पाँव कहाँ ठहराय ? ॥७९॥

टीका गुरुमुखः—'मैं सर्वसाक्षी' ऐसा सांख्यवादी वेदान्ती कहते हैं; परन्तु पारखपद कछु गहते नहीं। औ पारखीके सङ्ग बिना कछु वो पद गहा जाता नहीं। ताते बिना पारख साक्षी कहाँ रहेगा ? साक्षी कहेसे कछु टिकनेको जगह मिलती नहीं। फिर अन्वय करके कहता है कि सब मेरा स्वरूप। मैं पूर्ण आत्मा। तो बानीकी धारा महाप्रबल, पाँव कछु टिकने नहीं देती औ बहायके भ्रम-समुद्रमें मिलाय देती है। ये अर्थ। साखी पढ़ते हैं, गावते हैं; परन्तु उसका विचार कोई गहते नहीं औ जैसी साखी बताती है वैसी चाल चली नहीं जाती। ये संसार मोहकी धारमें बहा चला जाता है। बिना पारख पाँव कछु टिक सकता नहीं। ये अर्थ ॥ ७९ ॥

साखी:-कहन्ता तो बहुते मिला। गहन्ता मिला न कोय ॥
सो कहन्ता बहि जान दे। जो न गहन्ता होय ॥८०॥

टीका गुरुमुखः—साखी-शब्द कहनेवाले बहुत मिले; परन्तु विचारके गहनेवाले कोई मिले नहीं। तो ऐसे कहनेवालेको बहि जान दे। जो विचार न गहेगा तो कहेसे क्या होगा ?। ये अर्थ ॥ ८० ॥

साखी:-एक-एक निरुवारिये ! जो निरुवारी जाय ॥
दोय मूखका बोलना। घना तमाचा खाय ॥८१॥

टीका गुरुमुखः—एक नाम जीवका; सो जीवको गुरु उपदेश करते हैं कि 'हे जीव ! तेरे ऊपर 'एक ब्रह्म है' ऐसा धोखा जो खड़ा हुआ है, ताको निरुवार डार। जो कछु धोखा है सो निरुवारेसे जाता रहेगा। औ जाते निरुवारा होयगा सोई गुरुपद। तापर रहना ! नहीं तो दो मुखके बोलनेमें बहुतेक तमाचा खाय गये। दो मुख कहिये काल-सन्धि, कर्म-ज्ञान, जीवमुख-मायामुख; ये दो मुखके बोलनेमें कईएक जीवोंको ब्रह्मझाँई खाय गई। फिर ठिकाना कहीं जीवको लगा नहीं। गर्भवासमें आया। ये अर्थ। तमकी आँच तमाच, गर्भ-वासकी आँच। ये अर्थ ॥ ८१ ॥

साखीः-जिभ्या के रे बन्द दे ! बहु बोलन निरुवार ॥
पारखीसे सङ्ग करु। गुरुमुख शब्द विचार ! ॥८२॥

टीका गुरुमुखः—नाना प्रकारकी तत्त्वमस्यादि बहुत बानी परखके छोड़ देओ और जिह्वाको बन्दकर सन्त पारखिनका सत्सङ्ग कर, औ जीवमुख, माया-मुख, ब्रह्ममुख—तीनों मुखकी बानीका निरुवार करके डार दे! औ जासे तीनों मुखका निरुवारा होय, सोई सारशब्द, गुरुमुख शब्द। ताका सदा विचार कर, जाते सदा पारखस्थिति दृढ़ रहै। ये अभिप्राय। गुरु ऐसा हुकुम देते हैं कि तीन मुखका शब्द छोड़के गुरुमुख शब्दका सदा विचार करना औ गुरुमुख शब्द ही बोलना औ नाहक बहुत बानी काहेको बोलना ? । ये अर्थ ॥ ८२ ॥

साखीः-जाके जिभ्या बन्ध नहीं। हृदया नाहीं साँच ॥
ताके सङ्ग न लागिये ? घाले बटिया माँझ ॥८३॥

टीका गुरुमुखः—जिसकी जीभमें बन्ध नहीं, बहु बानी—कर्म, उपासना, योग, ज्ञानादि छौ शास्त्रनकी बकवाद करता है, ताके हृदयमें साँचताकी औ पारखकी प्राप्ति कछु भई नहीं। सो ताके सङ्ग कधी लगना नहीं। वो कछु पूरी मञ्जिलको पहुँचानेका नहीं, बीचहीमें धोखा देवेगा। जो आपहीको गुरुपदका मुकाम मालूम नहीं, सो दूसरेको क्या पहुँचावेगा ? आप ही झूठमें परा है, तो दूसरेको साँच क्या बतावेगा ? अरे ! जाके हृदयमें साँच आया, सो झूठ बकवाद काहेको करेगा ? जाको हीरा साँच मिलेगा, सो जान-बूझके गार काहेको बटोरेगा ? । ये अर्थ ॥ ८३ ॥

साखीः-प्राणी तो जिभ्या डिगा। छिन-छिन बोल कुबोल! ॥
मनके घाले भरमत फिरे। कालहि देत हिण्डोल ॥८४॥

टीका गुरुमुखः—जो प्राणी जिह्वा डिगावे, विविचार बातें करने लगे, असत बानी बोलने लगे छिन-छिन, ताकी बात कधी सुनना नहीं औ मानना नहीं। वो तो मनके घाले परवश होके अपनेको भूलके फिरता है, औ कल्पना उसे हिण्डोले दे रही है। झूल रहा है। ये अर्थ ॥ ८४ ॥

साखीः-हिलगी भाल शरीरमें। तीर रहा है टूट ॥
चुम्बक बिना न नीकरे। कोटि पाहन गये छूट ॥८५॥

टीका गुरुमुखः—जैसा शरीरमें तीर लगा औ टूट गया। भाल हिलगी रही, तबलग जीवको चैन नहीं। औ जबरदस्ती खैंचा चाहो तो बहुत दुःख होता है। औ न निकारो तो उसीमें मरता है। तो चुम्बक बिना निकरनेका नहीं, चाहे कोटि उपाय करो! तैसा ये जीवनके हृदयमें वेदादिक नाना बानीकी कल्पना लगी है। सो बिना पारख कछु वो कल्पना निकरनेकी नहीं। चाहे जीव कोटि नरजन्म धरे औ कोटि बार ब्रह्म बने; परन्तु सब छूट जायगा। एक पारख बिना जीवकी स्थिति कछु होती नहीं औ कल्पना कछु छूटती नहीं। ये अर्थ ॥८५॥

साखीः—आगे सीढ़ी साँकरी। पाछे चकनाचूर ॥
परदा तरकी सुन्दरी! रही धकासे दूर ॥८६॥

टीका गुरुमुखः—आगे ब्रह्माण्डमें जानेका गैल तो अति बारीक बताते हैं मकरीके तार माफिक; औ पीछे संसारके तरफ जो जीव फिर-फिर देखता है तो त्रिविधि तापमें चकनाचूर हो रहा है। अब 'परदा तरकी सुन्दरी' कहिये देहवासी जीव, सो धकासे दूर रहे, भवसागरके बीच रहे, धकेको कछु पहुँचे नहीं, भवसागरके पार कछु पहुँचे नहीं औ पारखपदको प्राप्त कछु भये नहीं। धका कहते हैं कि जहाँ समुद्रका अन्त होय औ जहाँ उतारनेवाले जा-जा लगें। जहाज जहाँ लगे सो घाटको 'धका' कहते हैं। समुद्रका घाट कहिये सोई धका। ये अर्थ। जो ब्रह्माण्डमें जायके ब्रह्ममें मिल न सके औ त्रिविधि तापमें दुःखित भये, तब 'एक कोई कर्त्ता गुसैयाँ है' ऐसा परदा बनाया औ उसके आसरेमें परे, उसके भक्त, नारि कहाये। औ 'भवसागर-भवसागर' ऐसा कहिके भवसागरका पार नहीं पाया, तब बीचहीमें परे रहे। ये अर्थ ॥ ८६ ॥

साखीः—संसारी समय बिचारी। कोइ ग्रेही कोइ जोग ॥
औसर मारे जात है। तैं चेत बिराने लोग ॥८७॥

टीका गुरुमुखः—संसारी जीवपर जब समय परा, कष्ट परा, तब विचार करने लगे कि कोई दूसरा हमारा ईश्वर है। यह निश्चय करके फिर ईश्वरकी प्राप्तिके वास्ते कोई ग्रेही = भक्त बने, कोई नाना प्रकारकी उपासना-भक्ति करने लगे औ कोई सम्पूर्ण त्याग करके जोग = योगी बने; परन्तु दोनों धोखेमें परे। गुरु कहते हैं कि 'दूसरा ईश्वर' ऐसा अनुमान किया सो कछु है नहीं। मिथ्या

धोखा। ता धोखेके भरोसे हे जीव ! तेरा अवसर = नरजन्म मारा जाता है। हे बिराने लोग ! तैं चेत, समझके देख ! ये अभिप्राय। बिराने जीवको काहेते कहते हैं कि ? अपना पद, अपने तत्त्वनको छोड़के पराये तत्त्वनमें बन्धमान भया और आपको आप बिसारके दूसरा ईश्वर अनुमान किया, ताहीका गुलाम बना। ताहीते बिराना कहिये ! औ निगुरा है, गुरु पारखको प्राप्त नहीं, ताते लोग कहिये। दूसरेका आश्रित होय, ताको बिराना कहिये। अपना न होय, ताको लोग कहिये। ये अर्थ ॥ ८७ ॥

साखी:—संशय सब जग खण्डिया। संशय खण्डे न कोय ॥
संशय खण्डे सो जना। जो शब्द विवेकी होय ! ॥८८॥

टीका गुरुमुखः—संशय कहिये ईश्वर, संशय कहिये ब्रह्म, संशय = ऋद्धि-सिद्धि आदि, अनेक देवता, संशय = स्वर्गका जाना। सो ऐसे-ऐसे संशयने सब जगको खा लिया; परन्तु संशय किसीसे खण्डन भया नहीं। संशयका खण्डन सोई जन करेगा, जो कोई सारशब्दका विवेकी होगा। ये अर्थ ॥ ८८ ॥

साखी:—बोलन है बहु भाँतिका। तेरे नैनन किछउ न सूझ ॥
कहहिं कबीर बिचारिके। तैं घट-घट बानी बूझ ॥८९॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! बोलना बहुत प्रकारका है। अनेक तरहके शब्द हैं; परन्तु बिना पारख तेरे नैननसे कछु सूझता नहीं। सो शब्दके भरोसे तुम मत् रहना। अनेक शब्द धोखेके हैं। तुम शब्दका पक्ष छोड़के विचार करो औ यथार्थ परखके पारखपर ठहर रहो ! तब तुम घट-घटकी बानी बूझोगे। ये अर्थ ॥ ८९ ॥

साखी:—मूल गहेते काम है। तैं मत भरम भुलाव ! ॥
मन सायर मनसा लहरी। बहै कतहुँ मत जाव ! ॥९०॥

टीका गुरुमुखः—मूल = जीव गहेते पारखपदकी प्राप्ति होती है औ पारख-की प्राप्ति होवे तो कार्य होता है, आवागमनसे रहित होता है। ताते नाना प्रकारकी बानीका पक्ष करके हे जीव ! 'तैं मत भरम भुलाव।' अरे ! एक जीव छोड़के और सब भ्रम है। मन कहिये तन, तन कहिये पाँच तत्त्व, सोई सायर = समुद्र, भवसागर है। यामें मनसा = नाना प्रकारकी कल्पना सोई लहर है। ताके

सङ्ग तू बहिके कहीं धोखेमें मत् जा । मन कहिये पुरुष, औ मनसा कहिये स्त्री । हे समुद्र पुरुष ! तू स्त्री-लहरीके सङ्ग बहिके कतहूँ मत् जा । ये अर्थ ॥ ९० ॥

साखीः-भँवर बिलम्बे बागमें । बहु फूलनकी बास ॥
ऐसे जीव बिलम्बे विषयमें । अन्तहु चले निरास ॥९१॥

टीका गुरुमुखः—जैसा भौंरा बागमें बहुत फूलनकी बास देखके बिलमा औ जब फूल सूख गया, तब भौंरा निराश होके दूसरा बाग खोजने चला । तैसे सब जीव विषय-वासनामें लुब्ध होके संसारमें बिलमे; परन्तु जब अन्त भया, चोला छूटा, तब निराश होके गर्भवासमें गये । ये अभिप्राय । बाग कहिये वेदादिक बानी, औ बहुत फूल कहिये बहुत सिद्धान्त, औ ब्रह्म आदि बहुत सिद्धान्तनकी प्राप्तिकी वासना सोई बास; तामें सनकादिक, शुकादि, शौनकादि सम्पूर्ण भौंरे बिलमे औ जब उनका अन्त हुआ, तब निराश होके जगत्में समाये, गर्भवासमें आये । बाग कहिये पद्मिनी, चित्रिणी, हस्तिनी, शङ्खिनी, डङ्किनी, नागिनी आदि स्त्रियाँ—सोई बाग । भग, कुच, नेत्र आदि फूल; विषय-वासना सोई बास; कृष्ण-इन्द्रादि सम्पूर्ण विषयी जीव सब भौंरे, सो स्त्रियनमें बिलमे। अन्तमें जब इन्द्री थक गई और मर गये, तब निराश होके फिर वही स्त्रियनके गर्भमें चले वासनावश होके । ये अर्थ ॥ ९१ ॥

साखीः-भँवर जाल बगु जाल है । बूड़े बहुत अचेत ॥
कहहिं कबीर ते बाँचि हैं । जाके हृदय विवेक ! ॥९२॥

टीका गुरुमुखः—भँवर जाल कहिये स्त्री औ बगुजाल कहिये वेदादिक नाना बानी; ये दोनों बन्धन जीवको हैं । ये दोनों बन्धन टूटे तो जीव मुक्त होय । परन्तु ये दोनों फाँसी महाकठिन हैं । बहुतक जीव अचेत गाफिल होके भगकुण्डमें बूड़ि गये और बार-बार बूड़ते-उतराते रहते हैं । कोई ये दोनों जालनसे बचता नहीं । अरे ! हे भाई सन्तो ! बचनेका ठिकाना कहीं नहीं । वही बचेंगे दोनों जालोंसे कि जाके हृदयमें विवेक होयगा । बिना विवेक कोई कोटि उपाय करे, मुक्ति होती नहीं । ये अर्थ ॥ ९२ ॥

साखीः—तीन लोक टीड़ी भया । उड़ा जो मनके साथ ॥
हरि जन हरि जाने बिना । परे कालके हाथ ॥९३॥

टीका गुरुमुखः—तीन लोक = देव, दैत्य, मनुष्य, सात्त्विक, राजस, तामस, ये सम्पूर्ण मनके साथ उड़े। जैसे पवनके साथ टीड़ी जाती हैं; तैसे जीव विषय-वासनाके साथ, मनके साथ उड़के चले। मन कहिये मानन्दी। सो मानन्दीके साथ जीव उड़ि चले। हरिजन = अनुरागी जन; जिन हरिको न जाना कि हमारे मनकी मानन्दी है; ताते कल्पनाके औ स्त्रीके हाथ पड़े। ये अभिप्राय। तीन लोक = सात्त्विक, राजस, तामस—मनके साथ, शुद्ध सतोगुण ईश्वरके साथ उड़ि चले। सो काल = निर्गुण ब्रह्मके हाथ परे बिना पारख। ये अर्थ ॥ ९३ ॥

साखीः--नाना रङ्ग तरङ्ग है। मन मकरन्द असूझ ॥
कहहिं कबीर पुकारिके ! तैं अकिलकला ले बूझ ! ॥९४॥

टीका गुरुमुखः—नाना रङ्गकी तरङ्ग ये मनुष्यदेहमेंसे उठी है, सोई नाना प्रकारकी बानी बनी है। ताही बानीमें बड़े-बड़े ऋषिनके मन लगे हैं भँवरारूप बनके। परन्तु मन भँवरा असूझ = अन्ध है। उसे कछु सूझता नहीं। अरे! हे कबीर = जीव! तू विचार करके देख! वो सब महाऋषिनकी स्थिति कहाँ है? नाना प्रकारके सिद्धान्त, जो वेदने किये, सो सब मिथ्या। एक जीव सत्य है। तू अकिलकला = पारख लेके बूझ और पारखपर रहि जाओ। 'अकिलकला' कहिये जाकी कला पकड़नेमें न आवे। सो अकिलकला = पारख लेके तू बूझ। बिना पारख कछु तेरेको समझ परनेकी नहीं। ये अभिप्राय ॥९४॥

साखीः--बाजीगरका बाँदरा। ऐसा जीव मनके साथ ॥
नाना नाच नचायके। ले राखे अपने हाथ ॥९५॥

टीका गुरुमुखः—जैसा बाजीगरका बन्दर, तैसा जीव मनके साथ। मन कहिये तन। तनका वजन सोई अध्यास जीवको अपने साथ रखता है, कधी इसे छोड़ता नहीं। देहमें डारके जीवको नाना नाच नचाता है। फिर तन तो छूट जाता है औ अध्यासरूपी मन रहि जाता है, सो जीवको अपने हाथ रखता है, कहीं जाने नहीं देता। अपने मनोमयकी अवस्था सुषुप्ति डारके जीवको आकर्षण कर लेता है, अपनेमें मिलायके आप सुषुम्नामें मिलिके जीवको गर्भवासमें डार देता है। ये अर्थ ॥ ९५ ॥

साखीः--ई मन चञ्चल ई मन चोर ! ई मन शुद्ध ठगहार ! ॥
मन मन करते सुरनर मुनि जहँड़े। मनके लक्ष दुवार ॥९६॥

टीका गुरुमुखः—मन ही कर्मी, मन ही योगी, मन ही ज्ञानी और मन ही उपासक। मन ही स्वर्ग और मन ही ब्रह्माण्ड। मन ही ईश्वर और मन ही ब्रह्म॥

कवित्तः—मन देवी देवता मन्त्र तन्त्र, मन पीर औलिया सिद्ध यन्त्र। मन कर्त्ता सब जग ब्योहार, मन आदि अन्तःकरण निर्धार॥ मन समाधी मन योग ध्यान, मन वेद शास्त्र कथै बहुत ज्ञान। मन नेति-नेति करत पुकार, मन पाछे सुर नर मुनिहीं हार॥ मन काया जीव घेर लीन्ह, मन विषय भूलि अँधियारी दीन्ह। मनका कोई न लखे विचार, मन ब्रह्म बनो है लक्ष द्वार॥१॥ इतना प्रमाण मनका है। आगे स्पष्ट अर्थ सुनो—मन कहिये तन। ई मन चञ्चल कहिये कर्मी, चोर कहिये योगी, शुद्ध = ज्ञानी, ठगहार = उपासक। और मनही मन करते सुर, नर, मुनि जहँडे़, लक्ष द्वार ब्रह्म कहके जहँडे़, खराब हुये। ये अर्थ ॥९६॥

साखीः--बिरह भुवङ्गम तन डँसो। मन्त्र न माने कोय॥
राम बियोगी ना जिये। जिये तो बाउर होय!॥९७॥

टीका गुरुमुखः—विरहरूपी सर्प जाके तनमें डसा, सो जीवको विषय-विष चढ़ा। फिर किसीका मन्त्र = विचार वो जीव मानता नहीं। अरे! जो रामवियोगी जीव हैं, सो कधी जीनेके नहीं। अगर जिये तो भी दिवाना हो रहेंगे। उनको विचार क्या बताओगे?। ये अर्थ ॥९७॥

साखीः--राम बियोगी बिकल तन। इन्ह दुःखवो मति कोय॥
छूवत ही मरि जायँगे। ताला-बेली होय!॥९८॥

टीका गुरुमुखः—जो रामवियोगी जीव हैं, सो अपने तनसे बेजार रहते हैं। उन्हें कोई दुखाओ मत्। अरे! उनको जरा कहोगे कि जिसका वियोग तुमको लगा है सो मिथ्या धोखा है, तो तलमलाय-तलमलायके प्राण देवेंगे, मरि जायेंगे। ये अर्थ ॥ ९८ ॥

साखीः-बिरह भुवङ्गम पैठिके। कीन्ह करेजे घाव॥
साधू अङ्ग न मोरि हैं। ज्यों भावै त्यों खाव॥९९॥

टीका गुरुमुखः—देखो! हे सन्तो! गुरुवा लोगोंके अन्तःकरणसे विरह-रूपी सर्प महाभुजङ्ग उठा औ चेलनके कानमेंसे पैठिके करेजामें डसा, घाव किया। ये अर्थ। अब उत्तरार्ध साखी मायामुखः—सो माया क्या कहती है कि साधु

वहीका नाम है कि जो विरहके डरसे अङ्ग न मोरे, अङ्ग छिपावै नहीं। विरह-सर्पके सामने खड़ा होय। विरह सर्प ज्यों-भावे-त्यों खाय जाय, पर सामनेसे न टरै, उसी साधुको भगवत्प्राप्ति होती है। ये मायाका अभिप्राय ॥ ९९ ॥

साखी:—करक करेजे गड़ि रही। बचन वृक्षकी फाँस ॥
निकसाये निकसे नहीं। रही सो काहू गाँस ॥१००॥

टीका गुरुमुखः—जो गुरुवा लोगनका वचनवृक्ष = वेद; ताकी फाँस नाना मन्त्र-उपदेश जीवनके करेजेमें गड़ि रहे हैं। अब निकारो तो निकरते नहीं। काहू कहिये जीवको। सो जीवनको घेर रही है। कहीं निकरने देती नहीं, तब जीव गुरुपदको कैसे प्राप्त होय ? पर काहू = बेपारखीको गाँस रही है। पारखीपर किसीका गाँस-फाँस लगता नहीं। ये अर्थ ॥ १०० ॥

साखी:--काला सर्प शरीरमें। खाइनि सब जग झारि ॥
बिरले ते जन बाँचिहैं। जो रामहि भजे बिचारि ॥१०१॥

टीका गुरुमुखः—काला सर्प कहिये अभिमान। सो अभिमान पाँच प्रकारका—स्थूल अभिमान विश्व, सूक्ष्म अभिमान तैजस, कारण अभिमान प्राज्ञ, महाकारण अभिमान प्रत्यगात्मा, कैवल्य अभिमान निरञ्जन। ये पाँच प्रकारका अभिमान, सोई पाँच फनका बड़ा सर्प काला सबके शरीरमें रहता है; औ इसने सब जगको झारके खाय लिया। इस जगत्में जाको विचाररूपी अमृत प्राप्त भया, सोई येते सर्पके जहरसे बचे औ 'एक राम' ऐसा जो वेदने अन्वय किया था, सो उससे बचे, भजे = भागके न्यारे भये। विचाररूपी अमृतके प्रतापसे सर्पका जहर उतर गया औ पारख-भूमिकाको प्राप्त भये। केही तरहसे कि ? मैं पाँचों अहङ्कारका पारखी पाँचोंते न्यारा पारखरूप—ऐसा अमृतपान करके सम्पूर्ण अन्वय दूर बहायके बिरले पारखीजन पारख-भूमिकापर आयके बचे। ये अर्थ। अगर काला सर्प = काम; याहूके पाँच मुख हैं पाँच कर्मइन्द्री, औ पांच उपमुख पाँच ज्ञानइन्द्री। सो काम भुजङ्ग सबके शरीरमें रहता है। ताने सब जगको खाय लिया। बिरला कोई विचारवान् बचा, जाने स्त्री त्याग किया औ स्त्रीसे भागा—सो। ये अर्थ ॥ १०१ ॥

साखी:--काल खड़ा शिर ऊपरे। तैं जागु बिराने मीत ! ॥
जाका घर है गैलमें। सो कस सोवै निश्चिन्त ? ॥१०२॥

टीका गुरुमुखः—पञ्चमुखी सर्प अहङ्कार, सोई काल सबके शिर ऊपर खड़ा है, औ हे बिराने मीत जीव! तू उस कालसे मिताई करके सो रहा है, गाफिल हो रहा है तो कैसे बचेगा? काल तेरेको खाय जायगा। हे सन्तो! जाका घर ठगोंके रास्तेमें है, उनने निश्चिन्त कैसे सोवना? औ निश्चिन्त ब्रह्म बनके गाफिल होवेगा तो अहङ्कार ठग लूटके मार डारेगा। ताते सदा हुशियार सत्सङ्गमें रहके विचार करते रहना! ये अर्थ। विरह अर्थ—काम सोई काल सबके शिरपर खड़ा है और हे जीव! तू स्त्रीका मित्र बना है तो कामसर्पसे कैसे बचेगा? औ काममें गाफिल हो रहा है, स्त्रीके सङ्ग सोता है तो कैसे बचेगा गर्भवाससे? अरे! जाका घर आवागमनके रास्तेमें है, उनको निश्चिन्त कैसे सोना चाहिये? लूटा जायगा, अँधियारी कोठरीमें कैद रहेगा। आखिर चौरासी-का बँधुवा होवेगा। ताते सदा विचार करते रहना, हुशियार रहना! कधी काठकी बनाई मूर्ति स्त्री हो, तो उससे भी मिताई न करना। पाँच बरसकी लड़की औ अस्सी बरसकी बुढ़िया हो, इनसे भी डरते रहना! प्रीति विशेष न करना। फिर तरुणीके तो ढिग नहीं बैठना। यही आवागमनका मार्ग है। याहीते सदा हुशियार रहना। गाफिल नहीं रहना। ये अर्थ ॥ १०२ ॥

साखीः—कल काठी कालू घुना। जतन-जतन घुन खाय॥
काया मध्ये काल बसत है। मर्म न काहू पाय ॥१०३॥

टीका गुरुमुखः—कलकाठी कहिये स्त्री; ताने काल = काम बहुत बढ़ाय दिया, ताते सम्पूर्ण जीव जेर भये। हे सन्तो! इस कायामें काम रहता है। सोई जीवका काल है। याका मर्म कोई पावता नहीं। जैसे लकड़ीको घुन लगता है औ हलु-हलु खाता है, लकड़ीको निकम्मी कर देता है। तैसा ये विषयरूपी घुन जीवको लगा है, सो हलु-हलु जीवको खाता है, निकम्मा ज्ञानहीन जीवको कर देता है। औ कामकाल महाप्रबल है। जब वह बहुत बढ़ता है, तब किसीके रोके रुकता नहीं। तपस्विनकी तपस्या नाश कर देता है, योगिनका योग नाश कर देता है, वैरागिनका वैराग्य नाश कर देता है, विचारवान्‌को बेविचार कर देता है, ज्ञानिनको अज्ञानी कर देता है, भक्तनको अभक्त कर देता है। औ जब जीव कामके वश हुआ, तब दश चीज जीवकी नाश होती हैं; सो सुनो—तप, शौच, सत्य, लज्जा, लक्ष्मी, बुद्धि यश, कीर्ति, बल, आयुष्य। ऐसा काल

कायामें बसता है, तब ये जीव निजपदको कैसे प्राप्त होवें ? इस कालका मर्म कोई पावता नहीं। जबलग कामके वश है, तबलग उसका विवेक-विचार सब मिथ्या। यथार्थ पारखकी प्राप्ति होय औ सदा पारखमें जीव बना रहै, तब कामसे बचे। ये अभिप्राय। औ कलकाठी कहिये बानी, काल कहिये कल्पना। सो बानीने कल्पना बहुत बढ़ाय दई, सो विरहरूपी घुन जीवको हलु-हलु खाने लगा; परन्तु कायामें ही 'मैं ब्रह्म' अथवा 'दूसरा ब्रह्म' ऐसी कल्पना रहती है, इसका मर्म कोई पावता नहीं। सोई काल होके जीवनको खाती है। काया सोई कलकाठी, औ अभिमान सोई पञ्चमुखी काल, औ आनन्द-मद सोई घुन जीवको हलु-हलु खाता है। औ अभिमानकाल कायामें रहता है, ताका मर्म कोई पावता नहीं। तो पाँच प्रकारका अभिमान परखके छोड़े औ पारखपदको प्राप्त हो रहे, तब आवागमनसे रहित होय। ये अर्थ ॥ १०३ ॥

साखीः-मन मायाकी कोठरी। तन संशयका कोट ॥
विषहर मन्त्र माने नहीं। काल सर्पकी चोट ॥१०४॥

टीका गुरुमुखः—'मन-मायाकी कोठरी' कहिये देह, औ 'तन संशयका कोट' = ब्रह्म, विषहर = ब्रह्मज्ञानी, मन्त्र = विचार, कालसर्प कहिये पञ्चमुखी सर्प अभिमान, ताने जीवनको काटा। सो ताहीके विषमें जीव उन्मत्त, मूक, जड़, बाल, पिशाचवत् हुआ। अब यथार्थ विचार कछु मानता नहीं। अरे ! इस कायासे संशय पैदा भया कि कोई एक ब्रह्म है। सो अपने रहनेका कोट जीवने बनाया, ताहीको अपना अधिष्ठान औ मालिक कहा औ विभ्रम हुआ, कैद हुआ। औ कोई देहअभिमानी देहके विषयमें बन्ध भये, ताते विचारको नहीं मानते। मोहवश भये औ चौरासीमें रहे—'कीट-नर्क न्याय।' जैसा नर्कका कीड़ा नर्कमें पैदा होता है औ नर्कहीमें रहता है, नर्कमें ही मरता है। ये अर्थ ॥ १०४ ॥

साखीः-मन माया तो एक है। माया मनहिं समाय ॥
तीन लोक संशय परी। मैं काहि कहौं समुझाय? ॥१०५॥

टीका गुरुमुखः—मन कहिये पाँच तत्त्व तीन गुण। ये आठ पसेरीका एकन्दर वजन, ताको मन कहिये; औ ताहीका स्वरूप जो दृष्टिगोचर, सो माया कहिये काया। कायाका वजन सोई मन ब्रह्म। तो नाम-रूप, तन-मन, माया-

ब्रह्म, दृष्ट-अदृष्ट, सगुण-निर्गुण, पिण्ड-ब्रह्माण्ड, आत्मा-जगत्—इनके नाम दो हैं, कछु रूप दो नहीं। वस्तु तो एक ही है। अरे ! मायाका अधिष्ठान मन औ माया बिना कछु मन नहीं। नाम सोई रूपका अधिष्ठान, रूप बिना कछु नाम नहीं। तनका मन अधिष्ठान, तन बिना कछु मन नहीं। ब्रह्म मायाका अधिष्ठान, माया बिना कछु ब्रह्म नहीं। अदृष्ट दृष्टका अधिष्ठान, पर दृष्ट बिना कछु अदृष्ट नहीं। निर्गुण सगुणका अधिष्ठान, पर सगुण बिना कछु निर्गुण नहीं। ब्रह्माण्ड पिण्डका अधिष्ठान, पर पिण्ड बिना ब्रह्माण्ड नहीं। आत्मा जगत्‌का अधिष्ठान, पर जगत् बिना कछु आत्मा नहीं। तब मन-माया नाम दो, वस्तु रूप एक। परन्तु तीन लोकमें 'दूसरा है' ऐसा संशय परा है। दूसरा कछु हैं नहीं। मैं न्यारा करके क्या समझाऊँ ? तन-मन एक ही है। ये अर्थ ॥ १०५ ॥

साखीः—बेहा दीन्हों खेतको। बेहा खेतहि खाय ॥
तीन लोक संशय परी। मैं काहि कहौं समुझाय ? ॥१०६॥

टीका गुरुमुखः—बेहा कहिये, बाड़ कहिये, बड़ाङ्ग कहिये। सो खेत रखनेके वास्ते बाड़ लगाई तो बाड़ ही खेतहीको खा गई। तद्वत् संसारमें कल्याण-की इच्छा उठी, ताते वेदादिक बानी सब बनी औ ता इच्छाने, ता बानीने संसारको खाया। अरे ! वेदके भरोसे संसार निश्चिन्त है, पर वो वेद ही संसार-को भरमाय रहा है। अब संसार कैसे बचेगा ? औ जीवने अपने कल्याणके वास्ते एक गुसैंया कल्पा, सोई गुसैंया जीवको खाता है। हे जीव ! जो कछु उपदेश गुरुवा लोगोंने जीवकी रक्षाके वास्ते दिया है, सोई जीवका काल जीवको खाता है; परन्तु यह तीनों लोकमें बड़ा संशय पड़ा है, सो कोई परखके देखता नहीं। सो मैं किससे समुझायके कहौं ? जैसा मद्यपी मद्यको पीके, उसके वश होके अपना घर भूल जाता है औ किसीका कहा मानता भी नहीं। तद्वत् यह संसार हो रहा है। 'मैं काहि कहौं समुझाय ?'। ये अर्थ ॥ १०६ ॥

साखीः—मन सायर मनसा लहरि। बूड़े बहुत अचेत ॥
कहहिं कबीर ते बाँचि हैं। जाके हृदय विवेक ॥१०७॥

टीका गुरुमुखः—मन सोई ब्रह्मसमुद्र, औ मनसा सोई जगत्‌लहर; या मन सोई जगत्‌समुद्र, औ मनसा सोई ब्रह्मलहर; या मन सोई पुरुषसमुद्र, औ

मनसा सोई स्त्रीलहर; या मानन्दी सोई समुद्र, औ नाना कल्पना सोई लहरी; या ॐकार सोई मनसमुद्र औ नाना बानी मनसालहरी; तामें बहुतेक जीव अचेत गाफिल होके बूड़ गये। अचेत कहिये ज्ञानी, ब्रह्मसमुद्रमें बूड़े। अचेत कहिये कर्मी जगत्-समुद्रमें बूड़े। अचेत कहिये उपासक मानन्दी-समुद्रमें बूड़े। अचेत कहिये विषयी काम-समुद्रमें बूड़े। अचेत कहिये योगी ॐकार-समुद्रमें बूड़े*। सो गुरु कहते हैं कि वो सब कहाँ हैं ? इस जगत्में ही उपजते--विनशते पड़े हैं। इस उपजने--विनशनेसे औ समुद्र--लहरीसे औ जगत्--ब्रह्मसे सोई बचेगा, जाके हृदयमें पारख--विवेक होयगा। सोई पारखपदको प्राप्त होगा औ बचेगा। ये अर्थ ॥ १०७ ॥

साखीः—सायर बुद्धि बनायके। बाँये बिचक्षण चोर ! ॥
सारी दुनियाँ जहँड़े गई। कोई न लागा ठौर ! ॥१०८॥

टीका गुरुमुखः—अपनी बुद्धिका समुद्र बनाया, तामें आप ही डूबके मुवा। बायें कहिये ब्रह्मा रजोगुण, बिचक्षण कहिये विष्णु सत्त्वगुण, चोर कहिये महादेव तमोगुण योगी; ये तीनों सायर बुद्धि = नाना वेदादिक बानी बनायके मर गये। सो कहीं ज्ञान कथा, कहीं कर्म कथा, कहीं योग कथा, कहीं नाना विषय-भोग, उपासना कथा। ताहीमें सारी दुनिया जहँड़ गई, निश्चय करके भरमाय गई, गाफिल हो गई। कोई भी ठौर लगा नहीं। पारखपदकी प्राप्ति भई नहीं। ये अर्थ ॥ १०८ ॥

साखीः—मानुष ह्वैके ना मुवा। मुवा सो डाँगर ढोर ॥
एकौ जीव ठौर नहिं लागा। भया सो हार्थी घोर ॥१०९॥

टीका गुरुमुखः—मानुषरूप लेके जीव पैदा भया, पर मानुषके तत्त्व औ लक्षणको चीन्हके ग्रहण किया नहीं। मानुष कहिये जो दया, क्षमा, सत, धीर,

* छः प्रकारके सायर एवं लहरमें बूड़नेवालोंका दिग्दर्शनः—

आकार	१	२	३	४	५	६
सायर	मन	ब्रह्म	जगत्	काम	मानन्दी	ॐकार
लहर	मनसा	जगत्	ब्रह्म	स्त्री	नानाकल्पना	नाना बानी
बूड़नेवाला	अचेत जीव	ज्ञानी	कर्मी	विषयीपुरुष	उपासक	योगी

विचार—ये तत्त्वन युक्त होय औ विवेक, वैराग्य, गुरुभक्ति—ये गुणनमें युक्त होय, औ कच्चे पाँच तत्त्व, तीन गुण, दश इन्द्री, विषय-पञ्चक औ अनुमान, कल्पना, भास, अध्यासादि सम्पूर्ण मिथ्या भ्रम जानके अपने तत्त्व-गुणनमें सदा रहै, ये सम्पूर्ण सत्ताईस बन्धनसे निराश होय। इस प्रकारसे मानुष होके न मरे। परन्तु डाँगर ढोर जैसा मरता है, तैसा मनुष्यतन धरके लोग मरते हैं, ताते फिर पशुयोनिको प्राप्त होते हैं। तो पहिले भी पशुयोनिका जीव मानुषयोनि स्वप्नवत् पाय गया; परन्तु पशुवत् पञ्चमुखी अभिमानमें बन्ध होके मरा। फिर सोई जीव हाथी-घोड़ेकी योनिनको प्राप्त भया। एक भी जीव पारखठौरको न लगा। ये अर्थ ॥ १०९ ॥

साखीः—मानुष तैं बड़ पापिया। अक्षर गुरुहि न मान !॥
बार-बार बन कूकुही। गर्भ धरे औ ध्यान !॥११०॥

टीका गुरुमुखः—अक्षर कहिये जीवको, जाका तीन कालमें नाश नहीं। अक्षर-गुरु कहिये पारखको, जो तीनकालमें अटल औ अविनाशी। सो जा मनुष्यने अक्षर-गुरु = पारखको न माना, तो 'मानुष बड़ पापिया' पशुवत् दुःखभोगी। बारम्बार जन्मना औ नाना बानीका बन्दा - गुलाम होके मरना औ गर्भवासमें जाना औ नाना दुःख भोगना; ताते पापी कहिये। औ जो पारखगुरुको पाके ऐसे दुःखसे छूटै सो पुण्यवान् सुकृत जीव। ये अर्थ। बन कहिये, बानी कहिये, संसार कहिये। बन-कुकुही कहिये, माया कहिये, गुरुवा कहिये, पण्डित कहिये, काया कहिये। सो बारम्बार धोखेका ध्यान करते हैं औ नास्ति अध्यासवश होके स्त्रीके गर्भमें जाते हैं औ बिना पारख दुःखभोगी होते हैं। ये अर्थ ॥ ११० ॥

साखीः—मानुष बिचारा क्या करे ? जाके कहे न खुले कपाट॥
स्वनहा चौक बैठायके। फिर-फिर ऐपन चाट !॥१११॥

टीका गुरुमुखः—कहनेवाला मानुष विचारा क्या करै ? जाके कहै संसारका कपाट खुलता नहीं। कपाट कहिये परदा, सो नाना प्रकारका परदा गुरुवा लोगोंने चौकामें बैठायके दृढ़ाय दिया, कान फूँका। स्वनहा कहिये ॐकार, स्वनहा कहिये वेद। सो वेदके प्रमाणसे नाना प्रकारके सिद्धान्तनकी चाट लगाई, लालच लगाई। सो जाको जो चाट लगी, सो अपनी चाट लेके चौरासीमें

फिरने लगे औ मारे चाटके संसारमें घूमने लगे। कोईको गुसैंयाकी चाट लगी, कोईको विषयनकी चाट लगी। सो कोई तो गुसैंयाकी चाटवाले योग, जप, तप, ध्यान, ज्ञान, तीर्थ, व्रत, भक्ति करने लगे। औ कोई विषयकी चाटवाले नाना मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, रसायनक्रिया, नाना देवतनकी उपासना करने लगे औ नाना विद्या, नाना कर्म, नाना व्यापार औ प्राणघात, जारत्व, चौरत्व आदि ठगाई करने लगे। इस प्रकार अपनी चाटसे जीव फिरते हैं। औ इनकी बुद्धिपर नाना प्रकारके भ्रमके परदे पड़े हैं। अब खुल नहीं सकते तो मानुष विचारवान्‌ने क्या करना ? अरे ! चाट बुरी फाँसी है—चाहे गुसैंयाकी होय, चाहे विषयनकी होय; ये दोनों जीवको बन्धनरूप हैं। ये अर्थ। तो मानुष जो विचारवान् हैं, इन्हें अपने स्वजातिको हरस्रतसे चेताना चाहिये कि नहीं ?। ये शङ्का। याको उत्तर—॥ १११ ॥

साखीः—मानुष बिचारा क्या करे ? जाके शून्य शरीर ! ॥
जो जिव झाँकि न ऊपजै। तो कहा पुकार कबीर !॥११२॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! विचारवान् मनुष्यने क्या करना ? जो बहुत विचार बताते हैं; परन्तु जिनका शरीर शून्य है, उनको कछु सूझ पड़ता नहीं। जरा-सी झाँकी भी जीवमें उठती नहीं। ज्ञानकी झलक भी ना उठी तो उसके सामने काह पुकारना ? नाहक श्रम काहेको करना, पशुजीवके वास्ते ?। हे कबीर = सन्तो ! सुनो ! जो कोई सुकृत जीव होय, ताको यथार्थ विचार समुझाना। ये अर्थ ॥ ११२ ॥

साखीः—मानुष जन्म नर पायके। चूके अबकी घात ॥
जाय परे भव-चक्रमें। सहे घनेरी लात ॥११३॥

टीका गुरुमुखः—मानुषजन्म जीवने पाया औ इनने सत्सङ्ग न किया, तो फिर क्या पशुयोनिको पायगा तब सत्सङ्ग करेगा ? अरे ! मनुष्यजन्म पायके जो चूका, पारखपदको प्राप्त न भया तो फिर 'जाय परे भवचक्रमें' = चौरासी लक्ष योनिनके फेरमें परेगा और बहुत लातें सहेगा, दुःख सहेगा। ये अर्थ॥११३॥

साखीः—रतन का जतन करु ! माँड़ीका सिङ्गार ॥
आया कबीरा फिर गया। झूठा है हङ्कार ॥११४॥

टीका गुरुमुखः—रतन = मानुष-जन्म; ताको जतन कर ! मिथ्या धोखेमें मत् खो ! नाहक माँड़ीके सिङ्गारमें मत् पर ! या सिङ्गारसे तेरी स्थिति औ कल्याण कछु होनेका नहीं। माँड़ीका सिङ्गार कहिये नाना प्रकारके भेष, नाना सम्प्रदाय, नाना मत, नाना बानी। याको माँड़ी कहिये। याका सिङ्गार नाना भेष और नाना भक्ति, ज्ञान, योग। याका अभिमान जो मानता है सो मिथ्या भ्रम है। अरे ! यामें कछु जीवकी स्थिति नहीं, औ पारखपदकी प्राप्ति किसीको भई नहीं। बड़े-बड़े कीर्तिवान् जीव नरजन्ममें आये औ फिर गर्भवासमें गये। गुरुपद पारखस्थिति होय बिना जीव कछु रहित हो सकता नहीं औ 'अहं ब्रह्म, त्वं ब्रह्म' आदि भक्ति, ज्ञान, योगकी बानीमें काहूको पारखकी प्राप्ति होती नहीं औ भई भी नहीं। ताते या बानीका अहङ्कार मिथ्या है। जैसा नरजन्ममें जीव आता है, तैसा फिर गर्भवासको जाता है। कछु स्थिति होती नहीं। ये अर्थ। और रतन कहिये ज्ञान, माँड़ीका सिङ्गार = स्त्री। सो स्त्रीसे ज्ञानको बचाये रहना ! इस स्त्रीके सङ्गमें ज्ञान नष्ट हो जाता है और जीव विषयबुद्धिमें आसक्त हो जाता है। फिर जा भगमेंसे जीव निकरता है, ताही भगमें जीव जाता है। ताते 'झूठा है हङ्कार।' देह औ स्त्रीका हङ्कार आवागमनका कारण है। ताके सङ्ग ज्ञानको खोवो मत् ! यतन कर ! ये अभिप्राय ॥ ११४ ॥

साखीः—मानुष जन्म दुर्लभ है। बहुरि न दूजी बार ॥
पक्का फल जो गिरि परा। बहुरि न लागै डार ॥११५॥

टीका गुरुमुखः—इस जीवको मानुष-जन्म दुर्लभ है। क्योंकि सम्पूर्ण विषयनमें औ पशुवत् कर्मनमें सदा आसक्त रहते हैं, ताते मानुष-जन्म जीवको दुर्लभ है। औ मानुष-जन्ममें विवेककी प्राप्ति होती है, विचार होता है औ सकल सम्पत्ति सहित गुरुपदकी प्राप्ति होती है। जीव आवागमनसे रहित होता है। ताते ऐसा जन्म बड़े भाग्यसे प्राप्त होता है। ऐसे जन्मको बानी-विषयमें औ स्त्री-विषयमें न खोवना, पारखी सन्तनका सङ्ग करके पक्का चोला धारण करना। कच्चे चोलेके पाँचों हङ्कार छोड़ना। औ पक्का चोला जीवको प्राप्त होय, फिर कच्चा चोला छूटै तो बहुरि जन्ममें न आवै। मानुष-जन्म पारखकी प्राप्ति होने माफिक है। येअर्थ ॥११५॥

साखीः—बाँह मरोरे जात हो। मोहि सोवत लिये जगाय ॥
कहहिंकबीर पुकारिके। ई पिण्डे होहु कि जाय ? ॥११६॥

टीका जीवमुखः—जीव बोलता है विचारवान् कि हे गुरु ! मैं परम गाफिलीमें सोया था, अपनेको आप भूला था। सो नाना प्रकारका विचार परखायके आपने जगाय लिया, चैतन्य कर दिया। सम्पूर्ण जड़भावना, ब्रह्म, आत्मा, जगत्, परमात्मादिक दूर कर दिया। औ अब बोलते हो कि पक्का स्वरूप होके कच्चा चोला गिरा तो आवागमनसे रहित भया। ऐसी स्थिति बतायके आप स्वच्छ पारख, जासे पक्की-कच्ची सब मालूम हुई, सो आप बाँह मरोरके जाते हो। हे कबीर ! मैंने तो तुम्हारी बाँह पकड़ी सो छोड़नेकी नहीं। कबीर कहिये जो कवियनके भीतर इरना करे सो कबीर। कवि कहिये ज्ञानी, इरना कहिये प्रेरणा। सो ज्ञानिनके भीतर प्रेरणा करे, ताको पारख कहिये। सो ज्ञानी जीव कहते हैं कि हे पारख गुरु ! हमारी बाँह मरोरे कहाँ जाते हो ? तब गुरु उत्तर देते हैं—

गुरुमुखः—'कहहिं कबीर पुकारिके।' हे विचारवान् जीव ! तुम यथार्थ परख करके देखो ! कि जाको तुम कबीर कहते हो औ गुरु कहते हो, सो कहाँ है ? हकनाहक मिथ्या धोखेमें परो मत्। इस पिण्डमें पारखपर स्थित होवो ! जासे तुमने सब परखा, सोई पारख गुरु औ गुरुपद। ताके ऊपर और कुछ नहीं। यह जानके तुमहूँ पारख होहु। कि भ्रममें चले जावो मत्। हम तो 'कहीं आँय न जाँय। सदा एकरस, नाहिं नसाँय।' सो तू कहीं घबरायके पारख छोड़के मत् जाना। अरे! पारखस्थिति बिना कौन-कौन चौरासीमें गये ? सो सुनो—॥११६॥

साखीः—साखि पुरन्दर ढहि परे। बिबि अक्षर युग चार॥
कबीर रसनारम्भन होत है। कोइ कै न सकै निरुवार॥११७॥

टीका गुरुमुखः—साखी कहिये जाने नेति-नेति प्रमाणसे पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृति, तीन गुण, दश इन्द्री, पञ्च विषय, पञ्च कर्म—चलन, बलन, प्रक्षालन, भक्षण, मैथुन; अन्तःकरण पञ्चक, तिनके विषय, दश वायु, चार अवस्था, चार देह, चार अभिमान, चार स्थान, चार मान, चार प्रमाण आदि सकल अनित्य सम्पत्ति जानके 'मैं सबका साक्षी ब्रह्म' ऐसा अपनेको निश्चय किया—ताको साखी कहिये। ऐसे-ऐसे जो बड़े-बड़े ज्ञानी सर्वसाक्षी कहलाये, सो भी पारखस्थिति बिना अन्वय करके जग चौरासीमें गिर परे, ढहि परे। जब साक्षीको निज भूमिका न मिली, तब साक्षी कहाँ ठहरे ? ताते घबरायके साक्षीने अन्वय किया कि जगत् सब मेरा स्वरूप, मैं जगत्से न्यारा नहीं, जगत् मेरेसे

न्यारा नहीं। ऐसा अन्वय करके ज्ञानका अभिमान छोड़ा औ निरञ्जन अभिमान-के मुखमें ढहि परा औ आत्मा कहाया। तो पहिले जब येता व्यतिरेक न किया था, तब क्या आत्मा न था? तो सम्पूर्ण ज्ञान औ विचार इनका ढहि गया, नाश हो गया। तो साखीकी स्थिति न भई। जगत्‌रूप बनके आवागमन सुख-दुःखमें ही रहा। औ 'पुरन्दर' कहिये इन्द्र, सो कर्मिष्ठ; जो कर्म करते-करते सौ अश्वमेध यज्ञ किया औ इन्द्र बना, तो भी जब सम्पूर्ण पुण्य क्षीण होता है, तब मृत्युलोकमें आयके जन्म लेता है। यह वेदका भी प्रमाण है। क्योंकि मृत्युलोक कर्म-भूमिका है। मृत्युलोकमें कर्म करना औ अन्य लोकमें भोगना! भोग सरे फिर मृत्युलोकमें आयके जन्म लेना। तो कर्म करते-करते जो इन्द्र भी हुआ, तो आखिर चौरासीमें ढहि परा। ये अर्थ। बिबि अक्षर = योगी, जो दो अक्षरका सिद्धान्त करते हैं। दो अक्षर कहिये सोहं, दो अक्षर कहिये वोहं, दो अक्षर कहिये राम। इनको श्वासामें सिद्ध करके सुरत लगाते हैं औ सुरतको श्वासामें लय करते हैं, श्वासाको शब्दमें लय करते हैं, शब्दको ब्रह्माण्डमें लय करते हैं औ निर्विकल्प समाधिको पावते हैं, सर्व सिद्धिको पावते हैं, औ सर्व जगत्‌में ईश्वर कहलाते हैं। परन्तु जब चोला छूटा औ मस्तक फूटा, तब न शब्द ही रहा, न श्वासा ही रहती है। तब वो भी समाधिसे गर्भवासमें ढहि परे। ये अर्थ। युग कहिये द्वैतवादी उपासक, सो नाना प्रकारकी उपासना करते-करते आखिर देवलोकको जाते हैं। फिर वहाँका पुण्य आयुष्य सरा, तब देवता भी औ दास भी मृत्युलोकको आयके जन्म लेते हैं; ऐसा वेद बोलता है। तब वो भी चौरासीमें ढहि परे। लोक औ देवता कछु चौरासीके बाहर नहीं। ये अभिप्राय। चार वेद, वो भी जगत् चौरासीमें परे हैं। औ चार ऋषि—सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन। ये चारोंने अन्वय करके जगत् सब अपना रूप माना है औ ब्रह्म बने हैं; परन्तु उपजना-विनशना कछु छूटा नहीं। अरे! साखी कहिये ज्ञानी, औ पुरन्दर = कर्मी, बिबि अक्षर = योगी, युग = द्वैतवादी उपासक, चार = वेदी, चार = विज्ञानी; ये पञ्च वर्ग सब भ्रममें गिर परे। हे पारखी सन्तो! तुम यथार्थ परखके देखो! इनकी स्थिति कहाँ है? परन्तु हे सन्तो! ये जगत्‌में रसना रम्भन = मिथ्या बकवाद होती है। न कछु लेना, न देना। पर कोई बानीका पक्ष छोड़के

निरुवारा कर सकता नहीं। जो पक्ष छोड़के सत्सङ्गमें निरुवारा करे, तब पारख-स्थितिको प्राप्त होय। ये अर्थ ॥ ११७ ॥

साखीः-बेड़ा बाँधिन सर्पका। भवसागर के माहिं ॥
जो छोड़े तो बूड़े। गहै तो डँसे बाँहिं ॥११८॥

टीका गुरुमुखः—अहङ्कार-सर्पका बेड़ा बाँधा, तापर सब आरूढ़ हुए। अब जो अहङ्कार छोड़ा चाहता है तो देह गिरना चाहती है, नाश होती है। औ अहङ्कारको पकड़ना चाहता है तो वो सर्प काटता है। तो याका उपाय पारख-औषधी पास रखना। ओ औषधी ऐसी है, जाते विष नहीं व्यापनेका। पञ्चमुखी सर्प अहङ्कार; ताके पाँच मुखनते पाँच प्रकारकी बानी निकरी। प्रथम मुख—विश्व, ताते कर्मकाण्ड निकरा। दूसरा मुख—तैजस, ताते उपासना-काण्ड निकरा। तीसरा मुख—प्राज्ञ, ताते योगकाण्ड निकरा। चौथा मुख—प्रत्यगात्मा, ताते ज्ञानकाण्ड निकरा। पाँचवाँ मुख—निरञ्जन, ताते अद्वैत विज्ञान-काण्ड निकरा। सो ऐसा सर्पका बेड़ा बाँधा, जहाज बाँधा। अपने मनसे कल्पिके भवसागर अनुमान किया औ ताको माना। तब ये नरदेहमेंसे पञ्चमुखी हङ्कार उठा। सो ता हङ्कारको पकड़के उसपर सब जीव चढ़े भवसागर पार होनेके वास्ते। अब जो विचार करके छोड़ा चाहता है, तब भवसागरका भय, जो बूड़ जायेंगे। औ पकड़े रहते हैं, तो वो सर्प डसा करता है, धोखेमें डारता है। अब जीव क्या उपाय करे? ये शङ्का। तो विचार करके परखना कि भवसागर भी मेरा अनुमान मिथ्याभूत औ बेड़ा भी मेरी कल्पना मिथ्याभूत। सर्प भी मेरी मानन्दी मिथ्याभूत। मैं सर्वका पारखी पारखरूप सबसे न्यारा। ऐसा बारम्बार स्मरण करके बेड़ा, सर्प, भवसागर सबसे न्यारा होना। ये अभिप्राय। शिष्यको स्थिति प्राप्त भई नहीं, ताते शङ्का भई कि ये पाँचों हङ्कार छोड़के मेरी स्थिति क्या है? ये मालूम न भई, औ पाँचों हङ्कार छोड़के कहाँ जाऊँ? औ इनको पकड़ा रहता हौं तो ये सर्प मेरेको खाय जाता है। ऐसी शङ्का भई। तापर स्थिति पीछेसे गुरुने बताई कि पारख-भूमिकापर आयके स्थिर हो जा! औ भास-अध्यासादि, अनुमान-कल्पना सब परखके छोड़ दे। ये अर्थ॥ ११८॥

साखीः-हाथ कटोरा खोवा भरा। मग जोवत दिन जाय ॥
कबीर उतरा चित्त ते! छाँछ दियो नहिं जाय ॥११९॥

टीका गुरुमुखः—प्रीतिकी रीति ऐसी होती है कि हाथमें खोवाका कटोरा भरा है औ रास्ता देख रहे हैं—जो मेरा मित्र कब आवे ? औ मेरेसे माँगे ? मैं देऊँ। येही भावसे रात-दिन जाता है। तद्वत् गुरु साहेब सत्शिष्यपर प्रीति रखते हैं, कधी सूरतसे टारते नहीं। औ सत्शिष्यका जो कछु मनोदय हो, ताको पुराने वास्ते सदा अभय कर धारण किया है कि जो कछु सत्शिष्यके अन्तःकरणमें उठे, सो पूर्ण करूँ। औ दूध कहिये बहु बानी। ताको औंटके सब कसर—विकार जरायके सार विचाररूपी खोवा बनायके प्रीतिरूपी पात्रमें लेके धारण किया कि कोई मेरा मित्र आवै औ ये विचार लेके पारखपदको प्राप्त होवै। येही भाव गुरुके विषय सदा रहता है। परन्तु शिष्य कधी गुरुके चित्तसे उतरे नहीं, सदा चित्त गुरुके विषय औ सदा मन गुरुके शब्द विषय, औ सदा गुरुके शब्द-प्रमाण विचार करके आचरण करे, कधी प्राण जाय तो भी गुरुके शब्द बाहर न होय। औ आशा स्वर्गादिक, तृष्णा राजलक्ष्मी, विषय-प्राप्ति आदिक सम्पूर्ण त्याग करे। इन वस्तुनको तीनकालमें स्फुरण होने देवै नहीं। इनको मिथ्याभूत जानै। इनका अभाव रक्खै। औ स्त्रीकी प्राप्ति समय कामके आधीन न होवै, औ अपमानकी प्राप्ति समय क्रोधके आधीन न होवै, औ अपनेको द्रव्य प्राप्ति समय लोभके अधीन न होवै। औ सज्जन मित्र, पुत्र, पौत्रादि-प्राप्ति समय अथवा वियोग समय मोहके आधीन न होवै। औ कालकी प्राप्ति समय या दुःखकी प्राप्ति समय भयके आधीन न होवै। अपनी सूरतसे सदा गुरुमें मिला रहै पारख-स्थितिके भावसे, ताको सत्शिष्य कहिये। ताकी सम्पूर्णता गुरु साहेब करते हैं। वो शिष्यपर गुरुसाहेबकी प्रीति अत्यन्त रहती है। ये प्रीतिके लक्षण। अब बेप्रीतिके लक्षण सुनो—'कबीर उतरा चित्तते। छाँछ दियो नहिं जाय॥' जो गुरुके चित्तसे जीव उतरा; ताको छाँछ = तत्त्वमस्यादि बानी भी नहीं दी जाती। जाको गुरुपदकी प्रीति है, ताको गुरु अपना पद देनेको तैयार हैं—सत्शिष्यको, औ सम्पूर्ण उसकी मनोदय पूर्ण करते हैं। औ असत् शिष्य, ऊपर तो गुरुका शिष्य कहलाता है औ भीतर अनेक कल्पना, अनेक भावना, अनेक वासना बनी हैं, औ काम, क्रोध, लोभ, मोहमें आसक्त है, इनके सङ्ग उन्मत्त भया है, उसे छाँछ भी नहीं दिया जाता। जो कछु एक बानी भी नहीं कही जाती। कुछ उसका कारज भी नहीं किया जाता। क्योंकि वो गुरुके चित्तसे उतरा है। गुरुकी तरफ उसने पीठ फेरा है,

बिमुख है। ये अर्थ। आगे दूसरा अर्थः—हाथ कटोरा कहिये हाथका पात्र; सो गुरु कहते हैं कि मनुष्यदेह, येही विचारका पात्र; सो जीवने वेदबानीके भरोसे खोया = खो दिया औ बानीके प्रमाणसे आप राम बना औ सबमें भरा औ चित्तसे उतर गया, चैतन्यभावसे उतरा, जड़ दशा धारण की, गुरुवा लोगनकी बानीके प्रमाणसे। सो इनको गुरुवा लोग गुरुपद तो क्या देवेंगे ? जो उनको ही प्राप्त नहीं है; परन्तु छाँछ माफिक मनुष्य-तन, सो भी नहीं दिया जानेका। ये अर्थ ॥ ११९ ॥

साखीः–एक कहौं तो है नहीं। दोय कहौं तो गारि ॥
है जैसा रहै तैसा। कहहिं कबीर बिचारि ! ॥१२०॥

टीका गुरुमुखः—एक ब्रह्म या एक आत्मा या सम्पूर्ण एक जैसे-का-तैसा, बाहर–भीतर चिउँटीसे ब्रह्मा पर्यन्त एक—ऐसा कहना तो कछु है नहीं, विचारमें ठहरता नहीं। औ जीवपर दूसरा मालिक बताऊँ तो वो भी नहीं, मिथ्या गारी है। क्योंकि 'एक आत्मा' ये तो जीवका भास–अध्यास है। 'दूसरा कर्त्ता' ये जीवका अनुमान–कल्पना। तो दोनों मिथ्या औ जैसा ये जीव सत्य है, तैसा यह यथार्थ विचार करे। जासे विचारादि सब तत्त्व परखनेमें आवे, सो पारखपर रहि जावे, रहित होय। ये अर्थ ॥ १२० ॥

साखीः–अम्मृत केरी पूरिया। बहु विधि दीन्हा छोरि ॥
आप सरीखा जो मिलै। ताहि पियावहु घोरि ॥१२१॥

टीका गुरुमुखः—अमृत कहिये जीव, ताकी स्थिति पारख—सो बहुत प्रकारसे खोलिके समुझाय दिया। अब हे पारखी हो ! जो कोई तुम्हारे सरीखा सत्‌शिष्य मिले, ताको सकल निरुवारा करके समझाय देओ। ये अर्थ ॥१२१॥

साखीः–अम्मृत केरी मोटरी। शिरसे धरी उतार ॥
जाहि कहौं मैं एक है। सो मोहिं कहै दुइ–चार ॥१२२॥

टीका गुरुमुखः—इस संसारने विचारकी मोटरी शिरसे उतार धरी। कोई विचार करता नहीं। जाको मैं कहता हौं कि एक जीव सत्य है, और सब मिथ्या भ्रम है, सो मेरेको दुइ–चार कहता है। एक ईश्वर, एक जीव—ये दो। औ ब्रह्मा विष्णु, महेश औ देवी–देवता, ये बताता है औ सत्‌वस्तु नहीं मानता। असत्य

देवता, असत्य बानीका पक्ष करके मिथ्यावाद करता है। ये अर्थ। अब गुरुका उपदेश तो हो चुका। आगे मायाका उपदेश गुरु बताते हैं; सो सुनो-॥१२२॥

साखीः-जाके मुनिवर तप करैं। वेद थके गुण गाय ॥
सोई देउँ सिखापना। कोइ नहीं पतियाय ॥१२३॥

टीका मायामुखः—ये मायाका उपदेश ऐसा है कि जो परमात्माके वास्ते अमित देवता, व्यासादि मुनिश्रेष्ठ तपस्या करते हैं औ वेद जाका गुण गाय-गाय थके, नेति-नेति कहा, सोई ब्रह्म-उपदेश मैं संसारमें करता हौं; परन्तु ये जीव अज्ञानवश कोई पतियाता नहीं। ये अर्थ। इस प्रकारसे गुरुवा लोग संसारमें सूचना दृढ़ाने लगे, तब जीवनकी लालच बढ़ी औ ब्रह्म-उपदेश लेनेको गुरुवा लोगनकी शरणमें गये। तो गुरुवा लोग क्या उपदेश करते हैं? सो सुनो॥१२३॥

साखीः-एकते अनन्त भौ। अनन्त एक ह्वै आय ॥
परिचय भई जब एकते। तब अनन्तो एकै माहिं समाय॥१२४॥

टीका मायामुखः—एक ब्रह्म, ताहीते अनन्त जगत् पैदा भये—जल-तरङ्ग न्याय, सुवर्ण-भूषण न्याय, मृत्तिका-घट न्याय। ताते जो एक ब्रह्म था, सोई अनन्त जगत् बनि आया। जगत्-ब्रह्म अभेद, कछु भेद नहीं। भ्रान्ति-मात्र भेद त्यागके ब्रह्म-परिचय करना। फिर अनन्त जगत् एक ब्रह्ममें समाया। जैसा जलका तरङ्ग जलमें; मृत्तिकाका घट मृत्तिकामें; सुवर्णका भूषण सुवर्णमें; तद्वत् अनन्त जगत् एकमें समाया औ अभी एक ब्रह्म ही है। आदि, अन्त, मध्यमें एक ब्रह्म। द्वैत मिथ्या भ्रान्ति। जैसा जलका तरङ्ग जल ही है, मृत्तिकाका घट मृत्तिका ही है, सुवर्णका भूषण सुवर्ण ही है; तद्वत् जगत् सब ब्रह्मरूप। ये अर्थ ॥१२४॥

साखीः-एक शब्द गुरु देवका। ताका अनन्त विचार ॥
थाके मुनि जन पण्डिता। वेद न पावै पार ॥१२५॥

टीका मायामुखः—एक शब्द = ॐकार, गुरुदेव = ब्रह्माका; ताही ॐकारका अनन्त विचार चार वेद, छौ शास्त्रादि, ऋषि, मुनि औ ब्रह्मादिक पण्डित सब थक गये। किसीने पार पाया नहीं; क्योंकि सम्पूर्ण प्रणवरूप है। प्रणवका निराकरण बहुत प्रकारसे पीछे भया है, ताते संक्षेपार्थ कहा ॥ १२५ ॥

साखी:–राउरके पिछवारे । गावै चारिउ सैन ॥
जीव परा बहु लूटमें । ना कछु लेन न देन ॥१२६॥

टीका गुरुमुखः—'राउर' ऐसा सम्बोधन ॐकारको वेद देता है औ ताही प्रणवके पीछे चारिउ सैन चारिउ वेद बताते हैं। ऋग्वेद तुर्यास्वरूप निर्गुण–निराकार, निर्लेप, अगम--अगोचर परमात्मा—ये अर्द्धमात्राकी सैन। औ यजुर्वेद उकारकी सैन—सगुण ब्रह्म, विशिष्ठाद्वैत, क्षीरसागरवासी नारायण सर्वशक्तिमान् बोलता है। अथर्वणवेद मकारकी सैन बोलता है कि दृष्टिगोचर जगत्, येही सत्य है और सगुण--निर्गुण उपासना सब मिथ्या। जो मरा सो मुक्त हुआ। मरे फिर आयके जन्मता नहीं। सामवेद अकारकी सैन—सम्पूर्ण चराचर ब्रह्मरूप कहता है। ये चारों सैन चारों वेद गाते हैं। पाँचवाँ स्वसंवेद अनुभव बिन्दु सही करता है। सो इनका महात्म्य सुनके जीव बहु लूटमें परा, परम आनन्दको प्राप्त भया; परन्तु न कछु लेना, न देना। जैसे-का-तैसा आत्मा, आदि-अन्त-मध्य रहित परिपूर्ण है। इस प्रकार कहिके थका, ब्रह्म-भ्रममें परा। ये अर्थ ॥१२६॥

साखी:--चौगोड़ा के देखते। ब्याधा भागा जाय ! ॥
अचरज एक देखो हो सन्तो ! मूवा कालहि खाय ! ॥१२७॥

टीका गुरुमुखः—चौगोड़ा = ॐकार; जाके चारों वेद गोड़ औ स्वसंवेद धड़, औ शीशका ठिकाना ही नहीं। ऐसे ॐकारको देखके ब्याधा = मन, सो पीछेको भाग जाता है। क्योंकि ॐकारके सन्मुख जो होता है, तो वोही ॐकार इस मनको खा जाता है। तो हे सन्तो ! ये बड़ा आश्चर्य है कि ॐकार मुरदा, सो इस मनको खा जाता है। मन सोई काल। ये अर्थ ॥ १२७ ॥

साखी:--तीन लोक चोरी भई। सबका सरबस लीन्ह ॥
बिना मूँड़का चोरवा। परा न काहू चीन्ह ॥१२८॥

टीका गुरुमुखः—तीन लोक—राजस भक्त, तामस योगी, सात्त्विक ज्ञानी; इन तीनोंके घरोंमें चोरी भई। सो इनके जीव समेत सर्वस हर लिया। उकार-मात्राने भक्तनको हर लीन्ह, मकार-मात्राने योगिनको हर लीन्ह, अर्द्धमात्राने ज्ञानिनको हर लीन्ह, सबको भरमाय लीन्हा। पर ये बिना मूँड़का चोर ॐकार काहूके चीन्हनेमें न आया कि मिथ्या कल्पना है, ताते सब जगको खा लिया।

ये अर्थ । या बिना मूँड़का चोर कहिये काम, जाने तीन लोकमें चोरी करी औ देव, दैत्य, मनुष्य—सबका ज्ञान हर लीन्हा औ अपने वशमें करके सबको गर्भवासकी अँधियारी कोठरीमें कैद कीन्हा । इस कामके बँधुवा होके सब कोई नाचते हैं—ब्रह्मादि, विष्णु आदि, शिवादि । पर यह काम-चोर काहूको चीन्ह परा नहीं । ये अर्थ ॥ १२८ ॥

साखीः--चक्की चलती देख के । मेरे नैनन आया रोय ! ॥
दुइ पाट भीतर आयके । साबुत गया न कोय ! ॥१२९॥

टीका गुरुमुखः—संसार सोई चक्की *—१. धरती--आकाश दो पाट, सुमेर सोई किल्ला, कर्मकाण्ड सोई हाथखूँटा, पीसनेवाली कल्पना नारी । तामें सब कर्मी जीव पीसे जाते हैं । २. औ सगुण-निर्गुण दोनों पाट, ईश्वर किल्ला, उपासना हाथखूँटा, अनुमान पीसनेवाली । तामें सगुण--निर्गुण उपासक जीव पीसे जाते हैं । ३. औ पिण्ड--ब्रह्माण्ड दोऊ पाट, सुषुम्ना किल्ला, योगक्रिया हाथ-खूँटा, पीसनेवाली योगशक्ति । तामें योगी लोग पीसे जाते हैं । ४. औ तत्-त्वं दोनों पाट, असि किल्ला, वेद-श्रुति हाथखूँटा, पीसनेवाली आत्मवृत्ति । तामें ज्ञानी जीव सब पीसे जाते हैं । ५. औ नित्य-अनित्य दोनों पाट, साक्षी किल्ला, प्रकृति हाथखूँटा, पीसनेवाली ज्ञानशक्ति । तामें सांख्ययोगी पीसे जाते हैं । ६. स्थूल-कैवल्य दोनों पाट, तुर्या-महाकारण किल्ला, सूक्ष्म हाथखूँटा, कारण पीसने-वाली । तामें सकल जीव पीसे जाते हैं । ७. औ स्त्री-पुरुष दोऊ पाट, काम किल्ला, विषय हाथखूँटा, पीसनेवाली वासना । तामें विषयी जीव पीसे जाते हैं । इस

---

* सप्त प्रकारकी चक्कीका दिग्दर्शनः—

दो पाट	किल्ला	हाथखूँटा	पीसनेवाली	पीसे जानेवाले
१. धरती--आकाश	सुमेर	कर्मकाण्ड	कल्पना नारी	कर्मी जीव ।
२. सगुण-निर्गुण	ईश्वर	उपासना	अनुमान	उपासक जीव ।
३. पिण्ड-ब्रह्माण्ड	सुषुम्ना	योग-क्रिया	योगशक्ति	योगी लोग ।
४. तत्-त्वं	असि	वेद-श्रुति	आत्मवृत्ति	ज्ञानी जीव ।
५. नित्य-अनित्य	साक्षी	प्रकृति	ज्ञानशक्ति	सांख्य योगी ।
६. स्थूल-कैवल्य	तुर्या-महाकारण	सूक्ष्म	कारण	सर्व जीव ।
७. स्त्री-पुरुष	काम	विषय	वासना	विषयी जीव ।

प्रकारकी चक्की चलती है, सो देखके मेरे नैनमें आँसू आया कि देखो ! ये दोनों पाटनमें आयके कोई जीव हंसपदको साबूत नहीं गया । सब चकनाचूर बेहोश हुए । ये अर्थ ॥ १२९ ॥

साखीः-चार चोर चोरी चले । पशु पनहीं उतार ॥
चारिउ दर थूनी हनी । पण्डित ! करहु बिचार ! ॥१३०॥

टीका गुरुमुखः—चार चोर कहिये चार वेद, सो जीवनका जीवन-धन हरण करने चले । परन्तु यही चोर हमारे घटमें चोरी करते हैं, ऐसा कोई जीवको मालूम हुआ नहीं । ताते गृही, वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्रह्मचारी—ये चारों दर पाँवकी जूती उतारके वेदनके पीछे लगे । सो वेदने चारों दरमें थूनी गाड़ दई कि कोई एक परमात्मा है, ताके निमित्त अपने-अपने आश्रमके कर्म यथाविधि आचरण करना, तब मुक्ति होवेगी । नहीं तो घोर नरकमें जावोगे । ऐसी थूनी हनी, तब सब बड़े-बड़े पण्डित, बुद्धिमान् वही थूनीका विचार करने लगे । ये अर्थ । या चार चोर = चार अभिमान, ये चोरीको चले । सो अपनी-अपनी पनही = इन्द्री छोड़के जीवोंके पीछे पड़े औ चारों दर = चारों वर्णमें थूनी गाड़ी । विश्व-अभिमानने कर्मकाण्डकी थूनी गाड़ी, तैजस-अभिमानने उपासनाकी थूनी गाड़ी, प्राज्ञ-अभिमानने योगकी थूनी हनी । प्रत्यगात्मा, अभिमानने ज्ञानकाण्डकी थूनी हनी । सो ताहीका विचार सब पण्डित करने लगे । ये अर्थ । चार चोर कहिये, चित्त मन, बुद्धि, अहङ्कार—ये चोरीको चले, अपनी इन्द्री उतारके जीवनके पीछे पड़े। सो चारों दर = चार खानिमें कोई ब्रह्म है, ऐसी थूनी हनी । मनने सङ्कल्पकी थूनी गाड़ी, चित्तने अनुसन्धानकी थूनी गाड़ी, बुद्धिने निश्चयकी थूनी गाड़ी, हङ्कारने करतूतकी थूनी हनी । सो ताहीका विचार सब पण्डित करने लगे । ये अर्थ । औ चार चोर = काम, क्रोध, लोभ, मोह—ये चोरी करने चले, जीवके यहाँ जूती उतारके पीछे पड़े । सो चारों खानिमें थूनी गाड़ दई । कामने विषयकी थूनी गाड़ी, क्रोधने बुराईकी थूनी गाड़ी, लोभने द्रव्यकी थूनी गाड़ी, मोहने स्त्री-पुत्रादिक कुटुम्बकी थूनी हनी औ सब जीवनका ज्ञान हर लीन्ह, जीवनको आसक्त कीन्ह । सो हे बुद्धिमान् ! तुम विचार करके चोरोंको कैद करो ! इन चोरोंको मार निकारो ! इनसे कधी गाफिल न रहना ! ये लूट डारेंगे । ये अर्थ ॥ १३० ॥

साखीः–बलिहारी वह दूधकी ! जामें निकरे घीव ! ॥
आधी साखी कबीरकी ! चारि वेदका जीव ! ॥१३१॥

टीका मायामुखः—माया कहती है कि 'बलिहारी वह दूधकी ।' दूध कहिये बानी । सो ब्रह्मबानीकी प्रशंसा गुरुवा लोग करते हैं कि धन्य वह वेद औ बानी कि जामेंसे शुद्ध सतोगुण ज्ञान-घीव निकरा । सोई हमारे गुरु कबीर = ब्रह्मरूपी, जिन्ह हमारेको अर्द्धमात्राका उपदेश किया और चार वेदका जीव, सो सर्वसाक्षी परब्रह्म–सो अपरोक्ष अनुभव सहवर्त्तमान हमको बताया । ऐसा मायाने अपना उपदेश किया, प्रशंसा किया । ये अभिप्राय ॥ १३१ ॥

साखीः–बलिहारी तेहि पुरुषकी । जो परचित परख निहार ॥
साई दीन्हों खाँड़को । खारी बूझै गँवार ! ॥१३२॥

टीका गुरुमुखः—अब मायाने जो अपने उपदेशकी प्रशंसा की, ताका निराकरण गुरु करते हैं । अरे ! उस पुरुषकी बलिहारी ! जो पारखकी प्रतीति करै औ सम्पूर्ण कसर–विकार निहारके निकार डारे, औ आप शुद्ध पारखरूप हो रहे, ताही पुरुषकी बलिहारी ! औ ब्रह्मस्थिति अन्वय-व्यतिरेक सहित खाँड़का हीरा है, ताको 'सच्चा खरा' ऐसा जो बूझता है, सो गँवार ठगाय गया । सो वह बेपारखी चौरासीमें गोता खायगा । खाँड़ कहिये खं आकाश, आकाश कहिये ब्रह्म । ब्रह्म कहिये प्रथम अनुमान जीवका, दूसरा अध्यास जीवका, तीसरा भास जीवका, चौथी कल्पना जीवकी । अनुमान चित्त सम्बन्धी, अध्यास अहङ्कार सम्बन्धी, भास बुद्धि सम्बन्धी, कल्पना मन सम्बन्धी । अब 'दूसरा ब्रह्म' ये कल्पना; 'मैं ब्रह्म' ये अध्यास; 'कोई ब्रह्म है कहूँ' ये अनुमान; 'सम्पूर्ण आत्मा आपै–आप, न सगुण, न निर्गुण, न साक्षी, न असाक्षी, न एक, न दो, न सह-विकल्प, न निर्विकल्प; तो जैसे-का-तैसा' ये भास । अब अन्तःकरण-चतुष्टय सोई आकाश; ताका हीरा ब्रह्म । सो विजातीय मिथ्या भ्रम, ऐसा जाके परखनेमें आवे औ परखके न्यारा होय, सो ताकी बलिहारी ! औ ऐसे मिथ्या भ्रमको मानके जो प्रशंसा करे, सो मूर्ख गँवार । वो अपने पदसे बेमुख । ये अर्थ ॥ १३२ ॥

साखीः–विषके बिरवे घर किया । रहा सर्प लपटाय ॥
ताते जियरहिं डर भया । जागत रैनि बिहाय ॥१३३॥

टीका गुरुमुखः—विषका बिरवा = गुरुवा लोगनका उपदेश, वेदबानी; ताने जीवके अन्तःकरणमें घर किया। तामें पञ्चमुखी सर्प = अभिमान लपटाय रहा है, ताते जीवनको डर भया। सो जागते ही रात-दिन जाता है। कहीं गुरुवा लोगनने उपदेश अनेक देवतनका किया, कि 'कहीं दूसरा ब्रह्म है' ऐसा कथन किया। कहीं अहं ब्रह्म, कहीं तत्त्वमसि, कहीं योग-समाधि, कहीं कर्म, कहीं उपासना; ऐसे नाना उपदेश किये, ताका अभिमान बढ़ा। सो प्राप्तिकी फिकिर भई, ताते 'जागत रैनि बिहाय'। ये अर्थ ॥ १३३ ॥

साखी:-जो घर हैगा सर्पका। सो घर साधन होय ॥
सकल सम्पदा ले गये। विष भरि लागा सोय ! ॥१३४॥

टीका गुरुमुखः—जो पञ्चमुखी सर्पका घर है, ताहीमें नाना प्रकारके योग-साधन, कर्म-साधन हो रहे हैं। तो जो सर्पके घरमें साधन करेगा तो सर्प छोड़नेका नहीं, एक दिन खा जायगा। ये अहङ्कार-सर्प महाविषधर जीवके पीछे लगा है सो जीवको डस दिया, तब अपना करतूतरूपी जहर जीवपर चढ़ा। ताते सकल सत्य, विचार, दया, शील, धीरज आदि सम्पत्ति जीवकी नाश हुई। विषने खाय लिया। पिण्डाण्ड-ब्रह्माण्ड ये सर्पका घर। याको परखके न्यारा होना पारख-भूमिका पर। ये अर्थ ॥ १३४ ॥

साखी:-घुँघुची भरके बोइये। उपजा पसेरी आठ ! ॥
डेरा परा कालका। साँझ-सकारे जात ॥१३५॥

टीका गुरुमुखः—सजीव काम जो घुँघुचीभर स्त्रीके कमलमें बोय दिया, तासे आठ पसेरी = मनभरका चोला उपजा। सोई कालका डेरा परा। ताहीका अभिमान जीवने किया, ताते साँझ-सकारे फिर गर्भवासमें जायगा। ये अर्थ। काल कहिये, गर्भ कहिये, हङ्कार कहिये; सो हङ्कारका डेरा चोला। आठ पसेरी = पाँच तत्त्व, तीन गुण; याके माने जीव आवागमनमें परा। जैसे दिन निकला, फिर साँझ भई, फिर दिन निकला। तद्वत् जीव मरा, फिर पैदा भया और पैदा भया, फिर मरा। ये अर्थ। सबका बीज घुँघुचीभर महाकारण ज्ञानदेही। सो ज्ञान-देहीका अध्यारोप किया। ताहीमें आठ पसेरीका स्थूल धारण करके पैदा भया, सोई अज्ञान कालका डेरा परा। ता स्थूलमें अज्ञानकी अँधियारो छाय गई,

सोई साँझ पर गई । तामें दिन = ज्ञान, सोई डूब गया । ताते 'अहं ब्रह्म' ऐसा जो ज्ञानदेही तुर्यस्थ सर्वसाक्षी हुआ, सोई काल सब संसारको खाने लगा औ उत्पत्ति करने लगा । ये अर्थ । ये जीवके अध्याससे घुँघुचीभर महाकारण सिद्ध हुआ औ इस जीवकी सा.मिलतासे घुँघुचीभर काम बोया तो स्थूल पैदा भया । अगर जीव दोनों बन्धनोंको परखके छोड़े औ आप पारख-भूमिकापर ठहरे, तो न महाकारण ही है, न स्थूल ही है । ये जीवकी सत्तासे जगत्-ब्रह्म दोनों हैं । जीव न्यारा भया तो कछु नहीं । ये अभिप्राय ॥ १३५ ॥

साखीः-मन भरके बोइये ! घुँघुची भर नहिं होय ॥
कहा हमार माने नहीं ! अन्तहु चले बिगोय ॥१३६॥

टीका गुरुमुखः—सन्तो देखो ! जो निर्जीव बिन्द मनभर बोय देवो तो भी वहाँसे कछु जीव-बालक पैदा हो नहीं सकता । अगर मनभरकी देह चाहै सभी गाड़ देवो, इससे कछु पैदा हो सकनेका नहीं । औ जीवको जहाँ रोप देवोगे, तहाँ मनभरका चोला पैदा करेगा । औ जीव बिना 'अहं ब्रह्म' ऐसा सिद्धान्त भी नहीं हो सकनेका । ताते न ब्रह्म है, न कोऊ ईश्वर है । सब मिथ्या धोखा । सबका आदिकारण जीव, सोई ज्ञानरूप; परन्तु बिना पारख भ्रमता-भटकता है । उसकी स्थिति कछु हो सकती नहीं । अरे ! एक जीवकी सत्तासे स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि मनभरका रूप पैदा भया । परन्तु ये तीनों मनके बोयेसे कछु एक ज्ञानरूप उपज सकता नहीं । क्योंकि ये जड़ हैं । ताते एक ज्ञानसे ये तीनों उपज सकते हैं । क्योंकि ज्ञान चैतन्य है, ताते समर्थ है । सो ज्ञानको दोष गुरुने क्यों लगाया ? कि सबका आदिकारण है, औ अज्ञान-क्लेश-खानिका बीज है । ताते ज्ञानकी कछु स्थिति नहीं—यही दोष । ताते ज्ञानने सम्पूर्ण अभिमान छोड़के पारखकी शरण होना औ पारखरूप हो रहना ! पारख सोई ज्ञानकी भूमिका । ता बिना ज्ञानकी स्थिति कहीं नहीं । इस प्रकारसे हमारा कहा कोई मानता नहीं । सब ज्ञान अज्ञान जड़ धोखेमें बन्ध हो रहे हैं, ताते आखिरको खराब हो चले गर्भवासमें, जड़रूप हो चले । ये अर्थ । अब ज्ञान सोई जीव—ये विचारमें ठहरा । परन्तु ज्ञान एक कि अनेक ? ये शङ्का । अरे ! ज्ञान कुछ एक नहीं, जेते घट तेते ज्ञान । परन्तु ज्ञानकी जाति एक । घट उपाधिसे ऐसे अनेक हो गये हैं सो कधी तीनकालमें

एक हो सकते नहीं। एक मानना, ये मिथ्या अध्यास है। ये अभिप्राय। तो भला सूर्य एक है औ घट-जल उपाधिसे अनेक मालूम होता है। ताको एक मानिये कि अनेक मानिये ?। ये शङ्का। तो सूर्य एक न्यारा ऊपर है, ताते ताके प्रतिबिम्ब उपाधि सहित अनेक मालूम होते हैं। परन्तु बिम्ब-प्रतिबिम्ब अनन्य भाव। ताको एक मानिये ! तैसा जीवके ऊपर कोई दूसरा बिम्ब नहीं, जो ताका प्रतिबिम्ब जीव अनन्य-भाव मानिये। ये जीव तो आप ही स्वतन्त्र हैं; पर घट-उपाधिसे अनेक नजर आते हैं। याको एक कैसे मानिये ? कोई एक मिथ्यावादी कहते हैं कि ब्रह्म एक बिम्ब है, ताका घट-बुद्धि सहित जीव प्रतिबिम्ब अनेक मालूम होता है। सो मिथ्या भ्रम है; क्योंकि जो प्रतिबिम्ब जीव होता तो इसे कधी ज्ञान न होता। क्योंकि प्रतिबिम्बको कछु ज्ञान होता नहीं, औ जीवको ज्ञान होता है। औ ब्रह्म भी मानिये, तो ब्रह्म जीवका (मानन्दीरूप) प्रतिबिम्ब है। क्योंकि प्रतिबिम्बको कछु बिम्बका ज्ञान नहीं, औ बिम्बको प्रतिबिम्बका ज्ञान होता है। ब्रह्मको कछु जीवका ज्ञान नहीं, औ जीवको ब्रह्मका ज्ञान है। ब्रह्म कछु जीवको प्रतिपादन करता नहीं, औ जीव ब्रह्मको प्रतिपादन करता है। जैसे अपनी देह औ देहकी छाया। सो देहसे जीवको छायाका ज्ञान मालूम होता है, कछु छायासे देहका ज्ञान मालूम होता नहीं। तद्वत् जीवसे ब्रह्मका ज्ञान मालूम होता है, कछु ब्रह्मसे जीवका ज्ञान नहीं। तब ब्रह्म जीवका (मानन्दीरूप) प्रतिबिम्ब मिथ्या भास। जीव सत्य। परन्तु जेते देह, तेते जीव। सबकी जाति एक है, पर पृथक्-पृथक् रहते हैं। जो कधी पारख-भूमिकाको पाया तो ता भूमिकापर एक (-सा स्थितिवान्) हो सकते हैं, औ जो भूमिका छोड़ते हैं सो सब पृथक्-पृथक् हैं। ये अर्थ ॥१३६॥

साखीः-आपा तजे हरि भजै। नख-शिख तजै विकार ॥
सब जीवनसे निर्बैर रहे। साधु मत्ता है सार ! ॥१३७॥

टीका गुरुमुखः—एक तो हङ्कार छोड़ दे, औ दूसरे हरि भजै, तीसरे नख-से-शिखा पर्यन्त ये देह विकाररूपी जानके इसके सम्पूर्ण विषय विष-प्रमाण प्रायः छोड़े, औ चौथे सब जीवनसे निर्बैर रहे, काहूसे बैर-भाव न रक्खे। पाँचवें साधुमता धारण करे, तब सार पारखको प्राप्त होवेगा। अब हरि कहिये, माया

कहिये, स्त्री कहिये, कल्पना कहिये, बानी कहिये, वेद कहिये। सो एक अहङ्कार छोड़ै सकल सम्पत्ति सहित हरि भाग जाती है। हङ्कार छूटा फिर कहाँ माया ? औ कहाँ स्त्री ? औ कहाँ काया ? कहाँ कल्पना ? कहाँ बानी ? कहाँ वेद ? येती छै विधि मायाका अधिष्ठान कारण हङ्कार। तो एक अहङ्कारका त्याग कियेते सबका त्याग होता है। औ सबका त्याग हुआ, तब विषय-विकार आपही त्याग होता है। औ जब विषय-विकार त्याग हुआ, तब साधुमता सहज ही प्राप्त होती है। औ साधुमता प्राप्त भई, तब पारखपद प्राप्त होना कछु मुश्किल नहीं। पर जो भूले बैठे हैं, ताको कोई क्या करे ? तो ये पारख-प्राप्तिकी साधना कहता हूँ कि—प्रथम अहङ्कारका विचार करना, जो अहङ्कार कहाँलग है ? फिर विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्मा, निरञ्जन—ये पाँचों अभिमान छोड़े। इनको कधी तीनकालमें उठने देवे नहीं। अगर उठै तो बारम्बार विचार-शस्त्रसे खण्डन करे। जब ये पाँचों अभिमानका निरसन भया, तब बाकी हंसके पास जमा रहा—विचार। सोई तत्त्व ग्रहण करना। फिर माया स्त्री, काया, कल्पना, वेद, बानीका कछु प्रयोजन आसक्तता रही नहीं। क्योंकि मिथ्या नाशमान् विजाति बन्धन जानके आसक्तता छूटी, तब धीरज सहज ही बाकी रहा। सोई तत्त्व ग्रहण करना। आसक्तता जब छूटी, तब नख-से-शिखा पर्यन्त स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य आदि सम्पूर्ण विकार त्याग हुआ मिथ्या भ्रम जानके। जब मिथ्या भ्रमका त्याग हुआ, तब बाकी जमा साँच रहा। सोई तत्त्व ग्रहण करना। जब मिथ्या विकारका त्याग हुआ, तब साँच तत्त्व ग्रहण हुआ। तब बैरभाव सब जीवसे छूटा औ निर्बैर रहने लगा। औ निर्बैर होके बैर त्यागा, तब बाकी जमा रही दया। सो तत्त्व ग्रहण करना। जब दया तत्त्व ग्रहण हुआ, तब कठोरता, असहनता छूटी औ बाकी रहा शील। सोई साधुमत। ताही तत्त्वको ग्रहण करना। जब पाँचों तत्त्व विशेष करके जीवके सङ्गी हुए, तब पारखपदका अधिकारी हुआ। तब सम्पूर्ण कच्चे-पक्के परखके अलगाय देना ! जासे कच्चे-पक्के दोनों परखनेमें आवे, सोई पारखपर स्थिर होना ! पारख सोई सार पद। ये अर्थ ॥ १३७ ॥

साखीः–पछापछी के कारने। सब जग रहा भुलान ॥
निर्पछ होयके हरि भजै। सोई सन्त सुजान ! ॥१३८॥

टीका गुरुमुखः—पक्ष कहिये कर्म-उपासनादि बानीका वा वेदका वा

स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति, जाति-पाँति, लोकमर्यादाका; औ अपक्ष ज्ञानका, योगका, ब्रह्म-अनुभवका—ये दोनों कारण जीवके पीछे बड़े पक्के होके पड़े हैं, ताते पारखका रास्ता सब जीव भूल गये। निर्पक्ष कहिये जहाँ पक्ष-अपक्ष दोनों कारण नहीं। सो पक्ष-अपक्ष दोनों छोड़के निर्पक्ष होय औ हरि कहिये अनुमान, भास, अध्यास—तासे भागे, पारख-भूमिकापर आवें। सकल पक्षापक्ष छोड़के स्थिर होय, शान्त होय सोई सन्त सुजान!। ये अर्थ। भला! वेद-शास्त्रादि बड़े--बड़ेका पक्ष, औ ब्रह्म--आत्मा ये बड़े--बड़ेका अनुभव अपक्ष; सो दोनोंको कैसे छोड़ना?। ये शङ्का। इसको गुरु निराकरण करते हैं—॥ १३८ ॥

साखी:-बड़े गये बड़ापने। रोम-रोम हङ्कार॥
सतगुरुके परचै बिना। चारों बरन चमार!॥१३९॥

टीका गुरुमुख:—बड़े कहिये ब्रह्मा, विष्णु, महेश, सनकादि, शौनकादि, अवतारादि, वेदान्ती, सिद्धान्ती, महासिद्ध; ते सब बड़ेपनेमें भूले। पञ्चमुखी हङ्कारने उनको खाय लिया। सो उनके रोम-रोममें हङ्कार-विष भरा था, ताते नाना कर्म, नाना उपासना, नाना सिद्धान्त, नाना ग्रन्थ, नाना पन्थ उन्होंने चलाये। चार आश्रम, चार वर्ण उन्होंने थापे औ वेद-मर्यादा थापी, औ जगत्में सतगुरु बने, अपने--अपने हङ्कारमें मस्त हुए। अभिमान छोड़के सारशब्दका विचार कछु किये नहीं और पारखपदको प्राप्त कछु भये नहीं, ताते हङ्कारके वश होके चौरासीमें रहे। औ संसारको ठगाई किये नाना पक्ष लगायके। आखिर 'जगत् ही सब मेरा स्वरूप' ये सिद्धान्त किये। ताते इन गुरुवनके मिथ्या सिद्धान्त जबलग परखनेमें न आवेंगे, तबलग चारों वर्ण चमार, सदा चमड़ेमें रहेंगे। कछु चमड़ेसे छूटनेके नहीं। जो चमड़ेमें आसक्त रहै, सोई चमार। ये अर्थ॥ १३९॥

साखी:-माया तजे क्या भया? जो मान तजा नहिं जाय॥
जेहि माने मुनिवर ठगे। सो मान सबनको खाय॥१४०॥

टीका गुरुमुख:—सम्पूर्ण माया छोड़ दिये औ जङ्गलमें जाय बैठे औ परमहंस हो गये। बाल, पिशाच, मूक, उन्मत्त, जड़वत् हो गये तो भी क्या हुआ? क्या पारखके अधिकारी हो गये? अरे! मान तो छूटता नहीं। काहूने

ब्रह्म माना, काहूने आत्मा माना, काहूने ईश्वर माना, काहूने नाना देवता औ स्वर्ग आदिक सुख माना। सो मान काहूसे तजा जाता नहीं। जेहि मानमें देव, ऋषि, मुनि सब ठगाय गये, सो ब्रह्ममान सबको खाता है। मान छोड़े बिना पारखपदकी प्राप्ति होती नहीं औ पारखपद पाये बिना जीवका आवागमन कुछ छूटता नहीं। ये अर्थ ॥ १४० ॥

साखी:—मायाके झक जग जरे। कनक-कामिनी लाग ॥
कहहिं कबीर कस बाँचिहो ? रुई लपेटी आग ! ॥१४१॥

टीका गुरुमुखः—मायाकी झाँकमें जग जरता है। तामें और कनक-कामिनीका लोभ लगा है। अङ्गमें रुई लपेटके आगमें घुसे तो कैसे बचाव होयगा ? जल मरेगा। अभिमान-विषय सोई माया, कनक-कामिनी रुई। ये अर्थ ॥ १४१ ॥

साखी:—माया जग साँपिनि भई। विष ले पैठि पताल ॥
सब जग फन्दे फन्दिया। चले कबीरू काछ ॥१४२॥

टीका गुरुमुखः—माया कहिये, काया कहिये, कल्पना कहिये, वेद कहिये, बानी कहिये, स्त्री कहिये, द्रव्य कहिये। सो येते रूप धरके माया जगत्में साँपिनी भई औ विषय-विष लेके पतारमें पैठी, अन्तःकरणमें पैठी। सो उसके फन्देमें सब जग फँद गया। औ कबीरू कहिये जीवको—सो काछके चले, भागके चले ब्रह्ममें मिलनेके वास्ते। परन्तु जो कोई ब्रह्म माना है सोई माया है। इनके परखनेमें आई नहीं। सो ब्रह्म बनके मायाने जीवको खाय लिया। ये अर्थ ॥१४२॥

साखी:—साँप बिच्छूका मन्त्र है। माहुरहू झारा जाय ॥
बिकट नारिके पाले परे। काढ़ि कलेजा खाय ॥१४३॥

टीका गुरुमुखः—जगत्में साँप-बिच्छूका जहर औ माहुर = जहर, इनका उतार है। ये उतर जाते हैं। परन्तु नारीका औ बानीका विष बड़ा बिकट है। याका उतार एक पारख बिना दूसरा नहीं। जो कोई याके पाले पड़े, ताके कलेजा काढ़के खाय गई। स्त्रीका जहर जाको चढ़ा, ताका जीव सकल सम्पत्ति सहित खाय लिया। परन्तु स्त्रीका जहर किसीसे उतरा नहीं। बिना पारख स्त्रीका विष उतरना कठिन है। ये अर्थ ॥ १४३ ॥

साखीः--तामस केरे तीन गुण । भँवर लेइ तहाँ बास ॥
एकै डारी तीन फल । भाँटा ऊख कपास ॥१४४॥

टीका गुरुमुखः—तामस कहिये ब्रह्म । ताके तीन गुण—ज्ञान, भक्ति औ योग । तामें ज्ञानी, भक्त, योगी—ये सम्पूर्ण भौंरे बास लेते हैं । एकै डारी = माया । तामें तीन फल लगे—भाँटा = तमोगुण, ऊख = सत्त्वगुण, कपास = रजोगुण । रजोगुण काम, सत्त्वगुण धर्म, तमोगुण अर्थ । ज्ञानी आत्म-धर्मको प्राप्त भये । भक्त स्वर्गादिक कामको प्राप्त भये । योगिनको अष्ट सिद्धि आदि अर्थकी प्राप्ति भई । औ तामस कहिये ब्रह्म । ताके तीन गुण = तत्त्वमसि, एक डारी = तुर्या, तीन फल = ज्ञान, अज्ञान, विज्ञान । तत्पद सो भी ब्रह्म, त्वंपद सो भी ब्रह्म, असिपद सो भी ब्रह्म। एक मायाके तीन भेद । ताहीके तीन गुण। तीन गुणके तीन फल—वेद, गीता, शास्त्र कहता है—श्लोक-"ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः । जघन्यगुणवृत्तिस्था, अधो गच्छन्ति तामसाः॥" गीता, अ० १४।१८॥ याका अभिप्राय ऐसा है कि जो सात्त्विक उपासक जीव हैं, सो अहिंसा-धर्म आचरण करते हैं औ जीव-दया रखते हैं, गुरु-उपासना या विष्णु-उपासना शुद्ध आचरते हैं, जल छानके पीते हैं औ अनिच्छा जो लाभ होय, तामें खुश रहते हैं । काहूसे द्वेष-भाव रखते नहीं औ सत्तभाव, साधुभावसे अत्यन्त जिनकी प्रीति, सो 'ऊर्ध्वं गच्छन्ति' कहिये ऊर्ध्वलोक नरजन्ममें सर्वोपरि ज्ञानपदको प्राप्त होते हैं। औ राजसी उपासक जो जीव हैं, सो ब्राह्मण सन्ध्या-तर्पण करते हैं, यज्ञ करते हैं, नाना देवनका सेवन करते हैं, बड़ी-बड़ी तपस्या करते हैं, तीर्थाटन, व्रत आदि करते हैं औ मान-प्रतिष्ठाका डिम्भ रखते हैं । बहुत द्रव्य पैदा करके मान-प्रतिष्ठाकी जगहमें खर्च करते हैं औ विधियुक्त कर्म-आचरण करते हैं वर्णाश्रम-प्रमाण । ऐसे राज-उपचार पूजन आपने भी दूसरेका करना औ दूसरेसे आपने भी लेना, ऐसी भावना उनकी सदा रहती है। सो 'मध्ये तिष्ठन्ति' कहिये बीचमें रहते हैं, मानुष-योनिको प्राप्त होते हैं। औ कोई राजा होते हैं, कोई धनवान्, सम्पत्तिवान् होते हैं । औ कोई तामसी उपासक तमोगुण उपासना करते हैं । कोई कालीकी, कोई चण्डीकी, कोई रुद्रकी, कोई महादेवकी, कोई बटुक भैरव, शाक्त; ये उपासना करते हैं औ वाममार्ग, कँवलमार्ग आचरते हैं, जीव-हिंसा करते हैं, मदिरा पान, मांस भोजन करते हैं, भैरवीचक्र करते हैं,

औ स्त्रियनसे रति करते हैं, नाना विषयमें आसक्त रहते हैं औ शाक्तनको खिलाते हैं, शाक्त ब्राह्मणका पूजन करते हैं, रुद्राक्ष, भस्म बहुत धारण करते हैं। ऐसे जो जीव हैं, सो 'अधो पतन्ति' कहिये तरे नाना नरक-खानिमें पचते हैं, ऊँटकी योनि अथवा श्वानकी योनि, सूकरकी योनि, गदहेकी योनि, बकरेकी योनिको प्राप्त होते हैं। ऐसा भगवद्गीताका वाक्य है। सोई तीन फल, यामें सम्पूर्ण जीव बन्धमान भये। एकै डारी = एक बानी। तामें तीन प्रकारके फल बताये। सो सम्पूर्ण जगत् बन्ध भया। तामस कहिये मन। सो मनकी कल्पना ये तीनों गुण, औ मनके अध्यास तीनों फल। सो एक डार जो बानी है, ताने जीवनको दृढ़ाया है औ जीव उसीमें आसक्त हैं, ताते त्रिविध चौरासी भोगते हैं। येता परखके न्यारा होय, तब आवागमनसे रहित होय। ये अर्थ ॥ १४४ ॥

साखी-मन मतङ्ग गइयर हने। मनसा भई सचान ॥
जन्त्र-मन्त्र माने नहीं। लागी उड़ि-उड़ि खान ॥१४५॥

टीका गुरुमुखः—मन-मानन्दी सोई मतङ्ग = उन्मत्तता, जामें कुछ आप-पर सूझ परता नहीं। औ मानन्दीकी आश सोई मनसा, सचान = बाज पक्षी माफिक उड़ि-उड़ि फिरती है। ताके मारनेको वेदादिक मन्त्र औ यामलादिक यन्त्र नाना प्रकारके पैदा भये; परन्तु वो काहूकी मानती नहीं, औ यन्त्र-मन्त्रनके प्रतापसे ज्यादा पुष्ट होती है, उड़ि-उड़िके जीवनको खाने लगी। ये अर्थ ॥१४५॥

साखीः-मन गयन्द माने नहीं। चलै सुरतिके साथ ॥
महावत बिचारा क्या करै? जो अंकुश नाहीं हाथ ॥१४६॥

टीका गुरुमुखः—मन है सोई उन्मत्त हाथी। तापर जीव-महावत् बैठा है; परन्तु जीव-महावतको मानता नहीं। मस्त हाथी मन है सो विषय-आरण्यमें और बानीके आरण्यमें जीवको लेके चला जाता है। औ भगखोरेका रहनेवाला हाथी, सो जीवको लेके भग-कन्दलामें निवास करता है। जीव-महावत बिचारा क्या करे? उसके हाथमें बीररूपी धैर्य औ विवेकरूपी अङ्कुश है नहीं। उन्मत्त हाथीका चढ़ना औ हाथमें अङ्कुश नहीं, तब महावतकी मृत्यु सहज ही आई। जो कोई पारखी सन्त मिलें औ गजमर्दन = विचार दिखावं, औ ऐसा विचार-गजमर्दन महावतके हाथमें आवे तो हाथी वश होय। सारशब्द सोई गजमर्दन। ये अर्थ ॥ १४६ ॥

साखी:--ई माया है चूहड़ी । औ चूहड़ोंकी जोय ! ॥
बाप--पूत अरुझायके । सङ्ग न काहुके होय ॥१४७॥

टीका गुरुमुखः—ई माया कहिये काया, सो चूहड़ी = हलालखोरिन ! जो सदा नर्कमें भरी रहती है। औ जो कायाका खाविन्द है जीव, सो कायामें आसक्त रहता है। सो भी चूहड़े = हलालखोर। याने अपने विषयनमें बाप—पूत आदि सकल जीवनको अरुझाया औ काहूके सङ्ग भई नहीं। आखिरको छूट गई। ये अर्थ ॥ १४७ ॥

साखी:—कनक कामिनी देखिके । तू मत भूल सुरङ्ग ! ॥
मिलन--बिछुरन दुहेलरा । जस केंचुलि तजत भुवङ्ग ॥१४८॥

टीका गुरुमुखः—मायाके मुख्य रूप दो—एक कनक, दूजी कामिनी। सो याको देखके हे जीव ! तू अपनेको भूले मत्। तू सुरङ्ग = ज्ञानरङ्ग है औ ये काया कुरङ्ग = नर्ककी खानि है। यामें तू आसक्त न हो। ये कनक—कामिनी कायाके विषय हैं। सो याही विषयमें बन्ध होके जीव फिर—फिर गर्भ-सङ्कट भोगता है औ देह धारण करता है। आखिर कनक—कामिनी दोनों छूट जाती हैं। सपनेकी नाईं कनक-कामिनीका मिलना--बिछुड़ना है। जैसे सर्प केंचुली छोड़ता है, फिर दूसरी केंचुली उस केंचुलीके अध्याससे आती है। तैसा ये चोला जीव छोड़ता है और चोलेके अध्याससे दूसरा चोला जीवको प्राप्त होता है, तो वो भी स्वप्नवत् गतागत होता है। इनको देखिके ज्ञानरङ्ग ! तू भूल मत् ! सत्सङ्गमें अपने स्वरूपको परख ले। ये अर्थ ॥ १४८ ॥

साखी:—माया केरी बसि परे । ब्रह्मा विष्णु महेश ॥
नारद शारद सनक सनन्दन । गौरीपूत गणेश ॥१४९॥

टीका गुरुमुखः—माया दो प्रकारकी। एक स्थूल माया कनक, कामिनी, देह आदि। दूसरी सूक्ष्म--वेदबानी, कल्पना, अनुमान, भास, अध्यासादि। ऐसी मायाके वश सब जीव परे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश—ये तो स्थूल—सूक्ष्म दोनों मायाके वश हैं औ नारद, शारद, सनक, सनन्दन, स्वामीकार्तिक, गणेशादि सूक्ष्म मायाके वश पड़े। ये अर्थ ॥ १४९ ॥

साखीः–पीपरि एक जो महा गम्भानि । ताकर मर्म कोइ नहिं जानि ॥
डार लम्बाय फल कोइ न पाय । खसम अछत बहु पीपरे जाय ॥१५०॥

टीका गुरुमुखः—पीपरी कहिये जो कोई एक पीव है, ताकी परी कहिये बानी वा कल्पना । सो प्रथमारम्भमें जीवमें एक कल्पना उठी कि हमारा कर्त्ता कोई दूसरा है । सोई कल्पना महा गम्भानी = गम्भीर, बड़ी दृढ़ भई । सो ता कल्पनाका मर्म कोई नहीं जाना कि मिथ्या है । ताते ब्रह्मा, विष्णु, महेशादि जेते ऋषि-मुनि सब भये, तिन सब अपनी-अपनी कल्पनाकी डार लम्बाई । वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहासादि नाना बानी, नाना ग्रन्थ बनाये; परन्तु फल = मुक्ति-स्थिति काहूने पाई नहीं । 'एक खसम ब्रह्म है' ऐसा अध्यास थाप दिया, सो सब जीवनने मानके बहु पीपरे जाय = बहु बानी, बहु कल्पनामें जीव चले । ये अर्थ ॥१५०॥

साखीः–साहूसे भौ चोरवा । चोरहुसे भौ हीत ॥
तब जानोगे जीयरा ! जबरे परेगी तूझ ॥१५१॥

टीका गुरुमुखः—साहू कहिये जीवको । सो जीवसे चोर पैदा भया । चोर कहिये जाने जीवकी सत्य–विचारादि सम्पत्ति सब हर ली, सोई ब्रह्म, आनन्द, निर्विकल्प । औ सोई चोरसे जीवने हेत लगाया कि मेरा हित–कल्याण याहीसे होयगा । परन्तु चोरसे भी कहीं हित-कल्याण भया है ? अरे ! जबसे तू ब्रह्ममें मिला, तबहींसे तू खराब हुआ । ये तेरेको मालूम नहीं हुआ । परन्तु हे जीव ! जब तेरेको परख पड़ेगी, तब ये कसर तुम जानोगे । बिना पारख चोर ही साहू हो रहा है । जो तेरा घाती, सोई तेरा मित्र हो रहा है । सो वो चोर पारख बिना कछु छूटनेका नहीं । साहू जो जीव, सोई चोर हुआ, ब्रह्माण्डमें जायके छिपने लगा औ चोर = योगी लोग, तासे प्रीति किया । पर हे जीव ! जब मनुष्यतन छोड़के तू जायगा, तब योगसमाधि औ योगी लोग सबहीं छूट जायेंगे । औ तेरेपर गर्भ-यातनाका दुःख आन परेगा, तब जानेगा तू । अभी जबलग मनुष्यतन है, तबलग तो सारशब्दका प्रमाण तेरेसे जाना नहीं जाता । पीछे पछतायगा । ये अर्थ ॥ १५१ ॥

साखीः–ताकी पूरी क्यों परे ? जाके गुरु न लखाई बाट ! ॥
ताके बेड़ा बूड़ि है । फिरि-फिरि औघट घाट ॥१५२॥

टीका गुरुमुख:—अरे ! जाको गुरुने पारखपदकी बाट लखाई नहीं, ताकी पूरी कैसे परेगी ? औ स्थिति कैसे होयगी ? औ कल्पना कैसे छूटेगी ? तो ताका बेड़ा गर्भवासमें फिर-फिर बूड़ेगा । ये अर्थ ॥ १५२ ॥

साखी:-जाना नहिं बूझा नहीं । समुझि किया नहिं गौन ॥
अन्धेको अन्धा मिला । राह बतावै कौन ? ॥१५३॥

टीका गुरुमुख:—अपने स्वरूपको गुरुवा लोगोंने जाना नहीं । अपने स्वरूपको देखनेके विषय गुरुवा लोग ब्रह्मादिक अन्ध हैं; क्योंकि यथार्थ पारख-स्वरूप उनको भी मिला नहीं । देखो ! उनकी बानी, उनके सिद्धान्त, उनके ग्रन्थ वेद-शास्त्रादिक सब विदित हैं । तो प्रथम भास पर्यन्त सब कहते हैं । आगे गति काहूकी चली नहीं । तब कारण-कार्य एक भाव करके अन्वय सबनने सिद्ध किया, सोई स्वरूप माना । औ चेले लोग जो आगे भये, सो काहूने भी उनके सिद्धान्तकी कसर जानी नहीं । औ वेदबानीका धोखा काहूके बूझनेमें आया नहीं । औ ऐली तरफ जो उनके चेले लोग भये, सो कोई समुझते नहीं औ समझके चलते नहीं । सब अन्धाधुन्धमें चले जाते हैं । ताते इस जगत्के जीव सब अन्धे जायके गुरुवा लोगोंसे मिले, सो वो भी मूलके अन्धे । औ जो वेदके भरोसे बैठे हैं, सो वेद जन्मअन्धे । तासे जगत् अन्धा मिला । अब 'राह बतावै कौन ?' । ये अर्थ ॥ १५३ ॥

साखी:-जाका गुरु है आँधरा ! चेला काह कराय ? ॥
अन्धे अन्धा पेलिया । दोऊ कूप पराय ॥१५४॥

टीका गुरुमुख:—जाका गुरु अन्धा है, ताका चेला पक्का अन्धा । अन्धा कहिये पारखहीन । सो वेद आदि पक्षके जेते गुरुवा भये, सो सबही पारखहीन । औ संसारी जीव, ये तो आदिके पारखहीन । ताते पारखहीनसे पारखहीन अन्धे मिले औ दोनों भ्रम-कूपमें परे । अथवा अन्धा कहिये गिरही । सो जाका गुरु गिरही है, ताका चेला आदि गिरही हैं । तो गिरहीसे गिरही मिले । फिर विषया-सक्त होके भग-कूपमें परे । गिरही कहिये स्त्री, धन, जाति, पाँति, कुल, कुटुम्ब, घर गाँव, जागा, वतन, वेदबानी, कर्म, उपासना, वर्णाश्रम आदि कल्पना जाको ग्रहण होय, सोई गिरही । सोई अन्धा है जो धनमदमें अन्धा भया औ राजमद,

विद्यामद, ज्ञानमद, यौवनमद, देहमद, तपमद, सिद्धिनके मदमें अन्धा भया । ये अष्ट मदमें गुरुवा लोग अन्ध । तिनको गिरही जन्मअन्धे मिले । तो अन्धेको अन्धेने ठेल दिया, उपदेश दिया, ताते दोनों कल्पना-कूप औ चौरासी-कूपमें परे । अथवा विषयअन्ध वाममार्गी, तिनके उपदेशमें जगत्अन्धे जीव गये । सो उनको उपदेश देके माया-अन्धकूपमें दोनों परे । अथवा अन्ध कहिये जाको अपना स्वरूप दिखाता नहीं, सोई गुरुवा लोग । औ चेले जगत्-जीवने क्या करना ? ये तो कधी स्वरूपकी वार्त्ता ही जानते नहीं । स्वरूपको जाननेके वास्ते गुरुवा लोगोंकी शरणमें गये, सो वो गर्भ-अन्धे भ्रमका उपदेश देके दोनों प्रपञ्च-कूपमें परे । ये अर्थ ॥ १८४ ॥

साखीः—लोगोंकेरि अथाइया । मति कोइ पैठो धाय ! ॥
एकै खेत चरत हैं । बाघ गधेहरा गाय ॥१५५॥

टीका गुरुमुखः—ये गुरुवा लोग अन्ध ! इनकी अथाईमें मत् कोई बैठो । अथाई कहिये, सङ्गत कहिये, देवढ़ी कहिये । सो इनके सङ्गतमें हे जीव ! कोई दौर-दौके मत् बैठो ! प्रवेश मत करो ! क्योंकि इनका खेत एक अद्वैत आत्मा । तामें तीनों विचरते हैं--बाघ तमोगुण, गधेहरा रजोगुण, गाय सत्त्वगुण । ये तीनंगुण एक आत्मामें विचरते हैं । कहते हैं कि त्यागी होय अथवा भोगी होय, विषयी होय, कामी होय अथवा मोही होय--'मैं आत्मा' येता जाना कि मुक्त हैं । क्योंकि आत्मामें सभी सम्भवता है । याको प्रमाण—जनक भोगी, शुक त्यागी, रामचन्द्र रागी, कृष्ण कामी, वसिष्ठ कर्मी; ये पाँचों ज्ञानीकी गति समान गुरुवा लोग बोलते हैं । तब न्याय न भया । अन्याय भया । जो भोगी, रागी-त्यागी, अन्ध-दिठियार, साहू—चोर एकआत्मामें विचरते हैं औ सभी ज्ञानी कहलाते हैं, ताते ये अन्यायी । इनके सङ्गतमें मत् बैठो; नहीं तो तुम भी अन्याय करने लगोगे । कर्मी, अकर्मी, ज्ञानी; ये तीनों एकआत्मामें विचरते हैं औ आत्मा रूप बन रहे हैं । ये अन्याय । कछु न्याय नहीं । बाघ, गदहा, गाय = ज्ञान, योग, भक्ति; ये तीनों एक खेतमें चरे, ये कछु न्याय नहीं । गदहा—गाय = अकर्म—कर्म; अथवा कर्म = गदहा, उपासना = गाय; ज्ञान = बाघ दोनोंका उपसंहार करनेवाला । सो तीनों एक वेदमें बताते हैं । अरे ! ज्ञान—अज्ञान, जड़-चैतन्य जहाँ एक होता है, सो अन्याय । कछु न्याय नहीं । जो सम्पूर्ण एक ही है तो विचार औ गुरुवाई काहेको चाहिये ? सब धोखा । ये अर्थ ॥ १८८ ॥

साखीः—चारि मास घन बर्षिया। अति अपूर जल नीर॥
पहिरे जड़ तन बखतरी। चुभे न एकौ तीर॥१५६॥

टीका गुरुमुखः—चारि मास कहिये चार वेद; सो घन बरसे = बहुत बानी बरसे, नाना सिद्धान्तनकी बानी बहुत बोले और अति अपूर्व कल्पना बढ़ी। वही कल्पनाकी बख्तरी कहिये कैवल्य देह, सो जीवनने जड़-तनमें पहिर लिया औ बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़वत् हो गये। ताते इनके अन्तःकरणमें अब एकौ निर्णय शब्द गड़ता नहीं। ये अर्थ॥ १५६॥

साखीः—गुरुकी भेली जिव डरै। काया सींचनहार!॥
कुमति कमाई मन बसे। लाग जुवाकी लार॥१५७॥

टीका गुरुमुखः—ये गुरुवा लोगोंके सङ्गतमें जीवको डर प्राप्त भया। नाना प्रकारके डर इन्होंने लगाये। नरकका डर, यमका डर, श्रापका डर, देवतनका डर बताया; ताते जीवनको डर प्राप्त भया। कायाका अभिमान जीवनने माना कि कायाका नाश न होय। कायाको कोई बातका कष्ट होने न पावे। ऐसी इच्छा धारण करके काया सींचनहार = देह-अभिमानी जीव विषयासक्त भयको प्राप्त होके गुरुवा लोगोंसे ऐसा उपदेश माँगते हैं कि जामें लक्ष्मी मिले, राज मिले, अच्छी स्त्री मिले, बहु पुत्र-लाभ होय, बहुत दिन जीवें। तब नाना मन्त्र, यन्त्र, तन्त्र, उपासना, साधन, क्रिया, तपस्या उपदेश करके सब जीवनको गुरुवा लोगोंने बानीके बन्धनमें बाँधके अपने गुलाम बनाये और ऐसा दृढ़ाया कि वेद-बानीके प्रमाणसे सब चलना! औ जो वेद बाहर होवेगा, सो हमारा दुष्ट बहुत पछतायगा। औ नाना दुःख उसे होवेंगे और यम उसे बहुत जाँचेंगे, नोचेंगे, नरकमें डारेंगे। ऐसे नाना भय बताये; तब जीवको भय प्राप्त हुआ औ कुमति-कमाईमें मन बसा औ गुरुवा लोगोंके सङ्ग लगा। कुमति कहिये अज्ञान-मत, नाना कर्म, नाना उपासना, मन्त्र-यन्त्रादिक साधनाकी कमाई करने लगा, ताहीते बारम्बार आवागमनमें परा। ये अर्थ॥ १५७॥

साखीः—तन संशय मन सोनहा। काल अहेरी नीत॥
एकै डाँग बसेरवा। कुशल पुछो का मीत?॥१५८॥

टीका गुरुमुखः—हे मीत! हे जीव! चोरनके सङ्गतमें बसिके फिर

कुशल काहेका पूछता है। अरे चोरनका विवरण सुनो–१. एक तन, दूसरा संशय, तीसरा मन, चौथा शब्द ॐकार, पाँचवाँ काल अहेरी गुरुवा लोग। येते चोरनके सङ्गतमें तू नित रहता है। अब 'कुशल पुछोका मीत।' २. तन कहिये स्थूल, संशय कहिये सूक्ष्म, मन कहिये कारण, सोनहा कहिये महाकारण, काल अहेरी कैवल्य, एक डाँग जगत्। याहीमें पाँचोंका बसेरा। सो इनहिनमें तू रहता है। 'अब कुशल पुछोका मीत'। ३. तन कहिये देह, संशय कहिये स्त्री, मन कहिये सम्पत्ति, सोनहा कहिये वेद, काल अहेरी कहिये जन-कुटुम्ब, एक डाँग प्रपञ्च। ताहीमें उनका बसेरा। तिनके सङ्गमें तू मिला है। अब कुशल कहाँसे होय ? हे मीत ! या ४. तन कहिये रजोगुण, संशय कहिये सतोगुण, मन तमोगुण, सोनहा माया, काल ब्रह्म, एक डाँग कहिये वन, वन कहिये बानी। तामें इनका बसेरा है। तामें तू मिल रहा है। अब 'कुशल पुछोका मीत'। ५. तन कहिये प्रत्यक्ष, संशय कहिये कल्पना–अनुमान, मन कहिये अध्यास, सोनहा कहिये भास, काल अहेरी कर्म, एकै डाँग = एक स्थूल। तामें ये भी रहते हैं और तू भी रहता है। अब कुशल क्या पूछता है ? हे मीत ! ६. तन कहिये जीव, संशय कहिये ईश्वर, मन कहिये ब्रह्म, सोनहा कहिये गुरुवालोग, काल अहेरी स्त्री, एक डाँग बानी। तामें बसेरवा, कुशल पुछो का मीत ? ये अभिप्राय ॥ १५८ ॥

साखीः–साहु चोर चीन्है नहीं। अन्धा मतिका हीन ॥
पारख बिना विनाश है। कर विचार होहु भिन ॥१५९॥

टीका गुरुमुखः—अरे ये संसारी जीव अन्धे, इनकी मति हीन हो गई। ताते साहू-चोर चीन्हता नहीं। चोरनकी सङ्गतिमें रहिके जीव लूटा जाता है। चोर कहिये वेद, शास्त्र, पुराण, नाना देवता, ब्रह्म, गुरुवा। सो पारख बिना इन चोरनके सङ्गमें रहिके जीवका विनाश है। ताते विचार करके सबते न्यारा हो, सब परखके पारखरूप हो रहो। ये अर्थ ॥ १५९ ॥

साखीः--गुरु सिकलीगर कीजिये ! मनहिं मस्कला देय ॥
शब्द छोलना छोलिके। चित दर्पण करि लेय ॥१६०॥

टीका गुरुमुखः—गुरु पारखी करना, जो मनको मस्कला विवेकका देय और सारशब्दके छोलनेसे छोलके चैतन्यका कसर-विकार, मैल सब निकार डारे

और चैतन्यको शुद्ध दर्पण करके, पारख-प्रकाश करके पारखमें लेय, अपना स्वरूप कर लेय। ऐसा गुरु कीजिये। ये अर्थ ॥ १६० ॥

साखीः–मूरखके सिखलावते। ज्ञान गाँठिका जाय ॥
कोइला होय न ऊजरा। जो सौ मन साबुन लाय ॥१६१॥

टीका गुरुमुखः—मूरख कहिये जाका अन्तःकरण मैला होय औ विक्षिप्त मति होय औ विषयनमें लुब्ध होय, कामी, क्रोधी, लोभी, मोही होय, अन्यथा बाद करे—ताको मूरख कहिये। सो तासों क्या बोलिये ? ताको सिखलावते ज्ञान अपने गाँठीका जाता है औ उनके सङ्ग-दोषसे अपनेको भी अज्ञान उठता है। क्रोध तामस उठता है। औ वो तो कोयले माफिक मूर्ख हो रहा है। उसे कितना भी विचार बताओ, लगाओ, तो भी वो कुछ शुद्ध होता नहीं। ये अर्थ ॥ १६१ ॥

साखीः–मूढ़ कमिया मानवा ! नख-शिख पाखर आहि ॥
बाहनहारा क्या करै ? जो बान न लागै ताहि ॥१६२॥

टीका गुरुमुखः—मूढ़ कर्मी मानुषके नख-से-सिर पर्यन्त अज्ञानका पाखर = कठोरता पड़ी रहती है। ताको विचार कहनेवालेने क्या करना ? उसे एक भी बातकी समझ पड़ती नहीं। ये अर्थ ॥ १६२ ॥

साखीः–सेमर केरा सूवना। छिवले बैठा जाय ॥
चोंच सँवारे शिर धुनै। ई उसही को भाय ! ॥१६३॥

टीका गुरुमुखः—सेमर कहिये चारों वर्ण औ छिवला कहिये चार आश्रम। सो वर्ण छोड़के जीव आश्रमनमें आया औ मुँह पसार--पसारके गृही-धर्म, ब्रह्मचारी-धर्म, वानप्रस्थ-धर्म औ संन्यास-धर्म पढ़ने लगा औ उसीमें शिर कूटने लगा, आचरण करने लगा। परन्तु ये भी प्रपञ्चका भाई। जैसे चारों वर्ण जीवको बन्धन हैं, तैसे चारों आश्रम भी जीवको बन्धन हैं। अथवा प्रपञ्च सोई सेमर, और भेष षट्दर्शन, चार सम्प्रदायादि—सोई छिवले। सो प्रपञ्च छोड़के जीव भेषमें आया, तो यहाँ दूना प्रपञ्च लगा। नाना देव-पूजन, नाना विधान, नाना तीर्थ, औ अपने--अपने सम्प्रदायके कर्म, क्रिया महा बन्धन होके पीछे लगीं। तामें

शिर धुन-धुनके मरता है । मुक्ति-पदकी प्राप्तिके वास्ते संसार त्याग करके भेषमें आया, सो यहाँ दूना बन्धन प्राप्त भया । ये अर्थ ॥ १६३ ॥

साखीः-सेमर सुवना बेगि तजु । तेरी घनी बिगुर्ची पाँख ॥
ऐसा सेमर जो सेवै । जाके हृदया नाहीं आँख ॥१६४॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! जैसा गृही प्रपञ्च, तैसा ही भेष है । दोनों सेमररूपी मिथ्या भ्रम हैं । यामें कछु पारख-पदकी प्राप्ति नहीं औ मुक्ति-फल भी नहीं । ताते ये सेमर मिथ्या भ्रम । जगत्-ब्रह्म दोनों छोड़ दे बेगि । यामें तेरी पाँख घनी बिगुर्ची = तेरी बुद्धि बहुत खराब हुई, जड़ हुई । ताते बारम्बार जन्म धारण करके तूने जो आशा की, सो अनेक बार तेरी आशा नाश हुई । तेरेको मुक्ति प्राप्त भई नहीं । तो ऐसा मिथ्या धोखा वेदबानी औ प्रपञ्च, ताका सेवन कौन करे ? जाके हृदयमें विवेक-विचाररूपी आँखी न हों, सो सेवै । ये अर्थ ॥१६४॥

साखीः-सेमर सुवना सेइया ! दुइ ढेंढ़ीकी आस ॥
ढेंढ़ी फूटि चनाक दै । सुवना चलै निरास ॥१६५॥

टीका गुरुमुखः—सेमर कहिये जाका फूल अच्छा लाल, औ फल भी अच्छा बड़ा देखनेमें आता है । ताहीके लोभसे तोता सेवन करता है कि इस फलसे मेरी तृप्ति होगी । फिर जब ये फल पकके फूटे औ उनमेंसे रुई उड़ी, तब सुग्गा निराश भया, उड़ि गया । तैसा वेदबानीका सेवन जीवने किया धर्म-मोक्ष दो ढेंढ़ीकी आशासे । उसकी फलश्रुति औ महिमा बहुत देखके । परन्तु तत्त्वमसि-का सिद्धान्त निर्णय जब किया, तब ढेंढ़ी फूटी औ फल-आशा सब मिथ्या ठहरी । तब ये जीव निराश होके पुनः गर्भवासको चला ॥ १६५ ॥

साखीः-लोग भरोसे कौनके ? बैठ रहे अरगाय ॥
ऐसे जियरहिं यम लुटे । जस मटिया लुटे कसाय ॥१६६॥

टीका गुरुमुखः—ये सब लोग कौनके भरोसे अभिमान करके बैठे हैं ? अरे ! ये जीव सिवाय और कोई दूसरा तो है नहीं । औ ये तो ऐसा जानते नहीं । ताते ऐसे गाफिल जीवको कल्पना, बानी, स्त्री दनादन क्षीण करके लूटेगी । जैसे कसाई मटिया कहिये मांसको छिन्न-भिन्न करके लूटते हैं; तद्वत् । ये अर्थ ॥ १६६ ॥

साखीः—समुझि बूझि जड़ हो रहे । बल तजि निर्बल होय ॥
कहैं कबीर ता सन्तका । पला न पकरैं कोय ॥१६७॥

टीका मायामुखः—वेदान्तका विचार समझके सर्वात्मा अद्वैत बूझिके जड़वत् हो रहे औ 'मैं ब्रह्म सर्वशक्तिमान्' ऐसा बल सब छोड़के निर्बल हो रहे, अहङ्कार छोड़के निरहङ्कार हो रहे—ता सन्तका पल्ला पकड़नेवाला कोई नहीं। ऐसा वेदान्ती बोलते हैं। ये अर्थ ॥ १६७ ॥

साखीः—हीरा सोइ सराहिये । सहै घननकी चोट ॥
कपट कुरङ्गी मानवा । परखत निकरा खोट ॥१६८॥

टीका गुरुमुखः—हीरा कहिये सिद्धान्त। सोई सिद्धान्तको सराहिये ! जाके ऊपर अनेक बानी, अनेक तर्क, अनेक सिद्धान्तनकी चोट चले औ वो फूटै नहीं। उसपर कोई चोट लगने न पावे। उसपरसे सभी सिद्धान्तनकी चोट उछल जाय, सो पक्का सिद्धान्त। औ ये गुरुवा लोग कपट-कुरङ्गी मिथ्या भ्रमके रङ्गमें रङ्गे हैं, ताते इनके सिद्धान्त सब परखनेमें खोटे निकरे। पारखमें कोई सिद्धान्त ठहरता नहीं। ताते पारख-सिद्धान्त सचा, और सब झूँठा। ये अर्थ ॥१६८॥

साखीः—हरि हीरा जन जौहरी । सबन पसारी हाट ॥
जब आवै जन जौहरी । तब हीरोंकी साट ॥१६९॥

टीका गुरुमुखः—हरि कहिये ज्ञान, सोई हीरा। जन कहिये ज्ञानी, सोई ज्ञान-जवाहिरको जौहरी ब्यापारी। जन कहिये मुमुक्षुजन, तिनने ज्ञान-सिद्धान्त ग्रहण करनेके वास्ते ज्ञानी लोगनके पास बजार लगाया, ग्राहकी करने लगे, सत्सङ्ग करने लगे। परन्तु जब कोई पारखी आवेंगे, तब इनके सिद्धान्त-हीरनकी कसर निकरेगी। जबलग पारखिनका सङ्ग नहीं भया औ परखके देखा नहीं, तबलग सकल उपदेश औ सकल सिद्धान्त सच्चे हैं। औ पारखके ऊपर परखेपर सभी मिथ्या हो गये। ये अर्थ ॥ १६९ ॥

साखीः—हीरा तहाँ न खोलिये ! जहाँ कुँजरोंकी हाट ॥
सहजैं गाँठी बाँधिके । लगिये अपनी बाट ॥१७०॥

टीका गुरुमुखः—ज्ञान-हीरा वहाँ न खोलना, जहाँ कर्मकाण्डी औ उपा-

सक रहते हैं। उनकी हाटमें ज्ञान-हीरा खोलना नहीं। वे ज्ञानकी कीमत जानते नहीं। ताते अपने अन्तःकरणमें गाँठी बाँधिके अपने ज्ञानमार्गसे चले जाना। कोई पारखी मिलैं, तो उसके आगे खोलना। ये अर्थ ॥ १७० ॥

साखीः--हीरा परा बजारमें। रहा छार लपटाय ॥
केतेहिं मूरख पचि मुये। कोइ पारखि लिया उठाय ॥१७१॥

टीका गुरुमुखः—ज्ञान-सिद्धान्त जगत्-बजारमें परा है। सो उसके ऊपर विषय, कर्म, उपासनारूपी छार = माटी लगी है। तामें वह लपटा मालूम होता है, ताते किसीको प्राप्त होता नहीं। केते ही मूरख पचि-पचिके मर गये। कोई पारखी जनोंने परखके उठाय लिया। ये अभिप्राय। या हीरा = पारखी सन्त! जगत्-बजारमें पड़े हैं औ जगत्के देखनेमें जगत् सरीखे वर्त्तते हैं, उत्तम भोजन, उत्तम जलपान करते हैं, कण्ठी-तिलक आदि भेष भी रखते हैं। ताते संसारको गृहीवत् मालूम होते हैं कि जैसे संसारीवत् हैं। परन्तु मूर्ख उनका भेद नहीं पावते, ताते नाहक धोखेमें पचि-पचिके मरते हैं। कोई पारखीजन उनको परख लेते हैं। ये अर्थ ॥ १७१ ॥

साखीः--हीरोंकी ओबरी नहीं। मलयागिर नहिं पाँति ॥
सिङ्घोंके लेहँड़ा नहीं। साधु न चले जमात ॥१७२॥

टीका गुरुमुखः—हीरोंके कछु महल = ओबरी, ढेरी नहीं, औ मलयागिर चन्दनकी कछु पंक्ति नहीं। मलयागिर भी संसारमें एक ही है औ हीरा भी कहूँ-कहूँ होता है। सिंहका कछु लेहँड़ा = झुण्ड नहीं होता। सिंह भी कहूँ-कहूँ एक-एक होते हैं। तैसे साधुनकी भी जमात नहीं चलती। साधु = पारखी भी कहूँ-कहूँ एक-दो होते हैं। तो जो सर्व पारखी-सोई साधु। और सब भेष जमात। ये अर्थ ॥१७२॥

साखीः--अपने-अपने शिरोंका। सबन लीन्ह है मान ॥
हरिकी बात दुरन्तरी। परी न काहू जान ॥१७३॥

टीका गुरुमुखः—अपनी-अपनी बुद्धिसे एक-एक अनुमान सबने माना, ताहीको अपने शिरका खाविन्द मान सब कोई जानते हैं। काहूने शिव माना, काहूने शक्ति मानी, काहूने विष्णु माना, काहूने सूर्यको माना, काहूने गणपतिको माना, काहूने वेदको माना, काहूने क़ुरानको माना, काहूने अट्ठासी सहस्र ऋषिको

माना, काहूने एक लाख अस्सी हजार पैगम्बर माना, काहूने दश अवतार माना, काहूने बारह इमाम माना, काहूने औलिया, अंजिया, अंशिया, गौस, कुतुब, फिरिस्तेको माना, काहूने तैंतीस कोटि देवता माना, काहूने यक्ष, गण-गन्धर्व, पितृ-जनको माना। इस प्रकार अपने-अपने शिरोंका मालिक सबनने मान रक्खा है, ताते ज्ञानकी बात दुरन्तरी। ज्ञान कहिये जीव। सो जीवकी बात दुरन्तर गई। काहूको जान परी नहीं। ये अर्थ ॥ १७३ ॥

साखीः-हाड़ जरै जस लाकड़ी। बार जरै जस घास ॥
कबिरा जरै राम रस। जस कोठी जरै कपास ॥१७४॥

टीका गुरुमुखः—रामरसके मारे जीव दिवाना भया। आखिर अपने स्वरूपको नहीं जाना औ चोला छूटा, तब गर्भवासमें जायके जठराग्निमें जरने लगा। जैसे कोठीमें कपासको आग लगी, सो ऊपर तो धुवाँ नजर आता नहीं औ भीतर-भीतर जरके खाक भई। तैसा ऊपर काहूको जठराग्नि मालूम होती नहीं। नारी गर्भिणी है, ऐसी जन-वार्त्ता होती है। औ जब जीव चोला छोड़ता है, तब सब लोग मिलके चोलेको जलाय देते हैं। सो हाड़ जैसे लकड़ीके माफिक जल जाते हैं और बार जैसे घासके माफिक जल जाता है। औ जीव दूसरी योनिमें जायके गर्भाग्निमें जलता है। जैसा कपास कोठीमें जलता है; तद्वत्। ये अर्थ ॥१७४॥

साखीः-घाट भुलाना बाट बिनु। भेष भुलाना कान ॥
जाकी माड़ी जगतमें। सो न परा पहिचान ॥१७५॥

टीका गुरुमुखः—घाट कहिये सत्सङ्ग, बाट कहिये विचार। सो विचार बिना सत्संग भूला ब्रह्मास्मि कहलायके। औ भेष सब अपने-अपने सम्प्रदायके पक्षमें भूले औ बानीके पक्षमें भूले। पर जाकी माँड़ी = नाना प्रकारकी बानी औ कल्पना इस जगत्‌में मँड़ रही है, सो मानुषरूप काहूको पहचान परा नहीं। सब मिथ्या भ्रम औ कल्पनामें अरुझे। अरे ! ये जीवरूपने चार वेद, छै शास्त्र आदिक नाना बानी, नाना मन्त्र-यन्त्र बनाये। सो सब जीव वेद-शास्त्र, मन्त्र, यन्त्रमें अरुझे। काहूने ये जीवरूप पहिचाना नहीं। ये अर्थ ॥ १७५ ॥

साखीः-मूरखसों क्या बोलिये ? शठसों काह बसाय ? ॥
पाहनमें क्या मारिये ? जो चोखा तीर नशाय ! ॥१७६॥

टीका गुरुमुखः—मूर्ख कहिये जो मिथ्या पक्ष धारण करे, औ शठ कहिये जाको साँच-झूठ मालूम न परे, सो शठ। ताते मूर्ख पक्षपातिनसे विचारकी बात बोलना नहीं। और हठी-शठनसे तुम्हारा विचार कछु चलनेका नहीं, ताते उनसे बोलना नहीं। अरे! जो अच्छा तीर भया, तो क्या पत्थरमें मारना? पत्थरमें मारा तो तीर खराब होयगा। पत्थरका कछु जानेका नहीं। तैसा सार-शब्द इन पक्षवादी शठ--मूरखनसे बोलना नहीं; क्योंकि एक तो कछु विषाद करके उठेंगे कि मनमें उदास हो जायेंगे। ताते कोई श्रद्धावान् निष्पक्ष जीव होय, ताको सारशब्दका विचार बताना। ये अर्थ ॥ १७६ ॥

साखीः--जैसी गोली गुमज की। नीच परी ढहराय ॥
तैसा हृदया मूरखका। शब्द नहीं ठहराय ॥१७७॥

टीका गुरुमुखः—गुम्मजकी गोली माफिक मूर्खके हृदयमें शब्द ठहरता नहीं। तो हकनाहक काहेको बक--बक मरना? औ अपनी प्रकृति क्यों खराब करना?। ये अर्थ ॥ १७७ ॥

साखीः-ऊपरकी दोऊ गईं। हियहुकी गईं हिराय ॥
कहहिंकबीर जाकी चारिउ गईं। ताको काह उपाय? ॥१७८॥

टीका गुरुमुखः—ऊपरकी दोऊ = स्थूल--सूक्ष्म, औ भीतरकी दोनों = कारण--महाकारण। सो गुरु कहते हैं कि चारों देह जाकी हेराय गईं, लय हो गईं, सो कैवल्य ब्रह्म निर्विकल्प-दशाको प्राप्त भया। अब तासों कछु जोर चलता नहीं, औ वो किसीको मानता भी नहीं। उसपर न वेदका हुकुम, न काहूका हुकुम। वो अजित आत्मा भया। अब उसपर किसीकी गुरुवाई चलती नहीं। वो सर्वरूप आप ही हो रहा है, ब्रह्म बन रहा है। ताते किसीकी बसाती नहीं। ऐसे नरको पारख तो भी कहाँसे प्राप्त होय? जाको अपनी भी स्मृति नहीं, सदा उन्मत्त माफिक रहता है। अरे! झाँईमें अन्धा भया। ऊपरकी दोनों आँखी फूटीं। जो देखता है कि सब जगत् पृथक्-पृथक् न्यारा हैं औ फिर चराचर एक ही आत्मा करके मानता है। ताते ऊपरकी भी गईं औ भीतरकी बूझ-बुद्धि दोनों हेराय गईं। सो सब नाना बानी बोलते हैं औ सब पिण्ड-ब्रह्माण्डकी हकीकत पृथक् करके जानता है। फिर कहता है कि 'मेरी सत्ता बिना कछु न्यारा

नहीं, ताते सब मेरा ही स्वरूप है।' ऐसा कहिके हियेहुकी बुद्धि नशाय गई। अरे! सर्व औ सर्वका जाननेवाला न्यारा, भास औ भासिक न्यारा, अनुमान औ अनुमानिक न्यारा, कल्पित औ कल्पनेवाला न्यारा। आप तीनकालमें न्यारा होके अपनेको जानता नहीं, तो ऐसे जड़ अन्धसों क्या करना? । ये अर्थ ॥१७८॥

साखीः–केते दिन ऐसे गये। अनरूचे का नेह ॥
ऊसर बोय न ऊपजै। जो अति घन बरसे मेह ॥१७९॥

टीका गुरुमुखः—अनरूचा कहिये ब्रह्म। तासे नेह किया जीवने। ताते केते ही दिन बीत गये, धोखा कछु छूटा नहीं औ आवागमन कछु रहित भया नहीं। ताते अनेक योनिनका मोरचा लगाके औ अनेक दाँय गर्भाग्निमें जलके जीव ऊसर = निस्तेज हो गया। अब इसे कछु अपने पदकी रुचि रही नहीं। तो अब ऐसे जीवसे केते ही दिन नेह लगावो औ विचारकी वर्षा करो; परन्तु कछु उगनेका नहीं, यथार्थ समझनेका नहीं। जैसे ऊसरमें बीज बोया औ केता भी पानी बरसा; परन्तु कछु उगता नहीं। ये अर्थ ॥ १७९ ॥

साखीः–मैं रोवों यह जगत को। मोको रोवै न कोय ?॥
मोको रोवै सो जना! जो शब्द विवेकी होय !॥१८०॥

टीका गुरुमुखः—मैं जगत्के कल्याण-निमित्त रोता हौं, जामें जगत्का भ्रम छूटे औ आवागमनसे जीव रहित होय। नाना दुःखनसे जीव बचे औ कैसेहु पारखपदको जीव मिले। येही वास्ते मैंने नाना प्रकारसे समुझाया; परन्तु कोई समझके पारखपदकी प्राप्ति निमित्त अपने दुःखको देखके रोता नहीं औ अपने बन्धनका तिरस्कार भी कोई करता नहीं। तो जो कोई शब्दका विवेक यथार्थ करेगा, सोई सम्पूर्ण विषय-बन्धनका तिरस्कार करके पारखरूप होयगा। औ मैं पारख-स्वरूपको मिलनेके वास्ते रोया–गाया प्रेमसे। क्योंकि मैं निरुपाधि पारख। मेरेको कछु उपाधि सम्भवती नहीं। मैंने इस जगत्के निमित्त नाना प्रकारकी उपाधि उठाय लिया; परन्तु इस जगत्को कछु सूझता नहीं। ये अर्थ ॥ १८० ॥

साखीः–साहेब! साहेब! सब कहैं। मोहिं अन्देशा और॥
साहेबसे परचय नहीं। बैठोगे केहि ठौर ?॥१८१॥

टीका गुरुमुखः—सबका साहेब जीवरूप। सो जीवरूपकी तो पारख किसीने की नहीं औ धोखेको सब साहेब ! साहेब ! कहते हैं। तो इनकी स्थिति कहाँ होयगी ?। ये अभिप्राय ॥ १८१ ॥

साखीः-जीव बिनाजीव बाँचेनहीं। जीवका जीव अधार ॥
जीव दया करि पालिये !पण्डित ! करो विचार॥१८२॥

टीका गुरुमुखः—हे पण्डित ! हे बुद्धिमान् ! तुम विचार करके देखो ! कि जीवका जीवन जीव है। जीव बिना जीव बचता नहीं। एक जीवके आधारसे एक जीव बचता है। देखो ! इस जगत्में प्रसिद्ध है कि हाथी, घोड़े, गदहे, गाय, भैंस, बैल आदि मनुष्यके आधारसे रहते हैं, औ मानुष भी एकके आधारसे एक रहते हैं। आधार बिना किसीका गुजारा होता नहीं। तातें जीवको दया करके पालना ! कोई जीव-मात्रको दुःख देना नहीं। यथा-शक्ति जहाँलग बने, तहाँलग जीवका रक्षण करना। ये अर्थ ॥ १८२ ॥

साखीः-हम तो सबकी कही। मोको कोइ न जान॥
तबभी अच्छाअबभीअच्छा! जुगजुग होउँ न आन॥१८३॥

टीका गुरुमुखः—मैंने तो सबकी कसर औ कल्पना औ सिद्धान्त कहा, पर मेरेको किसीने नहीं जाना। तो जासे सब परखनेमें आवे, सो पारख मैं—तब आदिमें भी अच्छा = स्वच्छ, विकार रहित, औ अब वर्त्तमानमें भी अच्छा = स्वच्छ, विकार रहित। औ युग-युग = भविष्य समयमें भी अच्छा = स्वच्छ पारख स्थिर, विकार रहित। कधी दूसरा नहीं होता। ये अर्थ ॥ १८३ ॥

साखीः-प्रगट कहौं तो मारिया। परदा लखै न कोय ॥
सहना छिपा पयार तर। को कहि बैरी होय ? ॥१८४॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! जो कछु है सो ये जीव है, ऐसा प्रकट करके कहोगे तो ये पक्षवादी मूर्खजन तुम्हारेसे विरुद्धता करके तुम्हारेको मारेंगे। औ गुरुवा लोगोंने जो ब्रह्म-परदा दिया है सो परदेको तो कोई लखते नहीं। सब परदेके आसरेमें रहि जाते हैं। औ सहना कहिये ब्रह्मादि गुरुवा लोग, सो पयार = वेद, ताके आसरेमें छिपे हैं। पयार कहिये मिथ्या खाली घास, जामें

कछु जमा नहीं । तैसा वेद मिथ्या बकवाद । तामें कछु जमा नहीं । पर कौन कहिके बैरी होय ? । ये अर्थ ॥ १८४ ॥

साखी:–देश विदेशे हौं फिरा । मन ही भरा सुकाल ! ॥
जाको ढूँढ़त हौं फिरों । ताका परा दुकाल ! ॥१८५॥

टीका गुरुमुखः—देश = पक्के तत्त्व, औ विदेश = कच्चे तत्त्व । सो पक्के तत्त्व धारण करके कच्चे तत्त्वनमें मैं जीवनके कल्याण-निमित्त फिरा । सो जहाँ–तहाँ मन ही भरि रहा है । समस्त जीव मिथ्या मानन्दीके पक्षमें परे हैं । पर जो मुमुक्षु निष्पक्ष जीवको मैं ढूँढ़ता हौं, सो ताका दुष्काल परा है । कोई बहुत नजर नहीं आते । ये अर्थ ॥ १८५ ॥

साखी:--कलि खोटा जग आँधरा । शब्द न माने कोय ॥
जाहि कहौं हित आपना । सो उठि बैरी होय ॥१८६॥

टीका गुरुमुखः—जेती बानी गुरुवा लोगोंने कही, सो सब खोटी; औ जगत् तो अन्धा । पारख बिना खोटाई नजर नहीं आती, ताते शब्द कोई मानता नहीं । जिसको मैं अपना प्यारा जानके कहता हौं, सोई उठके बैरी होता है । ऐसी दशा इस जीवकी भई, औ अपना हित–अनहित नहीं जानता । अब इसे क्या कहना ? । ये अर्थ ॥ १८६ ॥

साखी:--मसी--कागद छूवों नहीं । कलम गहों नहिं हाथ ॥
चारिउ युगका महातम । कबीर मुखहि जनाई बात ॥१८७॥

टीका गुरुमुखः—कबीर कहिये जीवको । सो हे जीव ! तेरेको मालूम होनेके वास्ते, सकल बन्धन छूटनेके वास्ते चारों युगका महात्म्य सकल मुखहीसे जनाया । कुछ मैं कलम, कागद, मसी, दवाइत छूता नहीं । ये अर्थ* ॥१८७॥

---

* टिप्पणी:—साखी १८७ का महाभाष्यः—

साखीः—मसी-कागद छूवों नहीं । कलम गहों नहिं हाथ ! ॥
चारिउ युगका महातम । कबीर मुखहि जनाई बात ! ॥१८७॥

महाभाष्य; गुरुमुखः--मसी = लिखनेकी स्याही, कागद = कोरा कागज, छूवों नहीं = स्पर्श कर–करके मैं संग्रह नहीं करता हूँ, उनको लेकर अपने पासमें नहीं रखता हूँ। और लिखनेकी कलम = लेखनी भी हाथमें आसक्तियुक्त ग्रहण नहीं करता हूँ वा नहीं

पकड़ता हूँ। क्योंकि वैसा करनेकी मुझे कोई आवश्यकता ही नहीं है। अर्थात् लेखक बनकर अनेकों गद्य-पद्य लिख-लिखकर संसारमें विस्तार करनेका कार्य तो मैं नहीं करता हूँ। तथापि चारिउ युग=सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि; माने हुए इन चारों युगोंके समयका बन्धान चार वेदोंकी वाणीकी रचना, ब्रह्म-ईश्वरादिका महातम= महिमा, महात्म्य, जो गुरुवा लोगोंने भ्रम-कल्पनासे कह रक्खा है, वह सब कबीर= उन अबोध जीवकी ही मानन्दी मिथ्या कल्पना है। उनकी मानन्दी अनुसार वर्त्तमान कलियुगके बाद भविष्यमें फिर सत्ययुग होगा। त्रेता और द्वापर अभी भूतकालमें हैं। फिर सत्ययुगके पश्चात् वे भविष्यमें होंगे ❋। इस प्रकार तीनकालका चक्र अनादि-कालसे चला आ रहा है। त्रिकालमें जीवका स्वरूप नित्य-सत्य, अजर, अमर, अखण्ड अक्षय बना रहता है। चारों युगोंका महात्म्य वर्णन करनेवाला भी नरजीव ही है। वेद, शास्त्र, पुराण, कुरानादि अनेक ग्रन्थ, पन्थ, सिद्धान्त इत्यादि सबका महात्म्य वर्णन करने और माननेवाले मनुष्य-जीव ही हैं। इसलिए जीव ही सत्य-सार है और उसकी मानन्दी असार है, ऐसा यथार्थ निर्णय कबीर=हे नरजीव ! तुम्हें पारखबोध देनेके लिए मैंने अपने मुखसे ही मुख्य-मुख्य सार बात बतलाकर जनाई=मालूम करा दिया है और सब सिद्धान्तोंका सारांश इस बीजक सद्ग्रन्थमें सूचित कर दिया है। जब मैं सब बातका भेद अच्छी तरहसे जानता हूँ, अपने विवेक-विचारसे छानबीन करता हूँ, तब तुम्हारा भ्रम छुड़ानेके लिए मुख्य बातको मुखसे ही बतला देता हूँ। फिर मुझे मसी-कागज छूने और कलम पकड़नेका कोई प्रयोजन ही नहीं है। क्योंकि स्वयं प्रत्यक्ष चैतन्य-स्वरूपका पारखबोध ही मेरा अनुभव-ज्ञान सत्य-सार है। शास्त्रीय-ज्ञानसे अनुभव-ज्ञान विशेष होता है। चारों मुखोंकी वाणीको मैंने अपने मुखसे ही निर्णय करके कह दिया है। अब तुम लोग भी तीन मुखकी वाणीके असत्य महात्म्यको परखकर परित्याग करो ! गुरुमुखसे वर्णित सारशब्दसे सत्यबोध प्राप्त करके सब

❋—पञ्चाङ्गमें लिखे अनुसारः—

१. कल्पादि माघ शुक्लः १३ को माना है। २. सत्ययुगादि कार्तिक शुक्लः ९ को (कुष्माण्ड नवमी) माना है। ३. त्रेतायुगादि वैशाख शुक्लः ३को माना है। ४. द्वापर युगादि फाल्गुन कृष्णः ३०को माना है। ५. कलियुगादि आश्विन कृष्णः १२को माना है।

इस प्रकार प्रतिवर्ष चारों युगोंके सहित कल्पके भी आदि-अन्तके दिन आते-जाते रहते हैं। इसलिए एक ही सालमें चारों युग और कल्प भी हो जाते हैं। कल्पित चारों युगोंमें चार रूप लेकर सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब स्वयं न कभी आये, न आते हैं। क्योंकि मुक्त जीवका कदापि आवागमन नहीं होता है। अतः मुक्त-स्वरूपमें स्थित हुए श्रीकबीरसाहेब चार युगोंमें प्रकट नहीं हो सकते हैं। चार युगमें वा कई बार श्रीकबीरसाहेब स्वयं प्रकट हुए कहना—अबोध लोगोंकी मिथ्या मनगढ़न्त कल्पना ही मात्र है। वास्तवमें एक ही सद्गुरुकी महिमा, गुण-वर्णनमें चार नाम, सौ नाम, सहस्र नामादि बने हैं; ऐसा जानना चाहिये !

साखीः---फहम आगे फहम पाछे । फहम दहिने डेरि ॥
फहम पर जो फहम करै । सो फहम है मेरि ॥१८८॥

टीका गुरुमुखः—फहम कहिये, समझ कहिये, स्फूर्ति कहिये; याद कहिये। सो समझ तीन प्रकारकी—आदि, अन्त औ मध्य । तीन कालमें एक आत्मा । जो आदि सोई अन्त, सोई मध्य—'सुवर्ण-भूषण न्याय'—ये समझ ब्रह्मज्ञानकी। सो ऐसी समझको जो समझती है औ न्यारी रहती है, सो समझ है मेरी । फहम आगे कहिये जो कुछ होनेवाला है महाप्रलय पर्यन्त, सो भविष्यकी समझ औ स्फूर्ति । औ फहम पीछे कहिये जो उत्पत्ति, आदिसे आज पर्यन्त गत् वर्त्तमान भया, ताहीकी समझ औ स्फूर्ति कोई रखते हैं, सो भूतप्रतिबन्ध कहिये । ऐसी भूतप्रतिबन्धकी समझ जा समझसे मालूम होय औ समझ सम्पूर्णकी कसर निकारे, सो मेरी समझ है । औ वर्त्तमानकी समझ जो अब वर्त्तता है, तामें दो प्रकार—एक दक्षिणमार्ग, एक वाममार्ग । सो वाममार्ग कहिये मलीन, दक्षिण-मार्ग कहिये शुद्ध । ये ही दो प्रकारकी समझ औ स्फूर्ति । औ एक शुद्ध वर्त्तमान वेदान्तकी समझ । सो ताहूकी समझ जा समझसे मालूम होय, सो समझ मेरी

भ्रम-भूलसे रहित हो जाओ ! जीवका स्वरूप ही सबसे मुख्य सत्य-सार है, ऐसा जानकर निज पारख-स्वरूपमें स्थिर हो रहो ।

अथवा ब्रह्मज्ञानीकी भ्रम-मानन्दीके अनुसार मसी=असिपद अद्वैत ब्रह्म, और कागद=जगत्का विस्तार, वाणी और खानिकी आसक्तिको स्पर्श करके मैं नहीं छूता हूँ और फिर कलम=माने हुए कल्पित ईश्वरके भ्रमको भी मैं अपने हाथ=हृदयके घेरामें ग्रहण नहीं करता हूँ। मसीरूप असिपद ब्रह्म, त्वंपद कागजरूप जगत् और तत्पद कलमरूप ईश्वर, जो कि क्रमशः झाँई, काल, सन्धिके जाल हैं, उनको मैं ग्रहण और स्पर्श भी नहीं करता हूँ। खानि-वाणी दोनों ओरके अध्यासको परखकर मैंने परित्याग कर दिया है। माने हुए चार युगकी कल्पना एवं चार वेद, ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, दश अवतार; और चार दूने आठके अनुसार—अष्ट-प्रतिमा, अष्टाङ्ग योग, नवधाभक्ति, सप्तज्ञान-भूमिका इत्यादि वाणी-कल्पनाके जितने भी महात्म्य, विशेषता गुरुवा लोगोंने वर्णन कर रक्खा है, उन सबको निष्पक्ष विवेक-दृष्टिसे छानबीनकर सत्य-असत्य, सार-असार, हानि-लाभ, बन्धन-मुक्ति और जड़-चैतन्यके स्वरूपके भेदादि परीक्षा करके यथार्थ मुख्य-मुख्य बातको मैंने अपने मुखसे ही नरजीवोंको बता दिया है। अब जो जिज्ञासुजन होंगे, वे विवेक-विचार करके मेरे दरशाये अनुसार बीजकद्वारा पारखबोध ग्रहण करेंगे और सब मिथ्या मानन्दीको परित्याग करके हंसपदमें स्थिर होकर अपना कल्याण करेंगे ॥ १८७ ॥

है । भूत, भविष्य, वर्त्तमान; तीनों फहमनपर जो फहम करे, सो गुरुकी समझ-फहम है । भूत फहम योग, भविष्य फहम कर्म, वर्त्तमान फहम ज्ञान । ये तीनों फहमनपर जो फहम करे औ सब फहमनपर जो फहम करे, सबकी कसर निकारे, सो पारख मेरी फहम है । ये अभिप्राय । औ भूत, भविष्य, वर्त्तमान; त्रिकाल-ज्ञान एक योगसे होता है (ऐसा कहते हैं) । सो योगको परखके तीनों फहमनपर जो फहम करे, ताही फहमको गहिके स्थिर होना । औ फहम कहिये ज्ञान । सो ज्ञान तीन प्रकारका—एक शास्त्रज्ञान, दूसरा परोक्ष ज्ञान, तीसरा अपरोक्ष ज्ञान । सो शास्त्रज्ञान भूत, औ परोक्ष ज्ञान भविष्य, औ अपरोक्ष ज्ञान वर्त्तमान । सङ्कल्प-विकल्पात्मक फहम औ सविकल्प फहम औ निर्विकल्प फहम । इस प्रकार सब ज्ञानिनका ज्ञान और सब फहमनकी फहम जासे होय, सो मेरी फहम है । ये अर्थ ॥ १८८ ॥

साखीः—हद्द चले सो मानवा । बेहद्द चले सो साध ! ॥
हद्द-बेहद्द दोऊ तजे । ताकर मता अगाध ॥१८९॥

टीका गुरुमुखः—हद्द कहिये वेद-प्रमाण वर्णाश्रमके कर्म यथाविधि आचरण करे, सो मनुष्य । औ बेहद्द कहिये जो सम्पूर्ण वर्णाश्रमके कर्मनको निषेध करके ज्ञानमार्गसे चले, सोई बेहद्द, सोई साधु । और जाने कर्म, धर्म, उपासना औ ज्ञान सम्पूर्ण परखके तज दिया औ आप पारखपदपर ठहरा, तिनका मत कोई जाननेका नहीं । वो सर्व मतनका पारखी ! वाको पारखी बिना कौन जाने ? । ये अर्थ ॥ १८९ ॥

साखीः—समुझेकी गति एक है । जिन्ह समुझा सब ठौर ॥
कहहिं कबीर ये बीचके । बलकहिं और-कि-और ॥१९०॥

टीका गुरुमुखः—जाने तत्त्वमसि आदि सब सिद्धान्त परखके छोड़ा औ भक्ति, ज्ञान, योग आदि भाव सम्पूर्ण परखके छोड़ा औ पारखरूप समझा, सो सब पारखी ! उनकी गति एक पारख है । अरे ! जाने पारख-भूमिका समझी औ सब ठौर परखके छोड़े, तिनकी गति सबकी एक है । एक रहनि, एक बानी, एक पारखरूप । उनमें दुविधा कुछ सम्भवे नहीं । और ये नाना बानी, नाना सिद्धान्तनमें फँसे हैं, सो सब बीच भवसागरके जीव; कुछ पारख-भूमिकाके

नहीं। सो 'बलकहिं और-की-और।' कोई कर्मकाण्ड ही बताता है, कोई कालवादी कालवाद करता है, कोई कर्त्तावाद करता है, कोई योगवाद करता है, कोई प्रकृतिवाद करता है, कोई आत्मवाद करता है, कोई उपासनावाद करता है, कोई मतवाद करता है। ये सब बीचके गाफिलीके बन्धे जीव हैं; कुछ पारखी नहीं। ऐसा गुरु कहते हैं। ये अर्थ ॥ १९० ॥

साखी:-राह बिचारी क्या करे ? जो पन्थि न चले विचार ॥
आपन मारग छोड़िके। फिरे उजार--उजार ॥१९१॥

टीका गुरुमुखः—पारखी गुरुने जो राह बताई, सो राहसे पन्थी = चलने वाले जो विचारके न चले, तो राहने क्या करना ? अरे ! पन्थीके चलनेके वास्ते गुरुने पन्थ बनाया है; परन्तु विचारके चलेगा, तब पारख गुरुपदको पावेगा। औ अपने विचारका मार्ग छोड़के जो कर्म, उपासना, नाना बानी, योग, ज्ञानादिकनमें परेगा, सो उजार-उजार भ्रमहीमें फिरेगा। उजार कहिये शून्य, उजार कहिये जहाँ रास्ता नहीं औ बस्ती नहीं, सोई ब्रह्म-जगत्‌रूपी। सो जगत्‌में ही उपजता-विनशता है, ब्रह्म-ब्रह्म पुकारता फिरता है। अरे ! आप चैतन्य, औ अपना मार्ग विचार-सत्सङ्ग, सो जिनने छोड़ा सो भ्रममें पड़ा। ये अर्थ ॥१९१॥

साखी:-मूवा है मरि जाहुगे। मुये कि बाजी ढोल ॥
सपन सनेही जग भया। सहिदानी रहिगौ बोल ॥१९२॥

टीका गुरुमुखः—जिनने वेद, शास्त्र, पुराण बनाये औ बड़े-बड़े सिद्ध मुनि जगमें स्वप्नवत् होके मर-मर गये। जिनके नामपर अब संसारी जीव ढोल बजाय-बजायके गाते-नाचते हैं, ये भी उनकी कथनी गाय-गाय मर जायेंगे। आखिर मुवनके नामसे ढोल बजाये कुछ गुरुपदकी प्राप्ति होती नहीं औ अवतारादि, ऋषि-मुनि आदि कोई पारखपदको प्राप्त भये नहीं। स्वप्नसे नरजन्म पाके मर-मर गये। परन्तु उनकी निशानी रही है उनकी बानी। सो विचार करके देखो—सब प्रथम भासमें अरुझे। ये अर्थ ॥ १९२ ॥

साखी:-मूवा है मरि जाहुगे। बिन शिर थोथी भाल ॥
परेहु करायल वृक्ष तर। आज मरहु की काल ? ॥१९३॥

टीका गुरुमुखः—आगे तुमने जिनकी मानन्दी की, सो सब मर गये।

औ उनके भरोसे तुम बैठे हो, सो तुम भी मर जावोगे। बिन शिर कहिये ब्रह्म, जो सबका शिर बन रहा है। वह शिर काहेका ? वह कुछ शिर नहीं। मिथ्या धोखा। थोथी भाल कहिये झूठी भाल। भाल नाम बानीका। करायल वृक्ष कहिये जो गुरुवा लोगोंसे कराया अनुमान, सोई करायल वृक्ष ईश्वर कहिये। याका अभिप्राय ऐसा है कि थोथी बानी कहिये वेद, ताके प्रमाणसे कोई ब्रह्म बनके मर गये, औ कोई अपने ऊपर दूसरा ईश्वर मानके, उसके तरे, उसके आश्रित होके पड़े हैं, आज-कालमें मर जावेंगे मिथ्या बानीके भरोसे। ये अर्थ ॥१९३॥

साखीः--बोली हमारी पूर्वकी। हमें लखै नहिं कोय ॥
हमको तो सोई लखै। जो धुर पूरबका होय ! ॥१९४॥

टीका गुरुमुखः—पूर्व कहिये आदिकी, आदि कहिये हंसरूपकी हमारी बोली; ताते हमको कोई लखता नहीं। अब हमें और हमारी बोली सोई लखेगा, जो निश्चय हंसरूपका जीव होयगा ❀। ये अर्थ ॥ १९४ ॥

❀ टिप्पणीः—साखी १९४ का महाभाष्य—

साखीः—बोली हमारी पूर्वकी। हमें लखै नहिं कोय ॥
हमको तो सोई लखै। जो धुर पूरबका होय! ॥ १९४ ॥

महाभाष्य; गुरुमुखः—सद्गुरु कहते हैं—हमारे सत्य निर्णयकी बोली=वाणी, सारशब्द गुरुमुख वचन निश्चय करके पूर्वकी=प्रथम मनुष्यपद वा हंसपदके स्थिति-ठहरावरूप आदिका है। चैतन्य जीवका स्वरूप नित्य-सत्य अनादिका है। मनुष्य-देहरूप हंसपद आदिका है। बन्धन प्रवाहरूप अनादिकालका है और मोक्ष मनुष्यदेहरूप आदिकालमें होता है। हमने इसी मनुष्य-देहमें सब प्रकारसे हंस-भूमिकामें ठहरकर खानि-वाणीके सर्व जालोंसे अपने जीवको छुड़ाकर नित्य-सत्य चैतन्य जीवके पारख-स्वरूपमें स्थिति-ठहराव कर लिया है। इस प्रकार स्वयं जीवन्मुक्त होकर अन्य सज्जन जिज्ञासु मनुष्योंको भी हम अपना सत्यज्ञान, सत्योपदेश देकर स्वानुभवसे ठहरायी हुई बात बतला रहे हैं, इसीसे हमारी बोलीरूप वाणी-वचन पूर्वकी=हंसपदकी ओर दरशानेवाला मुक्ति-सहायक है। इस कारण खानि-वाणीके महा बन्धनमें जकड़े हुए साधारण लोग विषयासक्ति और वाणी-कल्पनामें फँसे होनेसे हमें=हमारे हंसपद, पारखपदके स्थिति-ठहराव-स्वरूप अभिप्राय, भावको कोई भी लखै=नहीं लखते, नहीं देखते, ठीकसे जान नहीं पाते हैं। उनकी समझमें ही नहीं आता है; क्योंकि मैं कहता हूँ मुक्तिकी बात। वे समझते हैं बन्धनकी बात। मैं कहता हूँ--चैतन्य जीवका स्वरूप ही सत्य है। वे कहते हैं--नहीं-नहीं, सत्य तो ब्रह्म-खुदा आदि और ही कोई है। इत्यादि प्रकारसे अबोध लोगोंकी समझमें बहुत ही अन्तर है। अब हमको=हमारे

साखीः--जाके चलते रौंदे परा । धरती होय बेहाल ॥
सो सावत घामें जरे । पण्डित ! करहु विचार ॥१९५॥

टीका गुरुमुखः—या जीवके चलते सारा रौंदा परा औ नाना पन्थ, नाना रास्ते चले और सत्य आदि धरती बेहाल भई, पक्की कची भई । सो सावत =

पारख स्वरूपको एवं हमारे सारशब्दरूप निर्णय वचन, शुद्ध सत्य पारखबोधको तो लखै = विवेक विचारकी दृष्टिसे देखकर वही यथार्थ समझ-बूझ सकेगा, जो कि धुर = बिलकुल ठीकसे पक्का दृढ़ निश्चय करके पूरबका = प्रथमके मनुष्य-जन्मका भी शुभ संस्कार-सम्पन्न, और वर्त्तमानकी नरदेहमें भी शुभ सद्गुण-सम्पन्न विचारवान्-विवेकी, सारग्राही जिज्ञासु नरजीव होगा, वही हमारे कहे अनुसार सत्य स्वरूपको यथार्थ समझेगा। उत्तम जिज्ञासु लोग थोड़ा-सा ही बतानेपर भी सार बातको समझ जाते हैं। मध्यम मनुष्योंको बहुत दिनोंतक सत्सङ्गमें रगड़ करते रहना पड़ता है, तभी उनको समझमें आता है। कनिष्ठ मनुष्योंकी समझमें अन्ततक भी ठीकसे नहीं आता है और निकृष्ट लोग तो सत्सङ्गके समीपमें ही नहीं आते हैं। इसलिए पूर्व मनुष्य-जन्मके शुभ संस्कारी, प्रथमके सत्सङ्गी जो नरजीव होते हैं, उनको बिना कठिनाईके ही जल्दीसे सत्य सिद्धान्त जानने समझनेमें आ जाता है। वैसे ही ज्ञानाधिकारी लोगोंके लिए हमने इस बीजकमें सत्यन्याय-निर्णयका उपदेश यथार्थ कह दिया है। वैसे अधिकारी लोग भी सत्सङ्गद्वारा पारखबोध प्राप्त करके भ्रम-भूलसे छूटकर अपने जीवनका वास्तविक लाभ उठावेंगे।

अथवा जीवका स्वरूप अविनाशी होनेसे आवागमनकी परम्परा भी प्रवाहरूपसे अनादिकालसे चली आ रही है। पूर्व मनुष्य-जन्मके ज्ञान-संस्कारसे ही वर्त्तमानकी नरदेह हमें मिली है। भक्ति-ज्ञान, बोध-वैराग्यके शुभ संस्कार सूक्ष्मरूपसे पूर्वसे ही हृदयमें टिके ही थे। उसी पूर्वके ज्ञान-संस्कार और वर्त्तमानके सत्पुरुषार्थद्वारा सब मत-पन्थ, ग्रन्थ, सिद्धान्त, वाणी-खानिकी परिस्थितियोंको छानबीन करके उनके समस्त कसर-खोट विकारको हटाकर, हंसपदके सम्पूर्ण सद्गुणोंको धारण करते हुए निजस्वरूप शुद्ध चैतन्य पारख-पदमें हम स्थिर, निर्बन्ध मुक्त हुए। इसीसे हमारा अपने अनुभवसे ठहराया हुआ, वही पूर्वके = हंसदेहका निश्चित पारख-सिद्धान्त हमने अपनी सारशब्दरूप बोलीमें बीजक वर्णन किया, जिज्ञासुजनोंको समझाया। लोक और वेदके पक्षमें पड़े हुए अबोध लोग कोई भी हमारी स्थिति, सिद्धान्त, निर्णय वचनको नहीं लखते, जान नहीं पाते, समझ ही नहीं सकते। इस कारण अब हमारे स्वरूप और हमारे सिद्धान्त, निर्णय वचनको वे ही लोग जानेंगे, समझेंगे-बूझेंगे, जो लोक-वेदके मिथ्या पक्ष, भ्रम, आसक्तिको सर्वथा परित्याग करके निश्चयसे पूर्वके शुभ संस्कारी निर्मल हृदयवाले जिज्ञासु होकर विचार करेंगे। अतः सब ओरका मिथ्या पक्षपात परित्याग करके सारग्राही जिज्ञासु बनकर पारखबोधको ग्रहण, धारण करते हुए अपना उद्धार करो। ॥ १९४ ॥

बी० त्रि०; ८२—

मानुष घाममें जरे। घाम कहिये ताप। सो तीन प्रकारके तापमें जरता है। हे पण्डित ! बुद्धिमान् ! तुम विचार करके देखो ! तो जो सकल सृष्टिका आदि-कर्त्ता औ सकल बानी-वेदका कर्त्ता, सोई बानी-वेदके तापनमें औ सृष्टिके त्रिविधि तापनमें जर रहा है। जैसा बाँसमेंसे अग्नि निकरी औ बाँसहीको जरायी। ये अर्थ ।। १९५ ।।

साखीः--पायन पुहुमी नापते। दरिया करते फाल ।।
हाथन पर्वत तौलते। तेहि धरि खायो काल ।।१९६।।

टीका गुरुमुखः—वामन, हनुमन्त, कृष्ण आदि सबको पञ्चमुखी अभिमान जो काल है, ताने धरि खाया *। ये अर्थ ।। १९६ ।।

---

* टिप्पणीः—साखी १९६ का महाभाष्यः—

साखीः—पायन पुहुमी नापते। दरिया करते फाल ।।
हाथन पर्वत तौलते। तेहि धरि खायो काल ।। १९६ ।।

महाभाष्य; गुरुमुखः—पुराणोंके वर्णन अनुसार वामनने पायन=अपने दो पैरोंमें ही पुहुमी=पृथ्वीको नापते हुए—'दो पैरोंमें तुम्हारी सब पृथ्वी आ गई, अब तीसरे पैरके लिए स्थान दो !' कहकर बलि राजाको धोखा देकर छल-कपटसे बाँध लिया था। अन्तमें सब राज्य लेकर इन्द्रको दे दिया; इत्यादि। ऐसी चतुराई करते हुए भी वाणी-कल्पना अभिमान और विषयासक्तिने वामनको भी विनाश किया। दरिया=बड़ी नदी एवं समुद्रको, फाल=छलाँग मारकर उछल-कूदके वा तैरकर पार करते हुए हनुमानको लङ्कामें जानेका वर्णन किया है। किन्तु भ्रम, वाणी-कल्पनाको कूदकर वे भी पार जा नहीं सके। और कृष्णने 'गोवर्धन' नामक पर्वतको अपने हाथसे उठाकर तौलते=उसका वजन सम्हालते हुए रोक रक्खा था, ऐसा कहा है। किन्तु खानि-वाणीके दो पर्वतकी आसक्तिको उठाकर वे भी हटा नहीं सके। एकबार शिवको प्रसन्न करनेके लिए रावणने भी हिमालयको हाथमें उठा लिया था, पुनः शिवके मना करनेपर पूर्व स्थानमें ही रख दिया—ऐसा वर्णन है। इस प्रकार वामन, हनुमान, कृष्णादि, तेहि=उन सब शूरवीर लोगोंने काल=मनकी कल्पना, पञ्च अभिमान, विषयासक्तिको स्वयं ही धरि=पकड़कर स्वेच्छासे खायो=हृदयमें ग्रहण कर लिया था। अन्तमें खानि-वाणीके जड़ाध्यास और मृत्युरूप कालने उन सबको भी पकड़कर खाके विनाश कर डाला। किसीको बचने नहीं दिया।

वास्तवमें यह सब पौराणिक कल्पना रूपक-मात्र है। वामनने बलिको वचन-बद्ध करके तीन वाचामें ही फँसाकर उसके राज्यादि सर्वस्व छीन लिया। एक वचनमें पृथ्वीका राज्य ठहराया, दूसरे वचनमें सर्व आकाश अपना बतला दिया। तीसरे

साखीः-नौ मन दूध बटोरिके । टिपके किया विनाश ॥
दूध फाटि काँजी भया । हूवा घृतका नाश ॥१९७॥

टीका गुरुमुखः—दूध कहिये जीवरूप, आठ पसेरीका मन औ नौवाँ जीव। पाँच तत्त्व औ त्रिगुण औ जीव एक सामिल रूप बने, सो दूध। तामें टिपका अनुमान खड़ा भया कि दूसरा हमारा कर्त्ता ब्रह्म है। ताहीते जीवरूपका नाश भया औ फाटिके चौरासी लक्ष योनि हो गई। ताते जीवरूपका नाश हुआ। जड़वत् होके नाना दुःख भोगने लगा। ये अर्थ ॥ १९७ ॥

वचनके लिए बलिने शिर झुका दिया, तब उसे बाँधकर अन्यत्र सुतललोकमें निर्वाशित कर दिया। हनुमान भी एक ही छलाँगमें समुद्रके पार नहीं पहुँचे, नौकादिकी सहायतारूप अन्य युक्तिसे चले गये। कृष्ण आदिने भी पर्वतोंके सम्पूर्ण वजनको नहीं उठाया; किन्तु गुफामें सबको प्रविष्ट कराके छोटा सा शिलाखण्ड उठाकर अभिनय प्रदर्शित कर दिया। उसीको कवि पण्डित लोगोंने कल्पनाका पुट भरकर अतिशयोक्तिसे बढ़ा-चढ़ाके गोवर्धन पर्वतको उठानेकी कथा वर्णन कर दिया। सो सत्य नहीं है। वास्तवमें ऐसे-ऐसे पराक्रमी लोग भी वाणी-कल्पना और विषय-वासनासे नहीं बचे। आयु पूर्ण होनेपर एक-एक दिन शरीरका विनाश तो सभीका होता ही है, वैसे ही उन सबकी भी मृत्यु हुई। किन्तु अध्यासवश आवागमनमें ही वे सब पड़ते चले गये। छूट नहीं सके। अतः मुमुक्षुजनोंको पारखबोध प्राप्त करके खानि-वाणीके भ्रम-भूल, अध्यास, अहङ्कार, आसक्ति सर्वथा परित्यागकर जीते ही निर्बन्ध मुक्त होना चाहिये !

अथवा ज्ञानी लोग "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" वाणीके इस एक ही पदमें सम्पूर्ण पृथ्वीको नापते हुए एक अद्वैत ब्रह्म जगत्‌रूपमें सिद्ध करके भूले पड़े हैं और दरिया= मायारूप समुद्रको भी फाल=कल्पनाके एक ही छलाँगमें पार जाते हुए—'मैं सब मायासे परे ब्रह्म हूँ, माया-मोहको मैंने निकालकर दूर फेंक दिया है' ऐसा घमण्ड करते हुए भी योगी-ज्ञानी लोग झीनी मायामें फँसे ही पड़े हैं। एवं हाथोंसे पर्वतके समान वाणी-कल्पनाका विस्तार लिखते-लिखते व्यासादि पण्डितोंने वेद, शास्त्र, पुराणादिकी अनेक ढेरी लगा दीं। अबके पण्डित लोग उन्हीं पर्वतरूप ग्रन्थोंको तौलते=हाथोंमें उठाते हुए पढ़-पढ़कर रोचक-भयानक वाणीकी तौल बताते हुए, औरोंको सुना-सुनाकर भ्रमाते-भुलाते जा रहे हैं। तथापि उन ज्ञानी, योगी, पण्डितोंको भी कालरूप भ्रम-कल्पना, मिथ्या मानन्दी, विषय-वासना आदिने पकड़-पकड़कर उनके बुद्धि-विचार, मुक्ति-पदको भी खा लिया। उसी अध्यासवश अन्तमें मृत्यु होनेपर आवागमनमें पड़े दुःख भोगते रहते हैं। अतः जिज्ञासुजनोंको भ्रम-कल्पना और विषयासक्तिसे रहित हो बोध-वैराग्यको धारण करना चाहिये ! ॥ १९६ ॥

साखीः--कितनो मनावो पाँव परि । कितनो मनावो रोय ॥
हिन्दू पूजे देवता । तुरुक न काहू होय ॥१९८॥

टीका गुरुमुखः—चाहे इस जगत्को कितनों मनाओ; किसी तरहसे रोयके मनाओ, चाहे पाँव परके मनाओ, पर ये अपना-अपना पक्ष ऐसा पकड़े हैं कि कधी छोड़ते नहीं । हिन्दू देवता पूजते हैं औ तुरुक बेनमून-बेचून मानते हैं । तो दोनों मिथ्या पक्षमें फँसे हैं । ये अर्थ ॥ १९८ ॥

साखीः--मानुष तेरा गुण बड़ा । माँसु न आवै काज ॥
हाड़ न होते आभरण । त्वचा न बाजन बाज ॥१९९॥

टीका गुरुमुखः—सत्य, विचार, दया, शील, धीरज आदि जो गुण होय, सो मानुषकी अधिकताई है । ये गुण मानुषका बड़ा है, जासे निजपदकी प्राप्ति होती है । औ कुछ वस्तु कामकी नहीं । हाड़नका कुछ गहना बनता नहीं औ चामका कुछ नगारादि बाजा बनता नहीं औ मांस भी कोई काममें नहीं आता । ताते मानुषने अपने मानुष-गुणको जानके ग्रहण करना । ये अर्थ ॥ १९९ ॥

साखीः--जोमोहिजानैताहिमैंजानौं । लोकवेदकाकहानमानौं ॥२००॥

टीका गुरुमुखः—सत्य, विचार सहित जो कोई मेरेको जानता है पारखरूप, ताको मैं जानता हौं । उससे कधी न्यारा होता नहीं । औ लोक-वेदके प्रमाणसे मेरेको कुछ काम नहीं । अथवा लोक-वेद सबका पक्ष छोड़के जो कोई सत्य-भावसे मेरेको ही जानते हैं, तिनको मैं सदा जानता हौं, कधी बिसारता नहीं । उस जीवके सकल विघ्न-बन्धन दूर करता हौं औ उसके भोजन, छाजन, वस्त्रादि सङ्कल्प सब अपनी इच्छामात्रसे पूर्ण करता हौं । परन्तु सकल भाव छोड़के जाका लक्ष्य सदा मेरी तरफ है, ताकी तरफ मेरा भी लक्ष्य है । जैसे कोई सूर्यकी तरफ लक्ष्य रखता है तो सूर्यका लक्ष्य (प्रकाश) उसीकी तरफ है । औ जिसने सूर्यकी तरफसे मुँह छिपाया, और तरफ देखने लगा, तो सूर्यका लक्ष्य (प्रकाश) भी उसकी तरफ कुछ नहीं; तद्वत् । ये अर्थ ॥ २०० ॥

साखीः--सबकी उत्पति धरती । सब जीवन प्रतिपाल ॥
धरती न जानै आप गुण । ऐसा गुरू विचार ! ॥२०१॥

टीका मायामुखः—जैसे पृथिवी सबका अधिष्ठान। पृथिवीसें अङ्कुरादि, पर्वतादि पदार्थ सब पैदा होते हैं औ पृथिवीसे उनका प्रतिपाल होता है औ पृथिवीमें लय होते हैं। औ अण्डज, पिण्डज, उष्मज आदि खानि सब पृथिवीसे पैदा होती हैं। अन्नमय कोश पृथिवीसे पैदा होता है। औ सबका प्रतिपालन पृथिवी करती है, आखिर अपनेमें मिलाय लेती है। तद्वत् आत्मा सर्वाधिष्ठान। सकल जीव वहाँसे पैदा होते हैं। सकल जीवकी जन्म-भूमिका आत्मा। औ सकल जीव अधिष्ठानहीमें रहते हैं, आखिर आत्मामें ही मिल जाते हैं। औ आत्मामें जानना और नहीं जानना कुछ नहीं। "पृथिवीवत् आत्मा, ऐसा ही गुरु" यह विचार करना! गुरुको अधिष्ठान आत्मारूप जानना! ये अभिप्राय ॥२०१॥

साखीः--धरती जानति आप गुण। कधी न होती डोल॥
तिल-तिल गरुवी होती। रहति ठिकोंकी मोल॥२०२॥

टीका गुरुमुखः—धरती अपने गुणको नहीं जानती। जो अपने गुणको जानती, तो कधी चलायमान न होती। तद्वत् जीव अपने गुणको नहीं जानता कि मैं सबका उत्पत्ति-कर्त्ता औ पालन-कर्त्ता, औ मेरे आधारसे पिण्ड–ब्रह्माण्ड सब खड़ा है। ऐसा नहीं जानता, ताते चलायमान होता है, दूसरा कर्त्ता औ नाना देवता कल्पि--कल्पिके मानता है। जो अपने गुणको जानता, तो सबका देवता आप ही था। दूसरा कर्त्ता कल्पनेका कुछ काम न था। पर अपनेको न जानके कल्पा। नहीं तो आपी अपनेको जानते--जानते तिल-तिल गरुवा होता, महा सिद्धराज कहाता, औ जगत्में मानुष बेकीमत कर्त्ता ईश्वरके मोल आप ही बिकाते। ये वास्तविक। परन्तु दूसरा कर्त्ता औ नाना देवता मानके उनके गुलाम बने, ताते कौड़ी--कौड़ीको महँगे भये। आखिरको थके, तब सिद्धान्त किया कि सर्व आत्मा अद्वैत, पृथिवीवत्। सोई अपना रूप। ये निश्चय करके जड़वत् भये। अपना चैतन्य गुण भूलके सकल ज्ञान नाश किया, ताते पारखपदको प्राप्त भया नहीं औ नाना योनिनमें भरमा। सकल जड़ उपाधि अपने शिरपर धर लिया, ताहीते कौड़ी–कौड़ीको महँगा भया। ये अर्थ॥ २०२॥

साखीः--जहिया किर्त्तम ना हता। धरती हती न नीर॥
उत्पति--परलय ना हती। तबकी कहैं कबीर!॥२०३॥

टीका गुरुमुखः—जब जगत् ना हता, पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश,

चन्द्र, सूर्य आदि कुछ ना हते औ उतपत्ति-प्रलय आदि कुछ न हता, तबकी बानी ये जीवने अपनी कल्पनासे करके कही । ताते सबका कर्त्ता जीवरूप। ये अर्थ ॥२०३॥

साखीः-जहाँबोलतहाँअक्षरआया।जहाँअक्षरतहाँमनहिदृढ़ाया॥
बोलअबोलएकहोयजाई।जिन्हयहलखासोबिरलाहोई॥२०४॥

टीका गुरुमुखः—'जहाँ बोल तहाँ अक्षर आया ।' अक्षर कहिये माया, अक्षर कहिये बानी, औ अक्षर-बानीसे जो कुछ दृढ़ापन भई, मानन्दी भई, सोई मन । ताते बोलना औ अनबोलना, दोनों छोड़के कोई सर्वआत्मा बने । याका अभिप्राय ऐसा है कि कोई सगुणमें बानीकी मानन्दी किया औ कोई निर्गुणमें मानन्दी किया मनकी । कोई सगुण-निर्गुण दोनों छोड़के एक आत्मा हो गये। कोई त्वंपद माना, कोई तत्पद माना, कोई असिपदमें एक हुआ । पर जो ये तीनों पद परखके पारखरूप हुआ, सो बिरला कोई । ये अर्थ ॥ २०४ ॥

साखीः-तौ लौं तारा जगमगे। जौ लौं उगे न सूर ॥
तौ लौं जीव कर्मवश डोलै । जौ लौं ज्ञान न पूर ॥२०५॥

टीका गुरुमुखः—जबलग पूरा ज्ञान नहीं होता, तबलग जीव कर्मनके वश होके चौरासीमें फिरता है औ जब पूरा ज्ञान भया, तब गुरुपदका अधिकारी भया । सम्पूर्ण कर्म-भ्रम छोड़के निष्पक्ष भया, तब उसके सकल कर्म विनाश भये । जैसे तारेकी ज्योति अँधियारीमें जगमगाती है औ जब सूर्य उगा, तब सभी लय हो गई, छिप गई । तैसा जबलग अज्ञानरूपी अँधियारी है, तबलग कर्मनके फल जगमगाते हैं औ अज्ञानरूपी सूर्य निकरा, तब सभी लय हो गये । ये अर्थ ॥ २०५ ॥

साखीः-नाँव न जाने गाँवका । भूला मारग जाय ॥
काल गड़ेगा काँटा । अगमन खसी कराय ॥२०६॥

टीका गुरुमुखः—सम्पूर्ण ब्रह्म कहिके ब्रह्मज्ञानी लोग भूले । अरे ! ब्रह्म कौनसे गाँवमें रहता है ? जाके नामका भी ठिकाना नहीं औ वेद जाको नेति-नेति करके गावता है, जाके गाँवका भी ठिकाना वेद जानता नहीं । आखिर जगत्को ब्रह्म ठहरावता है वेद। औ अनेक भूले मार्ग वेद गावता है । जो जगत् सब ब्रह्मरूप है, तो नाना मार्ग वेद किसे समुझाता है ? औ वेद भी ब्रह्मसे उपजा,

ऐसा महान् ऋषि बोलते हैं। तो वेद क्या ब्रह्मसे पैदा होके ब्रह्मको उपदेश नाना मार्ग कहने लगा ? तो ब्रह्म ही बड़ी भूलका रूप है औ वेदके मार्ग सब भूले मार्ग। ता मार्गसे संसार धोखेमें चला जाता है। गाँव कहिये ब्रह्म, सो ताका नाम कोई जानता नहीं। अरे ! ब्रह्मका नाम भ्रम, जीवका अध्यास, कुछ वस्तु नहीं। सो अध्यासवश जीव आवागमनमें पड़ा है। तो जब काल हो जायगा, चोला छोड़ेगा, तब अध्यास ही काँटा होके तेरेको गड़ेगा, गर्भवासमें डारेगा। ताते परखके आगे ही तोड़ डारो। ये अर्थ ॥ २०६ ॥

साखी:—सङ्गति कीजै साधुकी। हरै औरकी ब्याधि ! ॥
ओछी सङ्गति कूरकी। आठों पहर उपाधि ! ॥२०७॥

टीका गुरुमुख:—सङ्गत साधु पारखीकी करना, जाते जीवको नाना व्याधि, जरा-मरणादि लगा है सो सब छूट जाय। जो कल्पना, अनुमान, भास, अध्यासादि नाना व्याधिको हरै, सो साधु। ताकी सङ्गति करना ! औ कूर कहिये बेपारखी भ्रमिक, जो जड़-चैतन्य एकमें सानते हैं, उनकी सङ्गति न करना। वे आठों पहर कर्म, ज्ञान, योग, भक्ति, उपासनाकी उपाधि लगायेंगे, ताते तेरेको जरा-मरणकी व्याधि कुछ छूटनेकी नहीं। ये अर्थ ॥ २०७ ॥

साखी:—सङ्गतिसे सुख ऊपजे। कुसङ्गतिसे दुःख होय ॥
कहहिंकबीरतहाँजाइये। जहाँ अपनी सङ्गति होय ॥२०८॥

टीका गुरुमुख:—पारखी सन्तकी सङ्गतिसे सुखकी प्राप्ति होती है औ बेपारखी असत्सङ्गी देह-अभिमानी विषयासक्त; तिनका सङ्ग करनेसे दुःखकी प्राप्ति होती है। ताते गुरु कहते हैं कि तहाँ जाइये, जहाँ अपनाइत स्वदेशीय, स्वजातीय सङ्गति होय। औ विजातीय, विदेशीय कुसङ्गति, ताको त्याग करिये। ये अर्थ ॥ २०८ ॥

साखी:—जैसी लागी ओरकी। वैसे निबहे छोर ॥
कौड़ी कौड़ी जोरिके। पूँजी लक्ष करोर ॥२०९॥

टीका मायामुख:—जैसी प्रीति ओरसे लगी, तैसी छोरलों निर्वाह हो। जबसे भगवत्-भक्तिकी प्रीति लगी, तबसे जबलों चोला रहे तबलों निबहै, तो भगवत्-प्राप्ति सहजै होय। जैसे कौड़ी-कौड़ी जोरिके लाखों-करोड़ोंकी पूँजी जमा

होती है, ऐसा भगवत्-प्राप्तिकी साधना थोड़ी-थोड़ी करते-करते वाच्यांश छूट जाता है औ लक्ष्यांश प्राप्त होता है। फिर लक्ष्यांशके ऊपर परम अद्वैत भगवत्-स्वरूपका अनुभव होता है। शनैः शनैः लक्ष्य जोड़ते-जोड़ते परम सिद्ध होता है। ये अर्थ ॥ २०९ ॥

साखीः-आजु काल दिन कैइकमें। अस्थिर नाहिं शरीर ॥
कहहिं कबीर कस राखि हो ? काँचे बासन नीर!॥२१०॥

टीका गुरुमुखः—अरे! कहाँलग साधना करोगे? औ कब सिद्धि होवेगी? कब सिद्ध होवोगे? ये शरीर तो अशाश्वत (अस्थिर) है, आज नाशे या काल नाशे या कुछ दिनमें नाश होयगा। नाशवान् शरीर कछु स्थिर नहीं। सो नाना साधना, क्रिया करके सिद्ध होनेके वास्ते काँचे बासनमें पानी कबतक रक्खोगे? कच्चे चोलेमें श्वासा कबतक रक्खोगे? एकदिन गाफिलीमें निकर जायगा। ये अर्थ ॥ २१० ॥

साखीः-बहु बन्धनसे बाँधिया। एक बिचारा जीव!॥
की बल छूटै आपने? की रे छुड़ावै पीव!॥२११॥

टीका गुरुमुखः—अरे! एक विचारा जीव अनेक वेद-शास्त्र, जाति-पाँति, लज्जा-शरम, विषय, रोग, स्त्री, पुत्र, देह, कुटुम्ब, कल्पना, अनुमान, भास, अध्यासादि बन्धनमें बाँधा गया। अब कि तो इसे स्वयं विचार प्राप्त होय तब छूटे, नहीं तो गुरु कृपा करके सकल बन्धन परखायके तोड़े, तब छूटे, मुक्त होय। ये दोनों उपाय छोड़के मुक्त होनेका आन उपाय कुछ नहीं। ये अर्थ ॥२११॥

साखीः-जीव मति मारो बापुरा! सबका एकै प्राण॥
हत्या कबहुँ न छूटि है। जो कोटिन सुनो पुराण॥२१२॥

टीका गुरुमुखः—अरे! ये जीव अपनी गाफिलीसे बड़ा लाचार भया है। याको मारो मत, दुःख मत् देवो। अरे! जैसा अपना जीव, वैसा सबका जीव। यामें कुछ भेद नहीं। अगर जीव-हिंसा करोगे, तो उसकी हत्या कधी छूटनेकी नहीं। जो कोटि पुराण सुनोगे, तो भी जीवका दाइया (बदला) कुछ छूटनेका नहीं। क्योंकि पुराण-शास्त्रादि बानी सब जड़। याको सुननेसे चैतन्यका दाइया कुछ छूटनेका नहीं। याते दया धारण करो! ये अर्थ। जो तुम दया रक्खोगे,

तो तुम्हारे पर भी दया होयगी; औ बैर-घात रक्खोगे, तो तुमपर भी बैर-घात होवेगा। ये अर्थ ॥ २१२ ॥

साखीः-जीव घात ना कीजिये ! बहुरि लेत वै कान ॥
तीरथ गये न बाँचि हो ! जो कोटि हीरा देहु दान॥२१३॥

टीका गुरुमुखः—जीव घात कधी न करना। अगर करै तो लौटके दूसरा तन धरके बदला लेयगा। चाहे महातीर्थनमें जायके कोटिन हीरा दान करो ! तब भी जीवका बदला कछु छूटनेका नहीं। क्योंकि तीर्थ औ दान जड़। ये चैतन्यका बदला चुका सकनेके नहीं। ये अर्थ ॥ २१३ ॥

साखीः-तीरथ गये तीन जना। चित चञ्चल मन चोर ॥
एकौ पाप न काटिया। लादिनि मन दश और ॥२१४॥

टीका गुरुमुखः—तीर्थ तीन प्रकारके। बाहिर तीर्थ—गङ्गादि, पुष्करादिक; अन्तर तीर्थ—इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्नादिक; तृतीय ज्ञान-तीर्थ। सो तीन जन तीन तीर्थको गये। चित्त कहिये ज्ञानी, सो ज्ञान-तीर्थमें गये औ आत्मा बने, तो एकौ पाप काटा गया नहीं। सकल पापके अधिष्ठान भये औ दश मन पाप अपने शिर ऊपर लाद लिये। अरे ! पहिले एक देहमें थे तो एक देहके पापके अधिकारी थे, औ आखिर आत्मा भये तो सकल देहके पापके अधिकारी भये। 'दशों दिशामें पूर्ण हौं' ऐसा माना सोई दश मन पाप लाद लिया। पाप कहिये दुःख औ पाप कहिये कर्त्तव्य। सो एक भी कर्त्तव्य ज्ञानसे छूटा नहीं। जो सर्व आत्मा हुआ, तो सकल कर्त्तव्य इसपर आये। ये अर्थ। औ चञ्चल कहिये कर्मी-उपासक रजोगुणी, सो बाहिर तीर्थनमें गये। तासे एक भी अभिमान औ कल्पना कटी नहीं। अभिमान-कल्पना सोई पाप। सो दश मन = चार वेद, छौ शास्त्र; इनकी मानन्दी औ अभिमान शिरपर चढ़ा। एक भी कटा नहीं। कि हम बड़े उपासक, हम बड़े तीर्थवासी, हम बड़े कर्मी, हम बड़े वैदिक, हम बड़े शास्त्री, हम बड़े मान्त्रिक, हम बड़े पवित्र, हम बड़े कुलीन, हम बड़े वैरागी, हम बड़े धर्मात्मा; ये दश मन पाप ऊपर लाद लिया, ताते नाना दुःखभोगी भये। जैसा कर्त्तव्य करना, वैसा भोग भोगना—ये पीछे लगा। ये अर्थ। औ चोर कहिये योगी, जो सुषुम्ना-तीर्थनको प्राप्त भये औ दश इन्द्रीकी मानन्दी, सोई

दश मन पाप शिरपर लाद लिये । इन्द्री, मन औ प्रकृति सब लय करना, तत्र मुक्त—ऐसा मानके समाधि, प्राणायाम करने लगे, पवन चुराने लगे । ताते दश इन्द्रीकी वासना उनके भीतर रही औ भीतरकी इन्द्रीसे शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि विषयोंमें आसक्त भये । मुद्रादि रूप देखने लगे, अनहद शब्द सुनने लगे, अन्तःकरणादि स्पर्श करने लगे, अमृतादि रस चाखने लगे, अष्ट पद्मादि गन्ध लेने लगे । इस प्रकारसे सूक्ष्म विषय-भोक्ता भये । तो स्थूलसे सूक्ष्म, सूक्ष्मसे स्थूल ओत-प्रोत दश प्रकारके विषय अपने ऊपर लादे । एक विषय भी इनसे कटा नहीं । ताते देह-त्याग होय उपरान्त फिर गर्भवासका दुःख इनको बना है, कछु छूटा नहीं । पाप कहिये विषय । ताते ज्ञान, उपासना, योग—ये ही तीन मार्ग दुःख छूटनेको बनाये; परन्तु परखके देखो तो इनसे एक दुःख भी छूटा नहीं । ये अभिप्राय ॥ २१४ ॥

साखीः—तीरथ गये ते बहि मुये । जूड़े पानि नहाय ॥
कहहिंकबीर सुनो हो सन्तो ! राक्षसहोय पछिताय ॥२१५॥

टीका गुरुमुखः—इन तीनों प्रकारके तीर्थको जो गये, सो धोखेमें बहिके मरे । कोई प्रयागको गये औ कल्पवास किया । देहमें तामस लायके ठण्ढेमें परे औ जूड़े पानीमें जल-शयन किया, नहाया । औ अन्न-वस्त्र छोड़के देहको महाकष्ट देके जूड़े पानीमें नहाते फिरते हैं । ये तामसी कर्मनसे राक्षसादि योनि पावेंगे और पीछे बहुत पछितायेंगे । ये अर्थ । तामसी जीव सोई राक्षस, ये गीताहूका प्रमाण है ॥ २१५ ॥

साखीः—तीरथ भई विष बेलरी । रही युगन-युग छाय ॥
कबिरन मूल निकन्दिया । कौन हलाहल खाय ? ॥२१६॥

टीका गुरुमुखः—तीन प्रकारके तीर्थ सोई विषकी बेली भई औ युगान-युगसे जीवनपर छाय रही, सकल जीवनको गाफिल किया । युगानयुगसे गुरुवा लोगोंने मूल निकन्दिया । मूल नाम मनुष्य; ताको गुरुवनने औ वेदने भरमाया । अब इनके सङ्ग हलाहल कौन खायगा ? अब कौन उपाधिमें पड़ेगा ? जो बेपारखी होयगा सो खायगा । पारखीको इनसे कौन काम ? । ये अर्थ ॥ २१६ ॥

साखीः—ये गुणवन्ती बेलरी । तव गुण बर्णि न जाय ॥
जड़ काटे ते हरियरी । सींचे ते कुम्हिलाय ॥२१७॥

टीका गुरुमुखः—बेलरी कहिये बानी, बानी कहिये कल्पना। सो हे गुणवन्ती कल्पना ! तेरा गुण वेदसे भी नहीं वर्णा जाता। अरी कल्पना ! सकल गुण = वेद, शास्त्र, चौदह विद्या, चौसठ कला तेरेसे पैदा भईं औ जीव सब बन्धमान होके तेरे विषयमें भूल गये। तो तेरी जड़ = पञ्चमुखी अहङ्कार; सो ताको विवेक-शस्त्रसे काट डारना तो ये जीव सुखी होता है। नहीं तो ब्रह्म-आत्मा, ईश्वरादि, स्वर्गादि, जगतादि-वासनारूपी जलसे तेरेको जो सींचते हैं, वे जीव कुम्हिलाते हैं, तेजहीन–गाफिल होके गर्भवासको जाते हैं ! ये अर्थ ॥२१७॥

साखी:–बेलि कुढङ्गी फल बुरो। फुलवा कुबुद्धि बसाय ॥
ओर विनष्टी तूमरी। तेरो सरो पात करुवाय ॥२१८॥

टीका गुरुमुखः—कल्पना--बानी कुढङ्गी, जाके अनेक मार्ग औ अनेक सिद्धान्त जीवको भरमाय देते हैं। औ बानीके फल—अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष; सो बूरे ! जीवको बन्धन हैं। औ फुलवा = कुबुद्धि-कर्म जगत्में बसाय रहा है। जैसा कर्म करना, वैसा भोगना—ये वासना जगत्में फैल रही है। औ हे कल्पना! बानी ! पहिली ओर हंसरूपलों तेरी पहुँच भई नहीं। ओर कहिये ऐली तरफ ब्रह्मानन्दमें तेरा विनाश हुआ, ताते तेरा सरो पात = वेद मेरेको कड़ुवा मालूम होता है। जीवको बन्धनकारी है, ताते बुरा मालूम होता है। ये अर्थ ॥२१८॥

साखी:–पानी ते अति पातला। धूवाँ ते अति झीन ॥
पौनहु ते उतावला । सो दोस्त कबीरन कीन्ह ॥२१९॥

टीका गुरुमुखः—पानीसे अति पातला औ धुएँसे अति सूक्ष्म मन। ता मनसे दोस्ती सकल जीवनने किया, ताते सोई मन इनको चौरासी भरमाता है। औ जीवकी दोस्तीसे चैतन्य होता है, नहीं तो मन जड़ है। ये अर्थ ॥२१९॥

साखी:–सतगुरु बचन सुनो हो सन्तो ! मति लीजै शिरभार ॥
हो हजूर ठाढ़ कहत हौं ! अब तैं समर सँभार ! ॥२२०॥

टीका गुरुमुखः—सतगुरु = ब्रह्मा; ताका वचन वेद। सो हे सन्तो ! वेद-का वचन सुनो औ परखो ! उसका भार = धोखा शिरपर मत् उठाय लेना। जो कोई सृष्टिका आदिकर्त्ता है, सो जीव ही है। दूसरा कर्त्ता कोई नहीं। तू पारखपर ठहर ! मैं यथार्थ समझायके कहता हौं। औ अन्तःकरण चतुष्टय औ दश

इन्द्री औ चार वेद, छै शास्त्र, अठारह पुराण; इनसे तेरा युद्ध मचा है। सो तू सम्भारके इनसे समर करेगा तो जीतेगा। नहीं तो माया तेरेको गाफिल करके समरमें जीत लेवेगी। ताते युद्धमें घबराना नहीं। जो कछु है सो तू ही है। तू सम्भाल! ये अर्थ ॥ २२० ॥

साखीः-वो करुवाई बेलरी। औ करुवा फल तोर ॥
सिद्ध नाम जब पाइये। बेलि बिछोहा होय ॥२२१॥

टीका गुरुमुखः—हे माया! हे कल्पना! तू बहुत बुरी! जो चैतन्य जीवको तूने अचेत किया। औ तेरा फल = सिद्धान्त भी बुरा; जो सकल जीवन-को बन्ध किया। तब गुरुका उपदेश पूर्वार्धमें ऐसा ठहरा कि कल्पना औ माया, ये जीवको बन्धन हैं। तो याका त्याग करना! सो या उपदेशके ऊपर माया गुरुवा लोग अपनी कोटि सिद्ध करते हैं, सो सुनो—उत्तरार्द्ध—'सिद्ध नाम जब पाइये। बेलि बिछोहा होय।' मायामुखः—जब कल्पना-मायासे रहित भया जीव, तब 'सिद्ध' नाम पाया। आप ही ब्रह्म बना। ये अर्थ। अब याका निराकरण एक साखीमें गुरु करते हैं—॥ २२१ ॥

साखीः-सिद्ध भया तो क्या भया? चहुँदिशि फूटी बास ॥
अन्तर वाके बीज है। फिर जामनकी आस ॥२२२॥

टीका गुरुमुखः—सिद्ध भया, ब्रह्म भया तो क्या भया? एकोहं कहके चहुँदिश जगत् होके फूटा = प्रकटा, अनेक भया औ सर्वत्र बसा। ये ही स्वरूप समझके फिर ब्रह्म बना। पर अन्तर याके जगत्का बीज है, तो फिर भी फूटेगा, अनेक होयगा। जो इसने 'मैं' ऐसा भास माना है, सोई बीज आदिमें इसे ले उठा है औ अब भी उठेगा। ताते माया--कल्पनाका भी त्याग करना औ ब्रह्म भी न होना। दोनोंको परखके स्वच्छ पारखपर ठहर रहना। ये अर्थ ॥२२२॥

साखीः-परदे पानी ढारिया। सन्तो! करो विचार ॥
शरमा-शरमी पचि मुवा। काल घसीटनहार ॥२२३॥

टीका गुरुमुखः—हे सन्तो! तुम विचार करके देखो—इन गुरुवा लोगोंने पाप-पुण्यका औ ब्रह्म-स्थितिका परदा देके बानी ढार दिया, संसारमें दृढ़ कर दिया। सो अब वह बानीका पक्ष सबनको पड़ा, ताते शरमा-शरमी पचि मरा औ

उनकी मानन्दी उनका काल बनी । सो संसारमें घसीटा-घसीटी चौरासीमें फिरता है । ब्रह्म है सोई परदा । जामें हंस गाफिल भया, सोई परदेके आसरे सकल वानी ढारी । ताते जीव पारख-पद पाता नहीं औ शरमा-शरमी पचि-पचिके धोखेमें मरता है । इनका अनुमान इनको चौरासीमें घसीटता है । हे सन्तो! तुम विचार करके देखो ! औ परदा फारके पारख-स्थितिको प्राप्त होओ । ये अर्थ ॥ २२३ ॥

साखीः—अस्ति कहौंतोकोइ न पतीजै। बिना अस्तिका सिद्धा॥
कहहिं कबीर सुनो हो सन्तो। हीरी—हीरा बेधा ॥२२४॥

टीका गुरुमुखः—अस्ति = जीव, ताको अस्ति = पारख कहता हौं तो कोई परतीत करता नहीं, औ बिना अस्तिका सिद्ध = ब्रह्म बना है । बिना अस्ति कहिये नास्ति, जो कुछ नहीं । मिथ्या धोखा ब्रह्म, ताहीको मानके सिद्ध हो रहा है । एक जीव अस्ति, औ सब नास्ति । पर कोई परतीत करता नहीं । सब धोखेमें भूले । हीरी कहिये, माया कहिये, काया कहिये, कल्पना कहिये बानी, स्त्री; सो ताने हीरा = जीव बेधा । जीवमें बेध गई, ताते अस्ति पदकी प्रतीति जीवको नहीं आती । बिना अस्तिका सिद्ध बन रहा है, नास्ति पदका गुलाम हो रहा है । ये अर्थ ॥ २२४ ॥

साखीः—सोना सज्जन साधु जन ! टूटि जुरैं सौ बार ॥
कुजन कुम्भ कुम्हारका । एकै धका दरार ॥२२५॥

टीका गुरुमुखः—सोना, सज्जन, साधुजन--इनका एक स्वभाव है मृदु, ताते सौ वक्त टूटके जुट सकते हैं । औ अज्ञानी विषयासक्त--कामी, क्रोधी, लोभी, मोही जो जीव हैं, सो माटीके घड़े माफिक कठिन हैं । एक धक्केमें फूट जाते हैं फिर कधी जुटते नहीं । ये अर्थ ॥ २२५ ॥

साखीः—काजर केरी कोठरी। बुड़ता है संसार ॥
बलिहारी तेहि पुरुषकी। जो पैठिके निकरनहार ॥२२६॥

टीका गुरुमुखः--काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय आदि सकल प्रपञ्च, सोई काजरकी कोठरी । यामें सब संसार बूड़ता है । जो यामें पैठके, फिर विचार करके सम्भारके निकरा, पारखपदको प्राप्त भया, ताही पुरुषकी बलिहारी । औ

काजर कहिये अज्ञान, ताकी कोठरी देह। सो सकल जीव इस देहमें पैठे हैं औ देह-विषयमें सब बूड़ रहे हैं। परन्तु वह पुरुषका बलाय सब दूर भया, बलाय कहिये दुःख, सो आवागमन आदि दुःख वाही पुरुषका विनाशा, जो पैठके बाहर निकरा, सब परखके पारखरूप हुआ। ये अर्थ ॥२२६॥

साखीः--काजर ही की कोठरी। काजर ही का कोट॥
तोंदी कारी ना भई। रहा सो ओटहि ओट !॥२२७॥

टीका गुरुमुखः---काजरकी कोठरी देह औ काजरका कोट संसार, तोंदी = नाभि, नाभि कहिये वृत्ति। सो देह पायके महाअज्ञानरूपी संसार, तामें जीव रहा; परन्तु पारखके प्रतापसे जाकी वृत्ति मलिन न भई, सो विचारकी ओटसे पारख-भूमिकापर आयके रहित भया। ये अर्थ। ये गुरुका सिद्धान्त भया। अब मायाका उपदेश सुनो—॥ २२७॥

साखीः--अर्ब-खर्ब ले दर्ब है। उदय अस्तलों राज !॥
भक्ति महातम ना तुले। ई सब कौने काज ?॥२२८॥

टीका मायामुखः—अर्ब–खर्ब ले द्रव्य मिला औ उदय–अस्तलों राज मिला; परन्तु सब नाशवान्। कुछ कामके नहीं। भगवत्-भक्तिके महात्म्यको कुछ तुलता नहीं। द्रव्य, राज अनीश्वर। ताते भगवत्-भक्ति बिना जीवकी मुक्ति नहीं। ये अर्थ॥ २२८॥

साखीः--मच्छ बिकाने सब चले। धीमर के दरबार॥
अँखिया तेरी रतनारी। तू क्यों पहिरा जार ?॥२२९॥

टीका गुरुमुखः—ये मायाका उपदेश भक्ति-महात्म्य सुनिके भक्ति करनेके वास्ते गुरुवा लोगोंके दरबारमें जीव सब बिकने चले, सो वहाँ वेद, शास्त्र, पुराण, मन्त्र–तन्त्रके जालमें पड़े। ताते गुरु कहते हैं कि अँखिया = तेरी बूझ-बुद्धि आदि होते हुए तूने ये जाल काहेको पहिरा ? क्यों बन्धमान् भया ?। ये अर्थ॥ २२९॥

साखीः—पानी भीतर घर किया। सेज्या किया पतार॥
पासा परा करीमका। तब मैं पहिरा जार॥२३०॥

टीका जीवमुखः—बानी जैसी गुरुके मुखसे वेदान्त-शास्त्रके प्रमाणसे सुनी, तैसा मनन किया। फिर सब अनात्माका त्याग औ आत्माका ग्रहण करके निदिध्यासन किया। फिर सब अनात्मा पदार्थकी यथार्थ विस्मृति औ अपनी स्मृति करके, ध्याता—ध्यान—ध्येय त्रिपुटी नाश करके गुरु-वाक्यमें तदाकार हुआ औ त्रिकुटी, श्रीहट, गोल्हाट—ये तीनों छोड़के पतारमें सेज्या किया, औटपीठ स्थानपर जायके समाधि किया औ ब्रह्म हुआ। पर मैं मूलका भी ब्रह्म हौं। ये तो बीचमें मायाका पासा परा, तब मैंने प्रपञ्चरूपी जाला पहिरा। सो मिथ्या भ्रान्ति। मैं ब्रह्म सत्य। ये अर्थ ॥ २३० ॥

साखीः—मच्छ होय नहिं बाँचिहो! धीमर तेरो काल ॥
जेहि-जेहि डाबर तुम फिरो। तहाँ-तहाँ मेले जाल॥२३१॥

टीका गुरुमुखः—अरे! मच्छ होके श्वास परसे उलटे चढ़े औ पतारमें समाधि किया; पर जब चोला छूटेगा, तब गर्भवाससे बचनेका नहीं। औ तेरा अभिमान सोई तेरा धीमर तेरे सङ्ग है। सो तू जेहि-जेहि चोलेमें जायगा, तहाँ-तहाँ अपने करतूत औ मानन्दीका जाल तेरे ऊपर डारेगा। ये अभिप्राय। औ मच्छ कहिये जीव। सो जीव होय संसारमें तुम बचनेके नहीं। ये धीमर = गुरुवा लोग तेरे काल हैं। तो जो-जो मतके सङ्गमें तू जायगा, तहाँ-तहाँ कर्म, उपासना, योग, ज्ञानका जाल तेरे ऊपर फेकेंगे। सो तू उसीमें अरुझके मरेगा औ गर्भवासमें जायगा। बिना पारख गर्भवाससे बचता नहीं। ये अर्थ। विषय सोई जाल औ विषयी जीव सोई मच्छ, कामिनी सोई धीमर, काम सोई जाल, चौरासी लक्ष योनि सोई चौरासी लक्ष डाबर। ये अर्थ ॥ २३१ ॥

साखीः—बिनरसरीगरसकलोबन्धा। तासो बन्धा अलेख ॥
दीन्हा दर्पण हस्तमें। चश्म बिना क्या देख? ॥२३२॥

टीका गुरुमुखः—अरे! बिना रसरी सबका गरा बाँधा गया। कल्पनामें, भ्रान्तिमें बन्ध भया। सब जगत्को भ्रान्तिका कारण अलेख ब्रह्म। जो प्रथमारम्भमें हंसको गाफिली भई, ताहीका नाम अलेख ब्रह्म। तासों एकसे अनेक होयके सकल जीव बँधे औ जड़वत् गाफिल हुए। अब सकल ज्ञानग्रन्थ भी जो हाथमें दिये, पर पारख बिना क्या देखेंगे? जैसा जन्म-अन्ध, ताके हाथमें

दर्पण दिया तो आँखि बिना क्या मुँह देखेगा ? तद्वत् मनुष्यको स्वयं पारख होना, तब सकल शब्दका विचार औ धोखा मालूम होगा। अरे! ये मनुष्य तो अपनी गाफिलीसे आप ही बन्ध हो रहा है। इसको किसीने बाँधा भी नहीं औ पकड़ा भी नहीं। तो ऐसे जन्मअन्ध पारखहीनको नाना प्रकारके विचार भी इसके हाथमें देओ तो क्या देखेगा ? औ क्या गुरुपदको प्राप्त होयगा ?। ये अर्थ ॥ २३२ ॥

साखीः—समुझाये समुझै नहीं। पर हाथ आपु बिकाय ॥
मैं खैंचत हौं आपको। चला सो यमपुर जाय ॥२३३॥

टीका गुरुमुखः—बहुत प्रकारसे खोल-खोलके जीवनको समुझाता हौं; परन्तु ये कुछ समझते नहीं औ पराये हाथमें बिकाय जाते हैं, जबरदस्ती बन्धमान् होते हैं। पराया हाथ कहिये गुरुवा लोगोंके हाथ, नारीके हाथ, बानीके हाथ, कल्पना-मायाके हाथ, औ कायाके हाथ, विषयनके हाथ गाफिलीसे बिकाय गये। मैं पारखके ऊपर हरस्हरतसे खैंचता हौं; परन्तु जीव मेरी बातपर नजर नहीं करते, विषयनमें बन्धे हुए यमपुर = गर्भवासमें चले जाते हैं। और इस मानुषको केता भी समुझाओ; परन्तु एकाएकी समझनेका नहीं। विषयनमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें बिकेगा, आसक्त होयके विषयनका गुलाम होयगा। मैं अपनी तरफ खैंचूँगा। वो चला विषयनमें, भोगमें जायगा। ताका उपाय गुरु बोलते हैं—॥ २३३ ॥

साखीः—नितखरसानलोहाघुनछूटै।नितकीगोष्टमायामोहटूटै॥२३४॥

टीका गुरुमुखः—जैसा लोहेपर मुरचा चढ़ा रहता है, तैसा जीवपर बहुत दिनका विषयनका मुरचा चढ़ा है, ताते मनकी आसक्तता जीवसे छूटती नहीं औ मुरचेके मारे जीवको स्वरूप-विचार कुछ सूझ पड़ता नहीं। मुरचा कहिये आसक्तता। सो गुरुका विचार सारशब्द, ताका निर्णय नित्य करना, जबलग यथार्थ आसक्तता न छूटे। जैसे रोज खरसानपर चढ़ानेसे लोहेका गुण तेज निकरता है औ मैल भी झर जाता है। तैसा अनेक योनिके अनेक विषय जीवके ऊपर लगे हैं, ताते जीव मलिन, तेजहीन लाचार कुछ समझता नहीं। माया-मोहमें बन्धायमान है। ताते जबलग देह औ देह-सम्बन्धी व्यवहार है, तबलग सत्सङ्गमें

विचार करते रहना ! जामें सकल योनिका मल औ माया, काया, गुरुवा, स्त्री, वेदबानीका मोह औ मायाकी आसक्तता सकल टूटके जीव स्वच्छ पारख-पदको प्राप्त होयगा। ये अर्थ ॥ २३४ ॥

साखीः-लोहा केरी नावरी। पाहन गरुवा भार ॥
शिरपर विषकी मोटरी। चाहै उतरन पार ॥२३५॥

टीका गुरुमुखः—लोहा = वेदबानी, ताकी बनाई नाव भवसागरसे पार होनेके वास्ते। औ पाहन कहिये मन। सो ता मनका बोझ उस नावपर दिया। औ विष कहिये बानी। ता बानीका विषय—ब्रह्म, ईश्वर, स्वर्गादि-प्राप्ति, सोई मोटरी शिरपर मान लिया औ भवसागरते पार उतरना चाहता है, तो कैसे पार उतरेगा ? जा बानीमें मन लगायके उसका विषय शिरपर माना है, सोई विषय औ मन नाव सहित याको लेके भवसागरमें बूड़ेगा। कधी निकरने देनेका नहीं। ये अर्थ ॥ २३५ ॥

साखीः-कृष्ण समीपी पाण्डवा। गले हिंवारे जाय ॥
लोहाको पारस मिलै। तो काहेको काई खाय? ॥२३६॥

टीका गुरुमुखः—देखो ! जो सदा कृष्णके समीप रहते थे पाण्डव, औ अर्जुन कृष्णके परम भक्त थे, तिनकी कौन गति भई ? जो अन्त समय कृष्णने देह त्याग किया, तब पाण्डव दर्शनको आये थे। सो उनकी सकल शक्ति अपनी कलासे कृष्णने हर ली औ उनको कहा कि जायके हिमालयमें गलो, तब स्वर्गमें आओगे। ऐसी गति उनकी भई। जो कृष्णके अधिक प्रिय थे, सो हिमालयमें गले। आगे इन्द्रलोकको गये औ जो कछु पुण्य किये थे, सो भोग करके फिर मृत्युलोकमें आये। ऐसा 'भविष्य उत्तर पुराण'में व्यासजीने कहा। तो लोहाको पारस मिला तो सुवर्ण होयगा। फिर मुरचा काहेको लगेगा ? औ जो जीवको स्वरूप प्राप्त भया, फिर उसे हिमालयमें गलनेका क्या काम ? औ स्वर्गमें जानेका क्या काम ? औ मृत्युलोकमें आनेका क्या काम ? तो देखो ! कृष्णके परम विश्वासी औ समीपी पाण्डव थे, सो भवसागरमें नाव, मोट, बोझे सहित बूड़े। अब इस गीता, भागवतके पीछे हे मनुष्य लोगो ! तुम क्यों भूले हो ? जिनको कृष्णने गीता-भागवत उपदेश किया, तिन पाण्डवनकी गति तो ऐसी

भई कि आवागमनमें रहे। तो तुम आवागमनसे कैसे चोगे ? कभी नहीं बचनेका। ये अर्थ ॥ २३६ ॥

साखी:-पूरब ऊगै पश्चिम अथवै। भखे पवनके फूल ॥
ताहूको राहू ग्रासै। मानुष काहेक भूल ? ॥२३७॥

टीका गुरुमुख:—पूरब कहिये प्रथमारम्भमें जो उदय भया ज्ञान एकोहं, सो हङ्कारके पक्षमें डूब गया, ताते अविद्याके वश होयके अनेक हुआ। अब सोई जीव पवनके फूल भखता है। पवनके फूल कहिये चार वेद, छौ शास्त्र, अठारह पुराण। बानी-मात्र पवनका फूल, ताको बहुत विचार करके, फिर 'मैं एक ब्रह्म सर्वसाक्षी' ऐसी बानी अनुभव सहित ग्रहण करता है। फिर ताहूको राहू ग्रास करता है। विज्ञान कैवल्य असिपद ब्रह्म भी जो हुआ, तब भी मायाने उसे खाय लिया, गाफिल किया औ़र जगत्में खैंच लाया। वही ब्रह्म आदि-मायाके पक्षमें बूड़ा औ अनेक जगत् हुआ। अब हे मनुष्य ! तुम क्यों भूलते हो ? औ ब्रह्म बनते हो ? अरे ! प्रथमारम्भमें तेरेमें आनन्द उगा। ता आनन्दके पक्षमें अथय गया, ताहीते पक्का जायके कच्चा हुआ औ अनेक रूप होके अनेक बानी बोला, ताहीमें फँसा। सोई मानुष तू है। अब फिर क्यों भूलता है ? औ आदि-का मानुष था, सो ताहूको राहू मायाने ग्रास किया। सोई माया तेरे पीछे लगी है। तू उसमें भूलो मत्। परखके आसक्तता छोड़ न्यारा हो। ये अर्थ ॥२३७॥

साखी:—नैनन आगे मन बसै। पलक-पलक करे दौर ॥
तीन लोक मन भूप है ! मन पूजा सब ठौर ॥२३८॥

टीका गुरुमुख:—नैननके आगे मन बसता है, रहता है औ जेती पलक लगती है, तेती दौड़ करता है। मनके दो पाँव; औ दो पङ्ख दहिने, दो पङ्ख बाँयें—ये चार पङ्ख। काया कमलका बासी है; पर शिर, मुख कुछ है नहीं। मन मानै तिधर उड़ा जाता है। नाम है सोई धड़, औ श्वासा सोई पाँव--इङ्गला-पिङ्गला। आँखोंकी चारों पलकें सोई चार पङ्ख। ये सूक्ष्म मन वर्णन किया; औ सूक्ष्म मनसे माना जाय सो स्थूल मन। तो देह आदि ब्रह्म पर्यन्त जेती मानन्दी होय, सो सब मन। ताते तीन लोकमें सब ठिकाने मनहीका पूजन, मनहीका ध्यान, मनहीका जाप, मनहीका ज्ञान, मनहीका योग, मनहीका वैराग्य, मनही-

की भक्ति, मनहीकी उपासना होती है । औ तीनलोकका राजा मन है । मनके रूप पाँच—स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण, कैवल्य; ये पाँच रूप करके मन है । जो मन नहीं तो पाँचों भी मिथ्याभूत । ताते इस मनको परखे औ मनके फन्देमें न परै, सो पारखी । ये अर्थ ॥ २३८ ॥

साखीः—मन स्वारथी आप रस । विषय लहर फहराय ॥
मनके चलाये तन चलै । जाते सरबस जाय ॥२३९॥

टीका गुरुमुखः—मनका अर्थ विषय । सो उसमें विषयकी लहर सदा उठा करती है । विषय बिना मनको दूसरा स्वाद कुछ नहीं । मनके चलाये तन चलता है, ताते जीवकी शुद्ध बुद्धि आदि सकल सम्पत्ति जायके विषयमें बन्ध हो जाती हैं । ताते मनकी लहर बचाओ ! ये अर्थ ॥ २३९ ॥

साखीः—कैसी गति संसारकी । ज्यों गाडरकी ठाट ॥
एक परा जो गाड़में । सबै गाड़में जात ॥२४०॥

टीका गुरुमुखः—जैसे एक भेड़ी पानीके खाँचमें परी तो उसकी देखा-देखी सब भेड़ी खाँचमें चली जाती हैं; तैसी गति संसारकी भई । एक पहिला पुराण पुरुष जो धोखेमें औ बानीमें परा, सोई धोखे औ बानीमें सब संसार पड़ा चला जाता है । कहते हैं कि जैसे-जैसे बड़े-बड़े चले हैं, औ उन्होंने जो प्रमाण किया है, सो आपने भी प्रमाण करके चलना ! जड़ पशु-न्याय संसार बन्ध होयके गर्भवासमें चला । कोई विचार करके नहीं देखता । मनने सबको गाफिल करके नचाया । ये अर्थ ॥ २४० ॥

साखीः—मारग तो कठिन है । वहाँ कोई मत जाव ! ॥
गये ते बहुरे नहीं । कुशल कहै को आव ? ॥२४१॥

टीका गुरुमुखः—मार्ग कहिये कर्ममार्ग, योगमार्ग, उपासनादि भक्तिमार्ग, ज्ञानमार्ग, दक्षिणमार्ग, वाममार्ग; ये सब मार्ग मनके हैं, औ महाकठिन हैं । जीवको स्वतः स्वरूपसे मिलने नहीं देते, भरमाय देते हैं । ताते उन मार्गोंमें औ उनकी सङ्गतिमें कोई मत् जाओ ! जो कोई आगे गये हैं सो लौटे नहीं, वहाँ ही मनके रूप हो गये । अब उनका कुशल कौन कहै ? मनके ही रूप होके भ्रम-चक्रमें परे, महा दुःखमें परे । ये अर्थ ॥ २४१ ॥

साखीः--मारी मरे कुसङ्गकी । केरा साथे बेर ॥
वै हालै वै चींधरे । बिधिना सङ्ग निबेर ॥२४२॥

टीका गुरुमुखः—कुसङ्गका मारा ये जीव मरता है। कुसङ्ग कहिये कायाका सङ्ग । सो देखो ! जीव अमर होके कायाके सङ्गमें मरता है। जैसे केराका झाड़ बेरके झाड़के सङ्गमें उगा औ रहा। जब पवन चला, तब बेरका झाड़ हिलने लगा, तो केराका झाड़ सब फटने लगा, चींधी-चींधी हो उड़ने लगा। तैसा ये जीव मन-माया, देह; ताका सङ्ग करके ताहीके मारे मरता है। जब देहमें विषयरूपी बयार चलने लगा, तब तन-मनको हिलाय दिया। सो जीवकी चींधी उड़ने लगी। क्षीण, तेजहीन होने लगा। ताते 'विधिना सङ्ग निबेर।' विधि कहिये ब्रह्मा, ब्रह्मा कहिये रजोगुण, रजोगुण कहिये नरदेही। सो नरदेह पायके सकल सङ्गका त्याग कर ! पीछे नरदेहकी भी आसक्तताई छोड़ ! सकल निबेरा करके पारखपदको प्राप्त होना। ये अर्थ ॥ २४२ ॥

साखीः—केरा तबहिं न चेतिया । जब ढिग लागी बेर॥
अबके चेते क्या भया ? जब काँटन लीन्हा घेर॥२४३॥

टीका गुरुमुखः—ये जीव तभी चेता नहीं, जब पक्कीसे कच्ची देह भई। औ अब नाना दैहिक, दैविक, भौतिक दुःखनने घेरा, सो देखके चेता। अब समझा कि ये जगत् महा दुःखरूपी है। तो अबके चेते = समझे क्या ये जगत्के सब दुःख छूटते हैं ? औ जब गाफिली पड़ी थी, पक्केसे कच्चा बना था, वही समय जो अपने पक्के रूपको समझता, तो ये संसार-दुःख काहेको पैदा होता ? आपी-आप सुखी रहता। तो ता समय याको ये फहम क्यों नहीं आई कि दुःखरूपी संसार पैदा होयगा, तामें मैं दुःखित होऊँगा ? ये शङ्का। तो प्रथम याने जो कभी दुःखरूपी संसार देखा होता सो मालूम रहता औ आगे जगत्-कारणकी इच्छा न करता। परन्तु याने दुःखरूपी जगत् कधी सपनेमें भी नहीं देखा था। सुखरूपी पक्के तत्त्वनमें आप सुखी रहता था। तो याहूसे और विशेष सुख कुछ होयगा, ऐसा सुखके भरोसेसे भूला तो दुःखकी प्राप्ति भई*। ये अर्थ ॥ २४३ ॥

*

* टिप्पणीः—साखी २४३ का महाभाष्य—

साखीः—केरा तबहिं न चेतिया । जब ढिग लागी बेर ॥
अबके चेते क्या भया ? जब काँटन लीन्हा घेर ॥२४३॥

महाभाष्य; गुरुमुखः—केलाके झाड़ लगानेवाला तभी सचेत होकर विचार नहीं किया, जबकि केलेके झाड़के ढिग=पासमें बेरका झाड़ उत्पन्न हुआ था । उसने तो बेर भी और केले भी खानेकी आशासे बेरको नहीं उखाड़ा । किन्तु बेरके टेढ़े काँटोंने तो केलेका फूल-फलादिको भी नोंच-नोंचकर टुकड़े-टुकड़े करके फाड़ डाला । ऐसा केलेका विनाश होते देखकर अब अन्तमें चेतनेसे लाभ ही क्या हुआ ? जबकि काँटोंने चारों ओरसे घेर लिया और उस झाड़के केले भी नष्ट हो गये । यदि पहले ही सचेत होता, तब केलोंके फल उसे मिलते ।

तद्वत् केरा=सज्जन मनुष्योंको प्रथम ही सचेत होना चाहिए ! नवयुवकोंमें प्रथमसे ही अनेक प्रकारके दुर्गुण, दुर्व्यसन प्रवेश हुए नहीं रहते हैं । कुसङ्गतिमें लगनेपर धीरे-धीरे दुर्व्यसन, सर्व दुर्गुण एक-एक करके जड़ जमाकर घर कर लेते हैं । अतएव केरा=ये संसारी नरजीव कुसङ्गतिमें लगनेके पहले तभी, न चेतिया=सावधान, सचेत होकर कुसङ्गतिसे होनेवाली हानिको विचार करके उससे अलग नहीं हुए । इसीसे तब तो धीरे-धीरे ढिग=उनके आसपास, नजदीकमें बेर=अनेक प्रकारकी कँटीली विषय-वासना और कुकर्मी, कुमार्गी लोग आ-आ करके प्रेम-प्रीति बढ़ाकर उनके पीछे लग गये, खूब अन्याय, अनीति, पाप, कुकर्ममें फँसा लिये, अनेक प्रकारकी खराब आदत लगा दिये । इस कारण तन, मन, धन, विद्या, बुद्धि आदि सबका विनाश हो गया । जबकि काँटन=काँटोंके समान विषयासक्ति, बुरी आदत, चञ्चलता, अनेक तरहके नशा, कुवृत्ति, कुकर्मने उनको चारों ओरसे घेर लिया, मनुष्य-पद विनाश हो गया, सारी शक्ति क्षीण हो गई । अनेक प्रकारसे दुःख पाकर ऐसी दयनीय अवस्थामें समय बिताकर अब अन्तमें चेतने, समझने, 'मैंने अपनी बहुत हानि की' ऐसा विचार करनेपर भी लाभ क्या हुआ वा क्या होगा ? कोई भी कार्य समय रहते ही करनेसे सफल होता है । समय बीत जानेपर कुछ नहीं होता है । "समय चूक पुनि का पछिताने ?" अतः हितेच्छुक मनुष्योंको प्रथम ही कभी भूलकर भी कुसङ्गतिमें नहीं लगना चाहिये ! सत्सङ्गतिमें लगकर जीवन-सुधार करना चाहिये !

अथवा अनेक मत-पन्थोंमें लगनेवाले केरा=मनुष्य लोग तभी सचेत नहीं हुए, सत्य-असत्य, सार-असार,जड़-चेतनका छानबीनकर यथार्थ बोध भी प्राप्त नहीं किये, पारखी साधु-गुरुके सत्सङ्गकी ओर भी नहीं लगे । विवेक-विचार, न्याय-निर्णय, पारखबोधकी प्राप्ति तो तभी करना चाहिये था, जबकि वे किसी मत-पन्थके मिथ्या पक्षपाती बँधुवे नहीं हुए थे । तब तो कुछ विचार नहीं किये । अपनी ही इच्छासे बेरके समान भ्रम-कल्पनाके काँटोंसे परिपूर्ण गुरुवालोगोंके ढिग=निकट जा-जा करके उनके पीछे लग गये, चेले बनकर अनेक मत-पन्थोंमें जकड़ गये । फिर तो अनुमान-कल्पना, भ्रम-धोखा, ईश्वर-खुदादिकी मानन्दी और भी अनेक काँटेरूप विकार,

साखीः—जीव मर्म जानै नहीं । अन्ध भया सब जाय ॥
बादी द्वारे दादि न पावै । जन्म—जन्म पछिताय ॥२४४॥

जड़ाध्यासने उनके हृदयमें चारों ओरसे घेर लिया, आयु भी बहुत-सी बीत गई, ईश्वरादि भी प्राप्त नहीं हुए। अब अन्तमें पारखी सन्तोंके सद्ग्रन्थ पढ़कर वा कुछ निर्णय सुनकर कुछ चेत, विचार होने लगा। व्यर्थमें मैंने सारा समय भ्रम-धोखेमें लगकर बिता दिया, ऐसा समझकर कोई पश्चात्ताप भी करने लगे। परन्तु जो समय बीत गया, वह क्या अब लौटकर आ सकता है ? नहीं। प्रथम चेते जैसा पूर्ण लाभ हो सकता है ? नहीं। यदि सुधार करेंगे तो थोड़ा-सा बाकीके जीवनका सुधार होगा। नहीं तो वाणीकी भ्रम—कल्पनामें पड़े रहेंगे, तब तो क्या लाभ होगा ? कुछ नहीं। अतः परमार्थी जिज्ञासुजनोंको पहले ही सचेत होकर पारखी साधु—गुरुके सत्सङ्गद्वारा पारखबोध प्राप्त करके सर्व भ्रम—भूल, जड़ाध्याससे रहित हो जाना चाहिये !

अथवा त्रिजाका खुलासा भावः—मनुष्य-देह ही पक्की कर्म-भूमिका है। पक्कीसे कची देह=लोभ, काम, क्रोध, मोहादिमें लिप्त हो गया, वैसा होनेके पहले ही जीव सचेत नहीं हुआ, इसीसे पूर्व अध्यासवश पुनः देह धारण करके त्रयतापमें दुःखी हुआ। दुःख पाकर घबराया, तब जगत् महादुःखरूप है, ऐसा सोचने लगा। परन्तु ऐसा सोचने-मात्रसे पूर्व कर्मोंसे प्राप्त जगत्के त्रयतापका दुःख भोगे बिना नहीं छूटता है। लोभ, काम, क्रोधादि विकारमें पड़नेके पहले ही सचेत होना चाहिये था। वैसा नहीं हुआ। क्योंकि मनुष्यदेह कर्म-भूमिकामें जमा किये हुए सब कर्म-संस्कार पक्के होते हैं, वे फिर हमको अवश्य भोगने पड़ेंगे; ऐसा समझकर सद्गुण धारण करके सत्कर्म करता, शुभ संस्कार टिकाता तो अब संसारमें अनेक दुःख उसे क्यों भोगना पड़ता ? शुभ संस्कारसे अपने-आप सुख पाता रहता। वहाँ शङ्का किया है कि उसी समय अपने कर्मोंका फल पुनः संसारमें उत्पन्न होकर मुझे दुःख भोगना पड़ेगा, ऐसी समझ, ज्ञान जीवको क्यों नहीं हुआ ? ये शङ्का। अनेक जन्मोंका दुःख तो जीवने सर्वथा भूल ही गया। वर्त्तमान मनुष्य-जन्ममें भी प्रथम बाल्यकालमें विशेषरूपसे मानसिक दुःख, चिन्ता, शोक—सन्ताप, विषय-वासनादि सन्मुखमें नहीं रहती हैं। ये सब भोगे, देखे बिना उनके परिणामका दुःख पहले ही अबोध लोगोंको मालूम भी तो नहीं होता है। इस कारण स्त्री आदि पञ्च विषय-भोगोंसे उत्पन्न होनेवाले जगत्के दुःखोंका स्वप्नमें भी बालकको ज्ञान नहीं होता है। इसलिए वह अपने-आप पक्के तत्त्वरूप मनुष्य-शरीरमें एक प्रकारसे बालक मनसे सुखी ही रहता है। युवक होनेपर विषय—भोगादिसे बहुत सुख प्राप्त होगा, ऐसा समझकर सुख—प्राप्तिके आशा—भरोसासे अबोध नरजीव विषय-भोगोंमें भूला। अन्तमें उसे अनेक प्रकारके दुःख ही विशेषरूपसे प्राप्त हुए। उसी अध्यासवश पुनः आवागमनके दुःखमें भी पड़ा ही रहता है। ये समाधान। अतः प्रथम युवावस्थामें ही सचेत होकर मोटी—झीनी मायाजालोंमें नहीं भूलना चाहिये। पारखबोध प्राप्तकर जीवन-कल्याण करना चाहिये। ये भावार्थ॥२४३॥

टीका गुरुमुख:—ये जीव कोई अपना निज मर्म जानते नहीं कि हम पहिले पक्केरूपमें हते, सो विशेष सुख ब्रह्म-झाँई, ताहीके लोभते भूले औ कच्चे तत्त्वनको प्राप्त भये। फिर इच्छा करके विचित्र जगत् निर्माण किये। औ नाना बानी, नाना कल्पना हमने किया तो सबके आदिकर्त्ता हम; ऐसा मर्म न जानके भूले औ दूसरा कर्त्ता अनुमान किये। ताके विषयनमें औ देहके विषयनमें अन्ध भये सब गर्भवासमें चले जाते हैं। कोई यथार्थ परखके देखते नहीं। सब मिथ्या बाद कर-करके बादी बने। सो कोई जन्ममें कोई द्वारे भी इनकी दाद = न्याय लगती नहीं। अनेक जन्म धरके जन्म-जन्म पछताते हैं कि कब दुःखसे छूटेंगे? औ कब मुक्त होवेंगे? परन्तु जबलग सच्चे पारख गुरु नहीं मिलेंगे, तबलग भरमते रहेंगे। ये अर्थ ॥२४४॥

साखी:-जाको सतगुरु ना मिला। ब्याकुल दहुँदिश धाय ॥
आँखि न सूझै बावरा। घर जरै घूर बुताय! ॥२४५॥

टीका गुरुमुख:-जाको सचा पारखपद मिला नहीं, सो व्याकुल होयके चार वेद, छौ शास्त्रके प्रमाणसे दशों दिशामें दौड़ता फिरता है। कहता है कि सर्व दिशामें औ सर्वकालमें मैं ब्रह्म परिपूर्ण हौं, मेरेसे न्यारा कुछ नहीं। तो अनेक दुःखरूपी जगत् औ अनेक उपाधि होती जाती हैं, सो इनकी आँखिनसे सूझतीं नहीं। सब रोग अपने शिरपर धर लेता है। ऐसा ये बावरा = बौराया, दिवाना हुआ, जो घरको तो आगि लगी औ घूरा बुझाता है। तो घूरेके बुझाये घरकी आगि कैसे बुझेगी? तो याका अभिप्राय ऐसा है कि जैसा रोगीको थोड़ा रोग है, तबलग रोग-रोग पुकारता है औ दुःख होता है। औ जब वात, पित्त, कफ आदि सकल रोगनको प्राप्त भया, तब सन्निपात होता है। फिर शरीरमें कुछ दुःख मालूम होता नहीं। विभ्रान्त होके आवबाव बकता है; औ करनेको कुछ, तो करता कुछ ही है। फिर वाको दवाई लगती नहीं। वैसा ही मरता है। तद्वत् वात ज्ञान, औ पित्त योग, औ कर्म-उपासना कफ; ये तीनों इकट्ठे भये, तब विज्ञानरूपी सन्निपात भया। फिर बौराया, आवबाव बकने लगा औ बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़वत् होयके आत्म-दशा जगत्को समुझावने लगा। औ अपना घर पक्का, सो जल गया, याकी खबर कुछ पड़ी नहीं। वैसा ही मरा। तो जाको पारख गुरु न मिले, ताकी गति ऐसी भई, जो बौरायके मरा। ये अर्थ ॥ २४५ ॥

साखीः—बस्तू अन्ते खोजे अन्तै । क्योंकर आवै हाथ ? ॥
सज्जन सोई सराहिये ! जो पारख राखै साथ ! ॥२४६॥

टीका गुरुमुखः—वस्तु तो और जगहपर है और खोजता और जगहपर है, तो कैसे हाथ लगे ? सज्जन विवेकी सोई, जाके पास पारख होय । ताहीको सराहिये ! औ बेपारखी गाफिलको क्या सराहिये ? जो भ्रमचक्रमें परा है । अरे ! वस्तु = जीव तो देहमें है, औ पोथिनमें, पथरनमें, पानिनमें, धातु-मूर्त्तिनमें, काष्ठनमें, स्वर्गादिकनमें खोजते हैं, तो जीव वस्तु कैसे मालूम होवेगी ? ताते पारखी सन्तनकी तारीफ है कि जहाँ वस्तु है, वहाँसे उठाय लेते हैं, जानते हैं कि एक पारख बिना सब भ्रममें पड़े हैं । पारख बिना साँची-झूठी वस्तु कैसे मालूम होवेगी ? ताते जो पारख पास रखते हैं सो पारखी पारखरूप स्थितिवान् सन्त ! उनकी कीर्ति करना ! उनकी स्तुति करना ! उनकी सङ्गति करना ! उनकी सेवा करना ! तन, मन, धन सब खर्च करके उनका विचार ग्रहण करना ! उनसे ही पारख-स्थिति मिलेगी । ये अर्थ ॥ २४६ ॥

साखीः—सुनिये सबकी । निबेरिये अपनी ॥
सेंदुर का सिंधौरा । झपनी की झपनी ॥२४७॥

टीका गुरुमुखः—सब पारखी सज्जनकी बानी लक्ष्य लगायके सुनना ! विचारमें ऐसा लक्ष्य लगाना कि लक्ष्य विचारमें पैवस्त (= समाया हुआ) हो जाय औ दूसरा स्फुरण कुछ न उठै । फिर जैसा पारख पारखी बताते हैं, तैसा अपनी पारख करना ! जैसा सेंदुरका पात्र सिंधौरा, तैसा विचारका पात्र अपना लक्ष्य बनाना । जेता पारखीजन विचार बतावें, तेता सम्पूर्ण लक्ष्यमें ठहर रहै, बाहर जाने न पावे । औ झपनी कहिये देह । देहकी झपनी अन्तःकरण ब्रह्म । सो जगत्से ब्रह्म पर्यन्त सब कल्पना-बानीको परखना औ आप पारखरूप हो रहना ! अथवा देह, अन्तःकरणके ऊपर हो रहना । ये अर्थ ॥ २४७ ॥

साखीः—बाजन दे बाजन्तरी । तू कल कुकुही मति छेर ॥
तुझे बिरानी क्या परी ? तू अपनी आप निबेर ॥२४८॥

टीका गुरुमुखः—संसारके लोग नाना कल्पनामें, नाना मत, बानिनमें बाज रहे हैं, संसक्त (= संबद्ध, अनुरक्त, लीन) हो रहे हैं, तो उनको संसक्त

होने दे ! तू कल कुकुही = वेदुवा, शास्त्री, पौराणिक; इनको छेड़ो मत् ! इनको बानीका पक्ष दृढ़ हो रहा है । ये छोड़नेके नहीं । तो 'तुझे बिरानी क्या परी?' बिराने लोगनसे तुझे क्या काम ? तू अपना निबेरा आप कर । ये अर्थ ॥२४८॥

साखी:-गावै कथै विचारै नाहीं । अनजाने का दोहा ॥
कहहिंकबीर पारसपरसे बिना ! जसपाहन भीतर लोहा॥२४९

टीका गुरुमुखः—गाते भी हैं औ उसका अर्थ भी करते हैं, पर विचार करके समुझते नहीं, तो पारखका स्पर्श कछु होता नहीं । जबलग पारखका स्पर्श नहीं भया, तबलग कुछ पक्का हंस होता नहीं । जैसा पारसका स्पर्श जबलग भया नहीं औ पाथरमें जन्मभर लोहा पड़ा रहे, तो क्या सोना होयगा ? नहीं । औ जङ्ग खायके खराब हो जायगा । तद्वत् जो लाख बरस बानीमें जीव पड़ा रहे, तब भी हंस कधी होनेका नहीं पारख बिना । औ बानीके धोखेमें खराब जड़ हो जायगा, ब्रह्म बन जायगा । ये अर्थ ॥ २४९ ॥

साखी:-प्रथम एक जो हौं किया । भया सो बारह बान ॥
कसत कसौटी ना टिका । पीतर भया निदान ॥२५०॥

टीका गुरुमुखः—प्रथमारम्भमें एक सूक्ष्म अहन्ता हंसमें खड़ी भई, ताके प्रतापसे कच्चारूप निर्माण भया । सो एक ही रूप औ एक ही जीव असल भया । सो बारह बान = सर्वसमर्थवान्, सर्व सिद्धिवान् स्वरूप निर्माण भया; परन्तु कसौटी = पारखपर ठहरा नहीं । सो आखिर पीतर भया, अनेक योनिको प्राप्त भया जीव यह । औ प्रथम एक जो 'अहं ब्रह्म' ऐसा सिद्धान्त जीवने खड़ा किया, ताकी बारह बानी बनी, जाको द्वादश अवान्तर महावाक्य बोलते हैं । परन्तु पारखमें एक भी सत्य ठहरे नहीं । सब पीतर भये । सर्व सिद्धान्त खोटे ठहरे पारखके आगे । ये अर्थ ॥ २५० ॥

साखी:-कबिरन भक्ति बिगारिया । कङ्कर पत्थर धोय ॥
अन्तरमें विष राखिके । अमृत डारिनि खोय ॥२५१॥

टीका गुरुमुखः—ये सांसारिक जीवनने भक्ति बिगार डारी । कङ्कर-पत्थर धोने लगे, जड़-पूजन करने लगे । भक्ति करना चैतन्यकी, साधु-गुरुकी; सो बिगाड़के पाखण्ड मत आचरण करने लगे । अन्तरमें विष = वासना राखके

अमृत = जीवको खो दिया, भूल गये । ये अर्थ ॥ २५१ ॥

साखीः–रही एककी भई अनेककी । बिश्वा बहुत भ्रतारि ॥
कहहिंकबीर काकेसङ्ग जरिहो ? बहु पुरुषनकीनारि ॥२५२॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! ये काया एक जीवकी थी, सो अनेककी भई । ईश्वर, देवता, पाथर, पीतर, तीरथ, मूरत, वेद, शास्त्र, लोग, कुटुम्ब, परिवार, नारी, माता, पिता, इष्ट-मित्रादि अनेककी लौंडी बनी । इसके मालिक बहुत बने । अब किसके सङ्ग जरेगी ये बिश्वा ? विश्वसे पैदा होय औ विश्व अभिमान मानै, सोई विश्वा = काया । औ प्रथमारम्भमें एक जीवकी बानी थी कि 'एकोहं' । याही बानीका प्रसङ्ग करके आप अनेक हुआ, तब अनेकके पास भी वही बानी गई औ बानीके भोक्ता पुरुष अनेक भये । तो देखो ! वेद आदिक जेतिक बानी हैं, तेती जब एकके पास थीं, तब एक भोक्ता था, औ उसके पाससे निकरी, तब अनेक पुरुष भोक्ता भये । ताते बहु भ्रतारि विश्वा कहलाई । याने ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि सकल जीवनको ठगी, पर किसीके पास रही भी नहीं औ किसीके संग रहनेकी भी नहीं । किसीके सङ्ग बहु पुरुषनकी बानी जरी भी नहीं औ जरनेकी भी नहीं । तो अनेक जीव देह धरके मरि–मरि, जरि–जरि गये । बानी जहाँ-की-तहाँ ही बनी है और जीवनको मोहित करनेके वास्ते । अरे ! ये बानी प्रथम एक पुरुषकी रही, सो ताहूको मोहित करके भरमाई और ता पीछे अनेक पुरुषनको भी मोहित किया । सो याहीके फन्देमें विधि, हरि, हरादि सब मर–मर गये । अब पहिले खसमनकी तारीफ करती है ये बानी कि और जो होवेंगे, उनको मोहनेके वास्ते । सो सब मानुष-मात्रको बानीने भ्रमाया । पर एक ये बानीने बड़ा आश्चर्य किया, जो आप तो बहु पुरुषनकी नारी है; परन्तु सब जीवनका पुरुषत्त्व हर लिया औ जीवनको राँड़ बनाके इनके ऊपर अनेक खसम खड़े कर दिये । ताहीकी नारी जीव भी बने । नारीने सबको नारी बनायी । ये आश्चर्य । ताते हे सन्तो ! एक बानी औ अनेक बानी सब जीवको बन्धन हैं औ जीवकी कल्पना हैं । तो तुम बानीको परखो ! सत्य मानके कधी इसके फन्देमें मत् आना । ये अर्थ ॥ २५२ ॥

साखीः–तन बोहित मन काग है । लक्षयोजन उड़िजाय ॥
कबहिंके भरमें अगमदरिया । कबहिंके गगन रहाय ॥२५३॥

टीका गुरुमुखः—तन है सोई जहाज, औ तापर सूक्ष्म मन = कौआ बैठा है, सो स्थिर होने नहीं पाता। नाना सङ्कल्प–विकल्प आदि विषय-बयारमें हिला करता है। जहाँ लक्ष्य लगाता है, तहाँ लाख योजनपर उड़ि जाता है; परन्तु कहीं देह छोड़के इसकी स्थिति नहीं। पीछे देहमें आयके बैठता है। कबहीं तो अगम दरियाव = बानी, तामें भ्रमता है, और कबहीं गमन = अन्तःकरण, तामें समाय जाता है। ये लक्षण सूक्ष्म मनके हैं। औ मन विषयनका आहार करता हैं। ताके सङ्गमें जीव विषय-वासनामें बन्ध होता है औ चौरासी भोगता है। ताते मनका सङ्ग कधी न करिये ! मनके आधीन कधी न होना ! मनको सदा परखते रहना ! ये अर्थ ॥ २५३ ॥

साखीः–ज्ञान रतनकी कोठरी। चुम्बक दीन्हों ताल ॥
पारखि आगे खोलिये ! कूँजी बचन रसाल ॥२५४॥

टीका गुरुमुखः—ज्ञान कहिये जान, चैतन्य चिरञ्जीव, अविनाशी, औ जासे सकल उपाधि अज्ञानजनित जाननेमें आवे, सो ज्ञान सत्य। अज्ञान कहिये अजान, जड़, अचेत, विभ्रान्त नाशवान्। तज्जनित उपाधि कहिये पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश। आकाश-पञ्चक, वायु-पञ्चक, तेज-पञ्चक, जल-पञ्चक, पृथिवी-पञ्चक आदि सकल व्यवहार बोलना मिथ्या भ्रान्तिः; जगत्-चेष्टा स्त्री-पुत्रादिक मिथ्या भ्रान्तिः; वर्ण, कर्म, आश्रम, धर्मादिक मिथ्या भ्रान्तिः; देव ऋषि, पिशाच, मनुष्यादि योनि मिथ्या भ्रान्ति। मैं सत्य पदार्थ। ऐसा निजबोध जाको प्राप्त हुआ, सोई चुम्बकका ताला ज्ञानीने अपने अन्तःकरणरूपी कोठरीको दिया वा देहरूपी कोठरीको मौनरूपी ताला दिया। मौन कहिये जो जगतादि सकल दृश्य-उपाधि मैं नहीं, औ ये मेरी नहीं; ऐसा सर्वकाल जानके अभाव रखना, सोई मौन ताला देहको ज्ञानिनने दिया वा बोधरूपी ताला अन्तःकरणको दिया। सो ताला खोलना पारखीके आगे, तब पारख-पदकी प्राप्ति होय। शीलयुक्त जो अति रसाल = मिष्ट बानी है, सोई मौन औ बोध-रूपी तालेकी कुञ्जी है। औ बानीमें विचार भी रहना। ऐसी बानी जाके पास है, सोई मौन तालेको खोलेगा औ सकल परखके पारखरूप होवेगा। ये अर्थ ॥२५४॥

साखीः–स्वर्ग-पतालके बीचमें। दुई तुमरिया बद्ध ॥
षट दर्शन संशय परी। लख चौरासी सिद्ध ॥२५५॥

टीका गुरुमुखः--नौ नाथ, चौरासी लाख सिद्ध आदि सबके भीतर एक संशय खड़ा भया कि भवसागरके बीचसे कैसे पार होना ? औ परमात्मामें कैसे मिलना ? ताते एक सगुण औ एक निर्गुण--ये दो मत, सो दो तुमड़ी अनुमानी औ अपने हाथसे बन्ध भये और सकल संसारको बन्ध किये। औ जा भवसागरसे पार होनेका औ परमात्मामें मिलनेका छौ दर्शनमें संशय परा था, सो नाभि-त्रिकुटीके बीचमें दुई तुमरिया बाँधी--सोहं, ओहं, राम। ये छै अक्षरमेंसे कोई दो अक्षरसे लक्ष्य बाँधा और चौरासी-प्रपञ्चमेंसे लक्ष्य खैंच लिया। दो अक्षरमें धारणा बाँधके सिद्ध हुए, निर्विकल्प समाधिस्थ हुए, भवसागरसे पार हुए, परमात्मामें मिले; परन्तु सकल भवसागर, दुःखका कारण ब्रह्म। सो महा झाँईंमें परे, ये कसर मालूम न भई। ये अर्थ ॥ २५५ ॥

साखीः—सकलो दुर्मति दूर करु ! अच्छा जन्म बनाव ॥
काग गौन गति छाड़िके। हंस गौन चलि आव ॥२५६॥

टीका गुरुमुखः--प्रथम विचार तत्त्वको ग्रहण करना औ जीवसे रहित जेतिक मति है सो दुर्मति, तिन सबनको दूर करना। वेद-मत, शास्त्र-मत, पुराण-मत, चारवाक्-मत, नास्तिक, द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत--सो सकल मत जीवको बन्धन हैं औ मिथ्या कल्पना हैं, ऐसा जानके विचारसे दूर करना, जामें इनकी भावना उठने न पावे। जब मिथ्या भावना सब दूर भई, तो बाकी आप रहा सत्य भाव साँच भूमिका। तब विचार तत्त्वसे जीव अविनाशी साँच ठहरा औ देह आदि सकल भावना नाशवान् ठहरी। तो देह, गृह, धन, वेद आदि सब बानी। इनको मानके मैं अधीर होता था; परन्तु ये सब क्षणभङ्गुर। इनसे मेरा तीनकालमें सम्बन्ध नहीं। ये विजाति। इनको मानना सोई सकल भयका कारण। औ भय सोई अधैर्यका कारण। सो विचारसे दूर किया, तब धैर्य सहज ही रहा। सो सत्य, विचार, धैर्य मेरे स्वजाति। इनको छोड़ना नहीं। इनको छोड़ेसे मैं नाना दुःखको प्राप्त भया। ऐसा जानके आगे सकल जीव-मात्र मेरे स्वजाति। ये अपनी भूलसे अनेक बन्धनमें परे और नाना कर्म करके अनेक योनिमें गये, सो अनेक दुःख भोगते हैं। जो इनको सुख प्राप्त होय, सोई करना। ये नादान अपनी गाफिलीसे दुःख भोगते हैं; ऐसा जानके दया तत्त्व ग्रहण करना कि मेरी स्वजाति निर्वैरत्त्व। अब सकल जीव मेरे स्वजाति, तब निर्दयत्त्व

बैर-भाव असम्भव। ऐसा विचारमें ठहरा, तब दया तत्त्व सहज ही सिद्ध हुआ। फिर शील तत्त्व लेके सकल व्यवहार करने लगा, मृदु—मीठा वचन सबसे बोलने लगा। 'शील सकल सुखकी खानि।' सकल दुःख-सुख जो वर्त्तमानमें वर्त्ते, सो सहन करना औ उसमें आसक्त न होना। आसक्त न होते हुए भी सबसे मीठे रहना, सोई शील। इस प्रकार दुर्मति दूर करके 'अच्छा जन्म बनाव' औ प्रपञ्चकी कागगति छोड़के इस प्रकार विचार, सत्य, दया, धीरज, शील सहित हंसगति गहिके पारखपदको चले आओ। ये अर्थ ॥ २५६ ॥

साखीः—जैसी कहै करै जो तैसी। राग—द्वेष निरुवारे ॥
तामें घटै-बढ़ै रतियो नहिं। यहिविधि आपु सँवारे ॥२५७॥

टीका गुरुमुखः---जैसी गुरुमुख शब्दसे पारख कही है, तैसा यथार्थ जो जीव करै, तो पारख-पदकी प्राप्ति होय। तो सकल राग कहिये प्रीति औ द्वेष कहिये क्रोध; सो दोनोंको छोड़के सत्य, धीरज, विचार आदि तत्त्व ग्रहण करके सबकी पारख यथार्थसे करै औ आप पारखपर स्थिर रहे। ता पारखमें न रत्तीभर घटै, न रत्तीभर बढ़ै। ज्यों-का-त्यों पारखमें रहि जाय। येही विधि आप अपनेको सँवारे। ये अर्थ ॥ २५७ ॥

साखीः—द्वारे तेरे रामजी ! मिलहु कबीरा मोहि ॥
तैं तो सबमें मिलि रहा। मैं न मिलूँगा तोहि ॥२५८॥

टीका गुरुमुखः----हे जीव ! तू सबमें रमा, ताते रामजी कहिये ! जो तू सबमें रमा, तो चौरासी लक्ष योनि सब तेरे द्वारा ठहरीं। सो हे जीव ! जो तेरेको चौरासी छोड़ना है, तो सत्य, विचार, धीरज आदि तत्त्व ग्रहण करके पारखमें आय मिलो ! पारख सोई मैं। अगर तू चाहता है कि तेरेमें आयके पारख मिले, तो तेरेमें पारख तो मिलनेका नहीं। क्योंकि तू तो सबमें मिल रहा है। मैं तेरेमें नहीं मिलनेका। तेरेको रहित होना होय, तो तू पारखपदको विचार द्वारे आनके मिल ! औ पारखपद तो अचल, काहूमें मिल नहीं सकता। ताते तू आनके मिल। ये अर्थ ॥ २५८ ॥

साखीः—भरम बढ़ा तिहुँ लोकमें। भरम मण्डा सब ठाँव ॥
कहहिं कबीर पुकारिके। तुम बसेउ भरमके गाँव ॥२५९॥

टीका गुरुमुखः—भरम कहिये सच्चिदानन्द; जामें एक जीव मिलके तीन लोकमें हो गया, ब्रह्म बना, सर्वव्यापी सर्वाधिष्ठान बना औ कच्चे तत्त्वनके रोगमें पड़ा। भरमहीसे एकोहं कहिके अनेक योनिको प्राप्त भया। हे जीव! तुम विचार करके देखो कि जो वेदने ब्रह्म-स्थिति बताई, सो कहाँ है? वही भ्रमका गाँव, जामें तुम बसे हो। एक देहसे भ्रम खड़ा भया कि कोई हमारा दूसरा कर्त्ता है, सोई भ्रम ब्रह्मा, विष्णु, शिवके हृदयमें बसा औ तीनलोकमें भ्रम मण्ड रहा है। सोई भ्रम सब ठाँव = वेद, शास्त्र, पुराण, छौ दर्शन, छानवे पाखण्डमें मँडा। ताते गुरु कहते हैं कि हे जीव! तुम विचारके देखो! तुम भी भ्रमके गाँवमें बसे हो। भ्रमका गाँव कहिये देह, जहाँसे सकल भ्रम खड़े होते हैं। सो देहमें तुम रहते हो, तो भ्रम-चक्रमें पड़ोगे। नहीं तो जल्दी परखके न्यारे होओ। ये अर्थ ॥ २५९ ॥

साखीः—रतन अड़ाइनि रेतमें। कङ्कर चुनि–चुनि खाय॥
कहहिं कबीर पुकारिके। ई पिण्डे होहु कि जाय?॥२६०॥

टीका गुरुमुखः—हे सन्तो! सुनो—रतन कहिये ज्ञान, सो रेतमें अड़ाय = गिरा दिया, विषयनमें बिथार दिया औ अज्ञान-दशाको जीव प्राप्त भया। ताते 'कङ्कर चुनि--चुनि खाय।' विषयनमें आसक्त होयके विषय-कङ्कर चुनि-चुनि खाता है औ ताहीमें प्रसन्न रहता है, तो विषय याको खाय जायेंगे औ चौरासी में डार देवेंगे। तो ये पिण्ड = मानुष-तन, यामें जो पारखपद मिला तो मिलता है, नहीं तो चौरासीमें जीव जायगा, फिर कधी पारख-पद मिलनेका नहीं। ये अर्थ ॥ २६० ॥

साखीः—जेते पत्र वनस्पती। औ गङ्गाकी रेन॥
पण्डित बिचारा क्या कहै? कबीर कही मुखबैन॥२६१॥

टीका गुरुमुखः—हे कवीर = जीव! तुम विचार करके देखो कि ब्रह्मा विचारा क्या कहेगा? औ केतिक बानी कहेगा? सकल जीवनने कल्पि-कल्पि जेतिक पत्र वनस्पति औ जेतिक गङ्गाकी रेणु हैं, इतनी अनन्त बानी बोलीं अगणित। सो सकल जीवनको बन्धनकारी भईं। सोई नाना बानीजालमें जीव परे। ताको परखानेके वास्ते औ जीवनके बन्धन छुड़ाने वास्ते मैंने भी बहुत

बानी कही; परन्तु अभीलग जीवके परखनेमें आया नहीं । ये अर्थ ॥ २६१ ॥

साखी:—हौं जाना कुल हंस हो । ताते कीन्हा सङ्ग ॥
जो जानत बगु बावरा ! छुवै न देतेउँ अङ्ग ॥२६२॥

टीका गुरुमुखः—मैंने जाना हे जीव ! कि तुम सब हंस हो ! ताते तुम्हें परखानेके वास्ते सङ्ग किया । जो मैं ऐसा जानता कि तुम सब बकुले हो, नाना विषयनमें बौराय रहे हो औ नाना बानी-कल्पनामें तुम्हारा हंसत्त्व जायके बकत्त्व आया है, तो कधी अङ्ग न छूने देता, नजदीक न आने देता । परन्तु हे हंसा ! तुम बक-रहनि छोड़ देओ ! औ अपनी स्वजातीय रहनि हंस-दशाको ग्रहण करके जड़–चैतन्य, असत्य-सत्यका निरुवारा करो । ये अर्थ ॥ २६२ ॥

साखी:—गुणिया तो गुणही कहै । निर्गुणिया गुणहि घिनाय ॥
बैलहि दीजे जायफर । क्या बूझै ? क्या खाय ? ॥२६३॥

टीका गुरुमुखः—गुणिया कहिये जो सदा गुनावन करै, विचार करै, सो तो जो कछु कहेगा सो विचारकी बातें कहेगा । औ निर्गुणिया कहिये जो विचार न करे, सो अविचारी जीव ! ताको विचार अच्छा लगे नहीं । विचार सुनके घिनाता है औ विषयनमें राता है, ताको कधी विचार कहना नहीं । जो पढ़ना भी बहुत जानता है और विचार नहीं करता, सो बैल माफिक है । देवतनका पक्ष लेवे सो सुरपशु, वेदका पक्ष लेवे सो वेदपशु, बड़े-बड़े आदमिनका पक्ष लेवे सो नरपशु, शास्त्रनका पक्ष लेवे सो शास्त्रपशु, पुराणनका पक्ष लेवे सो पुराणपशु, स्त्रियनसे लम्पट रहे सो स्त्रीपशु । ऐसे छै विधिके पशु जगत्में हैं । इनको सत्य-विचार बतावोगे तो ये क्या बूझेंगे ? औ क्या ग्रहण करेंगे ? जैसे बैलके आगे 'जायफल' रक्खै, तो वो क्या बूझेगा ? और क्या खायगा ? ताते निष्पक्ष होके मुक्त होनेकी श्रद्धा जाको होय, ताको यथार्थ विचार कहना । ये अर्थ ॥ २६३ ॥

साखी:—अहिरहु तजि खसमहु तजी । बिना दादकी ढोर ॥
मुक्ति परी बिललात है । बृन्दावन की खोर ॥२६४॥

टीका गुरुमुखः----खसम कहिये ईश्वर, औ अहिर कहिये गुरुवा लोग । सो दोनोंने जीवको त्याग किया, वेदबानीमें लगाया । ताते 'सबके परे मुक्ति है'

ऐसा मान करके जीव बिललाता फिरता है संसारके गलियनमें औ जङ्गलमें औ तीर्थनमें। बृन्दावन कहिये जो बिन्दुसे पैदा भया। ये अर्थ ॥ २६४ ॥

साखीः–मुखकी मीठी जो कहै ? हृदया है मति आन ॥
कहैं कबीर ता लोगनसे। तैंसेहि राम सयान ॥२६५॥

टीका मायामुख :—अर्थ स्पष्ट है। कपट भक्ति जो करते हैं, तिनसों कभी भगवान् प्रसन्न नहीं होते। कपट भक्ति कहिये जो ऊपर कहते हैं कि हे भगवान्! तन, मन, धन सकल सम्पत्ति सहित तेरा ही है; औ खर्च एक भी उसके नामपर नहीं करा जाता। ये ही कपट भक्ति। ये अभिप्राय ॥ २६५ ॥

साखीः–इतते सब कोई गये। भार लदाय–लदाय ॥
उतते कोई न आइया। जासों पूछिये धाय ॥२६६॥

टीका गुरुमुखः—इधर जगत्में पैदा होके नाना कल्पना करके बानीग्रन्थ बनाये औ जीवनपर पाप-पुण्य, स्वर्ग-नर्कका बोझा लदायके आप मरे, औ लिखि गये कि हम स्वर्गको जाते हैं। पर उधर स्वर्गसे उतरके कोई नहीं आया कि जासों पूछिये स्वर्गका समाचार धायके। तब यहाँहीसे कल्पि-कल्पि मिथ्या बातें रख गये। ये अर्थ ॥२६६॥

साखीः–भक्ति पियारी रामकी। जैसी पियारी आग ॥
सारा पट्टन जरि मुवा। बहुरि ले आवै माँग ॥२६७॥

टीका गुरुमुखः—संसारमें रामकी भक्ति कैसी पियारी भई ? जैसी पियारी आग। जैसे अग्निसे सारा नगर जरिके मर गये, पर फिर भी माँग ले आते हैं। तैसा रामकी भक्तिमें जगत् सब जरके मर गये, पर फिर भी गुरुवा लोगनके पाससे माँग ले आते हैं। ये अर्थ ॥ २६७ ॥

साखीः–नारि कहावै पीवकी। रहै और सङ्ग सोय ॥
जार मीत हृदया बसै। खसम खुसी क्यों होय ? ॥२६८॥

टीका गुरुमुखः—शिष्य तो कहाते हैं गुरुके, औ उपासना करते हैं दूसरे देवतनकी। सो और देवताकी मिताई, सोई जार मिताई। तो ये अज्ञानवश। जीवनके खाविन्द, मुक्तिदाता एक गुरु हैं, औ पारखी गुरु छोड़के जेते ब्रह्मा,

विष्णु, महेशादि देवता हैं सो सब जार । ता जारनकी मित्रताई जा जीवनके हृदयमें बसती है, ता जीवनपर गुरु कैसे खुशी होयेंगे ? वास्तविक तो इन जीवनकी मुक्ति कधी न होना; परन्तु इनका ऐब, अयानपना न देखके अपने दयाके स्वभावसे गुरु परखायके मुक्त करते हैं । ये अर्थ ॥ २६८ ॥

साखीः—सज्जनसे दुर्जन भया । सुनि काहूके बोल ॥

काँसा तामा होय रहा । हता ठिकोंका मोल ॥२६९॥

टीका गुरुमुखः—ये जीव सज्जन परम मित्र था, तब अनमोल था । सो गुरुवा लोगोंके औ वेदके बोल सुनके दुर्जन = अपनी स्थितिका दुश्मन हो रहा है, ताते जो हीराका मोल था, सो काँसा-ताम्बाका मोल भया । जैसे हींगके सङ्ग कस्तूरीका मोल घट गया औ कस्तूरीका गुण जायके कस्तूरीमें अवगुण पैदा भया । तैसा देहके सङ्ग औ गुरुवा लोगनके सङ्गमें जीवकी कीमत जाती रही । चैतन्य था सो जड़के मोल हो गया औ जड़को चैतन्यका मोल किया । औ सज्जन-पना जायके दुनर्ज-पना अवगुण पैदा भया । जैसे कस्तूरी हींगके सङ्ग विनाशी, फिर न हींग ही बनी, न कस्तूरी ही रही । तैसा गुरुवा लोगनकी सङ्गति में वेदके बोल सुनके जीव खराब हुआ, सो न चैतन्य ही रहा, न जड़ ही बना । अधबीचमें मिश्रित होके रहि गया । ये अर्थ ॥ २६९ ॥

साखीः—बिरहिन साजी आरती ! दर्शन दीजे राम ! ॥

मूये दर्शन देहुगे । तो आवै कौने काम ? ॥२७०॥

टीका गुरुमुखः—बिरहिन कहिये जीवको; जिन्हें गुरुवा लोगोंने विरह लगाया कि राम तुम्हारा पुरुष, औ तुम रामकी नारी हो, रामके मिले बिना तुम्हें सुख होनेका नहीं। ऐसा खाविन्दका वियोग सुनके जीव भक्तिमान्, तिनका धीरज छूटा औ अधीर होयके बहुत आर्त भये । ताते विरही जीवनने रामके मिलने-के वास्ते आरती साजी, स्तुति साजी । सो जीते दर्शन होय, तो विरहिनीका मन शीतल तो भी होयगा । औ मुये उपरान्त दर्शन दिया, तो कौन काममें आवेगा ? वो तो आप ही मर गया । फिर दर्शनका सुख मिथ्याभूत । ये अर्थ ॥ २७० ॥

साखीः—पलमें परलय बीतिया । लोगहिं लागु तमारि ॥

आगल सोच निवारिके । पाछल करहु गोहारि ॥२७१॥

टीका गुरुमुखः—अरे ! पलमें परलय हो जायगा, चोला छूट जायगा, सो न जानके बड़े-बड़े अनुष्ठान, तपस्या, योग, विद्याभ्यास लोग करते हैं। कोई यज्ञादिक कर्म करते हैं, कोई दौलत पैदा होनेके वास्ते बड़े-बड़े उद्यम करते हैं, कोई महल, बाड़ी, बाग, बगीचे लगाते हैं औ विषयनमें अन्ध हो रहे हैं। अरे ! आँखसे देखते हैं कि जेते दिन उदय-अस्त होते हैं, तेती उमर घटती है औ कोई पैदा होते ही मरता है, कोई पाँचमें, कोई दशमें, कोई बीसमें, कोई तीस, चालीस, पचासमें मरता है। कोई विपत्ति भोगके अथवा सुख भोगके, औ वृद्ध-जर्जर होयके केते ही मरते हैं। सो देखते हैं कि हमारी भी ये दशा होयगी; परन्तु ऐसा जानके प्रपञ्चका त्रास नहीं आता। क्योंकि मायामें मोहित भये, ताते जीवनपर तमारी आई, अँधियारी छाय गई। सूझ परता नहीं। ताते अब आगल कुछ सोच करो मत्। पीछले लोग पुकार-पुकारके मर-मर गये हैं, उनकी कल्पनामें भी मत् परो। सब विचारके निराश हो जाओ। सुखी होओ औ वर्त्त-मानमें विचार करके बरतो ! संसक्त, आसक्त होओ मत्। ये अर्थ ॥ २७१ ॥

साखीः—एक समाना सकलमें। सकल समाना ताहि ॥
कबीर समाना बूझमें। जहाँ दुतीया नाहिं ॥२७२॥

टीका ब्रह्मसुखः—एक ब्रह्म सकल संसारमें समाया औ सकल संसार ब्रह्ममें समाया—जल-तरंग न्याय, सुवर्ण-भूषण न्याय। इस प्रकार अद्वैत उपदेश वेदने कहा। सोई बूझमें = अनुभवमें जीव समाया, जहाँ दुतीया नहीं, अद्वैतमें। ये अर्थ ॥ २७२ ॥

साखीः—एक साधे सब साधिया। सब साधे एक जाय ॥
जैसा सींचै मूलको। फूलै-फलै अघाय ॥२७३॥

टीका मायामुखः—इस एक मनको साधा, तिनने अष्ट सिद्धि, नौ निद्धि सब साधा। अगर मनको नहीं साधा औ अनेक मन्त्र-तन्त्र आदि साधना करने लगा, ताके पीछे मन अपने ऐनमेंसे निकर गया, तब एक भी फल होनेका नहीं। क्योंकि सकल ऋद्धि-सिद्धि आदि फलका कारण मूल मन; सो सदा एकाग्र करके विचाररूपी जलसे सींचना तो सब फल-फूल सहित तृप्तिको प्राप्त होय। ये अर्थ ॥ २७३ ॥

साखीः—जेहि बन सिंह न सञ्चरै। पन्छी ना उड़ि जाय ॥
सो बन कबिरन हींड़िया! शून्य समाधि लगाय ॥२७४॥

टीका गुरुमुखः—मायाने उपदेश किया कि एक मनको जिनने साधा, लय किया, सोई ब्रह्म हुआ। तब जहाँ सिंह = जीवका सञ्चार नहीं, औ पन्छी = मन भी जहाँ उड़ि जाय सकता नहीं, औ मन—बानीकी भी जहाँ पहुँच नहीं; तहाँ योगी लोगोंने शून्य समाधि लगायके ब्रह्मका खोज किया। राजयोग, हठयोग-विधिसे मनको लय किया। उन्मुनी अवस्था लेके ब्रह्मकी वार्त्ता करने लगे। ये अर्थ ॥ २७४ ॥

साखीः-साँच कहौं तो है नहीं। झूठहि लागु पियारि ॥
मो शिर ढारे ढेंकुली। सींचे और कि क्यारि ॥२७५॥

टीका गुरुमुखः—अब योगी लोगोंने जो ब्रह्म-सिद्धान्त किया है सो कछु सच्चा नहीं, मिथ्या धोखा है। परन्तु विना पारख जगत्को मिथ्या—धोखा प्यारा लगा, ताते मेरे शिर ढेंकुली डारके और-औरकी क्यारी सींचते हैं। याका अभिप्राय ऐसा है कि गुरुके शिष्य कहलाते हैं, औ गुरुके शिरपर मुक्तिका बोझा देते हैं, औ और-और धोखा, अनुमान, कल्पना, भास, अध्यासादिकी बानी दृढ़ करते हैं तो मुक्त कैसे होयेंगे ?। ये अर्थ ॥ २७५ ॥

साखीः—बोल तो अमोल है। जो कोइ बोलै जान ॥
हिये तराजू तौलिके। तब मुख बाहर आन ॥२७६॥

टीका गुरुमुखः—'गुरु' ऐसा जो बोल है, सो अमोल है। याको मोल कुछ नहीं। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान, योग, वैराग्य सब इस बोलकी निछावर हैं, पर जो कोई जानके बोले कि 'गुरु' क्या पदार्थ है ? ऐसा विचार हियेमें करना कि गुरु कहिये जो कधी चलायमान् न होय, औ जाको पाय कसर—खोट, धोखा, आदि-अन्त-मध्य सब परखनेमें आवै, सोई पारख गुरु। ऐसा हृदयमें विचार करके तौलना। जो किसीके हिलाये हिले नहीं औ उसके सामने सकल पद हिल जाय। अतिशय गरुवा होय, सो गुरुपद। ऐसा तौलके आप उसपर स्थिर होय, तब मुख बाहर लाय तो ताका नाम-स्मरण अमोल है। अगर कोई बात किसीसे कहनी होय, बोलना भई, तो पहिले अपने हृदयमें उस

बातको तौलना कि ये बात बड़ी वजनदार है, किसीके हिलाये हिलनेकी नहीं। औ जो दूसरेके हिलाये हिल जाय, सो हलकी बात। उसे जानके दूर करना। मुख बाहर निकारना नहीं। 'गुरु' शब्द जानके मुख बाहर निकारना। सोई शब्द अमोल। ये अर्थ ॥ २७६ ॥

साखीः-करु बहियाँ बल आपनी। छाड़ बिरानी आस ! ॥
जाके आँगन नदिया बहै। सो कस मरै पियास ? ॥२७७॥

टीका गुरुमुखः—बहियाँ कहिये गुरु, गुरु कहिये पारख। सो अपनी पारखका बल करना औ सब धोखा परखके छोड़ना। 'जाके आँगन नदिया बहै, सो कस मरै पियास ?' मानुष-तन पायके पारखपदको पावना। मानुष-पदके सामने पारखपद है औ मानुष पारखका अधिकारी है। तो नाना प्रकारके धोखेमें इनने काहेको मरना ?। ये अर्थ ॥ २७७ ॥

साखीः-वो तो वैसा ही हुआ। तू मति होहु अयान ॥
वो निर्गुणिया तैं गुणवन्ता ! मत एकहिमें सान ॥२७८॥

टीका गुरुमुखः-अरे ! जो पहिले आरम्भ समय बड़े-बड़े भये, सो सब अजान भये। उनको पारख-पद मिला नहीं, जान परा नहीं, ताते वैसे ही बानीके प्रमाणसे अजान ब्रह्म भये। पर तू मत् अजान होय। वो तो निर्गुणिया निर्गुण अनुमानमें फँसे, ताते निगुण बानी सभी धोखाधार, चार वेदादि कथन किये। पर तू गुणवन्ता पारखी ! सब एकमें मत् साने। सबको न्यारा-न्यारा परखके तू पारखपर स्थिर हो ! अरे ! वो निर्गुणियनने तो जड़-चैतन्य, जगत्-ब्रह्म सब एकहीमें सान दिया, सबको आत्मा बनाया। सो निर्गुण-सगुण दोनों धोखा नाशमान्, औ पारख सत्य अविनाशी। ये अर्थ ॥ २७८ ॥

साखीः-जो मतवारे रामके। मगन होहिं मन माँहिं ॥
ज्यों दर्पण की सुन्दरी ! गहै न आवै बाँहिं ॥२७९॥

टीका गुरुमुखः—रामके मतवारे = रामभक्त, सो अपने मनसे, ध्यान-अनुमानसे मानसिक पूजा करके मनहीकी मूरत, मनहीकी पूजा, मनहीमें मगन भये। जैसा दर्पणका प्रतिबिम्ब, तैसा इनका मालिक। कुछ 'गहे न आवे बाँहिं'। ये अर्थ ॥ २७९ ॥

साखीः-साधू होना चाहिये ! पक्का ह्वैके खेल ॥
कच्चा सरसों पेरिके । खरी भया नहिं तेल ॥२८०॥

टीका गुरुमुखः—साधु होना चाहिये । तो पक्के तत्त्व ग्रहण करके पक्के होना ! कच्चेका अमल मिटायके खेलना ! जैसे सरसों अधकचरी पेरी गई, तो न खरी भई, न तेल निकरा । तैसा न करना । विवेक कोल्हूमें पेरके पक्का तेल न्यारा निकारना औ कची खरी न्यारी निकार डारना ! पक्केका ग्रहण औ कच्चे-का त्याग करना ! धीरज ग्रहण करना, अधीरता छोड़ना ! सत्य ग्रहण करना, असत्य नाशमान् छोड़ देना ! शील ग्रहण करना, अशील निष्ठुरताई त्याग करना ! दया ग्रहण करना, निर्दयत्त्व छोड़ना ! विचार ग्रहण करना, बिविचार त्यागना ! ये पक्केका अर्थ ॥ २८० ॥

साखीः-सिह्नों केरी खोलरी । मेढ़ा पैठा धाय ॥
बानीते पहिचानिये । शब्दहि देत लखाय ॥२८१॥

टीका गुरुमुखः—सिंहोंकी खोलरी कहिये गुरुका भेष । मेंढ़ा कहिये संसारके जीव, सो गुरुके भेषमें बैठे, ताते गुरु करके नहीं जानिये ! उनकी बानीसे पहिचानना । शब्द जो है सो उनका स्वरूप, उनकी जाति बताय देगा । जैसे सिंहकी खालमें मेंढ़ा पैठा तो सिंह सरीखा मालूम भया । सो देखके जीव भय मानने लगे । परन्तु विचारवान् सिंह करके भूलते नहीं, उसकी बानीसे पहिचानते हैं कि सिंहका रूप धरा, पर सिंहकी आवाज नहीं निकरनेका । तैसा गुरु कहिये सबका पारखी ! तो पारखीका भेष धरे कछु पारखी नहीं होता । जो पारखपदको प्राप्त होय औ पारखरूप होय, सो पारखी । ताते बानीसे पहिचानिये ! जो पारखीकी बानी है सो निष्पक्ष बानी । ताके आगे सब बानी उड़ जाती हैं । वेद आदिक कोई बानी उसके आगे ठहरती नहीं । जैसे सिंहकी आवाज हुई, तब सब वनके सावजनकी आवाज उड़ गई, माक़ूफ (माकूस, अ० मअकूस = उलटा वा बन्द) हो गई । काहूके शब्दकी मजाल (शक्ति) आगे चलती नहीं । तद्वत् पारखीका शब्द है सो सिंह समान है । पारखीके शब्दकी पहिचान है औ वचन-की विशेषताई है । कुछ भेषकी पहिचानकी विशेषताई नहीं । ये अर्थ । अगर सिंहोंकी खोलरी कहिये मानुषदेह; तामें मेंढ़ा = चौरासीका जीव आयके प्राप्त भया,

तो मानुष करके न जानिये ! उसकी बानीसे उसकी खानि पहिचानिये ! बानी खानिकी पारख बतावती है औ शब्द सार सबको लखावता है। मानुषकी बानी न्यारी औ पशुकी बानी न्यारी। ताको अर्थ—जो निर्णय बानी है औ सत्य, धैर्य, विचार, शील, दया; ये पदार्थ संयुक्त बानी है, सो मानुषकी बानी। ये तत्त्वनमें जो निरन्तर रहै, सो मानुष। मानुष गुरुपदका अधिकारी औ मानुष सबका निर्णयकर्त्ता, औ मानुष आवागमनसे रहित। मानुषसे दूसरी खानि नहीं। मानुष उत्तम खानि। औ मिलित समुच्चय बानी, अनमिल विषय-बानी, मोह, काम, पक्षापक्ष बानी—ये सब पशु-बानी, बिविचार बानी, असत्य बानी, निर्दय बानी, निष्ठुर बानी, अधैर्य बानी। इन बानी, इन तत्त्वनयुक्त जो जीव हैं सो भी पशु। औ तिर्यक् (पशु, पक्षी आदि जीव) सो ज्ञानी, विज्ञानी, सिद्ध, कर्मी-अकर्मी, योगी-वियोगी, संयोगी-उपासक, रागी-वैरागी; ये सब आवागमनके अधिकारी हैं, चार खानिमें अनेक चोले धारण करते हैं। बिना पारख अपने स्वरूपको चीन्हते नहीं, ताते धोखा खाते हैं, दुःख पावते हैं। ताते रूप देखके न भूलिये ! बानीसे खानि पहिचानिये ! ये अभिप्राय ॥ २८१ ॥

साखीः—जेहि खोजत कल्पौ गया। घटहि माहिं सो मूर ॥
बाढ़ी गर्भ गुमानते। ताते परि गइ दूर ॥२८२॥

टीका गुरुमुखः—'जेहि खोजत कल्पौ गया।' जेहि = परमात्माको खोजते-खोजते कई कल्प बीत गये। सो हे जीव! तुम्हारी कल्पना तुम्हारे घटहीमें है। परमात्माका मूल कल्पना। कल्पना बिना दूसरा परमात्मा निश्चय होता नहीं। हे जीव ! तुम तो सिंह हो; परन्तु कल्पनाके वश मेंढ़ा हो रहे हो। सो कल्पना गर्व-गुमानसे बढ़ी। कायाका गर्व, दौलतका गर्व, बानी-ब्रह्मका गर्व, विद्याका गर्व, ज्ञानका गर्व, सिद्धिका गर्व, तपस्याका गर्व, राजका गर्व, चतुराईका गुण; ये आठ प्रकारके गर्वकी मानन्दी, सोई गुमान। गुमान कहिये, अभिमान कहिये। सो अभिमान पाँच प्रकारके—विश्व अभिमान, तैजस अभिमान, प्राज्ञ अभिमान, प्रत्यगात्मा अभिमान, निरञ्जन अभिमान। ये पाँच अभिमानमें हे जीव ! तू बन्ध भया, ताते पारख तेरेसे दूर पड़ी। औ पारख बिना तू छूटनेका नहीं। ये अर्थ ॥ २८२ ॥

साखीः-दश द्वारेका पीञ्जरा। तामें पन्छी पौन॥
रहिबेको अचरज अहै। जात अचम्भौ कौन ? ॥२८३॥

टीका गुरुमुखः—दश द्वारेका पीञ्जरा = देह; तामें पन्छी कहिये प्राण, सो पवनरूपी। सो रहिबेको तो आश्चर्य है, जो खुले द्वारे पीञ्जरेमें रहता है। औ उड़ि जाय तो उसको कुछ आश्चर्य नहीं। ताते हे जीव ! तू गाफिल मत् रहे औ गर्व-गुमानमें भूले मत्। सब कल्पना-धोखा परखके दूर कर ! जीते ही मुक्त हो ! पारखरूप हो ! स्थिर हो। ये अर्थ ॥ २८३ ॥

साखीः-रामहि सुमिरे रण भिरे। फिरै और की गैल॥
मानुष केरी खोलरी। ओढ़े फिरत हैं बैल ! ॥२८४॥

टीका गुरुमुखः—संसारी लोग रामको सुमिरण करते हैं। कहते हैं कि राम परमात्मा है, सबका मालिक है, हम सब उसके भक्त हैं। औ वेद कहता है कि सबमें रमा है आकाशवत्, सोई परमात्मा, सोई राम। तो भला ! ये परशु-राम, राम, कृष्ण, पाण्डवादिक क्षत्रिय रणमें भिरे, औ युद्ध किये, तो युद्ध कासों किये ? क्या जासे युद्ध किया, तामें राम नहीं था ? तो इन रामसे कैसे युद्ध किया ? रामका गला कैसे काटा ? गला काटा तो रामके दुश्मन ठहरे ? कि रामके भक्त ठहरे ? औ औरकी गैल कहिये वाममार्ग आदि और देवतनके मार्गमें फिरते हैं औ जीवहिंसा करते हैं, बलिदान देते हैं। तो देखो ! इनके वचनको ये ही नहीं सम्भारते, ताते पशु बैल हैं। मानुषकी खोलरी ओढ़े फिरते हैं। इनके वचनका क्या प्रमाण है ?। ये अर्थ ॥ २८४ ॥

साखीः-खेत भला बीज भला। बोये मुठीका फेर॥
काहे बिरवा रूखरा ? ये गुण खेतहि केर ॥२८५॥

टीका गुरुमुखः—खेत कहिये मानुष-देह, औ बीज कहिये बिन्दु; सो दोनों साबूत हैं, फिर कोई लड़की औ कोई लड़का औ कोई नपुंसक—ऐसी देह पैदा होती हैं, इसका कारण क्या है ? सो सुनो—"बोये मुठीका फेर" कहिये (शास्त्रोक्त प्रमाणसे) जो चन्द्रमें पुरुष सम्भोग करे औ स्त्रीका रज पहिले कँवलमें उतरे, पीछे पुरुषका रेत उतरे औ गर्भ रहे, सो कन्या। औ जो पुरुष

सूर्यमें सम्भोग करे औ पहिले पुरुषका रेत उतरे, पीछे स्त्रीका रेत उतरे, तो पुत्र पैदा होय। औ दोनोंके बराबर उतरे, तो नपुंसक पैदा भया। ये आकाश तत्त्वमें संयोग भया, ताका फेर। भला ! जो बिरवा रूखरा हो गया, सल हो गया, इसका कारण क्या ? "तो ई गुण खेतहि केर।" वो स्त्रीके कोठेका गुण। कोठेमें कुछ विकार है, ताते सल हो गया। ये अर्थ। और खेत = शिष्य, बोनेवाले गुरुवा लोग, बीज = उपदेश, विचार—सो दोनों भले; परन्तु जाने जैसा उपदेश किया, तैसा उगा। और कहूँ-कहूँ बिरवा = विचार फीका परा, सो क्यों ? तो ये शिष्यहीकी तरफ कसर। उसका अन्तःकरण मलिन औ बुद्धि-हीन, ताते विचारका फल हुआ नहीं। विचारका फल कहिये पारखस्थिति, सो हुई नहीं। काहेते ? कि पारखकी तरफ सुरत किया नहीं। प्रकृतिके वश होयके सुरत गुम हो गई। ये देहका गुण। ये अर्थ ॥ २८५ ॥

साखीः—गुरु सीढ़ीते ऊतरे। शब्द बिमूखा होय॥
ताको काल घसीटि हैं। राखि सकै नहिं कोय॥२८६॥

टीका गुरुमुखः—गुरु सीढ़ी कहिये गुरुका विचार। सो गुरुके विचारसे जो उतरा, सो शब्दसे विमुख भया, भवचक्रमें परा। ताको काल = गुरुवा लोग गर्भवासमें घसीटेंगे औ स्त्री कामभोगमें उसे घसीटेगी। उसे कोई रोक सकनेका नहीं। औ गुरु बिना गर्भवाससे कौन रोकनेवाला है ? ताते गुरुके विचारसे उतरा, सो जीव जहँड़ाया। ये अर्थ ॥ २८६ ॥

साखीः—भुँभुरी घाम बसैघटमाहीं। सब कोइ बसैसोगकी छाँहीं॥२८७॥

टीका गुरुमुखः—भुँभुरी घाम कहिये कछु ज्ञान औ कछु अज्ञान। ताको अज्ञान-विशिष्ट ज्ञान कहिये ! सो सबके घटमें बसता है, ताते सब कोई शोगकी छाँहमें रहते हैं। कधी सुख पावते नहीं। आशा, तृष्णा, मोह, कल्पनाके वश नाना दुःख पावते हैं। ताते गुरु सीढ़ीपर चढ़ना, फिर कदराई खायके उतरना नहीं। पीछे प्रपञ्चकी तरफ फिरके न देखै, तब गुरु पारखको प्राप्त होय औ सुखी होय। शोग-सन्ताप सब छूट जाय। ये अर्थ। औ भुँभुरी घाम कहिये बानी, सो सबके घटमें बसती है। ताते शोगकी छाँही = मोह, तामें सब जीव रहते हैं। सो पारख पाय उड़ जायगी। शोक-मोह दूर हो जायगा। ये अर्थ ॥२८७॥

साखी:—जो मिला सो गुरु मिला। शिष्य न मिलिया कोय॥
छौलाख छियानबे सहस्र रमैनी। एक जीवपर होय॥२८८॥

टीका गुरुमुखः—जो पारखमें मिला, सो आप ही पारख हुआ औ जो गुरुमें मिला, सो गुरु हुआ। सो तो स्थित भया। अब बाकी जो कोई जीव रहे हैं, सो पारख गुरुसे अनमिले हैं, ताते दुःखी हैं। सो अपने दुःखको जानके विरक्त भये और जगत्-सुख, स्वर्गादि-सुख स्वप्नवत् मिथ्या जाने। साँच-विचारादि तत्त्वनको प्राप्त भये, सो शिष्य गुरुपद-प्राप्तिके श्रद्धावान्! जिनके अन्तःकरणमें दूसरी श्रद्धा नहीं, और एक गुरुभक्ति धारण करके गुरुको खोजते हैं कि गुरु कौन हैं? औ गुरुपद कौन है? उनका दुःख दूर करनेको गुरुने छौ लाख छानबे हजार रमैनी एक जीवपर कही। छौ लाख कहिये छौ दर्शन, छानबे कहिये छानबे पाखण्ड, सहस्र रमैनी कहिये नाना भक्ति; इनका न्याय-कसर कही, जामें जीव सकल बन्धनते न्यारा होय। ये अर्थ। यामें एक शङ्का है कि गुरुने छौ लाख छानबे हजार रमैनी एक जीवके समझानेके वास्ते कही; परन्तु जीव सब समुझे क्यों नहीं? तो सब गुरुत्व-भाव ले रहे हैं, अपना-अपना अभिमान सब गहि रहे हैं, ताते गुरु-स्वरूप इनको समझ परा नहीं। निरभिमानी शिष्य-भावसे कोई मिला नहीं, ताते रहि गया। आजलों काहूके समझनेमें आया नहीं। और जो निरभिमानी शिष्य-दशाको प्राप्त होके गुरुमें मिले, सो गुरुपदको प्राप्त भये। ये अभिप्राय॥ २८८॥

साखी:—जहाँ गाहक तहाँ हौं नहीं। हौं तहाँ गाहक नाहिं॥
बिना विवेक भटकत फिरे। पकरि शब्दकी छाहिं॥२८९॥

टीका गुरुमुखः—गाहक कहिये मुमुक्षु, मुमुक्षु कहिये शिष्य; हौं कहिये हंकार, अभिमान। सो जहाँ शिष्य-दशा प्राप्त भई है, तहाँ पाँच अभिमानमें कोई अभिमान नहीं। अभिमान रहित शिष्य होयके अपनी स्थितिकी श्रद्धा रखे और सब अभिमानको त्यागै, सोई शिष्य-दशा गुरुपदका गाहक। और जहाँ पाँच अहंकारमें एकौ अहंकार दृढ़ भया, सो गुरुपदका गाहक नहीं। उसे पारख-पदकी प्राप्ति नहीं, ताते बिना विचार जगत्में भटकता फिरता है। शब्दका आसरा, पक्ष पकड़ रहा है। ये अर्थ॥ २८९॥

साखी:—नग पषाण जग सकल है। पारख बिरला कोय!॥
नगते उत्तम पारखी। जगमें बिरला होय!॥२९०॥

टीका गुरुमुखः—नग कहिये पर्वत, पषान कहिये पत्थर। सो ये पर्वताकार जगत् है, तामें चौरासी लक्ष योनि नाना प्रकारके रूप, सोई नाना प्रकारके पत्थर। उनकी कीमत न्यारी--न्यारी। एक-से-एकका तेज जास्ती। तामें पाँच रतन सर्वोपरि—हीरा, लाल, पन्ना, पुखराज, नीलम। ये पाँच रतनका अर्थः—हीरा कहिये सत्त्वगुणी मानुष, सोई देवता। सोई ज्ञानके, भक्तिके अधिकारी, विचारके अधिकारी। उनको जो पारखीका सङ्ग मिले, तो गुरुभक्ति सहवर्त्तमान पारखपदको प्राप्त होय। औ दूजा लाल कहिये रजोगुणी मानुष, सोई कर्मिष्ठ चतुर व्यौहारी; भक्ति-उपासना सभीके अधिकारी। जो उनको विज्ञान-विचार उपदेश करो तो होय। जो अच्छा पारखी मिलें, तो देर करके पारखपदकी प्राप्ति होय। और तीजे पुखराज—सोई तमोगुणी मानुष, सोई राक्षस, विषयी अघकर्मी, पापयोनि; काहूका अधिकारी नहीं। जो उपदेशी मिलें तो योग–वैराग्यका अधिकारी होय। चौथा पन्ना = शुद्ध सत्त्वगुण, सो तो ईश्वर, सिद्ध; ज्ञान-विज्ञानका अधिकारी। जो अच्छा पारखी गुरु मिलें सर्वदेशी, तो उसे भी पारख-पदकी प्राप्ति होय। पाँचवाँ नीलम = निर्गुण; सो तो परमहंस ब्रह्म, विज्ञानी कहिये। औ अनेक मत् सो अनेक प्रकारके पत्थर; परन्तु ये पाँच रत्न विशेष हैं। तो इस प्रकारके रत्न और पत्थर भी जगत्में बहुत हैं; परन्तु पारखी हंस कोई-कोई बिरले हैं। उनके बिना जीवका निस्तार औ स्थिति नहीं। तो नग = पर्वत-जगत्, और अनेक पषाण = सब अनेक तरहके जीव। तो पर्वत भी जड़ औ पाषाण भी जड़, जो अपने स्वरूपको जानते नहीं। और पारखी चैतन्य, जो अपने स्वरूपको जानता है, ताते उत्तम है और जगमें कोई बिरला है। ये अर्थ॥

सवैयाः—पारखि उत्तम हैं सबहिनते, अरु पारखि जक्तहिंमें कहिलैये॥ काल औ कर्म अनेकन फन्द सो, पारखि बिना न पारख लहिये॥ ज्ञानी कर्म उपासक कोई, विज्ञानी योगिनके पथ रहिये॥ पूरण पारख आप मिलै तब, सबहिं जालनते अलगैये॥ १॥

या नग = पर्वत सोई स्त्री। ता पर्वतमें पैदा भये, सोई पाषाण। अनेक पुरुष स्त्रीमेंसे ही पैदा होते हैं, फिर स्त्रीसे विलास करते हैं, स्त्रीके सङ्गमें रहते हैं और अन्तमें स्त्रीके गर्भवासमें समाते हैं 'पर्वत-पाषाण न्याय'। जैसे पाषाण पर्वतमें-से पैदा होते हैं औ पर्वतमें रहते हैं, अन्तमें पर्वतके पेटमें जाते हैं। पर्वत छोड़के

पाषाणको अन्तै जगह नहीं। तद्वत् स्त्री छोड़के पुरुषनको अन्तै जगह नहीं। स्त्री सब पुरुषनका अधिष्ठान बन रही है। एक स्त्री-भग छोड़के उत्पत्ति, स्थिति, लय; तीनोंकी जगह नहीं। परन्तु इनका पारखी कोई बिरला है, सो स्त्री-पुरुष दोनोंसे न्यारा है। सो सबकी न्याय--कसर बताता है। सो स्त्री-पुरुषमें नहीं आता, सबसे न्यारा रहता है, स्थिर है, पारखरूप है, रहित है। ये अर्थ। यामें एक शंका है कि पारखी स्त्री नहीं, पुरुष नहीं। दोनोंसे न्यारा है, तो क्या नपुंसक है ? ये शंका। याका निराकरण गुरु करते हैं कि नपुंसक कहिये ब्रह्म। सो पारखी नपुंसक ब्रह्मको परखनेवाला नपुंसक ब्रह्म नहीं। नपुंसक कहिये स्त्री-पुरुषकी एकताई औ स्त्री-पुरुषका अधिष्ठान। स्त्री--पुरुषकी एकता औ अधिष्ठान सोई ब्रह्म। ब्रह्मकी दो वृत्ति—एक पुरुष, दूजी प्रकृति। ताहीके दो रूप—विद्यावेष्टित औ अविद्यावेष्टित। जीव--ईश्वर दो रूप। एकोहं-वृत्तिसे दो वृत्ति भई, तासे बहुस्याम् अनेक रूप जगत् पैदा भये। जैसे समुद्रमेंसे एक बड़ी तरङ्ग उठी, ताके दो भाग भये। ताकी अनन्त लहरें भईं। तो समुद्र भी जल, तरङ्ग भी जल, लहर भाग भी जल। तद्वत् ब्रह्मसे जगत् हुआ। ये वेद-वचन। ब्रह्म भी ब्रह्म, वृत्ति भी ब्रह्म, प्रकृति भी ब्रह्म, ईश्वर-जीव औ जगत् सब ब्रह्म। नाम--रूप उपाधि मिथ्या। सुवर्ण-भूषण-न्याय अद्वैत अखण्ड ब्रह्म। ये वेद-वचन। ताते याका पारखी याते न्यारा पारख-भूमिकापर। ब्रह्मके विषय सब कसर-विकार। ताते जो जीवको न्यारा करता है, सो पारखी नपुंसक नहीं। ये अर्थ। एक अनीश्वर सांख्यके मतसे प्रकृति-पुरुष मानते हैं, सो अनेक पुरुष मानते हैं। एक पुरुष, एक ब्रह्म, एक ईश्वर नहीं मानते। तो प्रकृति पर्वत और अनेक पुरुष सो पाषाण; सोई जगत्। तो ये दोनोंका पारखी दोनोंसे न्यारा। पारख-भूमिकापर सबका परखनेवाला सबके साँच-झूठको न्यारा करता है, ताते सबसे न्यारा। ये अर्थ। कोई एक मतमें जीवरूप औ पञ्च महातत्त्वनको मानते हैं औ कछु मानते नहीं। तो पञ्च महातत्त्व सो महापर्वत, जीवरूप अनेक सोई पाषाण। तो पाँच तत्त्वसे जीवरूपकी उत्पत्ति, स्थिति औ लय। इनतेअन्तै जीव-रूपको जगह नहीं, ऐसा मानते हैं। तो पञ्च महातत्त्व और जीवरूप और इनके कसर-विकार परखनेवाला पारखी इनसे न्यारा पारख-भूमिकापर। पारखी पारखरूप रहित स्थिर। ये अर्थ ॥ २९० ॥

साखीः-सपने सोया मानवा। खोलि जो देखै नैन ॥
जीव परा बहु लूटमें। ना कछु लेन न देन ॥२९१॥

टीका गुरुमुखः—अज्ञानता सोई नींद; तामें मनुष्य सोया, गाफिल हुआ, आपको आप बिसर गया। तामें जगत् स्वपना देखने लगा। सो जगत्में राम-नामकी लूट होती है। कोई कहते हैं योग करो, कोई कहते हैं यज्ञ करो, कोई कहते हैं तप करो, कोई कहते हैं जप करो, कोई कहते हैं उपासना करो, कोई कहते हैं भजन करो, कोई कहते हैं कीर्तन करो। सो जीव सब सुन-सुनके बहुत लूटमें परे। परन्तु जब गुरुकी दयासे जागा औ विचार करने लगा, अज्ञानरूपी नींद उड़ गई औ गुरु-पारख आने लगी, स्वपनेकी भ्रान्ति उड़ी, पारखका प्रकाश भया, तब देखता है तो रामनाम औ ईश्वर औ ब्रह्म—ये कछु वस्तु नहीं, जो लेयेंगे-देयेंगे। औ धन, स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब जो देखते-जोड़ते थे, सो भी अन्तमें कुछ लेने-देनेको नहीं। अरे! हकनाहक जीव बहुत लूटमें परा है। न कछु लेना-न-देना। स्वपनेकी सम्पत्ति स्वपनेमें ही साँची-सी मालूम होती है, जागृति-विचारमें सब मिथ्या। ये अभिप्राय ॥ २९१ ॥

साखीः-नष्टका राज है। नफरका बरते तेज ॥
सार शब्द टकसार है। कोइ हृदया माहिं विवेक ॥२९२॥

टीका गुरुमुखः—नष्ट कहिये नाशमान, नाशमान कहिये देह। सो देहके राज्यमें नफर = मन, ताका तेज बरतता है। सो तेजमें जीव लाचार है औ बन्ध है, मनके तेजसे बारम्बार गाफिल होता है। ताते सारशब्द टकसार कहिये गुरु-का वचन, ताका विवेक सदा हृदयमें करते रहना! कभी गाफिल होना नहीं। जब विवेकका तेज = प्रकाश होयगा, तब मनका तेज फीका पड़ेगा औ जीव स्वतन्त्र होयके मुक्त होयगा, पारखपदको प्राप्त होयगा। विवेकका तेज जैसा सूर्य, औ मनका तेज जैसा दीपक। ये अभिप्राय। जब देह नाशमान्, तो देहसे जो पैदा होय दूसरा अनुमान ब्रह्म, ईश्वर, कर्त्ता, सो भी नाशमान्। सच्चिदानन्द-पद वानी, निर्विकल्प-सविकल्प समाधि, सगुण-निर्गुण भाव, सिद्धि, देवता सभी नाशमान्। वेदवानी, ये भी नाशमान्। क्योंकि देह बिना ये कहाँसे सिद्ध होयेंगी? ताते सभी नष्ट हैं। तो नष्ट कहिये ब्रह्म, औ ब्रह्मके नफर कहिये

त्रिदेव, छौ दर्शन छानबे पाखण्ड; ये सब नफर। येसबका तेज संसारमें बरतता है, ताते सब जीवनको इन लोगोंने भुलाया। नाना ग्रन्थ, नाना प्रमाण किये, तामें जीव सब अरुझे, स्वपनेकी लूटमें परे। ताते सारशब्द कहिये छौ दोष रहित, छौ पुटीकी मानन्दी रहित। और जा शब्दसे सकलशब्दका कसर-धोखा मालूम होय औ पारखपदको जीव प्राप्त होय, सो सारशब्द। औ टकसार कहिये जहाँ चार प्रकारके शब्द औ साँच-झूठका निर्णय होय, सो टकसार सबका बीजक। ताको विवेक सदा हृदयमें कोई-कोई जीव करते हैं, सो गुरुपदको प्राप्त होते हैं, और नफरके तेजमें नहीं आते। नफरका तेज पारखीपर नहीं पड़ सकता। ताते पारखी सदा मुक्त, रहित हैं। ये अर्थ ॥ २९२ ॥

साखीः—जब लग बोला तबलग ढोला। तौ लौं धन ब्योहार ॥
ढोला फूटा बोला गया। कोइ न झाँकै द्वार ॥२९३॥

टीका गुरुमुखः—बोला कहिये शब्द, ढोला कहिये देह। तो धन औ व्यवहार जेते हैं, सो सब देहके साथी। और देह छूट गई, बोलना माकूफ= बन्द हुआ। जीव निकरके गया, जहाँ आशा थी—तहाँ बासा पाया गर्भमें। अब वो द्वार=मृतदेहका घर उजाड़ परा और धन-माल सब दूसरे ले गये। अब वो सकस लौटके फिर उस=मृतदेहके द्वारेमें नहीं झाँकता, जा नहीं सकता। तो देखो! सब नाशमान् व्यवहार मिथ्या है औ नष्टके राजमें नफरका तेज है। वाका संग्रह पारखिनने न करना। ये अर्थ ॥ २९३ ॥

साखीः—कर बन्दगी विवेक की। भेष धरे सब कोय ॥
सो बन्दगी बहि जान दे। जहाँ शब्द विवेक न होय॥२९४॥

टीका गुरुमुखः—विवेक कहिये जो साँच-झूठ दोनों मिल रहे हैं जड़ औ चैतन्य,ताको न्यारा-न्यारा करके समुझै,ता समुझका नाम 'विवेक' है। ताही समुझकी बन्दगी करना। क्योंकि समुझेसे समुझ होती है और समुझसे जीवका कारज है। कछु भेषसे जीवका कारज नहीं। भेष तो सब कोई धर लेते हैं। तासे कुछ जीवका कारज नहीं। ताते सो बन्दगी, जामें जीवका कारज नहीं, पारखका पहिचान नहीं, ताको बहि जान दे। जहाँ शब्दका विवेक=समुझ नहीं, ताकी बन्दगीमें कुछ फायदा नहीं। बेफायदेकी बन्दगी बहि जाने दे। जो आप ही तृप्त नहीं है, सो दूसरेको क्या तृप्त करेगा। ये अर्थ ॥ २९४ ॥

साखीः–सुर नर मुनि औ देवता ! सात द्वीप नौ खण्ड ॥
कहहिंकबीर सब भोगिया। देह धरेको दण्ड ! ॥२९५॥

टीका गुरुमुखः—देह कर्मनसे पैदा होती है, कर्मनके आधारसे रहती है और कर्मनसे नाश होती है । मैथुन कर्मसे पैदा होती है, उद्योग कर्मनसे पालन होता है, संहार कर्मनसे नाश होता है । जैसा कर्त्तव्य जीव करता है, तैसी देह जीवको होती है । फिर वह कर्त्तव्यका भोग, सोई दण्ड जीवको होता है । सो दण्ड देवी-देवादि, नर, मुनि सब भोगते हैं । जब भोग सरा, तब देह छूट जाती है । कर्म तीन प्रकारके—सञ्चित, प्रारब्ध, क्रियमाण । 'सञ्चित' कहिये जो अनेक जन्मका कर्म भोगते-भोगते बाकी रहा। औ 'प्रारब्ध' कहिये पिछले जन्मके कर्म अब भोगता है । सोई कर्मनका रूप ये देह कर्मके जोरसे भोगके वास्ते खड़ी है । कर्म भोगे बिना मिटते नहीं । जब भोग हो चुका, तब कर्म मिट गया । जब कर्म मिटा, तब देह छूटी । ये प्रारब्ध कर्म । तीसरा 'क्रियमाण' कर्म, जो अब मानन्दी करके कर्म करता है, सो क्रियमाण आगे देह होनेका कारण । देह होनेका बीज कर्म है । ये तीन प्रकारके कर्म जीवको दण्ड हैं । सो सुर, नर, मुनि, देवता आदि जेते देहधारी भये, सो सबनने देह धरेका दण्ड भोगा । दण्ड भोगे बिना छूटते नहीं । तब विचार करनेकी और सत्संग करनेकी विशेषताई क्या ? ये शंका । तो विचार और सत्संगकी विशेषता ऐसी है कि गुरु-विचार उदय होनेसे सञ्चित कर्मका नाश होता है और क्रियमाण कर्म हो सकता नहीं । क्योंकि विचारसे मानन्दी सब मिथ्या ठहरी, ताते मानन्दी कर्म भी मिथ्या ठहरा । ताते हो सकता नहीं । जब क्रियमाण नहीं, तब आगे देह भी नहीं । जब बीज नाश हुआ, तब वृक्ष भी नहीं । अब रहा प्रारब्ध, सो ताका रूप देह बनी है । सो भोगेसे नाश होवेगा । फिर आगे कुछ नहीं । ये विचारकी विशेषताई । तो भला ! येही तरह ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती भी बोलते हैं । ये शंका । तो बोलते तो हैं; परन्तु गुरुपद पारख-स्थितिको प्राप्त भये नहीं । ये कसर है, ताते बीज है । कसर सोई बीज । ताते फिर देह होती है । ये कसर पारख प्राप्त होय तो रहित होय । ये अर्थ ॥ २९५ ॥

साखीः–जबलग दिलपर दिल नहीं। तबलग सब सुख नाहिं ॥
चारिउ युगन पुकारिया। सो संशय दिल माहिं ॥२९६॥

टीका गुरुमुख:—दिल कहिये चित्त, चित्त कहिये चैतन्य। चैतन्यके ऊपर चैतन्य कहिये पारख। सब चैतन्यकी गति-मति जासे जाननेमें आवे, सो सब चैतन्यके ऊपर चैतन्य। तो याका अभिप्राय ऐसा है कि जबलग जीव पारख-पदको प्राप्त नहीं हुआ, तबलग सब सुखको प्राप्त नहीं। सब सुख कहिये जासे आवागमनका दुःख मिटै, जरा-मरणका दुःख दूर होय, सो सब सुख। चारों युग = वेद, शास्त्र सब पुकार करते हैं सर्व सुखकी प्राप्तिके वास्ते। और जाको सब जीवोंने सर्वसुखरूप ब्रह्मानन्द सुख माना है, सो तो सुख नहीं। क्योंकि ब्रह्मानन्द सुखमेंसे जगत् दुःखका रूप पैदा भया। जा सुखमें दुःख पैदा भया, सो कुछ सुख नहीं; दुःखका अधिष्ठान। तो ब्रह्मानन्द कहिये ज्ञानकी सुषुप्ति और सब सुख कहिये विषयानन्द, योगानन्द, अद्वैतानन्द, विदेहानन्द, ब्रह्मानन्द; ये पाँच आनन्द उड़ जाय पारखसे और जो सुख रहे, सो निज सुख पारखी बिना प्राप्त होता नहीं। सो जीवनको पारख आनेके वास्ते पारखीने चारों युग पुकारा; परन्तु जीवनने कछु पाँचों आनन्दकी कसर परखी नहीं, ताते सब सुख-की प्राप्ति भई नहीं। संशय जीवमें बना रहा *। ये अर्थ ॥ २९६ ॥

---

* टिप्पणी:—साखी २९६ का महाभाष्य—

साखी:—जबलग दिल पर दिल नहीं। तबलग सब सुख नाहिं ॥
चारिउ युगन पुकारिया। सो संशय दिल माहिं ॥२९६॥

महाभाष्य; गुरुमुख:—जबतक दिल = चित्त, मन, हृदयके, ऊपर दिल = चित्तके ऊपर चैतन्य, मनके ऊपर एकाग्रता एवं हृदयके ऊपर शान्ति-स्थिरता करानेवाले पारख-स्वरूपका बोध प्राप्त, दृढ़ता, स्थिति-ठहराव करके, सर्व मोटी-झीनी मायाके जड़ाध्याससे रहित ये जीव हो नहीं जाता है, तबतक सब सुख = सब प्रकारसे सुख-ही-सुख, अन्तमें कभी दुःख प्राप्त न होनेवाला जीवन्मुक्ति-स्थितिका शुद्ध, निर्मल, सच्चा सुख प्राप्त नहीं होता है। इसलिए अज्ञान-ग्रस्त दिलके ऊपर ज्ञान-प्रकाशक दिल करो! मलिन, विकारी हृदयपर निर्मल, निर्विकारी बोध--वैराग्य सम्पन्न हृदय करो! अशान्त-असन्तुष्ट अपने मनको बोध--वैराग्यसे शान्त-सन्तुष्ट एकाग्र बनाओ! चञ्चल चित्तको निश्चल बनाओ, तब अबोध चैतन्य जीवके ऊपर छाये हुए अज्ञान, अबोध, भ्रम--भूलको मिटाकर, सुबोध निर्मल चैतन्य पारख-स्वरूपका ज्ञान यथार्थ अपरोक्ष होगा। वैसा होनेपर ही अपना वास्तविक स्थिति-ठहराव होता है। सबकी गति-मति जाननेवाला चैतन्य जीव है। उसके भ्रमको मिटानेवाला पारख-स्वरूपका ज्ञान है। इसलिए अपरोक्ष पारखबोधको प्राप्त करके खानि-वाणीकी भ्रम-भूल, आसक्ति, मोह-ममताको

साखीः—यन्त्र बजावत हौं सुना। टूटि गया सब तार ॥
यन्त्र बिचारा क्या करे ? जब गया बजावनहार ॥२९७॥

टीका ब्रह्ममुखः—यन्त्र कहिये देह, यन्त्र कहिये बाजा। सो देह बिना कोई आवाज उठा नहीं। वेद-शास्त्रादि सब आवाज देहसे उठे। 'तेही ब्रह्म येही जीव' ऐसा आवाज उठा, सोई आवाज सब मनुष्यने सुना, ताहीमें वश भया।

परित्यागकर जबतक जीव तन-मनादिको स्ववश करके हंसपदमें स्थिर शान्त नहीं हो जाता है, तबतक सम्पूर्ण आवागमनादि दुःखोंसे छूटकर उसे जीवन्मुक्तिका सर्व-श्रेष्ठ सुख प्राप्त नहीं होता है। इसलिए महान् पुरुषार्थ करके अपने हृदयके सम्पूर्ण वासना-अध्यासको मिटाकर हृदयमें ही शुद्ध स्वरूपका ज्ञान-प्रकाश करो! परन्तु भ्रमिक सारे गुरुवा लोगोंने बाहर चारों युगोंकी कल्पना करके चारों वेदादि अनेक वाणी-कल्पनाओंका ऐसा पुकारा, उपदेश प्रचार किया है कि 'कोई एक ईश्वर, ब्रह्म, परमात्मा जगत्का कर्त्ता मालिक है। उसकी प्राप्ति होनेपर ही परमानन्द, ब्रह्मानन्दादि सब सुख मिलेंगे। ऊपर स्वर्गादि अनेक लोकोंमें पहुँचनेपर सब प्रकारके सुख मिलेंगे। चार मुक्ति, चार फल, ईश्वरादिकी कृपासे ही बाहर कहींसे प्राप्त होंगे। अथवा परमेश्वर ही चारों युगोंमें अनेक अवतार ले-लेकर बारम्बार प्रकट होते, दुष्टोंका नाश करके धर्म-स्थापन करते हुए भक्तजनोंका उद्धार करते हैं।' ऐसी-ऐसी कल्पित बातें सुनकर सब भूले पड़े हैं। विषयानन्द, प्रेमानन्द, योगानन्द, ज्ञानानन्द और ब्रह्मानन्द; ये पाँचों आनन्द अपनेसे भिन्न बाहर ही मिलेंगे—इत्यादि रोचक वाणी सुनकर, सबको खूब भ्रमा-भुला रक्खे हैं। इसलिए सो उन भ्रमिकोंकी ही बातको दृढ़ निश्चय करके सब मनुष्योंके दिल=अन्तःकरणमें संशय=सुविधा, सन्देह, शङ्का, निश्चयता भ्रम-भूल, अज्ञान दृढ़ हो रहा है। इसलिए वे सब लोग सुखको बाहर ही ढूँढ़ रहे हैं। परन्तु बाहर कहीं सुखकी ढेरी रक्खी हुई नहीं है। माने हुए ब्रह्मानन्दादि सुखसे परिणाममें जगत्-दुःख उत्पन्न होते हैं। इसलिए वे निर्मल नित्य नहीं हैं; किन्तु आवागमनके मूलकारण ही बने हैं। उनको परखानेके लिए सद्गुरुने चारों मुखोंकी वाणी बीजकमें यथार्थ दरशायी है। चारों युगोंकी भ्रम-कल्पना तीन मुखोंकी वाणीके भीतर आ जाती है। उसे गुरुमुखसे सारशब्दद्वारा निर्णय करके परखाये हैं। सद्गुरु कहते हैं—निज चैतन्य-स्वरूपकी स्थिति अपरोक्ष पारखबोधद्वारा सर्व जड़ाध्याससे रहित होनेपर ही होती है। वही जीवन्मुक्तिका सर्वश्रेष्ठ सुख है। उसके अन्तमें दुःखका लवलेश भी नहीं रहता है। परम शान्ति, परम स्थिरता अपने-आपकी स्वरूप-स्थितिमें ही है। उसे सत्पुरुषार्थद्वारा प्राप्त करो! किन्तु चार मुक्तिका सुख बाहर ही कहीं मिलता है, ऐसा माननेवालोंके दिलमें संशय बना ही रहता है। भ्रम नहीं मिटता है। इसलिए उनका स्थिति-ठहराव नहीं होता है। जिज्ञासुजनोंको सर्व भ्रम-भूल मिटाकर निजस्वरूप-स्थितिके निर्मल सुखमें ही स्थिर हो रहना चाहिए! ॥२९६॥

तो देखो ! दोष जीवका कि देहका ? ये शङ्का । अरे ! यन्त्री बिना कहीं यन्त्र बाजता है ? तो यन्त्र कैसा ही बाजे, कछु यन्त्रका दोष नहीं । जैसा बजानेवालेने बजाया, तैसा यन्त्र बजा । जैसा बोलनेवालेने बोला, तैसा देहसे आवाज निकरा । जब बोलनेवाला निकर गया, तब देह-यन्त्र पड़ा रहा । देह क्या करेगी ? ये यन्त्रीने यन्त्र बजाया औ आप आवाजके बन्धनमें आया । सोई आगे देह धरनेको बीज हुआ । जैसा बाजावालेने एक बाजा बनाया और उसको बजाया और उसके शब्दमें बँधिके आसक्त हुआ । फिर वो यन्त्रके तार टूटे, तो दूसरा यन्त्र बनावेगा । दूसरा यन्त्र बनानेका बीज आसक्ति है। तैसा देह यन्त्र; यामें इङ्गला, पिङ्गला, सुषुम्ना—ये तीनों तार । याहीसे यन्त्र बजता है और यन्त्री = जीव बजाता है । जब तार टूट गया, स्वासा टूटा, तब यन्त्र फीका पड़ा । देह गिर पड़ी । फिर यन्त्री = जीव गया । यन्त्रका क्या काम ? तार टूटै आवाज तो निकरनेका नहीं । यन्त्री कैसे खुशी होयगा ? ताते दुःखी, उदास होयके और देह छोड़के अन्तै दूसरा देह-यन्त्र बनाया । फिर आप ही बजाने लगा । अब वो देह निकम्मी भई । ये अर्थ ॥ २९७ ॥

साखीः—जो तू चाहै मूझको ! छाँड़ सकलकी आस ! ॥
मुझ ही ऐसा होय रहो । सब सुख तेरे पास ! ॥२९८॥

टीका गुरुमुखः—जो तू मुझे = पारखको चाहता है, तो सकलकी आशा छोड़ दे ! आशा सोई दूसरा बन्धन । बन्धन सोई दुःखका रूप है । आशा पुत्रकी, धनकी, स्त्रीकी, घरकी, कुटुम्बकी, राजकी, काजकी, अनाजकी, वस्त्रकी, जलकी, ऋद्धि-सिद्धिकी, स्वर्गकी, देवताकी, योग-ज्ञान-भक्तिकी, देहकी, केवल मुक्तिकी आशा-मात्र सब जीवको बन्धन है । और पारखमें आशा सम्भवे नहीं । ताते जो पारखको चाहै, तो सबही आशा छोड़ै । और मुझ ही ऐसा निराश पारख हो रहै, तो सब ही सुख तेरे पास है । जबलग तू सुखकी आशा करेगा, तबलग तेरेको दुःख होवेगा, सुख नहीं मिलनेका । जब ही सुख-दुःख दोनों मिथ्या परखके छोड़ेगा, तब सब सुख तेरे पास है, पारख-सुख तेरे पास है। और जो आशा-बासा छोड़के पारखरूप हुआ, सो गुरुरूप । जो गुरुका सुख, सो उसका सुख । स्वइच्छा वर्त्तमान सिद्धोंका, परइच्छा वर्त्तमान भक्तोंका, अनिच्छा वर्त्तमान ज्ञानीका, निराश वर्त्तमान पारखीका । जहाँ कोई वर्त्तमानकी आशा

नहीं, सो निराश वर्त्तमान। तामें सब सुख है। ये अर्थ ॥ २९८ ॥

साखीः-साधु भया तो क्या भया ? बोलै नाहिं विचार ! ॥
हतै पराई आतमा। जीभ बाँधि तलवार ॥२९९॥

टीका गुरुमुखः—साधु भया, जाति-पाँति मर्यादा छोड़ी, भेष साधुका धारण किया; पर विचार करके बोलता नहीं, पक्ष लेके बोलता है। वेद-पक्ष, शास्त्र-पक्ष, नाना ऋषिनका, नाना मतनका पक्ष, सो सब बेविचार बानी; जासे पराई आत्माको मारते हैं, जीव-हिंसा करते हैं। उनका सङ्ग दूर छोड़ना ! जाने जीभमें तलवार बाँधके, अनेक बानी बोलके जीवको बन्धन दिया, सो काल। उसकी सङ्गति छोड़ देना। जामें जीव दुःख पावै और जीवका विनाश होय, सो बानी तलवारके माफिक हैं। ऐसी बानी जाने जीभमें बाँधी औ साधु भी भया, तब भी उसका सङ्ग छोड़ना। वह जीवका घात करेगा। ये अर्थ ॥ २९९ ॥

साखीः-हंसाके घट भीतरे। बसै सरोवर खोट ॥
चलै गाँव जहवाँ नहीं। तहाँ उठावन कोट ॥३००॥

टीका गुरुमुखः—हंसाके घटमें जो अनुभव बसता है, सो सब खोटा = मिथ्या है। अरे ! जहाँ गाँव = बस्ती नहीं, तहाँ शून्यमें = स्वर्गमें कोट उठाने चले, तो मिथ्या भ्रान्ति। हंसा कहिये जीवको, जीव कहिये जाका कभी नाश न होय। मानसरोवर कहिये जीवकी मानन्दी। मानन्दी परोक्ष—१. प्रत्यक्ष, २. अनुमान, ३. उपमेय (उपमान), ४. शास्त्र (शब्द), ५. अर्थापत्ति, ६. अभाव (अनुपलब्धि), ७. भाव (सम्भव), ८. अनुभव। मानन्दी दो प्रकार—परोक्ष, अपरोक्ष। ताके आठ प्रमाण। ताको अर्थः—१. 'प्रत्यक्ष' कहिये जो आँखोंसे देखनेमें आवे, सो स्थूल देह। २. 'अनुमान' कहिये जो देखनेमें न आवे, चित्त-से अनुसन्धान करै—जो ऐसा होयगा; सो सूक्ष्म। ३. 'उपमेय' कहिये इसके सरीखा है, आकाश-सा, वायु-सा, तेज-सा, जल-सा, पृथिवी-सा; सो कारण। ४. 'शास्त्र प्रमाण' कहिये जैसा शास्त्रमें, वेदमें लिखा होय; सो मानिये। ५. 'अर्थापत्ति' कहिये जो अर्थ करके वस्तु ठहरे, सो मानिये। ६. 'अभाव प्रमाण' कहिये काहू प्रमाणका, काहू वस्तुका भाव नहीं; सो भी कारण। ७. 'भाव' कहिये सबका अभाव सुषुप्तिवत्, औ अपना भाव; सोई महाकारण तुरिया। ८. 'अनुभव'

कहिये निज समुझ, जहाँ काहूका भाव नहीं और अपना भी भाव नहीं; भावातीत-भाव कैवल्य आत्मा, सच्चिदानन्द। ये अष्ट प्रमाण कर-करके दो प्रकारकी मानन्दी हंसाके घटमें बसी, सो खोटी औ बन्धन। सो परखके दूर करना! ये अर्थ ॥ ३०० ॥

साखीः—मधुर बचन है औषधी। कटुक बचन है तीर ॥
श्रवण द्वार होय सञ्चरे। सालै सकल शरीर ॥३०१॥

टीका गुरुमुखः—मधुर वचन = मीठा वचन मानसिक दुःख, कटुक वचनकी औषध है। ताते मीठी बानी बोलना, जाते जीव सुख पावे। कटुक वचन है सो मनको तीर है, कानके द्वारेसे पैठके मनको बेधा करता है। फिर सब शरीरमें दुःख होता है। ताते कटुक वचन काहूको न बोलिये! ये अर्थ ॥३०१॥

साखीः—ढाढस देखो मरजीवको। धाय जुरि पैठि पताल ॥
जीव अटक मानै नहीं। ले गहि निकरा लाल ॥३०२॥

टीका गुरुमुखः—ढाढस कहिये दृढ़ता, मरजीव कहिये योगी। सो योगिन-की दृढ़ताई देखो! दृढ़तासे धाय कहिये श्वासा; सो श्वासामें जुटके पातालबासमें बैठा, नाभिकुण्डलीमें बैठा अरु मेरुडण्ड होयके ब्रह्माण्डमें पैठके लाल कहिये ब्रह्म-अनुभव, सो ले निकरा। जीवने षट्चक्रकी अटक मानी नहीं। राजयोग-सन्धानसे प्रथम अग्निचक्र बेधा, फिर विशुद्धिचक्र बेधा, फिर अनाहतचक्र बेधा, फिर मणिपूर-चक्र बेधा, फिर स्वाधिष्ठानचक्र बेधा, फिर मूलाधारचक्र बेधा। ऐसी उलटी राह चलाई। मरजीवने काहू बातकी अटक मानी नहीं, मरने-जीनेको डरा नहीं। ब्रह्म-अनुभव लेके निकरा। सोई ढाढ़स जीवनको दृढ़ता भई कि हम ब्रह्ममें मिले, आवागमनसे रहित भये। परन्तु धोखेमें परे। इनकी ढाढ़स अन्तमें डूब जायगी। गफिलाय जायगा। जब चोला छूट जायगा, तब योग-कला नाश हो जायगी। इनका अनुभव कहाँ रहेगा ? ये अर्थ ॥ ३०२ ॥

साखीः—ई जग तो जहँड़े गया। भया योग ना भोग ॥
तिल झारि कबिरा लिया। तिलैठी झारें लोग ! ॥३०३॥

टीका मायामुखः—योगकी विशेषता योगी लोग बताते हैं कि ये जग जहँड़े गया, भरमहीमें गया। न जगत्में योग भया, न भोग भया। दोनोंमेंसे एककी भी प्राप्ति भई

नहीं । तिल कहिये जीव, तिलैंठी कहिये देह । सो नेती, धोती, कपाली, कुञ्जल बस्ती; ये क्रिया करके षट्चक्र झारिके जीवको लेके योगीजन ब्रह्म-भुवनमें गये और ब्रह्म भये । तिलैंठी = देह; ताको अज्ञानी लोग झारते हैं । तीर्थ नहाते हैं, व्रत करते हैं, जप-तप करते हैं, शिला, धातु आदि अन्धे जड़ मूर्ति पूजते हैं, वेद-शास्त्रादि बहु बानी पढ़ते हैं । तो इनको ब्रह्म-प्राप्ति होनेकी नहीं । तिलके पेरे तेल निकरता है, कुछ तिलैंठीके पेरे तेल निकरता नहीं । तैसा योग-क्रियामें जीवनको पेरना । तामें सकल सिद्धान्त निकरता है । और ऊपर देहको कर्मनमें पेरे कुछ निकरता नहीं । सो आदिनाथादि सकल सिद्ध योग-सिद्धान्तका रस लेके परमपदको गये । अब खाली बानी रही है, सो लोग झारते हैं । यामें कहाँ पावेंगे योग बिना ? । ये अर्थ ॥ ३०३ ॥

साखी:—ये मरजीवा अम्मृत पीवा । क्या धसि मरसि पतार ? ॥
गुरुकी दयासाधुकी सङ्गति । निकरि आव यहि द्वार ॥ ३०४ ॥

टीका गुरुमुखः—अब मायाने ऊपरकी साखीमें योग उपदेश किया, तामें सब जीव अरुझे । ताते गुरु निकारते हैं कि हे मरजीवा जीव ! तू जीयत ही मर रहा है । योग समाधिस्थ हुआ और ब्रह्माण्डमेंसे अमृत चुवता है, सो लम्बिका योग करके ऊर्ध्व द्वारेसे तूने पिया और मग्न हुआ । परन्तु इसका कारण क्या ? तेरेको कुछ अमृतसे और समाधिसे काम नहीं; क्योंकि उससे तेरी कुछ स्थिति नहीं । अमृत और समाधि नाशमान् हैं और विजाति हैं, तेरी स्वजाति नहीं । तू अविनाशी जीव है, चैतन्य है औ पारख तेरी स्वजाति भूमिका है । सो गुरुकी दयासे सत्सङ्गद्वारा तू अपनी भूमिकापर निकरि आओ ! स्थिर होओ ! अरे ! काहेके वास्ते पतारमें = नाभिकुण्डलीमें धँसके मरता है ? याते कुछ कारज नहीं । अरे ! जेते न्यारा करके जाना तूने, सो सब विजाति तेरेको बन्धन हैं । तू सत्सङ्गद्वारा सबको परखके पारख-भूमिकापर स्थिर हो । ये अर्थ ॥ ३०४ ॥

साखी:—केतेहि बुन्द हलफो गये । केते गये बिगोय ॥
एक बुन्दके कारणे । मानुष काहेक रोय ? ॥ ३०५ ॥

टीका गुरुमुखः—बुन्द कहिये देहको, जो पिताके बिन्दुसे पैदा भया । सो कितनी तेरी देह तो हलफो गई, पिताके रेतके सङ्ग माताके गर्भमें समाते

ही छूट गईं। गर्भ पतन हुआ। केतिक देह माताके गर्भमें पुष्ट होयके छूटीं, केतिक देह लरकाईमें छूटीं, केतिक तरुणाईमें छूटीं, केतिक वृद्धाईमें छूटीं, केतिक सुख भोगते छूटीं, केतिक दुःख भोगते छूटीं। अब हे जीव! ये वर्त्तमानमें तेरी एक देह है, सो वर्त्तमानके आधीन है। जैसा उसका वर्त्तमान होगा, तैसा वर्त्त जायगा। तू देहका आश्रित होयके काहेको रोता है? काहेको चिन्ता करता है? अचिन्त पारखपर आरूढ़ रहो! ये अर्थ ॥ ३०५ ॥

साखीः—आगि जो लागि समुद्रमें। टूटि-टूटि खसे झोल ॥
रोवै कबिरा डाँफिया! मोर हीरा जरे अमोल ॥३०६॥

टीका गुरुमुखः—समुद्र कहिये संसार; तामें माया कल्पनाकी आग लगी। आग कहिये पाँच प्रकारकी—जठराग्नि, योगाग्नि, मन्दाग्नि, ज्ञानाग्नि औ ब्रह्माग्नि। ये पाँच प्रकारकी अग्नि; तामें अमोल हीरा कहिये जीवको, सो जलता है। औ कबिरा कहिये गुरुवा लोग, सो अनेक तरहकी कल्पना कर-करके रोते हैं, सो सुनिके जीव जलते हैं। कोई पेटकी अग्निके मारे दुःखित हैं। खेती करते हैं, व्यापार करते हैं, पराई ताबेदारी करते हैं, गुलामगिरी, खिदमतदारी करते हैं, दूतपना, कसब, चतुराई, कारीगरी करते हैं। चोरी, छिनारी, बटपारी, लबारी, धूर्ताई करते हैं, नचनियाँ, बजनियाँ, गवैया, भवैयाँ, भाँड़ बनते हैं। भिखारी भीख माँगते हैं। ऐसी पेटकी अग्नि कठिन है कि नाना कर्म करते हैं, ताहूपर शान्त होती नहीं; जीवनको जलाती है।

कवित्तः—अग्नी जब पेटकी उठत प्रचण्ड होय, भूख-ही-भूख सब करत लोई ॥ भूखसे मात-पिता पुत्रको त्यागहीं, भूखसे जात कुल गोत खोई ॥ भूखसे होत दुर्बुद्धि अति मानुषको, भूखसे कामिनी जार होई ॥ भूखसे ज्ञान गुण ध्यान थकि जात हैं, भूखसे डरें सुर नर मुनि लोई ॥ भूख चण्डालिनी मोर पाछे परी, भूख ले जात है राजद्वारा ॥ ज्ञान वैराग सब करत साधू जना, भूख ले जात है द्वार द्वारा ॥ भूखसे राग रङ्ग विषय फीका लगे, भूखसे योग जप होत न्यारा ॥ भूखसे देव मुनी होत बेहाल बहू, पूरण यहि भूखने जगत मारा ॥ १ ॥

ये पेटकी अग्नि महादारुण; तामें अमोल हीरा = जीव जलता है। ये जठराग्निसे बचनेके वास्ते गुरुवा लोगोंने बहुत रोयके विरह जगाया, जगत्में विरह-अग्नि लगायी और योग उपदेश किया। तब जीव योगाग्निमें जलने लगे,

खेचरी, सन्मुखी, अगोचरी, चाचरी, भूचरी, शाम्भवी, उन्मीलनी, आत्मभाविनी, सर्वसाक्षिणी, पूर्णबोधिनी—ये दश मुद्रा साधने लगे। यम, नियम, प्राणायाम, प्रत्याहार, संयम, ध्यान, धारणा, आसन, समाधि, लम्बिकायोग, लययोग, अमनस्कयोग, तारक, कुण्डली, श्रीहट योग करने लगे। नेती, धोती, बस्ती, कपाली, कुञ्जल; ये पञ्च क्रिया करने लगे। हठयोगादि कर्म करके योगाग्निमें जीव जलने लगे। तीसरी मन्दाग्नि अज्ञानजनित तामसी कल्पना उठी, तब नाना प्रकारके तप करने लगे। तीर्थ, व्रत, दूब अहार, दूध अहार, फल, कन्द, मूल, पत्र अहार करने लगे। निराहार, वायु अहार, जल-शैय्या, अनल-शैय्या, पञ्चाग्नि तापने लगे। नाना प्रकारके काया-कष्ट, ताही अग्निमें जले। गुरुवा लोगनकी बानीके प्रमाणसे जीव दुःखभोगी भये। चौथी ज्ञानाग्नि—संन्यासी भये, दण्ड धारण किये, संन्यास-क्रिया आचरण करने लगे, साधन-चतुष्टय साधने लगे, नित्यानित्य विवेक, इहामुत्रफल भोग विराग, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान, समाधि षट् साधने लगे; मुमुक्षु-दशा साधिके ज्ञानाग्निमें जलने लगे। अब ब्रह्माग्नि—अहं ब्रह्मास्मि, स्वयं ब्रह्मास्मि इत्यादि सर्व वाक्य साधिके 'मैं आत्मा जैसे-का-तैसा' ये निश्चय करके बाल, पिशाच, उन्मत्त, मूक, जड़वत् होयके ब्रह्माग्निमें जलते भये। इस प्रकारसे गुरुवा लोगनके उपदेशसे मेरा हीरा अमोल = जीव जलता है, दुःख भोगता है बिना पारख। ऐसा गुरु कहते हैं। ये अर्थ। गुरुवा लोगनका उपदेश, सोई संसार-सागरमें अग्नि लगी। तामें बड़े-बड़े 'झोल' कहिये बड़े-बड़े जीव नरदेहीके, सो टूट-टूटके खस पड़े, उपदेश अग्निमें जले। ये अर्थ। संसार-समुद्र में स्त्री-आग लगी; तामें पुरुष जीव, सोई झोल टूट-टूटके खस पड़ते हैं गर्भवासमें। और कबीर = जीव जब गर्भका दुःख देखता है, तब रोता है। सो गुरु कहते हैं कि मेरा अमोल हीरा = जीव, सो गर्भवासमें गाफिलीके वश जलता है। ये अर्थ। विषय-अग्निमें रेतके झोल टूट-टूटके खस पड़ते हैं। विषयनकी प्राप्तिके वास्ते जीव नाना उद्योग करते हैं; परन्तु तृप्ति होती नहीं, ताते रोते हैं। तो देखो! ये जीव अमोल। सो विषयनके वश होयके याकी कीमत हो गई। विषय-अग्निमें जलता है, या कल्पनाकी आगमें जीव गर्भवासमें खस परते हैं और मोहकी आगसे जीव गर्भवासमें जाते हैं और चौरासीका दुःख देखकर रोते हैं। अपनी गाफिलीके वश रहते हैं; बिना पारख। ये अर्थ ॥३०६॥

साखीः—छौ दर्शनमें जो परवाना । तासु नाम बनवारी ॥
कहहिंकबीरसबखलकसयाना । इन्हमेंहमहिंअनारी ॥३०७॥

टीका गुरुमुखः—योगी, जङ्गम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, ब्रह्मचारी; ये छौ दर्शनमें जो प्रमाण भया, सोई नाम जगत्में प्रमाण भया । जाप षट्दर्शन-के—'ॐकार'ब्राह्मण उपासक; 'सोहं ब्रह्मास्मि' संन्यासीका जाप; दरवेशमें दो प्रकार—एक हिन्दू, ताका जाप 'सोहं-हंसो'; और दूसरे मुसलमानका जाप 'हू अल्लाहू'; 'नाद मही अहं नाद' ये योगीका जाप; 'तत्त्वनाम अरिहन्' ये सेवड़े = जैनोंका जाप; 'निरञ्जनाय' ये जङ्गमका जाप। सिद्धान्त षट्दर्शनके---'अदेव मूल' ये ब्रह्मचारीका; 'अहं ब्रह्मास्मि' ये संन्यासीका; 'पवनमें पवन' ये दरवेशका; 'पृथिवीमें पृथिवी' ये योगीका; 'चन्द्रमुक्त शिला' ये सेवड़ेका; 'महदाकाशमें आकाश' ये जङ्गमका । ये षट् सिद्धान्त, षट् नाम संसारमें प्रमाण भये । सो ये छहों धोखा; परन्तु कोई विचार करके परखते नहीं । अगर छौ मतसे पार पारखपद, ऐसा कोई बताया चाहे तो उसे बौरा-दिवाना ठहराते हैं । और खलक छौ मतोंके बँधुवे, सो सब सयाने बनते हैं । ये आश्चर्य । तो गुरु याका दृष्टान्त बताते हैं—जैसा कोई एक नगरका राजा परम ध्यानी; सो योग-ध्यानमें बैठा तीन दिन । तबलग उसके नगरमें अबुधका जल बरसा । सो जल सबनने पीया, सो सबनकी बुद्धि नाश भई । चौथे दिन राजाने दरबार किया और सब प्रधान और सब पण्डित और नगरके लोग आये, सो दिवानी बातें करने लगे । सो सुनिके राजा आश्चर्य किया औ सबको समुझाने लगा कि दिवानी बातें तुम सब मत् करो ! क्यों करते हो ? तब सब लोग चमके औ कहने लगे कि राजा दिवाना हो गया । देखो ! सब पागल सरीखी बातें बोलता है । याको कैद करो या मारो । ऐसा मनसूबा सबन मिलि किया । तब राजा चकित हुआ और कहने लगा कि 'सबकी मति-बुद्धि नाश हुई । अब इनसे कुछ बोलना नहीं; नहीं तो आप अकेले और ये बहुत हैं । सो ये अपनेको फजीहत करेंगे । ताते इनहींकी ऐसी बातें करके इनको समुझाना, जाते ये सब मानुष-पनमें आवें ।' ऐसा निश्चय राजाने किया । फिर सबकी ऐसी बातें कहिके सबको समुझाने लगा, कसर बताने लगा । तद्वत् गुरुने जगत्में देखा । याका सिद्धान्त सुनोः—गुरु अपनी पक्की देह लेके पारख-समाधिमें बैठे थे, उतनेमें आनन्द-जल बरसा । सो

हंसाने पान किया, सो भूला। पक्केका कच्चा हुआ, एकका अनेक हुआ। तब काम-जल बरसा और सब जीवनने पीया। सो दिवाने भये औ दिवानी बातें करने लगे और दुःख पावने लगे। तब गुरु आप प्रकट होके सबकी ऐसी बानी बोलके सबकी कसर परखावने लगे कि 'सब खलक सयाना। इनमें हमहीं अनारी।' इनकी अनारीपना आपने लिया, और अपनी सयानपना उनको देके परखावने लगे। ये अभिप्राय ॥ ३०७ ॥

साखीः-साँचे श्राप न लागे। साँचे काल न खाय ॥
साँचहि साँचा जो चलै। ताको काह नशाय ?॥३०८॥

टीका गुरुमुखः—हे जीव ! तू सच्चा है, ताते तेरा नाश तीनकालमें नहीं। तू अविनाशी है। जो कोई श्राप देके तेरा नाश किया चाहे, तो तेरा नाश होता नहीं, तेरेको श्राप लगता नहीं। क्योंकि तेरे सिवाय श्रापादिक जेते पदार्थ हैं सो सब मिथ्या हैं, अनित्य हैं। तू नित्य वस्तु। तेरा नाश अनित्य वस्तुसे होवे नहीं। और सत्य वस्तुको काल नहीं खाता। क्योंकि काल अनित्य नाशमान् और तू जीव अविनाशी। कधी तेरा नाश नहीं। तू सच्चा औ तेरा विचार भी सच्चा। याके लिये गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तू पारखी; और सब अनुमान, कल्पना भास, अध्यासादि ये सब मिथ्या। बिविचार सोई अनित्य और तू नित्य वस्तु पारखी। सो पारख-भूमिकाते परखके सत्य, विचार, शील, दया, धीरज और विवेक, वैराग्य औ गुरुभक्ति, ऐसी तेरी सच्ची चाल। औ चलनेवाला जीव, सो पारख-भूमिकाको प्राप्त भया। ताका नुकसान तीनकालमें नहीं। ये अर्थ ॥३०८॥

साखीः-पूरा साहेब सेइये ! सब विधि पूरा होय ॥
ओछेसे नेह लगायके। मूलहु आवै खोय ॥३०९॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! पूरा कहिये जो अपना निजपद पारख परखावे। सोई गुरु-भूमिकाको प्राप्त होना, सोई सेवा। 'सब विधि पूरा होय' कहिये सब अध्यासको दरशावे। कर्म-अध्यास, यामें दो प्रकार—एक शुभ और एक अशुभ। अशुभ कहिये विषयादिक, औ शुभ कहिये स्वर्गादिक। औ योग-अध्यास, याहूमें दो प्रकार—एक शुभ और एक अशुभ। अशुभ कहिये हठयोग और शुभ कहिये राजयोग। भक्ति-अध्यास, याहूमें दो प्रकार—एक शुभ

और एक अशुभ। अशुभ कहिये जो आठ प्रकारकी मूर्त्ति-प्रतिमादिक-पूजन और तीर्थ-व्रत करे, और शुभ कहिये नाम-सुमिरण। औ ज्ञान-अध्यास; याहूमें दो प्रकार—शुभ और अशुभ। अशुभ कहिये जो विधि-निषेध ज्ञान करे, और शुभ कहिये जहाँ विधि-निषेध कुछ नहीं, मैं जैसे-का-तैसा। इस प्रकारसे सर्व अध्यासको जो जानता है और इनसे प्रीति नहीं रखता, ताको पूरा कहिये। और अध्यासमें जो कोई जीवको नेह लगावता है, सो झूठा = ओछा। सो ओछे = झूठेकी सङ्गति कियेसे मूल जो याकी समुझ है, सो ता समुझकी हानि होती है। ये अर्थ ॥ ३०९ ॥

साखी:—जाहु वैद्य घर आपने। यहाँ बात न पूछै कोय ?॥
जिन्ह यह भार लदाइया। निरबाहेगा सोय ॥३१०॥

टीका जीवमुखः—वैद्य कहिये गुरुवा लोग। सो गुरुवा लोगनने जीवनको उपदेश किया कि श्रवण, मनन, निदिध्यासन, साक्षात्कार—ऐसा संयम बतायके निज साक्षात्कार विज्ञान शब्दातीत, आनन्दमय ब्रह्मपदको प्राप्त होनेके वास्ते सम्बोधन जीवको किया। सो बोधवान् जीव गुरुवा लोगनसे कहते हैं कि हे महाराज ! आपने शब्दातीत पदका उपदेश किया, सो शब्दहीसे किया। सो तो शब्द ही है। सो शब्दातीत कैसे हुआ ? अब गुरुवा लोग जीवनको समुझावते हैं कि अद्वैत आनन्दमें कुछ द्वैत-भावना नहीं, तो सहज ही शब्दातीत हुआ। तब बोधवान् जीव बोलते हैं कि 'शब्दातीत अनिर्वाच्य ब्रह्म-स्वरूप है' ऐसा प्रमाण जो तुमने किया, सो ऐसा भास किसको हुआ ? भासे बिना प्रमाण तुमने कैसा किया ? तो ये सब तुम्हारा भास और तुम शब्दातीतके भासिक। सो भासमें स्थिति जीवनकी कैसे भई ? तो जीव सब नष्ट भये। कुछ खातिरी न भई। तो तुम्हारा उपदेश मिथ्या धोखा है। सो हे वैद्यजी ! तुम्हारी उपदेशरूपी दवाईसे तुम्हारा ही यह संशय-भासरूपी रोग न गया, तो हमारा कल्याण कैसे होयगा ? तुम्हारा उपदेश तो मिथ्या धोखा ठहरा। ऐसा जो मिथ्या धोखेमें तुमने घर किया है। ताते गुरुमुखी बोधवान् जीव कहते हैं कि 'जाहु वैद्य घर आपने।' जो वो धोखामें तुमने घर किया है, सो धोखामें तुम ही जाओ ! यहाँ कोई तुम्हारा अनुग्रह अङ्गीकार नहीं करता। ताके वास्ते उपदेशरूपी भार लिये चौरासीमें आते-जाते हो, सो तुम्हारा भार तुम ही निर्बाहो। ये अर्थ ॥ ३१० ॥

साखीः-औरनके सिखलावते । मोहड़े परिगो रेत ॥
रास बिरानी राखते । खाइनि घरका खेत ॥३११॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जो गुरुवा लोग जीवनको सिखापन देते हैं कि ब्रह्मज्ञान आनन्दमय अद्वैत स्वरूपको प्राप्त होय । सो उपदेश करते-करते थकित भये । सोई रेत मोहड़नमें काँटा पर गया; परन्तु जीवनको ब्रह्मपदकी प्राप्ति न भई । 'रास बिरानी राखते । खाइनि घरका खेत ।' रास कहिये ब्रह्मसुख औ खेत कहिये एकाग्र वृत्ति—सो औरनको बतलावते हैं; परन्तु अपने घरकी खबर नहीं कि हमारे घरका खेत काल = दुविधा खाते हैं । ये अर्थ ॥ ३११ ॥

साखीः-मैं चितवत हौं तोहिको । तू चितवत है वोहि ! ॥
कहहिं कबीर कैसे बनि है ? मोहि ! तोहिऔ वोहि ! ॥३१२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! तेरा दुःख देखके मैं तेरेको चितवत नाम देखता हौं । काहेते कि ? तू सर्वका कर्त्ता । क्योंकि जगत्-ब्रह्म दोनों तेरी कल्पना । सो कल्पनामें भ्रमवश होके नाना दुःख तेरेको प्राप्त हुए । सो तूने दुःख देखके अधैर्यवश होयके घबरायके दूसरा कर्त्ता कल्पनासे खड़ा किया । सो उस कर्त्ताको तू सम्भारता है नाम चितवता है, सो मिथ्या तेरी कल्पना । मोहि नाम कहिये गुरु; तोहि नाम कहिये जीव; वोहि नाम कहिये कल्पना-अनुमान । सो अनुमानका प्रमाण तू करता है औ अनुमानका कर्त्ता तो आप है । सो अपने पदकी तरफ निगाह नहीं रखता, तो पारखपद कैसे प्राप्त होय ? क्योंकि दो दृष्टि करके देखता है । एक दृष्टिसे कर्त्ताको देखता है और एक दृष्टि करके पारखी गुरुको देखता है । सो पारखी गुरु कहते हैं कि 'ये कैसे बनि है ?' कि शुद्ध पारखपदके विषय 'मोहि, तोहि, वोहि'—ये कछु सम्भवता नहीं । क्योंकि पारखी कबलग है ? जबलग परखावता है । सो पारखी पारख समाना । शुद्ध पारखके विषय त्रिपुटी नाश हुए बिना शुद्ध स्वरूपको प्राप्त होता नहीं । सोई बनाना । ये अर्थ ॥ ३१२ ॥

साखीः-तकत तकावत तकि रहा । सकै न बेझा मार ॥
सबै तीर खाली परा । चला कमानहि डार ॥३१३॥

टीका गुरुमुखः—तकत नाम देखनेवाला जीव, तकावत नाम देखानेवाले गुरुवा लोग। सो गुरुवा लोगोंने मानन्दी अनुमान ब्रह्मपद देखाया, सोई जीव तकने लगे, देखने लगे। बेझा कहिये निशाना और तीर कहिये क्रिया आदिक और कमान कहिये कल्पना। सो कल्पनारूपी कमानपर क्रियारूपी तीर ब्रह्म निशानेपर खैंचा; परन्तु क्रियासे ब्रह्मपद प्राप्त न भया। औ क्रिया करते-करते थके, तब खिसियायके कल्पनारूपी कमान डारके चौरासीमें चले गये। ये अर्थ ॥३१३॥

साखीः-जस कथनी तस करनी। जस चुम्बक तस ज्ञान॥
कहैं कबीर चुम्बक बिना। क्यों जीते संग्राम?॥३१४॥

टीका मायामुखः—माया जीवनको समुझावती है कि जाके प्राप्त होनेके वास्ते तुम कथनी गुणानुवाद कथते हो और करनी तो करते नहीं, तो कर्त्ता कैसे प्राप्त होय? क्योंकि लोहारूपी कथनी, चुम्बकरूपी करनी। याको दृष्टान्त— जैसे चुम्बकसे लोहाकी प्रीति है। चुम्बक लोहेको अपनेमें मिलाय लेता है। ऐसी कथनी और करनीकी एकाग्रता होय, तब ज्ञान प्राप्त होगा। और ज्ञान प्राप्त हुए बिना मन राजासे कैसे संग्राम जीतोगे?। ये अर्थ ॥ ३१४ ॥

साखीः-अपनी कहै मेरी सुनै। सुनि-मिलि एकै होय॥
हमरे देखत जग जात है। ऐसा मिला न कोय॥३१५॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि मैं जीवनको बार-बार समुझावता हौं कि तुम्हारेको क्या दुःख है? जेहि दुःखके मारे तुम बेहाल हो, सो दुःख तुम हमारेसे कहो! तब जीव बोलता है कि हे गुरु! हम अजान। कुछ जानते नहीं। पर एक संशय है कि हम कौन? और कहाँसे आये? और कहाँको जायेंगे? ये शङ्का। ताते गुरु दयादृष्टि करके कहते हैं कि हे जीव! तुम स्वतन्त्र चैतन्य अविनाशी; और आना-जाना—ये तो सर्व तुम्हारी कल्पनासे खड़ा भया। सो मिथ्या धोखा। ऐसा समझके पारखरूपमें मिलो! पारख पारखी एक, कछु भिन्न नहीं। और जो पारखपदको नहीं प्राप्त भये, सो हमारे देखते-देखते कल्पनावश होके मिथ्या धोखेमें जीव जाते हैं। ऐसा कोई न मिला कि मिथ्या धोखा परखके अपने पदको प्राप्त होय। ये अर्थ ॥ ३१५ ॥

साखीः-देश-विदेशे हौं फिरा। गाँव-गाँव की खोरि!॥
ऐसा जियरा ना मिला। लेवै फटक पछोरि ॥३१६॥

टीका गुरुमुखः—देश कहिये ज्ञान, औ गाँव कहिये तुरिया अवस्था, औ खोरि कहिये पञ्च ज्ञानइन्द्री। औ विदेश कहिये अज्ञान, और गाँव कहिये सुषुप्ति अवस्था, और खोरि कहिये पञ्च कर्मइन्द्री। औ हौं कहिये अभिमान। सो अभिमान दो प्रकारका—एक प्रत्यगात्मा ज्ञानी, सो पञ्च ज्ञानइन्द्रीमें विलास करते हैं। और दूसरा अभिमान—प्राज्ञ अज्ञानी, सो पञ्च कर्मइन्द्रीमें विलास करते हैं। ताते गुरु कहते हैं कि ये अपने-अपने अभिमानमें आसक्त हैं। निरभिमानी जीव कोई मिला नहीं कि ज्ञान और अज्ञान दोनों अभिमान, सोई कचरा फटक-पछोरके विचारद्वारा दृढ़ करके पारखपदसे मिलाय लेऊँ। ये अर्थ ॥ ३१६ ॥

साखीः—मैं चितवत हौं तोहिको ! तू चितवत कछु और ॥
नालत ऐसी चित्त पर। एक चित्त दुइ ठौर ॥३१७॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि हे जीव ! मैं तेरेको पारख-दृष्टि करके चितवता हौं, अपरोक्ष पारखपदको परखावता हौं। काहेते ? कि तेरेको सुखकी प्राप्ति होवे और स्थिर होय, आवागमनसे रहित होय। और तू चितवत कछु और। और कहिये परोक्ष परमात्मा सिद्ध करके ताको तू चितवन करता है, तो तेरेको पारखपद कैसे प्राप्त होय ? अरे ! चित्त तो एक, और भूमिका तो दो—एक परोक्ष और एक अपरोक्ष। ताते गुरु कहते हैं कि 'नालत ऐसी चित्तपर। एक चित्त दुइ ठौर।' जो तू एक चित्त करके दो भूमिकापर प्राप्त होना चाहता है, तो कैसे बनेगा ? याका दृष्टान्त चौपाई—"दुइ न होहिं एक सङ्ग भुआलू। हँसब ठठाय फुलाउब गालू ॥ रा० ॥" हँसना और गाल फुलावना, ये दो बात कैसे बनें ? ताते चित्तको परोक्ष पदसे फेरकर अपरोक्ष गुरुपदके विषय राखो और सुखिया होओ !। ये अर्थ ॥ ३१७ ॥

साखीः—चुम्बक लोहे प्रीति है। लोहे लेत उठाय ॥
ऐसा शब्द कबीरका ! कालसे लेत छुड़ाय ॥३१८॥

टीका मायामुखः—माया जीवनको उपदेश करती है कि हे जीव ! चुम्बक कहिये गुरुका शब्द और लोहा कहिये सुरत। जैसा चुम्बक लोहेको उठाय लेता है, ऐसा जो गुरुका शब्द है। सो गुरुका शब्द कहिये अनहद। सो अनहद दश प्रकारका—पहिले १. दुन्दुभी, २. घण्टा, ३. मृदङ्ग, ४. झाँझ, ५. नफीरी,

६. शङ्ख, ७. शहनाई, ८. बीणा, ९. भेरी, १०. बाँसुरी नाद । इस प्रकारके अनेक तरहके नाद; तामें मुख्य दशनाद । तामें बाँसुरीनाद अन्तमें ब्रह्माण्डके विषय शब्द उठता है । ता शब्दमें सुरत प्रवेश होयगी, तब बाँसुरी शब्द इसका लक्ष्य अपनेमें मिलाय लेवेगा । तब पिण्डाण्डका विश्व अभिमान छूट जायगा । माया कहती है कि 'ऐसा शब्द कबीरका । कालसे लेत छुड़ाय ।' कबीर कहिये गुरु योगी लोगोंका शब्द उपदेश ऐसा है कि कर्म-कालसे छुड़ायके ब्रह्माण्डमें स्थिर करता है । ये अर्थ ॥ ३१८ ॥

साखीः—भूला तो भूला। बहुरिके चेतना ॥
बिस्मय की छूरी। संशयका रेतना ॥३१९॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि अपने निजस्वरूपको ये भूला । याको दृष्टान्त—जैसे सूर्यको देखकर अबोध जीवको यह भ्रम भया कि उसको भी प्रकाशकर्त्ता कोई दूसरा ब्रह्म है । ऐसा जीव प्रवृत्ति पिण्डाण्डके विषय भूला कि उत्पत्ति-प्रलय जो होता है, ताको कर्त्ता कौन है ? ये शङ्का जीवको भई, तब प्रवृत्ति गुरुवा लोगोंने कहा कि उत्पत्ति-प्रलय करनेवाला एक ईश्वर है । ता ईश्वरकी प्राप्ति कैसे होय ? तब गुरुवा लोग समुझावते हैं कि पञ्चाग्नि तापो, जल-शयन लेओ, तीर्थ, व्रत, प्रतिमा-पूजन करो, चारों धाम परसो, तब कर्त्ताकी प्राप्ति होयगी । तब ऐसे करते-करते थकित भये । पिण्डाण्डमें कर्त्ताकी प्राप्ति न भई । ऐसा भूला । फिर बहुरिके चेतना । ता ऊपर फिर योगी लोग उपदेश चेतावते हैं कि जा ईश्वर कर्त्ताकी प्राप्तिके वास्ते पिण्डाण्डमें ढूँढ़ते हो, सो ईश्वर तो ब्रह्माण्डमें ज्योति-स्वरूप है । ताकी प्राप्ति हुए बिना भूल कैसे मिटेगी ? तब जीव विनती योगी लोगोंसे करते हैं कि हे स्वामी ! कर्त्ताकी प्राप्ति कैसे होय ? सो दया करके कहिये ! तब योगी लोग युक्ति बतावने लगे कि इङ्गला-पिङ्गला सम करके सुषुम्ना-मार्ग होके त्रिकुटीमें सुरत लगावना, तब ज्योति-प्रकाश होयगा और आनन्द-समाधि लगेगी । सोई तेरा स्वरूप । अब गुरु कहते हैं कि 'विस्मयकी छूरी, संशयका रेतना ।' विस्मयकी छूरी कहिये संशय और संशयका रेतना सो भी संशय । तो संशयके रेतनासे विस्मयकी छूरीको रेता, तो संशयरूपी रेतना तो बना ही रहा । ऐसे विस्मयरूपी शब्द प्रवृत्ति उपदेश किया सो भी शब्द; और संशयरूपी निवृत्ति उपदेश किया सो भी शब्द । तो संशयरूपी

जो दुःख था, सो दुःख तो बना ही रहा। तो बहुरिके क्या चेतना? तो कुछ चेता नहीं, पारखपदको प्राप्त भया नहीं। अचेत जड़ ब्रह्मपदमें घर किया। ये अर्थ ॥ ३१९ ॥

साखीः—दोहरा कथि कहैं कबीर! प्रतिदिन समय जो देखि ॥
मुये गये नहिं बहुरे। बहुरि न आये फेरि ॥३२०॥

टीका गुरुमुखः—दोहरा कहिये परमात्मा गुसैंयाँकी कीर्ति गुणानुवाद कथन करके जीवनसे गुरुवा लोग कहते हैं कि हे जीव! नित्यप्रति गुसैंयाँ परमात्माको मिलनेका समय निरखते रहना। क्योंकि आवागमनका जो दुःख है ताकी निवृत्ति होय, तब चोला छूटै उपरान्त फिर गर्भवासमें नहीं आवे। ऐसा माया उपदेश जीवनको करती है। ये अर्थ ॥ ३२० ॥

साखीः—गुरू! विचारा क्या करे? शिष्यहि माँ है चूक! ॥
भावै त्यों परमोधिये! बाँस बजाये फूँक! ॥३२१॥

टीका मायामुखः—गुरु कहिये योगी लोग; सो जीवनको सांख्ययोगका उपदेश करते हैं कि प्रकृति-तत्त्व एक। ताके ऊपर लक्ष्य लगाना। और सब तत्त्वनको लय करके जो शेष रहि जाय सो नित्य, और जो प्रकृति-तत्त्व लय होय सो अनित्य। अथ इतिहासः—सांख्य शास्त्रके आचार्य कपिलमुनि; ताकी माता देवहूती। सो माताको समुझावते-समुझावते बहुत दिन व्यतीत भये; परन्तु पुत्रभाव जानके माताने उपदेश अङ्गीकार नहीं किया। तब कपिलमुनिने अपने अन्तःकरणमें विचार किया कि पुत्रभाव छूटे विना माताकी वृत्ति शान्त होनेकी नहीं। तब मातासे कपिलमुनिने कहा कि हे माता! हम छः महीना रामत करके फिर आवेंगे। सो माताकी आज्ञा लेके चले गये। फिर अपना स्वरूप योगीका धारण करके छः महीनाके बाद माताके घरमें आये। सो माता योगेश्वर जानके सेवा करने लगी और योगेश्वरके सामने बहुत विलाप करने लगी कि—हे महाराज! एक तो मेरा पुरुष नहीं ताका दुःख, और दूसरे छैः महीना हुए—मेरा पुत्र रामतको गया है सो भी नहीं आया। ताका दुःख रात-दिन मेरेको लगा है। सो मेरे ताईं कछु कल पड़ती नहीं। तब योगेश्वर समुझाते हैं कि अरे! देह तो नाशवान् अनित्य। सो तू प्रकृतिभाव लेके देहके विषय आसक्त क्यों रहती है? एकदिन तेरा भी शरीर नाश हो जायगा।

ताते देह, धन, कुटुम्ब आदि सबकी आसक्ति छोड़ो ! और आत्म-स्वरूप जो नित्य-अस्ति प्रकृतितीत तेरा स्वरूप है, ताको प्राप्त क्यों नहीं होती ? तब देवहूती विनती करती है कि हे महाराज ! आत्म-स्वरूप प्राप्त होनेकी क्या युक्ति है ? सो कृपा करके कहिये ! तब स्वामीजीने सर्वसाक्षिणी मुद्राका उपदेश करके युक्ति बताने लगे कि प्रथम सिद्धासन करना और उत्तराभिमुख करके सुरत अन्तरिक्ष अन्तःकरणके मध्यमें लक्ष्य लगावना और दशोंदिशा प्रकृतिभाव है, सो अन्तरिक्षमें लय करते-करते आप शेष रह जाना । सोई आत्म-स्वरूप । ऐसा उपदेश योगेश्वरने कहा, तब सर्व आसक्ति छूटी और अपने आत्म-स्वरूपको देवहूती प्राप्त भई । तब देवहूती अपना अनुभव स्वामीसे कहने लगी कि हे महाराज ! जो स्फुरण उठता है, ताको मैं जानती हौं । सो स्फुरण कछु मैं नहीं । मैं द्रष्टा सर्वसाक्षी, सर्वत्रको जाननेवाली । मेरे विषय प्रकृति-भाव कुछ नहीं । ऐसी देवहूतिकी परिपक्व दशा देखके योगेश्वरने कपिलमुनिका स्वरूप धारण किया और कहते हैं कि हे माता ! मैं तो तेरा पुत्र हौं । तेरेको बोध करनेके वास्ते योग धारण किया । काहेते ? कि तेरेको पुत्र-भाव था । तब देव-हूती कहती है कि काको पुत्र ? काकी माता ? काको पिता ? अरे ! ये तो सब प्रकृति-भाव नाशवन्त ! और मैं तो हे गुरु ! तुम्हारे बोध करके अविनाशी अखण्ड स्वरूप हौं । तो "गुरु विचारा क्या करै ?" शिष्यहीकी तरफ कसर है । अनेक तरहसे गुरुने बोध किया, पर शिष्यने उपदेश अङ्गीकार न किया । सो कैसा ? ताको दृष्टान्त—जैसे बाँसकी नली एक तरफसे फूँका और दूसरी तरफसे फूँक निकर गई । तद्वत् सांख्यमत कपिलमुनिने देवहूती माताको बोध किया । ये अर्थ ॥ ३२१ ॥

साखीः—दादा ! भाई ! बाप कै लेखो । चरणन होइ हौं बन्दा ! ॥
अबकी पुरिया जो निरुवारे । सो जन सदा आनन्दा ॥ ३२२ ॥

टीका मायामुखः—गुरुवा लोग जीवनको उपदेश करते हैं; परन्तु जीवन-के अन्तःकरणमें कछु उपदेश ठहरता नहीं । ताके वास्ते गुरुवा लोग, जैसे माता-पिता बालकको समझाते हैं, तैसे अजान जीवनको दादा ! भाई ! बाप ! कह करके समझावते हैं । तब भी समुझते नहीं । और जीवनको समझ प्राप्त हुए बिना आनन्द कैसे होय ? ताके वास्ते फिर गुरुवा लोग जीवनके पाँवपर गिर

करके बन्दगी करके कहते हैं कि "अबकी पुरिया जो निरुवारे।" अरे! ऐसी नरदेह पायके कालके मुखमें क्यों जाते हो? धन, दारा, सुत, लोग, कुटुम्ब सबकी आसक्ति छोड़के भगवत्-भजनसे प्रीति रखना। क्योंकि प्रपञ्च-ब्यौहार धन, दारा आदि ये सब नाशवन्त पदार्थ हैं। ऐसा निरुवार = तिरस्कार करके परमार्थ—परमात्माकी तरफ वृत्ति लय करना! तामें सदा-सर्वकाल आनन्दरूप रहे। ये अर्थ ॥ ३२२ ॥

साखीः—सबते लघुता भली। लघुतासे सब होय!॥
जस दुतियाको चन्द्रमा। शीस नावै सब कोय ॥३२३॥

टीका मायामुखः—'सबते लघुताई भली!' लघुता कहिये दीनता, गरीबी, दासवत्। जैसे स्त्री अपने बालकको छलती नहीं और अपने पुरुषनको छलती है। क्योंकि बालक अजान, ये जानके माता रक्षा करती है। और पुरुष स्त्रीभावको जानता है, ताके वास्ते छलती है। याको दृष्टान्तः—एक समय शुकदेवजी अपनी ब्रह्म-समाधिमें बैठे थे, ता समय इन्द्रकी अप्सरा रम्भा, उर्वसी छल करने को आई। अनेक तरहके अद्भुत रूप धारके हाव-भाव-कटाक्ष करके नृत्य करने लगीं औ वचनरूपी कामके बाण मारीं और कहती हैं कि 'महाराज! मैं इन्द्रलोकसे आपके दर्शन करनेको आई हूँ, सो कृपादृष्टि करके मेरा अङ्गीकार करना! मेरा शरीर कछु मल-मूत्रादि दुर्गन्धका नहीं। मेरा शरीर तो अर्गजा-सुगन्धादिसे निर्मल है।' तब शुकदेव स्वामी बोलते हैं कि 'हम जो ऐसा तुमको जानते तो व्यासजीकी स्त्रीके पेटमें अवतार न लेते। हे माता! तुम्हारे ही पेटमें अवतार लेते।' तब रम्भा, उर्वसी लज्जायमान हो, नमस्कार करके इन्द्रलोकको गई। ज्यों 'दुतियाको चन्द्रमा' छोटा स्वरूप; ताको सब संसार नमस्कार करते हैं और पूर्णिमाको चन्द्र सम्पूर्ण कला प्रकाश होता है, ताको कोई नमस्कार दीर्घपद जानके करता नहीं। तैसे रम्भा, उर्वसी अहंभाव मायारूप लेके शुकदेवको ठगनेको आई; परन्तु शुकदेव मुनिने लघुता पद निरभिमानी बालदशा धारण किया। तब सर्व तरहसे माया-बाण बेधा नहीं और ब्रह्म-समाधिमें स्थिर हुआ। माया खिसियायके लजाय गई। ये अर्थ ॥ ३२३ ॥

साखीः—मरते—मरते जग मुवा। मुये न जाना कोय?॥
ऐसा होयके ना मुवा। जो बहुरि न मरना होय ॥३२४॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि तीर्थ-व्रत करते-करते ये ही आशामें सारा जग मुवा और चौरासीमें चला जाता है; परन्तु आशा छोड़के कोई मरा नहीं कि, आवागमनसे रहित होय। आशारूपी बीज, सोई फिर देह होनेका कारण है। ये अर्थ ॥ ३२४ ॥

साखीः-मरते-मरते जग मुवा। बहुरि न किया विचार ॥
एक सयानी आपनी। परबस मुवा संसार ॥३२५॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि मानुषदेह पायके जीवनने कुछ विचार किया नहीं कि ब्रह्म-जगत्, लोक-परलोक, स्वर्ग-नरक, लोग-कुटुम्ब— इन सबकी आशा बन्धनरूपी है और इसी आशामें सब मरे। ऐसा न जानके फिरके विचार न किया। एक सयानी आपनी कहिये अपनी स्वतः बुद्धि बिना परवश गुरुवा लोगनके वचनको प्रमाण करके सब संसार लोभमें मारा गया। पारखपदकी प्राप्ति न भई। ये अर्थ ॥ ३२५ ॥

साखीः-शब्द है गाहक नहीं। बस्तु है महँगे मोल ॥
बिना दाम काम न आवै। फिरे सो डामाडोल ॥३२६॥

टीका गुरुमुखः—शब्द कहिये गुरुमुख सारशब्द निर्णयरूपी यथार्थ है। ऐसी जो वस्तु गुरुका शब्द है, सो महँगे मोल है। दाम कहिये सचौटी, अन्तः-करणकी निर्मलता चन्द्रमणि पत्थरके माफिक। सोई दाम = सचौटी बिना गुरु-मुख शब्दकी यथार्थ प्राप्ति होती नहीं। औ ताकी प्राप्ति हुए बिना जीवमुख शब्द, मायामुख शब्द और ब्रह्ममुख शब्द; ये तीनों शब्दमें गुरुवा लोग गुरु पारखके बिना मिथ्या धोखेमें डामाडोल होके चौरासीमें फिरते हैं। कछु पारखपदकी प्राप्ति होती नहीं। ये अर्थ ॥ ३२६ ॥

साखीः-गृह तजिके भये योगी। योगीके गृह नाहिं ॥
बिना विवेक भटकत फिरै। पकरि शब्द की छाहिं ॥३२७॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि गुसैंयाँ परमात्मा कर्त्ताकी प्राप्तिके वास्ते घरकी स्त्री, लड़का, कुटुम्ब, द्रव्य, सम्पत्ति छोड़के वैराग्य धारण करके अरण्य (जङ्गल)में योगक्रिया करने लगे। सो गुसैंयाँ कर्त्ता योगीके गृहमें नहीं

है। गृह कहिये ब्रह्माण्ड, सो ब्रह्माण्डमें भी गुसैंयाँ प्राप्त न भया और बिना विवेक–विचार अपना प्रतिबिम्ब, जो शब्दकी छायाका अनुभव भया, तामें बन्ध भया, मुस्तकीम (सीधा खड़ा; मुस्तकिल = दृढ़, मजबूत) हुआ। ये अर्थ ॥३२७॥

साखी:-सिंह अकेला बन रमै। पलक-पलक करै दौर ॥
जैसा बन है आपना। वैसा बन है और ॥३२८॥

टीका गुरुमुखः—सिंह कहिये जीव औ वन कहिये देह। पाँच तत्त्व, पच्चीस प्रकृति, तीन गुण, दश इन्द्री, पञ्च विषय और चतुर्दश देवता आदि समुदाय-रूपी वनमें जीव निरन्तर एक आप रहता है और अनेक उपाय करके अपने जीवका यतन रखता है और पलक-पलक दौरके पराये जीवका घात करता है, मनके वश होके कछु दया लावता नहीं। ताते गुरु कहते हैं कि हे जीव ! जैसा दुःख-सुख तेरे शरीर-वनके विषय मालूम होता है, वैसा ही और शरीरके विषय मालूम होता है। ऐसा न जानके मनरूपी कालके वश होके अपना स्वतन्त्र विचार, दया छोड़ देते हैं। ये अर्थ ॥ ३२८ ॥

साखी:-पैठा है घट भीतरे। बैठा है साचेत ॥
जब जैसी गति चाहे। तब तैसी मति देत ॥३२९॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि गुरुवा लोगोंका मानन्दीरूपी शब्द-उपदेश जीवनके घटमें पैठा है। सोई शब्द सचेत = हुशियार होके अन्तःकरणमें पैठके जब जैसी गति चाहना होती है, तब तैसी मति = मानन्दी जीवनके अन्तः-करणमें प्रेरणा करता है। मानन्दी अनेक प्रकारकी—नाम, रूप, गुण, कर्म, विधि, निषेध। इस प्रकार विचार करके समुझ बिना जीव मानन्दीमें बन्ध भये। ये अर्थ ॥३२९ ॥

साखी:-बोलत ही पहिचानिये ! साहु चोरका घाट ! ॥
अन्तर घटकी करनी। निकरे मुखकी बाट ॥३३०॥

टीका गुरुमुखः—साहु कहिये गुरुका शब्द, औ चोर कहिये गुरुवा लोगन-का शब्द। अब निगाहमान निगाह करवाते हैं कि साहुकारका स्वरूप धारण करके चोर = जो गुरुवा लोगनका शब्द-उपदेश, वह ॐकार जीवनको दृढ़ापन करके भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनामें लगावते हैं, दृढ़ करते हैं, सोई चोर।

और भास, अध्यास, अनुमान, कल्पनाको मिथ्या जान करके अपने निजस्वरूप-को प्राप्त करते हैं, सोई साहू। तो हे जीव ! अन्तरघटकी करनी = बोल निकरे मुखकी बाट। सोई पहिचानिये ! कि दोनोंका शब्द मुखके द्वारेसे होके निकरता है। और शब्द तो एक-सा ही और द्वारा भी एक ही है; परन्तु करनी-घाट न्यारी-न्यारी है। सो परखके पहिचानो !। ये अर्थ ॥ ३३० ॥

साखीः--दिलका महरमि कोइ न मिलिया। जो मिलिया सो गर्जी ॥
कहहिं कबीर अस्मानहिं फाटा। क्योंकर सीवै दर्जी ?॥३३१॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि दिल कहिये अन्तःकरण, जिगरका महरमी सोई जानकार। सो ऐसा कोई न मिला कि अपना सर्व विकार छोड़कर और निर्विकार होके पारखपदको प्राप्त होय। और जो कोई जीव मिले, सो अपनी गरजके लोभी मिले। 'लोभ कहिये अष्ट प्रकारकी सिद्धिः—१. 'अणिमा' कहिये बैठे तो किसीके उठाये न उठे; २. 'गरिमा' कहिये पृथिवीमें गड़िके दूसरी जगह प्रकट होय; ३. 'लघिमा' कहिये बालक हो जाय; ४. 'गिरिमा' कहिये पर्वताकार हो जाय; ५. 'हुतासनी' कहिये अग्निमें न जरे; ६. 'महिमा' कहिये सर्व जगत् मानै; ७. 'अन्तर्यामिनी' कहिये एकइस ब्रह्माण्ड भरेका हवाल जाने; और ८. 'वाचा-सिद्धि' कहिये शाप-आशीष लगे। इस प्रकार अष्ट सिद्धिका लोभ और 'नवम ऋद्धि' कहिये सम्पत्तिका लोभ, अन्नपूर्णाका लोभ। लोभ स्वर्गका, लोभ नामधारीका, लोभ प्रपञ्च-व्यौहार, लोभ कुटुम्ब, घर, सुत, स्त्री आदि अनेक प्रकारके लोभमें परे और लोभकी वासना लेके मिले। 'कहहिं कबीर अस्मानहि फाटा।' तो गुरु कहते हैं कि हे जीव ! अस्मान कहिये, आकाश कहिये, अन्तःकरण। सो अन्तःकरणमें अनेक प्रकारकी वासना पैठी, सोई आकाश फाटा। और दरजी कहिये विचारवान्। सो विचारवान् कबलग तेरे दिलको समुझावे ? तू निर्वासना होके गुरुको मिलता नहीं तो पारखपद कैसे प्राप्त होय ?। ये अर्थ ॥ ३३१ ॥

साखीः--ई जग जरते देखिया ! अपनी-अपनी आगि ॥
ऐसा कोई ना मिला। जासों रहिये लागि ॥३३२॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जहाँलग जीव जगत्में हैं, सो सब

अपनी-अपनी आगमें जरते हैं। आग कहिये पाँच प्रकारकी—कामाग्निमें सारा जगत् जरता है, योगी योगाग्निमें जरते हैं, विश्वास-अग्निमें भक्त जरते हैं, वैराग्य-अग्निमें वैरागी लोग जरते हैं औ ज्ञानी लोग ज्ञानाग्नि, भास-अध्यास-में जरते हैं। इस प्रकारसे अपनी-अपनी कहिये अपनी-अपनी मानन्दीके विषयमें सब जरते हैं। ऐसा एक विचारवान् न देखा; कि इन पाँच अग्निसे व्यतिरेक पारखी गुरु कोई मिला नहीं कि जाकी शरणमें जायके बचाव होय, पारखपद प्राप्त होय। ये अर्थ ॥ ३३२ ॥

साखीः--बना--बनाया मानवा। बिना बुद्धि बेतूल ॥
कहा लाल ले कीजिये! बिना बासका फूल ॥३३३॥

टीका गुरुमुखः—'बना–बनाया मानवा, बिना बुद्धि बेतूल।' सो गुरु कहते हैं कि प्रथम अहङ्काररूपी आप बना कि मैं जीव दुःखिया, लाचार! मेरेसे मेरा दुःख नाश होता नहीं। ऐसा दीन बना, तब दूसरा एक अनुमान करके कर्त्ता बनाया कि मेरेको सुख देनेवाला कोई और कर्त्ता है। तब गुरु कहते हैं कि इसका स्वतन्त्र स्वजातीय विचार, जाकी मति स्थिर, जो कीमती थी, सो बिना बुद्धि कीमत हलकी हो गई। सर्व कला छीन भई और बेतूल = अधीर हुआ। अब लाल कहिये मानुषदेह, सो वासनारूपी गुरुबुद्धि नहीं। तो ऐसा बेबुद्धि मानुषको क्या अङ्गीकार करना? ये अर्थ ॥ ३३३ ॥

साखीः--साँच बराबर तप नहीं। झूठ बराबर पाप ॥
जाके हृदया साँच है। ताके हृदया आप ॥३३४॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि साँचा कहिये जाके हृदयमें झूठा अनुमान, अध्यास नहीं, सोई साँचा तप; और झूठ अनुमान, अध्यास जो मानता है सोई पाप। काहेते? कि भास–अध्यास जड़। जरा-सा भी बिविचार, तहाँ भासिक नहीं और जाके हृदयमें साँचा विचार है, तहाँ भास-अध्यास, अनुमानकी मानन्दी त्रिकाल—भूत, भविष्य, वर्त्तमानके विषय नहीं है, ताके घटमें भासिक आप है। ये अर्थ ॥ ३३४ ॥

साखीः--का रे बड़े कुल ऊपजे? जो रे बड़ी बुद्धि नाहिं ॥
जैसा फूल उजारिका। मिथ्या लगि झरि जाहि ॥३३५॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि चौरासी लक्ष योनिमें फिरते-फिरते बड़े कुल = मनुष्य-योनिमें आयके जीव प्राप्त भया। सोई सब योनिनसे बड़ी योनि। क्योंकि और योनिमें कुछ गुरु-विचार, सत्सङ्ग, पारखपदकी प्राप्ति होती नहीं। औ भोग–विलास, खान–पान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अहङ्कार–ये सब खानिमें सबको प्राप्त हैं; परन्तु एक गुरुपदकी प्राप्ति नहीं। सो गुरुपदकी प्राप्ति, सत्सङ्ग–विचार एक मनुष्यदेहके विषय प्राप्त होता है। ताते गुरु जीवको कहते हैं कि ऐसी मनुष्यदेह पायके बड़ी बुद्धि कहिये गुरुबुद्धि, विचार हासिल न भया। और लोग, कुटुम्ब, स्त्री, धन, दारा, सुत, कलत्र आदिके मोह मिथ्या विषयनमें मानुषदेह नाश होयके फिर चौरासोका दुःख बना ही है। ताका दृष्टान्त–कि जैसा उजाड़ जङ्गलके विषय फूल लगा, सो मिथ्या कहिये पृथिवीमें लाल बेकाम झर गया। तैसे बिना पारख जीव मिथ्या चौरासी गर्भवासमें जायके प्राप्त भये, बिना गुरुबुद्धि। ये अर्थ ॥ ३३५ ॥

साखीः--कर्त्ते किया न विधि किया ! रवि शशि परी न दृष्टि ! ॥
तीन लोकमें है नहीं। जाने सकलो सृष्टि ॥ ३३६ ॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जीवने एक अनुमानसे जो प्रमाण किया है कि कोई एक सिरजनहार मालिक है। ऐसा अनुमानसे प्रमाण सारा जगत्‌ने किया। परन्तु गुरु कहते हैं कि जो अनुमानसे प्रमाण जीवने किया है, सो वस्तु कुछ है नहीं। मिथ्या धोखा तेरी कल्पना। सो तेरी कल्पना करिके कल्पित प्रतिबिम्बरूप जो अनुभवमें आया, सो कछु तेरे सिवाय प्रतिबिम्ब खड़ा भया नहीं। परन्तु बिना विवेक ये कर्त्तव्य करके कर्त्ता बनाया। अब विधि कहिये संयोग। सो कुछ संयोगसे हुआ नहीं; क्योंकि तेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं। औ रवि कहिये सूर्य, औ शशि कहिये चन्द्र। सो दिनको सूर्यके प्रकाशसे भी अनुमानका रूप देखनेमें नहीं आया औ रातको चन्द्रके भी प्रकाशमें अनुमानका रूप देखनेमें नहीं आया। औ रात–दिवस दोनोंकी सन्धिमें भी देखो तो कुछ है नहीं। सब तेरी कल्पना। अथवा इङ्गला-पिङ्गला-सुषुम्ना, ये ही तीनों लोक। तामें भी देख न परा। अथवा श्वासोच्छ्वासके मध्य शून्य, सोई तीनलोक। तामें भी देख न परा। अथवा अर्द्ध-ऊर्ध्व-मध्य, सोई तीनलोक। तामें भी देख न परा। अथवा 'तत्त्वमसि' ये तीनलोक; अथवा जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति, ये

तीन लोक; कर्म-काल-कर्ता, ये तीन लोक; अथवा ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय, ये तीनलोक; अथवा ध्याता-ध्यान-ध्येय, ये तीन लोकमें देखा; परन्तु देखनेमें आया नहीं और मिथ्या धोखामें जानके वा मानके सारा जगत् अनुमानमें बन्ध भया। कुछ पारखपद प्राप्त न भया। ये अर्थ ॥ ३३६ ॥

साखीः--सुरहुर पेड़ अगाध फल। पन्छी मरिया झूर ॥
बहुत जतन कै खोजिया। फल मीठा पै दूर ॥३३७॥

टीका गुरुमुखः—गुरु ऐसा कहते हैं कि मायाने जीवनको ऐसा उपदेश किया कि सुरहुर पेड़। सुरहुर कहिये लम्बा सूधा। ऐसा जो बानीरूपी वृक्ष है, औ ता पेड़का अन्तःकरण भूमिकामें जड़ औ ता वृक्षका अन्त ब्रह्माण्डमें है, सोई ब्रह्म। औ अगाध कहिये सायुज्य-मुक्ति सर्वोपरि, सो बड़ी मुक्ति। सो सायुज्य मुक्ति कहिये जीव-ब्रह्मकी एकता। मीठा कहिये ब्रह्मानन्द सुख। सो ऐसा सुख पाये बिना आवागमनका दुःख कैसे छूटेगा ? ये बड़ा दुर्लभ है। बड़ी सुकृतसे प्राप्त होयगा। बिना प्राप्त हुए दुःख तीनकालमें छूटेगा नहीं। ऐसा मायाका उपदेश सुनिके जीवनको हर्ष-विस्मय खड़ा भया। सो हर्ष कहिये ब्रह्मानन्द सुखका लोभ; औ विस्मय कहिये डर आवागमनके दुःख औ नरकका। तब जीवपक्षी झूरने लगे। झूरना कहिये अध्यास। सो उपदेश-प्रमाण बहुत यतन करके खोजने लगे। पूरक-कुम्भक-रेचक करके, श्रवण-मनन-निदिध्यासन करके और विश्वास करके खोजने लगे। नाम सुमिरण किया और शम-दम आदि अनेक यतन करके खोजे, पर मिला नहीं। क्योंकि ब्रह्म-जीवकी एकताई भई नहीं। कदाचित् कोई शङ्का करेगा कि काहे नहीं एकताई भई ? तो जो एकताई होती तो ब्रह्मसुखको कौन कहता ? अरे ! जो ब्रह्मानन्द हुआ, सो तो जीवका क्रिया-पद है। सो आनन्दको जीव जानता है। जो जीव आनन्द होता तो आनन्द कौन कहता ? इसवास्ते एकताई अद्वैत होता तो आनन्द सिद्ध नहीं होता। ताते द्वैत ही सिद्ध होता है। इसवास्ते ब्रह्मसुख दूर है। दूर कहिये भास, भास कहिये दृश्य। सो जीवपक्षी अपने अध्यासमें थकि गये, मर गये। मीठा कहिये दृश्य, औ देखनेवाला द्रष्टा। तो द्रष्टा-दृश्यकी एकताई होती नहीं, तो यह द्रष्टा स्वयं ही दृश्य कैसे होयगा ? ताते फल मीठा, पै दूर। उपदेश मिथ्या। ये अर्थ ॥ ३३७॥

साखी:--बैठा रहै सो बानिया। ठाढ़ रहै सो ग्वाल॥
जागत रहै सो पहरुवा। तेहि धरि खायो काल॥३३८॥

टीका गुरुमुख:—'बैठा रहै सो बानिया' कहिये सत्त्वगुण भक्त दानी, बैठी जगह दान करते हैं, पुण्य करते हैं, नाम-स्मरण करते हैं, पाँवमें घुँघुरू बाँधके नाचते हैं। अपनी मुक्तिके वास्ते तन, मन, धनसे बिकाय गये; परन्तु मुक्तिरूप कल्पना, सोई काल भक्तनको आखिर पकड़के खा गया। कछु कल्पना रहित न भई। और 'ठाढ़ रहे सो ग्वाल' = रजोगुणी कर्मी खड़े रहते हैं। और कोई ठाढ़ेश्वरी बना, कोई अनेक प्रकारके तीर्थ करे, कोई चारों धाम—जगन्नाथ, रामनाथ, बद्रीनाथ, द्वारिकानाथ परसते हैं, कोई पृथिवी-परिक्रमा देते हैं। ऐसे अनेक प्रकारके कर्म करते हैं मुक्तिके वास्ते। परन्तु कर्मरूपी कल्पना, सोई काल कर्मिनको आखिर अन्तमें खाय गया। कुछ कल्पना रहित न भई। औ 'जागत रहे सो पहरुवा' कहिये तमोगुणी योगी रात-दिन जागते रहते हैं। क्योंकि इङ्गला–पिङ्गलाको देखते रहते हैं और श्वासोच्छ्वासको लक्ष्यसे देखते रहते हैं और रेचक, पूरक, कुम्भक करते हैं और इन्द्रियनको देखते रहते हैं कि कहूँ चलायमान न होय। इस प्रकार अनेक तरहके साधन भुक्ति-मुक्तिके वास्ते करते हैं; परन्तु साधनरूपी कल्पना सोई काल। सो योगिनको अन्तमें खाय गया। कुछ कल्पना रहित न भई। रजोगुण, सत्त्वगुण, तमोगुण—इन तीनोंको शुद्ध सत्त्वगुणरूपी काल–कल्पना खाय गई और आप कल्पना नाश न भई। कल्पौ गये; परन्तु कल्पना ना गई। ये अर्थ ॥ ३३८ ॥

साखी:--आगे--आगे दौं जरे। पाछे हरियर होय॥
बलिहारी तेहि वृक्षकी। जर काटे फल होय॥३३९॥

टीका गुरुमुख:—आशारूपी प्रपञ्च एक वृक्ष औ विरहरूपी अग्नि। सो गुरु कहते हैं कि माया जीवनको उपदेश करती है कि—'आगे–आगे दौं जरे।' तो भगवत्-प्राप्ति होनेके वास्ते भक्तिरूपी विरह-अग्नि, आशारूपी प्रपञ्च जो वृक्ष है, ताको जलावनेके वास्ते लगी। जासों आशारूपी वृक्ष जला औ नाश भया; परन्तु कछु भगवत्की प्राप्ति न भई। पाछे सन्देहरूपी जड़ बनी रही, ताते जन्म–मरणका दुःख बना रहा। कुछ गया नहीं। और सन्देहरूपी जड़ करके

पाछे फिर वृक्ष उत्पन्न भया । जन्मना-मरना, उत्पत्ति अरु लय बना रहा । कुछ दुःख छूटा नहीं । अब गुरु फिर कहते हैं कि हे जीव ! सन्देहरूपी वृक्षकी जो जड़ है, सो जड़ काटो ! क्योंकि जो जड़में कूवत है, बल है—सो हरे बिना, नाश हुए विना सुखरूपी फल प्राप्त होनेका नहीं । सुख कहिये जो जन्म-मरण-का दुःख छूट जावै, सोई सुख । ये अर्थ ॥ ३३९ ॥

साखीः--जन्म--मरण बालापना । चौथे वृद्ध अवस्था आय ॥
जस मूसाको तकै बिलाई । अस यम जिव घात लगाय॥ ३४०॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि मूसा कहिये जीव, और बिलारी कहिये कल्पना-माया, सोई यम = काल । सो जा दिनते नरदेह प्राप्त भई और देहका अन्त भया । बालापन जीवका जायके बुढ़ापा आया । आशा-तृष्णा, मान-गुमान, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहङ्कार और प्रपञ्च विषयनमें; अथवा सूक्ष्म विषय—भास, अध्यास, अनुमान आदिमें जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, तुर्या--ये चारों अवस्थाके विषय जीव गाफिल रहा; परन्तु कछु सत्सङ्ग करके दया, क्षमा, शील, सत्य, धैर्य--ऐसी पक्की अवस्थाको प्राप्त न भया । तब अन्तमें कल्पना-मायाने घात किया औ गाफिलीके वश जीव दुःखरूपी रहि गये; विना पारख । ये अर्थ ॥ ३४० ॥

साखीः--है बिगरायल ओरका । बिगरो नाहिं बिगारो ! ॥
घाव काहि पर घालो । जित देखो तितप्राणहमारो॥ ३४१॥

टीका गुरुमुखः—'है बिगरायल ओरका ।' सो ओर कहिये मध्यमें जीव विगरा । कुछ आदिमें बिगरा न था । शुद्ध स्वरूप निर्विकार जीव हता; परन्तु मध्यमें गुरुवा लोगोंने अनेक प्रकारके उपदेश करके जीवके अन्तःकरणमें विकार खड़ा किया और जीवकी शुद्धताई हरके विकाररूपी खराब किया, चौरासी आवागमनका अधिकारी बनाया । अब वही गुरुवनका उपदेश जीवनके अन्तः-करणमें जड़ हो गया । गाफिल हो गये । कुछ अपने स्वरूपकी खबर रही नहीं । आसक्त भये । अब गुरु विचार करते हैं कि जीवनकी गाफिली, आसक्ति कैसे छूटे ? गुरुवा लोगनने तो जीवनको अनेक तरहसे दुःख दिया । सो दुःख छुड़ानेके वास्ते गुरु कहते हैं कि जो भास-अध्यास आदि गुरुवनने दृढ़ाया है,

सो मिथ्या धोखा है और तू तो हे जीव ! हे प्राण ! भास-अध्यासको जानने-वाला मेरा स्वजाति है । और कछु मैं जीवघातक काल नहीं । तो 'घाव काहिपर घालो ?' जो त्रासरूपी घाव मारो तो जीव बहुत दुःखी होते हैं । इस वास्ते शनैः शनैः मिथ्या धोखा परखायके पारखपर स्थिर करता हौं । ये अर्थ ॥३४१॥

साखीः—पारस परसै कञ्चन भौ। पारस कधी न होय ॥
पारसके अर्स-पर्स ते। सुवर्ण कहावै सोय ॥३४२॥

टीका मायामुखः—पारस कहिये ब्रह्म, और लोहा कहिये जीव, जगत् । सो विशिष्टाद्वैतके मतवाले बोलते हैं कि जीव कधी ब्रह्म होता नहीं । जीवकोटि न्यारी और ब्रह्मकोटि न्यारी । जीव तो कर्मके अधीन, प्रकृतिवश । प्रकृतिसे उत्पन्न होता है औ प्रकृतिमें लय होता है । कुछ ब्रह्मका उत्पत्ति-लय होता नहीं । जीवनने नाम-स्मरण भक्ति करी, तब ब्रह्म प्रसन्न हुआ, सोई स्पर्श हुआ । तब लोहारूपी जो जीव था, सो कञ्चनरूपी ईश्वर दशों अवतारादि उत्पन्न भये । ये ब्रह्मके नाम-स्मरणकी विशेषता है । ये अर्थ ॥ ३४२ ॥

साखीः—ढूँढ़त—ढूँढ़त ढूँढ़िया ! भया सो गूना-गून ॥
ढूँढ़त-ढूँढ़त ना मिला ! तब हारि कहा बेचून ॥३४३॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि जीवको स्वतः अनुभव एक संशय खड़ा भया कि—'एक समय दुःख होता है और एक समय सुख होता है । सो सुख-दुःखको देनेवाला कोई कर्त्ता और है । जो कहिये कि मैं ही कर्त्ता हौं; तो जा समय सुख चाहिये ता समय दुःख होता है, सुख प्राप्त होता नहीं । औ जा समय दुःख होना ता समय सुख होता है । तो हमारे किये कुछ होता नहीं । ताते कर्त्ता कोई और है ।' ऐसा जीवको अनुभव हुआ, तब हिन्दू और मुसलमान दोनोंने मनसूबा करके अनुमानसे कर्त्ता सिद्ध किया । हिन्दूने एक निराकार, निरञ्जन, निर्गुण, चौदह लोकके ऊपर शून्यमें ठहराया और मुसलमानने एक खुदा बेचून, बेनमून, लामुकाम, गोयमगोय—ऐसा चौदह तबकके परे अधरमें ठहराया औ ता कर्त्ताकी सब खोज करने लगे । तब खोज करते-करते कछु वस्तुतः मिली नहीं; तब मन-बुद्धि-बानी, ये गुणके परे सोई गूनागून; ऐसा हारिके कहा कि अरूप है, अगम है, बेचून है । ये अर्थ ॥ ३४३ ॥

साखीः-बेचूने जग चूनिया। साँई नूर निन्यार ॥
आखिर ताके बखतमें। किसका करो दिदार ? ॥३४४॥

टीका मायामुखः—(मायाका अभिप्राय) गुरु कहते हैं कि "बेचूने जग चूनिया। साँई नूर निन्यार ॥" ऐसा मायाने जीवनको समुझाया कि बेचून = निराकार; ऐसा जो है ताने चूनिया कहिये जगत् उत्पन्न किया। निर्गुणसे सगुण भया औ निराकारसे आकार हुआ। बेचूनसे जगत्रूप खड़ा भया औ बेनमूनसे नमूना खड़ा भया। और मालिक-साँई सोई; ताका रूप नूर, सो तो न्यारी ही है। गुरुमुखः—अब गुरु कहते हैं कि जो अरूप, बेनूर परे ठहरा तो आखिर महाप्रलय क्यामतके वक्तमें किसका दीदार करोगे ? औ रूप बिना दीदार होता नहीं। तो ये उपदेश तुम्हारा असम्भव, कुछ सम्भवता नहीं है। ये अर्थ ॥ ३४४ ॥

साखीः-सोई नूर दिल पाक है। सोई नूर पहिचान ॥
जाके किये जग हुवा। सो बेचून क्यों जान ? ॥३४५॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि "सोई नूर दिल पाक है।" नूर कहिये रूप, दिल कहिये जीवका अन्तःकरण और पाक नाम सच्चा, निर्मल; सोई सत्य है, हाल हजूर है। काहेते ? कि चूनसे बेचूनका भास भया। कुछ बेचूनको चूनका भास नहीं होता। औ रूपको अरूपका भास भया; कुछ अरूपको रूपका भास नहीं होता। औ गुणको निर्गुणका भास भया, पर कुछ निर्गुणको गुणका भास नहीं होता। और आकारको निराकारका भास होता है, कुछ निराकारको आकारका भास नहीं होता है। काहेते कि ? ताका दृष्टान्त— बिम्ब कहिये जीव, प्रतिबिम्ब कहिये ब्रह्म। सो जीवसे ब्रह्म सिद्ध होता है, सो तो जीवका अनुमान भास है और जड़ है। कुछ वस्तु चैतन्य है नहीं। तो नूर जो चैतन्य जीव हाजिर नाजिर नजर है, सो जीवहीसे जगत्-ब्रह्म होता है। सो मिथ्या धोखा है। सो मिथ्या धोखा छोड़के अपने रूपको पहिचानो। अरे ! "जाके किये जग हुआ," सो अकर्त्ता, बेचून जानके क्यों मानता है ? और अपने भास, अध्यास, अनुमान ब्रह्ममें क्यों बन्ध होता है ? अरे ! भास, अध्यास, अनुमान ब्रह्म सबको परखके पारखपदपर स्थिर होओ। ये अर्थ ॥ ३४५ ॥

साखीः-ब्रह्मा पूछै जननिसे। कर जोरे शीस नवाय ॥
कौन वर्ण वह पुरुष है? माता! कहु समुझाय ॥३४६॥

टीका जीवमुखः—ब्रह्माने माता-जननीसे करजोरिके प्रश्न किया कि 'हे माता! सिर्जनहार पुरुषका क्या रूप-रङ्ग है? और कौन वर्ण है? और कहाँ रहता है? सो कर्त्ता कैसे प्राप्त होय? सो समुझायके कहिये!' ये शङ्का ब्रह्माको भई। ताका उत्तर—॥ ३४६ ॥

साखीः—रेख-रूप वै है नहीं! अधर धरी नहिं देह ॥
गगन मण्डलके मध्यमें। निरखो पुरुष विदेह! ॥३४७॥

टीका मायामुखः—तब ब्रह्मासों माता उत्तर करके दृढ़ापन देती है कि "सिर्जनहार जो पुरुष है वाका रूप नहीं, रेख नहीं, अङ्ग नहीं, वर्ण नहीं, आकार नहीं। ऐसा निराकार विदेह स्वरूप है। सो 'अधर धरी नहिं देह।' अधर कहिये पिण्डाण्ड। सो पिण्ड विहूना ब्रह्माण्ड ऊर्ध्व शून्यमें ज्योति-स्वरूप है, सोई कर्त्ताको देखो! वही तुम्हारा सिर्जनहार पुरुष है।" ऐसा माताने समझाया, तब ब्रह्माको माताके वचनकी प्रतीति भई। ये अभिप्राय ॥ ३४७ ॥

साखीः-धरे ध्यान गगनके माहीं। लाये बज्र किवाँर ॥
देखि प्रतिमा आपनी। तीनिउँ भये निहाल! ॥३४८॥

टीका गुरुमुखः—तब ऊपरकी साखीमें अभिप्राय जो कहा, सोई धारणा ब्रह्मा करने लगे। गगनके माँहि वज्रासन करके दशों द्वार रोककर बन्द करके मूलबन्ध, उड़ियानबन्ध औ जालन्धरबन्ध; ये तीनों बन्ध औ नौ नाड़ीके दश वायुको साधके औ बाहरकी वृत्ति फेरके अन्तर्मुख करके इङ्गला-पिङ्गलाको सम करके सुषुम्ना नाड़ीके सङ्ग पिण्डाण्डसे सुरति खैंचके ब्रह्माण्डको चढ़ाई। तब ज्योतिरूप प्रकाश भया औ शब्द घनघोर करने लगा। औ जो श्वासाकी स्फुरणा हुई, सोई शब्द घनघोर हुआ औ श्वासा डण्डायमान हुआ सोई ज्योतिरूप खड़ा हुआ। पिण्डाण्डकी शक्ति ब्रह्माण्डमें लय हुई औ प्रतिबिम्बरूप खड़ा भया। सोई अपने प्रतिबिम्बको देखके आनन्दमें निहाल भया। यही युक्ति करके ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों ब्रह्मानन्द-सुखमें स्थिर भये और वही स्वरूप कर्त्ताका

निश्चय भया। माताके वचन-प्रमाण प्रतीति अनुभव हुआ, तब तीनों देवता माताकी स्तुति करने लगे कि हे माता ! तू धन्य ! धन्य है ! कि तेरी कृपासे हमने देखा जगदीश। सोई उपदेश तीनों देवता ऋषि, मुनि, योगी आदि सब जगत्‌को करते भये। ये अर्थ ॥ ३४८ ॥

साखीः–ये मन तो शीतल भया। जब उपजा ब्रह्मज्ञान ! ॥
जेहि बसन्दर जग जरै। सो पुनि उदक समान ॥३४९॥

टीका गुरुमुखः—गुरु कहते हैं कि मायाने प्रथम उपदेश तीनों देवतनको ब्रह्माण्डमें ब्रह्मरूप लखानेका किया, तैसी ब्रह्माण्डमें ब्रह्मसमाधिमें जगवृत्ति लय भई और आनन्द भया। ता आनन्दमें मन उन्मुन हुआ, सोई शीतल भया। और समाधिका अनुभव जागा, तब ब्रह्मज्ञान उत्पन्न भया। ब्रह्मरूप लखाया, सोई शीतलरूपी सुख माना। ताते गुरु कहते हैं कि जा ब्रह्मपदको शीतलरूपी सुख माना है; परन्तु वो सुख शीतलरूपी नहीं। वह तो अग्निरूपी दुःख है। क्योंकि जगत्‌से ब्रह्म औ ब्रह्मसे जगत् उत्पन्न होता है और फिर लय होता है। तो देखो ! उत्पत्ति-प्रलयका कारण ब्रह्म ही है। जो ब्रह्म निरुपाधि सुखरूपी होता, तो जगत्‌रूपी उपाधिका जड़ दुःख न होता। जो तुमने जलरूप ब्रह्मसुख माना है सो सुख नहीं है। वह ब्रह्मसुख काहेका ? वो तो अग्निके माफिक दुःखरूप है। औ आवागमनका कारण ब्रह्म ही है। ये अर्थ ॥ ३४९ ॥

साखीः–जासो नाता आदिका। बिसरि गया सो ठौर ॥
चौरासी की बसि परे। कहैं और की और ॥३५०॥

टीका गुरुमुखः—'जासो नाता आदिका।' आदि कहिये मूलमें शुद्ध चैतन्य; क्योंकि जीवकी स्वजातीय सोई नाता। साँच शुद्धताई, निर्मलताई, शुद्ध चैतन्य-भूमिका ठौर थी। ताको जीव अपनी मूल शुद्धताईको बिसर गया। जो शुद्ध ज्ञानस्वरूप था, सो अशुद्ध अज्ञानसे नाता जोड़ा और प्रीति दिनोंदिन खानि और बानीकी बढ़ी। ताते चौरासी लक्ष योनिनके फन्दोंमें परा और जीव जड़ाध्यासी बद्धरूप हो गया। चौरासी लक्ष खानिमें जहाँ-जहाँ प्राप्त हुआ, तहाँ-तहाँ तैसा ही होके परवश हो गया और अपना शुद्ध चैतन्य ज्ञान स्वजातीय छोड़के और-की-और कहने लगा। और-की-और कहिये कहीं ज्ञानी बना, कहीं कर्मी

बना, कहीं योगी बना, कहीं भोगी बना, कहीं रोगी बना, कहीं भक्त बना, कहीं दिवाना बना, कहीं सयाना बना, कहीं निरोगी बना, कहीं अकर्मी बना, कहीं अज्ञानी बना औ कहीं विज्ञानी बना। ऐसे-ऐसे अनेक तरहसे जहाँ जैसा बना, तहाँ तैसा ही बोलने लगा। ताते स्वजातीय भूमिका छूट गई। ये अर्थ ॥३५०॥

साखीः-अलख लखौं अलखै लखौं। लखौं निरञ्जन तोहिं ॥
हौं कबीर सबको लखौं ! मोंको लखै न कोहि ॥३५१॥

टीका गुरुमुखः—अलख कहिये जो लखनेमें न आवे, और अलखै कहिये जो लखनेमें आवे। सो जीवने दोनोंको लखा। और निरञ्जन कहिये अञ्जनसे रहित अदृष्ट, अगोचर। सो अञ्जन-निरञ्जन दोनोंको भी जीवने लखा। 'तोहि कहिये मानन्दी पद, ताको भी लखा। ब्रह्ममुखः—अब 'हौं कबीर सबको लखौं।' अब हौं कबीर कहिये ब्रह्मज्ञानी। सो ब्रह्मज्ञानी बोलते हैं कि दृष्ट और अदृष्ट, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, परोक्ष और अपरोक्ष, निवृत्ति और प्रवृत्ति आदि सबको 'हौं' लखता हौं। ऐसा ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती अहं लेके बोलते हैं। गुरुमुखः—तब गुरु कहते हैं कि अहंने सबको लखा; परन्तु मूलके अहङ्कारको और उसके पारखी मैं जो पारखज्ञानरूप हूँ, ताको कोईने लखा नहीं; बिना पारख। ये अर्थ ॥३५१॥

साखीः-हम तो लखा तिहुँ लोकमें। तू क्यों कहै अलेख ?॥
सारशब्द जाना नहीं। धोखे पहिरा भेख ! ॥३५२॥

टीका गुरुमुखः—'हम तो लखा तिहुँ लोकमें।' सो गुरु दरशावते हैं कि हम तो कहिये अहङ्कार। सो अहङ्कार तीनिउ लोकमें है। मन, बुद्धि, बानी-ये ही तीनिउ लोक। सङ्कल्प सोई मन, निश्चय सोई बुद्धि, बयान सोई बानी। इस प्रकार तीनिउ लोकमें जो लखा, सो हङ्कारहीने लखा। सो क्या लखा ? तू कहिये मानन्दी ब्रह्म, सो तो लखनेमें आया। सो अलेख कैसे कहा ? कदाचित् कोई शङ्का करेगा कि तू ब्रह्म अलेख मन-बुद्धि-बानी; ये तीन लोकसे न्यारा व्यतिरेक है। सो गुरु व्यतिरेकका निराकरण करते हैं, उसकी कसर निकारते हैं कि मन बिना कोई सङ्कल्प होता नहीं औ बुद्धि बिना कोई पदका निश्चय होता नहीं औ बानी बिना कोई उपदेश होता नहीं ! और मन-बुद्धि-बानीके परे जो तुम कहते हो, सो तो मन-बुद्धि-बानी ही है। परे तो कुछ नहीं। जहवाँसे

जो वस्तु खड़ी होय, सोई ताका अधिष्ठान। याहीते तुम्हारा उपदेश अनुमान, भास, अध्यास, कल्पना सब मिथ्या धोखा। सो धोखेका उपदेश देनेको षट्दर्शनने अनेक तरहके भेष धारण किया। सारशब्द जाने बिना अपना ही धोखा परखनेमें नहीं आया, सो दूसरेको क्या परखावेंगे ? मिथ्या धोखा। सारशब्द कहिये जा शब्दसे सब शब्दनकी कसर मालूम होय, सोई सारशब्द पारख। ये अर्थ ॥३५२॥

साखीः—साखी आँखी ज्ञानकी। समुझि देखु मन माहिं ॥
बिनु साखी संसारका। झगरा छूटत नाहिं ॥३५३॥

टीका गुरुमुखः—साखी कहिये साक्षी। सो साक्षी बिना ज्ञान अन्धा है। याके वास्ते ज्ञानकी आँखी साक्षीसे गुरु कहते हैं कि अपने मनमें विचार करके देखता नहीं कि बिना साखीसे संसारका झगरा टूटता नहीं। संसार कहिये जगत्में खानि और बानीका झगरा पड़ा। सो कोई कहता है कि खानि ही रूप भगवान् है और कोई कहता है कि बानी ही रूप भगवान् है। ऐसा खानि और बानीका झगरा भया। खानिवाला कहता है कि रूप जो देखनेमें आता है, सोई सत्य है। कैसे ? कि रूपसे नाम होता है, कुछ नामसे रूप नहीं होता। जैसे अग्निसे धुवाँ होता है, कुछ धुएँसे अग्नि नहीं होती। याका दृष्टान्त कि जैसे यन्त्रसे आवाज होता है। कुछ आवाजसे यन्त्र कहिये देह—सो होता नहीं। तैसे खानिसे बानी होती है, कुछ बानीसे खानि होती नहीं। तो खानि सत्य और बानी मिथ्या। और बानीवाला बोलता है कि बानी सत्य और खानि मिथ्या। कैसे ? कि जबलग यह शरीर खड़ा है, देह साबूत है सो बानीके आधारसे खड़ा है। जब बानी निकर जायगी, तब चोला = शरीर शून्य हो जायगा। कोई छूनेका भी नहीं। जैसे बानी शब्द जो है सो आकाशका अंश है। सो बानीका अधिष्ठान आकाश। सो आकाशसे वर्षा होती है, तब खानि पैदा होती है। याके वास्ते खानि मिथ्या और बानी सत्य। बिन्दुरूपी खानि और नादरूपी बानी। सो कोईने बानी सत्य करी और कोईने खानि बिन्दु सत्य करके झगरेमें जीव परा और खानि-बानीका अभिमान धारण करके चौरासी लक्ष योनिमें सामिल होके झगरारूप भया। सो झगरा बिनु साखी निरुवार होता नहीं। क्योंकि खानि और बानी दोनोंका साक्षी निर्णयकर्त्ता जो है, सो दोनोंसे न्यारा है। जो आपही खानि-बानी होता तो खानि-बानी कहता कौन ?

सो खानि-बानी मिथ्या जड़; औ खानि-बानीका जाननेवाला जनैया जीव चैतन्य सत्य। सो सत्य–मिथ्या झगरा जाके जाननेमें आया, सो गुरु पारख प्राप्त हुए बिना खानि-बानीका दुःख जनैयाको है, सो कुछ छूटता नहीं। खानि और बानी नाशवन्त मिथ्या और पारख गुरु अस्ति। सोई जीवकी भूमिका स्थिर पद आवागमनसे रहित। ये अभिप्राय ॥ ३५३ ॥

॥ * ॥ इति श्रीबीजक बुझारथ त्रिजा–टीका सहित एकादश साखी प्रकरणम्
श्रीसद्‌गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥ ११ ॥ * ॥

अथ त्रिजा कहिये बानी। तामें तीन प्रकारके इच्छाने जाया, ताको नाम त्रिजा। बानीके अङ्ग तीन—एक मायामुख करके उपदेश किया, और एक जीवमुख करके स्तुति, दीनता करने लगा, और एक ब्रह्ममुख करके कर्त्ता बना। ये तीन अङ्ग बानीका जाल गुरुमुख करके परखाया। अथवा त्रिजा कहिये खानि; तामें तीन प्रकारके इच्छाने जाया, ताका नाम त्रिजा। खानिके अङ्ग तीन–एक पुरुष, एक स्त्री और एक नपुंसक। ये तीन अङ्ग इच्छा मायाके। सो ता खानिका जाल गुरुमुख करके परखाया। क्योंकि जीव शुद्ध होयके खानि और बानीके जालमें आसक्त होके दुःखिया हो गया। ताते गुरुने जीवदयासे स्वजाति जानके खानि और बानी दोनों जाल परखायके पारख-भूमिकापर जीवको स्थिर किया। भूल दृष्टि करके खानि और बानीरूप जीव हो रहा था। सो गुरुने खानि और बानीकी आसक्ति जो भूल थी, सो परखायके सर्व भूल दृष्टि छुड़ाई और अपनी निजदृष्टि देके अपने स्वरूप पारखपदको प्राप्त किया, तब जीव आवागमन दुःखसे रहित भया। ये निश्चय ॥

॥*॥ इति सद्ग्रन्थः बीजक बुझारथ त्रिजा-टीका श्रीसद्‌गुरुकी दयासे सम्पूर्णम् ॥*॥

॥ * ॥ बीजक टीकाकी अन्त श्रीसद्गुरु–स्तुति ॥ * ॥

साखीः—सतगुरु स्वयं स्वरूप। आदि–अन्त गुण काल त्रय ॥
पाँच तत्त्व मिली स्थूल। सदा प्रकाशी परख प्रिय ॥१॥

टीकाः—सद्गुरु श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—'सत + गु + रु' ये तीन पद मिलाकर "सतगुरु" होता है, जिसका भावार्थ ऐसा है कि—सत = सत्य, सदासे जो नित्य अखण्ड एकरस अविनाशी है और तीनकाल, तीन अवस्थाओंमें जो ज्यों-का-त्यों स्थिर रहता है, वही चैतन्य जीव सत्य है। ऐसे सत्य चैतन्य निज स्वरूपका बोध न होना ही गु = तमरूप अन्धकार, अज्ञान, अविद्याका मैल हृदयमें पड़ा हुआ आवरण है। रु = सत्यज्ञान पारखबोधका प्रकाश जिसको प्राप्त हो गया, अथवा निज स्वरूपका यथार्थ अपरोक्ष पारखबोध जिसे हो गया और जो दूसरे जिज्ञासु मनुष्योंको भी पारख सत्स्वरूपका बोध देनेमें समर्थ हो, उसे "सतगुरु वा सद्गुरु" कहते हैं। कालके तीनों गुणों तथा आदि–अन्तसे रहित, ऐसे चैतन्य जीवके स्वयं–स्वरूपका पारखबोध सद्गुरु सत्शिष्योंको करा देते हैं। आदि = जगत्से अन्त = ब्रह्मतक, अथवा शुरूसे आखिरीतक, जन्मसे मृत्युतक, उत्पत्ति [आरम्भ] से प्रलय [परिणाम] तक त्रय-कालमें जितने भी गुण हैं, त्रिगुणका जहाँतक घेरा है, सो वे सब जड़का पसारा हैं। उनमें योगी, ज्ञानी और भक्तोंकी जितनी भी मिथ्या मानन्दी हैं, सो सब मनकी कल्पनाएँ हैं। उनसे परे रहनेवाला चैतन्य जीव स्वयं स्वरूप है। अर्थात् जो कभी किसीसे किसी प्रकार भी बनता–बिगड़ता न हो, कार्य–कारण वा अंश–अंशीसे रहित नित्य–सत्य अखण्ड हो, उसे स्वयं स्वरूप कहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाणसे ऐसा लक्षण चैतन्य जीवमें ही घटता है और किसीमें नहीं घटता है। जड़ पाँच तत्त्व और अनन्त देहधारी चैतन्य जीव स्वतः अनादि वस्तु हैं। इसलिए तत्त्वोंके पञ्च विषयोंके जड़ाध्याससे जीव देह-बन्धनमें पड़े हुए कर्मफल भोग रहे हैं। पृथ्वी, जलादि पाँच तत्त्वोंके कार्य मिलकर खानिके नियमानुसार जीवकी सत्तासे स्थूल देह बनी है। सदा स्थूल–सूक्ष्म देहोंके प्रकाशी जनैया ज्ञानस्वरूप चैतन्य जीव ही हैं। चैतन्य जीवके बिना पाँचों जड़ तत्त्व एवं उनके कार्यरूप देहादि ज्ञान-प्रकाशसे रहित स्वतः अन्धकारमय रहते हैं। इस प्रकार सत्य निर्णयसे विवेक करके सर्वप्रथम पारखबोधका प्रकाश करनेवाले, जिनको सदा पारखबोध ही प्रिय है; ऐसे पारख-प्रकाशी सत्य प्रिय सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब बन्दीछोर हुए। उन्हींका मैं गुणानुवाद करता हूँ ॥

अथवा यह स्थूल देह जड़ पाँच तत्त्व मिलके बनी है। इसमें कालके आदि-अन्तका गुण (जन्म-मृत्यु) तथा त्रिगुण विकार लगा है। तीन कालके भीतर यह बनती–बिगड़ती रहती है। अतः इससे भिन्न चैतन्य जीव ही स्वयं स्वरूप अविनाशी है, जो सदा देहादिका प्रकाशी है। ऐसा सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजी स्वयं निर्णय करके ठहराये और उसी पारखबोधको ही सदा प्रिय करके ग्रहण कर लिये। बीजक सद्ग्रन्थमें यही सार सिद्धान्त वर्णन हुआ है। इस प्रकार इस साखीमें सद्गुरु और पारखसिद्धान्तकी विशेषता बताई गई है ॥ १ ॥

साखीः—काल जालके मध्यमें । देखा जीव बेहाल ॥
दया दृष्टि गुरु जानिके । परखायो सब जाल ॥ २ ॥

टीकाः—परम दयालु सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबजीने दया-दृष्टिसे मनुष्यजीवोंकी वर्त्तमान दशाकी ओर जब देखा, तब काल=भ्रमिक गुरुवा लोगोंके और मोहिनी स्त्रियोंके तथा मनके जाल=वाणीजाल तथा खानिजाल एवं मिथ्या मानन्दी आदि जालोंके मध्यमें घिरे पड़े हुए सब जीवोंको त्रयतापादि नाना कष्ट-क्लेशोंमें बेहाल= परम दुःखी, परेशान, व्याकुल देखा। उन जीवोंको अबोध जानकर उनकी भव-बन्धन- निवृत्तिके लिए सद्‌गुरुदेव दया करके बीजकज्ञानका सत्य उपदेश बताकर कालके सब जाल दिखला करके, एक-एक करके सब भ्रम--बन्धन परखा दिये। नरजीवोंको भ्रम-धोखासे निकालकर हंसरहनिमें ठहरा दिये। सद्‌गुरु श्रीकबीरसाहेबकी दयासे सत्य उपदेश पारखबोध बीजक सद्‌ग्रन्थके द्वारा पाकर बहुत-से नरजीव भव- बन्धनोंसे छूटकर निर्बन्ध सुखी हुए और हो रहे हैं॥ २॥

साखीः—सम्वत अठारह सै सही । साल चौरनवे जान ॥
कार्त्तिक मास पूनम तिथी । शुक्ल पक्ष परवान ॥ ३ ॥

टीकाः—[सद्‌ग्रन्थ बीजक मूलकी टीका सद्‌गुरु श्रीपूरणसाहेबने जो की है, वह टीका लिखकर समाप्त होनेकी तिथि-मिति यहाँ बताई गई है।] प्रचलित विक्रमीय सम्वत् अठारह सौ चौरानवे सालको सही करके जानिये! तब १८९४ सालके कार्त्तिक महीनाके शुक्ल-पक्षका अन्तिम दिन पूर्णिमा तिथि ही बीजककी टीका लिख-लिखाकर समाप्त होनेका दिन प्रमाणित हुआ—॥ ३ ॥

साखीः—बार रवी ता दिन कही । समय प्रभात बखान ॥
नग्र बुरहानपुर बैठक । नागझिरी शुभ स्थान ॥ ४ ॥

टीकाः—उस दिन रविवार कहा जाता था। बुरहानपुर शहरके मोहल्ला नागझिरी घाटके तटपर स्थित शुभ स्थान—श्रीकबीर निर्णय मन्दिरके बैठकमें बैठकर रविवारके प्रातःकालके समयमें सद्‌ग्रन्थ मूल बीजकका त्रिजा (टीका) बुझार्थ वर्णन करके लिखना और लिखाना समाप्त हुआ, ऐसा जान लीजिये! ॥ ४ ॥

साखीः—दास पूरण सो अहौं । सन्तन दया चहन्त ॥
गुरु मोपै कृपा करी । तो मैं स्तुति कहन्त ॥ ५ ॥

टीकाः—पारखी सद्‌गुरु-सन्तोंकी दया चाहनेवाला; सो इस बीजक सद्‌ग्रन्थका टीकाकार मैं "पूरणदास" नामसे प्रसिद्ध हूँ। पारखी सन्तोंका सदा दया-भाव ही चाहता हूँ। पारखी सद्‌गुरुदेव मुझपर महान् कृपा-दृष्टि किये और सत्यज्ञान पारखबोध परिपुष्ट करा दिये। सद्‌गुरुदेवके कृपा-प्रसादके ही फलसे बीजककी टीका सम्पूर्ण हुई। इसीसे अब मैं अन्तमें दीनतासे सद्‌गुरुदेवका गुण गाते हुए विनयपूर्वक स्तुति कहता हूँ, प्रार्थनामें सद्‌गुण वर्णन करता हूँ॥ ५॥

साखीः—साँचा शब्द बताइया । साँचा दिया मुकाम ॥
तातै बन्दत हौं तव चरण । साँच गुरु सत नाम ॥ ६ ॥

टीकाः—जिन पारख-प्रकाशी सद्गुरु बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब तथा पारख-निष्ठ साधुरूप मेरे सद्गुरुदेव कृपा-दृष्टि करके मुझको—साँचा = सत्य चैतन्य तीन-कालमें एकरस और तीन अवस्थाओंमें एक समान अखण्ड अविनाशी स्वयं-स्वरूप आप-अपना (स्वयं) जीव ही नित्य-सत्य है; ऐसा सचा-सचा भेद बताकर शब्द = सारशब्दमें यथार्थ निर्णयसे सत्य उपदेश देकर भ्रम निवारण करके गुरुमुख वाणीको आप बताइया = यथार्थरूपसे जड़-चैतन्यका निर्णय करके सारासार और बन्ध-मोक्षको समझाकर बता दिये हो और मुझे भव-बन्धनसे छुड़ा करके मेरे सहित अन्य जिज्ञासु साँचा = सत्य चैतन्य नरजीवोंको भी साँचा ही साँचा, अर्थात् सत्यबोध लखा करके मुकाम = पारख-स्वरूपकी सत्य स्थितिका निवास या ठौर, अर्थात् मुक्ति-स्थितिको दिया = प्रत्यक्ष लखा दिये हो और पारखबोध देकर जीवन्मुक्तिको प्राप्त, स्थिर करा दिये हो। ताते = इस कारणसे तव = आपके स्वच्छ पवित्र कल्याणकारी चरण = बाह्य चरण-कमलोंको देहसे, और अन्तर गुरुपदको तथा शुद्धाचरण रहनिको भी मनसे, हौं = मैं आपको नम्रतायुक्त शिष्यत्त्व-भावसे लघुता धारण करके बन्दत = सत्य प्रेम, भक्ति सहित "साहेब बन्दगी" ३ रूप त्रयबार वन्दना करता हूँ। साँच गुरु = हे सद्गुरु ! आप सत्य पारख-स्वरूपको लखानेवाले सच्चे सद्गुरु हैं; और चेतन गुरुपदको दरशानेवाले हैं। सतनाम = इसीसे आपका नाम और काम भी सत्य हैं। तथा नाम कहिये पारखबोध, चेतन जीवका शुद्ध स्वरूप जो है, सो भी सत्य है। अतः सच्चे गुरुका नाम = पारख-बोध भी सचा है। 'सद्गुरु' यह नाम भी यथार्थ होनेसे सचा है।

अथवा और खुलासा अर्थ ऐसा है कि जिसका कभी नाश न हो, तीनकाल और तीन अवस्थाओंमें भी एकसमान, एकरस ज्यों-का-त्यों नित्य बना रहे, सोई सत्य चैतन्य जीवका स्वयं-स्वरूप है। उसके समान ब्रह्म, ईश्वरादि कोई भी सत्यन्यायसे सिद्ध नहीं होता है। अतः सब भ्रम छोड़कर निज स्वरूपमें ठहरो ! ऐसा सचा सार-शब्द गुरुमुख वाणीसे निर्णय करके पारखी सद्गुरुदेवने सत्य उपदेश बता दिया वा समझा दिया है कि जीव ही सत्य स्वरूप है और कल्पना, मानन्दी मिथ्या है। जिज्ञासु नरजीवोंको या मुझ अबोधको वैसे सत्य चैतन्य जीवके निज ठौर, स्थितिकी जगहमें ठहरनेके लिए पारखबोध देकर स्वयं स्वरूपमें स्थिर करा दिया है। इस कारणसे हे बन्दीछोर श्रीकबीरसाहेब ! तथा मुझको प्रत्यक्ष बोधदाता मेरे हे सद्गुरो ! आपके बाहरी चरण-कमलोंमें भक्ति-भाव सहित शिर झुका करके मैं साहेब बन्दगीरूप त्रय-वार वन्दना करता हूँ। वैसे ही आपके भीतरी आचरण, रहनिके समान मुझमें भी सद्गुण-लक्षण, मुक्ति-स्थितिकी सदोदित धारणा हो, यही चाहता हूँ। गुरुपद पारख-को धारण करके अन्तःकरणसे धन्यता मनाता हूँ। हे गुरुदेव ! आप पारख गुरुपदमें अचल-अटलरूपसे विराजमान सत्स्वरूप हैं, सत्य चैतन्य पदको दरशानेवाले हैं। अतः आपका 'बन्दीछोर सद्गुरु' यह नाम भी सत्य है। अथवा नाम कहिये पारख,

समझ, ज्ञान, सत्यबोध—यह भी यथार्थ सत्य है। जैसे आप सच्चे सद्गुरु हैं, वैसे आपके नाम तथा रूप पारखबोध भी मुक्तिकी सच्ची भूमिका हैं। अतः आपके महान् उपकारको यादकर मैं बारम्बार साहेब बन्दगी ३ करता हूँ! ॥ ६ ॥

साखीः----सत कहेते सुख ऊपजै। सुकृत कहै दुःख जाय ॥
सत सुकृत प्रभु तव चरण। निशिदिन बन्दौं पाय ॥ ७ ॥

टीकाः—चैतन्य जीवको ही प्रत्यक्षमें सत्य कहते हैं। क्योंकि सत्य कहिये जो तीन काल, तीन अवस्था, तीन देहादिमें सदा-सर्वदा एकरस अखण्ड नित्य बना रहे। वैसा चैतन्य जीवके सिवाय और दूसरा कोई पदार्थ नहीं ठहरता है। वैसे निज सत्य-स्वरूप जीवको पहचानकर अनुमान-कल्पनाकी मिथ्या मानन्दी, मिथ्यावाद, असत्य वचन कहने--सुननेका परित्याग करके सत्य वचन कहने--सुननेसे सत्यकी रहनि, सत्यकी गहनि, सत्यकी वाणी, सदाचरण, सत्कार्य, सत्पुरुषार्थमें लगनेवाले मनुष्यों-को सब प्रकारसे सब ओर सुख ही उत्पन्न हो जाता है। अन्तमें जीवन्मुक्तिका नित्य सुख भी वे प्राप्त कर सकेंगे। निजस्वरूपकी स्थितिमें स्थिर होकर आवागमनादि सब दुःखोंके मूल कारण जड़ाध्यास, विषयादि संस्कारको जिन्होंने पारखबोधसे नाश कर दिया है, उन्हें 'सुकृत' = कहिये पुण्य, पुण्यात्मा, धर्मावतार, धार्मिक, भाग्यवान्, सत्कृतिवाले, सत्पुरुषार्थी सत्पुरुष कहते हैं। अतएव शुभ पुण्यरूप हंसरहनि धारण करनेवाले पारखी सन्तके जन्म-मरणादि सब दुःख मिट जाते हैं। ऐसे सत्कृतिवाले सत्पुरुषार्थी पारख-प्रकाशी श्रीकबीरसाहेबको ही सतसुकृत कहते हैं। क्योंकि सर्व-प्रथम सुकृत = जिज्ञासु जीवोंको सत = सत्य पारखबोध आपने ही दिया। अतः हे प्रभो! श्रीकबीरसाहेब! तथा बोधक पारखी साधु-गुरुदेव! आपके चरण-कमलोंमें वा गुरु-पदमें बोध--अबोध दोनों अवस्थाओंमें मैं दिन--रात नम्रतासे वन्दनारूप साहेब बन्दगी ३! प्रेम--भक्तिके साथ करता हूँ। आपके पारखपदमें स्थिति करके अब मैं जीवन्मुक्ति-स्थितिको प्राप्त करना चाहता हूँ ॥ ७ ॥

साखीः—सबही गुरुन के आदि गुरु। हंस देह निज चीन्ह ॥
अदली नाम कहाइया। अदल कालपर कीन्ह ॥ ८ ॥

टीकाः—पारखहीन भ्रमिक कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी और विज्ञानी इत्यादि उपदेशक सब--के--सब ही गुरुवाओंके पद, श्रेणीसे बढ़ करके सर्वोच्च आदि-गुरु = प्रथम पारखी गुरु बन्दीछोरका पद पारख-प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबका हुआ। क्योंकि आपने हंसदेहमें सर्व सद्गुण-सम्पन्न रह करके निज सत्स्वरूप पारख-पदको अपरोक्षरूपसे सर्वप्रथम पहचान लिया। अतः सब गुरुओंके आदिगुरु = पारख गुरुके गुण-लक्षण, चिन्ह, पहचान हंसदेहके सद्गुण, रहनि-रहस्यसे होता है। आप सद्गुरुदेवने कालरूप मन, कल्पना, गुरुवा लोग और स्त्रियाँ—इन सबोंपर अदल = न्याय, शासन, अधिकार किया। अर्थात् उन कालोंको परास्त करके विजय प्राप्त करके शासन किया। अतः अदली नाम = सत्यन्यायी, पारखबोधदाता, काल-

विजयी, बन्दीछोर, सद्गुरु समर्थ; ऐसे श्रीकबीरसाहेब सर्वश्रेष्ठ कहलाये। अर्थात् मनको वश करके जड़ाध्याससे रहित हुए, इसीसे सर्वोपरि जीवन्मुक्त आदिगुरुके नामसे आप पारखबोधदाता कहलाये ॥ ८ ॥

साखीः—जरा मरण जाके नहीं। अजर नाम कहि ताहि ॥
भव भारी दुःख मेटिया। काल कलाके माहि ॥ ९ ॥

टीकाः—जिसका जरा = बुढ़ापा, मरण = मृत्यु और जन्म कभी नहीं होता है, उसको 'अजर' नामके कहते हैं। अर्थात् अजर, अमर, नित्य—सत्य, सनातन, अखण्ड, चैतन्य; ऐसा नाम जीवका ही है। ऐसे जीवको पारख-स्वरूपका नाम = बोध देनेवाले आप गुरु कहलाये। पारखी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने महान् कृपा करके कालरूप स्त्रियाँ, मन और गुरुवा लोगोंकी कलारूप कल्पना, विषय, वाणी-खानिके जालोंके मध्यमें पड़े हुए नरजीवोंको स्वरूप-ज्ञान पारखबोध देकर, सब भेद परखा करके संसाररूप भवसागरके बड़ेभारी दुःख, आवागमनको सदाके लिए मिटा दिया; अर्थात् जीवन्मुक्त सुखी कर दिया। अतः आपकी महानता सर्वोपरि ठहरती है ॥ ९ ॥

साखीः-चिन्ता रहित अचिन्त गुरु ! बन्दौं चरण सरोज ॥
सुमिरन कियेते मेटहीं। सब चिन्ताको खोज ॥ १० ॥

टीकाः—हे पारख गुरो ! आप खानि तथा वाणी सम्बन्धी समस्त चिन्ता, चाहनाओंसे रहित हो करके सदा अचिन्त वा निश्चिन्त, निजस्वरूपमें स्थिर, शान्त निराश-वर्त्तमानमें रहते हैं। अतः मैं आपके चरण-कमलोंको वा गुरुपदको भक्तिपूर्वक नित्यप्रति शिर झुकाकर वन्दना करता हूँ। गुरुपारखका सुमिरन = स्मरण वा नित्य निजस्वरूपका विचार करते रहनेसे सब चिन्ताओंके मूलकारणको खोज = तलाश, पता लगाकर पुनः उनको जड़-मूलसे ही विनाश करके मिटा दिया जाता है। जिससे आपके समान वह भी सब चिन्ताओंसे रहित हो जाता है। अतः सदा गुरुपद पारख-स्वरूपके ही विचार, स्मरणमें मुमुक्षुओंको लगे रहना चाहिए ! ॥ १० ॥

साखीः-पूरण पुरुष कृपाल प्रभु ! और सकल जग नार ॥
कल्पित पुरुष बताइया। मानि भये जग छार ॥ ११ ॥

टीकाः—हे प्रभो ! सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ! आप पारख-स्वरूपमें स्थिर पूर्ण त्यागी जीवन्मुक्त सत्पुरुष कृपालु हैं ! आपने मनके काम, क्रोधादि सम्पूर्ण विकारोंको हटाकर निर्विकार किया है। जड़ाध्यास विषय-वासनासे रहित होनेसे आप यथार्थमें मुक्त पुरुष, पूर्ण पुरुषत्त्वयुक्त हैं। और जगत्के सम्पूर्ण विषयासक्त भोगी पुरुष तो स्त्रीरूपमें ही माने जाते हैं। क्योंकि भग-भोगी, भगासक्त नरजीव अध्यासवश बारम्बार गर्भवासको ही प्राप्त होते रहते हैं। अतः वे सच्चे पुरुषत्त्वके अधिकारसे वञ्चित होनेसे नारीरूपमें ही होते हैं। पारखहीन अनाड़ी जन सब क्रूर, हिंसक, बद्ध होते हैं। उनका लक्ष्य, गति स्त्रीरूपमें होती है। अतः भोगी नाम-मात्रके पुरुष नकली होते हैं। असली यथार्थ पुरुष तो पूर्ण त्यागीको ही माना जाता है। परन्तु गुरुवा

लोगोंका कल्पित कथन तो ऐसा है कि कोई एक परम पुरुष परमेश्वर सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक निराकार है। वही कृपालु प्रभु पूर्णरूपसे पुरुष है और सकल जगत्के जीव उसकी पराप्रकृतिरूपमें नारी हैं। ऐसा मिथ्या कल्पनासे मानकर, उसी कल्पित पुरुषको भ्रम-धोखेसे सबका मालिक सत्य बतलाते हैं। इस प्रकार असत्य बातको मान-मान करके जगत्के भ्रमिक मनुष्य अबोध जीव निजपदसे नष्ट-भ्रष्ट हुए और हो रहे हैं। उसी कल्पित पुरुषको रिझानेके वास्ते सर्वाङ्गमें छार=राख लपेटकर भेषोंके नाना शृङ्गारमें लगे और लगते-लगाते जा रहे हैं; बिना पारख॥ ११॥

साखीः—करुणा रवण कृपाल तन। सब ज्ञानिनमें इन्द्र॥
अवगुण हरण सब सुख करन। ताते नाम मुनिन्द्र॥ १२॥

टीकाः—हे सद्गुरो! आप करुणामें रमण करनेवाले करुणा (दया) के अर्णव=समुद्र समान हैं। आप मन, वचन और शरीरसे सबपर कृपा करनेवाले परम कृपालु हैं। संसारके समस्त ज्ञानी समूहोंमें आप अग्रगण्य, प्रमुख, इन्द्रके समान राजा, ज्ञानियोंमें ज्ञान-सम्राट् हैं। शरणागत मनुष्योंके कायिक, वाचिक और मानसिक सम्बन्धी समस्त अवगुण-विकारोंको हरण करके, शुभ सद्गुणोंको धारण कराके, सत्य उपदेश देकर सबोंको सुखी करा देनेवाले हैं। इसवास्ते हे सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब! आप मननशील मुनियोंमें इन्द्र=राजावत् सर्वश्रेष्ठ होनेसे आपका 'मुनीन्द्र' यह शुभ नाम सार्थक होता है। [यह समझ रखना चाहिये कि श्रीकबीर साहेबके पूर्व 'मुनीन्द्र' नामके पृथक् कोई पुरुष कभी पारखी हुए, ऐसा नहीं माना जाता है। किन्तु श्रीकबीरसाहेबके ही गुणके अनुसार मुनीन्द्र नामसे शिष्योंने आपको पुकारा किया; ऐसा माना जाता है। इसी तरह 'सतसुकृत' तथा 'करुणामय' नाम भी अन्य किसीके न होकर श्रीकबीरसाहेबके ही लिए कहे गये हैं; ऐसा जानना चाहिए]॥ १२॥

साखीः—दुःखित जीव सब जानिके। दीन्हों सुखको धाम॥
ताते प्रभु! तव पद शरण। गुरु करुणामय नाम॥ १३॥

टीकाः—हे सद्गुरो! आपने जड़ाध्यासी सब जीवोंको बद्ध, आधि-व्याधि-उपाधि और त्रयतापादिमें पड़कर परम दुःखी, सन्तप्त देख करके, खानि-वाणीके कठिन भव-बन्धनके घेरामें पड़े हुए जान करके अपनी ओरसे महान् दयाकर सत्य उपदेश लखा दिया, सुखके धाम गुरुपद पारखमें पहुँचनेका सरल मार्ग बता दिया। ऐसे परम दयालु श्रीकबीरसाहेब! हे सद्गुरो! इसीसे आपका 'करुणामय' यह शुभ नाम प्रख्यात हुआ। इसलिए हे प्रभो! मैं अपने कल्याणके लिए आपके गुरुपदमें वा चरण-कमलोंमें शरणागत होता हूँ। मुझे भव-बन्धनसे छुड़ाकर मुक्त कीजिये! अपनी शरणमें ले लीजिये!॥ १३॥

साखीः—कलियुग के जीव तुच्छ धी। तिनकी मेटी पीर॥
दया करी परखाय पद। अशरण शरण कबीर॥ १४॥

टीका:—'कलियुग' कहिये इसी संसारमें खानि और वाणीकी दो कलि लगी हैं। उन्हीं विषयोंमें आसक्त हो करके संसारी जीवोंकी धी=बुद्धि तुच्छ हो रही है। इसलिए विषयानन्द प्राप्तिके वास्ते नाना कर्त्तव्य करके इच्छा पूर्ण न होनेसे विषयीजन दुःखी हो रहे हैं। वैसे ही प्रेमानन्द, योगानन्द, ब्रह्मानन्द आदिकी चाहनासे योगी, ज्ञानी, भक्त लोग अनेक साधनाएँ करते हैं, तो भी सफलता नहीं होती है; किन्तु जड़ाध्यासी होकर दुःख ही पाते हैं। ऐसे असहाय, असमर्थ, दीन-हीन, मलीन बने हुएमेंसे जो सत्सङ्गमें आने लगे, उन सत्सङ्गी जिज्ञासु मनुष्योंको दया करके अच्छी तरहसे सब भेद लखाकर पारखपद परखा करके उनकी समस्त पीड़ाएँ तथा आवागमनके दुःख भी मेंट दिये। अशरण—अनाथको शरणमें लेकर रक्षा करनेवाले कायाबीर शूर, धीर, अतिशय गम्भीर, जितेन्द्रिय, मन-विजयी, तरण—तारण पारखरूप श्रीकबीरसाहेब बन्दीछोर प्रसिद्ध हुए हैं। अर्थात् संसारके तुच्छ बुद्धिवाले अशरण जीवोंको शरणमें लेकर दया करके पारखपद परखाकर उनके सब दुःख मेंट दिये। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ऐसे समर्थ महापुरुष हुए। आपके जितने भी गुण वर्णन किये जायँ, उतने थोड़े जैसे ही हैं॥ १४॥

साखीः—सत कबीर सुखलाल गुरु। तेहि सिख पूरणदास॥
बीजक की टीका करी। जब तू हृदय प्रकाश॥ १५॥

टीका:—सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य पन्थमें सच्चे अनुयायी मेरे सद्गुरुदेव पारखबोधदाता 'श्रीसुखलालसाहेब' पारखनिष्ठ प्रसिद्ध हुए हैं। उनका आज्ञाकारी शिष्य मैं 'पूरणदास' हुआ। हे पारखी सद्गुरो! जब आपने मुझे सब प्रकारसे पारखबोध परिपुष्ट करके पारखज्ञानके आलोकसे मेरे हृदयको प्रकाशित कर दिया, तब गुरुबोधकी महान् शक्तिके आधारसे आप बोधक गुरुदेवकी ही आज्ञा शिरोधार्य करके सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबके सत्य निर्णयके उपदेशरूप सद्ग्रन्थ बीजक मूलकी "पारखसिद्धान्त दर्शिनी, भावार्थ-बोधिनी बुझार्थ त्रिजारूप टीका" मैं कहकर वा लिख-लिखाकर प्रकाश कर दिया हूँ। इस प्रकार सद्गुरुके सत्यबोधको मैंने बीजककी टीकारूपमें प्रकाश करके सबके समक्ष धर दिया है॥ १५॥

साखीः—कहि पुकार स्तुति करौं। हौं मतिमन्द लाचार॥
आपन मोको जानिके। दियो परख पद सार॥ १६॥

टीका:—हे सद्गुरुदेव! यों तो मैं प्रथम अबोधदशामें मतिमन्द होनेसे लाचार पड़ा था। ऐसा मैं मतिमन्द लाचार हूँ। मैं जब आपकी शरणमें आया, तब आपने मुझे अपना शरणागत दास जान करके सब सिद्धान्तोंका सार, सत्य निर्णय समझाकर पारखपदका पूर्ण बोध करा दिया। इसीसे आपके महान् उपकारको याद करके गद्गद कण्ठसे यथामति आप पारखी सद्गुरुकी स्तुति, धन्यता वर्णन करके पुकार-पुकारके कहता हूँ। अर्थात् सद्गुरुकी स्तुति पुकारा करके इसलिए मैं करता हूँ कि मैं लाचार मतिमन्द हूँ, ऐसेको भी आपने मुझे अपना दास जानकर सार पारखपद लखा दिया। अतः उसीका मैं गुण कीर्तन वर्णन करता हूँ॥ १६॥

साखीः—दास जानि निज आपन । विनती सुनिये मोर ॥
विनवत हौं कर जोरिके । गुरु शरणागत तोर ॥ १७ ॥

टीकाः—हे प्रभो ! मुझे अपना शरणागत, निज दास जान करके मेरे नम्र विनयको आप सुन लीजिये ! दोनों हाथोंको जोड़ करके मैं यही विनय करता हूँ कि हे सद्गुरो ! मैं आपका शरणागत हूँ ! शरणागत हूँ !! मुझे अपनी शरणमें आश्रय देकर भव-बन्धनोंसे छुड़ाकर मुक्त कीजिये ! आपकी आज्ञा सहर्ष शिरोधार्य करके पालन करनेको मैं तैयार हूँ ! ॥ १७ ॥

साखीः—सुखसाहेब तुम कृपा करि । पद परखायो मोहि ॥
सो पद जीवनसों कहा । परख भूमिका सोहि ॥ १८ ॥

टीकाः—पारखी सद्गुरु हे सुखलालसाहेब ! आपने महान् कृपादृष्टि करके मुझे जो सत्य सिद्धान्त पारखपदका बोध परखाकर भलीभाँति समझाया था। आपकी आज्ञाका पालन करके सो गुरुपद पारखबोध सत्यज्ञानको मैंने जिज्ञासु, श्रद्धालु नरजीवोंको समझाकर, उन अधिकारी जीवोंसे कहा। आपकी दयासे उनको भी वही पारख-भूमिकाकी स्थिति प्राप्त हो गई, जिससे भव-बन्धनोंसे छूटकर वे भी निर्बन्ध हो गये। आपके अनन्त उपकारकी धन्यता वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। अतः सदा आपकी दया चाहता हूँ ॥ १८ ॥

साखीः—असन्त और निठुरता । निर्दय औ बिबिचार ॥
अधीरता तजि दीजिये ! तब हंस होय ततसार ॥ १९ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! अपने कल्याणके लिए साधु होकर दुर्गुणोंको परित्यागकर सद्गुणोंको धारण करना चाहिए ! सो कैसे करना चाहिये ? सुनिये—१. असन्त = अशान्ति, असहनशील, ठगाई, धूर्त्ताई और असत्यको त्यागकर सब प्रकारसे 'सत्य' को ग्रहण करना चाहिए ! २. बिबिचार = व्यभिचार, पापाचार, कुविचार और विभिन्न विचार वा अविचारको छोड़कर सदा 'सद्विचार'को ही धारण करना चाहिए ! ३. निठुरता = कठोरता, हठता, क्रूरता और अशीलको त्यागकर अपनेमें 'शील गुण' को ही धारण करना चाहिए ! ४. निर्दय = हिंसा, क्रोध, घात और दयाहीनताको त्यागकर हृदयमें 'निज-दया' और 'पर-दया'को ही पूर्णतासे धारण करना चाहिए ! और ५. अधीरता = घबराहट, चञ्चलता और अधैर्यको त्यागकर सदा 'धैर्य'को ही धारण करना चाहिए ! इस प्रकारसे असन्त, बिबिचार, निठुरता, निर्दयता और अधीरता; इन पाँच अवगुणोंको सर्वथा परित्याग कर दीजिये ! उनके बदले सत्य, विचार, शील, दया और धैर्य; इन पाँच शुद्ध तत्त्वोंको हृदयमें धारण कीजिए ! तब उक्त सार तत्त्वोंको धारण करनेवाला मनुष्य हंसरूप सारग्राही पारखी सन्त हो जाता है। वैसे हंसजीव ही सर्व भव-बन्धनोंसे छूटकर जीवन्मुक्त होते हैं। अतः सत्पुरुषार्थ करके हंस पारखी हो जाओ ! मनुष्य-जीवनमें यही सार तत्त्व है ॥ १९ ॥

साखीः—देह जगत औ ब्रह्म लों । जेते अहैं विकार ॥
इनमें आसक्त न होइये ! यह विचार ततसार ॥ २० ॥

टीकाः—हे सन्तो ! नाशवान् देह और देह सम्बन्धी खानिजालनाता गोता आदि सब माया-मोहके विकार हैं । जगत् = पञ्च तत्त्वोंके कारण-कार्यका विस्तार सब जड़का विकार है और ईश्वर, खुदा, देवी-देवता, स्वर्गादि लोक तथा ब्रह्मतक सब मानन्दी वाणी-कल्पनाके विकार हैं। इसलिए देह, जगत् और ब्रह्मतक जितने भी वाणी-कल्पनाके विकार हैं, सो सब भव-बन्धनके कारण होनेसे दुःखदायी हैं । अतः इन किसीमें भी आसक्त, बद्ध, ग्रसित न होइये ! सदा विचार करते हुए इन सबसे न्यारा निर्लिप्त हो रहिये ! यही सार तत्त्व 'विचार' कहलाता है। किसीमें भी आसक्त होकर न फँसना, यही विचारका सार है ॥ २० ॥

साखीः—सुख दुःख धर्म अधर्म सब । बरते असतहि माहिं ॥
निठुरता क्यों राखिये ? शील गहो नर नाहिं ॥ २१ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! सुख होना, दुःख होना, धर्म होना, अधर्म होना, लाभ होना, हानि होना, पुण्य-पाप, जन्म-मरण इत्यादि सब कार्य असत् कहिये नाशवान् देह, सो इसी देह सम्बन्धमें ही वे सब कार्य होते एवं बर्त्तते हैं। चैतन्य जीवके शुद्ध स्वरूपमें तो सुख-दुःखादि कोई व्यवहार नहीं है। अतः देह और जीवके सम्बन्धके मध्यमें ही सुख-दुःखादि मालूम होते हैं। जैसे अपनेको सुख-दुःखादि होते हैं, वैसे ही अन्य सब जीवोंको भी होते हैं; ऐसा जानना चाहिए ! मनमें निठुरता = निष्ठुरता, क्रूर, कठोरभाव क्यों रखते हो ? निष्ठुरता करनेसे अपने मनुष्यपदकी हानि हो जाती है। अतः हितेच्छुक हे मनुष्यो ! अब तो भी शीलरूपी सद्गुणको ग्रहण करो ! मृदु, नम्र-कोमल, शान्त, सन्तोष, सहनशीलको धारण करो ! जिसमें शील गुण नहीं, वह मनुष्य नहीं; किन्तु नरपशु है। शीलके बिना तो नरजीवन सफल ही नहीं होता है। इसलिए हे नरजीवो ! सब प्रकारसे 'शील सद्गुण'को ही ग्रहण करके धारण करो ! ॥ २१ ॥

साखीः—तेरी जाती जीव सब । दुःखिया वश अज्ञान ॥
तिनको राह बताइये ! दया धरि करो सुजान ॥ २२ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! सिद्धान्त-दृष्टिसे देखिये तो देहधारी सब जीव-मात्र तुम्हारे ही स्वजातिवाले हैं। जीव-जीव सब चैतन्यत्त्व गुणकी समताकी दृष्टिसे स्वजातीय माने जाते हैं। किन्तु अबोध, अध्यासी होकर अज्ञानताके वश दुःखिया = दुःखभोगी, बद्ध, पीड़ित हो रहे हैं। इसलिए हे सुजान विवेकी सन्तो ! दया धारण करके उन अबोध श्रद्धालु जिज्ञासु मनुष्योंको मुक्तिके मार्ग पारख-सिद्धान्तका उपदेश बताइये ! उनकी भ्रम-भूल, धोखाको मिटाकर सत्यबोध कीजिये ! उन्हें भी सुजान = सज्जन, अच्छे जानकार, बोधवान् करिये ! इस प्रकार दयाको धर्मका मूल जान करके

दया-धर्मको एवं 'दया सद्गुण'को पालन करना-कराना चाहिए ! यही मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य है ॥ २२ ॥

साखीः—नाशमान त्रय कालमें । ताहि गह्यो बिबिचार ॥
अविनाशी तू सत्य है । यों सो विचारे विचार ॥ २३ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! देहादि यावत् पदार्थ (घट, मठ, पट, तटादि) नाशवान् होनेसे भूत, भविष्य और वर्त्तमान—इन तीनों कालमें बनते-बिगड़ते रहते हैं। उन्हीं देहादिको अथवा खानि-वाणीकी नाना मिथ्या मानन्दीको अपना स्वरूप वा परमात्माका सुख-स्वरूप समझ करके, उन्हें जिन्होंने ग्रहण किया वा करते हैं, वही विभिन्न अविचार, भ्रम-भूल है। अर्थात् अविचारी बेपारखी जनोंने भ्रमसे तीनकालमें जो नाशवान् है, उसे ही सत्य मानकर पकड़ रक्खा है। इसीसे वे जड़ाध्यासी हो आवागमनमें पड़ रहे हैं। देहादि सम्पूर्ण कार्य पदार्थ बनने-बिगड़नेवाले होनेसे नाशवान् जड़ हैं। उनसे भिन्न विजातीय तुम चैतन्य जीव अविनाशी नित्य-सत्य हो। इस प्रकारसे जड़-चैतन्यका निर्णय करके जो स्वयं स्वरूपका विचार करते हैं, सोई यथार्थ सत्यका विवेक-विचार है। विचारवान् लोग सदा इसी प्रकार सत्यासत्यका विचार, विवेक करते रहते हैं ॥ २३ ॥

साखीः—नाशमान सो ना रहै । अविनाशी न नशाय ॥
तदासक्ति भय ना लहैं । महा स्थीरता पाय ॥ २४ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! विचार-दृष्टिसे देखिये ! जो देहादि नाशवान् पदार्थ हैं, सो कार्य, अनित्य, परिणामी होनेसे सदा स्थिर होकर एक-सा बने नहीं रहते हैं। कभी-न-कभी नाश, परिवर्तन हो ही जाते हैं। और अविनाशी अखण्ड नित्य-सत्य जो चैतन्य जीवका स्वरूप है, सो तो कभी भी किसी कारणसे किसी प्रकार भी नाश हो नहीं सकता है। अखण्ड एकरस होनेसे उसके स्वरूपका परिवर्तन कभी नहीं होता है। ऐसा अच्छी तरहसे समझकर वा जानकर उन नाशवान् जड़ देह, पञ्च विषयादिकी सर्व आसक्तिको और उससे होनेवाले भयको भी सर्वथा त्याग देवें। किसी प्रकारके भयको अथवा मृत्युके भयको भी न लेवें। पूर्ण निर्भय, निःशङ्क होवें, तब महास्थिरता, गम्भीरता, धैर्य, अचल शान्ति, निज पारख-स्वरूपकी अपरोक्ष स्थिति जीवन्मुक्तिकी प्राप्ति हो जायगी; ऐसा जान लीजिये ! ॥ २४ ॥

साखीः—हंस समाधि एक ही । सदा निरन्तर होय ॥
इनते जो बिचलै नहीं । लेहु परख पद सोय ॥ २५ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! गुरुवा लोगोंके यहाँपर तो भिन्न-भिन्न प्रकारसे कई तरह की समाधि मानी गई हैं, जैसे—कर्म समाधि, धर्म समाधि, योग समाधि, ज्ञान समाधि और विज्ञान समाधि। योगमें-सहविकल्प, निर्विकल्प; सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात, सहबीज, निर्बीज इत्यादि समाधिके कई भेद माने गये हैं। उन सबसे पृथक् यहाँ हंसरूप विवेकी पारखी सन्तोंकी समाधि = वृत्तिकी स्थिरतासे स्थिति, जाग्रत्में एक ही प्रकारसे

सदा निरन्तर पारखपदमें ठहराव होता है। इस प्रकार जाग्रत्में जो स्वरूप-स्थितिसे विचलित नहीं होते अथवा जिनकी वृत्ति कभी भ्रममें लगकर विचलित नहीं होती है, वे स्वयं-स्वरूप पारखपदमें सदा स्थिर हो रहते हैं। अतः वे जीवन्मुक्त हो जाते हैं। अर्थात् उसी पारखपदको ग्रहण कर लीजिये! उसीसे कभी विचलित न होने-वाली, सदा निरन्तर स्थिर रहनेवाली एक ही हंस-समाधि वा स्वरूप-स्थिति हो जायगी ॥ २५ ॥

साखीः—सत्य शील दया सहित। धीर विचार सुजान ॥
जेहिते जो यह सब परखिया। सो पारख पहिचान ॥ २६ ॥

टीकाः—हे सन्तो! पृथ्वी तत्त्वका शुद्ध गुण 'सत्य' है। जलतत्त्वका शुद्ध गुण 'विचार' है। अग्नि तत्त्वका शुद्ध गुण 'शील' है। वायु तत्त्वका शुद्ध गुण 'दया' है और आकाश तत्त्वरूप समान वायुका शुद्ध गुण 'धीरज' है। इन पाँचों शुद्ध तत्त्वोंकी रहनि सहित सर्व सद्गुणोंको धारण करनेवाले सन्त हंस-पारखी होते हैं। वे जड़-चैतन्यके गुण-लक्षण आदि सब भेदोंके अच्छे जानकार सुजान होते हैं। जड़-चैतन्य, बन्ध-मोक्ष, सार-असार, लाभ-हानि, नित्य-अनित्य, सद्गुण-दुर्गुण इत्यादि जो ये सब बात जिसके आधारसे यथार्थ परखने, जानने, समझने-बूझनेमें आई, सोई सत्य पारखपद है; ऐसा पहचानना चाहिए। अर्थात् पारखबोधके प्रतापसे ही सबोंके कसर-खोट तथा बन्धन और मुक्तिकी भूमिका पहचाननेमें आती है ॥ २६ ॥

साखीः—परख भूमिका भिन्न है। मिले न काहूको भाय ॥
परखत परखत हंसको। ता भूमिकाको पाय ॥ २७ ॥

टीकाः—हे सन्तो! क्षिप्रा भूमिका कर्ममार्ग, गतागत भूमिका उपासनामार्ग, सौलेष्टता भूमिका योगमार्ग, सुलीन भूमिका ज्ञानमार्ग और अभाव भूमिका विज्ञान-मार्ग; इनके अन्तर्गत भ्रमिक मनुष्योंने भिन्न-भिन्न सिद्धान्तकी भूमिका भी अलग-अलग ही मान रक्खी है। परन्तु इन सबोंसे भिन्न पारख-भूमिका मुक्तिकी अन्तिम स्थितिरूप सर्वोपरि है। कर्मी, उपासक, योगी, ज्ञानी, विज्ञानी तथा बौद्ध, जैन इत्यादि नाना सम्प्रदायवाले उन किसीको भी पारख-भूमिका नहीं मिली। वे सब नाना कल्पित भावनाओंमें ही भूले पड़े रहे। उनके ग्रन्थ, पन्थ, सिद्धान्तमें कहीं भी पारखपदकी झलक नहीं दिखाई देती है। सद्गुरु श्रीकबीरसाहेब ही एक-मात्र सर्वप्रथम पारख-प्रकाशी सब गुरुओंके आदिगुरु हुए, ऐसा आपके सद्ग्रन्थ बीजकके सत्यज्ञानसे ज्ञात होता है। अतः पारख-भूमिका सबसे भिन्न है और किसीको भी प्रथम वह भूमिका नहीं मिली। हंस-भूमिकामें ठहरकर काल, सन्धि, झाँई, तत्त्वमस्यादि वाणी-खानिकी यावत् भूमिकाओंको परखते-परखते; विवेक-विचारसे निर्णयद्वारा छानबीन करते-करते किसी बिरलेको अन्तमें उस पारख-भूमिकाकी प्राप्ति होती है। अपरोक्ष पारख-बोध होनेपर फिर वह जीवन्मुक्त कृतकृत्य हो जाता है। अतः उसी पारख-भूमिकाकी प्राप्तिके लिए सत्प्रयत्नमें लगे रहना चाहिए! ॥ २७ ॥

साखीः-जाते सकलो परखिया । सो पारख निज रूप ॥
तहाँ होय रहु स्थिर तू । नहिं झाँई भ्रम कूप ॥ २८ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! पञ्चकोशके समस्त प्रपञ्च, सब सिद्धान्त, खानि-वाणी-जालोंके सब भेद जिस परीक्षा-दृष्टिरूप सत्यज्ञानके प्रतापसे परखनेमें अर्थात् समझने-बूझने, निर्णयसे खरा-खोटा पहचाननेमें आया, सो शुद्ध पारखबोध चैतन्य जीवका निज सत्स्वरूप है। उसमें झाँई=व्यापक अद्वैत ब्रह्म-मानन्दीकी गाफिली तथा अन्य कल्पित मानन्दीरूपी कोई भी भ्रमकूप, धोखा, सन्देह नहीं है। अतः तहाँ=वहीं शुद्ध ज्ञान-स्वरूप पारखपदमें देह रहेतक स्थिर होकर स्थिति किये रहो ! सोई जीवन्मुक्तिका श्रेष्ठ पद है, ऐसा जानो ! ॥ २८ ॥

साखीः-पारख स्थिति कबीर गुरु । सकलो कही बखान ॥
तुम जियरा मम प्राण हो । लहहु सोइ दृढ़ ज्ञान ॥ २९ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! सर्वप्रथम सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजी स्वयं शोध-बोध, अनुभवद्वारा पारख-स्थितिको प्राप्त करके जीवन्मुक्त हुए। फिर मुमुक्षु मनुष्योंके प्रति वही पारख-स्थितिका सम्पूर्ण मर्म समझाकर आप सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबजी बीजकमें वर्णन करके कहे। वही मुक्तिका पद है। हे मुमुक्षु मनुष्यो ! तुम लोग जीव-भावसे मेरे स्वजातीय हो और मुझे तुम सब जीव अपने प्राणके समान प्रिय लगते हो ! अर्थात् हे जीवो ! तुम लोग मेरे निकटके अति प्रिय-पात्र हो ! इसलिए मैं तुम्हारे हित-कल्याणरूप मुक्तिकी इच्छा करता हूँ और मुक्तिका ही सत्य सरल मार्ग बतलाता हूँ। अब तुम लोग भी पारखी सन्तके सत्सङ्गमें विचारकर दृढ़तासे सत्पुरुषार्थ करके सोई पारख-सिद्धान्तरूप सद्ज्ञानको दृढ़ करके मुक्ति-स्थितिको प्राप्त करो ! अपने नर-जीवनको सफल करो ! अब इस कार्यके लिए विलम्ब करके चूक मत करो ! सावधान हो जाओ ! ॥ २९ ॥

॥ * ॥ चौबोला ॥ * ॥ पद चौपाई-४ हैं ॥ * ॥

१. पारख सबको परखत है । पुनि पारखका को परखनिहारा ! ॥ ३० ॥

टीकाः—हे सन्तो ! सत्य चैतन्य पारख-स्वरूप जो है, सो स्वयं शक्तिसे सबोंको एक-एक करके परखता है। अर्थात् ब्रह्म, ईश्वर, आत्मा, परमात्मा, खुदा, देवी-देवता, काल-सन्धि-झाँई, लोक-परलोक, वेद, शास्त्र, पुराण, कुरान, बाइबिल इत्यादिके समस्त सिद्धान्तोंके कसर-खोटको निर्णय करके परीक्षा करनेवाला सोई सर्वश्रेष्ठ पारखबोध निज स्वरूपका ज्ञान है। फिर उस पारखको भी परख करके देखनेवाला और कौन है ? कोई नहीं। स्वयंप्रकाशीको प्रकाश करनेवाला और कोई नहीं होता है। चैतन्यको चैतन्य करनेवाला दूसरा कोई नहीं होता है। वैसे ही सर्वपरीक्षक शुद्ध पारखको भी परखनेवाला दूसरा और कोई शक्ति नहीं है, ऐसा निश्चय करके जानलो ! ॥ ३० ॥

२. सत चित आनन्द और महानन्द । पारख सबको कीन्ह निबेरा ॥३१॥

टीका:—हे सन्तो ! सत् = कहिये अस्ति, तत्पद, सन्धि, सत्त्वगुण, ज्ञानमार्ग है। चित = कहिये भाति, त्वंपद, काल, रजोगुण, कर्ममार्ग है। आनन्द = कहिये प्रिय, असि- पद, झाँई, तमोगुण, विज्ञानमार्ग है। और शून्य स्थिति निर्विकल्प समाधि परमहंस-दशा महान् आनन्द-स्वरूप सर्वाधिष्ठान ब्रह्मपद माना है, सो भी महान् गाफिली चौरासी योनियोंका बीज है। उन सबको भी छानबीन करके, उनके सर्वाङ्गकी परीक्षा-कर हंसदृष्टिसे सार और असारको बिलगाकर पारखबोध सबका निबेरा वा निर्णय करता है। अर्थात् सबोंके सिद्धान्तका सत्य निर्णय पारखी सन्तोंने सत्यन्यायसे किया है ॥ ३१ ॥

३. बड़े-बड़े अनुभव के कर्त्ता । बिन पारख कस कीन्ह विचारा ॥ ३२ ॥

टीका:—हे सन्तो ! ब्रह्मादि, सनकादि, व्यास, वसिष्ठादि ऋषि-मुनिवर्ग, पीर, पैगम्बर, औलिया, सिद्ध, साधक, चतुर्वेदी, षट्शास्त्री, पौराणिक, कुरानी, बाइबिलिया ईसाई इत्यादि बहुतेरे नाना मत, नाना पन्थके नाना सिद्धान्तोंके बड़े-बड़े अनुभवके कर्त्ता हुए हैं; परन्तु उन्होंने बिना पारखके सिद्धान्तोंका विचार तो भी कैसा किया ? अनुमान, कल्पना, भावना मिथ्या मानन्दीके आधारसे जो कुछ विचार किये, सो भ्रमसे धोखेमें ही पड़े रहे। अतः पारख करनेपर उन सबका सिद्धान्त खोटा ठहरा ॥ ३२ ॥

४. पूरणदास कहै सुनु ज्ञानी ! निज पारख सो भया निनारा ॥ ३३ ॥

टीका:—श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—हे ज्ञानी जनो ! सुनो—निज स्वरूपका सत्यज्ञान अपरोक्ष बोध जो है, सोई उसका नाम शुद्ध पारख है। सो निजपदका पारखबोध प्राप्त हो जानेपर जीव सब ओरसे न्यारा, निर्लिप्त, निर्बन्ध होकर स्वच्छन्द जीवन्मुक्त हो जाता है। वह पारखबोध ही सत्यज्ञान है और मुक्ति देनेवाला है। अतः पारखी सद्गुरुका सत्योपदेश श्रवण-मनन करके पारख-सिद्धान्तका बोध ही परिपुष्ट कर लेना चाहिए ! ॥ ३३ ॥

॥ * ॥ साखी ३० से ३५ तक ॥ * ॥

साखीः—पाँच तत्त्व औ देह जड़ । याको नास्तिक जान ॥
यामें रहि याको लखै । सो पारख पहिचान ॥ ३४ ॥

टीका:—हे सन्तो ! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और समान पवनरूप आकाश; ये पाँच तत्त्व कहलाते हैं। त्रसरेणु, अणु और परमाणु उन पाँच तत्त्वोंके सामान्य मुख्य कारण हैं। भूगोल-पिण्ड, समुद्र, सूर्य, महान् पवन और समान वायु समूह-रूपसे विशेष कारण-भाग हैं और सब पदार्थ उन्हीं पाँच तत्त्वोंके कार्य हैं। चार खानियोंके अनन्त जीवोंकी छोटी-बड़ी देहें सब भी जड़ पाँच तत्त्वोंके ही कार्य हैं। जड़पाँचतत्त्वोंके यावत् कार्य पदार्थ बनते-बिगड़ते रहनेवाले होनेसे इनको नास्तिक = नाशवान्, अनित्य, परिणामी जानना चाहिए ! ऐसी नाश होनेवाली वस्तुओंको इष्ट

माननेवालोंको भी नास्तिक जानिये ! कैसे कि—कोई पृथ्वीको, गन्धको तथा अष्ट प्रतिमा आदिको ईश्वर, देवी-देवताके रूपमें मानते हैं, सो भी नास्तिक हैं। कोई जलको, रसको ईश्वर मानते हैं तथा गङ्गा-यमुनादि नदियोंके स्नानसे मुक्ति मानते हैं, सो भी नास्तिक हैं। कोई अग्निको, ज्योतिको, सूर्यादिको ईश्वर मानते हैं, सो भी नास्तिक हैं। कोई वायुको ईश्वर मानते हैं, कोई शून्य आकाशको ब्रह्म मानते हैं, वे भी नास्तिक ही बने हैं। कोई स्थूल देहको जीव मानते हैं, कोई सूक्ष्म देह, कारण देहको जीव मानते हैं, कोई दश इन्द्रियों, पचीस प्रकृतियोंको जीव मानते हैं, कोई मनको, कोई बुद्धिको, कोई चित्तको, कोई अहङ्कारको, कोई प्राणको, कोई ज्योतिको, कोई शून्यको, कोई वनस्पतियोंको, कोई पहाड़-पत्थरादिको भी जीव मानते हैं। इत्यादि प्रकारसे माननेवाले, विपरीत समझवाले वे सब नास्तिक ही बने हैं, ऐसा जानिये ! अर्थात् पाँच तत्त्वोंका विस्तार और देहें, वे सब जड़ हैं, नश्वर हैं। उनको अविनाशी, सत्य चैतन्य जीव वा ईश्वरादि समझ करके माननेवाले लोगोंको नास्तिक जानना चाहिए ! जो वस्तु जैसी है, उसे वैसा ही समझकर माने, सो आस्तिक कहलाता है। आस्तिक सत्यको माननेवाले सत्यवादी होते हैं। जड़ देहके मध्यमें रहनेवाला चैतन्य जीव उससे भिन्न विजातीय है। देहमें रहकर निजस्वरूपको पहचाने तथा जड़ देहोंके स्वरूपको भी लखै, एवं पाँच तत्त्वोंके स्वरूपको भी यथार्थ जानै और दूसरे जिज्ञासु मनुष्योंको भी जना देवै—"जानै जनावै पारख सोई।" वही पारखबोधकी पहचान है, जो सबसे न्यारा होकर निजस्वरूपमें स्थिर रहते हैं, ऐसा जानिये ! ॥ ३४ ॥

साखीः—आनन्द आनन्द सब कहैं। आनन्द जीवको काल ॥
पूरण पारख प्रकाश भौ। शरण कबीर दयाल ! ॥ ३५ ॥

टीकाः—हे सन्तो ! सब संसारी मनुष्य और मतवादी जन आनन्दको ही सर्वोपरि मानते हैं, आनन्द प्राप्त करना चाहिये कहते हैं। जहाँ वे भिन्न-भिन्न प्रकारसे प्रयत्न करके आनन्द प्राप्त करना-कराना चाहते हैं। कोई विषयानन्दके इच्छुक बने हैं, कोई प्रेमानन्द चाहते हैं, कोई योगानन्द, ज्ञानानन्द, त्रिगुणानन्द, भजनानन्द, अद्वैतानन्द, रामानन्द, ब्रह्मानन्द इत्यादि विभिन्न प्रकारके आनन्द लेना चाहते हैं। ब्रह्म, ईश्वर, आत्माका असली स्वरूप भी आनन्द ही माने हैं। इस प्रकार आनन्द होना चाहिए, आनन्द मिलना चाहिए, आनन्दमें लवलीन हो रहना चाहिए ! इत्यादि कथन करके सब कोई कहते हैं। परन्तु परीक्षा करनेपर वे ही माने हुए सब आनन्द जीवके लिए काल हो जाते हैं। आनन्द वा सुखाध्यासके वशीभूत होकर जीव दुःख भोगनेके लिए नाना योनियोंमें गर्भवासको प्राप्त हो जाता है। स्वरूपसे सुख वा दुःख अकेला चैतन्य जीवमें नहीं है। जड़ देह, विषयादिका सम्बन्ध करके ही सुख-दुःख होते हैं। अतः स्थूल-सूक्ष्म विषयादि सुखकी चाहना ही बन्धनका मूल कारण होनेसे जीवके लिए सुखेच्छा ही काल है। परम दयालु पूर्ण परीक्षक पारख-प्रकाशी सद्गुरु श्रीकबीरसाहेबने बीजक सद्ग्रन्थमें कहा है कि:—

"रामानन्द रामरस माते । कहहिं कबीर हम कहि-कहि थाके ॥"

॥ शब्द—७७, बीजक ॥

ऐसे सत्य निर्णयी श्रीकबीरसाहेबके सच्चे अनुयायी पारखी सद्‌गुरुकी शरणमें जब मैं गया, तब दया करके सद्‌गुरुजी मुझे सब भेद बता दिये। गुरु कबीरदेवकी दयासे मेरे हृदयमें जब पारखबोधका पूर्ण प्रकाश हुआ, तब यह बात यथार्थ जाननेमें आई कि सब प्रकारके आनन्दकी सूक्ष्म अहन्ता, अध्यास ही जीवका काल, आवागमनका बीज है। सब लोग आनन्द-आनन्द जो कहते हैं, वही आनन्द ही बन्धनका मूल होनेसे काल है। अतः हे मुमुक्षुओ! विषयजन्य आनन्दोंकी आशा त्यागकर दयालु पारखी सद्‌गुरुके शरणागत हो, पूर्ण पारखबोध प्रकाश करके निज-स्वरूप पारखपदमें ही सदा स्थिर हो रहो! ॥ ३५ ॥

साखीः—अथ टीका समाप्ति भया । बाँचि विचारे जोय ॥
सदा विमल सत्सङ्ग करि । सन्त विवेकी सोय ॥ ३६ ॥

टीकाः—हे सन्तो! सद्‌ग्रन्थ मूल बीजककी भावार्थ-बोधिनी टीका बुझार्थरूप त्रिजा अथ=प्रारम्भसे कहना वा लिखना-लिखाना जो मैंने शुरू किया था, सो अब सम्पूर्ण भागकी टीका अन्ततक कहकर वा लिख-लिखा करके श्रीसद्‌गुरुदेवकी दयासे समाप्त भी हो गई है। [किन्तु रुग्णावस्थामें होनेसे सम्पूर्ण टीका पुनः संशोधन मैं नहीं कर सका]। मैंने इस टीकामें अपना अनुभव निष्पक्षरूपसे जो कुछ कहा है, उसे पढ़कर जो विचार करेंगे, उन्हें अवश्य पारखबोध हो जायगा। सद्‌ग्रन्थ मूल बीजक और त्रिजा टीकाके आधारसे जो मनुष्य सदा=नित्यप्रति निष्पक्ष विचारसे शुद्ध निर्मलतासे सत्सङ्ग करके निर्मल पारखबोधको अच्छी तरहसे समझेंगे, बूझेंगे, धारण करेंगे, सोवे ही विवेकी सन्त पारखी कहलावेंगे। अर्थात् शुरूसे आखिरीतक बीजककी त्रिजारूप टीका लिख-लिखाकर समाप्त हो गई है। जो इसे बाँचकर और विचार करके सदा विमल सत्सङ्ग करेंगे, सो वे ही सन्त विवेकी प्रवीण बोधवान् हो जावेंगे। अतः सत्सङ्ग-विचारमें सदा लगे रहना चाहिये! ॥ ३६ ॥

साखीः—परखावै परखै सदा । सत सङ्गतिके बीच ॥
ताको हमारी बन्दगी । किञ्चित रहै न कीच ॥ ३७ ॥

टीकाः—हे सन्तो! जो कोई पारखी सन्त बीजकके सत्य पारख-सिद्धान्तका आधार लेकर जिज्ञासु सन्तवर्ग वा भक्त लोगोंके समाजमें सत्सङ्गके बीचमें सत्यन्याय-निर्णयसे विवेक-विचार करके जड़ और चैतन्यका भेद, सार-असार, त्याग-ग्रहण इत्यादि सिद्धान्तकी बातोंको कह-सुन करके सदा पारखबोधको ही परखाते और परखते रहते हैं, सत्यन्यायसे निर्णय करनेमें किञ्चित् भी कीच=कसर, विकार, कल्पना, भ्रमके कीचड़को बाकी नहीं रखते हैं; स्वच्छ पारख-सिद्धान्तका ही निरूपण करके सारको ही ग्रहण करते-कराते रहते हैं; ऐसे उन निष्पक्ष विवेकी पारखी निज-पर हितकारी

सत्य निर्णयी साधुओंको हमारी बन्दगी है, बार-बार उनको धन्यवाद है। अतः मुमुक्षु मनुष्यो! प्रथम पारखी सद्गुरुके शरणागत होकर सत्सङ्गमें प्रत्येक बात पूछ-पूछकर सब भेदोंको परख लेना! फिर पूर्ण बोध हो जानेपर सत्सङ्गमें अन्य जिज्ञासुओंको भी बीजकका सत्य सिद्धान्त त्रिजा (टीका)के अनुसार परखाना! सत्यन्याय-निर्णय करनेमें कसर जरा-सा भी नहीं रहने देना! निर्णयसे कहने-सुननेमें नहीं घबराना! हठ-पक्षको छोड़कर पारखबोध निश्चय होकर समाधान हो जानेपर उपदेशदाता सद्गुरुका उपकार मानकर त्रयबार बन्दगी कर लेना चाहिए! यह भाव इस साखीमें कहा गया है। परन्तु व्यर्थका खण्डनकर वितण्डावाद कहीं नहीं करना चाहिये! ॥ ३७ ॥

साखीः—पूरण गुरु प्रसाद ते। तिरजा भया तमाम ॥
सोई हम तुमसों कहा। पारख सदा अमान ॥ ३८ ॥

टीकाः—श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—हे सन्तो! पारखबोधदाता पारखी सद्गुरुदेवके कृपा-प्रसादसे सद्ग्रन्थ बीजक मूलकी तिरजा=पारखसिद्धान्त-दर्शक त्रिजारूप टीका, भावार्थ—रमैनी, शब्द, ज्ञानचौंतीसा, विप्रमतीसी, कहरा, वसन्त, चाचर, बेली, बिरहुली, हिण्डोला और साखी; इन सबोंका सैद्धान्तिक भावार्थतमाम=सम्पूर्ण हो गया है। सो वही टीकाके संक्षेपमें सारांश रहनि-रहस्यकी बात इस अन्त स्तुतिकी साखियोंमें भी उपर्युक्त प्रकारसे यहाँतक हमने तुम लोगोंसे कही है। सत्स्वरूप पारखबोध मुक्तिका सर्वोच्च पद है। सदा-सर्वदा वह निर्विकार स्वच्छ, शुद्ध रहता है। उसमें मान-गुमान, मानन्दीकी पहुँच नहीं होती है। अतः सम्पूर्ण मन-मानन्दीका परित्याग करके सदा पारखपदमें स्थिर, जाग्रत्, शान्त, अमान हो रहो! सदा स्वरूप-स्थितिमें ही स्थिर हो रहना चाहिए! ॥ ३८ ॥

साखीः—पारख पारखी एक है। भिन्न भेद कछु नाहिं ॥
देह विलास करि भेद है। सो गुरु दियो दरशाहिं ॥ ३९ ॥

टीकाः—श्रीपूरणसाहेब कहते हैं—हे सन्तो! 'पारख' और 'पारखी' कहनेमें नाम दो होते हैं; किन्तु वस्तु तो एक ही है। जैसे—सूर्य और सूर्यका प्रकाश, अग्नि और उसकी उष्णता, जल और उसकी शीतलता; अथवा जीव और उसकी चैतन्यता; ये सब कहनेमें नाम दो होते हैं, तो भी वस्तु तो एक ही रहती है। उनमें तात्त्विक दृष्टिसे छिन्न-भिन्नताका भेद तो कुछ भी दिखाई नहीं देता है। गुण-गुणीका स्वरूप एक ही होता है। इसी प्रकार पारख-पारखीका स्वरूप भी एक ही है। उसमें भिन्न-भेद वास्तवमें कुछ भी नहीं है। केवल देह-विलासकी अवस्था ले करके कुछ साधारण भेद कहा है। जैसे—शरीर मौजूद है, तबतक त्याग-ग्रहण करना, परखना-परखाना, कहना-सुनना, लेना-देना, शङ्का-समाधान करना, उपदेश देना इत्यादि सत्कर्मका शुद्ध व्यवहार होता है। इसलिए उन्हें विवेकी पारखी सन्त कहते हैं। प्रारब्ध भोगते हुए वे जीवन्मुक्त होते हैं। और उनका देहान्त होनेपर विदेहमुक्त-स्थिति होती है; तब जीव अकेला स्वयं निराधार, देहादिके सम्बन्धसे रहित अक्रिय, अचल, अटल

शुद्ध पारख चैतन्य-स्वरूप मात्र ही रह जाते हैं। ऐसा देह रहेतक जीवन्मुक्तिमें वे 'पारखी' नामसे कहलाते हैं। वे ही जीव विदेहमुक्तिमें स्थित होनेपर उनका नाम 'पारख-स्वरूप' मात्र कहा जाता है। जीवका स्वरूप तो दोनों अवस्थामें एक ही रहता है। स्वरूपमें कुछ भी भेद नहीं होता है। देह-विलास करके जो थोड़ा-सा भेद होता है, सो पारखी सद्गुरुदेवने सत्यन्याय-निर्णयसे सत्सङ्गमें समझा करके प्रथमसे ही सब बातोंको उपदेश देकर दरशा दिया है। जो सत्य निर्णय सद्गुरुदेवने दरशाया है, सो उसीका भावार्थ कह करके मैंने भी आप लोगोंको बतला दिया है। अतः मनुष्य-देह रहते ही सत्पुरुषार्थ करके जीवन्मुक्त हो जाना चाहिए ! ॥ ३६ ॥

॥ ❋ ॥ इति श्री बीजक-टीकाकार सद्गुरु 'श्रीपूरणसाहेबजी' कृत अन्त-स्तुति भावार्थ-बोधिनी टीका सहित सम्पूर्णम् ॥ ❋ ॥

पुस्तक प्राप्ति स्थान, पूरा पताः—
रामस्वरूपदास, आचार्य कबीरपन्थ।
गद्दीस्थान—श्रीकबीर निर्णय मन्दिर,
मु० नागझिरी मोहल्ला, डाकघर—बुरहानपुर शहर,
जिला—पूर्व निमाड़ (खण्डवा) मध्यप्रदेश
[पिन नं० ४५०३३१]

पुस्तक प्राप्ति स्थानम् :—

रामस्वरूपदास आचार्य कबीरपन्थ ।

मुकाम :—श्रीकबीर निर्णय मन्दिर: नागझिरी ।

डाकघर—बुरहानपुर

जिला :—निमाड़ (खण्डवा) मध्यप्रदेश ।

४५०३३१